



संस्कृत साहित्य का

समीक्षात्मक इतिहास



डा० कपिलदेव द्विवेदी





Dubey Pandey

Sanjay Kumar

Dubey

S. Dubey

S. Dubey

1933/13 एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक : अनिल प्रिन्टर्स एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

मुद्रक अनिल प्रिन्टर्स 1933/13 एलगिन रोड इलाहाबाद फोन 601619

निवेदन

‘संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास’ संस्कृत-प्रेमी छात्रों एवं विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। यद्यपि अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तथा विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनेक ग्रन्थ इस विषय पर उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और वैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गए हैं। भारतीय विद्वानों के तुल्य ही पाश्चात्य विद्वानों का भी इस विषय में प्रशंसनीय योगदान रहा है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि अनेक संस्कृत-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों के होते हुए भी इस ग्रन्थ की क्या आवश्यकता है? इस विषय में विनम्र निवेदन है कि प्रायः सभी इतिहास-ग्रन्थों को देखने से उनमें कुछ व्यावहारिक-न्यूनताएँ दृष्टिगोचर हुईं। छात्रों के लिए उपयोगिता की दृष्टि से कुछ इतिहास-ग्रन्थ आवश्यकता से अधिक विस्तृत हैं, तो कुछ अत्यन्त संक्षिप्त; कुछ में तथ्यों का स्पष्ट प्रतिपादन नहीं है तो कुछ में मूल-ग्रन्थों के अध्ययन का अभाव है; कुछ में वाग्जाल प्रधान है तो कुछ में नीरस तथ्यात्मकता का बाहुल्य है। प्रयत्न किया गया है कि इस इतिहास-ग्रन्थ में छात्रों के लिए उपयोगिता की दृष्टि से सभी संभव न्यूनताओं का निराकरण किया जा सके। मल्लिनाथ के शब्दों में यह भी प्रयास किया गया है कि ‘नामूलं लिख्यते किञ्चिद् नानपेक्षितमुच्यते’। यथासंभव यह भी ध्यान रखा गया है कि अनावश्यक विस्तार न हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ की कतिपय विशेषताएँ ये हैं :—(१) यह इतिहास पूर्णतया समीक्षात्मक दृष्टि से लिखा गया है। (२) विभिन्न विवादास्पद विषयों पर प्रामाणिक और मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। (३) पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों की सभी भ्रान्त एवं निर्मूल धारणाओं का खण्डन किया गया है। (४) छात्रों के लिए उपादेयता को प्रमुखता दी गई है, (५) सभी नवीनतम अनुसन्धानों का उपयोग किया गया है। (६) वैदिक और लौकिक साहित्य का एकत्र संतुलित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। (७) मूल ग्रन्थों के अनुशीलन द्वारा परंपरागत उद्धरणों के अतिरिक्त नए मनोरम उद्धरण विभिन्न स्थलों पर दिए गए हैं। (८) शोध-छात्रों की उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए आधुनिकतम लेखकों की कृतियों का समावेश किया गया है। (९) यथाशक्ति वर्ण्य विषय

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
भूमिका—	१-२२
(क) संस्कृत-साहित्य का महत्त्व	१
(ख) क्या संस्कृत बोलचाल की भाषा थी ?	४
(ग) वेद और भारतीय विद्वान्	१०
ऋग्वेद १०, यजुर्वेद १२, सामवेद १३, अथर्ववेद १३, विविध १४	
(घ) वेद और पाश्चात्य विद्वान्	१५
ऋग्वेद १५, यजुर्वेद १७, सामवेद १६, अथर्ववेद १६, विविध २०	
अध्याय १ : वैदिक-साहित्य	२३-६३
(क) वेद	२३
वेदों का महत्त्व २३, वैदिक साहित्य का विभाजन २८,	
(ख) ऋग्वेद	३०
ऋग्वेद का मौलिक अंश ३२, ऋग्वेद की शाखाएँ ३४, ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय ३४, ऋग्वेद का महत्त्व ३५, ऋग्वेदीय देवता ३६, ऋग्वेदीय आख्यान ४०, आख्यान-समीक्षा ४२, ऋग्वेदकालीन संस्कृति ४५, ऋग्वेद का रचनाकाल ४८, निष्कर्ष ५३	
(ग) यजुर्वेद	५४
यजुर्वेद की शाखाएँ ५४, प्रतिपाद्य विषय ५६, अश्वमेध आदि याग ५७	

(घ) सामवेद

५६

सामवेद की शाखाएँ ५६, प्रतिपाद्य विषय ६१, सामवेदीय संगीत ६१, सामगान-ग्रन्थ ६३

(ङ) अथर्ववेद

६४

अथर्ववेद की शाखाएँ ६६, अथर्ववेद के उपवेद ६६, अथर्ववेद का परिमाण ६७, प्रतिपाद्य विषय ६७, वेदत्रयी और वेद-चतुष्टयी ६८, अथर्ववेद का महत्त्व ७०, अथर्ववेद की मुख्य बातें ७१

(च) ब्राह्मण ग्रन्थ

७३

प्रतिपाद्य विषय ७३, वेदानुसार ब्राह्मणों का वर्गीकरण ७४, ब्राह्मण-ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय ७५

(छ) आरण्यक ग्रन्थ

७७

प्रतिपाद्य विषय ७७, आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय ७८

(ज) उपनिषद्

७९

उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय ७९, उपनिषदों में दार्शनिक विवेचन ८०

(झ) वेदाङ्ग

८४

शिक्षा ८५, व्याकरण ८७, छन्द ८८, निरुक्त ८९, ज्योतिष ९०, कल्प ९१, अनुक्रमणिकाएँ ९३

अध्याय २ :

पुराण

९४-९६

पुराण का अर्थ ९४, पुराण का लक्षण ९४, पुराणों का रचनाकाल ९५, प्रतिपाद्य विषय ९५, पुराणों का महत्त्व ९५, पुराणों की संख्या ९६, पुराणों का संक्षिप्त परिचय ९७

अध्याय ३ :

रामायण

१००-११६

ऐतिहासिक महाकाव्यों का विकास १००, इतिहास, पुराण १०१, रामायण १०३, रामायण का मौलिक अंश

१०४, रामायण का समय १०६, आदिकवि वाल्मीकि
 १११, रामायण की शैली ११२, रामायण का सांस्कृतिक
 महत्त्व ११४, रामायण का परकालीन साहित्य पर प्रभाव
 ११५

अध्याय ४ :

महाभारत

११७-१३१

संक्षिप्त परिचय ११७, महाभारत की प्रगति के तीन चरण
 ११९, महाभारत का समय १२१, महाभारत की शैली
 १२३, महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व १२७, महाभारत
 का परकालीन साहित्य पर प्रभाव १२८, रामायण और
 महाभारत की तुलना १२९

अध्याय ५ :

महाकाव्य

१३२-२६३

महाकाव्य के लक्षण १३२, महाकाव्यों का उद्भव और
 विकास १३३,

(क) कालिदास

१३५

जीवनवृत्त १३५, कालिदास का समय १३८, कालिदास
 को ई० पू० प्रथम शताब्दी में मानने के कारण १४८,
 कुमारसंभव की कथा १४९, रघुवंश की कथा १५१, कालि-
 दास की शैली १५३, कालिदास का पाण्डित्य १६६,
 कालिदास-विषयक प्रशस्तियाँ १६७

(ख) अश्वघोष

१६७

जीवनवृत्त और कृतियाँ १६७, अश्वघोष का समय १६८,
 बुद्धचरित की कथा १६९, सौन्दरनन्द की कथा १७०,
 अश्वघोष की शैली १७१, अश्वघोष का पाण्डित्य १७८

(ग) भारवि

१८०

भारवि का जीवनवृत्त और कृतित्व १८०, भारवि का
 समय १८२, किरातार्जुनीय की कथा १८४, भारवि की
 शैली १८५, भारवेरर्थगौरवम् १८३, भारवि की न्यूनताएँ
 १८६, भारवि-विषयक प्रशस्तियाँ १८७

(घ) माघ

१६८

माघ का जीवनवृत्त और कृतित्व १६८, माघ का समय १६९, शिशुपालवध की कथा २०१, माघ की शैली २०२, माघे सन्ति त्रयो गुणाः २१२, काव्य-सौन्दर्य २१५, शास्त्रीय-पाण्डित्य २१६, भारवि और माघ की तुलना २१८, माघ की न्यूनताएँ २२०, माघ-विषयक प्रशस्तियाँ २२०

(ङ) श्रीहर्ष

२२१

श्रीहर्ष का जीवनवृत्त और कृतित्व २२१, श्रीहर्ष का समय २२४, नैषधीयचरित की कथा २२४, श्रीहर्ष की शैली २२५, काव्यसौन्दर्य २३४, नैषधं विद्वदौषधम् २३४, श्रीहर्ष की न्यूनताएँ २३७

(च) अन्य महाकवि

२३८

(क) भट्टि :

२३८

जीवनवृत्त, कृतित्व और समय २३८, भट्टि की शैली एवं काव्यसौन्दर्य २४०

(ख) कुमारदास

२४४

जीवनवृत्त, कृतित्व और समय २४४, कुमारदास की शैली २४४

(ग) रत्नाकर :

२४८

(घ) हरिचन्द्र :

२५०

(ङ) कविराज :

२५१

(च) अन्य महाकवि

२५३

कवि-सामान्य २५४, काश्मीरी कवि २६०, बौद्ध महा-कवि २६०, जैन महाकवि २६०, अनेक-सन्धान (श्लेष-मूलक) काव्यकार २६२, स्त्री-कवि २६२

अध्याय ६

नाटक

२६३-४५३

नाटक का महत्त्व २६३, संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति २६५, संस्कृत नाटकों का विकास २६६, संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ २७१

(क) महाकवि भास

२७४

जीवनवृत्त और कृतित्व २७४, भास के १३ नाटक २७५, नाटकों की संक्षिप्त कथा २७५, क्या इन १३ नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है? २७७, इन १३ नाटकों का रचयिता भास है २७६, भास का समय २८२, भास की नाट्यकला २८५, भास की शैली २८७, भास का विविध कला-ज्ञान २९५, भास की न्यूनताएँ २९६

(ख) महाकवि शूद्रक

२९६

जीवनवृत्त और कृतित्व २९६, मृच्छकटिक का लेखक कौन है? ३००, मृच्छकटिक का लेखक शूद्रक है ३०१, मृच्छकटिक का रचनाकाल ३०५, मृच्छकटिक की संक्षिप्त कथा ३०७, शूद्रक की नाट्यकला-संबन्धी विशेषताएँ ३०६, शूद्रक की शैली ३१३, चारुदत्त और मृच्छकटिक का साम्य-वैषम्य ३१७, मृच्छकटिक का सामाजिक और राजनीतिक मूल्यांकन ३१६, चारुदत्त और वसन्तसेना ३२१, मृच्छकटिक की सार्वभौमिकता एवं लोकप्रियता ३२२, मृच्छकटिक की प्राकृत ३२३

(ग) महाकवि कालिदास

३२६

नाटकों की संक्षिप्त कथा एवं समीक्षा : मालविकाग्निमित्र ३२६, विक्रमोर्वशीय ३२६, अभिज्ञान-शाकुन्तल ३३२, मूलकथा और उसमें परिवर्तन ३३५, कालिदास की नाट्यकला ३३६, शाकुन्तल में रस-निरूपण ३३६, कालिदास का काव्य-सौन्दर्य ३४१, कालिदास की शैली ३४६

(घ) विशाखदत्त

३५३

जीवनवृत्त और कृतित्व ३५४, विशाखदत्त का समय ३५५, विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन ३५६, मुद्राराक्षस की संक्षिप्त कथा ३५८, विशाखदत्त की नाट्यकला ३५९, विशाखदत्त की शैली ३६२

(ङ) हर्ष (हर्षदेव, हर्षवर्धन)

३६५

जीवनवृत्त और कृतित्व ३६५, इन तीन नाटकों का लेखक कौन है? ३६६, नाटकों की संक्षिप्त कथा और समीक्षा : प्रियदर्शिका ३६९, नागानन्द ३७१, रत्नावली ३७३, हर्ष की नाट्यकला एवं शैली ३७४, नाटिका के रूप में—प्रियदर्शिका और रत्नावली ३८०

(च) भट्ट नारायण

३८१

जीवनवृत्त और कृतित्व ३८१, भट्टनारायण का समय ३८१, वेणीसंहार की संक्षिप्त कथा ३८२, मूलकथा में परिवर्तन ३८४, तृतीय अंक का महत्त्व ३८५, नाटक का नायक कौन? ३८५, भट्ट-नारायण की नाट्यकला ३८६, भट्ट-नारायण की शैली और काव्यसौन्दर्य ३८८, भट्टनारायण की न्यूनताएँ ३९३, संस्कृत-साहित्य में वेणीसंहार का स्थान ३९३

(छ) भवभूति

३९४

भवभूति का जीवनवृत्त और कृतित्व ३९५, भवभूति का समय ३९६, नाटकों की संक्षिप्त कथा और समीक्षा : मालतीमाधव ३९७, महावीरचरित ४०१, उत्तररामचरित ४०२, मूलकथा में परिवर्तन ४०३, भवभूति के नाटकों में समाज और संस्कृति ४०५, भवभूति का शास्त्रीय और कलात्मक पाण्डित्य ४०६, भवभूति की नाट्यकला ४०६, चित्रदर्शन का महत्त्व ४०७, छाया-दृश्य का नाटकीय महत्त्व ४०८, गर्मनाटक का महत्त्व ४०८, उत्तररामचरित

में रस-निष्पत्ति ४१०, कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते ४१२, भवभूति की शैली ४१५, भवभूति की अन्य विशेषताएँ ४२४, भवभूति की न्यूनताएँ ४२४, भवभूति और कालिदास ४२५

(ज) विविध नाटककार

४२८

(क) अश्वघोष	४२८
(ख) मुरारि	४२९
(ग) राजशेखर	४३३
(घ) बिहनाग	४३६
(ङ) कृष्ण मिश्र	४३८
(च) जयदेव	४४०

(झ) अन्य नाटककार

४४१

(क) सामान्य नाटककार	४४२
(ख) रूपकात्मक नाटक	४५२
(ग) नाटक की अन्य विधाएँ	४५२

अध्याय ७ : गद्य-काव्य

४५३-५२१

संस्कृत-गद्य की उत्पत्ति और विकास ४५३, गद्य-काव्य का विकास ४५६, साहित्यिक गद्य ४५६, कथा और आख्यायिका ४६१

(क) दण्डी

४६५

जीवनवृत्त ४६५, दण्डी की कृतियाँ ४६६, दण्डी का समय ४७१, दशकुमारचरित की संक्षिप्त कथा ४७३, दण्डी की शैली और काव्य-सौष्ठव ४७५

(ख) सुबन्धु

४८२

सुबन्धु का जीवनवृत्त और कृतित्व ४८२, सुबन्धु का समय ४८२, वासवदत्ता की संक्षिप्त कथा ४८५, सुबन्धु की शैली और उसका काव्य-सौन्दर्य ४८५

(ग) बाण भट्ट

(कवि) ४८६

बाण का जीवनवृत्त और कृतित्व ४८६, बाण का समय ४९१, हर्षचरित की संक्षिप्त कथा ४९१, कादम्बरी की संक्षिप्त कथा ४९३, बाण की शैली और काव्य-सौन्दर्य ४९६, बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ४९६, बाण का काव्य-सौन्दर्य ५०३

(घ) विश्वेश्वर पाण्डेय	५०६
(ङ) अम्बिकादत्त व्यास	५०८
(च) हृषीकेश भट्टाचार्य	५११
(छ) पण्डिता क्षमाराव	५१३
(ज) डा० रामशरण त्रिपाठी	५१५
(झ) अन्य गद्यकार	५१७

अध्याय ८ : गीतिकाव्य ५२१-५७०

गीतिकाव्य का स्वरूप ५२१, गीतिकाव्य का उद्गम और विकास ५२१, गीतिकाव्य के दो भेद ५२२, संस्कृत गीतिकाव्यों की विशेषताएँ ५२२

(क) कालिदास

५२५

कृतित्व ५२५, ऋतुसंहार ५२५, मेघदूत ५२६, मेघदूत-श्लोक-संख्या ५२७, मेघदूत के संस्करण ५२७, मेघदूत के टीकाकार ५२७, मेघदूत की संक्षिप्त कथा ५२८, मेघदूत का आधार ५२९, मेघदूत की शैली और काव्य-सौन्दर्य ५३०, मेघदूत में मेघ का मार्ग ५३७, अलंकार-विधान और छन्दोयोजना ५३८, मेघदूत का दार्शनिक पक्ष ५३९, मेघदूत की लोकप्रियता और दूत-काव्य ५४०

(ख) भर्तृहरि

५४१

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व ५४१, शैली ५४२

(ग) अमरु (अमरुक)

५४५

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व ५४५, शैली और काव्य-सौन्दर्य ५४५

(घ) जयदेव

५४७

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व ५४७, जयदेव की शैली और काव्यसौन्दर्य ५४८, गीतिकाव्य या संगीत-नाटक ५४९, भक्तिकाव्य या शृंगार-काव्य ५४९, काव्यसौन्दर्य ५५०, लोकप्रियता ५५३

(ङ) पण्डितराज जगन्नाथ

५५४

जीवनवृत्त ५५४, समय ५५५, कृतित्व ५५५, शैली और काव्य-सौन्दर्य ५५५

(च) गीतिकाव्य विविध

५५६

शृंगारिक गीतिकाव्य ५५६, स्तोत्र-साहित्य ५५६, अन्य गीति-काव्यकार ५६०

(छ) सुभाषित-ग्रन्थ

५६८

अध्याय ६ :

कथा-साहित्य

५७१-५८१

कथा-साहित्य का उद्गम और विकास ५७१, नीति-कथाओं की विशेषताएँ ५७३

(क) पञ्चतन्त्र

५७५

लेखक ५७५, रचनाकाल ५७५, पञ्चतन्त्र के संस्करण ५७६, पंचतन्त्र की कथा और शैली ५७७, कथा ५७८, शैली ५७९, पंचतन्त्र का विश्व-व्यापी प्रचार ५८०

(ख) हितोपदेश

५८१

लेखक और समय ५८२, कथा और शैली ५८२

(ग) लोककथाएँ

५८३

बृहत्कथा : लेखक और समय ५८३, बृहत्कथा पर आश्रित ग्रन्थ ५८५, बृहत्कथाश्लोक-संग्रह ५८५, क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी ५८५, सोमदेव-कृत कथासरित्सागर ५८६, अन्य कथाग्रन्थ ५८६, वेतालपंचविशतिका ५८६, सिंहासन-द्वान्विशिका ५८७, शुक-सप्तति ५८८, अन्य कथाग्रन्थ ५८९, बौद्ध कथाग्रन्थ ५८९, दिव्यावदान ५९०, जातक-माला ५९०, कल्पनामण्डितक या सूत्रालंकार ५९०, जैन कथाग्रन्थ ५९०, उपमितिभव-प्रपंच-कथा ५९०, हेमचन्द्र ५९१, मेरुतुंगाचार्य-कृत प्रबन्ध-चिन्तामणि ५९१, राज-शेखर-कृत प्रबन्धकोश ५९१, अन्य जैन कथाग्रन्थ ५९१

अध्याय १० : ऐतिहासिक काव्य

५९२-६०१

ऐतिहासिक काव्यों का उद्गम और विकास ५९२, अश्व-घोष ५९३, बाण भट्ट ५९३, वाक्पतिराज ५९३, आर्य-मंजुश्रीकल्प ५९४, पद्मगुप्त (परिमल) ५९४, बिल्हण ५९५, महाकवि कल्हण ५९७, अन्य ऐतिहासिक काव्यकार ६००

अध्याय ११ : चम्पू-काव्य

६०१-६१६

चम्पू-काव्य की उत्पत्ति और विकास ६०१

(क) त्रिविक्रम भट्ट

६०२

जीवनवृत्त और कृतित्व ६०२, समय ६०४, नलचम्पू की कथा ६०४, त्रिविक्रम भट्ट की शैली ६०४, त्रिविक्रम भट्ट की न्यूनताएँ ६०९

(ख) विविध चम्पू-ग्रन्थ

६१०

हरिश्चन्द्र-कृत जीवन्धरचम्पू ६१०, जैन सोमदेव सूरि-कृत यशस्तिलकचम्पू ६१०, भोजराज-कृत रामायण-चम्पू ६११, अभिनव कालिदास-कृत भागवत-चम्पू ६११,

अनन्त भट्ट-कृत भारत-चम्पू ६१२, रानी तिरुमलाम्बा-
कृत वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू ६१२, अन्य चम्पू-ग्रन्थ
६१३

अध्याय १२ : संस्कृत-पत्र-पत्रिकाएँ ६१७-६१८
अप्राप्य प्राचीन पत्र और पत्रिकाएँ ६१७, वर्तमान पत्र-
पत्रिकाएँ ६१७

परिशिष्ट

- (क) प्रमुख सहायक ग्रन्थ ६१६-६२३
(ख) अनुक्रमणिका (लेखकों एवं ग्रन्थों की सूची) ६२४-६४२
-

भूमिका

(क) संस्कृत-साहित्य का महत्त्व

संस्कृत देवभाषा—संस्कृत भाषा भारतीयों की प्राणभूत भाषा है। संस्कृत भाषा में ही उनका मनन, चिन्तन, गवेषण और अनुभूति समन्वित है। इसका इतिहास कम से कम पाँच सहस्र वर्ष का है। वैदिक काल से लेकर आज तक इसकी अक्षुण्ण धारा प्रवाहित रही है। 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—परिष्कृत, निर्दोष, निर्मल, शुद्ध और अलंकृत। भारतीयों ने जिस भाषा को अशुद्धि, अपभ्रंश, अपशब्द और भाषागत दोषों से पृथक् रखकर परिष्कृत रूप में रखा, उसे संस्कृत भाषा नाम दिया गया। संस्कृत को देवभाषा, देववाणी, गीर्वाणवाणी, गीर्वाणगीः आदि नामों से व्यवहृत किया जाता है। 'विद्वांसो हि देवाः' विद्वानों को देवता कहते हैं, इस आधार पर संस्कृत को देवभाषा कहा जाता था। यह विद्वानों, मनीषियों, शिष्टों और तत्त्वज्ञानियों की भाषा थी। ईसवीय सन् के प्रारम्भ से पूर्व तक संस्कृत का प्रयोग विद्वज्जन-भाषा और राजभाषा के रूप में प्रचलित था।

संस्कृत के विकृत रूप का ही नाम 'प्राकृत' भाषा है। 'प्रकृति' का अर्थ है—मूलभाषा अर्थात् संस्कृत। उससे निकली हुई भाषा को 'प्राकृत' कहते हैं। जनसाधारण को भी प्रकृति कहते हैं, अतएव जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त भाषा को प्राकृत कहते हैं। संस्कृत भाषा का ही विकृत रूप प्राकृत भाषा है। इसमें व्याकरण के नियमों आदि का पूर्णतया पालन न होकर नदी की धारा के प्रवाह के तुल्य जन-जीवन में प्रयुक्त भाषा का अक्षुण्ण रूप रहता है। अतएव एक संस्कृत भाषा से प्रयोग के आधार पर अनेक प्राकृत भाषाएँ प्रादुर्भूत हुईं।

संस्कृत का महत्त्व—भारतवर्ष का समस्त प्राचीन ज्ञान-भंडार संस्कृत में ही है। भारतीयों के सभी धर्मग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृति-ग्रन्थ, दर्शन, धर्मशास्त्र, महाकाव्य, काव्य, नाटक, गद्य-काव्य, गीति-काव्य, आख्यान-साहित्य आदि संस्कृत में ही हैं। इतना ही नहीं व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तु-कला, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, इतिहास, छन्द-शास्त्र और कोश-ग्रन्थ तक संस्कृत में ही हैं। ज्ञान-विज्ञान

का ऐसा कोई अंग नहीं है, जो संस्कृत-भाषा में उपलब्ध नहीं है। यह प्राचीन ऋषि, महर्षियों, मनीषियों, कवियों और तत्त्वज्ञों के अथक परिश्रम का ही फल है कि इतना विस्तृत वाङ्मय संस्कृत में उपलब्ध है।

संक्षेप में संस्कृत का महत्त्व निम्नलिखित है :—

(१) इसमें विश्व का सबसे प्राचीनतम साहित्य उपलब्ध है। जिसमें वैदिक साहित्य, मुख्यतया ऋग्वेद, विशेष उल्लेखनीय है।

(२) विश्व की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की जानकारी के लिए संस्कृत ही एकमात्र साधन है।

(३) विश्व-संस्कृति की आधार-शिला संस्कृत-वाङ्मय में ही उपलब्ध होती है। इसके आधार पर ही विश्व-संस्कृति की तुलनात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है।

(४) भारोपीय (Indo-European) परिवार की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत है। इसके तुलनात्मक अध्ययन से ही 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' का जन्म हुआ है।

(५) संस्कृत में ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृति, धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र, व्याकरण, काव्य-शास्त्र और आयुर्वेद आदि पर जितना विस्तृत प्राचीन वाङ्मय उपलब्ध होता है, उतना विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं है।

(६) संस्कृत-साहित्य ने न केवल एशिया-महाद्वीप के ही विभिन्न देशों की भाषाओं और संस्कृतियों को प्रभावित किया है, अपितु यूरोप और अमेरिका-खंड की भाषाओं और संस्कृतियों पर इसकी अमिट छाप है।

(७) 'प्राचीन भारतीय साहित्य का महत्त्व पूर्णतः उसकी मौलिकता के कारण है'।^१ 'भारोपीय परिवार की कोई और शाखा ऐसी नहीं है, जिसे इस प्रकार स्वतन्त्र विकास का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। चीन को छोड़कर और कोई भारत जैसा देश नहीं जो अपनी भाषा एवं साहित्य का, अपनी धार्मिक धारणा एवं विधियों का, अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक रूढ़ियों का ३००० वर्ष से अधिक पूर्व समय से अव्याहत गति से विकास बतला सकता हो।'^२

(८) 'संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन और अधिक ध्यान देने योग्य है। कारण यह मानव जाति की वह प्राचीन सम्पत्ति है, जिसमें हमारे भारतीय साम्राज्य के

अधिकांश प्रजाजन हिन्दुओं की भाषाएँ, धार्मिक एवं बौद्धिक जीवन तथा विचार अथवा यों कहिए समग्र सम्यता का मूल ही निष्ठित है।”

(९) ‘मानव जाति के विकास के अध्ययन का मूल-स्रोत होने के कारण भारतीय वाङ्मय ग्रीक साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है।”

(१०) ‘यद्यपि अनेक शाखाओं में संस्कृत-साहित्य ने उत्कृष्टता प्राप्त की है, तथापि धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में इसका उत्कर्ष अत्यधिक है।”

(११) वैदिक-साहित्य एवं संस्कृत-साहित्य के आधार पर ही मैक्समूलर और एडलबर्ट कुहन ने ‘तुलनात्मक प्राचीन कथा-विज्ञान’ नामक विज्ञान को जन्म दिया है।”

(१२) ‘भारतीय साहित्य की विपुलता को देखकर बुद्धि दंग रह जाती है। भारतीय पाण्डुलिपियों की विपुल सूचियाँ, भारत तथा यूरोप के पुस्तकालयों में, सर्वत्र सहस्रों लेखकों और ग्रन्थों के नाम गिनाती हैं।” इससे संस्कृत-साहित्य की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

(१३) ‘भारतीय साहित्य की प्राचीनता, भूगोल तथा विकास की दृष्टि से व्यापकता, उसकी आन्तरिक संभूति एवं कमनीयता और मानव-संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से उसका मूल्य—ये सब चीजें हैं जो पाश्चात्य जगत् को इसकी महत्ता, मौलिकता तथा प्राचीनता की ओर बरबस आकर्षित कर लेती हैं।”

(१४) ‘सच बात तो यह है कि भारत का यह प्राचीन साहित्य ही था, जिसके द्वारा विश्व के इतिहास में एक युगान्तर आया और परिणामतः अब हम पूर्व और पश्चिम के बिसरे, प्रागैतिहासिक, सम्बन्धों को कुछ-कुछ समझने लगे हैं।”

(१५) ‘इन्डो-यूरोपियन संस्कृति के प्राचीनतम रूप को अवगत करना चाहते हैं, तो इसके लिए हमें भारत का ही मुखापेक्षी होना पड़ेगा।”

१. मैकडॉनल, सं० सा० का इतिहास, हि० अनु० पृ० ५।

२. वही, पृष्ठ ५।

३. वही, पृष्ठ ५।

४. वही, पृष्ठ ५।

५. विन्टरनिस्स, प्राचीन भारतीय साहित्य, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५।

६. वही, पृष्ठ ५।

७. वही, पृष्ठ ५।

८. वही, पृष्ठ ६।

(१६) भारतीय संस्कृति का विशुद्ध स्वरूप जानने के लिए संस्कृत-साहित्य ही एकमात्र साधन है।

(१७) भारतीयों के प्रबुद्ध विचारों, दार्शनिक चिन्तनों, धार्मिक संस्कारों, ज्ञान-विज्ञान की अनुपम उपलब्धि के मार्मिक ज्ञान के लिए संस्कृत-साहित्य का ज्ञान अनिवार्य है।

(१८) वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि के उदात्त काव्य-सौन्दर्य, रचना-चातुर्य, प्रकृति-प्रेम और आदर्श जीवन-दर्शन के लिए संस्कृत का यथार्थ बोध अत्यावश्यक है।

(१९) तात्त्विक चिन्तन, मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन भाषा-शास्त्र, प्राचीन विधान, प्राचीन गणित, ज्योतिष, प्राचीन राज्यतन्त्र, राजनीति, धर्मशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, सामुद्रिक शास्त्र, संगीत, नृत्य, अभिनय-कला आदि के सूक्ष्मतम ज्ञान के लिए संस्कृत-वाङ्मय ही आश्रय है।

(२०) विश्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व एवं विश्व-संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों की समीक्षा, परीक्षा और अन्वीक्षा के लिए संस्कृत का अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है।

(ख) क्या संस्कृत बोलचाल की भाषा थी ?

यास्क के निरुक्त, पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि के महाभाष्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनके समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। उन्होंने अनेक प्रयोगों और उदाहरणों द्वारा इसकी पुष्टि की है। इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि संस्कृत जनसाधारण की भाषा थी या केवल विद्वद्बर्ग की। अधिकांश विद्वानों का मत है कि ईसवीय सन् से पूर्व संस्कृत केवल विद्वज्जनों की भाषा थी और इसी में उच्च साहित्य की रचना होती थी। सामान्य जनता 'प्राकृत' भाषा का प्रयोग करती थी। इसके विषय में हमारा विचार है कि ईसवीय सन् से पूर्व संस्कृत राजभाषा के रूप में व्यहृत होती थी। राजकीय कार्य, शासकीय आदेश, विद्वज्जनों के वाद-विवाद, शास्त्रीय चर्चा, ज्ञान-विज्ञान के उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना तथा विद्वद्बर्ग का पारस्परिक संवाद आदि संस्कृत भाषा में ही होता था। सामान्य जनता संस्कृत के ही विकृत रूप 'प्राकृत भाषा' का प्रयोग करती थी। संस्कृतज्ञ भी दैनिक व्यवहार में प्राकृत का प्रयोग करते थे और सामान्य जन भी संस्कृत समझने और बोलने की क्षमता रखते थे।

आवश्यकतानुसार सामान्य जन भी संस्कृत के वाद-विवादों में संस्कृत का प्रयोग करते थे। इसको वर्तमान 'खड़ी बोली' हिन्दी के उदाहरण से समझा जा सकता है। शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली का प्रयोग बहुत कम प्रदेशों में होता है। अधिकांश व्यक्ति अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, पहाड़ी आदि बोलियाँ दैनिक व्यवहार में प्रयोग करते हैं, परन्तु ये सभी साहित्यिक हिन्दी बोलने और समझने की क्षमता रखते हैं तथा लेखनादि में साहित्यिक खड़ी बोली का ही प्रयोग करते हैं।

संस्कृत प्राचीन समय में बोलचाल की भाषा थी, इसके समर्थन में कुछ तथ्य उपलब्ध होते हैं। इनका संक्षेप में विवरण निम्नलिखित है :—

(१) निरुक्तकार यास्क (लगभग ७०० ई० पू०) ने संस्कृत को 'भाषा' (अर्थात् बोलचाल की भाषा) कहा है और वैदिक संस्कृत से इसको पृथक् माना है।^१ इतना ही नहीं, बोलचाल में प्रयुक्त संस्कृत से कुछ वैदिक कृदन्त शब्दों की निष्पत्ति बताई है।^२ यास्क ने (निरुक्त २-२) संस्कृत के प्राच्य और उदीच्य भेदों का उल्लेख किया है।

(२) पाणिनि (५वीं शती ई० पू०) ने भी अनेक सूत्र ऐसे दिए हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि बोलचाल की भाषा को लेकर ये नियम बनाए गए हैं। जैसे— (१) दूर से पुकारने में अन्तिम स्वर को प्लुत,^३ (२) आशीर्वचन में नाम या गोत्र के अन्तिम स्वर को प्लुत।^४ पाणिनि ने वैदिक भाषा के लिए 'छन्दस्' और लोक-प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग करके दोनों का अन्तर स्पष्ट किया है।^५ पूर्वी और उत्तरी क्षेत्रों में प्रयुक्त रूपों के लिए प्राचाम्, उदीचाम् आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।^६

(३) कात्यायन—(४थं शती ई० पू०) अपने वार्तिकों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि लोक में प्रचलित शब्दों को आधार मान कर ही संस्कृत व्याकरण

१. 'न' इति प्रतिषेधार्थो भाषायाम्। उभयम् अन्वध्यायम्। (निरुक्त अध्याय १ पाद २)।

२. भाषिकेभ्यो धातुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यन्ते (निरुक्त २-२)।

३. दूराद्भूते च (अष्टा० ८-२-८४)।

४. प्रत्यभिवादेऽसूत्रे (८-२-८३)।

५. नृणां चरितं (२-४-२०)।

की रचना हुई है।^१ विभिन्न प्रान्तों, प्रदेशों और देशों में प्रयुक्त धातुओं और शब्दरूपों को लेकर धातुपाठ आदि में विभिन्न धातुओं एवं शब्दों का संकलन किया गया है।^२

(४) पतंजलि—(१५० ई० पू० के लगभग) ने अनेक उदाहरणों से पाणिनि और कात्यायन के कथनों की पुष्टि की है। (क) 'सिद्धे शब्दार्थसंबन्धे'^३ अर्थात् व्याकरण प्रचलित शब्द और अर्थ को आधार मानकर चलता है। (ख) 'लोकतः'^४ अर्थात् लोक-व्यवहार के आधार पर शब्दों का अर्थबोध होता है। (ग) 'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः'^५ के द्वारा पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि बोलचाल में प्रान्तीय भेद होते थे। जैसे—दाक्षिणात्य लोग 'लोके वेदे च' के स्थान पर तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द 'लौकिकवैदिकेषु' का प्रयोग रुचिकर मानते थे।^६ (घ) 'सर्वे देशान्तरे' की व्याख्या में पतंजलि ने प्रान्तीय और जनपदीय भेदों का भी उल्लेख किया है। जैसे—'जाना' अर्थ में कम्बोज में श्व धातु का प्रयोग, सुराष्ट्र में हम् धातु का और प्राच्य तथा मध्य प्रदेश में रंह, धातु का एवं आर्यों में गम् धातु का प्रयोग होता है। पूर्व में काटना अर्थ में 'दातिः' का प्रयोग और उत्तर में 'दात्रम्' का प्रयोग होता था।^७ (ङ) 'एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः'^८ अर्थात् एक ही शुद्ध संस्कृत शब्द के अनेक अपभ्रंश शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार एक ही शब्द प्रान्तीय भेद से अनेक रूपों में परिवर्तित हो जाता है। जैसे—गो शब्द के अपभ्रंश हैं—गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि। (च) पतंजलि ने एक रोचक संवाद का उल्लेख किया है, जिससे सिद्ध होता है कि एक वैयाकरण की अपेक्षा एक सारथि

१. लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण घर्मनियमः (महा० १ आह्निक)।

२. सर्वे देशान्तरे (महा० आ० १)।

३. महाभाष्य आह्निक १।

४. वही, आ० १।

५. वही, आ० १।

६. यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये 'यथा लौकिकवैदिकेष्विति' प्रयुञ्जते। महा० आ० १।

७. ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते। तद्यथा—श्ववतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, ...हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्यमेषु, गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते। दातिर्लवनार्थं प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु। (महा० आह्निक १)।

८. महा० आ० १।

को प्रचलित शब्दों की व्युत्पत्ति और प्रयोग का अधिक व्यावहारिक ज्ञान है। वैयाकरण के 'प्रवेता' (हाँकने वाला) प्रयोग को सारथि ने अशुद्ध बताकर 'प्राजिता' (हाँकने वाला) प्रयोग प्रचलित बताया है। इसी प्रकार 'सूत' (सारथि) की व्युत्पत्ति वैयाकरण ने सु+उत (अच्छा बुना) बताई, जिसको सारथि ने अशुद्ध बताकर 'सुवतेरेव सूतः' कहकर 'षू प्रेरणे' (तुदादि०) से सूत (हाँकने वाला) शब्द की व्युत्पत्ति ठीक बताई है।^१

(५) रामायण और महाभारत-काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, यह पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। कीथ और ग्रियर्सन ने भी यह विचार प्रकट किया है।^२ रामायण में उल्लेख है कि हनुमान् ने बहुत विचार के बाद अशोक-वाटिका में सीता से संस्कृत में ही बोलने का निश्चय किया।^३ रामायण में ही उल्लेख है कि इल्वल राक्षस ने ब्राह्मण का रूप धारण कर संस्कृत में ही ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया।

(६) 'इसमें सन्देह नहीं है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती समस्त आर्यावर्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो।'^४

(७) बौद्ध कवि अश्वघोष (१म शती ई०) ने प्राकृत को छोड़कर विवश हो संस्कृत में ही बुद्धचरित और सौन्दरनन्द महाकाव्यों की रचना की, क्योंकि संस्कृत के माध्यम से बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करना सुकर था। इसी प्रकार बौद्ध और जैन दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक ग्रन्थ प्राकृत या अपभ्रंश में न लिखकर संस्कृत में ही लिखे हैं।

(८) वैद्यराज चरक (१म शती ई०) ने चरक-संहिता में वैद्यों के वार्तालाप में संस्कृत के प्रयोग का उल्लेख किया है।

(९) द्वितीय शती ई० के बाद अधिकांश शिलालेख संस्कृत में ही लिखे गए

१. एवं हि कश्चिद् वैयाकरण आह-'कोऽस्य रथस्य प्रवेता' इति। सूत आह—'अहमायुष्मन् अस्य रथस्य प्राजिता' इति। वैयाकरण आह—अपशब्द इति। सूत आह—प्राप्तिज्ञो देवानां प्रियः, न तु इष्टिज्ञः। इष्यत एतद् रूपमिति। महा० २-४-५६।

२. Keith and Grierson, JRAS, 1906

३. वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृतान् (वा० सुन्दरकांड ३०-१७)।

४. मैकडॉनल—संस्कृत-साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनु०) पृष्ठ १६।

हैं। ६ष्ठ शती ई० से लेकर, केवल जैन शिलालेखों को छोड़कर, १९वीं शती ई० तक सारे शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के प्रायः सभी स्तम्भलेख, दानपत्र, राजकीय शासनपत्र और राज-प्रशस्तियाँ आदि संस्कृत में ही मिलते हैं।

(१०) चीनी यात्री ह्वेनसांग (७वीं शती ई०) ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि बौद्ध लोग शास्त्रीय वाद-विवाद या शास्त्रार्थ में संस्कृत का ही व्यवहार करते थे। जैन लोग भी शास्त्रीय या धार्मिक चर्चा में संस्कृत का प्रयोग करते थे।

(११) जैन लेखक सिद्धार्थि (६०६ ई०) ने जैन-भावों को लेकर 'उपमिति-भवप्रपंचकथा' नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा है। इसमें उसने प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत भाषा के प्रयोग को अधिक लाभप्रद, सरल और श्रुतिसुखद बताया है।^१

(१२) संस्कृत-नाटकों में संस्कृत के साथ ही प्राकृत भाषाओं का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि उच्चवर्ग के व्यक्ति संस्कृत बोलते थे और सामान्य वर्ग के व्यक्ति विभिन्न प्राकृतों का प्रयोग करते थे। प्राकृत बोलने वाले भी आवश्यकता-नुसार संस्कृत बोलते थे। प्राकृत बोलने वाले कठिन से कठित संस्कृत के गद्य और पद्य भलीभाँति समझते थे और उनका उत्तर प्राकृत में देते थे। संस्कृतभाषी प्राकृत समझते थे और प्राकृतभाषी संस्कृत। इसी प्रकार दर्शक भी संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं को अच्छी तरह समझते थे। मैकडॉनल ने भी इस मत का पुष्ट समर्थन किया है।^२

(१३) साहित्य में अनेक ऐसे संदर्भ मिलते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि जनसाधारण के सामने रामायण और महाभारत का पाठ होता था और जनता उसका ठीक रसास्वाद करती थी।^३

(१४) गुप्तकाल और राजा भोज (११वीं शती ई०) के समय में संस्कृत

१. संस्कृता प्राकृता चेति भाषे प्राधान्यमर्हतः ।

तत्रापि संस्कृता तावद् दुर्विदग्धहृदि स्थिता ॥

बालानामपि सद्बोधकारिणी कर्णपेशला ।

तथापि प्राकृता भाषा न तेषामपि भासते ॥

उपमितिभवप्रपंचकथा १-५१, ५२ ।

२. मैकडॉनल, सं० सा० का इतिहास (हिन्दी अनु०) पृष्ठ १६-२० ।

३. वही, पृष्ठ २० ।

भाषा को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला । साधारण, जनता भी संस्कृत में बोलने की क्षमता रखती थी । धारा नगरी का एक जुलाहा भी सुन्दर श्लोक बना सकता था—‘काव्यं करोमि न हि चास्तरं करोमि’...हे साहसांक कवयामि वयामि यामि’ ।

(१५) अनेक राजपरिवारों में यह नियम था कि अन्तःपुर में संस्कृत का ही प्रयोग किया जाए । राजशेखर ने उज्जयिनी के राजा साहसांक-उपाधिधारी विक्रमादित्य का नाम इस विषय में विशेष रूप से लिखा है ।^१

(१६) काश्मीरी कवि बिल्हण (११वीं शती ई०) ने उल्लेख किया है कि काश्मीरी स्त्रियाँ संस्कृत, प्राकृत और काश्मीरी भाषा ठीक समझती थीं ।^२

(१७) भारत के उपनिवेशों में भी संस्कृत का प्रचलन था । प्राचीन चम्पा (वर्तमान फ्रांसीसी हिन्द-चीन) में १३वीं-१४वीं शती ई० तक संस्कृत राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी ।^३

(१८) मैकडॉनल ने इस मत का सर्वथा निराकरण किया है कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा नहीं थी । उनका कथन है—‘लौकिक संस्कृत प्रारम्भ से ही एक साहित्यिक, अथवा यों कहिए, एक कृत्रिम, नियमबद्ध भाषा क्यों न रही हो, वह लोक-व्यवहार की भाषा नहीं थी’—यह उक्ति सर्वथा प्रामादिक है । पूर्व में हम कह आए हैं कि संस्कृत आज भी भारतवर्ष में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा बोली जाती है और दैनिक व्यवहार में लिखी भी जाती है ।^४

(१९) संस्कृत को मृतभाषा कहना सर्वथा हास्यास्पद है । मैकडॉनल (Macdonell)^५, विन्टरनिट्स (Winternitz)^६, पाल डायसन (Paul Deussen)^७,

१. काव्यमीमांसा, पृष्ठ ५० ।

२. विक्रमांकदेवचरित, १८-६ ।

३. भारतीय वाङ्मय के अमररत्न, पृष्ठ ७५ ।

४. मैकडॉनल सं० सा० का इति० (हिन्दी) पृष्ठ २० ।

५. वही, पृष्ठ ६-७, २० ।

६. History of Indian Literature, पृष्ठ ४५ ।

७. Erinnerung an Indian, Kiel, 1904, PP. 2 f.

विन्डिश (Windisch)^१, हर्टेल (Hertel)^२, आर० जी० भण्डारकर^३, एस० कृष्ण वर्मा^४ आदि ने अपने संस्मरणों तथा तथ्यों के द्वारा सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में ही नहीं, अपितु वर्तमान काल में भी संस्कृत जीवित भाषा के तुल्य प्रयोग में आ रही है। यथा—(क) सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् संस्कृत में वार्तालाप, शास्त्रार्थ एवं पत्र-व्यवहार करते हैं। (ख) आज भी संस्कृत में गद्य, पद्य एवं काव्यों की रचना हो रही है। (ग) आज भी संस्कृत में ५ साप्ताहिक, ३ पाक्षिक, १७ मासिक, ७ त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं।^५ (घ) आज भी संस्कृत ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने की प्रक्रिया जारी है। (ङ) विवाह आदि संस्कार संस्कृत में ही होते हैं। (च) सन्ध्या, हवन, गायत्री-पाठ आदि संस्कृत में ही होते हैं। (छ) धार्मिक पूजन आदि की सभी विधियाँ पूरे भारत में संस्कृत में ही होती हैं। (ज) आज भी संस्कृत के नाटकों का अभिनय होता है।

(ग) वेद और भारतीय विद्वान्

वैदिक वाङ्मय के विषय में प्राचीन काल तथा आधुनिक समय में जो कुछ कार्य हुआ है, उसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है। इस विषय में विशेष उल्लेखनीय है कि वैदिक वाङ्मय की उन्नति में राजा राममोहनराय द्वारा स्थापित 'ब्राह्मसमाज' और स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित 'आर्यसमाज' ने विशेष सक्रिय कार्य किया है। ब्राह्मसमाज का ध्यान भारतीय-गौरव-रक्षा के लिए उपनिषदों की ओर रहा और आर्यसमाज ने वैदिक साहित्य पर बल दिया। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में वैदिक साहित्य पर जो कुछ कार्य हुआ है, उसमें आर्यसमाज का स्थान अग्रगण्य है।

(१) ऋग्वेद

(१) ऋग्वेद संहिता—(१) सायण ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का परम्परागत ढंग

१. OC XIV, Paris 1897, I. 257, 266.

२. तन्त्राख्यायिका (Trans.) I. pp 8ff.

३. JBRAS, 16, 1885, 268 ff., 327 ff.

४. OC V, Berlin, 1881, II B, P. 222.

५. विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत—संस्कृत-गद्यनवनीतम्, भूमिका

से भाष्य किया है। सायण का भाष्य ही वेदार्थज्ञान के लिए पाश्चात्य विद्वानों का आधार रहा है। सायण ने ५ वैदिक संहिताओं, ११ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा २ अरण्यकों पर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखा है। (२) **वैकटभाष्य**—ऋग्वेद पर वैकटभाष्य का भाष्य डा० लक्ष्मणस्वरूप ने संपादित कर ४ भागों में प्रकाशित किया था। (३) **स्वामी दयानन्द** ने नैरुक्त-प्रक्रिया से संस्कृत और हिन्दी में ऋग्वेद के ७ कांडों (सूक्त ८० तक) का भाष्य प्रकाशित किया। अकालमृत्यु से यह कार्य अधूरा रहा। पं० **आर्यमुनि** ने इस अवशिष्ट भाग को पूर्ण किया। (४) **विश्वबन्धु** ने ऋग्वेद ४ भाष्यों सहित ८ भागों में प्रकाशित किया है। (५) **सातवलेकर** ने ऋग्वेद-संहिता का भूमिका और परिशिष्टों के साथ सुन्दर संस्करण निकाला है।

भारतीय भाषाओं में निम्नलिखित विद्वानों ने सम्पूर्ण ऋग्वेद अर्थ-सहित प्रकाशित किया है—(१) **रमेशचन्द्र दत्त** ने बंगला में, (२) **सिद्धेश्वर शास्त्री चिन्नाथ** ने मराठी में, (३) **जयदेव विद्यालंकार** ने हिन्दी में, (४) **रामगोविन्द त्रिवेदी** ने हिन्दी में, (५) **कोल्हट और पटवर्धन** ने मराठी अनुवाद आठ भागों में प्रकाशित किया है। (६) **सातवलेकर** ने चार भागों में 'ऋग्वेद का सुबोध भाष्य' छपा है। इन्होंने तीन भागों में 'देवत-संहिता'—देवों के अनुसार ऋग्वेद के मंत्रों का संकलन, भी छपा है।

(२) **ऋग्वेद-विषयक ग्रन्थ ग्रन्थ**—(१) सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण एवं ऐतरेय अरण्यक का भाष्य किया है और ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका लिखी है। (२) सत्यव्रत सामश्रमी ने ऐतरेयब्राह्मण और ऐतरेयारण्यक सायण-भाष्य-सहित सम्पादित किया। उन्होंने 'ऐतरेयालोचन' ग्रन्थ भी लिखा है। (३) **मंगलदेव शास्त्री** ने ऋग्वेद-प्रातिशाख्य संपादित किया है और अंग्रेजी में भूमिका दी है। (४) **गोविन्द और अनूत** ने शांखायन-श्रौतसूत्र की टीका लिखी है। (५) **राजेन्द्रलाल मित्र** ने आश्वलायन-श्रौतसूत्र का सम्पादन किया है। (६) **अविनाशचन्द्र दास** ने 'ऋग्वेदिक इन्डिया' ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा है। (७) **महेशचन्द्र राय तत्त्वनिधि** ने 'ऋग्वेदेर समालोचना' बंगला में प्रकाशित की है। (८) **नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ** ने 'ऋग्वेदालोचन' में ऋग्वेदीय विषयों की सुन्दर आलोचना की है। (९) **कपालि शास्त्री** ने ऋग्वेद 'सिद्धांजन' भाष्य-सहित २ भागों में प्रकाशित किया है। (१०) **स्वामी दयानन्द** ने 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित की है। इसमें ऋग्वेद के महत्त्व पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

- (११) स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने चारों वेदों की पदसूची लाहौर से प्रकाशित की थी। (१२) लॉ (N. N. Law) ने Age of the Rigveda लिखा है। (१३) श्रीराम शर्मा ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है।

(२) यजुर्वेद (शुक्ल एवं कृष्ण)

(१) यजुर्वेद संहिता—(१) महीधर और उब्वट ने शुक्ल यजुर्वेद का संस्कृत में भाष्य लिखा है। यह बहुत प्रसिद्ध भाष्य है। (२) सायण ने काण्व-संहिता (२० अध्याय तक) तथा तैत्तिरीय संहिता का भाष्य लिखा है। (३) दुर्गादास लाहिड़ी ने शुक्ल यजुर्वेद (महीधर-भाष्य-सहित) और कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता (६ भाग) छापी हैं। (४) सातवलेकर—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि और काण्व संहिताएँ तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिताएँ बड़े परिश्रम से प्रकाशित की हैं। इनमें सुन्दर भूमिका और परिशिष्ट भी हैं। इन्होंने यजुर्वेद के ५ अध्यायों (अ० १, ३०, ३२, ३६, ४०) का 'सुबोधभाष्य' भी हिन्दी में प्रकाशित किया है। (५) स्वामी दयानन्द ने नैरुक्त-प्रक्रियस का आश्रय लेकर सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद का संस्कृत और हिन्दी में भाष्य किया है। यह उच्चकोटि का प्रामाणिक भाष्य है। (६) जयदेव विद्यालंकार ने शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है। (७) श्रीराम शर्मा ने भी शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है। (८) श्रीधर पाठक ने शुक्ल यजुर्वेद का मराठी में अनुवाद किया है। (९) सत्यव्रत सामश्रमी ने शुक्ल यजुर्वेद का बंगला में अनुवाद किया है। (१०) ज्वालाप्रसाद मिश्र ने शुक्ल यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य किया है।

(२) यजुर्वेदीय अन्य ग्रन्थ—(१) आचार्य सायण ने तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं आरण्यक पर महत्त्वपूर्ण भाष्य किया है। (२) भट्टभास्कर ने भी तै० ब्रा० पर भाष्य लिखा है। (३) सत्यव्रत सामश्रमी ने सायण-भाष्य-सहित शतपथ ब्राह्मण प्रकाशित किया है। (४) गंगाप्रसाद उपाध्याय ने पूरे शतपथ-ब्राह्मण का हिन्दी भाष्य किया है। इसे डा० सत्यप्रकाश (इलाहाबाद) ने प्रकाशित किया है। (५) उब्वट ने कात्यायन के शुक्लयजुःप्रातिशाख्य पर अपना भाष्य लिखा है। (६) कर्क, जयराम, गदाधर, हरिहर और विश्वनाथ ने पारस्कर-गृह्यसूत्र पर भाष्य लिखा है।

(३) सामवेद

१. सामवेद संहिता—(१) सायण—ने सामवेद का पूरा भाष्य लिखा है। (२) सातवलेकर—ने सामवेद-संहिता का भूमिका आदि सहित शुद्ध संस्करण निकाला है। इन्होंने सामवेद-संहिता का अर्थ व स्पष्टीकरण-सहित संस्करण भी प्रकाशित किया है। (३) दुर्गादास लाहिड़ी ने सायण-भाष्य-सहित सामवेद प्रकाशित किया है। (४) सामवेद के ये अनुवाद प्राप्त होते हैं—(क) सत्यव्रत सामश्रमी—बंगला में अनुवाद, (ख) तुलसीराम स्वामी—हिन्दी भाष्य, स्वा० दयानन्द की पद्धति पर, (ग) जयदेव विद्यालंकार—हिन्दी-भाष्य, (घ) श्रीराम शर्मा—हिन्दी भाष्य, (ङ) वीरेन्द्र शास्त्री—हिन्दी अर्थ-सहित।

(२) सामवेदीय अन्य ग्रन्थ—(१) सायण ने सामवेदीय इन ब्राह्मणों का भाष्य किया है—ताण्ड्य (पंचविंश), षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् ब्रा०, संहितोपनिषद् ब्रा०, वंश ब्राह्मण। (२) सत्यव्रत सामश्रमी ने इन ग्रन्थों का संपादन एवं बंगला में अनुवाद किया है—वंश ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण एवं गोभिल गृह्यसूत्र। (३) पुष्पसिंह लक्ष्मण शास्त्री द्रविड ने सामप्रातिशाख्य (पुष्पसूत्र), आनन्दचन्द्र ने अग्निस्वामी के भाष्य-सहित लाट्यायन श्रौतसूत्र (१८७०-७२ ई०) तथा चन्द्रकान्त तर्कालंकार ने गोभिल गृह्यसूत्र (१८७१-८० ई०) प्रकाशित किया।

(४) अथर्ववेद

(१) अथर्ववेद संहिता—(१) दुर्गादास लाहिड़ी—ने सायण-भाष्य-सहित अथर्ववेद (शौनक-शाखा) ५ भागों में प्रकाशित किया। (२) शंकर पांडुरंग पंडित ने भी सायण-भाष्य-सहित संस्करण निकाला था। (३) सातवलेकर ने अथर्ववेद-संहिता (शौनकीय) १९४३ ई० में प्रकाशित की। इन्होंने 'अथर्ववेद का सुबोध भाष्य' ५ भागों में प्रकाशित किया है। इसमें मन्त्रार्थ के अतिरिक्त विशद हिन्दी-व्याख्या है। यह अथर्ववेद का सर्वोत्तम व्याख्या-ग्रन्थ है। यह श्री सातवलेकर के अगाध वेद-ज्ञान और अथक परिश्रम का परिचायक है। (४) क्षेमकरण त्रिवेदी ने संपूर्ण अथर्ववेद का संस्कृत-हिन्दी-भाष्य किया है। (५) जयदेव विद्यालंकार ने भी संपूर्ण अथर्ववेद का हिन्दी-भाष्य किया है। (६) श्रीराम शर्मा ने भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। (७) विश्वबन्धु

ने सायण-भाष्य-सहित अथर्ववेद ५ भागों में निकाला है। (८) डा० रघुवीर ने अथर्ववेद (पैप्पलाद-संहिता) प्रकाशित की है।

(२) अथर्ववेदीय ग्रन्थ ग्रन्थ—निम्नलिखित विद्वानों ने अन्य अथर्ववेदीय ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं:—(१) त्रिवेदी—अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य और अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी, (२) भगवद्दत्त—अथर्ववेदीय पंचपटलिका और माण्डूकी शिक्षा, (३) क्षेमकरण त्रिवेदी—गोपथ ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद-सहित), (४) राजेन्द्रलाल मित्र—गोपथ ब्राह्मण।

विविध

(१) चारों वेद मूल—वैदिक यंत्रालय, अजमेर ने छापे हैं। निम्नलिखित विद्वानों ने ये ग्रन्थ लिखे हैं:—(२) लक्ष्मणसरूप—निरुक्त का संपादन तथा अंग्रेजी-अनुवाद, (३) चन्द्रमणि विद्यालंकार—निरुक्त का हिन्दी-भाष्य, (४) सत्यव्रत सामश्रमी—निरुक्त (४ भाग) निरुक्तालोचन, त्रयी-चतुष्टय, (५) चिन्तामणि विनायक वैद्य—हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर (वैदिक पीरियड), (६) भगवद्दत्त—वैदिक वाङ्मय का इतिहास (३ भाग), वेदविद्या-निदर्शन, (७) मंगलदेव शास्त्री—ऋक्प्रातिशाख्य (संपादित), भारतीय संस्कृति का विकास, (८) सूर्यकान्त—अथर्व-प्रातिशाख्य (संपादित), वैदिक-कोश, वैदिक-देवशास्त्र, वैदिक धर्म एवं दर्शन (वैदिक इन्डेक्स का अनुवाद), (९) विश्व-बन्धु—वैदिक पदानुक्रमकोष (१६ भाग) (संपादित), वेदसार, (१०) लोकमान्य तिलक—आर्कैटिक होम इन द वेदाज, ओरायन (अंग्रेजी, हिन्दी), वैदिक क्रोनोलॉजी एण्ड वेदांग ज्योतिष, (११) हंसराज—वैदिक कोष (भाग १), (१२) सम्पूर्णानन्द—आर्यों का आदि देश, व्रात्यकांड, (१३) रामगोविन्द त्रिवेदी—वैदिकसाहित्य, गंगा (वेदांक, संपादित), (१४) वासुदेवशरण अग्रवाल—वेद-विद्या, वेद-रश्मि, उरु-ज्योति, पृथ्वी-पुत्र, Vision in Long Darkness, Thousand Syllabled Speech, Vedic Lectures, (१५) बलदेव उपाध्याय—वैदिक साहित्य और संस्कृति, सायण और माधव, वेदभाष्य-भूमिका-संग्रह (संपादित), (१६) सातवलेकर—वैदिक व्याख्यानमाला (४८ व्याख्यान-ग्रन्थ, ४ भागों में, हिन्दी, मराठी और गुजराती में), वेदामृत, अथर्ववेद सुबोध-भाष्य (५ भाग, हिन्दी, मराठी, गुजराती में), उपनिषद्-भाष्य-ग्रन्थमाला (६ उपनिषदों का हिन्दी-भाष्य), (१७) मजूमदार—Vedic Age, (१८) स्वामी हरिप्रसाद

(वैदिक मुनि) स्वाध्याय-संहिता, (१६) शिवशंकर काव्यतीर्थ—वेदार्थ-निर्णय, वैदिक-विज्ञान, (२०) पं० भीमसेन शर्मा—संस्कार-चन्द्रिका, (२१) स्वामी दर्शनानन्द—उपनिषद्-भाष्य तथा वैदिक विषयों पर छोटे ग्रन्थ, (२२) गुरुवत्त विद्यार्थी—The Terminology of the Vedas, (२३) प्रियरत्न आर्ष—यम-पितृ-परिचय, वैदिक मनोविज्ञान, अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र, (२४) अरविन्द घोष—On the Veda, (२५) पी० एल० भार्गव—India in the Vedic Age, (२६) रामगोपाल—India of Vedic Kalpasutras, वैदिक व्याकरण, (२७) कपिलदेव द्विवेदी—अथर्ववेदकालीन-संस्कृति, (२८) मुंशीराम शर्मा—वैदिक साहित्य और संस्कृति, (२९) वाचस्पति गैरोला—वैदिक साहित्य और संस्कृति, (३०) रामकुमार राय—वैदिक माइथोलोजी, वैदिक इन्डेक्स और ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स के हिन्दी अनुवाद । (३१) हरिशंकर जोशी—वैदिक विश्व-दर्शन, (३२) भारती कृष्णतीर्थ (जगद्गुरु)—Vedic Mathematics, (३३) गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी—वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, (३४) बांडेकर—Vedic Bibliography, (३५) सत्यप्रकाश—वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ अन्वेष, (३६) जयदेव शर्मा—क्या वेद में इतिहास है? (३७) रघुनन्दन शर्मा—वैदिक-सम्पत्ति, (३८) करमबलेकर—अथर्ववेद एण्ड द आयुर्वेद, (३९) भार्गव—Rigvedic Geography of India, (४०) लॉ (N. N. Law)—Age of the Rigveda.

(घ) वेद और पाश्चात्य विद्वान्

पाश्चात्य विद्वानों ने जिस योग्यता और तत्परता से वैदिक वाङ्मय की आराधना की है, उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता है। कई विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय की आराधना और सेवा में अपना समस्त जीवन ही बिता दिया है। उन्होंने वेद के किसी एक अंश पर ही नहीं, अपितु वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, वैदिक सूचियाँ (Index) आदि सभी अंगों पर घोर परिश्रम किया है। यहाँ पर उसकी रूपरेखा-मात्र प्रस्तुत की जा रही है।

(१) ऋग्वेद

(१) ऋग्वेद संहिता—(१) सर्वप्रथम फ्रीड्रिक रोजन (Friedrich Rosen) ने ऋग्वेद का सम्पादन प्रारम्भ किया और केवल प्रथम अष्टक मूल पाठ

और लैटिन अनुवाद के साथ १८३८ ई० में प्रकाशित किया। उसके आकस्मिक देहावसान से यह कार्य रुक गया। (२) मैक्समूलर (Max Muller) ने सर्वप्रथम सायण-भाष्य-सहित ऋग्वेद का संपादन किया। इसका प्रारम्भ १८४६ ई० में हुआ और १८७५ ई० में पूर्ण हुआ। २७ वर्ष के घोर परिश्रम से यह कार्य पूर्ण हुआ। यह ३ सहस्र से अधिक पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें कई सौ पृष्ठों की भूमिका और टिप्पणी हैं। इसका संशोधित द्वितीय संस्करण १८६०-१८६२ में प्रकाशित हुआ। यह मैक्समूलर के गंभीर अध्यवसाय का परिचायक है। (३) थियोडोर आउफ्रेख्त (Theodor Aufrecht) ने रोमन लिपि में ऋग्वेद-संहिता सम्पूर्ण १८६१-६३ ई० में प्रकाशित की। इसका द्वितीय संस्करण १८७७ ई० में प्रकाशित हुआ। पाश्चात्य विद्वानों में यह संस्करण बहुत प्रचलित है।

(२) ऋग्वेद के अनुवाद—(१) विल्सन (H. H. Wilson) ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का पूरा अंग्रेजी में अनुवाद १८५० ई० में प्रकाशित किया। यह सायण-भाष्य पर आश्रित है। विल्सन सायण के प्रबल समर्थकों में थे। (२) ग्रासमान (H. Grassmann) ने दो भागों में सम्पूर्ण ऋग्वेद का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद किया है। यह १८७६-७७ में प्रकाशित हुआ। ग्रासमान राँठ के शिष्य थे और राँठ की स्वतन्त्र तुलनात्मक पद्धति को इन्होंने अपनाया है। ये सायण-विरोधी वर्ग के व्यक्ति हैं। (३) लुडविग (A. Ludwig) ने मध्यम मार्ग का अवलम्बन करते हुए सम्पूर्ण ऋग्वेद का ६ भागों में जर्मन भाषा में अनुवाद किया है। जो १८७६-१८८८ ई० में प्रकाशित हुआ। (४) ग्रिफिथ (R. T. H. Griffith) ने सायण-भाष्य का समुचित उपयोग करते हुए सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया है। साथ ही आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी हैं। यह १८८६-१८९२ में वाराणसी से प्रकाशित हुआ। चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद का श्रेय श्रीग्रिफिथ महोदय को ही है। (५) ओल्डेनबर्ग (H. Oldenberg) ने दो भागों में सम्पूर्ण ऋग्वेद का महाभाष्य जर्मन भाषा में (१९०६ से १९१२ ई० में) प्रकाशित किया। इसमें वैदिक समालोचना की पराकाष्ठा है। यह ऋग्वेद पर सर्वोत्कृष्ट भाष्य माना जाता है। ओल्डेनबर्ग का वैदिक समालोचना में वही स्थान है, जो वेदान्त में शंकराचार्य का। (६) लांग्लो (Langlois) ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का चार भागों में फ्रेंच भाषा में अनुवाद (१८४८-१८५१ ई० में) प्रकाशित किया। यह कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के विशिष्ट अंशों का आलोचनात्मक

अध्ययन एवं अनुवाद किया है। इनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—(१) रुडाल्फ रॉठ (Rudolph Roth), (२) गेल्डनर (Karl Geldner) और केगी (Adolf Kaegi) ७० सूक्तों का अनुवाद, (३) रोअर (Roer), (४) हिलेब्राण्ट (A. Hillebrandt)।

(३) ऋग्वेदीय संकलन—कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद के प्रसिद्ध सूक्तों के अनुवाद एवं व्याख्या-सहित छात्रोपयोगी संकलन निकाले हैं, जिनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—(१) मैक्समूलर—Vedic Hymns, (२) ओल्डेनबर्ग—Vedic Hymns, (३) मैकडॉनल (Macdonell)—A Vedic Reader for Students, Hymns from the R̥gveda, (४) थॉमस (E. G. Thomas)—Vedic Hymns, (५) पीटर्सन (Peter Peterson)—Hymns from the R̥gveda.

(४) ऋग्वेदीय ब्राह्मण—(१) प्रो० हाउग (M. Haug) ने ऐतरेय ब्राह्मण का सम्पादन तथा अंग्रेजी-अनुवाद १८६३ में दो भागों में प्रकाशित किया। (२) आउफ्रेख्त (T. Aufrecht) ने ऐतरेय-ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ संस्करण रोमन अक्षरों में सायण-भाष्य के कुछ अंशों तथा अनेक सूचियों के साथ १८७६ में प्रकाशित किया। (३) प्रो० लिन्डनर (B. Lindner) ने कौषीतकि-ब्राह्मण १८८७ में संपादन कर प्रकाशित किया। (४) डा० कीथ (Keith) ने ऐतरेय और कौषीतकि दोनों ब्राह्मणों का अंग्रेजी अनुवाद १९२० में प्रकाशित किया। इसमें १०० से अधिक पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है। कीथ ने ही शांखायन आरण्यक का अंग्रेजी अनुवाद किया है।

(५) ऋग्वेदीय सूत्रग्रन्थ—(१) स्टेन्त्सलर (A. F. Stenzler) ने आश्वलायन गृह्यसूत्र दो भागों में प्रकाशित किया है। (२) हिलेब्राण्ट ने शांखायन श्रौतसूत्र का सम्पादन किया है।

(२) यजुर्वेद

(क) शुक्ल यजुर्वेद

(१) यजुर्वेदीय संहिता—(१) वेबर (Albrecht Weber) ने शुक्ल यजुर्वेद संहिता का महीधर-भाष्य-सहित देवनागरी अक्षरों में सुन्दर संस्करण १८४६-१८५२ ई० में प्रकाशित किया था। श्री वेबर ने ही शुक्ल यजुर्वेद की

काण्व शाखा का भी संस्करण १८५२ में प्रकाशित किया। (२) ग्रिफिथ—ने शुक्ल यजुर्वेद का १८६६ में बनारस से अंग्रेजी में पद्यानुवाद प्रकाशित किया।

(२) यजुर्वेदीय ब्राह्मण—(१) वेबर ने शतपथ ब्राह्मण का १८५५ में सर्वप्रथम आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया। इसमें सायण, हरिस्वामी और द्विवेदगंग की टीकाएँ भी हैं। (२) कैलेंड (W. Caland) ने शतपथ ब्राह्मण (कण्वशाखीय) अंग्रेजी प्रस्तावना के साथ १९२६ ई० प्रकाशित किया। (३) ईग्लिंग (J. Eggeling) ने शतपथ ब्राह्मण का अंग्रेजी अनुवाद बृहद् भूमिका के साथ 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज' में ५ भागों में प्रकाशित किया था।

(३) यजुर्वेदीय सूत्रग्रन्थ—(१) वेबर ने कात्यायन-श्रौतसूत्र १८५६ में प्रकाशित किया। (२) स्टेन्सलर ने पारस्कर गृह्यसूत्र का संपादन किया।

(ख) कृष्ण यजुर्वेद

१. कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताएँ—(१) वेबर ने कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता को रोमन अक्षरों में सम्पादित कर अनेक टिप्पणियों सहित १८७१-१८७२ में 'इन्डिशे स्टुडिएन' रिसर्च जर्नल में प्रकाशित किया। वेबर ने ही मैत्रायणी-संहिता का भी संस्करण १८७७ ई० में निकाला। (२) श्रेडर (L. V. Schroeder) ने कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी-संहिता ४ भागों में १८८१-८६ ई० में प्रकाशित की। श्रेडर ने ही काठक-संहिता भी ४ भागों में १९१० ई० में प्रकाशित की। (३) डा० कीथ (Keith) ने तैत्तिरीय संहिता का अंग्रेजी अनुवाद अमेरिका की 'हार्वर्ड ओरियन्टल सीरीज' में (१८, १९ जिल्द, १९१४ में) प्रकाशित हुआ। इसमें २०० पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है।

२. कृष्ण यजुर्वेदीय सूत्रग्रन्थ—(१) कैलेन्ड (W. Caland) ने बौधायन श्रौतसूत्र का संस्करण (१९०४-१९२० में) प्रकाशित किया है। इन्होंने ही बौधायन धर्मसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, काठक गृह्यसूत्र, बाघूल सूत्र और वैखानस गृह्यसूत्र का भी संस्करण निकाला है। (२) विन्टरनिट्स (M. Winternitz) ने आपस्तम्बगृह्यसूत्र का संस्करण निकाला है। (३) गार्बे (R. Garbe) ने आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का संस्करण दो भागों में (१८८१-१९०३ ई० में) प्रकाशित किया है। (४) क्नाउएर (F. Knauer) ने मानव-श्रौतसूत्र प्रकाशित किया है।

(३) सामवेद

१. सामवेद संहिता—(१) स्टेवेन्सन (J. Stevenson) ने सामवेद की राणायनीय शाखा का संस्करण, अंग्रेजी अनुवाद के साथ, तैयार किया था। उसे विल्सन ने १८४३ ई० में छपवाया। (२) बेन्फे (Benfey) ने कौथुम शाखा के सामवेद का संस्करण, जर्मन अनुवाद के साथ, १८४८ ई० में प्रकाशित किया। (३) कैलेन्ड (W. Caland) ने जैमिनीय शाखा की सामवेद संहिता का संस्करण रोमन अक्षरों में १९०७ ई० में छपवाया था। यह अतिशुद्ध संस्करण है। इसमें विस्तृत भूमिका भी है। (४) ग्रिफिथ का सामवेद का अंग्रेजी पद्यानुवाद १८९९ में बनारस से प्रकाशित हुआ था।

२. सामवेदीय ब्राह्मण—(१) वेबर ने अद्भुत ब्राह्मण का संस्करण, जर्मन अनुवाद सहित, १८५८ में प्रकाशित किया था। वेबर ने वंशब्राह्मण का भी संपादन किया। (२) बर्नेल—(A. C. Burnell) ने कई सामवेदीय ब्राह्मणों का संपादन किया। मुख्य ये हैं—सामविधान-ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण, वंश-ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण। ये १८७३ से १८७७ तक छपे हैं। (३) एर्टेल (H. Oertel) ने जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण का अंग्रेजी अनुवाद और सम्पादन किया। (४) कैलेन्ड ने जैमिनीय ब्राह्मण का जर्मन अनुवाद किया है तथा आर्षेय ब्राह्मण और जैमिनीय गृह्यसूत्र का संपादन किया है। (५) प्रो० स्टेन कोनो (Sten Konow) ने सामविधान ब्राह्मण का अनुवाद १८९३ में प्रकाशित किया। (६) गास्ट्रा (D. Gaastra) ने जैमिनीय गृह्य-सूत्र का डच भाषा में अनुवाद (१९०६ ई०) किया है। इन्होंने ही जैमिनीय श्रौतसूत्र का भी संपादन किया था।

(४) अथर्ववेद

(१) अथर्ववेद-संहिता—(१) रॉथ और ह्विटनी (Rudolph Roth, W. D. Whitney) ने अथर्ववेद संहिता (शौनकीय शाखा) का सर्वप्रथम संपादन किया और १८५६ ई० में उसे प्रकाशित किया। (२) ब्लूमफील्ड और गार्बे (M. Bloomfield, R. Garbe) ने अथर्ववेद (पैपलाद-शाखा) की एक अति जीर्ण, काश्मीर से शारदा लिपि में प्राप्त, प्रति से फोटो-प्रति तीन बड़ी जिल्दों

में १९०१ में छपवाई। (३) कैलेन्ड—ने अथर्व-संहिता का एक आलोचनात्मक संस्करण उद्‌रिच (हालैंड) से प्रकाशित किया है। (४) ग्रिफ़िथ—ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद वाराणसी से १८९५-१८९८ में छपवाया है। (५) ह्विट्नी और लैनमैन (W. H. Whitney, C. R. Lanman) ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद, १५० पृष्ठ की भूमिका तथा विविध टिप्पणियों से युक्त, १९०५ ई० में २ भागों में प्रकाशित किया। यह १ हजार से अधिक पृष्ठ का ग्रन्थ है। (६) ब्लूमफील्ड ने पैपलाद-संहिता का अंग्रेजी में अनुवाद १९०१ में प्रकाशित किया।

(२) अथर्ववेदीय ब्राह्मण आदि—(१) गास्ट्रा (D. Gaastra) ने गोपथब्राह्मण का एक सुन्दर संस्करण १९१९ ई० में प्रकाशित किया। (२) ब्लूमफील्ड ने अथर्ववेदीय कौशिक-सूत्र १८९० ई० में प्रकाशित किया।

(५) विविध

यहाँ पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा संपादित या लिखित कोश, वेदांग, इतिहास, संस्कृति आदि विषयक-ग्रन्थ संक्षेप में दिए जा रहे हैं।

(१) कोश ग्रन्थ—(१) रॉठ और बॉट्लिंग्क (R. Roth, Otto Bohtlingk) ने २० वर्ष के धार परिश्रम के बाद संस्कृत-जर्मन महाकोश (Sanskrit-Worterbuch) १० हजार पृष्ठों में, ७ विशालकाय भागों में, सेंट पीटर्सबर्ग नगर से १८५५-१८७५ ई० में प्रकाशित किया। इसे सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी भी कहते हैं। इसका मूल्य संप्रति ४ हजार ६० से अधिक है। इसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत के सभी शब्दों का संग्रह है। साथ ही अर्थों के साथ संबद्ध सन्दर्भ अंश भी स्थान-निर्देश-सहित संकलित हैं। वैदिक अंश के संग्रह का श्रेय रॉठ को है और लौकिक संस्कृत के अंश का श्रेय बॉट्लिंग्क को है। इससे बड़ा संस्कृत का प्रामाणिक कोश विश्व में आज तक उपलब्ध नहीं है। इसमें संस्कृत शब्दों का जर्मन भाषा में अर्थ दिया गया है। (२) ग्रासमान (H. Grassmann) ने ऋग्वेदिक कोश १८७३-७५ में प्रकाशित किया। यह मुख्यतः ऋग्वेद से संबद्ध है। (३) हिले-ब्राण्ट ने Vedic Dictionary (वैदिक कोश) ३ भागों में प्रकाशित किया है। (४) मैकडॉनल और कीथ ने Vedic Index (वैदिक कोश) दो भागों में प्रकाशित किया है। यह वेदों के अध्ययन के लिए अत्युपयोगी कोश है। यह वैदिक संस्कृति का छोटा विश्वकोष है।

(२) व्याकरण—(१) ह्विटनी ने 'संस्कृत-व्याकरण' (संस्कृत ग्रामर) लिखा है। इसमें वैदिक और लौकिक दोनों का व्याकरण है। (२) मैकडॉनल ने वैदिक व्याकरण पर दो ग्रन्थ लिखे हैं। (क) Vedic Grammar, (ख) Vedic Grammar for Students। मैकडॉनल ने 'Sanskrit Grammar for Students' में लौकिक संस्कृत का भी व्याकरण दिया है। मैकडॉनल वस्तुतः वैदिक संस्कृत का पाणिनि है। (३) वाकरनागेल (J. Wackernagel) ने वैदिक व्याकरण पर जर्मन भाषा में अत्यन्त प्रौढ़ व्याकरण लिखा है। यह अपने विषय का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है।

(३) वैदिक छन्द—(१) वेबर ने सर्वप्रथम वैदिक छन्दों पर 'इन्डिशे स्टुडिएन' में विस्तृत विचार किया है। (२) आर्नाल्ड (E. V. Arnold) ने वैदिक छन्दों पर 'Vedic Metre' ग्रन्थ लिखा है।

(४) वैदिक सूचियाँ—(१) ब्लूमफील्ड ने Vedic Concordance (मंत्र-महासूची) नामक विशाल ग्रन्थ ११०२ पृष्ठों में १९०६ में प्रकाशित किया है। इसमें चारों वेदों के प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक पाद (चरण) की सूची तथा उनके पाठ-भेद दिए हैं। इनका दूसरा ग्रन्थ Rgveda Repetitions (ऋग्वेद में पुनरावृत्ति) है। (३) कर्नल जैकब (G. A. Jacob) ने 'उपनिषद्-वाक्य-कोष' ग्रन्थ १८९१ में प्रकाशित किया है। (४) लुई रेनू (Louis Renou) ने फ्रेंच भाषा में Bibliographie-Vedique (वैदिक वाङ्मय की ग्रन्थ-सूची) ९ भागों में १९३१ ई० में प्रकाशित की। इसमें वैदिक साहित्य पर प्रकाशित सभी ग्रन्थों की विस्तृत सूची है।

(५) वैदिक देवता-विज्ञान—इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों ने तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। इस विषय पर मैक्समूलर, हिलेब्राण्ट और मैकडानल ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। (१) हिलेब्राण्ट (A. Hillebrandt) 'Vedische Mythologie' (वेदिशे मीथोलॉजी, वैदिक देवशास्त्र) ग्रन्थ तीन भागों में जर्मन भाषा में (१८९१-१८९२ में) निकाला था। (२) मैकडानल ने 'वैदिक माइथोलॉजी' ग्रन्थ १८९७ में प्रकाशित किया था। यह विषय-विवेचन की दृष्टि से उत्तम ग्रन्थ है। (३) कीथ (Keith) ने Religion and Philosophy of Veda and Upanisad ग्रन्थ में दो भागों में वैदिक धर्म और दर्शन की सुन्दर मीमांसा की है।

(६) वैदिक साहित्य का इतिहास—इस विषय पर निम्नलिखित पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) मैक्समूलर—हिस्ट्री ऑव दी एंशिअंट संस्कृत लिटरेचर (१८५६), (२) वेबर—हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर (१८८२)। यह मूल रूप में जर्मन-भाषा में था। इसका अंग्रेजी अनुवाद निकल चुका है। (३) मैकडानल—हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर (१९००) का हिन्दी अनुवाद 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' भाग १ निकल चुका है। (४) विन्टरनिट्स (M. Winternitz)—ने तीन भागों में 'हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर' निकाला था। इसका हिन्दी अनुवाद भाग १ प्राप्य है। मूल ग्रन्थ जर्मन भाषा में है। इसका अंग्रेजी अनुवाद सम्पूर्ण प्राप्य है। (५) रॉठ—वैदिक साहित्य और उसका इतिहास (१८४६) जर्मन भाषा में है।

(७) विविध—अन्य विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ ये हैं :—(१) पिशेल; गेल्डनर (Pischel, Geldner)—वैदिक शब्दों का अर्थ एवं इतिहास (जर्मन भाषा में), (२) लुई रेनू (Louis Renou)—वेदों में परोक्षभूत का स्थान (फ्रेंच में), (३) एलिज़ारेनकोवा (Elizarenkova)—ऋग्वेद में लुङ्लकार का प्रयोग (रूसी भाषा में), (४) रॉठ—निरुक्त (१८४६), (५) त्सिम्मेर (H. Zimmer)—ऋग्वेदकालीन समाज (१८६७, जर्मन में), (६) स्टेन कोनो (Sten Konow)—Aryan Gods of the Mitani People (अंग्रेजी में), (७) ब्लूमफील्ड—The Religion of the Veda (वैदिक धर्म) (१९०८), (८) ग्रेसवोल्ड (H. D. Griswold)—The Religion of the Rigveda (१९२३) और फार्कुहर (Farquhar)—Crown of Hinduism (१९१५), ये दोनों ग्रन्थ पक्षपातपूर्ण और ईसाई-भावना से ओत-प्रोत हैं। इसी श्रेणी में श्रीमती स्टेवेन्सन (Mrs. S. Stevenson)—Rites of the Twice-born (१९२०), क्लेटन (R. V. Clayton)—Rigveda and Vedic Religion (१९१३) ग्रन्थ हैं। इनमें भारतीय धर्म को तुच्छ और ईसाई धर्म को श्रेष्ठ प्रदर्शित करने का निन्द्य प्रयास किया गया है। (९) गोंड (J. Gonda) ने वैदिक विषयों पर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ निकाले हैं—Stylistic Repetitions in the Veda (वेदों में शैली-विज्ञानात्मक पुनरुक्तियाँ) Vision of the Vedic Poets (वैदिक कवियों का दर्शन) Aspectual Function of the Rigvedic Present and Aorist (ऋग्वेद में लट् और लुङ् की प्रयोग-मीमांसा) Epithets in Rigveda (ऋग्वेदीय विशेषण)

अध्याय १

वैदिक-साहित्य

(क) वेद

वेद का अर्थ—वेद शब्द विद् धातु (विद ज्ञाने) से घञ् (अ) प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है ज्ञान। अतएव वेद शब्द का अर्थ है—ज्ञान की राशि या ज्ञान का संग्रह-ग्रन्थ। प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अर्जित किया था, उसका संग्रह वेदों में है। वेद और विद्या दोनों शब्द विद् धातु से बने हैं और वेद शब्द का प्राचीन साहित्य में विद्या अर्थ में प्रयोग भी हुआ है, अतः प्राचीन समस्त विद्याओं को वेद (ज्ञान) शब्द के अन्तर्गत लिया जाता था। इसी आधार पर आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि उपवेद माने जाते हैं। सायण ने वेद शब्द की दूसरी व्याख्या भी की है:—

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः (तैत्तिरीय संहिता-भाष्य की भूमिका)।

जो ग्रन्थ इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? यह वेद ही बताता है।

श्रुति, निगम—वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि इन्हें गुरु-शिष्य-परम्परा से ही सुरक्षित रखा गया था। गुरु परम्परागत पद्धति से वेदों के मन्त्रों को शिष्यों को पढ़ाते थे और शिष्य उनको श्रवण-मात्र से स्मरण करते थे। इसमें इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि शिष्य मन्त्रों के स्मरण में स्वर और उच्चारण-सम्बन्धी एक भी त्रुटि न होने दें। वेदों को 'निगम' भी कहते हैं। 'निगम' का अर्थ है—अर्थबोधक या सार्थक। वेदों को सामिप्राय, सुसंगत और उत्तम अर्थ बताने के कारण 'निगम' कहा जाता था।

वेदों का महत्त्व

शब्द प्रमाण—वेद आप्त वचन हैं। वेदों में प्रतिपादित धर्म और ज्ञान शब्द-प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान से जिन बातों का ज्ञान नहीं हो सकता है,

जैसे—धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, मोक्ष, आत्मा का स्वरूप, पुनर्जन्म आदि, उनका बोध वेदों से ही होता है। अतः कहा गया है—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन, तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

धार्मिक महत्त्व—वेद आर्य-धर्म की आधार शिला हैं। धर्म के मूल-तत्त्वों को जानने के एकमात्र साधन वेद हैं।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनुस्मृति २-६)

मनु ने वेदों को धर्म का मूल बताया है। मनु वेदों को सर्वज्ञानमय और सब विद्याओं का स्रोत मानते हैं तथा मानव मात्र के कर्तव्य-ज्ञान के लिए वेदों को आधार बताते हैं।

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।

स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ (मनु० २-७)

समस्त भारतीय वाङ्मय वेदों को प्रमाण मानता है। सभी धार्मिक कार्यों में वेदों की प्रामाणिकता अकाट्य मानी गई है। महर्षि पतञ्जलि ने निष्काम भाव से षडङ्ग वेदों का अध्ययन ब्राह्मण के लिए अनिवार्य बताया है।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।

(महाभाष्य, आह्निक १)

ब्राह्मणों के लिए वेदाध्ययन अत्यन्त अनिवार्य कार्य बताया गया था। वेदाध्ययन को परम तप माना गया था। यदि कोई ब्राह्मण वेदाध्ययन से विमुख होकर अन्य शास्त्रों में रुचि रखता था तो उसे जाति-बहिष्कृत करके शूद्र की कोटि में रखा जाता था।

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ (मनु० २-१६६)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (मनु० २-१६८)

सांस्कृतिक महत्त्व—वेद भारतीय संस्कृति के मूलस्रोत हैं। भारतीय संस्कृति का वास्तविक ज्ञान वेदों एवं वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होता है। प्राचीन-

काल में वस्तुओं के नामादि तथा मनुष्यों के कर्म आदि का निर्धारण वेदों से ही किया गया था ।

सर्वेषां तु स नामानि, कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ, पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (मनु० १-२१)

लोकमान्य तिलक ने वेदों की प्रामाणिकता को मानना ही आर्यत्व एवं हिन्दुत्व का लक्षण दिया है—‘प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु’ । आर्यों का यज्ञ पर अटूट विश्वास, एक देव को मुख्य मानते हुए भी अनेक देवों की संता, निष्काम कर्म की कर्तव्यता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्ञान और कर्म मार्ग का समन्वय, भौतिकवाद के प्रति घृणा या अनास्था, पुनर्जन्म में विश्वास, जीवन का लक्ष्य मोक्ष, आदि का वास्तविक ज्ञान वैदिक साहित्य से ही होता है ।

शास्त्रीय महत्त्व—‘सर्वज्ञानमयो हि सः’ वेदों को सभी विद्याओं का आधार माना जाता है । वेदों में दार्शनिक सिद्धान्त, राजनीति, समाज-शास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा विविध कलाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन है । वेदों के अध्यात्म तथा दार्शनिक तत्त्वों को लेकर ही विविध उपनिषदों और दर्शनों की सृष्टि हुई । अतएव समस्त प्राचीन वाङ्मय में वेदों के अध्ययन पर असाधारण बल दिया गया है ।

आचार-संहिता—वेद मानवमात्र के कर्तव्य-बोध के लिए सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ हैं । इनमें सभी के कर्तव्याकर्तव्यों का यथास्थान विस्तृत विवेचन और प्रतिपादन है । जैसे—गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता आदि ।

सामाजिक महत्त्व—प्राचीन भारतीय समाज का चित्रण वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है । मुख्यतया ऋग्वेद और अथर्ववेद से तत्कालीन समाज और सभ्यता का विशद विवरण प्राप्त होता है । यजुर्वेद (अध्याय ३०, मंत्र ५-२२) में विविध जातियों के कर्मों का वर्णन है । उस समय प्रचलित वृत्तियों (पेशों) का भी

१. विस्तृत विवरण एवं सन्दर्भों के लिए देखो, लेखक-कृत—‘वेदानां महत्त्वम्’ शीर्षक निबन्ध । प्रौढ रचनानुवादकौमुदी पृष्ठ २६७-३०० तथा ‘संस्कृत-निबन्ध-शतकम्’ भाग ३ में उपर्युक्त निबन्ध ।

उसमें विस्तृत वर्णन है। जैसे—ब्राह्मण का कर्तव्य ज्ञानार्जन, क्षत्रिय का रक्षा करना, वैश्य का धनोपार्जन एवं उसका सदुपयोग, शूद्र का सेवा-कार्य। चोरी निन्दनीय कार्य है, आदि।

ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करम्०

(यजु० ३०-५)

आर्थिक महत्त्व—वेदों से आर्यों की अर्थ-व्यवस्था का विशद चित्रण प्राप्त होता है। प्राचीन काल में आदान-प्रदान की क्या व्यवस्था थी? व्यापार और वाणिज्य का क्या स्वरूप था? कृषि, अन्न, वस्त्रादि तथा पशु आदि का क्या एवं किस प्रकार जीवन में उपयोग था, इसका वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। आदान-प्रदान, लेन-देन अर्थशास्त्र का मूल मन्त्र है। यजुर्वेद में इसका सुन्दर प्रतिपादन हुआ है :—

वेहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।

निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते ॥ (यजु० ३-५०)

राजनीतिक महत्त्व—वेदों में प्राचीनकालीन राजनीति का वर्णन मिलता है। राष्ट्र क्या है? राजा और प्रजा के कर्तव्य, राजा का प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व, राजा का वरण, मंत्रि-परिषद्, सभा और समिति की स्थापना, प्रजातन्त्र-व्यवस्था, शत्रु-संहार, नीतियों का प्रयोग। जैसे—प्रजा का कर्तव्य था कि राष्ट्र की रक्षा करे—

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्याम

(यजु० ६-२३)

प्रजातन्त्र राज्य-व्यवस्था—

महते जानराज्याय०

(यजु० ६-४०)

राजा का निर्वाचन—

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु०

(अथर्व० ६-८७-१)

त्वां विशो वृणतां राज्याय ।

(अथर्व० ३-४-२)

सभा और समिति की उपयोगिता—

सभा च मां समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने०

(अथर्व० ७-१२-१)

भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व—समस्त विश्व-वाङ्मय में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। तुलनात्मक भाषा-वैज्ञानिक सभी अध्ययनों के लिए वेदों की, मुख्यतया ऋग्वेद की, परम उपादेयता है। भाषा का क्रमिक विकास किस प्रकार होता है या किस प्रकार हुआ है, इसके यथार्थ ज्ञान के लिए वेदों की अत्यन्त उपयोगिता है। वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का किस प्रकार विकास हुआ है, इसके लिए भी वेदों की सहायता अनिवार्य है।

ऐतिहासिक महत्त्व—ऐतिहासिक महत्त्व की कुछ सामग्री वेदों से प्राप्त होती है, जिसके आधार पर प्राचीन इतिहास की रूपरेखा तैयार की जाती है। जैसे—नदियों के नाम—इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि० (ऋग्० १०-७५-५), दाशराज्ञ युद्ध—(ऋग्वेद ७-८३-७; ७-१८) दश राजानः समिता अयज्यवः०। पञ्चजनाः (ऋग्वेद ३-३७-६), यदु-तुर्वश (ऋग्० ६-६१-२)। पशु-पक्षियों के नाम—(यजु० २४-२० से ४०)। जातियों के नाम (यजु० ३०-५ से २२)।

काव्य-शास्त्रीय एवं साहित्यिक महत्त्व—वेदों में अनुप्रास, यमक, रूपक आदि अलंकारों का अनेक स्थानों पर प्रयोग है। जैसे—यमक का प्रयोग—कविभिर्निर्मितां मिताम्० (अथर्व० ६-३-१६)। उषःसूक्त में उषा का एक अत्यन्त सुन्दरी युवती और पत्नी के रूप में वर्णन मिलता है। उदय होती हुई उषा एक सुन्दरी के तुल्य अपने वस्त्रों को चारों ओर फैलाती है। पृथ्वी से धुलोक तक उसका ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥

(ऋग्० ३-६१-४)

उषा को एक सुन्दरी कन्या का रूप देते हुए सूर्यरूपी पति से मिलने के लिए उद्यत प्रेमिका के रूप में वर्णन किया गया है कि वह मुस्कराती हुई और अपने वक्षःस्थल को अनावृत करती हुई सूर्य के सम्मुख जाती है।

कन्येव तन्वा शशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुते विभातो ॥

(ऋग्० १-१२३-१०)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वेदों का अनेक दृष्टि से असाधारण महत्त्व है।

वैदिक साहित्य का विभाजन

वैदिक साहित्य को सुविधानुसार चार भागों में बाँटा जाता है :—(१) वेदों की संहिताएँ, (२) ब्राह्मण ग्रन्थ, (३) आरण्यक ग्रन्थ, (४) उपनिषद् ।

वेद चार हैं :—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । प्रत्येक वेद के विभिन्न ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं । संहिता भाग में मन्त्रों का शुद्ध रूप रहता है, जो देवस्तुति एवं विभिन्न यज्ञों के समय पढ़ा जाता है । ब्राह्मण ग्रन्थों में वह भाग है, जो मन्त्रों के विधि-भाग की व्याख्या करता है । आरण्यक ग्रन्थों में वह अंश है, जिन विधियों को वानप्रस्थ की अवस्था में मनुष्य को वन में करना चाहिए । उपनिषदों में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त हैं ।

वैदिक छन्द—वेदों में मुख्यतया १४ छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें भी ७ छन्द प्रमुख हैं । वेदों में वर्णवृत्तों का ही प्रयोग हुआ है, मात्रिक छन्दों का नहीं । प्रत्येक छन्द की गणना पाद या चरण के आधार पर होती थी । वेदों में गायत्री छन्द सबसे अधिक प्रचलित है । अनुष्टुप् का प्रयोग संस्कृत-साहित्य की अपेक्षा वेदों में बहुत कम है । गायत्री के बाद त्रिष्टुप् छन्द का अधिक प्रयोग है और इसके बाद जगती का प्रयोग अधिक मिलता है ।

प्रमुख ७ छन्दों के नाम तथा प्रत्येक पाद में वर्ण-संख्या निम्नलिखित रूप से होती है :—

छन्द	पाद १	२	३	४	५
१. गायत्री	८	८ ।	८		
२. उष्णिक्	८	८ ।	१२		
३. अनुष्टुप्	८	८ ।	८	८	
४. बृहती	८	८ ।	१२	८	
५. पंक्ति	८	८ ।	८	८	८
६. त्रिष्टुप्	११	११ ।	११	११	
७. जगती	१२	१२ ।	१२	१२	

वैदिक स्वर—चारों वेदों में स्वर-चिह्न लगे हुए हैं । चारों वेदों के अतिरिक्त कुछ ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में भी स्वर-चिह्न मिलते हैं । स्वर तीन

१. विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत 'संस्कृत-व्याकरण में 'वैदिक छन्दःपरिचय'
(पृष्ठ ४०५-४०७) ।

हैं :—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । उदात्त का अर्थ है—उच्च ध्वनि, अनुदात्त का अर्थ है निम्न या नीची ध्वनि और स्वरित का अर्थ है दोनों की मिश्रित ध्वनि । उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगता है । अनुदात्त पर वर्ण के नीचे पड़ी लकीर

(क) होती है और स्वरित पर वर्ण के ऊपर खड़ी लकीर (क) होती है । सामवेद में उदात्त आदि के उपर्युक्त चिह्न न लगाकर संख्याएँ दी गई हैं । जैसे—उदात्त के लिए—१, स्वरित के लिए—२, अनुदात्त के लिए—३ । ऋग्वेदादि में स्वरित के बाद वाले अनुदात्तों को प्रचय कहते हैं और उन पर कोई स्वर-चिह्न नहीं होता है । उदाहरणार्थ एक मंत्र का अंश दिया जा रहा है :—

ऋग्वेद के अनुसार अ ग्नि मी छे पु रो हि तम् ।

सामवेद के अनुसार अ ग्नि मी छे पु रो हि तम् ।
संकेत अ. उ. स्व. प्र. अ. उ. स्व. प्र.

” नि सा रे रे नि सा रे रे

अष्ट विकृतियाँ—वेद के मन्त्रों के उच्चारण में तथा उनकी सुरक्षा में कोई अन्तर न आने पावे, इसके लिए अनेक प्रकार अपनाए गए थे । इन उपायों को विकृतियाँ कहते थे । मन्त्र के पदों को घुमा-फिरा कर अनेक प्रकार से उच्चारण किया जाता था । ये ८ विकृतियाँ थीं । इनके नाम हैं—१. जटा-पाठ, २. माला, ३. शिखा, ४. रेखा, ५. ध्वज, ६. दण्ड, ७. रथ, ८. घन । इनमें घनपाठ सबसे कठिन और बड़ा है ।

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः ।

अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥

वेदों की सुरक्षा के इन प्रकारों में पाँच प्रकार मुख्य थे—१. संहिता पाठ—इसमें मन्त्र अपने शुद्ध रूप में रहता था । २. पद पाठ—इसमें प्रत्येक पद को पृथक् करके पढ़ा जाता था । यदि संहिता-पाठ के तीन पदों को सम्मिलित कखग कहेंगे तो पद-पाठ में क ख ग कहेंगे । ३. क्रमपाठ में यह क्रम होगा—कख, खग, गघ । ४. जटापाठ का रूप होगा—कख, खक, कख, खग, गख, खग । ५. घन-पाठ का रूप होगा—कख, खक, कखग, गखक, कखग । जैसे—

१. संहितापाठ—ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राजा ।

२. पदपाठ—ओषधयः, सम्, वदन्ते, सोमेन, सह, राजा ।

३. क्रमपाठ—ओषधयः सम् । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन ।
सोमेन सह । सह राजा । राज्ञेति राजा ।

४. जटापाठ—ओषधयः सम्, सम् ओषधयः, ओषधयः सम् । सं वदन्ते, वदन्ते सम्, सं वदन्ते इत्यादि ।

५. धनपाठ—ओषधयः सम्, सम् ओषधयः, ओषधयः सं वदन्ते, वदन्ते सम् ओषधयः, ओषधयः सं वदन्ते । इत्यादि ।

(ख) ऋग्वेद

ऋक् का अर्थ—ऋच् (ऋक्) का अर्थ है—स्तुतिपरक मंत्र । ऋच्यते स्तुयतेऽनया इति ऋक् । ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति का यथास्थान निर्देश है । ऋचाओं के द्वारा उन देवों का आह्वान किया जाता है । ऐसी ऋचाओं के संग्रह के कारण इसका नाम ऋग्वेद-संहिता पड़ा । 'संहिता' शब्द 'संकलन' या संग्रह का बोधक है ।

ऋक् आदि शब्दों की आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती है । इनमें ब्रह्म, वाणी, प्राण, अमृत और भूलोक को ऋक् या ऋग्वेद कहा गया है ।^१ यजुर्वेद के अनुसार वाक्तत्त्व (शब्द ब्रह्म) को ऋक् (ऋग्वेद), मनस्तत्त्व को यजुष् (यजुर्वेद) और प्राणतत्त्व को सामन् (सामवेद) कहा गया है । इस व्याख्या के अनुसार इन तीनों तत्त्वों के समन्वय से ब्रह्मतत्त्व की दार्शनिक व्याख्या होती है ।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये० (यजु० ३६-१)

ऋग्वेद का सामान्य परिचय—संप्रति ऋग्वेद की केवल एक शाकल शाखा की संहिता प्राप्त होती है । यह ऋग्वेद-संहिता कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । विश्व-साहित्य का सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ यही है । भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस वेद-ब्रह्म की अथक उपासना की है, जिसके फलस्वरूप अत्यन्त प्राचीन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण इतिहास प्राप्त हो सका है ।

१. ब्रह्म वा ऋक् (कौषी० ब्रा० ७-१०), वागित्यूक् (जैमि० उप० ब्रा० १-६-२), प्राणो वा ऋक् (शतपथ ब्रा० ७-५-२-१२), अमृतं वा ऋक् (कौषी० ७-१०), अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः (षड्विंश ब्रा० १-५) ।

यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही चारों वेदों में सबसे विशाल-काय ग्रन्थ है। यजु, साम और अथर्व तीनों मिलकर भी इससे न्यून हैं।

इसका विभाजन दो प्रकार से किया गया है। (१) मंडल, अनुवाक, सूक्त और मंत्र, (२) अष्टक, अध्याय, वर्ग और मंत्र। इनमें से मण्डल वाला क्रम अधिक उपयुक्त और प्रचलित है। इसमें देवता के अनुसार सूक्तों का विभाजन है। अष्टक वाला विभाजन संख्या और गणना की दृष्टि से सुन्दर है। इसमें पूरे ऋग्वेद को ८ समान भागों में बांटा गया है, इन्हें 'अष्टक' कहते हैं। प्रत्येक अष्टक में ८ अध्याय हैं, अतः पूरे ऋग्वेद में $८ \times ८ = ६४$ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या भिन्न है, यह संख्या २५ से लेकर ४६ तक है। प्रत्येक वर्ग में मंत्रों की संख्या प्रायः ५ है। अष्टकों में वर्गों की संख्या भी भिन्न है। वह २२१ से लेकर ३३१ तक है। इस प्रकार ऋग्वेद में ८ अष्टक, ६४ अध्याय, २०२४ वर्ग और १०,५५२ मंत्र हैं।

ऋषि और देवता के अनुसार ऋग्वेद को १० मंडलों में विभक्त किया गया है। इसमें ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०,५५२ मंत्र हैं। इसमें ११ बाल-खिल्य सूक्तों के ८० मंत्र भी सम्मिलित हैं। उपर्युक्त विभाजन में सन्दर्भ-निर्देश में अनुवाक की संख्या छोड़ दी जाती है। उदाहरणार्थ एक सन्दर्भ दिया जा रहा है :—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुष्वान्०

(ऋग्वेद १०-७१-११)

इसका अभिप्राय यह है कि यह मंत्र ऋग्वेद के १०म मंडल के, ७१वें सूक्त का ११वाँ मंत्र है। इसी प्रकार सर्वत्र मंडल, सूक्त और मंत्र की संख्या दी जाती है।

सुविधा के लिए मंडल, सूक्त, मंत्र संख्या और संबद्ध ऋषियों की सारणी दी जा रही है :—

मंडल	सूक्त-संख्या	मंत्र-संख्या	ऋषि-नाम
१	१६१	२००६	मघुच्छन्दा, मेघातिथि, दीर्घतमाः, अगस्त्य आदि।
२	४३	४२६	गृत्समद एवं वंशज
३	६२	६१७	विश्वामित्र " "
४	५८	५८६	वामदेव " "
५	८७	७२७	अत्रि " "

६	७५	७६५	भरद्वाज एवं वंशज
७	१०४	८४१	वसिष्ठ " "
८	१०३	१०१६	कण्व, भृगु, } अंगिरस् आदि } "
९	११४	११०८	सोम पवमान
१०	१६१	१७५४	त्रित, विमद, इन्द्र, श्रद्धा कामायनी आदि ।

महिला ऋषिकाएँ—इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि ऋषियों के तुल्य ही नारियाँ भी वैदिक मन्त्रों की द्रष्टा थीं। ऋग्वेद में ऐसी २१ ऋषिकाओं का उल्लेख है। इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या सैकड़ों में है। इनके द्वारा दृष्ट मन्त्र अधिकांशतः दशम मंडल में हैं। इनके नाम ये हैं :—(१) श्रद्धा कामायनी, (२) शची पौलोमी, (३) सर्पराज्ञी, (४) यमी वैवस्वती, (५) देवजामयः इन्द्रमातरः, (६) इन्द्राणी, (७) शश्वती आंगिरसी, (८) रोमशा ब्रह्मवादिनी, (९) गोधा ऋषिका, (१०) उर्वशी, (११) सूर्या सावित्री, (१२) अदितिः दाक्षायणी, (१३) घोषा काक्षीवती, (१४) अपाला आत्रेयी, (१५) नदी ऋषिका, (१६) लोपामुद्रा, (१७) विश्ववारा आत्रेयी, (१८) वाक् आम्भृणी, (१९) जुहूः ब्रह्मजाया, (२०) सरम्म ऋषिका, (२१) यमी।

ऋग्वेद का मौलिक अंश

पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के मौलिक अंश एवं परकालीन अंश पर बहुत विचार किया है। उनका मन्तव्य है :—

(१) ऋग्वेद के मौलिक अंश में कांड २ से ७ तक ही हैं। इनमें से प्रत्येक मंडल एक ही ऋषि के वंशजों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संग्रह है।

(२) मंडल २ से ७ तक का क्रम सूक्त-संख्या पर निर्भर है। मंडल २ से आगे ७ तक प्रायः सभी मंडलों में सूक्तों की संख्या बढ़ती गई है।

(३) मंडल ८ को स्पष्ट रूप से एक वंश-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता है। इसमें कई ऋषियों के वंशज हैं। मंडल १ और ८ में कण्व ऋषि के वंशजों द्वारा दृष्ट मन्त्रों की पर्याप्त संख्या है। इनमें भाव और भाषा-साम्य भी देखने को मिलता है। इस प्रकार के लगभग ४० सूक्त भाव-साम्य वाले हैं।

(४) नवम मंडल की अपनी विशेषता है। इसमें सोम पवमान से संबद्ध सभी मंत्रों का संग्रह है। इसमें मंडल २ से ७ तक के ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्र भी हैं। सोम-विषयक मंत्र चाहे किसी भी ऋषि का दृष्ट हो, इसमें संगृहीत है। इस मंडल में वर्गीकरण करने एवं पूर्वापर रखने का आधार छन्द है।

(५) मण्डल १ बाद में मूल ग्रन्थ में जोड़ा गया है। इसमें विविध ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्र हैं। इसमें कुछ ऋषि-परिवार ही विशिष्ट रूप से हैं।

(६) मण्डल १० बाद में जोड़ा गया है। इसमें भाषा, व्याकरण, छन्द, शब्दावली, नवीन भाव, दार्शनिक विषय तथा अन्य नवीन सामग्री संकलित है। मण्डल १ और १० में सूक्तों की संख्या समान है। इन दोनों काण्डों को बाद में जोड़ा हुआ समझना चाहिए।

पाश्चात्य मत की समीक्षा—वास्तविकता की दृष्टि से विचार किया जाए तो पाश्चात्य विचारों में काफी थोथापन है। सभी पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि सत्यान्वेषण की ओर न होकर अधिकतर छिद्रान्वेषण की ओर रही है। उन्होंने सिद्धान्त बना लिया है कि ग्रन्थ के आदि या अन्त में कोई न कोई न्यूनता मिलनी चाहिए। प्रायः सभी ग्रन्थों में प्रक्षेप या खिल दिखाकर उसकी मौलिकता खण्डित की है। उन्होंने परकालीन अंश बताकर बात समाप्त कर दी है, परन्तु कहीं भी उसका स्पष्ट और पुष्ट काल-निर्धारण नहीं किया है।

ऋग्वेद के संकलन में कुछ सिद्धान्तों को अपनाया गया है। यथा—(१) ऋषि-परिवारों से संबद्ध मंत्रों को प्रमुखता दी जाए। (२) जहाँ उक्त बात संभव न हो, वहाँ विषय की एकता पर ध्यान दिया जाए। (३) ऐसे स्थलों पर भी एक ऋषि-दृष्ट मंत्रों को एक स्थान पर रखा जाए। (४) प्राथमिकता की दृष्टि से देवों का क्रम इस प्रकार रखा जाय—अग्नि, इन्द्र, मरुत्, अश्विनी तथा अन्य। अग्नि के अभाव में इन्द्र प्रमुख हैं और दोनों के अभाव में मरुत्, इत्यादि। (५) सोम-सम्बन्धी मन्त्रों की संख्या अधिक है, अतः उन्हें एकत्र रखा जाए। (६) जो ऋषि-क्रम या विषय-क्रम में संनद्ध न हो सकते हों, उन्हें पृथक् और अन्त में स्थान दिया जाए।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करने पर पाश्चात्य विचारों का दुर्ग स्वयं ध्वस्त हो जाता है। भाषा, व्याकरण आदि का जो तर्क उपस्थित किया जाता है, वह बहुत लचर है और परीक्षा-निकष पर खरा नहीं उतरता। दशम मण्डल के

कुछ तथ्य सर्वथा उल्टी बात सिद्ध करते हैं। दशम मण्डल वस्तुतः ऋग्वेद का नवनीत है। उसको पृथक् रखने का कारण यह है कि उसमें देव-स्तुति वाले मंत्रों की संख्या अत्यन्त न्यून है। इसमें पुरातन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं भावात्मक महत्त्व के प्रतिपादक सूक्त विशेष रूप से संगृहीत हैं, जिसका वर्णन आगे है। वस्तुतः ऋग्वेद में पूर्वकालीन और परकालीन संग्रह जैसा कोई भेद नहीं है।

ऋग्वेद की शाखाएँ

पतञ्जलि ने ऋग्वेद की २१ शाखाओं का उल्लेख किया है। 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' (महा० आह्निक १)। इनमें से केवल ५ शाखाओं का मुख्यतया नाम या साहित्य उपलब्ध होता है। शेष के नाम भी संदिग्ध हैं।^१

चरणव्यूह के अनुसार प्रमुख ५ शाखाएँ ये हैं :—(१) शाकल, (२) वाष्कल, (३) आश्वलायन, (४) शांखायन, (५) माण्डूकायन। (१) शाकल शाखा की ही ऋग्वेद-संहिता संप्रति प्रचलित है। इसका वर्णन किया जा चुका है। (२) वाष्कल शाखा की संहिता अप्राप्त है। (३) आश्वलायन शाखा के श्रौत और गृह्यसूत्र ही उपलब्ध हैं। (४) शांखायन शाखा के ब्राह्मण और आरण्यक ही प्राप्य हैं। (५) माण्डूकायन का केवल नाममात्र शेष है।

ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय

ऋग्वेद में यद्यपि सर्वत्र देवस्तुति की प्रधानता है, तथापि स्थान-स्थान पर अन्य विषय भी पाए जाते हैं। मण्डलों के क्रम से वर्ण्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार है :—

(१) मंडल १—इसमें मुख्यतया अग्नि, इन्द्र, मरुत् और अश्विनौ की स्तुति है। इनके अतिरिक्त इन देवों से संबद्ध मन्त्र भी हैं—इन्द्रवायू, मित्रावरुणौ, विश्वेदेवाः, सविता, पूषा, आपः, वरुण, उषस्, रुद्र, सोम, सूर्य, विष्णु आदि।

(२) मंडल २—अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति, विश्वेदेवाः, मरुत्, राका (पूर्णमा), सिनीवाली (अमावस्या), सरस्वती आदि।

(३) मंडल ३—अग्नि, यूप, इन्द्राग्नी, विश्वामित्र-नदी-संवाद आदि।

१. देखो, भगवद्गुप्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १ पृष्ठ ७७ से १३२।
रामगोविन्द त्रिवेदी, वैदिक साहित्य, पृष्ठ ६३-६४।

(४) मंडल ४—अग्नि, रुद्र, श्येन, द्यावापृथिवी, वायु, क्षेत्रपति, सीता आदि ।

(५) मंडल ५—अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव, अत्रि, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, पर्जन्य, पृथिवी आदि ।

(६) मंडल ६—अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवाः, गावः, उषाः, रथ, धनु आदि ।

(७) मंडल ७—अग्नि, इन्द्र, नदी, अश्विनौ, वरुण, सरस्वती, मण्डूकाः आदि ।

(८) मंडल ८—इन्द्र, अश्विनौ, अदिति, आदित्य, मित्रावरुणौ, सुपर्ण आदि ।

(९) मंडल ९—पवमान सोम ।

(१०) मंडल १०—यम-यमी-संवाद (सूक्त १४), अक्षाः (सूक्त ३४), मनः (सूक्त ५८), ज्ञानम् (सू० ७१), पुरुष सूक्त (६०), पुरुषा-उर्वशी-संवाद (सूक्त ६५), सरमा-पाणि-संवाद (सूक्त १०८), प्रजापति-सूक्त (१२१), माववृत्तम् (नासदीय सूक्त, १२६), श्रद्धा (१५१), संज्ञानम् (संघटन सूक्त, १६१) ↓

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वेद में 'देवता' शब्द प्रतिपाद्य-विषय (Subject-Matter) के अर्थ में आता है, न कि देवों (Gods) के अर्थ में । पाश्चात्य विद्वानों ने भ्रमवश ऋग्वेद में देवता का अर्थ 'देव' लिया है ।

ऋग्वेद का महत्त्व

ऋग्वेद कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । यह धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, दार्शनिक एवं काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त सारगर्भित है । धार्मिक दृष्टि से इसमें यज्ञों का महत्त्व, देवाराधना, ईश्वर के अनेक रूप, प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ, पाप-पुण्य की चर्चा, स्वर्ग-नरक और मोक्ष-विषयक मन्तव्य, पुनर्जन्म, लोक-परलोक, आस्तिक-नास्तिक, धर्म-अधर्म आदि विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है । सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन काल का जीवन-दर्शन, सदाचार, शिष्टाचार, सत्य-असत्य का अन्तर, हिंसा-अहिंसा का भेद, पाप-पुण्य-विवेक, हेय-उपादेय का विवेचन इसमें प्राप्य है । सामाजिक दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था, उनके कर्तव्यादि, समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध, विवाहादि विधियाँ, नगर-पुर-ग्रामादि, खान-पान, परिधान, अलंकरण आदि की प्रचुर सामग्री इसमें उपलब्ध है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें पुरातत्त्व, युग, कल्प, प्रलय,

ऋषि-वंश, देव-असुर, इन्द्र-वृत्र आदि से संबद्ध बहुमूल्य सामग्री है। राजनीतिक दृष्टि से इसमें राजा के अधिकार और कर्तव्य, राज्य-शासन, संघ-शासन, राजतन्त्र और प्रजातन्त्र, राष्ट्र की कल्पना, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, राजा का निर्वाचन, राज्याभिषेक, प्रजा के अधिकार और कर्तव्य आदि विषयों का समावेश है। आर्थिक दृष्टि से इसमें कृषि, अन्न, कृषि के उपकरण, क्षेत्रों का नाप आदि, आजीविका के साधन, व्यापार-वाणिज्य, रत्न, सुवर्ण आदि, पशु-पालन, विविध वृत्तियाँ (पेशे), सिक्के आदि का वर्णन मिलता है। दार्शनिक दृष्टि से पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन, ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, एकेश्वरवाद, बहुदेवतावाद, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि का इसमें महत्त्वपूर्ण वर्णन है। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से ऋग्वेद विश्व का सबसे प्राचीन काव्यग्रन्थ है। इसमें रस, छन्द, अलंकार, भावानुसार शब्द-संचय, प्रसाद माधुर्य आदि गुणों की सत्ता है। काव्य-शास्त्र, नाटक और आख्यान-साहित्य के उद्गम और विकास का इतिहास इससे प्राप्त होता है। इस प्रकार ऋग्वेद प्राचीन युग का विश्वकोश है। यह विश्व-साहित्य का सबसे प्राचीन आर्ष-काव्य है, जो विद्वानों के लिए प्रकाश-स्तम्भ है।

ऋग्वेदीय देवता

यास्क—यास्क ने निरुक्त (अध्याय ७ से १२) दैवत-काण्ड में वैदिक देवताओं पर पर्याप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। यास्क ने देवों को तीन भागों में विभक्त किया है :—१. पृथिवी-स्थानीय, २. अन्तरिक्ष-स्थानीय, ३. द्युस्थानीय। इन तीन विभागों में भी केवल तीन देवों को मुख्य माना है :—१. पृथ्वी-स्थानीय—अग्नि, २. अन्तरिक्ष-स्थानीय—इन्द्र या वायु, ३. द्युस्थानीय—सूर्य। अन्य सभी देव इनके सहयोगी हैं या इनसे संबद्ध हैं।

तिन्न एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वन्द्रो वाज्जन्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। (निरुक्त ७-५)

विभिन्न गुणों एवं कार्यों के कारण इन तीन देवों की अनन्क नामों से स्तुति की गई है। देवों के आकार के विषय में भी मतभेद है :—(१) कोई देवों को पुरुषाकृति और चेतन मानते हैं, (२) कोई इनको अपुरुषाकृति मानते हैं, (३) उभयरूप (पुरुष, अपुरुष) मानते हैं। तीनों प्रकार के मंत्र वेदों में प्राप्य हैं।

१. तासां माहाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूाने नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्म-पृथक्त्वात्। (निरुक्त ७-५)

अथाकारचिन्तनं देवतानाम् । पुरुषविधाः स्युरित्येकम् । चेतनाबाद्धं स्तुतयो भवन्ति । . . . अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम् । अपि वोभयविधाः स्युः । (निरुक्त ७-५ से ७)

निरुक्त में इन देवों का किस लोक, किस सवन (यज्ञ), किस ऋतु, किस छन्द आदि से संबन्ध है, इसका भी वर्णन मिलता है । वह सारणी के रूप में नीचे दिया जा रहा है ।

देवता लोक सवन ऋतु छन्द स्तोम साम संबद्ध देवता

(१) अग्नि पृथिवी प्रातः वसन्त गायत्री त्रिवृत् रथन्तर इन्द्र, सोम, वरुण आदि ।

(२) इन्द्र अन्तरिक्ष माध्यं- ग्रीष्म त्रिष्टुप् पंचदश बृहत् अग्नि, सोम, विष्णु, वरुण आदि ।
दिन

(३) सूर्य द्युलोक सायं वर्षा जगती सप्तदश वैरूप चन्द्रमा, वायु, संवत्सर आदि ।

मैकडॉनल (Macdonell)—मैकडॉनल^१ ने वैदिक माइथोलॉजी (वैदिक देवशास्त्र, Vedic Mythology) में वैदिक देवों पर सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया है । उन्होंने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' भाग १ (वैदिक युग)^२ में भी देवों के विषय में पर्याप्त विवेचन किया है । यहाँ पर केवल उपयोगी सामग्री दी जा रही है ।

मैकडॉनल ने सभी देवों को ८ भागों में विभक्त किया है । वे निम्नलिखित हैं :—

(क) **द्युस्थानीय देवता**—द्यौः, वरुण, मित्र, सूर्य, सवितृ, पूषन्, विष्णु, विवस्वत्, आदित्यगण, उषस्, अश्विनौ ।

(ख) **अन्तरिक्ष-स्थानीय देवता**—इन्द्र, त्रित आप्त्य, अपांनपात्, मातरिश्वन्, अहिर्बुध्न्य, अज एकपात्, रुद्र, मरुद्गण, वायु (वात), पर्जन्य, आपः ।

(ग) **पृथ्वी-स्थानीय देवता**—नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, बृहस्पति, सोम ।

१. वैदिक माइथोलॉजी (हिन्दी), चौखम्बा संस्करण, १९६१ ।

२. सं० सा० इतिहास, भाग १ (हिन्दी) चौखम्बा संस्करण, १९६२, पृष्ठ ५७ से १०२ ।

(घ) अमूर्त देवता—त्वष्टा, विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, दिति ।

(ङ) देवियाँ—उषस्, वाक्, रात्रि, सरस्वती ।

(च) युगलदेव—इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, इन्द्राविष्णू, अग्नीषोमौ ।।

(छ) देव-गण—रुद्राः, आदित्याः, विश्वेदेवाः, वसवः ।

(ज) अवर देवता—ऋभुगण, अप्सरस्, गन्धर्व, रक्षक देवता ।

वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष उल्लेखनीय बातें ये हैं :—

(१) ऋग्वेद के देवताओं के विषय में यह ज्ञातव्य है कि इनमें से प्रमुख सभी देव प्राकृतिक वस्तुओं के मूर्त रूप हैं । जैसे—इन्द्र, अग्नि, मरुत्, उषस्, सूर्य । ये प्राकृतिक वस्तुओं के द्योतक हैं और इनका व्यक्ति के रूप में वर्णन है । सूर्य को इन्द्र और सूर्य कहा गया है, मौलिक अग्नि को अग्निदेव, प्रचण्ड वायु को मरुत् देवता, प्रातःकालीन उषा को उषा देवी ।

(२) सभी देवों में सामान्य रूप से ये विशेषताएँ पाई जाती हैं :—तेज, पवित्रता, दया, वैदुष्य और हितकारिता । प्रत्येक देव में अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनके आधार पर उनको एक-दूसरे से पृथक् किया जाता है ।

(३) युगल देवों में देखने में आता है कि विशेषण-विपर्यय भी हो जाता है । जैसे—इन्द्राग्नी के वर्णन में इन्द्र का विशेषण वृत्रहन् अग्नि से साथ भी प्रयुक्त मिलता है । वास्तविकता यह है कि वृत्र का गूढार्थ 'पाप' है । इन्द्र और अग्नि दोनों ही पापनाशक हैं, अतः अग्नि को भी वृत्रहा कहा जाता है ।

(४) ऋग्वेद में यदि एक ओर अनेक देवतावाद का समर्थन मिलता है तो दूसरी ओर एकेश्वरवाद का भी प्रबल समर्थन मिलता है । यह एकेश्वरवाद का समर्थन तथाकथित परकालीन अंश—मण्डल १ और १०—में ही न होकर मंडल ५ आदि में भी मिलता है । इसमें कहा गया है कि एक मौलिक तत्त्व के ही ये अनेक देवता-वाचक नाम हैं—इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा । दूसरे मंत्र में अग्नि को वरुण, मित्र, विश्वेदेव और इन्द्र कहा गया है ।

(क) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋग्वे० १-१६४-४६)

(ख) त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।

त्वं विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो वाशुषे मर्त्याय ॥

(ऋग्० ५-३-१)

(५) ऋग्वेद में देवों के माता-पिता की भी कल्पना की गई है। द्यावा-पृथिवी, अदिति आदि को देवों के माता-पिता बताया गया है।

(६) पिता-पुत्र-संबन्ध के वर्णन से देवों के शरीर की भी कल्पना की गई है और उनके अंग-प्रत्यंगों का वर्णन है। जैसे—अग्नि के ज्वाला-पुंज को उसका शरीर और लपलपाती लपटों को उसकी जिह्वा माना गया है।

(७) ऋग्वेद में कहीं भी देव-प्रतिमा का उल्लेख नहीं है और न उनकी पूजा का। अतएव मैकडानल ने स्पष्ट किया है कि—“ऋग्वेद में न कहीं देवताओं की प्रतिमा का वर्णन है और न कहीं मन्दिरों का उल्लेख है।”

(८) ऋग्वेद में एक ओर वरुण जैसे सोम्य देव हैं तो दूसरी ओर मरुत् और रुद्र जैसे क्षात्र-गुणयुक्त देव। इनके कवच, अस्त्र-शस्त्र, रथ और अश्वों आदि का वर्णन है।

(९) ऋग्वेद में सर्वत्र आशावाद का संचार है। सभी देव आयुष्य, अभ्युदय और समृद्धि के दाता हैं। केवल रुद्र से ही भय की आशंका है।

(१०) ऋग्वेद में देवों का चरित्र बहुत उच्च चित्रित किया गया है। वे सत्यनिष्ठ, निष्कपट, धर्मपरायण और न्यायप्रिय हैं। वरुण सबसे कठोर न्यायाधीश है। वह कभी किसी के पाप क्षमा नहीं करता।

(११) ऋग्वेद में देवों और यजमान का अनुग्राहक और अनुग्राह्य का सम्बन्ध है। यजमान स्तुति करता है तथा सोमरस अर्पण करता है और देव उसकी कामना पूर्ण करते हैं। सोमरस को देवों का अतिप्रिय पेय बताया गया है।

(१२) ऋग्वेद में देवों की संख्या ३३ बताई गई है। उन्हें $११ \times ३ = ३३$, त्रिगुण एकादश भी कहा गया है।

(१३) ३३ देवों में से २० देवों के विषय में तीन से अधिक सूक्त ऋग्वेद में मिलते हैं। इनमें इन्द्र सबसे मुख्य है। इन्द्र पर २५० सूक्त हैं, अग्नि पर २०० और सोम पर १००। पर्यन्त और यम पर केवल तीन-तीन ही सूक्त हैं।

(१४) ऋग्वेद में शिव भयंकर ‘रुद्र’ के रूप में हैं।

१. सं० सा० इति० (हिन्दी) भाग १, १९६२, पृष्ठ ६०।

पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के देवों और देवियों का जो चित्रण किया है, उसमें कहीं-कहीं पर उन्होंने शब्दों के गूढार्थ एवं वास्तविक अर्थ को न लेकर केवल शब्दार्थमात्र करने से अर्थ का अनर्थ भी कर दिया है और कहीं-कहीं पर उनका स्वरूप अत्यन्त निम्न कर दिया है। इस विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं आलोचक डा० भीखनलाल आत्रेय ने वैदिक माइथोलॉजी (हिन्दी अनुवाद) के प्राक्कथन में कुछ चेतावनी के शब्द कहे हैं, वे मननयोग्य हैं :—

“वे इसे पढ़कर ऐसा न समझ बैठें कि वैदिक धर्म और दर्शन का वास्तविक स्वरूप इतना और यही है, जो इस पुस्तक में व्यक्त किया गया है। वेद के सम्बन्ध में आज का आलोचनात्मक ज्ञान बहुमुखी और अत्यन्त विस्तृत है। वेदों का अध्ययन करने वाले विद्वानों के अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनमें से दो-तीन भारतीय विद्वानों के सम्प्रदाय ऐसे हैं जो प्रस्तुत ग्रन्थ की स्थापनाओं के सर्वथा विरुद्ध हैं और जिनका अध्ययन तथा मनन भारतीयों के लिए, जो कि सदा से वेदों को अपने धर्म और दर्शन के चरम और पूर्ण ज्ञान का भण्डार मानते आ रहे हैं, अत्यन्त आवश्यक है। इन मतों का प्रतिपादन आधुनिक काल में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री मधुसूदन ओझा तथा अरविन्द घोष ने अपने उत्कृष्ट ग्रन्थों में किया है। सच्चे जिज्ञासुओं को सभी मतों को जानकर उनका तुलनात्मक अध्ययन करना और उसके बाद ही अपना निर्णय करना चाहिए।”

ऋग्वेदीय आख्यान

ऋग्वेद में आख्यानों का बहुत महत्त्व है। इनको ही परकालीन इतिहास, काव्य, महाकाव्य, आख्यान-ग्रन्थ और नाटकों का बीजरूप माना जाता है। जो बातें बीजरूप में ऋग्वेद में प्राप्य हैं, वे ही ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में सुपुष्पित एवं फलित वृक्ष के रूप में विकसित होने लगी हैं। इनका ही रामायण, महाभारत और पुराणों के युग में अत्यन्त विस्तार हो गया है। इस दृष्टि से आख्यान-तत्त्व ऋग्वेद का महत्त्वपूर्ण विषय है।

ऋग्वेद के आख्यानों के विषय में यह समझ लेना उपयुक्त है कि ये आख्यान काल्पनिक रचनाएँ हैं। इनमें यह प्रयत्न किया गया है कि किसी गूढ़ दार्शनिक, आध्यात्मिक या नैतिक विषय को, उसके प्रति अरुचि को दूर करने के लिए,

१. वैदिक माइथोलॉजी, मैकडानल का रामकुमार राय-कृत हिन्दी अनुवाद का प्राक्कथन, पृष्ठ ख, सन् १९६१, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

आलंकारिक आख्यान के रूप में प्रस्तुत किया जाए। यह प्राचीन भारतीय परम्परा रही है कि किसी गूढ़ या सूक्ष्म विषय को समझाने के लिए किसी कथा या उदाहरण का आश्रय लिया जाए। महाभारत और भागवत-पुराण में भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट निर्देश किया गया है कि वेद के गूढार्थ को सरल और रोचक बनाने के लिए ये आख्यान (इतिहास, पुराण) बनाए गए हैं। इनके द्वारा वेद का रहस्य समझना चाहिए।

(क) इतिहासपुराणभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । (महाभारत)

(ख) भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥

(भागवतपुराण—१-४-२८)

ऋग्वेद में प्राप्त विशेष उल्लेखनीय आख्यान ये हैं :—

(१) विष्णु के तीन पैर (त्रिविक्रम) (ऋग्वेद १-१५४)—इसमें वर्णन किया गया है कि विष्णु ने अपने ३ पैरों (चरणों, डगों) से तीनों लोकों को नापा। एक से द्युलोक, दूसरे से अन्तरिक्ष और तीसरे से भूलोक। इसका ही विकसित रूप विष्णु के वामनावतार और बलि की कथा में मिलता है।

(२) पुरुरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त (ऋग्वेद १०-६५)—इसमें पुरुरवस् और उर्वशी का संवाद है। पुरुरवा मनुष्य है और उर्वशी उसकी प्रेमिका अप्सरा। दोनों का चार वर्ष प्रणय-सम्बन्ध रहता है। उनका आयु नामक पुत्र होता है। अन्त में उर्वशी पुरुरवा को छोड़कर चली जाती है। पुरुरवा शोक-विह्वल होकर आत्महत्या के लिए उद्यत होता है। उर्वशी उसे समझाती है और आत्महत्या करने से रोकती है। उसका कथन है कि स्त्रियों का प्रेम चिरस्थायी नहीं होता है और वे केवल धन-लोलुप होती हैं।

पुरुरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति, सालावृकाणां हृदयान्येता ॥

(ऋग्वेद १०-६५-१५)

(३) यम-यमी-संवाद (ऋग्वेद १०-१०)—यम और यमी भाई-बहन हैं। यमी यम से सृष्टि के लिए प्रणय की याचना करती है। यम इसे अनैतिक और अनुचित बताकर इस प्रार्थना को अस्वीकार कर देता है।

पापमाहुयः स्वसारं निगच्छात् ।

(ऋग्वेद १०-१०-१२)

(४) सोम-सूर्या-सूक्त (ऋग्वेद १०-८५)—सूर्या सूर्य की पुत्री है। उसका

विवाह सोम (चन्द्रमा) के साथ होता है। सूर्य अपनी पुत्री सूर्या को चन्द्रमा को को समर्पित करता है और उसे गृहस्थोचित शिक्षा देता है। इसमें विवाह-संस्कार और वैवाहिक कर्तव्यों का वर्णन है।

(५) सरमा-पणि-संवाद (ऋ० १०-१०८) पणि इन्द्र की गायों को चुरा ले जति हैं। सरमा (देवशुनी) इन्द्र के आदेशानुसार गायों को ढूँढ़ने जाती है और अन्त में उनका पता लगाती है।

(६) विश्वामित्र-नदी-संवाद (ऋ० ३-३३)—बाढ़ आई हुई नदियों को शान्त होने के लिए विश्वामित्र उनसे प्रार्थना करते हैं।

(७) श्यावाश्व-सूक्त (ऋ० ५-६१)—इस सूक्त में श्यावाश्व और राजा रथवीति की कन्या का प्रणय-वर्णन है। श्यावाश्व रथवीति की कन्या से प्रेम करता है, किन्तु रथवीति की पत्नी किसी सुयोग्य विद्वान् से अपनी कन्या का विवाह करना चाहती है। श्यावाश्व विद्वान् होकर आता है और उसका विवाह हो जाता है।

(८) मण्डूक-सूक्त (ऋ० ७-१०३)—इसमें वर्षा ऋतु में बोलते हुए मेंढकों की वेदपाठी ब्राह्मणों से तुलना की गई है। यह विनोदी वातावरण का सूक्त है।

(९) अक्षसूक्त (ऋ० १०-३४)—इसमें द्यूत-क्रीडा के दोष वर्णित हैं तथा कृषि को श्रेष्ठ बताया गया है। जुआड़ी किस प्रकार दोषी, पापी और दुःखित होता है, इसका इसमें सजीव चित्रण है।

(१०) इनके अतिरिक्त इन्द्र-मरुत्-संवाद (ऋ० १-१६५; १-१७०), इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद (ऋ० १०-८६), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (ऋ० १-१७६), इन्द्र-वृत्र-युद्ध (ऋ० २-१२), ये आख्यान-सूक्त भी द्रष्टव्य हैं।

आख्यान-समीक्षा

पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद के आख्यान ऐतिहासिक व्यक्तियों पर निर्भर न होकर प्राकृतिक तत्त्वों आदि पर निर्भर हैं। इनमें कहीं सूर्य और बादलों का युद्ध, कहीं बादलों में बिजली का प्रकाश, कहीं पाप-पुण्य का द्वन्द्व, कहीं सूर्य चन्द्र एवं नक्षत्रों का वर्णन, कहीं समीपस्थ नक्षत्रों में पिता-पुत्री या पुत्र का सम्बन्ध, कहीं पति-पत्नी का सम्बन्ध, कहीं अमूर्त भावों का मूर्त रूप में वर्णन, कहीं दिन और रात को भाई और बहन या पति-पत्नी के रूप में वर्णन, कहीं उषा और सूर्य

(सूर्य किरण) को सूर्य की पुत्री बताया गया है। उपर्युक्त कुछ आख्यानों के गूढ़ार्थ को स्पष्ट करने के लिए कतिपय संकेत दिए जा रहे हैं।

(१) विष्णु के तीन पैर—‘वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः’ विष्णु सूर्य का नाम है। वह तीनों लोकों में व्याप्त है। तीनों लोकों, अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमि, में व्याप्त होने से उसे त्रिविक्रम या त्रिपाद् कहते हैं। उसे लोकों का निर्माता, तीनों लोकों का धारक और गो (किरणों) का धाम कहा गया है। (यः पार्थिवानि विममे रजांसि विचक्रमाणस्त्रेघोरुगायः, एको दाधार भुवनानि विश्वा, यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः, ऋग्० १-१५४-१, ४, ६)।

(२) पुरुरवा-उर्वशी—पुरुरवा और उर्वशी की व्याख्या इस प्रकार की गई है। पुरुरवा सूर्य है और उर्वशी उषा उसकी प्रेयसी है। पुरुरवा के सामने आते ही उषा लुप्त हो जाती है।^१ प्रो० गेल्डनर, रॉठ, गोल्डस्टुकर, म्यूर आदि इसी मत के समर्थक हैं। ग्रिफिथ^२ ने प्रो० मैक्समूलर और गोल्डस्टुकर का इस विषय में यह मत उद्धृत किया है :—

“Max müller Considers the story to be one of the Vedas which express the correlation of the dawn and the sun. According to Dr. Goldstücker, Urvashi is the morning mist which vanishes away as soon as Pururava, the sun, displays himself.”

यजुर्वेद (अ० १८-३६ से ४३) में गन्धर्वों और अप्सराओं का उल्लेख मिलता है, जिससे वैदिक अप्सराओं के पारिभाषिक अर्थ का ज्ञान होता है। इसमें सूर्य को गन्धर्व और उसकी किरणों को अप्सरा कहा गया है। इसी प्रकार इन गन्धर्वों की ये अप्सराएँ वर्णित हैं :—अग्नि—ओषधियाँ, चन्द्रमा—नक्षत्र (तारे), वायु—आपः (जल), यज्ञ—दक्षिणा।

सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः०

(यजु० १८-३६)

हमारे विचार से इस कथानक की संगति निम्नलिखित रूप से अधिक उपयुक्त होगी। पुरुरवा (मेघ, पुरु—अधिक, रवस्—शब्दकर्ता)^३ की प्रेमिका उर्वशी

१. विवरण के लिए देखो—वैदिक-सम्पत्ति, रघुनन्दन शर्मा, १९४७ ई० पृष्ठ ६० से आगे।

२. ग्रिफिथ, ऋग्वेद १०-६५ पर नोट।

३. पुरुरवा बहुधा रोह्यते (निरुक्त १०-४६)।

(विद्युत्, उरु—अत्यधिक, अशी—व्याप्त)^१ नामक अप्सरा (जल-संचारिणी)^२ है। दोनों का आयु (अन्न, दीर्घायुत्व का दाता)^३ नामक पुत्र होता है। वर्षाकाल के बाद उर्वशी (विद्युत्) पुरुरवा (मेघ) को छोड़ कर चली जाती है (लुप्त हो जाती है)। यजुर्वेद में उर्वशी का सम्बन्ध विद्युत् से बताया गया है।^४

इस कथा का अभिप्राय है कि मेघ और विद्युत् के सम्बन्ध से वर्षा होती है और उससे आयुवर्धक अन्न पैदा होता है। इसका ही यह आलंकारिक वर्णन है।

(३) यम-यमी—यम (दिन, समय का नियामक) और यमी (रात्रि, समय की नियामिका) परस्पर भाई-बहन हैं। उषा और संध्या के व्यवधान के कारण ये कभी मिल नहीं सकते। इसके द्वारा शिक्षा दी गई है कि भाई-बहन का वैवाहिक सम्बन्ध वर्जित है।

(४) सोम-सूर्या-विवाह—यजुर्वेद में वर्णन है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशहीन है। सूर्य की सुषुम्ण किरण से वह प्रकाशित होता है।^५ उसी का आलंकारिक वर्णन ऋग्वेद (१०-८५) में मिलता है। सूर्य की पुत्री (किरण) सोम (चन्द्रमा) की पत्नी है और उसे प्रकाशित करती है। इसमें विवाह-संस्कार की विधि सर्वप्रथम वर्णित है।

(५) इन्द्र-वृत्र—इन्द्र (सूर्य) और वृत्र (मेघ) का वर्षाकाल में युद्ध होता है। अन्त में इन्द्र (सूर्य) की विजय होती है और वृत्र (मेघ) का नाश होता है और वृत्र-वध से नदियाँ बह निकलती हैं। वृत्र नामक राक्षस के मरने से नदियों का बहना, जो ऋग्वेद में वर्णित है, असंभव है।

मण्डूक-सूक्त व्यंग्यात्मक एवं मनोरंजक काव्य का प्रथम निदर्शन है। अक्ष-सूक्त केवल नैतिक आख्यान है। जिसमें जूए से हानि और कृषि से लाभ की शिक्षा दी गई है। इसी प्रकार अन्य आख्यानों का भी गूढार्थ समझना चाहिए।

१. उर्वश्यप्सरा । उर्वम्यश्नुते । (निरुक्त ५-१३)
२. अप्सरा अप्सारिणी । अपि वाऽप्स इति रूपनाम । (निरुक्त ५-१३)
३. अन्नमु वा आयुः (शतपथ० ६-२-३-१६) ।
४. उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिविद्युत् प्रहेतिः० (यजु० १५-१६) ।
५. (क) सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः (यजु० १८-४०) ।
(ख) अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते । आदित्यतोऽस्य दीप्ति-
र्भवति । (निरुक्त २-६) ।

ऋग्वेद-कालीन संस्कृति

ऋग्वेद प्राचीनतम भारतीय संस्कृति का द्योतक आकर-ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति के सभी तत्त्व धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और दार्शनिक सम्मिलित हैं। ऋग्वेद के अध्ययन से इन सभी बातों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसमें विभिन्न विरोधी गुणों का समन्वय है। इसमें एक ओर धर्म है, तो दूसरी ओर राजनीति; एक ओर अर्थ है तो दूसरी ओर मोक्ष; एक ओर समाज सर्वस्व है तो दूसरी ओर व्यक्ति; एक ओर समृद्धि अभीष्ट है तो दूसरी ओर त्याग; एक ओर समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर समाधान; एक ओर राजतन्त्र है तो दूसरी ओर जनतन्त्र।

धार्मिक अवस्था—ऋग्वेदकालीन धर्म यज्ञ-प्रधान है। इसमें विविध देवों—द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और पृथिवीस्थानीय—की स्तुति और उपासना वर्णित है। यज्ञों में इन देवों का आह्वान किया जाता था। यज्ञ देवों को प्रसन्न करने का प्रमुख साधन था। यज्ञ में घी, सामग्री, अन्न, सोम, क्षीर, समिधा डाली जाती थी। यज्ञों में पशु-मांस सर्वथा वर्जित था। यज्ञों से प्रसन्न होकर देवगण यजमान की सभी कामनाओं की पूर्ति करते थे। ऋग्वेद में प्रतिमा एवं मूर्तिपूजा का सर्वथा अभाव है। सोमरस देवों का अतिप्रिय पेय था। यह गिलोय के ढंग की एक लता थी, जिसको कूट कर इसका रस निकाला जाता था। इसका रस बल और बुद्धिवर्धक था। उपास्य देवों में प्रमुख देव थे—अग्नि, इन्द्र, वरुण, मरुत्, सोम और अश्विनौ। ऋग्वेद-काल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश मुख्य देवों में नहीं थे। ऋग्वेद का काल धर्म-प्रधान था। उस समय का मनन, चिन्तन और दर्शन सब कुछ धर्म-बिन्दु पर केन्द्रित था। यहाँ तक कि काव्य-रचना आदि भी धर्म पर ही आश्रित थी। ऋग्वेद-काल में आचार-विचार-शुद्धि, संयम, सत्य, आत्म-चिन्तन आदि पर बहुत बल था।

सामाजिक अवस्था—समाज में दो वर्ग थे—आर्य और दस्यु। आर्य आस्तिक, धार्मिक एवं सदाचारनिष्ठ थे। दस्यु या दास—नास्तिक, धर्मध्वंसक और चारित्रिक दशा में न्यून थे। शिल्प-कार्य में दस्यु प्रवीण थे। तत्पश्चात् वर्ण-व्यवस्था प्रारम्भ हुई और समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार भागों में बाँटा गया। अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन आदि ब्राह्मणों का मुख्य कार्य था। राष्ट्र-रक्षा, राष्ट्र-संचालन, न्याय और दण्ड की व्यवस्था क्षत्रियों

का मुख्य कार्य था। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्यों का कार्य था। समाज-सेवा एवं शिल्प का कार्य शूद्रों का था। समाज परिवारों में विभक्त था। परिवार पितृप्रधान थे। विवाह आदि संस्कारों का प्रादुर्भाव हो चुका था। एकपत्नीत्व प्रथा का प्रचलन था। समाज में नारी का गौरवपूर्ण स्थान था। पुरुषों के तुल्य स्त्रियों की भी उच्च शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध था। यहाँ तक कि ऋग्वेद में २१ मन्त्र-द्रष्टा ऋषिकाएँ हैं। स्वयंवर-विवाह का भी प्रचलन था। शिक्षा के लिए समान रूप से सुविधा थी। उसमें कोई भेदभाव नहीं था। स्त्रियों और शूद्रों के लिए भी वेदों और मंत्रों का समान अधिकार था।^१ पिता की सम्पत्ति का अधिकार पुत्र और पुत्री दोनों को था।

वस्त्रों में अधोवस्त्र और उत्तरीय (चादर) मुख्य थे। सूती और ऊनी दोनों प्रकार के वस्त्र थे। वस्त्रों पर सोने के तारों का काम भी होता था। स्त्री और पुरुष दोनों आभूषण पहनते थे। आभूषणों में कानों में कर्णशोभन, गले में निष्क, हाथों में कड़े, पैरों में खड्डवे, छाती पर सुनहरे पदक (रुक्म) पहना जाता था। अन्न-पान में दूध, दही, घी, सोम, अपूप, यवागू प्रचलित थे। गाय को अघ्न्या (अवध्य) कहा गया है और गोहत्या निषिद्ध थी। भोज्य के रूप में पशु-मांस और गोमांस का सर्वथा निषेध था।^२ सुरा को बुद्धिनाशक, क्रोध का कारण, पतन का साधन और हेय बताया गया है।^३

१. (क) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। (यजु० २६-२)

(ख) रुचं नो घेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।

रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि घेहि रुचा रुचम् ॥ (यजु० १८-४८)

२. (क) यः पौरुषेण ऋविषा समङ्गते, यो अश्वेन पशुना यातुधानः।

यो अघ्नाया भरति क्षीरमग्ने, तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

(ऋग्० १०-८७-१६)

(ख) अनु दह सहमूरान् क्रव्यादः० (ऋ० १०-८७-१९)।

(ग) मा गामनागामदिर्ति वधिष्ट (ऋ० ८-१०१-१५)।

(घ) देवी देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः (ऋ० ८-१०१-१६)

(ङ) देखो—अथर्व० ८-३-१५, ८-४-२, ८-६-२३, यजु० १-१, १३-४७, ४८ इत्यादि।

३. (क) सुरा मन्युविमीदको अचित्तिः (ऋ० ७-८६-६)।

(ख) पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् (ऋ० ८-२-१२)।

आर्थिक अवस्था—आर्थिक जीवन का मुख्य आधार कृषि और पशुपालन थे। पशुओं में गाय का स्थान सर्वोत्तम था। इसे अघ्न्या, अदिति और माता आदि कहा गया है। बैलों से कृषि होती थी। खाद का भी प्रयोग होता था। नहर, नदी, जलाशय, कुँओं आदि से सिंचाई होती थी। अनाजों में गेहूँ, जौ, धान, चना, माष (उड़द) और तिल प्रमुख थे। कृषि के अतिरिक्त कई पेशे एवं उद्योग-धन्धे प्रचलित थे। जैसे—बढ़ई (तक्षन्), सुनार (हिरण्यकार), लोहार, शिल्पकार (कर्मार), मोची (चर्मकार), जुलाहा (वासोवाय) आदि।

व्यापारी के लिए वणिक् शब्द था। क्रय-विक्रय में वस्तु-विनिमय का प्रचलन था। गाय मूल्य की इकाई मानी जाती थी। सिक्कों में निष्क मुख्य था। समुद्री व्यापार भी प्रचलित था। उसके लिए सौ डाँडों (पतवारों) वाले जहाज का उल्लेख है। समुद्र से प्राप्त धन का उल्लेख मिलता है, जिसका अभिप्राय मोती आदि या समुद्री-व्यापार से होने वाला लाभ है।

सूद पर ऋण देने की प्रथा थी। आठवाँ या सोलहवाँ भाग सूद के रूप में लिया जाता था।

राजनीतिक अवस्था—समाज राजनीतिक दृष्टि से ५ भागों में बँटा हुआ था—१. गृह या कुल, २. ग्राम, ३. विश् (ग्राम से बड़ी इकाई, मण्डल या जिला) ४. जन (विश् से बड़ी इकाई, जनपद या कमिश्नरी), ५. राष्ट्र (प्रदेश)। इनके स्वामियों को क्रमशः १. गृहपति, २. ग्रामणी, ३. विशांपति या विशपति, ४. जनपति, ५. राजा कहते थे। राजा का कार्य राष्ट्र की रक्षा, शत्रुओं का नाश तथा राष्ट्र की श्रीवृद्धि था। दो प्रकार की शासन-पद्धतियाँ प्रचलित थीं—राजतन्त्र और प्रजातन्त्र। राजतन्त्र में राजा वंश-परम्परागत होता था और प्रजातन्त्र में राजा का चुनाव होता था। दोनों का राज्याभिषेक होता था। राजा के निर्वाचन में भाग लेने वालों को 'राजकृतः' कहा जाता था। इनमें ५ प्रकार के व्यक्ति थे—१. राजानः (अधीनस्थ राजा या राज-परिवार के व्यक्ति), २. सूत, ३. ग्रामणी, ४. रथकार, ५. कर्मार। राज्य-संचालन के लिए सभा और समिति दो संस्थाएँ थीं। सभा छोटी और समिति बड़ी संस्था थी। समिति को अधिकार था कि वह राजा को गद्दी से उतार सके और नए राजा को चुनकर गद्दी पर बैठावे।

दार्शनिक अवस्था—ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

१. देखो—अथर्व० ३-५-६ और ७

इसमें देवों का स्वरूप, ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि की उत्पत्ति, पाप-पुण्य, लोक-परलोक, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि का वर्णन है। प्राकृतिक तत्त्व सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, विद्युत् आदि का इन्द्र, वरुण, रुद्र, मरुत् आदि नामों से वर्णन किया गया है। कुछ अमूर्त भावों को भी देवता का रूप दिया गया है, जैसे—काम, श्रद्धा, मन्यु आदि। ईश्वर को एक सर्वोच्च सत्ता माना गया है और इन्द्र, मित्र, वरुण आदि उसी के विविध नाम बताए गये हैं। प्रत्येक देव के कुछ सामान्य गुण एवं विशेषण हैं तथा उनके कुछ विभेदक गुण भी हैं। सामान्य गुणों के आधार पर—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः (ऋ० १-१६४-४६) में एक ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन है। पुरुष-सूक्त (ऋ० १०-६०) में विराट् पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। नासदीय सूक्त (ऋ० १०-१२६) में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ० १०-१२१) में हिरण्यगर्भ प्रजापति से सृष्टि-रचना का वर्णन है। ऋग्वेद (१०-८२-३ से ७) में जल से भी जगत् की उत्पत्ति वर्णित है। ऋग्वेद (१०-७२-२, ३) में ही असत् से सत् की उत्पत्ति भी बताई है, (देवानां पूर्व्यं युगेऽसतः सदजायत, मंत्र २)। ऋग्वेद (१०-५६-६, ७) में पुनर्जन्म का प्रतिपादन है।^१ जीव अपने कर्मानुसार पुनर्जन्म को प्राप्त होता है।

ऋग्वेद का रचना-काल

कुछ कठिनाइयाँ—सामान्यतया वेदों के, मुख्यतया ऋग्वेद के, रचना-काल के विषय में कुछ निश्चित मत प्रकट करना सर्वथा असंभव है। इसमें कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं :—(१) प्रामाणिक अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य का सर्वथा अभाव, (२) प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में तिथि, संवत्सर आदि के उल्लेख का अभाव, (३) वेदों को अपौरुषेय मानना, (४) वेदों के उल्लेख-युक्त परवर्ती वैदिक साहित्य की तिथियों का अत्यन्त अनिश्चित होना, (५) ज्योतिष-सम्बन्धी तथा भौगोलिक उल्लेखों की अत्यन्त अस्पष्टता, (६) भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर, (७) वेदों में ऐतिहासिक तत्त्वों को मानना, या न मानना।

इन कठिनाइयों का परिणाम यह हुआ है कि वेदों की तिथि के विषय में

१. देखो—स्वा० दयानन्द—ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, अणमेर, २०२२ वि०, पृष्ठ २२२ से २२८ तथा यजु० ४-१५, अथर्व० ७-६७-१, ५-१-२।

अत्यन्त विरोधी तिथियाँ प्रस्तुत की गई हैं। एक ओर भारतीय विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते हैं और उनका समय सृष्टि का प्रारम्भ—लाखों वर्ष पूर्व—मानते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वान् उन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हुए उनका समय ईसवीय सन् के प्रारम्भ के अति-समीप लाना चाहते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि वेदों के रचना-काल के विषय में जितने मत प्रस्तुत किए गए हैं, वे सभी शत-प्रतिशत आनुमानिक और काल्पनिक हैं। सहस्रों वर्षों के अन्तर को पुष्ट प्रमाणों के बिना समन्वित करना अत्यन्त असंभव है।

पूर्व सीमा—इसका कोई अन्त नहीं है।

अपर सीमा—महावीर और गौतमबुद्ध ने वैदिक कर्मकांड में पशु-बलि विषय को लेकर उसका खण्डन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक साहित्य का अन्तिम अंग सूत्र-साहित्य, मुख्यतया कर्मकांड के प्रतिपादक श्रौत और गृह्य-सूत्र, उनसे पूर्व विद्यमान था। इसके आधार पर महावीर और बुद्ध से पूर्व ६०० ई० पू० के लगभग वैदिक साहित्य की अपर सीमा मानी जाती है। १६०७ ई० में एशिया माइनर के बोगाझकोई (Boghazkoi) स्थान से एक सन्धि-पत्र शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो १,४०० ई० पू० के प्रारम्भ में मितानी (Mitani) और हिटाइट (Hittite) लोगों के बीच हुई थी। जिसमें दोनों जातियों के निजी देवों के साथ ही साक्षी रूप में मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यौ देवों का उल्लेख है। इन देवों को वैदिक देवता मानते हुए सिद्ध किया जाता है कि वैदिक साहित्य की, मुख्यतया मूल चारों वेदों की, रचना १,४०० ई० पू० से पूर्व हो चुकी थी।

विभिन्न मत—इस विषय में प्राप्त मुख्य मत ये हैं :—

- (१) स्वामी दयानन्द सरस्वती (आधार वेद-मंत्र) सृष्टि के प्रारम्भ से।^१
- (२) दीनानाथ शास्त्री चुलेट (ज्योतिष) (अब से) ३ लाख वर्ष पूर्व।^२
- (३) रघुनन्दन शर्मा (ज्योतिष) (अब से) ८८ हजार वर्ष पूर्व।^३
- (४) अविनाशचन्द्र दास (भूगर्भ) २५ हजार वर्ष ई० पू०।^४

१. देखो, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द, पृष्ठ ६ से २६।

२. देखो—उनका ग्रन्थ—वेदकालनिर्णय।

३. वैदिक-संपत्ति, वेदों का समय, पृष्ठ ६० से ११२।

४. देखो—ऋग्वेदिक इण्डिया, कलकत्ता १९२२।

सं० सा० स० ६०—४

- (५) नारायण भवनराव पावगी (भूगर्भ, ज्यो०) ७ हजार वर्ष ई० पू० ।
 (६) बालगंगाधर तिलक (ज्योतिष) ६ हजार ई० पू० ।^१
 (७) शंकर बालकृष्ण दीक्षित (ज्योतिष) ३,५०० ई० पू० ।^२
 (८) याकोबी (ज्योतिष) ४,५०० ई० पू०—२,५०० ई० पू० ।^३
 (९) विन्टरनिट्स (मितानी, शिलालेख) २,५०० ई० पू० ।^४
 (१०) मैक्समूलर (बौद्ध साहित्य) १,२०० ई० पू० ।^५

कुछ मुख्य मतों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

(१) श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती—ने वेद-मंत्रों से प्रदर्शित किया है कि वेदों का आविर्भाव परमात्मा से हुआ है ।^६ वेद सृष्टि के आरम्भ में हुए हैं, अतः इनका समय सृष्टि का आरम्भ ही है । श्री रघुनन्दन शर्मा भी इसी मत के समर्थक हैं ।

(२) श्री अविनाशचन्द्र दास—ने ऋग्वेद में प्राप्त भूगोल एवं भूगर्भ-सम्बन्धी अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ऋग्वेद का रचना-काल २५ हजार वर्ष ई० पू० माना है । 'एका चेतत् सरस्वती नदीनाम्' (ऋ० ७-६५-२) आदि में वर्णन है कि सरस्वती नदी समुद्र में मिलती है । यह समुद्र राजस्थान में था । अब सरस्वती और राजस्थान के समुद्र का लोप हो गया है । यह घटना २५ हजार ई० पू० से पूर्व की है । उस समय दोनों की सत्ता थी । अतः ऋग्वेद इससे पहले बना था ।

(३) श्री बालगंगाधर तिलक—ने ज्योतिष-गणना के आधार पर ऋग्वेद की रचना का काल ६,००० ई० पू० से ४,००० ई० पू० माना है । उन्होंने विभिन्न नक्षत्रों में वसन्त-संपात (Vernal Equinox) के आधार पर यह तिथि निर्धारित

१. देखो—Orion (ओरायन) ग्रन्थ ।

२. देखो—उनका ग्रन्थ—भारतीय ज्योतिःशास्त्र, पूना १८९६, पृ० १३६-१४० ।

३. Winternitz—H. L. I. भाग १, पृष्ठ २६४-३०० ।

४. वही, पृष्ठ २६०-३१० ।

५. „ पृष्ठ २६२-२६४ ।

६. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे० । ऋग्० १०-६०-६; अथर्व० १६-६-१३; शुक्ल यजु० ३१-७, तै० आ० ३-१२-४ । देखो अथर्व० १०-७-२० । शतपथ० १४-५-४-१० ।

की है। उन्होंने वैदिक-काल को चार भागों में विभक्त किया है और विभिन्न स्तर में वैदिक साहित्य के अंगों का उल्लेख किया है।

काल	ई० पू० समय	दृष्ट या प्रणीत ग्रन्थ
(१) अदिति काल	६०००-४०००	निविद मंत्र (गद्य-पद्यात्मक, यज्ञिय विधिवाक्य-युक्त)।
(२) मृगशिरा काल	४०००-२५००	ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त।
(३) कृत्तिका काल	२५००-१४००	चारों वेदों का संकलन, तैत्तिरीय संहिता और कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ।
(४) अन्तिम काल (सूत्र-काल)	१४००-५००	सूत्र-ग्रन्थ और दर्शन-ग्रन्थ।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक मंत्रों की रचना ६००० ई० पू० से प्रारम्भ हो गई थी, किन्तु उनका परिष्कार, संकलन और संहिता-रूप २५०० ई० पू० से १४०० ई० पू० के मध्य हुआ है।

“It was at this time that the Samhitas were probably compiled into systematic books and attempts made to ascertain the meaning of the oldest hymns and formulae.” (The Orion, Page 207)

श्री तिलक ने निष्कर्ष दिया है कि यदि वेदों का रचना काल ४००० ई० पू० भी मान लिया जाए तो पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों के परस्पर विरोधी मतों का सामंजस्य हो जाएगा। इस प्रकार उन्होंने ४००० ई० पू० को वेदों का रचना-काल मानने पर बल दिया है।

“We can thus satisfactorily account for all the opinions and traditions current about the age of the Vedas amongst ancient and modern scholars in India and in Europe, if we place the Vedic period at about 4,000 B.C., in strict accordance with the astronomical references and facts recorded in the ancient Literature of India” (Orion. P. 220)

गणना का प्रकार—श्री तिलक और पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षित की गणना का आधार एक ही है। नक्षत्रों की संख्या २७ है। सूर्य का संक्रमण-वृत्त या राशि-चक्र (Zodiac) ३६० डिग्री का है। सभी नक्षत्रों की पारस्परिक दूरी समान

नहीं है, तथापि उसको समान मानकर ३६० डिग्री को २७ से भाग देने पर $13\frac{1}{3}$ डिग्री प्रत्येक नक्षत्र की दूरी सिद्ध होती है। प्रत्येक नक्षत्र अपने स्थान से समया-नुसार पीछे हटता रहता है। एक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटने में ७२ वर्ष लगते हैं। इस प्रकार एक नक्षत्र को $13\frac{1}{3}$ डिग्री पीछे हटने में (अर्थात् दूसरे नक्षत्र के स्थान पर पहुँचने में) $72 \times 13\frac{1}{3} = 960$ वर्ष लगते हैं।

श्री दीक्षित ने शतपथ-ब्राह्मण का एक महत्त्वपूर्ण अंश उद्धृत किया है, जिससे ज्ञात होता है कि शतपथ-ब्राह्मण के रचना-काल में कृत्तिकाएँ ठीक पूर्वीय बिन्दु पर उदय होती थीं। आजकल वसन्त-संपात (Vernal Equinox) पूर्वा भाद्रपदा के चतुर्थ चरण में है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि कृत्तिका नक्षत्र (कृत्तिकाएँ) अपने स्थान से $4\frac{1}{3}$ नक्षत्र (भरणी, अश्विनी, रेवती, उत्तरा भाद्र-पदा होते हुए) पीछे हट आया है। ९६० को $4\frac{1}{3}$ से गुणा करने पर, $960 \times 4\frac{1}{3} = 4560$ वर्ष पहले कृत्तिका में (शतपथ-ब्राह्मण के काल में) वसन्त-संपात हुआ होगा, अर्थात् लगभग २५०० ई० पू० में शतपथ-ब्राह्मण ही रचना हुई होगी।

श्री तिलक इसी गणना को आधार मानकर ऋग्वेद में प्राप्त कुछ मंत्रों के आधार पर वसन्त-संपात मृगशिरा नक्षत्र में मानते हैं और फिर आगे बढ़कर पुनर्वसु तक ले जाते हैं।^१ मृगशिरा से कृत्तिका २ नक्षत्र पहले है और पुनर्वसु से ४ नक्षत्र पहले है। एक नक्षत्र की दूरी पीछे हटने में ९६० वर्ष (लगभग १ हजार वर्ष) लगते हैं। मृगशिरा में वसन्त-संपात मानने पर ऋग्वेद का रचना-काल $4560 + 1120 = 5680$ वर्ष (लगभग ६५०० वर्ष) पूर्व, अर्थात् लगभग ४५०० वर्ष ई० पू० होता है। यदि पुनर्वसु में वसन्त-संपात मानें तो लगभग २ हजार वर्ष और बढ़ जाएँगे, अर्थात् ६५०० ई० पू०। इसको श्री तिलक ने सुविधा के लिए ६००० ई० पू० मान लिया है।

(४) श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित—ने उपर्युक्त रूप से शतपथ-ब्राह्मण का

१. अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, [तस्मात् कृत्तिका-स्वादधीत। एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते। शतपथ ब्रा० २-१-२।

२. (क) विशृगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः। (ऋग्० १-३३-१२)।

(ख) यद्ध त्वं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीः। (ऋग्० १-८०-७)

(ग) शिरो न्वस्य राविषं० (ऋ० १०-८६-५)।

समय २५०० ई० पू० मानकर चारों वेदों की रचना के लिए $२५० \times ४ = १०००$ वर्ष का समय मानकर ऋग्वेद का रचना-काल ३५०० ई० पू० माना है।

(५) श्री याकोबी—ने भी ज्योतिष को आधार माना है। वे ध्रुवतारा को अपना लक्ष्य मानते हैं। ध्रुवतारा भी अपने स्थान से पीछे हटता है। तदनुसार उन्होंने ऋग्वेद का समय ४५०० ई० पू० माना है।

(६) मैक्समूलर—ने बुद्ध को आधार मानकर वैदिक साहित्य का प्रारम्भ १२०० ई० पू० माना है। (क) १२०० ई० पू० से १००० ई० पू० छन्दःकाल, फुटकर वैदिक मन्त्र-रचनाएँ। (ख) १००० ई० पू० ८०० ई० पू० मन्त्र-काल-वैदिक संहिताओं की रचना। (ग) ८०० ई० पू०—६०० ई० पू०—ब्राह्मण-काल—ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना। (घ) ६०० ई० पू०—४०० ई० पू०—सूत्र-काल—श्रौत और गृह्यसूत्रों आदि की रचना। प्रारम्भ में यह मत अत्यन्त प्रचलित था, किन्तु १४०० ई० पू० के बोगाज्कोई के शिलालेख की प्राप्ति से यह मत सर्वथा ध्वस्त हो गया।

(७) विन्टरनिट्स—ने सभी मतों की विस्तृत आलोचना के बाद अपना समन्वयात्मक मत दिया है कि वैदिक-काल २५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० है। ऋग्वेद का समय २५०० ई० पू० है।

निष्कर्ष

श्री स्वामी दयानन्द जी आदि ने वेदों का रचना-काल लाखों वर्ष पूर्व माना है। वह शास्त्रीय दृष्टि से पूर्णतया सत्य होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है, क्योंकि लाखों वर्षों का, इतना ही नहीं अपितु आज से १० हजार वर्ष पूर्व का भी, कोई प्रामाणिक सुसंबद्ध इतिहास नहीं मिलता है। जिसके आधार पर कुछ कहना संभव हो।

प्रो० मैक्समूलर के मत की चर्चा की जा चुकी है। बोगाज्कोई के शिलालेख की प्राप्ति के साथ ही उनका मत ध्वस्त हो गया। प्रो० विन्टरनिट्स समन्वयवादी हैं। उन्होंने बोगाज्कोई के शिलालेख के आधार पर १४०० ई० पू० को अवर सीमा मानकर वैदिक संहिताओं के लिए १ सहस्र वर्ष और जोड़ कर ऋग्वेद का समय २५०० ई० पू० मानते हैं तथा वैदिक-साहित्य की समाप्ति महावीर और बुद्ध से पूर्व अर्थात् ७५० ई० पू० से ५०० ई० पू० के मध्य मानते हैं। इस

मन्तव्य में घोर असंगति के दोषों का निराकरण हो जाता है, किन्तु पूर्व सीमा २५०० ई० पू० ही हो, इसके लिए कोई प्रमाण या आधार नहीं है।

श्री लोकमान्य तिलक, श्री दीक्षित और प्रो० याकोबी के मत प्रायः समान आधार पर हैं और उनके द्वारा निर्धारित तिथियाँ भी लगभग समान हैं। इनके मत निराधार न होकर साधार हैं। इनकी युक्तियाँ और प्रमाण तथ्यों पर निर्भर हैं। ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं को पुष्ट प्रमाणों के अभाव में काल्पनिक, अतिशयोक्तिपूर्ण या मनगढ़न्त कहना अशोभनीय है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, श्रौत आदि सूत्रों एवं अन्य वेदांगों के लिए लगभग ३ हजार वर्ष का समय अपेक्षित है। अतः सुविधा एवं व्यावहारिक दृष्टि से वैदिक साहित्य का समय ४ सहस्र ई० पू० से लेकर लगभग १ सहस्र ई० पू० तक रखा जा सकता है।

पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस विषय में इससे अधिक कुछ कहना संभव नहीं है।

(ग) यजुर्वेद

यजुस् का अर्थ—यजुर्वेद के यजुस् शब्द की कई व्याख्याएँ हैं, जो विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई हैं। यजुस् के मुख्य अर्थ हैं—(१) यजुर्यजते; यज्ञ-सम्बन्धी मंत्रों को यजुस् कहते हैं, (२) इज्यतेऽनेनेति यजुः, जिन मंत्रों से यज्ञ-यागादि किए जाते हैं; (३) अनियताक्षरावसानो यजुः, जिन मंत्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर-संख्या निर्धारित नहीं है, (४) शेषे यजुःशब्दः (पूर्वमीमांसा २-१-३७), पद्य-बन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुस् कहते हैं।

यजुर्वेद की शाखाएँ

शुक्ल और कृष्ण—यजुर्वेद मुख्यतया दो भागों में विभक्त है :—१. शुक्ल यजुर्वेद, २. कृष्ण यजुर्वेद। (१) शुक्ल यजुर्वेद को ही माध्यन्दिन एवं वाज-सनेयि यजुर्वेद भी कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद को शुक्ल कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें विशुद्ध मन्त्रात्मक भाग है। इसमें व्याख्यात्मक, विवरणात्मक या विनियोगात्मक भाग नहीं है। ये मन्त्र विविध यज्ञों में पढ़े जाते थे। विशुद्धि और परिष्कार के कारण ही इसे शुक्ल (स्वच्छ, अमिश्रित) यजुर्वेद कहते हैं। (२) कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ही व्याख्या और विनियोग का अंश मिश्रित है, अतः इसे कृष्ण (अस्वच्छ, मिश्रित) कहते हैं।

यजुर्वेद की १०० शाखाएँ—पतञ्जलि ने 'एकशतमध्वर्युशाखाः' (महा० ब्राह्मिक १) यजुर्वेद की १०० शाखाओं की सत्ता का उल्लेख किया है। सर्वानुक्रमणी^१ और कूर्मपुराण^२ में भी १०० शाखाओं का उल्लेख मिलता है। 'चरणव्यूह' में यजुर्वेद की ८६ शाखाओं का ही उल्लेख मिलता है। इनका संक्षिप्त वर्गीकरण इस प्रकार है—(क) चरक शाखा १२, (ख) मैत्रायणीय—७, (ग) वाजसनेय—१७, (घ) तैत्तिरीय—६, (ङ) कठ—४४।^३ चरणव्यूह में कठ की ४४ शाखाओं का नाम-निर्देश नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यजुर्वेद की शाखाएँ क्रमशः लुप्त होती जा रही थीं और चरणव्यूह के समय में केवल ४२ शाखाएँ ही उपलब्ध थीं। कठ शाखा के ४४ ग्रन्थों एवं लेखकों के नाम भी लुप्त हो चुके थे। इनमें से संप्रति ६ शाखाएँ ही उपलब्ध हैं—२ शुक्ल यजुर्वेद तथा ४ कृष्ण यजुर्वेद की।

शुक्ल यजुर्वेद की शाखाएँ—शुक्ल यजुर्वेद की २ शाखाएँ हैं। जिनकी २ संहिताएँ उपलब्ध होती हैं :—

(१) माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता—इसमें ४० अध्याय और १६७५ मंत्र हैं।

(२) काण्व संहिता—इसमें भी ४० अध्याय हैं और मंत्र संख्या २०८६ है- अर्थात् वाजसनेयि से १११ मंत्र अधिक हैं। अध्यायों और मन्त्रों का क्रम वाजसनेयि के तुल्य ही है। श्री सातवलेकर ने वाजसनेयि संहिता के साथ ही काण्व-संहिता के पाठभेद परिशिष्ट के रूप में दिए हैं।^४ वाजसनेयि संहिता का प्रचार उत्तर भारत में अधिक है और काण्व संहिता का महाराष्ट्र में।

कृष्ण यजुर्वेद की शाखाएँ—कृष्ण यजुर्वेद की ४ शाखाएँ हैं, जिनकी ४ संहिताएँ उपलब्ध होती हैं।

(१) तैत्तिरीय संहिता—यह तैत्तिरीय शाखा की संहिता है तथा कृष्ण यजुर्वेद की सबसे प्रमुख संहिता है। इसमें ७ काण्ड, ४४ प्रपाठक और ६३१

१. यजुरकेशताध्वकम् (षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणीवृत्ति)।

२. शाखानां तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत् ॥ (कूर्म० ४६-५१)

३. विवरण के लिए देखो—यजुर्वेद, सं० सातवलेकर, १६२७, भूमिका पृ० ६-७।

४. वही, देखो पृष्ठ १७१ से २०२।

अनुवाक हैं। यह सर्वांगपूर्ण शाखा है। इसके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौत-गृह्य-धर्म-शुल्ब सूत्र सभी प्राप्य हैं। शुक्ल यजुर्वेद के तुल्य ही इसके भी विषय—विविध यागानुष्ठान—हैं। इस संहिता का विशेष प्रचार महाराष्ट्र, आंध्र एवं दक्षिण भारत में है। इसमें मंत्र और व्याख्या भाग मिश्रित हैं। (२) **मैत्रायणी संहिता**—यह मैत्रायणीय शाखा की संहिता है। इसमें भी मंत्र एवं व्याख्या भाग मिश्रित हैं। इसमें ४ कांड, ५४ प्रपाठक और कुल २१४४ मंत्र हैं। जिनमें से १७०१ मंत्र ऋग्वेद के विभिन्न मंडलों से लिए गए हैं। ये मंत्र मुख्यतः ऋग्वेद के विभिन्न मंडलों से लिए गए हैं। ये मंत्र मुख्यतः ऋग्वेद के प्रथम, षष्ठ और दशम मंडल से हैं। (३) **काठक संहिता**—इसे कठसंहिता भी कहते हैं। यह कठशाखा की संहिता है। इसमें ४० स्थानक और ८४३ अनुवाक हैं। इसमें मन्त्रों की संख्या ३०६१ तथा मन्त्र-ब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या १८ हजार है। इसमें भी शुक्ल यजुर्वेद के ही यागादि हैं। (४) **कपिष्ठल-कठ संहिता**—यह कपिष्ठल-कठ शाखा की संहिता है। यह अघूरी संहिता प्राप्त है। इसको डा० रघुवीर ने १९३२ में लाहौर से प्रकाशित किया था। इसमें ६ अष्टकों में ४८ अध्याय हैं। इसमें अध्याय ६ से २४, ३२, ३३ तथा ४३ सर्वथा खंडित हैं। इस पर भी ऋग्वेद का विशेष प्रभाव है।

प्रतिपाद्य-विषय—यजुर्वेद कर्मकांड का वेद है। यज्ञ करने वाले तथा यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले पुरोहित को अध्वर्यु कहते थे। अतएव ऋग्वेद में कहा है—यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः (ऋ० १०-७१-११), वह यज्ञ को सम्पन्न करता है। इसीलिए अध्वर्यु की व्याख्या की है—अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता (निरुक्त अ० १ पाद ३), अर्थात् अध्वर्यु यज्ञ का संयोजक एवं सम्पादक होता है। शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता के विषय ही प्रायः सभी यजुर्वेदीय संहिताओं के प्रतिपाद्य विषय हैं। वाजसनेयि संहिता के प्रतिपाद्य-विषय अध्याय-क्रम से इस प्रकार हैं :—(अध्याय १-२) दर्श-पौर्णमास इष्टियाँ, (अ० ३) अग्निहोत्र और चातुर्मास्य इष्टियाँ, (अ० ४ से ८) सोमयाग तथा उससे संबद्ध अग्निष्टोम और तीनों सवन, (अ० ९-१०) वाजपेय और राजसूय यज्ञ, (अ० ११ से १८) अग्निचयन, वेदी-निर्माण, (१६ वाँ अध्याय रुद्राध्याय कहा जाता है, इसमें रुद्र के स्वरूप का विस्तृत वर्णन है), (अ० १९ से २१) सौत्रामणी यज्ञ, (अ० २२ से २५) अश्वमेध यज्ञ, (अ० २६ से २९) खिल मन्त्रों में पूर्वोक्त अनुष्ठानों से संबद्ध नवीन मन्त्र, (अ० ३०)

पुरुषमेघ, (अ० ३१) पुरुष-सूक्त में विराट्-पुरुष का स्वरूप-वर्णन, (अ० ३२-३३) सर्वमेघ, (अ० ३४) शिव-संकल्प सूक्त, (अ० ३५) पितृमेघ, (अ० ३६-३८) प्रवर्ग्ययाग, (अ० ३९) नरमेघ या अन्त्येष्टि, (अ० ४०) ईशोपनिषद्। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विविध यज्ञ काम्य अनुष्ठान थे, जो किसी उद्देश्य-विशेष की पूर्ति के लिए आयोजित होते थे। कुछ यज्ञ क्षत्रिय वर्ग, यथा नृप आदि, की श्रीवृद्धि या महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए थे, जैसे—अश्वमेघ; कुछ ब्राह्मण-वर्ग की ओजस्विता तेजस्विता एवं मेघा-शक्ति की वृद्धि के लिए थे, जैसे—वाजपेय आदि; कुछ यज्ञ सार्वजनिक उन्नति के लिए थे, जैसे—सर्वमेघ आदि। इस प्रकार विविध यज्ञ विविध कामनाओं की पूर्ति के लिए किए जाते थे।

अश्वमेघ आदि याग—कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों को भ्रान्ति है कि 'मेघ' शब्द केवल बलि (वध) का वाचक है। यजुर्वेद में अश्वमेघ आदि शब्द राष्ट्रीय उन्नति की कामना से किए जाने वाले यज्ञों आदि के लिए हैं। इनका अभिप्राय अश्व की बलि देने से नहीं था। इसके लिए 'पितृमेघ' शब्द की व्याख्या पर्याप्त होगी। पितृमेघ का अर्थ यह कदापि नहीं है कि माता-पिता की बलि दी जाए, अपितु मेघ शब्द उनकी सेवा, शुश्रूषा, श्राद्ध और तर्पण के लिए है। 'मेघ' शब्द श्रीवृद्धि, समृद्धि, पोषण आदि के लिए प्रयुक्त होता था। शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि ब्राह्मणों में अश्वमेघ आदि शब्दों की अनेक पारिभाषिक व्याख्याएँ दी गई हैं। इनके अनुसार अश्वमेघ का अर्थ है—राष्ट्र की श्रीवृद्धि करना, अपनी तेजस्विता की वृद्धि करना, राष्ट्र में धन-धान्य एवं दुग्ध आदि की समृद्धि करना।^१ इसी प्रकार गोमेघ गो-वंश की उन्नति के लिए था। नरमेघ या पुरुषमेघ मानवमात्र की कल्याण की कामना के लिए था। अध्याय ३० में पुरुष-मेघ है। इसमें १८४ वृत्ति-जीवियों का उल्लेख है। जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सभी हैं। यदि इन सभी की बलि देना अर्थ लिया जाएगा तो कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इस नर-संहार से न बच सकेगा। 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्० (यजु० ३०-५) इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण ब्रह्म-शक्ति की वृद्धि के लिए, क्षत्रिय क्षात्रशक्ति की

१. श्रीर्वे राष्ट्रमश्वमेघः। शत० १३-२-९-२, तैत्ति० ३-९-७-१। राष्ट्रं वा अश्वमेघः। शत० १३-१-६-३। तैत्ति० ३-८-९-४। एष (अश्वमेघः) वै तेजस्वी नाम यज्ञः। तै० ३-९-१९-३। एष (अश्वमेघः) वै पयस्वान्नाम यज्ञः। तै० ३-९-१९-१

उन्नति के लिए हैं, इत्यादि। सर्वमेघ सामूहिक उन्नति एवं अम्युदय के लिए था। 'मेघ' ईश्वरार्पण आदि का भी बोधक था। अतः ईश्वरोपासना आदि के प्रसंगों में नरमेघ शब्द आत्म-समर्पण का अर्थ बताता है। अन्त्येष्टि के प्रसंग में नरमेघ अन्त्येष्टि-क्रिया का सूचक है।

विविध—मैकडानल आदि ने यजुर्वेद के विषय में कुछ स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत किए हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :— (१) यजुर्वेद की रचना के ४ स्तर—(क) मूल भाग अध्याय १ से १८, (ख) अध्याय १९-२५, (ग) अध्याय २६-३९, (घ) अध्याय ४०। यजुर्वेद इन चार स्तरों में क्रमशः विकसित हुआ है और अन्तिम ४०वाँ अध्याय ईश उपनिषद् मात्र है। (२) यज्ञों का असाधारण महत्त्व—यज्ञों को असाधारण महत्त्व दिया गया है। इनसे आवश्यकतानुसार वृष्टि, समृद्धि और मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति बताई गई है। यहाँ तक कि पुरोहितों को इच्छानुसार संभव एवं असंभव सभी फल देने की क्षमता से युक्त माना गया है। मैकडानल ने इन प्रयोगों का परिहास किया है और लिखा है—

‘यह कहीं अधिक अच्छा और लाभप्रद होता यदि कोई प्रयोग चन्द्रबिम्ब को हस्तगत करने लिए भी बनाया जाता।’^१ (३) देवों का स्वरूप-विकास—ऋग्वेद में प्रजापति, रुद्र और विष्णु का महत्त्व कम था। यजुर्वेद में इन देवों का महत्त्व बढ़ गया है। प्रजापति मुख्य देवता हो गए हैं। रुद्र शिव, शंकर और महादेव के रूप में विकसित हुए। विष्णु अब यज्ञ-स्वरूप और यज्ञ-नारायण हो गए। ‘असुर’ शब्द जो ऋग्वेद में बलिष्ठ का वाचक था, अब केवल दैत्यों का पर्याय हो गया। ऋग्वेद में अप्सराओं का उल्लेख नाममात्र है, परन्तु यजुर्वेद में उनका महत्त्व, सौन्दर्य और आकर्षकता बढ़ गई है।^२ उर्वशी का नामोल्लेख तक मिलता है।^३ (४) पुरोहितों का महत्त्व—यज्ञ के महत्त्व के साथ ब्राह्मणों का महत्त्व भी बढ़ा। यहाँ तक कि ‘यज्ञ के द्वारा देवता तो ब्राह्मणों की मुट्ठी में थे’।^४ (५) जाति-व्यवस्था संगठित—यजुर्वेद-काल में जाति-व्यवस्था दिन-प्रतिदिन

१. मैकडानल—सं० सा० का इतिहास (हिन्दी) पृष्ठ १६६-१७०।

२. वही, पृष्ठ १७०।

३. यजुर्वेद १८-३८ से ४३।

४. यजु० ५-२।

५. मैकडानल, वही, पृष्ठ १६६।

बढ़ती गई और सुदृढ़ हो गई। चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त वर्णसंकर-जन्य जातियों के भी नाम प्राप्त होते हैं।^१ यज्ञों और कर्मकाण्ड के द्वारा ब्राह्मणों का सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व बहुत बढ़ गया।^२

(घ) सामवेद

सामन् का अर्थ—सामन् का वास्तविक अर्थ गान है। ऋग्वेद के मन्त्र जब विशिष्ट गान-पद्धति से गाए जाते हैं, तो उनको सामन् (साम) कहते हैं। अतएव पूर्वमीमांसा में गीति या गान को साम कहा गया है—गीतिषु सामाख्या (पूर्व० २-१-३६)। ऋग्वेद और सामवेद अर्थात् ऋच् + गान = सामन् है। इसको ही अनेक रूप में सामान्य या आलंकारिक रूप में प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है। जैसे—(१) ऋक् ही साम है, (२) सा = ऋच् + अम = गीति = सामन्, स या सा का अर्थ ऋग्वेद है और अम का अर्थ गान है, अतः साम का अर्थ दोनों का समन्वय है। (३) सा (अर्थात् ऋच् या पत्नी) + अम (गान या पुरुष) = सामन्, ऋक् और गान का समन्वय साम है।^३

(क) या ऋक् तत् साम (छां० उ० १-३-४)।

(ख) ऋचि अध्युढं साम (छां० उ० १-६-१)।

(ग) अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यूक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥

ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥

(अथर्व० १४-२-७१, ऐ० ब्रा० ८-२७, बृहदा० उ० ६-४-२०)

(घ) सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम् (बृ० उ० १-३-२२)

गान ही सामवेद का स्वत्व है। गान ही सामवेद की प्रतिष्ठा है।

वस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, ...तस्य स्वर एव स्वम्।

(बृ० उ० १-३-२५)

सामवेद की शाखाएँ

महामाष्य में पतञ्जलि ने 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' (आह्निक १) कहा है,

१. यजु० अध्याय ३०।

२. मैकडानल, वही, पृष्ठ १७०।

३. विस्तृत विवेचन के लिए देखो—सामवेद संहिता, १९९६ वि० (१९३६ ई०), श्री दा० सातवलेकर द्वारा संपादित संस्करण की भूमिका पृष्ठ १, २।

जिसका अभिप्राय यह लगाया जाता है कि सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ थी। परन्तु यह मन्तव्य सर्वथा समीचीन नहीं है। वर्त्मन् शब्द शाखावाचक नहीं है। इसका अभिप्राय केवल यही है कि सामवेद के गान की १ सहस्र पद्धतियाँ प्रचलित थीं। श्री सत्यव्रत सामश्रमी और श्री सातवलेकर ने यही मन्तव्य उपयुक्त बताया है।^१ इस बात की पुष्टि इस बात से भी होती है कि सामतर्पण में केवल १३ सामवेदी आचार्यों का स्मरण किया जाता है। यदि १३ से अधिक सामवेद के शाखाकार होते तो उनका सामतर्पण में या अन्यत्र उल्लेख होता। १३ शाखाकारों के नाम हैं:—१. राणायन, २. शाटघमुग्र्य, ३. व्यास, ४. भागुरि, ५. औलुण्डी, ६. गौल्गुलवि, ७. भानुमानौपमन्यव, ८. काराटि, ९. मशक गार्ग्य, १०. वार्षगव्य, ११. कुथुम, १२. शालिहोत्र, १३. जैमिनि।^१

इन १३ में से भी केवल तीन शाखाएँ संप्रति उपलब्ध हैं—१. राणायनीय, २. कौथुमीय, ३. जैमिनीय (या तलवकार)। श्री सातवलेकर ने सामवेद-संहिता के संस्करण में राणायनीय और कौथुमीय दोनों शाखाओं को प्रकाशित किया है। वस्तुतः दोनों शाखाओं में मौलिक कोई अन्तर नहीं है। दोनों में वे ही मन्त्र उसी क्रम से हैं। केवल गणना-पद्धति में अन्तर है। राणायनीय शाखा में मन्त्रों की गणना का प्रकार है—१. प्रपाठक, २. अर्धप्रपाठक, ३. दशति, ४. मंत्र। कौथुमीय शाखा का प्रकार है—१. अध्याय, २. खंड, ३. मंत्र। जैमिनीय शाखा की संहिता डा० रघुवीर ने प्रकाशित की थी। श्री सातवलेकर ने परिशिष्ट में जैमिनीय शाखा के पाठभेदों का पूरा विवरण दिया है।

मंत्र संख्या—सामवेद की पूरी मंत्र संख्या १८७५ है। इसमें ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या १७७१ है। इस प्रकार केवल १०४ मन्त्र सामवेद में नए हैं। ऋग्वेद के १७७१ मन्त्रों में २६७ पुनरुक्त हैं। सामवेद के १०४ नए मन्त्रों में ५ पुनरुक्त हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में सर्वथा अप्राप्त ९९ मंत्र हैं। कतिपय संस्करणों में आरण्यकांड (५५ मंत्र) और महानाम्न्याचिक (१० मंत्र) को मूल ग्रन्थ में नहीं लिया गया है। तब मंत्र-संख्या १८१० होगी और ऋग्वेद में अप्राप्त मन्त्रों की

१. वही, भूमिका पृष्ठ २।

२. राणायन-शाटघमुग्र्य-व्यास-भागुरि-औलुण्डी-गौल्गुलवि-भानुमानौपमन्यव-काराटि-मशकगार्ग्य-वार्षगव्य-कुथुम-शालिहोत्र-जैमिनि-त्रयोदशैते मे सामगाचार्याः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः। (सामतर्पणम्)।

संख्या ७६ होगी। सामवेद दो भागों में विभक्त है।—(१) पूर्वाचिक, (२) उत्तराचिक।

(१) पूर्वाचिक में—चार कांड—(क) आग्नेय, (ख) ऐन्द्र, (ग) पवमान, (घ) आरण्यकांड और महानाम्नी आचिक हैं। इसमें ६ अध्याय और ६५० मंत्र हैं। (२) उत्तराचिक में—२१ अध्याय (या ६ प्रपाठक) और १२२५ मंत्र हैं। उत्तराचिक में कुल ४०० सूक्त हैं। जिनमें २८७ सूक्तों में प्रत्येक में तीन-तीन मंत्रों का समूह है। ६६ में दो-दो मंत्र हैं। शेष में १ से लेकर १२ तक मंत्र-समूह हैं।

सामवेद में अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के ८वें और ९वें मण्डल से लिए गए हैं। नवम मण्डल से ६४५ और अष्टम से ४५० मन्त्र। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के शेष सभी मण्डलों से भी मंत्र लिए गए हैं। जिनमें प्रथम (२३७ मंत्र) और दशमे (११० मंत्र) मण्डल प्रमुख हैं।

प्रतिपाद्य विषय—सामवेद में उपासना प्रमुख है। इसमें मुख्यतः सोमयाग से संबद्ध मन्त्रों का संकलन है। पूर्वाचिक में अग्नि, इन्द्र और पवमान सोम से संबद्ध मन्त्र दिए गए हैं। इन मन्त्रों में सामगान की दृष्टि से प्रत्येक मन्त्र की लय स्मरण करनी होती है, जिनका प्रयोग उत्तराचिक में होता है। उत्तराचिक के द्विक, त्रिक या चतुष्क आदि (२, ३ या ४ मंत्रों का समूह) में इन लयों का प्रयोग करना होता है। अधिकांश त्रिक आदिका प्रथम मन्त्र पूर्वाचिक का होता है, जिसकी लय पर वह पूरा सूक्त (त्रिक आदि) गाया जाता है। यज्ञों के समय उद्गाता इन मन्त्रों को गाता है, अतः यजुर्वेद और सामवेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामवेद में सोम, सोमरस, सोमपान, सोमयाग का विशेष महत्त्व है, अतः इसे सोम-प्रधान वेद कह सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से सोम ब्रह्म या शिव-तत्त्व है। उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है। सामवेद संगीत एवं भक्ति के द्वारा उसकी प्राप्ति का साधन है।

सामवेदीय संगीत—सामवेदीय संगीत के विषय में कुछ मोटी बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

(१) सामवेदीय मन्त्रों के ऊपर दिए १, २, ३ अंकों का अर्थ है—क्रमशः उदात्त, स्वरित और अनुदात्त। ऋग्वेद में उदात्त पर कोई चिह्न नहीं होता है, सामवेद में उस पर १ संख्या होगी। ऋग्वेद में स्वरित पर ऊपर खड़ी लकीर

होती है, सामवेद में उस पर २ संख्या होगी। अनुदात्त पर नीचे पड़ी लकीर होती है, उस पर सामवेद में ३ संख्या होगी। स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं होता। उन्हें प्रचय कहते हैं। सामवेद में उन पर कोई संख्या नहीं होती। उदात्त आदि और निषाद आदि के प्रथम वर्ण संकेत रूप में नीचे दिए हैं। जैसे—

ऋग्वेद के अनुसार	अ	गि	मी	छे	पु	रो	हि	तम्
	३	१	२		३	१	२	
सामवेद के अनुसार	अ	गि	मी	छे	पु	रो	हि	तम्।
उदात्तादि संकेत	अ	उ	स्व	प्र	अ	उ	स्व	प्र
सरगम के अनुसार	नी	सा	रे	रे	नी	सा	रे	रे

(२) नारद-शिक्षा में सामगान-सम्बन्धी कुछ निर्देश हैं। संक्षेप में विशेष उल्लेखनीय बातें ये हैं—

(क) स्वर—सात हैं, (ख) ग्राम—३ हैं, (ग) मूर्च्छनाएँ २१ हैं, (घ) तान—४६ हैं। षड्ज आदि अर्थात् स रे ग म प ध नि, ये ७ स्वर हैं। मन्द, मध्य और तीव्र, ये तीन ग्राम हैं। ७ स्वर × ३ ग्राम = २१ मूर्च्छनाएँ हैं। ७ स्वर × ७ स्वर, सातों स्वरों के परस्पर मिश्रण से ४६ तान हैं।

सप्त स्वराः त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।

ताना एकोनपञ्चाशद् इत्येतत् स्वरमण्डलम् ॥

(नारदीय शिक्षा)

नारदीय शिक्षा ने ही वर्णन किया है कि सामवेद के १, २, ३ आदि अंक क्रमशः मध्यम, गान्धार आदि के सूचक हैं। जैसे—

सामवेदीय अंक

(वीणा) वेणु के स्वर

१. प्रथम

मध्यम (म)

२. द्वितीय

गान्धार (ग)

३. तृतीय

ऋषभ (रे)

४. चतुर्थ

षड्ज (सा)

५. पंचम (मन्द्र)

निषाद (नि)

६. षष्ठ

धैवत (ध)

७. सप्तम

पञ्चम (प)

अर्थात् सामवेद का स्वर म से प्रारम्भ होकर अवरोह की ओर म ग रे सा नि ध प के क्रम से रहता है। उपर्युक्त सारणी के अनुसार स्वर-निर्धारण करें।

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।

यो द्वितीयः स गान्धारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥ इत्यादि

(नारदीय शिक्षा)

(३) ६ सामविकार—सामगान में गान का ध्यान रखते हुए कुछ घटाया-बढ़ाया जाता है। आलाप के लिए कुछ जोड़ा जाता है। इसके लिए ६ साम-विकार हैं। (१) विकार—शब्द को आवश्यकतानुसार परिवर्तित करना। जैसे—‘अग्ने’ को ‘ओग्नायि’ कहना। (२) विश्लेषण—शब्द या पद को तोड़ना। जैसे—‘वीतये’ का ‘वोयि तोया रयि’ उच्चारण करना। (३) विकर्षण—एक स्वर को देर तक खींचना, उसे दो या अधिक मात्रा के बराबर बोलना। जैसे—‘ये’ को ‘या २ ३ यि’। (४) अभ्यास—किसी पद को बार-बार बोलना। जैसे—तोया२यि। तोया२यि। (५) विराम—गान की सुविधा के लिए शब्द को बीच में तोड़ कर रुक जाना, अर्थात् पद के मध्य में ही ‘यति’। जैसे—‘गृणानो हव्य-दातये’ को ‘गृणानो ह। व्यदातये।’ उच्चारण करना, अर्थात् हव्य के ह को पूर्व पद के साथ बोलना। (६) स्तोभ—आलाप के योग्य पदों को ऊपर से जोड़ देना। जैसे—‘औहोवा। हाड’ आदि। शाखा-भेद से भी स्तोभ के पदों में भेद होता है। जैसे—कौथुमीय शाखा वाले—‘हाड’ ‘राड’ आदि जोड़ते हैं, राणायनीय शाखा वाले—‘हावु’ ‘रायि’ आदि।

(४) ऋग्वेद का प्रत्येक मन्त्र गौतम के २ गान तथा काश्यप के १ गान के कारण तीन मंत्र के बराबर हो जाता है। उदाहरणार्थ केवल एक पाठ दिया जा रहा है।

ऋग्वेद का मन्त्र—अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ (ऋ० ६-१६-१०) (साम० १-१-१-१)

गौतम का पद (सामगान)—

ओग्नाई। आयाहीऽ३। वोइतोयाऽ२३। तोयाऽ२ इ। गृणानो ह। व्यदातोयाऽ२ इ। तो याऽ२इ। नाइ होतासाऽ२ ३। त्साऽ२ ३। वाऽ२३४ औहोवा। हीऽ२३४ छी ॥

सामगान-ग्रन्थ—पूर्वाचिक के मन्त्रों को सामयोनि-मन्त्र कहते हैं। इनके आधार पर गान-ग्रन्थों की रचना हुई है। वे चार प्रकार के हैं—(१) (ग्राम-)

गेयगान । इसे प्रकृति-गान भी कहते हैं । यह ग्राम तथा सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था । (२) आरण्यक (-गेय-) गान । यह वनों एवं पवित्र स्थानों में ही गाया जा सकता था । (३) ऊहगान—यह सोमयाग एवं विशेष धार्मिक अवसरों पर गाया जाता था । इसका सम्बन्ध गेयगान से है । पूर्वाचिक से संबद्ध उत्तराचिकों का गान इस विधि से होता था । (४) ऊह्यगान या रहस्य-गान—इसका सम्बन्ध आरण्यक-गान से है । ये वन या पवित्र स्थानों पर ही गाए जाते थे । जैमिनीय शाखा के अनुसार ३६८१ गान हैं और कौथुमीय तथा राणायनीय के अनुसार गानों की संख्या २७२३ है ।^१

	कौथुमीय, राणायनीय गान	जैमिनीय-गान
ग्राम गेयगान	११६७	१२३२
आरण्यक गेयगान	२६४	२६१
ऊह-गान	१०२६	१८०२
ऊह्य-गान	२०५	३५६
योग	२७२२	३६८१

(ङ) अथर्ववेद

१. अथर्वन् का अर्थ—निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् शब्द के दो निर्वचन दिए हैं :—(१) अथर्वन्—गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग । निरुक्त के अनुसार थर्वं धातु गत्यर्थक है, अतः अथर्वन्—गतिहीन या स्थिर । इसका अभिप्राय है—जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है ।^२ (२) गोपथ-ब्राह्मण में अथर्वा शब्द अथार्वाक् का संक्षिप्त रूप माना है । 'अथ अर्वाक्=अथार्वाक्, अथर्वा । गोपथ ने इसका अभिप्राय दिया है—समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या जिस वेद में आत्मा को अपने अन्दर देखने की शिक्षा है ।^३ अथर्ववेद (१०-२-२६ से २८) में इसी प्रकार अध्यात्म-वर्णन वाले मन्त्र

१. विस्तृत विवरण के लिए देखो—सामवेद-संहिता, सं० सातवलेकर, १६३६, पृष्ठ २२४ से २३५ तथा भूमिका पृष्ठ २ से १२ ।

२. अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः । थर्वतिश्चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः (निरुक्त ११-१८) ।

३. अथ अर्वाग् एनं...अन्विच्छेति, तद्यदब्रवीद् अथार्वाङ् नमेतास्वप्स्वन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत् । (गोपथ १-४)

हैं। कुछ विद्वानों ने कौटिल्य और हिंसा अर्थ वाली यव धातु से अथर्वन् की व्युत्पत्ति मानी है, परन्तु सिद्धान्तकौमुदी (धातुपाठ) में ऐसी कोई धातु नहीं है।

२. अथर्ववेद के विविध नाम—अथर्ववेद तथा अन्य ग्रन्थों में अथर्ववेद के ये नाम प्राप्त होते हैं :—(१) अथर्ववेद—अथर्वन् ऋषि के नाम पर इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा। इस वेद में अथर्वा ऋषि के ही मन्त्र सबसे अधिक हैं।^१ इनकी संख्या १७६८ है। (२) आंगिरस वेद—गोपथ-ब्राह्मण में आंगिरस् ऋषि और उनके वंशजों द्वारा दृष्ट होने के कारण इसे आंगिरस वेद कहा है।^२ (३) अथर्वाङ्गिरस वेद—अथर्ववेद का प्राचीन नाम अथर्वाङ्गिरस वेद है। इसमें अथर्वा और आंगिरस् ऋषि के वंशजों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संग्रह है, अतः इसे अथर्वाङ्गिरस वेद कहते हैं। अथर्ववेद में भी इसका यह नाम मिलता है।^३ (४) ब्रह्मवेद—इसका एक प्राचीन नाम ब्रह्मवेद है। अथर्ववेद में इसको ब्रह्मवेद भी कहा है।^४ इसमें ब्रह्मा द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या ६६७ है। (५) भृग्वङ्गिरोवेद—गोपथ (३-१) में इसे भृग्वङ्गिरोवेद कहा है। भृग्वङ्गिरा के दृष्ट मन्त्रों की संख्या ६७० है।^५ (६) क्षत्रवेद—इसमें राजाओं एवं क्षत्रियों के कर्तव्यों का निर्देश होने से इसे शतपथ-ब्राह्मण में क्षत्रवेद कहा गया है। (७) भैषज्यवेद—इसमें आयुर्वेद, चिकित्सा, ओषधियों आदि का बहुत वर्णन है, इसलिए इसे भैषज्यवेद कहते हैं। अथर्ववेद में इसे 'भेषजा' कहा है।^६ (८) छन्दोवेद—अथर्ववेद में इसे छन्दस् या छन्दोवेद भी कहा गया है।^७ यह छन्दःप्रधान वेद है, अतः इसे छन्दस् कहा है। (९) महीवेद—अथर्ववेद में इसे 'मही' कहा गया है।^८ महती ब्रह्मविद्या के उपदेश अथवा महत्त्वपूर्ण पृथ्वी-सूक्त के कारण इसे महीवेद भी कहते हैं।

१. स आथर्वणो वेदोऽभवत् । (गोपथ १-५)
२. स आंगिरसो वेदोऽभवत् । (गोपथ १-८), शतपथ० १३-४-३-८ ।
३. अथर्वाङ्गिरसो मुखम् (अथर्व० १०-७-२०) ।
४. तमृचश्च सामानि च यजूषि च ब्रह्मा चानुव्यचलन् (अथर्व० १५-५-६) ।
५. उक्तं...यजुः...साम..क्षत्रं वेद (शत० १४-८-१४-२ से ४) ।
६. ऋचः सामानि भेषजा । यजूषि (अथर्व० ११-६-१४) ।
७. ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह । (अथर्व० ११-७-२४) ।
८. ऋचः साम यजुर्मही । (अथर्व० १०-७-१४)

अथर्ववेद की शाखाएँ

पतंजलि ने महाभाष्य में 'नवधाऽऽथर्वणो वेदः' (महा० आ० १) कहकर ९ शाखाओं का उल्लेख किया है। प्रपंच-हृदय, चरणव्यूह और सायण की अथर्ववेद-भाष्य-भूमिका में भी ९ शाखाओं का उल्लेख है, परन्तु नामों में भेद मिलता है। इनके नाम हैं—(१) पैप्पलाद, (२) तौद, (३) मौद, (४) शौनकीय, (५) जाजल, (६) जलद, (७) ब्रह्मवद, (८) देवदर्श, (९) चारण वैद्य। इनमें से केवल २ शाखाओं अर्थात् शौनक और पैप्पलाद की ही संहिताएँ उपलब्ध हैं।

(१) शौनकीय शाखा—आजकल प्रचलित अथर्ववेद संहिता शौनकीय शाखा की ही है। इसमें २० कांड, ७३० सूक्त एवं ५९८७ मंत्र हैं। इसमें सबसे बड़े काण्ड २० (मंत्र ९५८), ६ (मंत्र ४५४) और १९ (मंत्र ४५३) हैं। सबसे छोटा कांड १७ वाँ है। इसमें केवल ३० मंत्र हैं।^१ अथर्ववेद में भी यजुर्वेद के तुल्य गद्य अंश है, जो पूरे ग्रन्थ का लगभग $\frac{१}{५}$ है। ५० से अधिक सूक्त गद्य में है। सारा १५ वाँ और १६ वाँ कांड तथा अन्य कांडों में मिलाकर ३० सूक्त गद्य-बद्ध हैं।^२

(२) पैप्पलाद शाखा—इस शाखा की 'पैप्पलाद संहिता' है। काश्मीर में शारदालिपि में प्राप्त एक पाण्डुलिपि के आधार पर ब्लूमफील्ड ने १९०१ में अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया था।^३ बाद में डा० रघुवीर ने भी इसका सुन्दर संस्करण प्रकाशित कराया था।

अथर्ववेद के उपवेद—अथर्ववेद के ५ उपवेद माने जाते हैं :—१. सर्पवेद, २. पिशाचवेद, ३. असुरवेद, ४. इतिहास वेद, ५. पुराण-वेद।^४ इनमें से इतिहास और पुराण ही प्राप्य हैं, शेष उपवेद अप्राप्य हैं। शतपथ-ब्राह्मण में उपवेदों में देवजन-विद्या-वेद और माया-वेद का भी उल्लेख है।^५

१. विवरण के लिए देखो—अथर्ववेद, सातवलेकर, भूमिका पृ० १८।
२. विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत—संस्कृत-गद्य-नवनीतम्, भूमिका पृ० ३।
३. विवरण के लिए देखो—वैदिक वाङ्मय का इतिहास, लेखक—भगवद्दत्त, पृष्ठ २२३।
४. पञ्च वेदान् निरमिमीत—सर्पवेदं पिशाचवेदम् असुरवेदम् इतिहासवेदं पुराण-वेदं चेति। (गोपथ ब्रा० १-१०)।
५. देखो—शतपथ ब्रा० १३-४-३-३ से १४।

अथर्ववेद का परिमाण—अथर्ववेद के संकलन में कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कहीं पर मंत्र-संख्या की दृष्टि से कांडों का विभाजन है, तो कहीं पर विषय की दृष्टि से। इस प्रकार इसके ४ विभाग हैं—(१) कांड १ से ७ तक। इसमें मंत्रों की संख्या पर ध्यान रखा गया है। जैसे—कांड १ में प्रत्येक सूक्त में ४ मंत्र हैं। कांड २ में ५, कांड ३ में ६, कांड ४ में ७, कांड ५ में ८। इससे ज्ञात होता है कि १ से ५ कांड में प्रत्येक कांड में सूक्तों की मंत्र-संख्या बढ़ती गई है। कांड ६ में प्रायः प्रत्येक सूक्त में ३ मंत्र हैं और ७ में १ या २ मंत्र। कांड १ से ६ में यह भी विशेषता है कि प्रत्येक कांड में मंत्र-संख्या का योग बढ़ता गया है। (२) द्वितीय भाग में कांड ८ से १२ हैं। इनमें अधिक मंत्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु विषय विभिन्न हैं। (३) तृतीय भाग में कांड १३ से १८ हैं। इनमें भी अधिक मंत्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु विषय प्रायः एक ही है। (४) चतुर्थ भाग में कांड १९ और २० हैं। ये बाद के मिश्रण प्रतीत होते हैं।^१

इस विषय में पर्याप्त मतभेद है कि अथर्ववेद में मूल कांड कितने हैं। कोई मूल कांड १३ मानता है, कोई १८, कोई १९ और कोई २०।^२ २० वें कांड में प्रायः सभी मंत्र ऋग्वेद के ऐन्द्र-सूक्तों से लिए गए हैं।

इस विषय में मैकडानल के विचार निम्नलिखित हैं^३ :—

(१) मूल अथर्ववेद में केवल १३ कांड थे। यह रचना-शैली एवं विषय-विवेचन की दृष्टि से कहा जा सकता है। (२) कांड १३ के बाद विषयों में एकरूपता एवं क्रमबद्धता है, जो १३ कांडों में अप्राप्य है। जैसे—कांड १४ में विवाह-संस्कार, १५ में ब्राह्म-वर्णन, १६-१७ में सम्मोहन मंत्र, १८ में अन्त्येष्टि। कांड १५, १६ ब्राह्मणों के तुल्य गद्य-शैली में हैं। कांड १६, १७ बहुत छोटे हैं। (३) कांड १९ और २० बाद में जोड़े गए हैं। कांड १९ में कुछ अंश परिशिष्ट के तुल्य हैं और कुछ अंशों में पाठ भ्रष्ट है। कांड २० के प्रायः सभी सूक्त इन्द्र-स्तुति-परक हैं और ऋग्वेद से संगृहीत हैं। अथर्ववेद की परम्परा के विरुद्ध अन्तिम अध्यायों में सोमयाग वर्णित है। यह अथर्ववेद को चतुर्थ वेद का स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न है।

प्रतिपाद्य विषय—जूलूमफील्ड और विन्टरनिट्स ने अथर्ववेद का पूरा नाम 'अथर्वार्जिरस वेद' माना है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है :—अवेस्ता

१. विवरण के लिए देखो—लेखककृत अथर्ववेदकालीन संस्कृति, अध्याय १।
२. अथर्ववेद, सातवलेकर, भूमिका पृ० ६।
३. मैकडानल, सं० सा० इति० पृष्ठ १७३-१७४।

का अथर्वन् शब्द अथर्वन् का प्रतिनिधि है, जिसका अर्थ पुरोहित है। यह अग्नि की पूजा करता था। अथर्ववेद भी अग्नि-पूजा या यज्ञ में विश्वास रखता है। अवेस्ता का अथर्वन् पौरोहित्य के साथ जादू का भी काम करता था। आंगिरस भी प्रागैतिहासिक काल के पुरोहित हैं। दोनों यज्ञ के साथ ही जादू में भी निपुण थे। अथर्वन् और आंगिरसों में भेद यह है कि अथर्वन् के मन्त्रों में सुख-शान्ति और अच्छाई वाले जादू हैं। इनमें रोग-निवारण आदि के लिए भी मंत्र हैं। आंगिरस मन्त्रों में क्रत्या-प्रयोग, अमिचार-कर्म, शत्रु-नाशन आदि के मंत्र हैं।

अथर्ववेद में कांडों के अनुसार प्रतिपाद्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं—
 (कांड १) विविध रोगों की निवृत्ति, पाश-मोचन, रक्षोनाशन, शर्म-प्राप्ति आदि,
 (कांड २) रोग, शत्रु एवं कृमि-नाशन, दीर्घायुष्य, (कांड ३) शत्रु-सेना-संमोहन, राजा का निर्वाचन, शाला-निर्माण, कृषि एवं पशुपालन, (कांड ४) ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मौदन का वर्णन, (कांड ५) ब्रह्मविद्या, क्रत्या-परिहार, (कांड ६) दुःस्वप्न-नाशन, अन्न-समृद्धि, (कांड ७) आत्मा का वर्णन, (कांड ८) प्रतिसर मणि, विराट् ब्रह्म का वर्णन, (कांड ९) मधुविद्या, पंचौदन अज, अतिथि-सत्कार, गाय का महत्त्व, यक्ष्म-नाशन, (कांड १०) क्रत्या-निवारण, ब्रह्मविद्या एवं वरुण मणि का वर्णन, सर्प-विष-नाशन एवं ज्येष्ठ ब्रह्म का महत्त्व, (कांड ११) ब्रह्मौदन, रुद्र, ब्रह्मचर्य का वर्णन, (कांड १२) पृथ्वी-सूक्त, भूमि का महत्त्व, (कांड १३) अध्यात्म-वर्णन, (कांड १४) विवाह-संस्कार, (कांड १५) ब्राह्म-ब्रह्म का वर्णन, (कांड १६) दुःख-मोचन, (कांड १७) अम्युदय के लिए प्रार्थना, संमोहन, (कांड १८) पितृमेघ, (कांड १९) यज्ञ, नक्षत्र, विविध मणियाँ, छन्दों के नाम, राष्ट्र का वर्णन, काल का महत्त्व, (कांड २०) सोमयाग-वर्णन, इन्द्र-स्तुति। कुन्ताप-सूक्त (१२७) में राजा परीक्षित के राज्य-शासन का वर्णन है।

वेदत्रयी और वेद-चतुष्टयी—पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत बलपूर्वक व्यक्त किया है कि प्रारम्भ में तीन ही वेद थे। अथर्ववेद बाद की रचना है तथा बाद में इसे चार वेदों में सम्मिलित किया गया है। उन्होंने जो तर्क उपस्थित किए हैं, वे प्रायः ऋग्वेदादि में विशेष रूप से अथर्ववेद का उल्लेख न होने पर निर्भर हैं, परन्तु विशेष विवेचन से ज्ञात होता है कि उनके तर्क अपुष्ट हैं। उसके कारण

संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—(१) पूर्वमीमांसा की युक्ति—पूर्वमीमांसा में सिद्ध किया गया है कि त्रयी नाम ग्रन्थों पर निर्भर न होकर विषयों पर निर्भर है। पद्यबन्ध को ऋक् कहते हैं, गीति को साम और गद्य को यजु।^१ अतः अथर्ववेद का तीनों में समावेश होने से पृथक् उल्लेख नहीं है। (२) ऋग्वेद में अथर्वा का उल्लेख—ऋग्वेद में अनेक बार अथर्वा का उल्लेख है। इतना ही नहीं, उसे अग्नि का आविष्कारक और यज्ञ-विद्या का प्रवर्तक कहा गया है।^२ (३) ऋग्वेद में अथर्ववेद के ऋषि—ऋग्वेद में अथर्ववेदीय ऋषि भृगु और अंगिरा के परिवार के क्रमशः १२ और ४५, अर्थात् ५७ ऋषि हैं, जो ऋग्वेद के सहस्रों मंत्रों के द्रष्टा हैं। इससे ऋग्वेद ही अथर्ववेदीय ऋषियों का ऋणी है, यह ज्ञात होता है।^३ (४) यज्ञ में ब्रह्मा का महत्त्व—ऋग्वेद में चार ऋत्विजों में ब्रह्मा को ब्रह्म-विद्या के उपदेशार्थ प्रतिष्ठित किया गया है।^४ चारों वेदों में एक भी ऐसा उल्लेख नहीं है, जहाँ ब्रह्मा के बिना यज्ञ संभव हो। यज्ञ ही ऋग्वेद का आधार है। ब्रह्मा का अथर्ववेदवित् होना अनिवार्य है। (५) अथर्ववेद का नामोल्लेख न होने का कारण—ऋग्वेद, यजु और साम ये तीनों वेद साक्षात् यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। इनके मन्त्र-पाठ, संगीत एवं कर्मकांड के लिए उद्गाता आदि नियुक्त होते हैं। अथर्ववेद यज्ञ-प्रधान वेद नहीं है, अतः उसके मन्त्रों का पाठ यज्ञों में नहीं होता है। इसलिए उसका तीनों वेदों के साथ सर्वत्र उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद में भी 'छन्दांसि' के द्वारा अथर्ववेद का उल्लेख है। यज्ञ का प्रतिपाद्य स्वारस्य अध्यात्म है। वह अथर्ववेद का विषय है। उसे ब्रह्मा ही जानता है और बताता है। अतएव ब्रह्मा ही यज्ञ का अधिष्ठाता और निर्देशक होता है।

अथर्वा का महत्त्व—वैदिक वाङ्मय में अथर्वन् या अथर्वा का बहुत महत्त्व है। ऋग्वेद, यजु और अथर्व तीनों वेद उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इसके चार कारण हैं—(१) अथर्वा ने सर्वप्रथम अग्नि का आविष्कार किया। मन्त्रों

१. तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (पूर्व मी० २-१-३५), गीतिषु सामाख्या (२-१-३६), शेषे यजुःशब्दः (२-१-३७)।
२. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते (ऋ० १-८३-५), अग्निर्जातो अथर्वणा (ऋ० १०-२१-५), इममु त्यम् अथर्ववदग्निं सन्थन्ति वैधसः (ऋ० ६-१५-१७)।
३. देखो—अथर्ववेदकालीन संस्कृति, अध्याय १।
४. ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्० (ऋ० १०-७१-११)।

से प्रतीत होता है कि अग्नि का उत्पादन अरणि-मन्थन और जल-मन्थन दोनों प्रकार से हुआ ।^१ (२) अग्नि को सर्वप्रथम यज्ञ-कार्य में प्रयुक्त किया ।^२ (३) वह वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञिय विधि एवं वैदिक-तत्त्व-मीमांसा का प्रचारक, संचालक, निरीक्षक एवं निदेशक रहा । अध्यात्म-चिन्तन एवं अध्यात्म-वर्णन इसकी मुख्यता रही ।^३ (४) अथर्वा का दृष्टिकोण संकीर्ण-अ होकर सार्वभौम था । वह यज्ञ-कर्म में ही बद्ध न रहा, अपितु उसने आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, शास्त्रीय एवं आयुर्वेदिक आदि सभी विषयों पर अपनी दृष्टि डाली है ।

अथर्ववेद का महत्त्व—अथर्ववेद कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । मुख्य बातें ये हैं—(१) यह वैदिक-दर्शन का सबसे पुष्ट एवं प्रामाणिक स्रोत है । आरण्यक, उपनिषद् आदि में प्राप्य दार्शनिक चिन्तन अथर्ववेद का ही विकसित रूप है । (२) सम्यता और संस्कृति की दृष्टि से अथर्ववेद चारों वेदों में सबसे अधिक उपयोगी है । तत्कालीन सम्यता और संस्कृति का जितना सुन्दर बोध अथर्ववेद से होता है, उतना अन्य किसी वेद से नहीं । (३) अथर्ववेद सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का सबसे सुन्दर बोध कराता है । (४) अथर्ववेद विश्व-कोष है । इसमें उस समय प्रचलित ज्ञान और विज्ञान का पूर्ण संग्रह है । (५) अथर्ववेद में उस समय प्रचलित रीति-रिवाज, प्रथाएँ, मान्यताएँ, यहाँ तक कि अन्ध-विश्वास, रूढ़ियाँ, जादू-टोने, कृत्या-प्रयोग, अभिचार-कर्म, संमोहन, वशीकरण, ताबीज, जड़ी-बूटियाँ आदि का विस्तृत उल्लेख है । (६) इसमें विरोधी गुणों का समन्वय है । एक ओर यह विशुद्ध ब्रह्मवेद है तो दूसरी ओर क्षत्रवेद (क्षत्रियों का वेद) है; एक ओर दार्शनिक वेद है तो दूसरी ओर यह स्त्रियों और शूद्रों का वेद माना गया है; एक ओर अध्यात्म-चर्चा है तो दूसरी ओर जादू-टोने और कृत्या-प्रयोग, (७) यह सार्वजनिक या जनता का वेद है । यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियों आदि के द्वारा समान रूप से सेव्य है । (८) 'साहित्य समाज का

१. अग्निर्जातो अथर्वणा (ऋ० १०-२१-५) ।

अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने (ऋ० ६-१५-१७) ।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थदग्ने (ऋ० ६-१६-१३, यजु० १५-२२) ।

२. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते । (ऋ० १-८३-५) ।

३. ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम् । (ऋ० १०-७१-११)

४. सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च । आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति । आपस्तम्ब धर्मसूत्र २-२६-११ से १२ ।

दर्पण है' इसका यह सर्वोत्तम प्राचीनतम निदर्शन है। (६) अथर्ववेद के मंत्रों में शक्ति है। अथर्व-परिशिष्ट^१ और स्कन्द पुराण^२ में वर्णन है कि अथर्ववेद के मन्त्रों में शक्ति है और इसके मन्त्रों के जप से इष्ट-सिद्धि होती है। (१०) अतएव मैकडानल ने अपने हार्दिक उद्गार व्यक्त किए हैं—'सम्यता के इतिवृत्त के अध्ययन के लिए ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलभ्यमान सामग्री कहीं अधिक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है।'।

अथर्ववेद की मुख्य बातें—अथर्ववेद में यद्यपि सैकड़ों बातें उल्लेखनीय हैं, तथापि उनमें से प्रमुख कुछ बातें परिचयार्थ दी जा रही हैं। कोष्ठ में अथर्ववेद के काण्ड और सूक्त की संख्या दी गई है। विशेष परिचयार्थ उन सन्दर्भों को देखें।^३

(१) **दार्शनिक वर्णन**—विराट् ब्रह्म (अ० ८-६, ८-१०, ९-१०, १६-६), ब्रह्म (५-२, ४-१४, १६-४२), वाक्तत्त्व (२-१, ४-१), ब्रह्म और माया (१०-८), माया और मायी (८-६), उच्छिष्ट ब्रह्म (१०-६०), ईश्वर (४-२, ४-१४, ७-१४, ७-२२), सूत्रात्मा (१०-८), एकेश्वरवाद (१३-४), स्कम्भ ब्रह्म (१०-७), रोहित ब्रह्म (१३-१), यज्ञ (१०-७, ८-६), त्रैतवाद (६-६), जीवात्मा (६-१०, १०-८), प्रकृति (१०-८, ६-१०), ब्राह्म्य (कांड १५), पुनर्जन्म (१०-८, ६-१०), स्वर्ग (१६-१५), नरक (१२-४), मधुकशा या मधु-विद्या (१-३४, ६-१), मनोविज्ञान (१-१, ७-५, १६-६), स्वप्नविज्ञान (१६-५७, ६-४६), (२) **राजनीतिक वर्णन**—राष्ट्र (१२-१, १३-१), राष्ट्र में समानाधिकार (१२-१-१५), राष्ट्रीय एकता (३-८-३), देश-रक्षा (१२-१-७), राजा के कर्तव्य (६-८७-२, ४-८-२), मित्रराष्ट्र (६-८८-३), जनराज्य (२०-२१-६), ग्राम-पंचायत (४-७-५), सैनिक-शासन के दोष (६-६६-२),

१. न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।

अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥ अथर्व-परिशिष्ट २-५

२. यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान् जपेत् श्रद्धासमन्वितः।

तेषामर्थोद्भवम् कृत्स्नं फलं प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥

(स्कन्दपुराण, कमलालय खंड)

३. सं० सा० का इति० (हिन्दी) पृ० १७२।

४. विस्तृत विवेचन एवं वर्णन के लिए देखें—लेखककृत—अथर्ववेदकालीन-संस्कृति।

राजा परीक्षित का राज्य (२०-१२७-१ से १४), राजा का निर्वाचन प्रजा के द्वारा (३-४-१ से ७, ६-८७-१ से ३, ६-८८-१ से ३), राजा का निर्वाचन सर्व-सम्मति से (२०-५४-१), राजा का निर्वाचन समिति से (५-१६-१५), राजा को गद्दी से हटाना (३-८-२), राजा और राजकृत् (३-५-६ और ७), राज्याभिषेक (१-१६-१ और ३०, ४-८), समा और समिति (७-१२-१ से ४), संसद् का रूप (७-१२-३), संसद् के सात विभाग (२०-११०-२), राजकीय आय के साधन (३-४-७, १-१५-३), न्याय और दण्ड-विधान (१६-४६-६ और १०), सेना और सेनापति (१-२७-१), शस्त्रास्त्र, आग्नेय अस्त्र (६-६७-२), बारूद (८-८-२), सीसे की गोलियाँ (१-१६-२ से ४) । (३) सामाजिक वर्णन—पंचजन (३-२१-५), जाति-बहिष्कार (२०-११६-१), ब्रह्मचारी के कर्तव्यादि (५-१७, ११-५), स्त्री के अधिकार (२०-१२६-६ और १०), दहेज (५-१७-३, २-३६-७), सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्र (१४-१-२७, १४-२-५०, १८-४-३१, १८-३-४६), स्वर्ण के आभूषण (२०-१३०-६, ५-१७-१४), शाला-निर्माण (३-१२), संगीत और नृत्य (६-१२६-२ और ३; २०-१३२-८, ११-८-२४), अभिनय (१२-१-४१), (४) आर्थिक वर्णन—कृषि (३-१७-१), खाद डालना (३-१४-३), बैलों वाला हल (६-६१-१, ८-६-१६), व्यापार और वाणिज्य (३-१५), समुद्री व्यापार (१७-१-२६), (५) शिक्षा—शिक्षा (७-६१), शिक्षा-विधि (१-१), शिक्षक (२०-२१), ज्योतिष (१३-२, १३-३), नक्षत्र (१६-७-२ से ५), रसायन-विज्ञान (२-२६-१), आकाश मार्ग से यात्रा (३-१५-२), (६) आयुर्वेद—शरीर के अंग (२-३३-१ से ७, २०-६६-१७ से २३), रोगों के नाम (६-८), ओषधि-चिकित्सा और जल चिकित्सा (४-४-५), ज्वर, यक्ष्मा, खाँसी, कुष्ठ, हृद्‌रोग, क्षेत्रिय रोगों की चिकित्सा (१-१२, २-८, १-२३ आदि), (७) अभिचार कर्म—इन्द्रजाल (८-८-१ से २४), कृत्या-प्रयोग या जादू-टोने (४-१७-४, ४-१८-३, २-७-५), झाड़ू-फूँक (३-६-५), विविध मणियों से रोग-नाशन (कांड १६), सपत्नी-नाशन (७-११३, ७-११४), अभिचार-यज्ञ (३-१६-२), कृत्या-परिहार (४-१५, ५-३१), वशीकरण (१-३४, २-३०), संमोहन, स्वापन (४-५), वाजीकरण (४-४), (८) दार्शनिक दृष्टि से कांड १३ और १५ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें क्रमशः ब्रह्म और वात्स्य का महत्त्वपूर्ण दार्शनिक विवेचन है। राष्ट्रीय दृष्टि से अथर्ववेद कांड १२ का पृथ्वी सूक्त (सूक्त १, मंत्र १ से ६३) बहुत उदात्त और काव्यात्मक भाषा में लिखा गया है। इसमें मातृभूमि

को माता और स्वयं को पुत्र बताया गया है और शिक्षा दी गई है कि मातृभूमि के लिए आवश्यकतानुसार अपना सर्वस्व अर्पण करें।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । (अ० १२-१-१२)
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ (अथर्व० १२-१-६२)

(च) ब्राह्मण ग्रन्थ

ब्राह्मण का अर्थ—इन ग्रन्थों को ब्राह्मण कहने के तीन कारण माने जाते हैं, तदनुसार इसके तीन अर्थ हैं :—(१) ब्रह्मन् का अर्थ मंत्र है, अतः मन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं। (२) ब्रह्मन् का अर्थ यज्ञ भी है, अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं। (३) ब्रह्मन् का अर्थ रहस्य भी है, अतः वैदिक रहस्यों का उद्घाटन करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहते हैं। इनमें यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक महत्त्व प्रस्तुत किया गया है। भट्ट भास्कर ने कर्मकांड तथा मंत्रों के व्याख्यान-ग्रन्थों को ब्राह्मण कहा है।

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः ।

(भट्टभास्कर—तैत्ति० सं० १-५-१ पर)

वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रयोजन निर्वचन, मंत्रों का विनियोग, अर्थवाद (प्रतिष्ठान) और विधि माना है।

नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् ।

प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ॥

प्रतिपाद्य विषय—ब्राह्मणों में प्रतिपाद्य विषय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) विधि—जिसमें यज्ञ तथा उससे संबद्ध कार्य-कलाप के लिए नियम दिए गए हैं। (२) अर्थवाद—जिसमें यज्ञों का महत्त्व तथा उससे संबद्ध उपाख्यान दिए गए हैं। (३) उपनिषद्—जिसमें आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों का समावेश है। ब्राह्मणों में यज्ञ के लिए चार पुरोहितों की आवश्यकता बताई है। इन चारों का एक-एक वेद से सम्बन्ध है। (१) होता—यह यज्ञ में ऋग्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है। (२) अध्वर्यु—यह यज्ञ करता है और यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है। (३) उद्गाता—यह सामवेद के मन्त्रों का

गान करता है। (४) ब्रह्मा—यह चारों वेदों का ज्ञाता होता है। चारों पुरोहितों में इसका स्थान सर्वोच्च होता है। इसके निरीक्षण एवं निर्देशन में यज्ञ होता है।

मन्त्र और ब्राह्मण—संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वतन्त्र अस्तित्व है। मन्त्रभाग का कर्मकांड में विनियोग होता है, ब्राह्मण भाग मन्त्रों के विनियोग की विधि बताता है। एक मूल है और दूसरा उसका व्याख्यान या भाष्य। यज्ञों में मन्त्रों से ही आहुति दी जाती है, ब्राह्मण भाग उसकी उपयोगिता बताता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। वेद शब्द मूलतः वैदिक संहिताओं का ही वाचक है, ब्राह्मण ग्रन्थों का नहीं। वैदिक साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का भी समावेश है। वेद शब्द का गौण अर्थ वैदिक-साहित्य लेने पर ब्राह्मणों को भी वेद कहा जा सकता है। अतएव गौण अर्थ को लेते हुए 'मन्त्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आपस्तम्ब), मन्त्र और ब्राह्मणों को वेद कहते हैं, यह उक्ति प्रचलित है। यही भाव आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (२४-१-३१), बौधायन गृह्यसूत्र (२-६-३), कौशिक सूत्र (१-३), तन्त्रवार्तिक (१-३-१०), शांकरभाष्य (वेदान्त-दर्शन १-३-३३) आदि में भी प्रकट किया गया है। मन्त्रों और ब्राह्मणों में वस्तुतः मौलिक भेद है। यथा—भाव-भेद, रचना-भेद, विषय-भेद और प्रक्रिया-भेद। अतः वास्तविक रूप में दोनों को वेद कहना असंगत एवं अनुपयुक्त है।

ब्राह्मणों की भाषा एवं शैली—ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा सरल, सरस और प्रसाद गुण-युक्त है। वर्ण्य विषय की दुरुहता को देखते हुए इन ग्रन्थों में प्रयत्न किया गया है कि लम्बे समासों, क्लिष्ट पदों और अस्पष्टार्थक शब्दों का प्रयोग न किया जाए। शैली प्रवाहयुक्त और रोचक है। आख्यानों के प्रसंग में शैली की रोचकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्राह्मणों की भाषा वैदिक और लौकिक संस्कृत को जोड़ने वाली सुन्दर कड़ी है। यज्ञिय, दार्शनिक एवं गूढ़ प्रसंगों को भी सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मणों में वैदिक और लौकिक शब्दावली का समन्वय है। शब्द-रूपों का वैविध्य ऋग्वेद की अपेक्षा बहुत कम है। लेट् लकार का प्रयोग मिलता है, परन्तु अल्प मात्रा में। तुमर्थक प्रत्ययों के प्राचीन रूप यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक छन्दों से नियन्त्रित न होने के कारण ब्राह्मणों में भाव-प्रकाशन की पूर्ण स्वतन्त्रता है। कहीं-कहीं गाथा छन्दों से मिलते हुए पद्य भी हैं। ऐसे पद्य मुख्यतया आख्यानों में हैं।

वेदानुसार ब्राह्मणों का वर्गीकरण

ऋग्वेदीय—(१) ऐतरेय ब्राह्मण, (२) शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण,

शुक्ल यजुर्वेदीय—(३) शतपथ-ब्राह्मण, कृष्ण यजुर्वेदीय—(४) तैत्तिरीय ब्राह्मण, सामवेदीय—(५) पंचविश (तांड्य या प्रौढ) ब्राह्मण, (६) षड्विंश, (७) साम-विधान, (८) आपर्वेय, (९) दैवत, (१०) छान्दोग्य (उपनिषद्) ब्राह्मण, (११) संहितोपनिषद्, (१२) वंश-ब्राह्मण, (१३) जैमिनीय (तलवकार) ब्राह्मण, अथर्ववेदीय—(१४) गोपथ-ब्राह्मण ।

श्री डा० बटकृष्ण घोष ने १६ अनुपलब्ध ब्राह्मणों के उपलब्ध उद्धरण एकत्र किए हैं ।^१ उनके नाम हैं :—शाटघायन, भाल्लवि, जैमिनीय (या तलवकार), आह्वारक, कंकति, कालबन्नि, चरक, छागलेय, जाबालि, पैंगायनि, माषशरावि, मैत्रायणीय, रीरुकि, शैलालि, ज्वेताश्वतर और हारिद्रविक । श्री पं० भगवद्दत्त ने इनके अतिरिक्त आठ अन्य ब्राह्मणों के नाम दिए हैं ।^२ इनके नाम हैं—काठक, खाण्डिकेय, औरवेय, गालव, तुम्बरु, आरुणेय, सौलभ और पराशर ।

ब्राह्मण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

(१) ऐतरेय ब्राह्मण—इसमें ४० अध्याय हैं, जो पांच-पांच अध्यायों की ८ पंचिकाओं में विभक्त हैं । इसमें मुख्य रूप से सोमयाग का वर्णन है । इसमें सोमयाग से संबद्ध अग्निष्टोम, गवामयन, द्वादशाह, अग्निहोत्रादि का वर्णन है । बाद में राज्याभिषेक और कुलपुरोहित के अधिकार का वर्णन है । अन्तिम १० अध्यायों में उपाख्यान और इतिहास है । इसकी सप्तम पंचिका के ३ अध्यायों (३१ से ३३ अध्याय) में प्रसिद्ध शुनःशेष का आख्यान है, जो 'चरैवेति, चरैवेति' गाथाओं के कारण विशेष विख्यात है । यह ऋग्वेद का सबसे प्रसिद्ध ब्राह्मण है । इसके रचयिता महिदास ऐतरेय माने जाते हैं ।

(२) शांखायन ब्राह्मण—इसको कौषीतकि ब्राह्मण भी कहते हैं । इसमें ३० अध्याय हैं । इसमें अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास और चातुर्मास्य इष्टियों का वर्णन है । इसमें भी सोमयाग प्रधान विषय है ।

(३) शतपथ ब्राह्मण—शुक्ल यजुर्वेद का यह एकमात्र ब्राह्मण है । इसके दो पाठ प्राप्त होते हैं—(क) माध्यन्दिन-शाखीय । इसमें १४ कांड और १००

१. देखो—श्री घोष का ग्रन्थ—Collection of Fragments of Lost Brahmanas, कलकत्ता, १९३५ ।

२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २, पृष्ठ २६-३४ ।

अध्याय हैं। १०० अध्यायों के कारण ही इसका नाम शतपथ पड़ा। (ख) कण्व-शाखीय। इसमें १७ कांड और १०४ अध्याय हैं। शतपथ-ब्राह्मण के रचयिता याज्ञवल्क्य ऋषि माने जाते हैं। इसके प्रारम्भिक ६ कांडों में शुक्ल यजुर्वेद के १८ अध्यायों की व्याख्या है। इसमें दर्श-पौर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय, राजसूय, अग्निरहस्य, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमें पुरुषवा-उर्वशी, दुष्यन्तपुत्र भरत, मत्स्य, जल-प्लावन तथा मनु की कथाएँ हैं। इसमें सर्वप्रथम सांख्य के आचार्य आसुरि तथा पाण्डव राजा जनमेजय का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में प्राप्त पारिभाषिक शब्द अर्हत्, श्रमण और प्रतिबुद्ध का सर्वप्रथम प्रयोग इसी ग्रन्थ में है। इसकी शैली सरस, सरल, प्रसाद गुण-युक्त और प्रभावशाली है।

(४) तैत्तिरीय ब्राह्मण—यह कृष्ण-यजुर्वेदीय शाखा का एकमात्र ब्राह्मण है। इसमें ३ कांड हैं। इसमें कांड १ में अग्न्याधान, वाजपेय, सोम, राजसूय आदि, कांड २ में सौत्रामणि, बृहस्पतिसव और वैश्यसव आदि तथा कांड ३ में नक्षत्रेष्टि का मुख्य रूप से वर्णन है। कृष्ण यजुर्वेद की अन्य शाखाओं के ब्राह्मण अप्राप्त हैं।

(५) सामवेदीय ब्राह्मण—सामवेद के ११ ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनमें ताण्ड्य शाखा का पंचविंश ब्राह्मण मुख्य है। इसको ही प्रौढ, ताण्ड्य और महाब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें २५ अध्याय हैं। इसका मुख्य विषय सोमयाग है। षड्विंश ब्राह्मण में ५ प्रपाठक हैं। यह वस्तुतः पंचविंश ब्राह्मण का ही परिशिष्ट है। इसके अन्तिम प्रपाठक को अद्भुत ब्राह्मण कहते हैं। इसमें उत्पातों की शान्ति का विधान है। छान्दोग्य ब्राह्मण को मन्त्र-ब्राह्मण भी कहते हैं। इसमें दो ग्रन्थ सम्मिलित हैं—१. छान्दोग्य ब्राह्मण—इसमें २ प्रपाठक हैं। प्रत्येक में ८ खंड हैं। २. छान्दोग्य उपनिषद्—इसमें आठ प्रपाठक हैं। यह प्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् है। सामविधान ब्राह्मण में ३ प्रकरण हैं। जिनमें कृच्छ्र अति-कृच्छ्र आदि व्रतों, पुत्र, ऐश्वर्य एवं आयुष्य की प्राप्ति के लिए विविध अनुष्ठानों का वर्णन है। आर्येय ब्राह्मण में ३ प्रपाठक हैं। यह सामवेद की आर्षानुक्रमणी का काम करता है। दैवत ब्राह्मण या देवताध्याय ब्राह्मण में ३ खंड हैं। इसमें देवताओं और छन्दों का वर्णन है। इसमें दिए गए छन्दों के निर्वचन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में सामगान की पद्धति का विवेचन है। वंश ब्राह्मण में सामवेद के गुरुओं की वंश-परम्परा वर्णित है। जैमिनीय या तलवकार ब्राह्मण में

यागानुष्ठानों का महत्त्व वर्णित है। इसका ही एक भाग जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है, जो गायत्र्युपनिषद् भी कहा जाता है।

(६) गोपथ ब्राह्मण—यह अथर्ववेद का एक मात्र ब्राह्मण है। इसके दो भाग हैं—(१) पूर्व भाग या पूर्व गोपथ, (२) उत्तर भाग या उत्तर गोपथ। प्रथम में ५ प्रपाठक या अध्याय हैं, द्वितीय में ६। पूर्व भाग में ये विषय वर्णित हैं—ओंकार और गायत्री का महत्त्व, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, ऋत्विजों के कार्य एवं उनकी दीक्षा, संवत्सर सत्र, पुरुषमेघ, अश्वमेघ, अग्निष्टोम आदि प्रसिद्ध याग। उत्तर भाग में विविध यज्ञों और उनसे संबद्ध आख्यायिकाओं का वर्णन है। इसके रचयिता गोपथ ऋषि माने जाते हैं।

(छ) आरण्यक ग्रन्थ

आरण्यक का अर्थ—सायण ने तैत्तिरीय और ऐतरेय आरण्यकों के भाष्य में आरण्यक का अर्थ किया है—जो अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाए, उसे आरण्यक कहते हैं। इसमें आत्म-विद्या, तत्त्व-चिन्तन एवं रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः गोपथ ब्राह्मण (२-१०) और बौधायन-धर्मसूत्र-भाष्य (२-८-३) में आरण्यकों को 'रहस्य-ग्रन्थ' कहा गया है।

ये ग्रन्थ गृहस्थ-जीवन से निवृत्त वानप्रस्थों के लिए थे। जो वन में रहकर मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, जप, तप एवं धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते थे। ऐसे विषयों के लिए नगरों का वातावरण अनुपयुक्त था।

प्रतिपाद्य विषय—आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्व रूप हैं। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्ट्युत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना एवं तत्त्व-ज्ञान का प्रतिपादन है। उसी तत्त्व-चिन्तन का प्रारम्भ हम आरण्यकों में पाते हैं। आरण्यकों में वैदिक यागों का आध्यात्मिक एवं तात्त्विक स्वरूप बताया गया है। 'विष्णुर्वै यज्ञः' (शांखायन ब्रा०) के द्वारा यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। यज्ञ की व्याख्या ब्रह्म की व्याख्या है। अतएव 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' कहा गया है।

१. अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।

अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते ॥

(तैत्ति० आ० भा० श्लोक ६)

अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते। (ऐत० आ०)

यज्ञ को सृष्टि का नियन्ता माना है। आरण्यकों में यज्ञ का दार्शनिक रूप, आत्म-विवेचन, तत्त्वमीमांसा, ज्ञान कर्म और उपासना का समन्वय, वर्णाश्रम-धर्म, निष्काम कर्मयोग तथा प्राण-विद्या आदि का वर्णन है।

आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय

(१) ऋग्वेदीय आरण्यक—ऋग्वेद के दो आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—

(१) ऐतरेयारण्यक, (२) शांखायन (या कौषीतकि) आरण्यक। (१) ऐतरेयारण्यक—इसमें १८ अध्याय हैं, जो पाँच भागों में विभक्त हैं। इन भागों को आरण्यक कहते हैं। इसमें उक्थ (निष्कैवल्य शास्त्र) महाव्रत, प्राण-विद्या और पुरुष का विवेचन है। (२) शांखायन आरण्यक—इसमें १५ अध्याय हैं। इसके ३ से ६ अध्यायों को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। इसमें महाव्रतों आदि का वर्णन है। इसमें काशी, विदेह, कुरु-पांचाल आदि का उल्लेख है।

(२) शुक्ल-यजुर्वेदीय आरण्यक—शुक्ल यजुर्वेद का वस्तुतः कोई आरण्यक नहीं है। शतपथ-ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के अन्तिम ६ अध्यायों को बृहदारण्यक-उपनिषद् कहते हैं। इसमें बीच-बीच में यज्ञों के रहस्य का वर्णन है, अतः इसे आरण्यक कहा जाता है। परन्तु इसमें उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय अधिक है, अतः इसे नाम से आरण्यक होने पर भी उपनिषद् ही गिना जाता है।

(३) कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक—कृष्ण यजुर्वेद के दो आरण्यक मिलते हैं—१. तैत्तिरीय आरण्यक, २. मैत्रायणीय आरण्यक। (१) तैत्तिरीय आरण्यक—यह कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें १० परिच्छेद या प्रपाठक हैं। इसमें अग्नि की उपासना, इष्टका-चयन, स्वाध्याय, पंच महायज्ञ, अभिचार मंत्र तथा पितृमेघ आदि का वर्णन है। इसमें कुरुक्षेत्र, खाण्डव, पांचाल आदि भौगोलिक नामों का भी उल्लेख है। इसमें ही सर्वप्रथम 'यज्ञोपवीत' का निर्देश है। प्रसूतो ह वै यज्ञोपवीतितो यज्ञः (२-१-१)। इसके दशम प्रपाठक को नारायणीय उपनिषद् कहते हैं। (२) मैत्रायणीय आरण्यक—इसको मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें ७ प्रपाठक हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद् अंश मिश्रित हैं।

(४) सामवेदीय आरण्यक—सामवेद के २ आरण्यक प्राप्त होते हैं—

(१) तलवकार (तवलकार) आरण्यक—इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण

भी कहते हैं। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् मिले हुए हैं। इसमें अनेक साम-मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या है। इसमें ४ अध्याय हैं। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक को 'केन उपनिषद्' कहते हैं। (२) छान्दोग्य आरण्यक—इसको सत्यव्रत सामश्रमी ने सामवेद-आरण्यक-संहिता नाम से छपवाया था।

(५) अथर्ववेदीय आरण्यक—अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

(ज) उपनिषद्

(क) उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय

उपनिषद् का अर्थ—उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् घातु से क्विप् (०) प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द बनता है। उप—समीप, नि—निश्चय से या निष्ठा पूर्वक, सद्—बैठना। अतः इसका अर्थ होता है—तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय बैठना। इस तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन के कारण इन ग्रन्थों को भी उपनिषद् कहा जाने लगा। उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या भी है। सद् घातु (षद् लृ विशरण-गत्यवसादनेषु) के तीन अर्थ हैं—१. विशरण—नाश होना, जिससे संसार की बीज-भूत अविद्या का नाश होता है। २. गति—पाना या जानना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है। ३. अवसादन—शिथिल होना, जिससे मनुष्य के दुःख शिथिल होते हैं। अतः शंकराचार्य ने अविद्या-नाश, दुःख-निरोध और ब्रह्म-प्राप्ति, इन तीनों अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है।^१

११ मुख्य उपनिषदें—उपनिषदों की संख्या १०८ से लेकर २०० तक मानी जाती है। इनमें ११ उपनिषदें प्रमुख मानी जाती हैं। उनके नाम हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। इन प्रामाणिक उपनिषदों पर ही शंकराचार्य ने अपना भाष्य लिखा है। श्री ह्यूम ने जिन प्रमुख १३ उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, उनमें इन ११ के अतिरिक्त कौषीतकि और मैत्री या मैत्रायणीय उपनिषदें हैं।^२ मुक्तिक उपनिषद् में श्वेताश्वतर को छोड़कर शेष १० को ही प्रमुख उपनिषदें माना है।

१. कठ उपनिषद्—शांकरभाष्य की प्रस्तावना।

२. The Thirteen Principal Upanisads by Robert Ernest Hume.

अतः कहा है—दशोपनिषदं पठ (मुक्तिक १-२७) । १० उपनिषदों का नाम इस प्रकार दिया है :—

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः ।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥

(मुक्तिक उप० १-३०)

उपनिषदों का वेदों के अनुसार वर्गीकरण—प्रत्येक उपनिषद् का किसी न किसी वेद से सम्बन्ध माना जाता है । यह आवश्यक नहीं है कि उस उपनिषद् में उस वेद से संबद्ध विषयों का ही वर्णन हो । प्रत्येक वेद से संबद्ध उपनिषदों की संख्या, उनके नाम एवं उनके शान्ति-पाठ का विस्तृत वर्णन मुक्तिक उपनिषद्^१ में प्राप्त होता है । इनकी संख्या १०८ है । संक्षेप में प्रत्येक वेद से संबद्ध उपनिषदें इस प्रकार हैं—(१) ऋग्वेदीय—ऐतरेय, कौषीतकि आदि १० उपनिषदें, (२) शुक्ल यजुर्वेदीय—ईश, बृहदारण्यक आदि १६, (३) कृष्ण यजुर्वेदीय—कठ, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, कैवल्य आदि ३२, (४) सामवेदीय—केन, छान्दोग्य, मैत्रायणि आदि १६, (५) अथर्ववेदीय—प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, महानारायण आदि ३१ उपनिषदें ।

उपनिषदों का विषयानुसार वर्गीकरण—१०८ उपनिषदों को विषयानुसार ६ भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) वेदान्त के सिद्धान्तों पर निर्भर—२४, (२) योग के सिद्धान्तों पर निर्भर—२०, (३) सांख्य के सिद्धान्तों पर निर्भर—१७, (४) वैष्णव-सिद्धान्तों पर निर्भर—१४, (५) शैव-सिद्धान्तों पर निर्भर—१५, (६) शाक्त तथा अन्य सिद्धान्तों पर निर्भर—१८ ।^२ विभिन्न विषयों पर इतनी संख्या में छोटी-बड़ी उपनिषदों के होने का यह कारण है कि सभी धर्मों और मतों के अनुयायियों का यह प्रयत्न रहा है कि उनके मन्तव्य का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई न कोई उपनिषद् हो ।

उपनिषदों में दार्शनिक विवेचन

वेदों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा, मनन, चिन्तन और स्वानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई थी, उसी का सुव्यवस्थित एवं परिपक्व रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है । उपनिषदों का दर्शन विविध विरोधी

१. देखो—अष्टाविंशत्युपनिषदः, निर्णय सागर प्रेस, १९३०, पृष्ठ ३६३-३६४ ।

२. वरदाचार्य—संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी) पृष्ठ ४२ ।

गुणों का समन्वय है—एक ओर ज्ञानमार्ग की उपादेयता वर्णित है तो दूसरी ओर कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग की; एक ओर प्रवृत्तिमार्ग की प्रधानता है तो दूसरी ओर निवृत्ति-मार्ग की; एक ओर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' वर्णित है तो दूसरी ओर द्वैत और त्रैत सिद्धान्तों का वर्णन है। उपनिषदों की प्रमुख विशेषता यह है कि यह सर्वत्र विवादास्पद स्थलों पर समन्वय प्रस्तुत करता है। जैसे—विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति, श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति, एकत्व और अनेकत्व, अद्वैत और द्वैत, सिद्धान्तों में समन्वय की स्थापना करता है। यहाँ पर उपनिषदों में प्रतिपादित दार्शनिक विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है :—

(१) उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है :—वह न स्थूल है न सूक्ष्म, न लघु है न गुरु; उसमें न रस है, न गन्ध; उसके न आँख है न कान। वह नित्य है। उसमें आकाश ओत-प्रोत है।

अस्थूलमनण्वहस्वमदीर्घम् अरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रम्

अस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च । (बृहदा० ३-८-८ से ११)

(२) ब्रह्म चक्षु, वाणी, मन आदि की गति से परे है। उसी की सत्ता से चक्षु, वाणी, मन, प्राण आदि अपने कार्य करते हैं। (केन० १-३ से ८)

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते ॥ (केन० १-५)

(३) ब्रह्म सर्वव्यापी है, कर्मों का नियन्ता है, साक्षी है, चेतन है, अद्वितीय और निर्गुण है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्वतर० ६-११)

(४) अद्वितीय ब्रह्म के ईक्षण से ही सृष्टि की रचना होती है।

सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयम् । तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत०

(छान्दोग्य० ६-२-२-३)

(५) केनोपनिषद् में ब्रह्म-साक्षात्कार को जीवन का लक्ष्य माना गया है। उसके बिना जीवन निःसार है।

सं० सा० सं० ३०—६

इह चेदवेदीय सत्यमस्ति, न चेद्विहावेदीन्महती विनष्टिः ।

(केन० २-५)

(६) वेदान्त दर्शन में जिस प्रकार अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन किया जाता है, उसका बीज रूप में विशिष्ट वर्णन माण्डूक्य उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसमें ब्रह्म की चार अवस्थाएँ, पञ्चकोश, कारण शरीरादि के समष्टि और व्यष्टि रूप और तुरीय शिव अवस्था का प्रतिपादन है।

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।

(माण्डूक्य० ७)

(७) वेदान्त में प्रसिद्ध 'माया' का सर्वप्रथम वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद् में मिलता है। इसमें प्रकृति को 'माया' और पुरुष (महेश्वर) को 'मायिन्' (माया का स्वामी) कहा गया है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । (श्वेता० ४-१०)

(८) श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही त्रैतवाद अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता का प्रतिपादन मिलता है। साथ ही इन तीनों के गुणों का भी वर्णन है। एक—अभोक्ता एवं साक्षी है, दूसरा—कर्मफल-भोक्ता है, तीसरा—अचेतन है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

(श्वेता० ४-६)

(९) श्वेताश्वतर में ही प्रकृति के तीन गुणों एवं उनके लोहित, शुक्ल एवं कृष्ण रूपों का वर्णन है। सांख्य और योग में वर्णित प्रकृति के तीन गुणों का यह बीजरूप में निर्देश है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।

(श्वेता० ४-५)

(१०) वेदान्त में प्रतिपादित 'तत्त्वमसि' महावाक्य का मूल छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है। उद्दालक मुनि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को 'तत्त्वमसि' का विस्तृत उपदेश दिया है।

स य एषोऽणिमंतदात्म्यमिवं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ।

(छान्दोग्य० ६-६-१२-३)

(११) श्वेताश्वतर उपनिषद् में एकेश्वरवाद का भी प्रतिपादन है। वह ईश्वर एक है तथा अपनी शक्तियों से नाना रूपों को धारण करता है। वही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, जल आदि विभिन्न रूपों में है।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णानेकान्निहितायो बधाति ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥

(श्वेता० ५-१ और २)

(१२) छान्दोग्य, बृहदारण्यक और कठ उपनिषदों में पुनर्जन्म का वर्णन मिलता है। कुछ को शुभ कर्मों के आधार पर अमरत्व की प्राप्ति होती है और शेष पुनर्जन्म को प्राप्त करते हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता यम के द्वार से लौट कर पुनर्जन्म प्राप्त करता है। मुण्डक (१-२-१०) में भी पुनर्जन्म का वर्णन है।

कीणे च पुण्ये ततः पुनरावर्तन्ते । ये खलु पृथिव्यां नानायोगिणो जनुः प्रपद्यान्ते
मनुष्यजातौ जायन्ते । (बृहदा० ६-२-१५, १६)

ये तु तत्त्वज्ञानशून्या अयज्ञाश्च भवन्ति ते पुनः पुनर्मृत्योर्विंशमापद्यन्ते ।

(छान्दोग्य०)

(१३) गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का आधार ईश उपनिषद् में प्राप्त होता है कि निष्काम कर्म करने वाला व्यक्ति कर्म के बन्धन में नहीं फँसता है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतु समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे ॥ (ईश० २)

(१४) विश्वबन्धुत्व और समदर्शिता की भावना सर्वप्रथम ईश उपनिषद् में मिलती है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ (ईश० ६)

(१५) विद्या और अविद्या अर्थात् ज्ञान-मार्ग एवं कर्म-मार्ग के समन्वय का सुन्दर उपदेश ईश उपनिषद् में प्राप्त होता है। अविद्या से मृत्यु (दुःख, दारिद्र्य) को पार कर विद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार श्रेय और प्रेय का समन्वय कठ में है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह ।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

(ईश० ११)

(१६) उपनिषदों में, कर्मकांड को ब्रह्मविद्या की अपेक्षा बहुत हीन माना गया है। यज्ञ एवं कर्मकांड को मुण्डक उपनिषद् में निकृष्ट साधन एवं पुनर्जन्म का कारण बताया है।

प्लवा ह्येते अद्भुता यज्ञरूपा....

जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥

(मुण्डक १-२-७)

लुडविग स्टाइन (Ludwig Stein) ने जिस एकत्ववाद को विश्व की समस्याओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है, वह दार्शनिक विचार, विन्टरनिट्स के अनुसार, भारतीय उपनिषदों में ३ हजार वर्ष पहले ही प्रतिपादित हो चुका था ।^१

विन्टरनिट्स ने उपनिषदों के महत्त्व के विषय में जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर (Schopenhauer) के उद्गार विस्तृत रूप में उद्धृत किए हैं। जिसमें उसने कहा है कि— उपनिषद् मेरे जीवन में शान्ति के साधन रहे हैं और मृत्यु में भी शान्ति के साधन रहेंगे ।^२

'It has been the solace of my life and will be the solace of my death.'

(भ) वेदाङ्ग

अर्थ—वेदाङ्ग का अर्थ है—वेदस्य अङ्गानि, वेद के अंग। अंग का अर्थ है—अङ्गम्यन्ते ज्ञायन्ते एमिरिति अङ्गानि, अर्थात् वे उपकारक तत्त्व जिनसे वस्तु के स्वरूप का बोध होता है। वेदों के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनों की उपयोगिता थी, उन्हें वेदाङ्ग कहते थे। वेदाङ्गों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं यज्ञादि में उनके विनियोग का बोध होता था। प्रारम्भ में वेदाङ्ग स्वतन्त्र विषय न होकर वेदाध्ययन के विशिष्ट उपयोगी प्रकार थे। बाद में ये स्वतन्त्र विषयों के रूप में विकसित हुए। सर्वप्रथम वेदाङ्ग के भेदों का उल्लेख मुण्डक उपनिषद् में अपरा विद्या के अन्तर्गत ४ वेदों के नामोल्लेख के बाद हुआ है :—

१. Winternitz—H. I. L. पृष्ठ २६७ ।

२. वही, पृष्ठ २६६-२६७ ।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं
छन्दो ज्योतिषमिति ॥ (मुण्डक उप० १-१-५)

संख्या—वेदांग ६ माने जाते हैं। १. शिक्षा, २. व्याकरण, ३. छन्द,
४. निरुक्त, ५. ज्योतिष, ६. कल्प।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।

कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ॥

ये वेदांग सामान्यतया सूत्र-शैली में लिखे गए हैं। वैदिक कर्मकांड, विनियोग
एवं यज्ञ-विधि आदि के नियम बहुत विस्तृत और व्यापक थे, अतः संक्षेप में
स्मरणार्थ सूत्र-शैली को अपनाया गया है।

पाणिनीय शिक्षा में वेद-पुरुष के ६ अंगों के रूप में ६ वेदांगों का वर्णन है :—
छन्द वेदपुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा
नासिका है और व्याकरण मुख है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात् साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥

(पा० शिक्षा, श्लोक ४१, ४२)

(१) शिक्षा

शिक्षा का अर्थ है—वर्णोच्चारण की शिक्षा देना। सायण ने ऋग्वेदमाध्य-
भूमिका में शिक्षा का अर्थ दिया है :—जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की
शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं।

स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा ।

(सायण, ऋग्वेदमाध्य० पृष्ठ ४६)

अतएव शिक्षा का उद्देश्य है—वर्णोच्चारण की शिक्षा देना, किस वर्ण का
किस स्थान से उच्चारण किया जाता है, उसमें क्या प्रयत्न करना पड़ता है, वर्ण
कितने हैं, उनका किस रूप में विभाजन होता है, कितने स्थान और प्रयत्न हैं,

शरीर-वायु किस प्रकार वर्ण-रूप में परिवर्तित होती है, कितने स्वर हैं, किस स्वर का किस प्रकार उच्चारण किया जाता है, इत्यादि ।^१

शिक्षा-ग्रन्थों का वैदिक संहिताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनमें शुद्ध उच्चारण और स्वर-संचार के नियम दिए हैं । इस विषय का विशेष वर्णन प्रातिशाख्य ग्रन्थों में है । वेदों की प्रत्येक शाखा से संबद्ध होने के कारण इन्हें 'प्रातिशाख्य' कहते हैं । मुख्य प्रातिशाख्य ये हैं—ऋग्वेद की शाकल शाखा का शौनकरचित ऋक्-प्रातिशाख्य, शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का कात्यायन-रचित 'शुक्लयजुः-प्रातिशाख्य', कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का 'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य' । सामवेद के तीन प्रातिशाख्य हैं—सामप्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र और पञ्चविध-सूत्र । अथर्ववेद का 'अथर्व-प्रातिशाख्य' है, जिसे चातुरध्यायिका भी कहते हैं ।

इनके अतिरिक्त छोटे आकार के कुछ शिक्षा-ग्रन्थ भी हैं । जिनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—ऋग्वेद आदि की पाणिनीय-शिक्षा, शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य-शिक्षा, कृष्ण यजुर्वेद की व्यास-शिक्षा, सामवेद की नारद-शिक्षा और अथर्ववेद की माण्डूकी-शिक्षा । इनके अतिरिक्त भारद्वाज-शिक्षा, वसिष्ठ-शिक्षा, पाराशर-शिक्षा आदि ग्रन्थ भी हैं । उपलब्ध शिक्षा-ग्रन्थों की संख्या ३४ है ।^२ इनमें पाणिनीय-शिक्षा और व्यास-शिक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण हैं ।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के ६ अंगों का वर्णन है—वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संतान ।

वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, संतानः, इत्युक्तः शोकाध्यायः ।

(तै० उ० १-२)

संक्षेप में इनका विवरण निम्नलिखित है :—

(१) वर्ण—संस्कृत वर्णमाला में ६३ वर्ण (संवृत अ को विवृत अ से पृथक् मानने पर ६४ वर्ण) हैं । (त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः, पा० शिक्षा ३) । वर्णमाला का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है ।

१. विस्तृत विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत 'वेद और शिक्षा-ग्रन्थ' लेख ।

आर्यमित्र का 'वेदांग-प्रकाश' अंक, १९६८, पृष्ठ १-८ ।

२. शिक्षा-ग्रन्थों की सूची के लिए देखो—आर्यमित्र, वही, सम्पादकीय, पृष्ठ ज-झ ।

(२) स्वर—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित, ये तीन स्वर हैं। वेदों में स्वर-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है।

(३) मात्रा—स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। ये तीन हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व की १ मात्रा, दीर्घ की २ मात्रा और प्लुत की ३ मात्रा होती हैं।

(४) बल—वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न तथा उनके उच्चारण-स्थान को बल कहते हैं। प्रयत्न २ हैं—आम्यन्तर और बाह्य। स्थान ८ हैं—कण्ठ, तालु आदि।

(५) साम—समविधि से अर्थात् स्पष्ट एवं सुस्वर से वर्णोच्चारण। वर्णों का स्पष्ट उच्चारण हो, किसी वर्ण को दबाकर न बोलें, बहुत शीघ्रता से न बोलें, स्वर एवं अर्थ-ज्ञान के सहित प्रत्येक वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें।

(६) संतान—संहितापाठ अर्थात् पदपाठ में प्रयुक्त शब्दों में सन्धि-नियमों का लगाना। सन्धि-नियमों का ज्ञान और उनका यथास्थान प्रयोग करना।

(२) व्याकरण

‘मुखं व्याकरणं स्मृतम्’ व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है। मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है, तद्वत् व्याकरण भी पद-पदार्थ, एवं वाक्य-वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति-प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। अतएव व्याकरण का अर्थ है—व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्, जिसके द्वारा प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है। यजुर्वेद में व्याकरण के सूक्ष्म रूप का वर्णन है कि प्रजापति ने रूपों में सत्य और अनृत (स्फोट और ध्वनि) का व्याकरण (विश्लेषण) किया। उसने असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा की प्रतिष्ठा की।

वृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।

अश्रद्धामनृतेऽधच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥

(यजु० १६-७७)

कात्यायन और पतंजलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताए हैं—१. रक्षा

१. विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत ‘संस्कृत व्याकरण’ १९६७, पृष्ठ ५-७।

२. पाणिनीय शिक्षा ३१-३३।

(वेदों की रक्षा), २. ऊह (यथास्थान विभक्तियों आदि का परिवर्तन), ३. आगम (निष्काम-भाव से वेदादि का अध्ययन), ४. लघु (संक्षेप में शब्द-ज्ञान), ५. असन्देह (सन्देह-निराकरण) ।

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् ।

(महामाष्य आ० १)

व्याकरण का प्राचीन रूप निर्वचन आदि के रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है । गोपथ ब्राह्मण (पूर्व० १-२४) में धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिंग, विभक्ति, वचन, प्रत्यय, स्वर आदि के विषय में प्रश्न पूछा गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद प्रातिशाख्य ग्रन्थ व्याकरण के प्रारम्भिक और व्यवस्थित रूप हैं । इनका उल्लेख पहले किया गया है । यास्क ने निरुक्त में शब्द की नित्यता, प्रातिपदिकों का व्युत्पन्न होना, आदि व्याकरण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । व्याकरण का पूर्ण और व्यवस्थित रूप पाणिनि के समय से ही निर्धारित हुआ है ।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में आपिशलि, काश्यप आदि १० वैयाकरणों का उल्लेख किया है । प्राचीन ग्रन्थों में महेश्वर, व्याडि आदि १५ वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है । ऋक्-प्रातिशाख्य, वाजसनेय०, साम० और अथर्व० आदि १० प्रातिशाख्य ग्रन्थ प्राप्य हैं । इनके अतिरिक्त ७ अन्य वैदिक-व्याकरण ऋक्तंत्र, सामतन्त्र आदि मिलते हैं । इन ग्रन्थों में प्राचीन ५६ आचार्यों के नाम भी उद्धृत हैं ।^१

मैकडानल ने भारतीय व्याकरण की पूर्णता और सर्वोत्कृष्टता की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—भारतीय वैयाकरणों ने जिस परिपूर्ण और अति विशुद्ध व्याकरण-पद्धति को जन्म दिया है, उसकी तुलना विश्व के किसी देश में प्राप्य नहीं है ।^२

(३) छन्द

वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दस् (छन्द) का ठीक ज्ञान अनिवार्य है । इसके लिए छन्दो-विषयक ग्रन्थों की रचना हुई । इस विषय का अत्यल्प साहित्य उपलब्ध है ।

यास्क ने निरुक्त (७-१६) में छन्दस् का निर्वचन छद् (ढकना) धातु से

१. विस्तृत-विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत संस्कृत-व्याकरण की भूमिका, पृष्ठ १४-२३ ।

२. A. A. Macdonell—India's Past पृष्ठ १३६ ।

दिया है—छन्दांसि छादनात् अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके समष्टि-रूप प्रदान करते हैं। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में छन्द का लक्षण दिया है—यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः, अर्थात् संख्या-विशेष में वर्णों की सत्ता छन्द है। प्रत्येक छन्द में वर्णों की संख्या निर्धारित रहती है। 'वैदिक छन्द' उपशीर्षक में इसका वर्णन किया जा चुका है।

प्राचीन छन्दो-विषयक सामग्री निम्नलिखित ग्रन्थों में प्राप्त होती है—
(१) शांखायन श्रौत-सूत्र (केवल ७-२७ में), (२) ऋग्वेद-प्रातिशाख्य (पटल १६ से १८ में), (३) सामवेद का निदान सूत्र, (४) पिंगल-प्रणीत छन्द-सूत्र, (५) कात्यायन-कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ।

वैदिक छन्द वृत्तात्मक (वर्णवृत्त) हैं। इनमें प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या निर्धारित होती है। ऋक्-प्रातिशाख्य के तीन पटलों में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का विस्तृत वर्णन है। निदान-सूत्र में वैदिक छन्दों के नाम और लक्षण दिए हैं। इसमें छन्दों के अतिरिक्त सामवेद के अंग—उक्थ, स्तोम, गान—का भी विवेचन है। कुछ प्राचीन लेखक इसे पतञ्जलि की रचना मानते हैं।^१ इसमें १० अध्याय हैं। अन्त में प्रयुक्त छन्दों की अनुक्रमणी दी गई है। पिंगल के छन्दःसूत्र के पूर्व भाग में वैदिक छन्दों का विवेचन है। उत्तर भाग में लौकिक छन्दों का विश्लेषण है। यद्यपि यह स्वयं को वेदांग कहता है, परन्तु रचना की दृष्टि से परवर्ती ज्ञात होता है, क्योंकि इसमें लौकिक छन्दों का विशेष विवेचन है। यह वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छन्दों का अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। कात्यायन-कृत छन्दोऽनुक्रमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की नामावलि है तथा उसी की सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में ६ अध्यायों में वैदिक छन्दों पर संक्षिप्त निबन्ध है।

(४) निरुक्त

इसमें वैदिक शब्दों के निर्वचन की पद्धति दी गई है। संप्रति यास्क (८०० ई० पू० के लगभग) कृत निरुक्त ही इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। यह 'निघण्टु' नामक वैदिक-शब्द-कोष पर आश्रित है तथा उसी का व्याख्या-ग्रन्थ है। इसमें वैदिक मन्त्रों की निर्वचनात्मक व्याख्या का सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास है। इस वेदार्थ-पद्धति को निरुक्त-पद्धति कहा जाता है। यास्क ने वैदिक देवता-वाचक शब्द अग्नि, इन्द्र, वरुण, सविता आदि को निर्वचनात्मक मानकर इनसे

संबद्ध मन्त्रों के चार प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किए हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक और अधियज्ञ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यास्क की प्रक्रिया को प्रामाणिक माना है और तदनुसार ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य किया है।

यास्क ने अपने पूर्ववर्ती १७ निरुक्तकारों (औदुम्बरायण, गार्ग्य, शाकपूणि आदि) का निरुक्त में उल्लेख किया है। निरुक्त के प्राचीन टीकाकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—दुर्गाचार्य, स्कन्दस्वामिन्, महेश्वर। निरुक्त का आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करने का श्रेय डा० लक्ष्मणसरूप को है। इन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया है। निघण्टु में ५ अध्याय हैं। (१) प्रथम तीन अध्यायों में पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे—पृथ्वी-वाचक—२१ शब्द, मेघ-वाचक—३० शब्द, वाणीवाचक—५७ शब्द, जलवाचक—१०० शब्द। निरुक्त के प्रथम तीन अध्यायों में इन पर्याय-शब्दों की व्याख्या है, अतः इन तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। (२) निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में कठिन और अस्पष्ट वैदिक शब्द दिए हैं। इन शब्दों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण निरुक्त के ४ से ६ अध्यायों में है। इसे नैगमकाण्ड या ऐकपदिक कहते हैं। (३) निघण्टु के पंचम अध्याय में देवता-वाचक शब्द हैं। इनकी व्याख्या निरुक्त के ७ से १२ अध्याय में है। इसे दैवत-काण्ड कहते हैं। इसमें पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के देवों के विषय में विवेचन है। इसका १ परिशिष्ट भी १३ वें अध्याय के नाम से उपलब्ध है। इसमें अक्षर, सोम, जातवेदस् आदि का वर्णन है।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय ५ हैं—वर्णागम, वर्ण-विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और घातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरो वर्णविकारनाशौ।

घातोस्तदर्थतिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

शब्द-व्युत्पत्ति, शब्द-निर्वचन-शास्त्र (Etymology), भाषा-विज्ञान (Philology) और अर्थ-विज्ञान (Semantics) का यह सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है।

(५) ज्योतिष

वैदिक यज्ञों के शुभ मुहूर्त-निर्धारण के लिए 'ज्योतिष' नामक वेदांग की आवश्यकता हुई। वेदांग-ज्योतिष में इसका महत्त्व बताया गया है कि यह शास्त्र यज्ञों का काल-विधान बताता है।

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानि पूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।

तस्माद्विदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ॥

(वेदांग-ज्योतिष श्लोक ३)

‘वेदांग-ज्योतिष’ नामक एक ज्योतिष का प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होता है । इसका दो वेदों से सम्बन्ध है—(१) यजुर्वेद से, याजुष ज्योतिष, इसमें ४३ श्लोक हैं । (२) ऋग्वेद से, आर्च ज्योतिष, इसमें ३६ श्लोक हैं । इसका कर्ता आचार्य लगघ माना जाता है । (कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगघस्य महात्मनः, आर्च ज्योतिष, श्लोक २) । डा० थीबो, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक तथा सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने इसके श्लोकों की यथा-समय व्याख्या की है । ज्योतिष के सिद्धान्त-ग्रन्थों में गणना १२ राशियों से की जाती है, किन्तु इस ज्योतिष में राशियों का कहीं नाम-निर्देश नहीं है, अपितु २७ नक्षत्र ही गणना के आधार हैं । शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने वेदांग-ज्योतिष का समय १,४०० ई० पू० माना है ।

वैदिक-ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, ग्रह तथा नक्षत्रों की गति का निरीक्षण, परीक्षण एवं विवेचन होता था । सौर और चान्द्र मासों की गणना होती थी । यज्ञिय कार्यों के लिए चान्द्रमास ही मुख्य माना जाता था ।

(६) कल्प

वेदांगों में कल्पसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । कल्प का अर्थ है—यज्ञिय विधियों का समर्थन और प्रतिपादन । ‘कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र, इति व्युत्पत्तेः’ । कल्प की दूसरी व्याख्या है—जिसमें वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होता है । ‘कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना-शास्त्रम्’ ।^१

कल्पसूत्रों के ४ भेद—कल्पसूत्र ४ भागों में विभक्त हैं—(क) श्रौतसूत्र, (ख) गृह्य-सूत्र, (ग) धर्म-सूत्र (घ) शुल्ब-सूत्र ।

(क) श्रौतसूत्र—श्रौतसूत्रों में महत्त्वपूर्ण वैदिक यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन

१. सायण—ऋग्वेदभाष्य-भूमिका ।

२. विष्णुमित्र-कृत ऋक्-प्रातिशाख्य की वृत्ति, पृष्ठ १३ ।

है। इन यज्ञों में प्रमुख ये हैं—दर्श, पौर्णमास, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अश्वमेध आदि। इनके अतिरिक्त दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों की इष्टियों का वर्णन है। प्रमुख श्रौत सूत्र ये हैं :—(१) ऋग्वेदीय—आश्वलायन और शांखायन। (२) शुक्ल यजुर्वेदीय—कात्यायन श्रौतसूत्र। (३) कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी या सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, मानव और वाराह श्रौतसूत्र। (४) सामवेदीय—आर्षेय या मशक, लाटघायन, द्राह्यायण और जैमिनीय श्रौतसूत्र। (५) अथर्ववेदीय—वैतान-श्रौतसूत्र।

(ख) गृह्यसूत्र—गृह्यसूत्रों में १६ संस्कारों, ५ महायज्ञों, ७ पाक-यज्ञों, गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, पशुपालन, रोगनाशक विधियों आदि का वर्णन है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गृहस्थ-जीवन से संबद्ध सभी संस्कारों और विधियों का इनमें वर्णन है। प्रमुख गृह्यसूत्र ये हैं :—(१) ऋग्वेदीय—आश्वलायन, शांखायन और कौषीतक गृह्यसूत्र, (२) शुक्ल यजुर्वेदीय—पारस्कर गृह्यसूत्र। (३) कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, मानव और काठक गृह्यसूत्र। (४) सामवेदीय—द्राह्यायण, गोभिल, खादिर और जैमिनीय गृह्यसूत्र। (५) अथर्ववेदीय—कौशिक गृह्यसूत्र।

(ग) धर्मसूत्र—धर्मसूत्रों में नीति, धर्म, रीति, प्रथाओं, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों और सामाजिक नियमों का वर्णन है। प्रमुख धर्मसूत्र ये हैं :—(१) ऋग्वेदीय—वसिष्ठ और विष्णु धर्मसूत्र, (२) शुक्ल यजुर्वेदीय—हारीत और शंख धर्मसूत्र, (३) कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी धर्मसूत्र, (४) सामवेदीय—गौतम धर्मसूत्र।

(घ) शुल्बसूत्र—शुल्ब-सूत्रों में यज्ञवेदी के निर्माण से संबद्ध नाप आदि का तथा वेदी के निर्माण आदि के नियमों का वर्णन है। ये श्रौतसूत्रों से संबद्ध विषय का वर्णन करते हैं। इनमें भारतीय ज्यामिति के विकास का उत्कृष्ट रूप मिलता है। प्रमुख शुल्ब-सूत्र ये हैं—(१) शुक्ल-यजुर्वेदीय—कात्यायन शुल्बसूत्र, (२) कृष्ण यजुर्वेदीय—बौधायन, आपस्तम्ब और मानव शुल्बसूत्र।

मैकडानल ने शुल्ब-सूत्रों का वैज्ञानिक महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है—इन सूत्रों में रेखागणित-सम्बन्धी ज्ञान बहुत आगे बढ़ा हुआ पाया जाता है।

वस्तुतः शुल्ब-सूत्र ही भारत के गणित-शास्त्रीय सर्वप्राचीन ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।'

अनुक्रमणिकाएँ

वेदांगों के अतिरिक्त वेदों से संबद्ध अनुक्रमणिकाएँ भी हैं। इनमें ऋषियों, देवताओं, छन्दों और विषयों की विस्तृत सूचियाँ दी हुई हैं। इनमें शौनक-कृत आर्षानुक्रमणी आदि ७ अनुक्रमणियाँ और उसके शिष्य कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी, जिसमें आर्ष आदि ५ अनुक्रमणियाँ हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं। ये ऋग्वेद से संबद्ध हैं। इसी प्रकार अन्य वेदों की भी अनुक्रमणियाँ हैं।

अध्याय २

पुराण

पुराण का अर्थ—पुराण का वास्तविक अर्थ—प्राचीन या पुराना है। इसमें प्राचीन कथानक, वंशावली, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्वों का समावेश है, अतः इसे पुराण नाम दिया गया। उपर्युक्त भाव को लेकर पुराण शब्द की अनेक निरुक्तियाँ दी गई हैं। जैसे—(१) पुराणम् आख्यानं पुराणम्, प्राचीन आख्यानों को पुराण कहते हैं। (२) यस्मात् पुरा हि अनति इदं पुराणम् (वायु पुराण १-२०३), जो प्राचीन समय में सजीव था। (३) जंगतः प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम् (सायण, ऐ० ब्रा० की भूमिका), संसार की उत्पत्ति और विकास-क्रम के बोधक को पुराण कहते हैं। (४) पुरार्थेषु आनयतीति पुराणम् (पद्म पु०) पूर्वतत्त्व अर्थात् पुरुष और प्रकृति के चिन्तन में संलग्न को पुराण कहते हैं। (५) पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम् (वायु पु० १-२-५३), प्राचीन परम्परा के प्रतिपादक ग्रन्थों को पुराण कहते हैं। (६) विश्वसृष्टेरितिहासः पुराणम्। (मधुसूदन सरस्वती, पुराणोत्पत्ति प्रसंग), विश्व-रचना के इतिहास को पुराण कहते हैं।

पुराण का लक्षण—विष्णुपुराण आदि में प्रतिपाद्य विषयों के आधार पर पुराण का लक्षण किया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराण में ये पाँच बातें होनी चाहिएँ :—(१) सर्ग—सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन, (२) प्रतिसर्ग—प्रलय एवं सृष्टि का पुनः प्रादुर्भाव, (३) वंश—देवों और ऋषियों की वंशावली, (४) मन्वन्तर—प्रत्येक मनु का काल और उस समय की प्रमुख घटनाएँ, (५) वंशानुचरित—सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं का जीवन-चरित। ये पाँचों लक्षण मुख्यतया विष्णुपुराण पर ही घटित होते हैं। अन्य पुराणों में इनके अतिरिक्त भी विषय मिलते हैं। जैसे—प्रार्थना, उपवास, व्रत, तीर्थ, भौगोलिक स्थान, ज्योतिष, शरीर-विज्ञान, आयुर्वेद, व्याकरण, काव्य-शास्त्र आदि का वर्णन।

पुराणों का रचना-काल—पुराणों की पूर्व-सीमा ६०० ई० पू० के लगभग है और अन्तिम सीमा ५०० ई० के लगभग है। गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र और महामारत में पुराणों का उल्लेख है। इन धर्मसूत्रों का समय ५०० ई० पू० से पहले का है, अतः पुराणों का प्रारम्भ लगभग ६०० ई० पू० हुआ होगा। पुराणों में गुप्तकालीन राजाओं का वर्णन है, परन्तु हर्ष (६०६-६४७ ई०) और उसके बाद के राजाओं का उल्लेख नहीं है। अतः पुराणों की अपर सीमा ५०० ई० के लगभग है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने पुराणों की रचना का समाप्ति-काल ४६६ ई० माना है, जो कांचनका (राजस्थान) के अन्तिम राजाओं—पुष्यमित्र और पतुमित्र—का समय था।^१

प्रतिपाद्य विषय—पुराणों में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों का वर्णन है—

- (१) किसी देव या देवी की उपासना। उसी को सबसे बड़ी शक्ति मानना तथा अन्य देवों से बड़ा बताना।
- (२) ब्रह्मा, विष्णु या महेश में से किसी एक को इष्टदेव मानना।
- (३) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन करना।
- (४) देवों, ऋषियों और महर्षियों की वंशावली तथा उनका जीवन-वृत्त देना।
- (५) प्रत्येक मनु का नाम, उसका समय, उस समय की प्रमुख घटनाएँ।
- (६) नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र और गुप्त आदि सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन।
- (७) तीर्थों, भौगोलिक स्थानों एवं तीर्थयात्राओं आदि का वर्णन।
- (८) व्रत, जप, उपवास, प्रार्थना, उपासना एवं विविध इष्टियों का अनुष्ठान-सहित वर्णन।
- (९) अवतारवाद, मूर्ति-पूजा एवं देवी-देवताओं में अतिशय श्रद्धा की स्थापना।
- (१०) सगुणोपासना एवं भक्ति-मार्ग की प्रमुखता का वर्णन।
- (११) दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आचार-शास्त्रीय महत्त्वपूर्ण विषयों का विश्लेषण।
- (१२) व्याकरण, काव्य-शास्त्र, ज्योतिष, शरीर-विज्ञान, आयुर्वेद आदि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों से संबद्ध तथ्यों का संकलन।

पुराणों का महत्त्व—(१) धार्मिक महत्त्व—पुराणों का अत्यधिक धार्मिक महत्त्व है। ये सनातन-धर्म के प्राणमूत हैं। सनातन-धर्म इनको वेदों के तुल्य ही आप्त एवं प्रामाणिक मानता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश तथा सूर्य की उपासना-पद्धति का प्रामाणिक बोध पुराणों से ही होता है। (२) ऐतिहासिक महत्त्व—राजा परीक्षित से लेकर पद्मनन्द तक का अज्ञात इतिहास पुराणों से

१. जायसवाल—जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, खंड ३, पृष्ठ २४७।

ही मिलता है। मौर्य-वंशावली के लिए विष्णु-पुराण, आन्ध्र-वंशावली के लिए मत्स्य-पुराण और गुप्त-वंशावली के लिए वायु-पुराण अत्यन्त प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं। इनके अन्त में आभीर, गर्दभ, शक, यवन, तुषार, हूण आदि राजवंशों की भी वंशावली मिलती है। (३) भौगोलिक महत्त्व—पुराणों में चतुर्द्वीपा वसुमती, सप्तद्वीपा वसुमती, १८ द्वीप, १४ भुवन, क्षीरसागर आदि, भू-विभाजन, तीर्थों, समुद्रों, नदियों, पर्वतों एवं भौगोलिक महत्त्व के स्थानों का यत्र-तत्र वर्णन मिलता है। (४) सामाजिक महत्त्व—पुराणों में वर्णाश्रम के गुण-कर्म, विविध संस्कार, पारिवारिक सम्बन्ध, गुरु-शिष्य-सम्बन्ध, राजधर्म आदि का महत्त्वपूर्ण विवेचन है। (५) शास्त्रीय महत्त्व—पुराणों में व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, धर्म-शास्त्र, दर्शन, आयुर्वेद, शरीर-विज्ञान आदि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों का महत्त्वपूर्ण विवेचन है।

पुराणों की संख्या

महापुराण १८ हैं तथा उपपुराण भी १८ माने जाते हैं। एक प्रसिद्ध श्लोक में १८ पुराणों के प्रथम अक्षर लेकर उनकी गणना की गई है।

भद्रयं भद्रयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।

अनार्पणकूस्कानि, पुराणानि प्रचक्षते ॥

इसमें १८ पुराणों का उल्लेख निम्न प्रकार से है :—म वाले—२, म वाले—२, ब्र वाले—३, व वाले—४ तथा अ, ना, प, लिङ्ग, ग, कू और स्क से प्रारम्भ होने वाले एक-एक। $२+२+३+४+७=१८$ । इनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) मत्स्य, (२) मार्कण्डेय, (३) भविष्य, (४) भागवत, (५) ब्रह्माण्ड, (६) ब्रह्मवैवर्त, (७) ब्रह्म, (८) वामन, (९) वराह, (१०) विष्णु, (११) वायु (शिव), (१२) अग्नि, (१३) नारद, (१४) पद्म, (१५) लिंग, (१६) गरुड, (१७) कूर्म, (१८) स्कन्द। गरुड पुराण के अनुसार १८ उपपुराणों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) स्कान्द, (४) शिवधर्म, (५) आश्चर्य, (६) नारदीय, (७) कापिल, (८) वामन, (९) औशनस, (१०) ब्रह्माण्ड, (११) वारुण, (१२) कालिका, (१३) माहेश्वर, (१४) साम्ब, (१५) सौर, (१६) पाराशर, (१७) मारीच, (१८) भार्गव। 'देवीभागवत' में उपर्युक्त स्कान्द, वामन, ब्रह्माण्ड, मारीच और भार्गव के स्थान पर क्रमशः शिव, मानव, आदित्य, भागवत और वासिष्ठ नाम दिए गए हैं। इनके नाम, संख्या, महापुराण या उपपुराण में गणना के विषय में पर्याप्त मतभेद है।

पुराणों का संक्षिप्त परिचय

(१) **विष्णुपुराण**—इसके रचयिता पराशर हैं। यह प्रमुख महापुराणों में से एक है। इसका साहित्यिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक महत्त्व है। यह वैष्णवों का इष्ट पुराण है। इसमें विष्णु को अवतार मानकर उनकी उपासना का वर्णन है। यही एक पुराण है, जिसमें पुराण के सभी लक्षण घटते हैं। इसमें मौर्य राजाओं की प्रामाणिक वंशावली दी गई है। शंकराचार्य ने केवल इसी पुराण से उद्धरण दिए हैं, अन्य किसी से नहीं। प्रामाणिकता और प्राचीनता की दृष्टि से यह सबसे प्रमुख है।

(२) **भागवत पुराण**—यह वैष्णवों का प्रिय महापुराण है। इसमें १२ स्कन्धों में १८ हजार श्लोक हैं। इसके १०म स्कन्ध में कृष्ण की रास-लीला तथा क्रीडाओं का विस्तृत वर्णन है, अतः यह बहुत प्रचलित है। इसकी अनेक टीकाएँ हैं। यह सबसे अधिक प्रसिद्ध पुराण है। इसमें कृष्ण को अवतार माना गया है और उनकी लीलाओं का वर्णन है। यह प्रौढ़ और परिष्कृत शैली में लिखा गया है। बीच-बीच में गम्भीर दार्शनिक विवेचन हैं, अतः यह विद्वानों की योग्यता की कसौटी माना गया है। अतएव सुभाषित प्रचलित है—**विद्यावतां भागवते परीक्षा**। इसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत का समन्वय है। इसमें गौतम और कपिल मुनि को विष्णु का अवतार माना गया है।

(३) **अग्निपुराण**—उपयोगिता की दृष्टि से यह सबसे महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसे विश्वकोश कहा जा सकता है। इसमें उस समय प्रचलित सभी विद्याओं का संकलन है। यह महाभारत के तुल्य संकलन-ग्रन्थ है। इसके लेखक ने प्रयत्न किया है कि इसमें सभी विषयों का समावेश किया जाए और उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाए। अतएव इसमें काव्य-शास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, कोश ग्रन्थ, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, स्थापत्यकला, नाट्य-शास्त्र, वैदिक कर्मकाण्ड आदि विषयों का समावेश है।

(४) **मत्स्यपुराण**—यह ऐतिहासिक महत्त्व का पुराण है। इसमें आन्ध्र राजाओं की प्रामाणिक वंशावली दी गई है। इसमें दक्षिण भारत की मूर्ति-कला, वास्तु-कला एवं स्थापत्य-कला का सुन्दर वर्णन है। इसमें पर्वों, तीर्थों, वैष्णवों और शैवों की विधियों का वर्णन है। इसमें जैनधर्म, बौद्धधर्म, दक्षिण भारत तथा नारसिंह आदि उप-पुराणों का उल्लेख है।

(५) **मार्कण्डेय पुराण**—इसमें इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि और सूर्य को मुख्य देव माना है। इसमें देवी दुर्गा की स्तुति में देवी-माहात्म्य है।

(६) **भविष्य पुराण**—इसमें भविष्य वाणियाँ हैं। इसमें चारों वर्णों के कर्तव्य, सूर्य नागदेव एवं अग्नि की पूजा का वर्णन है। इसका परिशिष्ट **भविष्योत्तर पुराण** है।

(७) **ब्रह्माण्ड पुराण**—इसमें तीर्थ-माहात्म्य और उपाख्यानों का संग्रह है। इसके सात खण्डों में **अध्यात्म-रामायण** दी हुई है।

(८) **ब्रह्मवैवर्त पुराण**—इसमें सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त माना है, अतः इसका नाम ब्रह्मवैवर्त है। इसके चार खंड हैं—ब्रह्मखंड, प्रकृति-खंड, गणेश-खंड और कृष्ण-जन्म-खंड।

(९) **ब्रह्मपुराण**—इसको ही **आदि पुराण** भी कहते हैं। इसमें उड़ीसा के तीर्थों का महत्त्व वर्णित है। इसमें सूर्य को शिव कहा है। इसका एक परिशिष्ट है, जिसे **सौरपुराण** कहते हैं।

(१०) **वामनपुराण**—इसमें विष्णु के वामन अवतार का वर्णन है।

(११) **वराह पुराण**—इसमें विष्णु के वराहावतार का मुख्य रूप से वर्णन है। २१८ अध्यायों में २४ सहस्र श्लोक हैं। इसमें नचिकेता का उपाख्यान तथा मथुरा-माहात्म्य वर्णित है।

(१२) **वायु पुराण**—इसे **शिवपुराण** भी कहते हैं। कुछ विद्वान् दोनों को पृथक् पुराण मानते हैं। इसमें ११२ अध्याय और १० सहस्र श्लोक हैं। १०४ वें अध्याय में १८ पुराणों की श्लोक संख्या दी हुई है। इसके अनुसार वायु-पुराण में २३ सहस्र श्लोक थे।

(१३) **नारद पुराण**—इसको ही **बृहन्नारदीय पुराण** भी कहा जाता है। यह वैष्णव पुराण है। इसके २ खंडों में क्रमशः १२५ और ८२ अध्याय हैं। १८ सहस्र से कुछ अधिक श्लोक हैं। इसमें उत्सवों, पर्वों, समाधि एवं ईश्वर-भक्ति से मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन है।

(१४) **पद्मपुराण**—इसमें ५ खंड हैं—सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल और उत्तरखंड। इसमें ५५ सहस्र श्लोक हैं। केवल इसी पुराण में राधा को कृष्ण की पत्नी होने का स्पष्ट उल्लेख है। कालिदास रघुवंश और शाकुन्तल दोनों की कथा-वस्तु के लिए इस पुराण का विशेष रूप से ऋणी है।

(१५) **लिंग पुराण**—इसमें ११ सहस्र श्लोक हैं। इसमें शिव के २८ अवतारों का वर्णन है। इसमें शिवलिंग की पूजा का माहात्म्य वर्णित है।

(१६) **गरुड पुराण**—इसमें १८ सहस्र श्लोक माने जाते हैं। इसमें पुराणों से साक्षात् संबद्ध कोई विषय नहीं है। इसमें गणित और फलित ज्योतिष, श्राद्ध-तर्पण, व्याकरण, आयुर्वेद एवं विविध रत्नों का वर्णन है।

(१७) **कूर्मपुराण**—पहले इसकी चार संहिताएँ थीं, परन्तु अब केवल एक ब्राह्मी संहिता प्राप्य है। इसमें ६ सहस्र श्लोक हैं। इसमें शिव के अवतार का वर्णन है। इसमें २ गीताएँ भी हैं—ईश्वरगीता और व्यासगीता। इनमें ज्ञान-प्राप्ति के लिए कर्तव्य-पालन और समाधि को साधन बताया है।

(१८) **स्कन्द पुराण**—इसमें ५ संहिताएँ हैं—सनत्कुमारीय, ब्राह्मी, वैष्णवी, शंकर या अगस्त्य और सौर। इनके अतिरिक्त काशीखंड नामक ५० छोटे अध्याय हैं। इनमें वाराणसी और उसके समीपवर्ती मन्दिरों का वर्णन है। इसमें ८१ सहस्र श्लोक हैं। यह सबसे विशालकाय पुराण है। इसमें मुख्यतया शिव-भक्ति का वर्णन है। इसमें भारत के सभी तीर्थों का वर्णन है, अतः इसका भौगोलिक महत्त्व अधिक है। इसमें प्राप्त सूतसंहिता बहुत प्रसिद्ध है। इस पुराण का दक्षिण भारत में बहुत प्रचार है।

अध्याय ३

रामायण

ऐतिहासिक महाकाव्यों का विकास

इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी—अथर्ववेद में चारों वेदों के नामोल्लेख के बाद इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी का उल्लेख है।^१ इससे प्रतीत होता है कि वेदों के क्लिष्ट कर्मकांड को लोकप्रिय बनाने के लिए कतिपय उपायों का आश्रय लिया गया। वैदिक तत्त्वों को सुबोध एवं सुसूचितपूर्ण बनाने के लिए कुछ कथाएँ आविष्कृत की गईं, जिनका भावार्थ समझने पर वैदिक मंत्रों का भाव स्पष्ट हो जाता था। अतएव महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराण से वेदार्थ का स्पष्टीकरण एवं उसकी विशद व्याख्या होती है।

इतिहासपुराणाम्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

(महा०)

वेदों के समय में ही इतिहास आदि की कल्पना हुई और इन्हें महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए पंचम वेद कहा गया।^२ ऐसी रचनाओं को चार भागों में विभक्त किया गया। (१) इतिहास—इति+ह+आस, ऐसी घटना हुई थी।^३ वेदों में वर्णित इतिहास प्राचीन एवं शाश्वत इतिहास है। जैसे—विराट् ब्रह्म (अथर्व १०-७), ज्येष्ठ ब्रह्म (अ० १०-८), विराट् (अ० ८-९), इन्द्र (अथर्व० कांड २०)। (२) पुराण—पुरावृत्त, पुरातत्त्व आदि से संबद्ध सभी विषय। जैसे—सृष्टि-उत्पत्ति, भूगोल, खगोल, विविध द्वीपों आदि का वर्णन। इसके सुन्दर उदाहरण के लिए भूमि सूक्त (अथर्व० कांड १२ सूक्त १) द्रष्टव्य है। (३) गाथा—इसमें

१. तमूचश्च सामानि च यजूषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥

(अथर्व० १५-६-८, ११)

२. ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेदः। छान्दोग्य उप० ७-४।

३. इति हेत्यव्ययं पारम्पर्योपदेशाभिधायि। तस्यासनम् आसः अवस्थान-मेतेष्विति इतिहासाः पुरावृत्तानि ॥

प्राचीन कथाएँ—नैतिक, वास्तविक या काल्पनिक—सम्मिलित हैं। जैसे—इन्द्र-वृत्र-कथानक (ऋ० २-१५ पूरा सूक्त), पुरुरवा-उर्वशी (ऋ० १०-६५), विश्वामित्र-नदी (ऋ० ३-३३), अगस्त्य-लोपामुद्रा (ऋ० १-१७६) आदि। (४) नाराशंसी—वीर-स्तुति, वीर-गाथा, व्यक्ति-अभिनन्दन आदि। ययातिः नाहुषः (ऋ० ६-१०१-४ से ६), नहुषः मानवः (ऋ० ६-१०१-७ से ६), मरुतः (ऋ० १-६४), परीक्षित् (अथर्व० २०-१२७)।

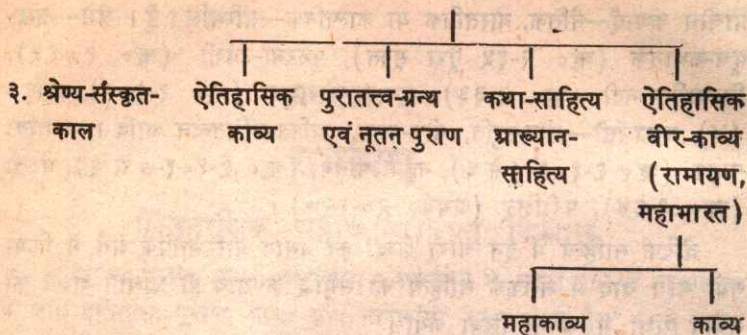
वैदिक साहित्य में इन चारों शब्दों का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में किया गया था। बाद में लौकिक साहित्य की समृद्धि के साथ ही प्राचीन शब्दों को नवीन अर्थों में अपना लिया गया।

इतिहास, पुराण—संक्षेप की दृष्टि से प्राचीन चार शब्दों के स्थान पर इतिहास और पुराण शब्द शेष रहे। कौटिल्य आदि ने इतिहास शब्द को रुचिकर माना और इसमें ही सबका अन्तर्भाव माना है।^१ छान्दोग्य उपनिषद् (७-४) में इतिहास पुराण को एक समन्वित शब्द माना गया है। पुराण-कर्ताओं ने इतिहास शब्द की अपेक्षा 'पुराण' शब्द को रुचिकर माना है और इसमें इतिहास आदि का अन्तर्भाव किया है। अतएव पुराणों में इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी सभी आ जाते हैं। परकालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि 'पुराण' शब्द अधिक रुचिकर न रहा, अतः इतिहास को पुनः पृथक् किया गया। इस प्रकार विकास की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इतिहास से ऐतिहासिक काव्य, पुराण से पुराण या पुरातत्त्व-ग्रन्थ, गाथा से कथा और आख्यान-साहित्य तथा नाराशंसी से ऐतिहासिक वीर-काव्य, रामायण, महाभारत आदि, विकसित हुए। निम्न-लिखित सारणी से इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

१. वैदिक काल	इतिहास	पुराण	गाथा	नाराशंसी

२. उपनिषद्-काल	इतिहास या पुराण			

१. (क) पुराणमिति वृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः।
(कौटिल्य अर्थशास्त्र १-५)
- (ख) धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥



रामायण, महाभारत—रामायण और महाभारत के विकास का इतिहास श्रौत कर्मकाण्ड के काल से संबद्ध है। यज्ञिय कर्मकाण्ड के पश्चात् नैतिक प्रवचन आदि की परम्परा प्राचीन-काल से प्रचलित है। प्रारम्भ में इसके लिए वैदिक सुपर्णाख्यान आदि वैदिक आख्यान लिए गए। तत्पश्चात् शनैः-शनैः नैतिक शिक्षाओं के लिए मर्यादापुरुषोत्तम राम एवं योगिराज कृष्ण की गाथाएँ भी उनमें स्थान पाने लगीं। इसका ही विकास छोटे काव्य आदि के रूप में हुआ। ये ही काव्य-ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास के हाथों में आकर आकर-ग्रन्थ बन गए और रामायण तथा महाभारत के रूप में सुपुष्ट, परिष्कृत एवं परिवर्धित धर्मग्रन्थ बने।

इस संदर्भ में 'कुशीलव' शब्द का परिचय भी मनोरंजक है। वाल्मीकि-रामायण और उत्तररामचरित आदि से ज्ञात होता है कि बालक कुश और लव ने ही सर्वप्रथम रामायण का मंच-गान या अभिनय-संगीत प्रस्तुत किया था। यह परम्परा इतनी रुचिकर हुई कि बाल-संगीत को भी कार्यक्रमों का अंग माना जाने लगा। रंग-मंचीय अभिनयों के लिए बाल-संगीत-कार्यक्रम अनिवार्य सा हो गया। बाल-संगीत 'कुश-लव' न रहकर 'कुशीलव' हो गया। फलतः यह शब्द किसी भी आयु के अभिनेता के लिए प्रचलित हो गया।

रामायण और महाभारत के प्रचार और प्रसार में प्राचीन सूतों का बहुत हाथ रहा है। चारण, भाट, बन्दी, सूत आदि ग्रामों और नगरों में अपनी आजीविका के निमित्त लोकप्रिय इन आख्यानों को सुनाया करते थे। इनमें से कुछ व्युत्पन्न एवं विद्वान् भी होते थे तथा कुछ आशु-कवि भी होते थे। वे समय और आवश्यकता

के अनुसार आधुनिक कथावाचकों आदि के तुल्य अपनी भी कुछ नवीन कला-कृतियाँ जोड़ दिया करते थे। समयानुसार ये प्रक्षिप्त अंश भी मूल ग्रन्थ के साथ संबद्ध होने से मूल-ग्रन्थवत् माने जाने लगे। मूल ग्रन्थ के साथ संबद्ध ये प्रक्षिप्त-अंश प्रान्तीय भेद के कारण विभिन्न संस्करणों के रूप में उपलब्ध होते हैं।

रामायण

संक्षिप्त परिचय—रामायण महर्षि वाल्मीकि की कृति है। इसमें राम-कथा आद्योपान्त वर्णित है। इसमें सात काण्ड हैं—बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड, सुन्दरकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। इसमें लगभग २४ सहस्र श्लोक हैं, अतः इसे 'चतुर्विंशति-साहस्री संहिता' भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् श्लोकों में है। गायत्री मंत्र में २४ वर्ण होते हैं, अतः यह मान्यता है कि उसको आधार मानकर २४ हजार श्लोक बनाए गए हैं और प्रत्येक एक हजार श्लोक के बाद गायत्री के नए वर्ण से नया श्लोक प्रारम्भ होता है। रामचरित का सर्वांगपूर्ण वर्णन होने के कारण यह धार्मिक-ग्रन्थ एवं आचार-संहिता माना जाता है। यह परकालीन कवियों, नाटककारों और गद्य लेखकों का उपजीव्य (आधार)-काव्य माना जाता है। भाव, भाषा, शैली, परिष्कार और काव्यत्व के कारण रामायण का स्थान भारतीय काव्यों में सर्वोच्च माना जाता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

(रामायण, बालकांड २-३६-७)

संस्करण—(१) बम्बई संस्करण (देवनागरी संस्करण)—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से १९०२ ई० में प्रकाशित (संपादक के० पी० परब)। यह संस्करण उत्तर तथा दक्षिण भारत में सबसे अधिक प्रचलित एवं प्रामाणिक है। इसकी सबसे प्रसिद्ध टीका 'तिलक' है, जिसे प्रसिद्ध वैयाकरण नागेश भट्ट ने अपने आश्रयदाता राजा 'राम' के नाम से की है। (२) बंगला संस्करण—यह संस्करण जी० गोरेशियो (G. Gorresio) ने (१८४३-१८६७ ई०) में प्रकाशित किया था और उसका इटैलियन भाषा में अनुवाद किया था। यूरोप में सर्वप्रथम यही संस्करण छपा था। इसे गौडीय संस्करण भी कहते हैं। (३) पश्चिमोत्तर संस्करण—(काश्मीरी संस्करण) यह संस्करण रिसर्च विभाग, डी० ए० वी०

कालेज, लाहौर से १८१३ में प्रकाशित हुआ। इसके टीकाकार का नाम 'कटक' है। (४) **दाक्षिणात्य संस्करण**—कुम्भकोणम् (मद्रास) से १९२९-३० ई० में प्रकाशित। बम्बई संस्करण से इसमें बहुत कम पाठभेद है। बंगला और पश्चिमोत्तर संस्करणों में बहुत पाठभेद है। पाठभेद का मुख्य कारण रामायण की मौखिक परम्परा है। अतएव प्रान्तीय भेद आदि के कारण बहुत पाठभेद हो गए।

रामायण का मौलिक अंश

डा० विन्टरनिट्स ने अपने पूर्ववर्ती प्रो० वेबर (Weber) तथा याकोबी (Jacobi) आदि आलोचकों के मतों का संग्रह करते हुए रामायण के मौलिक एवं प्रक्षिप्त अंशों की सारपूर्ण विवेचना की है।^१ उन्होंने यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि मूल रामायण में केवल कांड २ (अयोध्याकांड) से कांड ६ (युद्धकांड) तक ही थे। कांड १ (बालकांड) और कांड ७ (उत्तरकांड) परकालीन मिश्रण हैं। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित तर्क उपस्थित किए हैं:—(१) कांड १ और ७ की कथा का मूलकथा से सम्बन्ध नहीं है। मूलकथा कांड २ से प्रारम्भ होकर कांड ६ पर समाप्त हो जाती है। (२) भाषा और शैली की दृष्टि से कांड १ और ७ समकक्ष हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ (कांड २ से ६) से इनकी भाषा आदि निम्न-कोटि की है। (३) कांड १ और ७ की कथाएँ मूल-ग्रन्थ की कथा से परस्पर विरुद्ध हैं। (४) कांड २ से ६ तक राम मर्यादा-पुरुषोत्तम और आदर्श पुरुष माने गए हैं, किन्तु कांड १ और ७ में उन्हें विष्णु का अवतार बताया गया है, जो कि बाद की कल्पना है। (५) कांड १ और ७ में पुनरुक्ति दोष तथा मूल ग्रन्थ से विरोधी घटनाएँ वर्णित हैं। यथा—(क) कांड १ में लक्ष्मण विवाहित हैं, प्ररप्यकांड में उन्हें अविवाहित बताया है। (ख) कांड ६ में सुग्रीव, विभीषण आदि के प्रस्थान का वर्णन है, किन्तु उत्तरकांड में पुनः इनके प्रस्थान का उल्लेख है। (ग) उत्तरकांड (सर्ग १७) में सीता को पूर्व-जन्म में 'वेदवती' बताया है, परन्तु अन्यत्र सीता-जन्म-प्रसंग में वेदवती का नामोल्लेख नहीं है। (घ) महा-भारत के 'रामोपाख्यान' में तथा अन्य राम-काव्यों में उत्तरकांड की कथा का उल्लेख नहीं है। (ङ) उत्तरकांड में बहुत-सी रामकथा से असंबद्ध कथाएँ वर्णित हैं। जैसे—राक्षसों की उत्पत्ति और इन्द्र-रावण युद्ध (सर्ग १ से ३४), हनुमान् का बाल्यकाल (सर्ग ३५), ययाति-नहुष (सर्ग ५८ से), इन्द्र द्वारा

१. Indian Literature, Vol. 1, 1927 पृष्ठ ४६५-५००।

वृत्र-वध (सर्ग ८४ से ८७), उर्वशी-चरित (सर्ग ५६ से), पुरुरवा (सर्ग ८७-६०), शम्बूक की तपस्या और उसका वध (सर्ग ७३ से ८१), आदि (६) कांड २ से ६ तक भी कुछ अंश प्रक्षिप्त हैं, परन्तु ऐसे अंशों की संख्या कम है।

श्री वी० वरदाचार्य (V. Varadachary) ने मूल ग्रन्थ और प्रक्षिप्त अंश के विषय में पर्याप्त विवेचन किया है और सारांश दिया है कि रामायण के सातों कांड मौलिक हैं, प्रायः सभी कथाएँ उचित स्थान पर हैं। कांड १ और ७ में कुछ अंश अवश्य प्रक्षिप्त हैं, अतएव टीकाकारों ने उन अंशों की टीका नहीं की है।

विन्टरनित्स आदि के मत की आलोचना—विन्टरनित्स आदि ने जो मन्तव्य उपस्थित किया है, वह आपाततः पुष्ट और परिपक्व प्रतीत होता है, परन्तु इस मन्तव्य में कुछ बड़ी त्रुटियाँ रह गई हैं, जो विचारणीय हैं।

(१) रामायण के चारों ही संस्करणों में ७ कांड हैं। किसी भी संस्करण में कांड १ और ७ को छोड़ा नहीं गया है। यदि उपर्युक्त मन्तव्य में थोड़ी भी सत्यता होती तो संस्कृत-टीकाकारों के तुल्य कोई न कोई संस्करण इन दोनों कांडों का अवश्य छोड़ देता। (२) बालकांड का मूल कथा से साक्षात् सम्बन्ध है। इसमें इक्ष्वाकु-वंश का वर्णन, दशरथ की सन्तान हीनता, पुत्रेष्टि यज्ञ, चार पुत्रों का जन्म, बाल-चरित, ताडका-वध, सीता-जन्म, सीता-स्वयंवर, राम-विवाह आदि प्रसंग रामायण के अविभाज्य अंग हैं। अतः समस्त बालकांड को प्रक्षेप कहना असंगत है। (३) उत्तरकांड में सीता-निर्वासन, वाल्मीकि के आश्रम में सीता का निवास, लव-कुश-जन्म, अश्वमेध-यज्ञ, लव-कुश द्वारा घोड़े को पकड़ना, राम का सीता-दर्शन, सीता की अग्नि-परीक्षा, सीता का भूमि में विलय आदि राम-कथा के मौलिक अंश हैं। (४) भाषा और शैली की दृष्टि से बालकांड और उत्तरकांड को निम्न कोटि का कहना बहुत अंश तक हास्यास्पद है। किसी भी आलोचक ने अपने कथन की पुष्टि में सुसंगत प्रमाण नहीं दिए हैं। (५) राम के अवतार को लेकर कांड १ और ७ को प्रक्षिप्त कहना भी अनुचित है। वस्तुतः पूरी रामायण में राम कहीं भी अवतार नहीं हैं। वे लोक-नायक और आदर्श पुरुष हैं। अवतारवाद के विकास के साथ रामायण में ये अंश बाद में जोड़े गए हैं। (६) वस्तुतः तथाकथित मूल ग्रन्थ (कांड २ से ६) में भी पर्याप्त प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं। (७) कांड १ और ७ में पुनरुक्ति एवं असंगति

१. वरदाचार्य—संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी) १९६२, पृष्ठ ५६ से ६२।

के जो उदाहरण मुख्यतया दिए जाते हैं, उनके विषय में संक्षेप में निम्नलिखित वक्तव्य है :—

(क) लक्ष्मण का वस्तुतः विवाह उर्मिला से हुआ था। उन्हें 'अकृतदारः' कहने वाला अरण्यकांड का अंश ही प्रक्षिप्त है। अथवा यह भी संभव है कि शूर्पणखा से विनोदार्थ, लक्ष्मण को 'अकृतदारः' कहकर उसकी उत्सुकता बढ़ाई गई हो। (ख) राम के राज्याभिषेक के बाद सुग्रीव आदि का प्रस्थान हो जाता है। उत्तरकांड में अनावश्यक रूप से सुग्रीव आदि का प्रस्थान दिखाया गया है, जो प्रक्षिप्त अंश है। (ग) कवि के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सीता-जन्म का प्रसंग आने पर सर्वत्र 'वेदवती' का प्रकरण सुनाया जाए। (घ) महाभारत में राम-कथा संक्षिप्त रूप में है। उसमें राम-कथा सांगोपांग वर्णित नहीं है। अतएव राम-राज्याभिषेक के साथ कथा समाप्त कर दी जाती है। काव्यों, नाटकों आदि में उत्तरकांड की कथा न होना, हास्यास्पद युक्ति है। कालिदास के रघुवंश, भवभूति के उत्तररामचरित, दिङ्नाग की कुन्दमाला, बौद्ध एवं जैन कथा-ग्रन्थों में सीता-परित्याग आदि का वर्णन विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। (ङ) राम-कथा से असंबद्ध कथानक वस्तुतः प्रक्षिप्त अंश है। इस विषय में यह स्पष्टीकरण उचित प्रतीत होता है कि वस्तुतः कांड १ और ७ में पर्याप्त अंश प्रक्षिप्त हैं। इसका कारण यह है कि लोक-रंजन के लिए देवी-देवता, ऋषि-मुनि आदि से संबद्ध रोचक प्रसंग ग्रन्थ को आकर्षक बनाने के लिए जोड़े गए हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि रामायण के टीकाकारों ने भी ऐसे अंशों को प्रक्षिप्त मानकर उनकी टीका नहीं की है।

(च) प्रसिद्ध समालोचक आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में सीता-परित्याग तक की कथा को मूल रामायण की कथा माना है।

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूत्रितः। निर्व्यूढश्च स रामसीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।

(ध्वन्यालोक, अध्याय ४)

रामायण का समय

रामायण के समय-निर्धारण में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं। जिससे आज तक यह पुष्ट रूप में नहीं कहा जा सकता है कि रामायण की रचना कब हुई थी? नीचे जितने मत प्रस्तुत किए जा रहे हैं, वे अधिकांशतः अनुमान पर निर्भर हैं और

वे पूर्व-सीमा न बताकर अपर-सीमा को संकेत करते हैं। संक्षेप में प्रमुख कठिनाइयाँ ये हैं :—

- (१) रामायण में रचना-काल का अनिर्देश।
- (२) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा राम की ऐतिहासिकता पर सन्देह।
- (३) पुष्ट अन्तरंग और बाह्य प्रमाणों का अभाव।
- (४) रामायण वैदिक-काल के बाद की रचना है। परन्तु वैदिक-काल स्वयं अनिर्धारित है। वैदिक-साहित्य के रचना-काल के विषय में सैकड़ों नहीं, सहस्रों और लाखों वर्षों तक का मतभेद है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय पर पर्याप्त विचार-विनिमय किया है और सैकड़ों निबन्ध प्रस्तुत किए हैं। उनका निष्कर्ष निम्नलिखित है :—

(१) वरदाचार्य^१—राम त्रेतायुग में हुए। त्रेतायुग ईसा से ८ लाख ६७ हजार १ सौ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था। वाल्मीकि राम के समकालीन थे। अतः रामायण की रचना का समय पूर्वोक्त है।

- (२) गोरेसियो^२ (G. Gorresio)—१२०० ई० पू०।
- (३) श्लेगल^३ (Schlegel)—११०० ई० पू०।
- (४) याकोबी^४ (Jacobi)—८०० ई० पू० से ५०० ई० पू०।
- (५) कामिल बुल्के^५ (Camile Bulke)—६०० ई० पू०।
- (६) मैकडानल^६ (Macdonell)—५०० ई० पू०, संशोधन २०० ई० पू०।
- (७) काशीप्रसाद जायसवाल^७—५०० ई० पू०, संशोधन २०० ई० पू०।
- (८) जयचन्द्र विद्यालंकार^८—५०० ई० पू०, संशोधन २०० ई० पू०।
- (९) विन्टरनिट्स^९ (M. Winternitz)—३०० ई० पू०।

१. वरदाचार्य—सं० सा० का इति० (हिन्दी) पृष्ठ ६६-६७।
२. रामायण, भाग १०, भूमिका।
३. जर्मन ओरियन्टल जर्नल, भाग ३ पृष्ठ ३७६।
४. 'इस रामायण' पृष्ठ १०१ से आगे।
५. रामकथा, पृष्ठ १०१ से आगे, १६५०।
६. हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ ३०६-३०६।
७. जे० बी० ओ० आर० एस० भाग ४, पृष्ठ २६२।
८. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग १, पृष्ठ ४३२-४३३।
९. हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन लिटरेचर, भाग १ पृष्ठ ५०१-५१७।

उपर्युक्त विवेचन में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है :—

(क) रामायण में बुद्ध का उल्लेख न होना तथा बौद्ध-धर्म के प्रभाव का अभाव,
(ख) वैदिक-काल का परवर्ती होना, (ग) कोसल की राजधानी अयोध्या, न कि साकेत, (घ) पाटलिपुत्र का उल्लेख न होना, (ङ) श्रावस्ती का राजधानी न होना, (च) विशाला और मिथिला का स्वतन्त्र राज्य के रूप में उल्लेख,
(छ) यूनानी प्रभाव का अभाव, (ज) मूल रामायण में राम को अवतार न मानना, (झ) ५०० ई० पू० की संस्कृति और सभ्यता से साम्य ।

संक्षेप में इन विषयों का प्रतिपादन इस प्रकार है :—

(१) रामायण में बुद्ध एवं बौद्ध धर्म का अभाव—मूल रामायण में बौद्ध-धर्म का प्रभाव सर्वथा अदृश्य है। एक स्थान पर बुद्ध का नाम आया है और उन्हें चोर एवं नास्तिक कहा गया है।^१ सभी विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। यह श्लोक बुद्ध और बौद्ध-धर्म की निन्दा के लिए बाद में जोड़ा गया है। विन्टरनिट्स भी रामायण में बौद्ध-धर्म के प्रभाव का सर्वथा अभाव मानते हैं।

“Whether traces of Buddhism can be proved in the Ramayana. It can probably be answered with an absolute negative.”^२

उपर्युक्त बुद्ध-विषयक श्लोक सभी प्रतियों में नहीं पाया जाता है। अतः मूल-रामायण बुद्ध (जन्म ५६३ ई० पू०, निर्वाण ४८३ ई० पू०) से पूर्ववर्ती है।

(२) रामायण और महाभारत वैदिक साहित्य के बाद की रचनाएँ हैं, अतः इनकी पूर्वसीमा वैदिक-काल की समाप्ति है।^३

(३) रामायण में कोसल राज्य की राजधानी अयोध्या है।^४ बौद्ध और जैन-ग्रन्थों में अयोध्या का ‘साकेत’ नाम से निर्देश है। अतः रामायण का रचना-काल महावीर और बुद्ध से पूर्ववर्ती है।

(४) रामायण (बालकांड, सर्ग ३१) में उल्लेख है कि राम गंगा और सोन के संगम के पास से जाते हैं, परन्तु दोनों के संगम पर स्थित वर्तमान पाटलिपुत्र (पटना) का उल्लेख नहीं है। बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु (ई० पू० ४९१ से ४५६ तक) ने ‘पाटलि’ नामक ग्राम के चारों ओर सुरक्षार्थ एक प्राचीर (परकोटा)

१. यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।

(रामा० अयोध्या० १०६-३४)

२. H. I. L. भाग १ पृष्ठ ५०६-५१० ।

३. अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता (बाल० ५-६) ।

बनवाया था। वही ग्राम बाद में पाटिलपुत्र नगर हुआ। अतः रामायण की रचना ५०० ई० पू० से पहले माननी चाहिए।

(५) **श्रावस्ती**—राम के पुत्र लव ने अपनी राजधानी 'श्रावस्ती' में बनाई थी।^१ बुद्धकालीन राजा प्रसेनजित् की राजधानी 'श्रावस्ती' थी। रामायण में कोसल की राजधानी अयोध्या ही है। अतः रामायण का बुद्ध से पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है।

(६) **विशाला और मिथिला**—बुद्ध से पहले विशाला और मिथिला स्वतंत्र राज्य थे। बुद्ध के समय में दोनों एक होकर वैशाली राज्य हो गए थे। अंगुत्तर-निकाय में १६ गणराज्यों में वैशाली का उल्लेख वृजि या वृज्जि नाम से है। रामायण में वैशाली का उल्लेख न होकर विशाला और मिथिला का पृथक् उल्लेख है।^२ विशाला के राजा 'सुमति' हैं और मिथिला के 'सीरध्वज जनक'।^३ इससे सिद्ध होता है कि रामायण की रचना बुद्ध-पूर्व काल में हुई थी।

(७) **यूनानी प्रभाव**—रामायण में केवल २ स्थानों पर यवन शब्द का प्रयोग है, जिसके आधार पर डा० वेबर ने रामायण पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। डा० याकोबी और डा० विन्टरनित्स ने उपर्युक्त दोनों स्थलों को प्रक्षिप्त माना है और रामायण पर यूनानी प्रभाव का खण्डन किया है।^४ अतः रामायण का समय यूनानियों के भारत में आगमन (३२६ ई० पू०) से बहुत पूर्व मानना चाहिए।

(८) **राम का अवतार**—मूल रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है। अवतार की भावना का उदय बुद्ध के बाद हुआ है। इतिहास साक्षी है कि बुद्ध की प्रतिमाओं से ही प्रतिमा-पूजन का विकास हुआ। फारसी का 'बुत' (मूर्तिवाचक) शब्द 'बुद्ध' शब्द का ही अपभ्रंश है, जो स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि मूर्ति-पूजा का सम्बन्ध बुद्ध (बुद्ध-मूर्ति-पूजा) से रहा है। महाभाष्यकार पतञ्जलि (१५० ई० पू०) ने इसका इतिहास देते हुए बताया है कि मौर्य राजाओं ने राजकीय आय बढ़ाने के लिए मूर्ति-पूजा की योजना प्रचलित की। सुन्दर

१. श्रावस्तीति पुरा रम्या श्राविता च लवस्य च। (उत्तर० १०८-४)

२. गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्। (बाल० ४५-८)

३. देखो—बालकांड; सर्ग ५०।

४. देखो, विन्टरनित्स—H. I. L. भाग १ पृष्ठ ५१४-५१५।

मूर्तियों की नक्काशी आदि की योजना भी उन्हीं की देन है।^१ इससे सिद्ध होता है कि मूल रामायण बुद्ध के जन्म से पूर्व लिखी गई थी।

(६) रामायण का अधिकांश चित्रण, विशेषकर उसका सामाजिक चित्र, ५वीं शताब्दी ई० पू० का है। उसमें हमें ५वीं शताब्दी ई० पू० के भारतीय समाज के आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन का अच्छा चित्र मिलता है।^२

(१०) विन्टरनिट्स ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान परिवर्धित रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० पू० में इस रूप में आ चुकी थी।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल रामायण ६०० ई० पू० के बाद की रचना नहीं है। इससे पूर्व इसकी रचना मानना भावी प्रमाणों की उपलब्धि पर निर्भर है। वर्तमान २४ सहस्र श्लोकों वाली रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० पू० में निश्चित रूप से इस रूप में आ चुकी थी।

डा० वेबर ने वैदिक-साहित्य में प्राप्त सीता (हल की फाल) शब्द का राम (कृष्णक) या बलराम (हलभृत्, या हलधर राम) से सम्बन्ध जोड़कर राम-कथा का विकास माना है।^३ यह असंगत एवं क्लिष्ट-कल्पना है। इसके विषय में इतना कहना पर्याप्त है—‘कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनवा जोड़ा’।

डा० वेबर ने एक और मन्तव्य प्रस्तुत किया था कि रामायण बौद्ध-ग्रन्थ ‘दशरथ-जातक’ एवं होमर के ग्रन्थ पर आश्रित है,^४ परन्तु मोनियर विलियम्स, याकोबी, मैकडानल एवं के० टी० तैलंग आदि सभी पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने इस मत को अनुपयुक्त बताया है।^५ वस्तुतः ‘दशरथ-जातक’ ही रामायण पर निर्भर है। इस जातक का उद्देश्य है—मृत्यु पर दुःख न करना। दशरथ की मृत्यु

१. (क) मौर्यैरिहिरण्याधिभिरर्चाः प्रकल्पिताः (महामाष्य ५-३-६६)।

(ख) मौर्याः—विश्रुतं प्रतिमाशिल्पवन्त (नागेश, उद्योत ५-३-६६ पर)।

२. देखो, जयचन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग १ पृष्ठ ४३२-४३३।

३. History of Indian Literature, पृष्ठ १६२।

४. वेबर—ऑन द रामायण, पृष्ठ ११ आरम्भ।

५. मोनियर विलियम्स—इण्डियन विज्डम, पृष्ठ ३१६; याकोबी—इस रामायण, पृष्ठ ६४ आरम्भ; मैकडानल—H. S. L. पृष्ठ ३०८; के० टी० तैलंग—वाँज रामायण कॉपीड फ्रॉम होमर, बम्बई १८७३।

पर राम दुःखित नहीं होते हैं। अतएव रामायण की इतनी कथा देकर यह जातक समाप्त हो जाता है। उक्त विद्वानों ने ही होमर के आधार पर रामायण की रचना को असंगत बताया है।

आदि-कवि वाल्मीकि

स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः ।

ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः ॥

(रामायण-मंजरी)

महर्षि वाल्मीकि को ब्रह्मा ने 'आद्यः कविरसि' (आदि कवि हो) कहकर संबोधित किया था। आज भी वही परम्परा बद्धमूल है। वाल्मीकि को संस्कृत-साहित्य का आदि-कवि कहना अत्यन्त सार्थक है। इसके पीछे एक इतिहास छिपा हुआ है। वाल्मीकि से पूर्व पद्यात्मक रचनाएँ हुई थीं और हो रही थीं। परन्तु उनका उद्देश्य देवस्तुति, धर्म-भावना, देवाचर्न या उपासना आदि ही था। वाल्मीकि ही वह प्रथम क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील मनीषी थे, जिन्होंने जन-भावना को समझा, सोचा और उस पर मनन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अब तक की कविता केवल धर्म-प्रधान है और इसका जन-जीवन से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है। यह विचारधारा उनके मस्तिष्क में विद्युत् की भाँति दौड़ गई और उन्होंने एक क्रान्तिकारी पग उठाने का दृढ़ निश्चय किया। संयोगवश उन्होंने तमसा नदी के तट पर व्याघ्र द्वारा हत नर कौच पक्षी को देखा और उनके मुख से यह श्लोक निकल पड़ा।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् कौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ (वा० रा० बाल०)

यही उनके काव्य का प्रथम सूत्रपात था। उन्हें पुनः चिन्ता प्रारम्भ हुई कि नायक किसकी बनाया जाय। उनका लक्ष्य था कि मेरा काव्य अमर हो; जन-जीवन से साक्षात् संबद्ध हो; चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन हो; भाव, भाषा, छन्द, अलंकार आदि की दृष्टि से नवीनतम हो; लोक-मनोरंजन के साथ ही लोक-परलोक दोनों का साधक हो। इन सभी लक्ष्यों की पूर्ति के लिए मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के अतिरिक्त और कोई नायक उन्हें न जँचा। नायक के निर्णय के साथ ही उनकी काव्य-निर्झरिणी प्रवाहित हो गई और गायत्री के पावनत्व को सुरक्षित रखने के

१. उत्तररामचरित, अं० २ वाक्य सं० २४, संस्करण—क० दे० द्विवेदी, १९६८।

लिए २४ सहस्र श्लोकों की मुक्तामयी माला गुंथी गई, जो आज भी पावनी त्रिपथगा के सदृश जन-मानस के पाप-सन्ताप को संच्वस्त कर रही है। इससे ही लौकिक-काव्य-परम्परा प्रादुर्भूत हुई, जो प्रतिदिन पुष्पित एवं पल्लवित होती हुई आज विशाल साहित्य के रूप में समृद्ध है। इस क्रान्तिकारी नवीन-धारा के प्रवर्तन के कारण वाल्मीकि को आदि-कवि कहा गया।

आदि-काव्य रामायण—आदि-कवि वाल्मीकि की कृति वाल्मीकीय रामायण आदि-काव्य हुआ। वस्तुतः यह लौकिक काव्य-माला का प्रथम गुच्छ है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिक महाकाव्य, महाकाव्य एवं वीर-काव्य के सभी गुण समन्वित हैं। एक ओर भाषा का लालित्य है तो दूसरी ओर भावों की मनोहर छटा। एक ओर रस-परिपाक अद्वितीय है तो दूसरी ओर अलंकारों का सप्तरंगी आकर्षण। एक ओर नायक की उदात्तता है तो दूसरी ओर नैतिकता का चरमोत्कर्ष। एक ओर अन्तःप्रकृति का मनोज्ञ संगुम्फन है तो दूसरी ओर बाह्य-प्रकृति का सजीव चित्रण। वाल्मीकि की सशक्त लेखनी से प्रादुर्भूत यह काव्य न केवल महाकाव्य ही बना, अपितु ऐतिहासिक महाकाव्य, वीर-काव्य और आदर्श धर्मग्रन्थ बन गया।

रामायण की शैली

वाल्मीकि की शैली को वैदर्भी शैली कह सकते हैं। इसमें भाव-भाषा का समन्वय, सरलता, सुबोधता आदि सभी गुण संनिहित हैं। इसमें शैली के तीनों गुण प्रसाद, ओज और माधुर्य हैं।

(१) भाषा—रामायण की भाषा सुन्दर, सरल, ललित, प्राञ्जल एवं परिष्कृत है। वाल्मीकि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे प्रसंग एवं भावों के अनुरूप शब्दावली का चयन करते हैं। प्राचीन होने पर भी कालिदास आदि की भाषा के तुल्य प्रौढता एवं परिष्कार परिलक्षित होता है। यथा—
सुमुखी नायिकावत् शरत्कालीन रात्रि की शोभा का वर्णन :—

रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा, तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।

ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति, नारीव शुक्लांशुकवृताङ्गी ॥

(किष्किन्धा० सर्ग ३०)

(२) रस—रामायण में प्रायः सभी रस प्राप्त होते हैं। कर्षण, शृङ्गार और वीर इनमें मुख्य हैं। कर्षण रस अङ्गी है, अन्य रस अंग। शृङ्गार के दोनों

पक्षों—संमोग और विप्रलम्भ—का वर्णन प्राप्त होता है। अनेक प्रसंगों में, मुख्यतः गुह्यकांड में, वीर रस ही प्रमुख है। सीता-वियोग-वर्णन में विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर एवं सजीव चित्रण है। सीता-परित्याग के बाद राम की दयनीय मानसिक स्थिति के वर्णन में करुण रस की स्रोतस्विनी का अमन्द प्रवाह प्रसृत होता है। इस प्रकार रस-परिपाक के कारण वाल्मीकि को रस-सिद्ध कवीश्वर (रससिद्धाः कवीश्वराः) कहा जाता है।

(३) छन्द—वाल्मीकि का प्रिय छन्द अनुष्टुप् है। अधिकांश श्लोक अनुष्टुप् छन्द में ही हैं। किन्तु स्थान-स्थान पर, मुख्यतः सर्ग के अन्त में, इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्द भी आए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण की रचना श्लोकों अर्थात् केवल अनुष्टुप् छन्द में मानी है और श्लोक शब्द का अर्थ केवल अनुष्टुप् छन्द माना है। यह सर्वथा भ्रान्त धारणा है। संस्कृत में 'श्लोक' शब्द पद्यबद्ध किसी भी रचना के लिए है। यह अनुष्टुप् का भी पर्यायवाची है, जिसके कारण यह भ्रान्त धारणा हुई।

(४) अलंकार—वाल्मीकि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। ऋतु-वर्णनों में अलंकारों की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है। यथा—बादलों में चमकती हुई बिजली की रावण से अपहृत छटपटाती हुई सीता से उपमा।

नीलमेघाभिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।

स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ॥

(रामा० ४-२८-१२)

वसन्त-वर्णन में वायु के फूलों से खेलने की बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा एक गेंद के खिलाड़ी से की गई है। जिसकी गेंद कभी नीचे, कभी ऊपर और कभी बीच में होती है।

पातितैः पतमानैश्च पादपस्यैश्च मारुतः।

कुसुमैः पश्य सौमित्रे, क्रीडन्निव समस्ततः ॥

(रामा० ४-१-१३)

(५) प्रकृति-चित्रण—वाल्मीकि न केवल बाह्य प्रकृति के विशद चित्रण में असाधारण पटु हैं, अपितु अन्तःप्रकृति के निरूपण में भी सिद्धहस्त हैं। रामायण में प्रकृति-चित्रण के अनेक प्रसंग हैं। इसमें नगर, ग्राम, आश्रम, उपवन, वन, सं० सा० स० इ०—८

पर्वत, नदी, पम्पा सरोवर, सेना, युद्ध, ऋतु-वर्णन, चन्द्रोदय आदि के वर्णन अत्यन्त सरस, भावपूर्ण, सजीव एवं रोचक हैं। जैसे—अयोध्याकांड में चित्रकूट-वर्णन, अरण्यकांड में वन, आश्रम, शरद् एवं हेमन्त ऋतु-वर्णन; किष्किन्ध्याकांड में पम्पा-सरोवर-वर्णन, सुन्दरकांड में चन्द्रोदय-वर्णन; युद्धकांड में सेना और युद्ध का वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। चन्द्रोदय का उपमा अलंकार-युक्त वर्णन इस प्रकार है—

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः, सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।

वीरो यथा गवितकुंजरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः ॥

(रामा० ५-५-४)

कवि को सरोवर में सोता हुआ हंस आकाश में विराजमान चन्द्र प्रतीत होता है।

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं, महाह्रदस्थं सलिलं विभाति ।

घर्नेविमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं, तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥

(रामा० ४-३०-४८)

(६) अर्थगौरव—वाल्मीकि के अर्थान्तरन्यास और सुभाषित अत्यन्त हृद्य, भाव-प्रवण, सहृदय-संवेद्य एवं व्यंजना-प्रधान हैं। यथा—

(क) सुलभाः पुरुषा राजन्, सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ (रा० ३-३७-२)

(ख) उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु । (रा० ४-१-१२२)

(ग) कुलीनमकुलीनं वा, वीरं पुरुषमानिनम् ।

चारित्र्यमेव व्याख्याति, क्षुचि वा यदि वाऽक्षुचिम् ॥

(रामा० १-१०६-४)

(घ) आम्नं छित्त्वा कुठारेण, निम्बं परिचरेत्तु कः । (२-३५-१६)

(ङ) न परेणाहृतं भक्ष्यं, व्याघ्रः स्वादितुमिच्छति । (२-६१-१६)

रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व

रामायण न केवल काव्य, महाकाव्य या वीर-काव्य ही है। इसका इससे बहुत अधिक महत्त्व है। यह आयुषी का आचार-शास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। यह मानव-जीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता है। यह धार्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रत-पालन, विविध यज्ञों का महत्त्व आदि का पूरा

इतिहास प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टि से यह पति-पत्नी के सम्बन्ध, पिता-पुत्र के कर्तव्य, गुरु-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, माई का माई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श पिता-माता-पुत्र-माई-पति एवं पत्नी का चित्रण, आदर्श गृहस्थ-जीवन की अभिव्यक्ति करता है। इसमें पितृ-भक्ति, पुत्र-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह एवं जन-साधारण से सौहार्द का सुन्दर चित्रण है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह राम-राज्य का आदर्श, पाप पर पुण्य की विजय, लोभ पर त्याग का प्राबल्य, अत्याचार और अनाचार पर सदाचार की विजय, वानरों में आर्य-संस्कृति का प्रसार, यज्ञादि का महत्त्व, जीवन में नैतिकता, सत्य-प्रतिज्ञता और कर्तव्य के लिए बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करता है। राजनीतिक दृष्टि से यह राजा के कर्तव्य और अधिकार, राजा-प्रजा-सम्बन्ध, उच्च नागरिकता, उत्तराधिकार-विधान, शत्रु-संहार, पाप-विनाशन, सैन्य-संचालन आदि विषयों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। रामायण भारतीय सम्यता, नगर-ग्रामादि-निर्माण, सेतुबन्ध, वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक विषयों पर प्रकाश डालने वाला प्रकाश-स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सम्यता का साक्षात् दर्शन होता है।

रामायण का परकालीन साहित्य पर प्रभाव

रामायण एवं राम-कथा ने भारतीय जन-जीवन को इतना प्रभावित किया है कि कवित्व में गौरव-प्राप्ति के लिए मुख्य राम-कथा या उससे संबद्ध कथानक का आश्रय लेना आवश्यक सा हो गया था। वाल्मीकि की प्रौढ़-शैली एवं राम-कथा का समन्वय अणि-कांच-संयोग हो गया था। अतः परवर्ती कवियों, नाटककारों और चम्पूकारों ने रामायण को अपना उपजीव्य काव्य माना है तथा अपने दृष्टिकोण से संबद्ध अंशों का संकलन किया है। अनेक रामायण ग्रन्थ, महाकाव्य, काव्य, नाटक और चम्पू रामायण पर आश्रित हैं। अतएव कहा गया है :—

(क) न ह्यन्योर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवाद् ऋते ।

(रामा० उत्तर० ६८-१८)

(ख) मधुमयभणितीनां मार्गदर्शो महर्षिः । (रामायणचम्पू १-८)

रामायण पर आश्रित कतिपय रामायण-ग्रन्थों की रचना हुई। जिनमें प्रमुख ये हैं :—अध्यात्मरामायण (१४ वीं-१५वीं शताब्दी ई०, प्रभावित रचयिता रामानन्द), अद्भुत-रामायण, अगस्त्य-रामायण आदि। रामायण पर ही

आश्रित बौद्धों का ग्रन्थ 'दशरथ-जातक' तथा जैन-ग्रन्थ 'पउमचरित्र' (६२ ई०, रचयिता—जैन-कवि विमलसूरि) हैं।

रामायण पर आश्रित प्रमुख काव्य, नाटक, चम्पू :—(१) काव्यग्रन्थ—कालिदास-कृत रघुवंश, प्रवरसेन-कृत सेतुबन्ध, कुमारदास-कृत जानकी-हरण, भट्टिकृत भट्टिकाव्य (रावणवध), क्षेमेन्द्रकृत रामायण-मंजरी, वामनभट्ट बाणकृत रघुनाथाम्युदय। (२) नाटक-ग्रन्थ—भासकृत अमिषेक और प्रतिमा नाटक, दिङ्नागकृत कुन्दमाला, भवभूति-कृत महावीर-चरित और उत्तर-रामचरित, मुरारिकृत अनर्घराघव, राजशेखर-कृत बाल-रामायण, हनुमान्-कृत महानाटक, जयदेव-कृत प्रसन्नराघव। (३) चम्पू-ग्रन्थ—भोज-कृत रामायण-चम्पू, वेंकटा-ध्वरि-कृत उत्तर-चम्पू।

अध्याय ४

महाभारत

संक्षिप्त परिचय—भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। यह कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह भारतीय साहित्य का आकर-ग्रन्थ है, जिसमें तत्कालीन सभी सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि विषयों का समन्वय है। यह एक ओर सुललित पद्यात्मक बन्ध है तो दूसरी ओर आचार-संहिता है। इसमें चतुर्वर्ग के सभी विषय, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, प्रतिपादित हैं। महाभारत के बृहत् संस्करण में लेखक की महत्त्वाकांक्षा रही है कि उस समय का उल्लेखनीय कोई भी विषय छूट न जाए। इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के कारण ही यह 'भारत' से 'महाभारत' हो गया। महाभारत में स्वयं इस तथ्य का उल्लेख है।

धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।

यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

(महा० आदि० ६२-५३)

महाभारत के प्रमुख रचयिता व्यास (वेदव्यास या कृष्ण द्वैपायन) हैं। इसमें १८ पर्वों में कौरव-पाण्डवों का इतिहास है। जिसकी प्रमुख घटना महाभारत युद्ध है। १८ पर्वों के नाम क्रमशः ये हैं—(१) आदिपर्व, (२) सभा, (३) वन, (४) विराट्, (५) उद्योग, (६) भीष्म, (७) द्रोण, (८) कर्ण, (९) शल्य, (१०) सौप्तिक, (११) स्त्री, (१२) शान्ति, (१३) अनुशासत, (१४) आश्व-मेधिक, (१५) आश्रमवासिक, (१६) मौसल, (१७) महाप्रस्थानिक, (१८) स्वर्गरोहण। १८ पर्वों के नाम निर्मालिखित श्लोक से स्मरण किए जा सकते हैं। इसमें पर्वों के प्रथम अक्षर दिए गए हैं।

म-द्वयं श-द्वयं चैव, स-द्वयं व-द्वयं तथा ।

अ-स्वो-स्त्री-भ-द्र-काश्चैवम्, आ-त्रयी भाति 'भारते' ॥ (कपिलदेवः)

श्लोक के अनुसार १८ पर्व ये हैं। (क) म वाले २—(१) मौसल, (२) महाप्रस्थानिक, (ख) श वाले २—(३) शल्य, (४) शान्ति, (ग) स वाले

२—(५) समा, (६) सौप्तिक, (घ) व वाले २—(७) वन, (८) विराट्, (ङ) अ—(९) अनुशासन, (च) स्व—(१०) स्वर्गारोहण, (छ) उ—(११) उद्योग, (ज) स्त्री—(१२) स्त्रीपर्व, (झ) म—(१३) भीष्म, (ञ) द्र—(१४) द्रोण, (ट) क—(१५) कर्ण, (ठ) आ वाले ३—(१६) आदि, (१७) आश्वमेधिक, (१८) आश्रमवासिक ।

महाभारत की संक्षिप्त कथा—१८ पर्वों में संक्षेप में मुख्य कथानक यह है :—(१) **आदिपर्व**—चन्द्रवंश का इतिहास और कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति, (२) **सभापर्व**—द्यूतक्रीडा, (३) **वनपर्व**—पाण्डवों का वनवास, (४) **विराट्-पर्व**—पाण्डवों का अज्ञातवास, (५) **उद्योगपर्व**—श्रीकृष्ण द्वारा सन्धि का प्रयत्न, (६) **भीष्मपर्व**—अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध का प्रारम्भ, भीष्म का आहत होकर शरशय्या पर पड़ना, (७) **द्रोणपर्व**—अभिमन्यु और द्रोण का वध, (८) **कर्णपर्व**—कर्ण का युद्ध और वध, (९) **शल्यपर्व**—शल्य का युद्ध और वध, (१०) **सौप्तिकपर्व**—सोते हुए पाण्डवों के पुत्रों का अश्वत्थामा द्वारा वध, (११) **स्त्रीपर्व**—शोकाकुल स्त्रियों का विलाप, (१२) **शान्तिपर्व**—युधिष्ठिर के राजधर्म और मोक्ष-सम्बन्धी सैकड़ों प्रश्नों का भीष्म द्वारा उत्तर, (१३) **अनुशासनपर्व**—धर्म और नीति की कथाएँ, भीष्म का स्वर्गारोहण, (१४) **आश्वमेधिक पर्व**—युधिष्ठिर का अश्वमेध-अनुष्ठान, (१५) **आश्रमवासिक पर्व**—घृतराष्ट्र आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश, (१६) **मौसलपर्व**—यादवों का पारस्परिक संघर्ष से नाश, (१७) **महाप्रस्थानिक पर्व**—पाण्डवों की हिमालय-यात्रा, (१८) **स्वर्गारोहण पर्व**—पाण्डवों का स्वर्गारोहण ।

महाभारत के संस्करण—इस समय महाभारतके ४ संस्करण मुख्य रूप से प्राप्य हैं । (१) कलकत्ता-संस्करण, (२) बम्बई-संस्करण, (३) मद्रास-संस्करण, (४) पूना-संस्करण । कलकत्ता और बम्बई संस्करणों को देवनागरी-संस्करण भी कहते हैं । पूना-संस्करण आलोचनात्मक संस्करण है और सबसे प्रामाणिक माना जाता है ।

(१) **कलकत्ता संस्करण**—१८३४-३६ में प्रकाशित । इसमें हरिवंश पर्व भी सम्मिलित है । श्री प्रतापचन्द्र राय (१८८२ ई०, कलकत्ता) ने इसका गुटका संस्करण प्रकाशित कराया था और इसकी १० हजार प्रतियाँ मुफ्त बँटवाई थीं, जो एक अनुकरणीय आदर्श था । (२) **बम्बई संस्करण**—१८६२ में नीलकण्ठी टीका के साथ प्रकाशित । कलकत्ता और बम्बई संस्करणों में बहुत कम

अन्तर है। (३) मद्रास संस्करण—१८५५-१८६० ई० में मद्रास से ४ भागों में प्रकाशित हुआ है। यह तेलुगु लिपि में है। इसमें नीलकण्ठी टीका और हरिवंश भी सम्मिलित हैं। (४) पूना संस्करण—यह डा० सूक्थंकर के सम्पादकत्व में मण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से २४ बड़ी जिल्दों में प्रकाशित हुआ है। यह सबसे प्रामाणिक आलोचनात्मक संस्करण है। इसका मूल्य ६५० रु० है।

महाभारत की प्रगति के तीन चरण

महाभारत के सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण महाभारत एक व्यक्ति के हाथ की रचना नहीं है और न ही एक काल की रचना है। प्रारम्भ में मूलकथा संक्षिप्त थी। इसमें बाद में परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार इसकी प्रगति के तीन चरण माने जाते हैं। भारतीय विद्वान् भी प्रायः इस मत को मानते हैं। महाभारत मूलरूप में 'जय' काव्य था। इसमें ८,८०० श्लोक थे। यह व्यास (वेदव्यास या कृष्ण द्वैपायन) की रचना थी। उन्होंने यह रचना वैशम्पायन को सुनाई थी। यह दूसरे चरण में 'भारत' काव्य (या संहिता) हो गया। इसमें २४ हजार श्लोक हो गए थे। इसे वैशम्पायन ने अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय को उसके नागयज्ञ में सुनाया था। जनमेजय ने इस यज्ञ में वैशम्पायन से राजधर्मादि-विषयक अनेक प्रश्न पूछे थे। उन सबके उत्तर भी मूल-ग्रन्थ में सम्मिलित कर दिए गए। तृतीय चरण में यह 'महाभारत' हो गया और इसमें श्लोकों की संख्या १ लाख तक पहुँच गई। नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों ने १२ वर्षीय यज्ञ किया था। उसमें लोमहर्षण के पुत्र सौति ने सम्पूर्ण महाभारत सुनाया था। शौनक आदि ऋषियों ने जो विविध प्रश्न किए होंगे, उनके उत्तर आदि भी मूल ग्रन्थ में सम्मिलित कर लिए गए। इस लम्बे काल में प्रवचन आदि में सैकड़ों आख्यान और उपाख्यान सुनाए गए होंगे। उन सबका भी संग्रह इसमें कर लिया गया। अतः यह ग्रन्थ २४ हजार से १ लाख श्लोकों वाला हो गया। इसको सारणी के रूप में इस प्रकार रख सकते हैं :—

ग्रन्थ नाम	कर्ता	श्लोक संख्या	वक्ता-श्रोता	अवसर
जय	व्यास	८८००	व्यास-वैशम्पायन	धर्म-चर्चा
भारत	वैशम्पायन	२४ सहस्र	वैशम्पायन-जनमेजय	नागयज्ञ
महाभारत	सौति	१ लाख	सौति-शौनक आदि	नैमिषारण्य में यज्ञ

इस विषय में कुछ बातें विचारणीय हैं। जो संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(१) जय और भारत—जय और भारत वस्तुतः एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। जय और भारत में कहीं पर भी अन्तर नहीं किया गया है। उसे 'ततो जयमुदीरयेत्' (आदि० ६२-२०) में 'जय' काव्य कहा गया है और 'जय-नामेति-हासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा' (आदि० ६२-२२) में जय-नामक इतिहास-ग्रन्थ कहा गया है तथा उसी को अन्यत्र 'भारत' या 'भारत-संहिता' कहा गया है और उसकी श्लोक-संख्या २४ सहस्र बताई गई है।

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।

उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥ (महाभारत)

आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत का पृथक् उल्लेख है, किन्तु प्रसंग होने पर भी भारत से पृथक् जय का उल्लेख नहीं किया है।

(२) ८८०० पद्य—ये ८८०० श्लोक वस्तुतः कूट-पद्य हैं, न कि जय-काव्य की श्लोक-संख्या। कहीं भी ८८०० श्लोकों को 'जय' काव्य नहीं कहा गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने बिना किसी आधार के ८८०० श्लोकों का 'जय' काव्य से सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। महाभारत से ज्ञात होता है कि ये कूट-पद्य (गूढार्थ श्लोक) थे। व्यास-गणेश-संवाद में भी संकेत मिलता है कि व्यास ने बीच-बीच में कूट-पद्य दिए हैं।

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च ।

अहं वेष्टि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥ (महाभारत)

(३) भारत-महाभारत—वस्तुतः महाभारत की प्रगति के दो ही चरण हैं—(१) जय या भारत—२४ सहस्र श्लोक, उपाख्यान-रहित। उपर्युक्त 'चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना०' से यह पूर्णतया स्पष्ट है। इसके कर्ता व्यास हैं, न कि वैशम्पायन। महाभारत में उल्लेख है कि व्यास की उपस्थिति में उनके आदेशानुसार वैशम्पायन ने जनमेजय को महाभारत सुनाया था। यह महाभारत का उपाख्यान-रहित 'भारत' काव्य ही था। (२) महाभारत—१ लाख श्लोक, उपाख्यान-सहित। शौनक आदि के यज्ञ में जो महाभारत सुनाया गया वह १ लाख श्लोकों का हो गया था। इसमें मुख्य रूप से उपाख्यान

१. सुमन्तुर्जैमिनिवैशम्पायनपैल-सूत्रमाध्य-भारत-महाभारत-धर्माचार्याः ।

(आश्व० गृ० अध्याय ३ खंड ४)

का अंश बढ़ाया गया था। इसका श्रेय सौति को है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य भी महाभारत की प्रगति के दो चरण मानते हैं।^१

महाभारत का समय

वाल्मीकि-रामायण के तुल्य महाभारत के भी काल-निर्णय में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं। (१) पाश्चात्य विद्वानों का महाभारत के युद्ध को वास्तविक और ऐतिहासिक घटना न मानना। (२) महाभारत के पात्रों को ऐतिहासिक न मानना। (३) महाभारत में निर्माण-सम्बन्धी किसी तिथि का स्पष्ट उल्लेख न होना। (४) पाश्चात्य विद्वानों का महाभारत के पात्रों, महाभारत-युद्ध और महाभारत-ग्रन्थ, इन तीन पृथक् बातों को असंगत रूप से मिश्रित करना।

पुष्ट तथ्यों के अभाव में महाभारत के रचना-काल के विषय में जो मन्तव्य उपस्थित किए गए हैं, वे सर्वथा अनुमान पर आश्रित हैं। कुछ हद तक इसकी पूर्व-सीमा और अपरसीमा अवश्य निर्धारित की जा सकती है।

पूर्वसीमा—महाभारत की पूर्व-सीमा कम से कम ५०० ई० पू० माननी चाहिए। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य में महाभारत के पात्रों या घटनाओं का जो उल्लेख मिलता है, वह ऐतिहासिक महाभारत की मूल घटनाओं पर निर्भर है, जिसका समय कम से कम १ हजार ई० पू० है। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत युद्ध की घटना ३,१०० ई० पू० के लगभग मानी जाती है। वैदिक साहित्य में प्राप्त महाभारत के पात्रों और घटनाओं के उल्लेख का सम्बन्ध महाभारत-ग्रन्थ से नहीं है। जैसे—अथर्ववेद के कुन्ताप-सूक्त (कांड २० सू० १२७) में परीक्षित का उल्लेख, शांखायन श्रौतसूत्र (१५-१६) में कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों की पराजय का उल्लेख, ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु-पांचाल आदि का उल्लेख। महाभारत की पूर्वसीमा कम से कम ५०० ई० पू० मानने के कारण ये हैं:—

(१) आश्वलायन गृह्यसूत्र (३-४-४) में भारत और महाभारत दोनों का उल्लेख है। इसका समय कम से कम ४०० ई० पू० है।

(२) बौधायन गृह्यसूत्र में गीता का एक श्लोक प्रमाण रूप में उद्धृत है।

ब्रौ० गृ०—‘दिशाभावे ब्रव्याभावे साधारणे कुर्यात् मनसा वाऽर्चयेदिति,

१. संस्कृत वाङ्मयचा मोटक इतिहास, पृष्ठ १०६।

यदाह भगवान्—पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तवहं भक्त्युपहृत-
मश्नामि प्रयतात्मनः ॥ (गीता० ९-२६)

बौधायन धर्मसूत्र (२-२-२६) में भी महाभारत की चर्चा है। इनका समय कम से कम ४०० ई० पू० है। अतः महाभारत इससे पूर्ववर्ती है।

(३) भास (४५० ई० पू० के लगभग) के ६ नाटक—दूत-वाक्य, कर्णभार, पंचरात्र, ऊरुभंग आदि—महाभारत पर आश्रित हैं। अतः महाभारत ४५० ई० पू० से पूर्ववर्ती है।

(४) पाणिनि (४५० ई० पू० के लगभग)^१ ने महाभारत के कतिपय पात्रों—युधिष्ठिर, भीम, विदुर आदि—की व्युत्पत्ति दी है। साथ ही महाभारत शब्द की सिद्धि भी दी है।^२ अतः महाभारत की सत्ता ५०० ई० पू० से पूर्व सिद्ध होती है। पतञ्जलि (१५० ई० पू०) ने महाभारत-युद्ध का वर्णन विस्तार से दिया है।

(५) महाभारत में शान्ति-पर्व (३३६-१००) में दस अवतारों के वर्णन में बुद्ध का नाम नहीं है। अतः महाभारत बुद्ध (५६३ ई० पू०-४८३ ई० पू०) के समय से पूर्व की रचना है।

अपर सीमा—कतिपय प्रमाणों से ज्ञात होता है कि १ लाख श्लोकों वाला महाभारत प्रथम शताब्दी ई० में विद्यमान था।

(१) अश्वघोष (७८ ई० के लगभग) ने ब्रजसूचिकोपनिषद् में महाभारत और हरिवंश-पर्व के श्लोक उद्धृत किए हैं।^३ हरिवंश से उद्धरण का अभिप्राय है कि महाभारत १ लाख श्लोकों वाला प्रचलित था।

(२) डायो क्रायसोस्टोम (Dio chrysostom) नाम का एक यूनानी लेखक ५० ई० में पाण्ड्य देश (दक्षिण) में आया था। उसने अपने संस्मरण में यह लिखा है कि भारत में १ लाख श्लोकों वाला इलियड है। यह इलियड वस्तुतः महाभारत का ही सूचक है। डा० वेबर (Weber), होल्त्समान (Holtzmann), पिशेल (Pischel), रॉलिनसन (Rawlinson) आदि ने भी डायो

१. वासुदेवशरण अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ४६७ से ४८०।

२. देखो, अष्टाध्यायी, महान् ब्रीह्य० (६-२-३८), ८-३-६५, ३-२-१६२।

३. महा० शान्ति० २६१-१७, हरिवंश० २४-२० से २१।

के इलियड को महाभारत माना है।^१ श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी इस तथ्य को देते हुए वर्तमान महाभारत का समय प्रथम शताब्दी ई० दिया है।

(३) अनेक विद्वानों ने द्वितीय और तृतीय शताब्दी ई० के बाद १ लाख श्लोकों वाले महाभारत का उल्लेख करने वाले सन्दर्भों का संग्रह किया है। प्रो० हॉपकिन्स^२ (Hopkins) और प्रो० सिल्वी लेवी^३ (Sylvan Levi) ने जो सन्दर्भ दिए हैं, उनमें से कुछ ये हैं:—(क) कुमारिल भट्ट (७०० ई०) ने महाभारत को स्मृति-ग्रन्थ माना है और प्रायः सभी पर्वों से उद्धरण दिए हैं। (ख) सुबन्धु (६०० ई०) और बाण (६०८-६४० ई०) ने भी महाभारत का उल्लेख किया है। (ग) गुप्त-काल के एक शिलालेख (४४२ ई०) में महाभारत को 'शतसाहस्री संहिता' कहा है। (घ) ४५० से ५०० ई० के दानपत्रों में महाभारत को—'शतसाहस्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्' कहा गया है। (ङ) कम्बोडिया के ६०० ई० के एक शिलालेख में महाभारत का उल्लेख है।

निष्कर्ष—अतः यह कहा जा सकता है कि महाभारत का मूलरूप कम से कम ५०० ई० पू० में तैयार हो चुका था और उसका परिवर्धित १ लाख श्लोक वाला रूप प्रथम शताब्दी ई० में पूर्ण हो चुका था। महाभारत में ५ वीं, ६ठीं शताब्दी ई० तक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते रहे हैं।

महाभारत की शैली

महाभारत एक प्रौढ आकर-ग्रन्थ है। इसकी भाषा और शैली में रामायण सा परिष्कार अवश्य नहीं है, परन्तु इसमें उत्तुंग-न्तरंग-तरंगिता तरंगिणी के तुल्य वह प्रवाह, प्रसाद और प्रवेग है, जो अपनी प्रबल प्रवाह-धारा में बहाकर अहृदय को सहृदय, नीरस को सरस, अबोध को सुबोध, अज्ञ को विज्ञ, अकुशल को कुशल, अनीतिज्ञ को नीतिज्ञ, अव्यवहार-पटु को व्यवहार-पटु, पापात्मा को पुण्यात्मा और अन्ततः नर को नारायण बना देता है।

भाषा—महाभारत की शैली पांचाली है। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते' (सा० द० परि० ६)। इसमें शब्दों और अर्थों का

१. देखो—विन्टरनिट्स—H. I. L. टिप्पणी भाग १, पृ० ४६५।

२. हॉपकिन्स—कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग १, पृ० २५८।

३. सिल्वी लेवी—जर्नल एसियाटिक, १९१५, पृ० १२२।

सुन्दर समन्वय है। भाषा में सरलता, सरसता, रोचकता और प्रवाह है। भाव और रस के अनुसार भाषा का वैविध्य भी परिलक्षित होता है। यथा—

(क) मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।

(उद्योग० १३३-१५)

(ख) कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।

इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम् ॥

(उद्योग० १३२-१६)

छन्द—महाभारत में प्रमुख छन्द अनुष्टुप् (श्लोक) है, किन्तु स्थान-स्थान पर इन्द्रवज्रा, उपजाति और वंशस्थ का भी प्रयोग मिलता है। अनुष्टुप् का प्रयोग धारावाहिक मिलता है।

रस—महाभारत में प्रायः सभी रसों का प्रयोग है, परन्तु वीर, अद्भुत और शान्त रस प्रमुख हैं। शृंगार का प्रयोग कम और संयत भाषा में है। इसमें वीर रस अंगी है, अन्य रस अंग। उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य, इन ५ पर्वों में वीर-रस की ही अक्षुण्ण धारा प्रवाहित होती है।

अलंकार—महाभारत में अलंकार के लिए अलंकारों का प्रयोग कहीं नहीं है। भाषा के प्रवाह में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों के दर्शन होते हैं। अनुप्रास और यमक के अनेक प्रयोग हैं। अर्थान्तरन्यास का तो यह मंडार ही है। अनुप्रास का उदाहरण, यथा—भीमो भीमपराक्रमः, अशोकः शोकनाशनः स तोय इव तोयदः।

उपमा का प्रयोग। जैसे—

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।

मालाकार इवारामे, न यथाऽङ्गरकारकः ॥

(उद्योग० ३४-१८)

अर्थगौरव—महाभारत में नीति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान और तत्त्वज्ञान के अर्थगौरव तथा अर्थान्तरन्यास के सहस्रों उदाहरण हैं। यहाँ पर कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उदाहरण दिए जा रहे हैं।

(क) नीतिशिक्षा। यथा—

(१) यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-

स्तस्मिस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः

साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ (उद्योग० ३७-७)

- (२) वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ (उद्योग० ३६-३०)
- (३) सुलभाः पुरुषा राजन्, सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ (उद्योग० ३७-१५)
- (४) अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्, असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन, जयेत् सत्येन चानृतम् ॥ (उद्योग० ३६-७३)
- (५) न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च ॥ (शान्ति० ५७-१७)

(ख) अर्थशास्त्रीय सूक्तियां । यथा—

- (१) धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवन्ति धनिनो लोके, मृता ये त्वधना नराः ॥ (उद्योग० ७१-३१)
- (२) अर्थः कामश्च स्वर्गश्च, हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः ।
अथदितानि सर्वाणि, प्रवर्तन्ते नराधिप ॥ (शान्ति० ८-२१)
- (३) धनात् कुलं प्रभवति, धनाद् धर्मः प्रवर्धते ।
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम ॥ (शान्ति० ८-२२)
- (४) यः कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः ।
स वै राजन् कृशो नाम, न शरीरकृशः कृशः ॥ (शान्ति० ८-२४)

(ग) राजनीति एवं कूटनीति-विषयक सूक्तियां । यथा—

- (१) सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारोहः ।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥ (उद्योग० ३४-२५)
- (२) अप्रियं यस्य कुर्वीत भृशं तस्य प्रियं चरेत् ।
अचिरेण प्रियः स स्याद् योऽप्रिये प्रियमाचरेत् ॥ (शान्ति० ६३-८)

(३) राजा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते ।
यद्यदाचरते राजा, तत् प्रजानां स्म रोचते ॥ (शान्ति० ७५-४)

(४) यद् राष्ट्रेऽकुशलं किञ्चिद् राज्ञो रक्षयतः प्रजाः ।
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा भारत विन्वति ॥
(शान्ति० ७५-८)

(५) राजा प्रजानां प्रथमं शरीरं
प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम् ।
राजा विहीना न भवन्ति देशा
देशैर्विहीना न नृपा भवन्ति ॥ (शान्ति० ६७-५६)

(घ) दर्शन एवं अध्यात्म-विषयक सूक्तियां । यथा—

(१) बन्धुरात्मात्मनस्तस्य, येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ (उद्योग० ३४-६६)

(२) रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्
आत्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्बान्तिः सुखं याति रथीव धीरः ॥
(उद्योग० ३४-६०)

(३) शुभ्रूषा श्रवणं चंद्रं, ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं, तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ (वन० २-१६)

(४) यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं, यः सर्वं सर्वतश्च यः ।
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥
(शान्ति० ४६-८६)

(ङ) महाभारत में गूढार्थक कूट-पद । यथा—

(१) न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति
वेद्येन वेदं न विदुर्न वेद्यम् ।
यो वेद वेदं न स वेद वेद्यं
यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम् ॥ (उद्योग० ४३-५४)

(२) नवद्वारमिदं वेदम्, त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान्, यो वेद स परः कविः ॥
(उद्योग० ३३-१०७)

(३) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा

लिङ्गस्य योगेन च याति नित्यम् ।

तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं

पश्यन्ति मूढा न विराजमानम् ॥

(उद्योग० ४६-१५)

(४) प्राणस्यान्नमिदं सर्वमिति वै कवयो विदुः ।

स्थावरं जंगमं चैव, सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥

(शान्ति० १०-६)

(५) आत्मा रूरो हृदये मानवानां

स्वं स्वं वेहं परवेहं च हन्ति ।

वातोत्पातैः सदृशं रुद्रमाहु-

र्वे जीमूतैः सदृशं रूपमस्य ॥

(शान्ति० ७३-५७)

महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व

रामायण के पश्चात् महाभारत ही सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यदि वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाए तो महाभारत सांस्कृतिक दृष्टि से रामायण से भी बढ़कर है। संस्कृति और सम्यता का महाभारत में जितना विशुद्ध चित्रण मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी ग्रन्थ में दुर्लभ है। महाभारत का वास्तविक सांस्कृतिक महत्त्व भगवद्गीता के कारण है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिए न केवल आचार-संहिता है, अपितु वेद के समकक्ष एक धर्मग्रन्थ है। आर्यधर्म के सभी भेद-उपभेद गीता की प्रामाणिकता पर नाममात्र भी सन्देह नहीं करते। सत्य तो यह है कि गीता आर्य-धर्म को समन्वित एवं सूत्र-बद्ध करने वाली शृंखला है। महाभारत एक नहीं, अनेक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण, राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, भौगोलिक अनेकता में एकता, जीवन-दर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, महिलाओं में अबलात्व के परित्याग की प्रवृत्ति, राजनीति-कूटनीति-व्यभिचीति-दण्डनीति और अनीति का व्यावहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वांगीण निरूपण, आख्यान-साहित्य का अक्षय कोष, नीति-शास्त्र की बहुमूल्य निधि एवं चतुर्वर्ग की सभी

समस्याओं का समाधान है। इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है तो दूसरी ओर मोक्ष-धर्म का, एक ओर अशान्ति है तो दूसरी ओर शान्ति-चर्चा, एक ओर कर्म-मार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान-मार्ग, एक ओर दुर्योधन जैसा सहज-शत्रु है तो दूसरी ओर युधिष्ठिर जैसा अजातशत्रु, एक ओर भीष्मपितामह जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तो दूसरी ओर शिखण्डी जैसे क्लीब, एक ओर अभिमन्यु जैसा कर्मशूर है तो दूसरी ओर अश्वत्थामा जैसा वाक्शूर, एक ओर श्रीकृष्ण जैसे योगिराज और नीति-निपुण हैं तो दूसरी ओर दुःशासन जैसा दुश्चरित्र और नीति-विध्वंसक, एक ओर विदुर जैसे ज्ञानी और पवित्रात्मा हैं तो दूसरी ओर शकुनि जैसे छद्मजीवी, एक ओर भीम जैसा पराक्रमी महारथी है तो दूसरी ओर जयद्रथ जैसा कायर। इस प्रकार महाभारत में विरोधी गुणों का समावेश है। इसमें विरूपता में एकरूपता, अनेकता में एकता, विशृंखलता में समन्वय, व्यवहार में आदर्श, अशान्ति में शान्ति, प्रेय में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।

महाभारत का परकालीन साहित्य पर प्रभाव

महाभारत आख्यान, नीति, धर्म और सांस्कृतिक तथ्यों का आकर-ग्रन्थ है। महाभारत की रोचकता, सरलता, सरसता और विद्वत्ता ने परकालीन साहित्यकारों को इतना प्रभावित किया कि वे महाभारत को अपना प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ मानने लगे। किसी ने आख्यान लिया है, किसी ने धार्मिक तत्त्व, किसी ने सांस्कृतिक तत्त्व और किसी ने चरित्र-चित्रण। इस प्रकार यह सबसे प्रमुख उपजीव्य काव्य हो गया। स्वयं महाभारत में इसकी उपजीव्यता का अनेक प्रकार से उल्लेख है।

(क) सर्वेषां कविमुल्यानामुपजीव्यो भविष्यति ।

पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥

(महा० आदि० १-१०८)

(ख) इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः ।

पञ्चम्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः ॥

(आदि० २-३८६)

(ग) इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते ।

उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥

(आदि० २-३६०)

महाभारत पर आश्रित प्रमुख ग्रन्थ ये हैं :—

(१) काव्य-ग्रन्थ—मारवि-कृत किरातार्जुनीय, माघ-कृत शिशुपालवध, क्षेमेन्द्र-कृत भारत-मंजरी, श्रीहर्ष-कृत नैषधीय-चरित, वामनभट्ट बाणकृत नलाम्युदय । (२) नाटक-ग्रन्थ—भास-कृत द्रुत-घटोत्कच, द्रुतवाक्य, कर्णभार, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र और उरुमंग; कालिदास-कृत अभिज्ञानशाकुन्तल, भट्टनारायण-कृत वेणीसंहार, राजशेखर-कृत बाल-भारत । (३) चम्पू-ग्रन्थ—त्रिविक्रमभट्ट-कृत नलचम्पू, अनन्तभट्ट-कृत भारत-चम्पू, नारायणभट्ट-कृत पांचाली-स्वयंवर-चम्पू, राजचूडामणि दीक्षित-कृत भारत-चम्पू, चक्रकवि-कृत द्रौपदी-परिणय-चम्पू ।

रामायण और महाभारत की तुलना

रामायण और महाभारत में कितनी ही बातों में समानता है और कई बातों में विषमता । दोनों ही भारतीय संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ हैं । दोनों ने सहस्रों वर्षों से भारतीय जन-जीवन को प्रभावित किया है और आज भी उनका प्रभाव अक्षुण्ण है । एक में आदर्श है तो दूसरे में व्यवहार, एक में धर्म है तो दूसरे में कर्म, एक में सदाचार और नैतिकता है तो दूसरे में राजनीति और कूटनीति, एक में भ्रातृप्रेम का आदर्श है तो दूसरे में भ्रातृ-द्वेष का चरमोत्कर्ष, एक में सदाचार और संयम की प्रमुखता है तो दूसरे में अनैतिकता और अनाचार का प्राबल्य, एक में त्याग की महिमा है तो दूसरे में अर्थ-लीलुपता, एक में सत्यनिष्ठा है तो दूसरे में छल-प्रपंच, एक में देवत्व है तो दूसरे में मनुष्यत्व । दोनों में प्राप्य समानताएँ और विषमताएँ संक्षेप में नीचे दी जा रही हैं :—

समानताएँ

रामायण

१. धार्मिक ग्रन्थ है ।
२. ऐतिहासिक महाकाव्य है ।
३. आचार-संहिता है ।
४. चतुर्वर्ग का वर्णन है ।
५. राजसभा से ग्रन्थ का प्रारम्भ ।
६. सीता-स्वयंवर ।
७. स्वयंवर में धनुर्विद्या-परीक्षा ।
८. राम को १४ वर्ष का वनवास ।

महाभारत

१. धार्मिक ग्रन्थ है ।
२. ऐतिहासिक महाकाव्य है ।
३. आचार-संहिता है ।
४. चतुर्वर्ग का वर्णन है ।
५. राजसभा से ग्रन्थ का प्रारम्भ ।
६. द्रौपदी-स्वयंवर ।
७. स्वयंवर में धनुर्विद्या-परीक्षा ।
८. पाण्डवों को १३ वर्ष का वनवास ।

- | | |
|---|---|
| ६. सीता-हरण प्रमुख घटना । | ६. द्रौपदी-वस्त्र-हरण प्रमुख घटना । |
| १०. सीता के कारण महायुद्ध । | १०. द्रौपदी के कारण महायुद्ध । |
| ११. युद्ध में माया एवं दिव्यास्त्र-प्रयोग । | ११. युद्ध में माया एवं दिव्यास्त्र-प्रयोग । |
| १२. सत्य की विजय । | १२. सत्य की विजय । |
| १३. मुमूर्षु रावण से नीति-शिक्षा-ग्रहण । | १३. मुमूर्षु भीष्म से नीति-शिक्षा-ग्रहण । |
| १४. राम का राज्याभिषेक । | १४. युधिष्ठिर का राज्याभिषेक । |
| १५. राम द्वारा अश्वमेध । | १५. युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध । |
| १६. अनुष्टुप् छन्द प्रमुख । | १६. अनुष्टुप् छन्द प्रमुख । |
| १७. विविध आख्यान और वंश-वलियाँ । | १७. विविध आख्यान और वंश-वलियाँ । |
| १८. उपजीव्य काव्य । | १८. उपजीव्य काव्य । |

विषमताएँ

रामायण

१. कथा सुसंबद्ध ।
२. शैली परिष्कृत, सुन्दर ।
३. नायक एक, राम ।
४. नायक, नायिका आदर्शवादी ।
५. वर्णाश्रम-व्यवस्था कठोर ।
६. संस्कृति की एकरूपता ।
७. राजनीतिक स्थिति, राजतंत्र ।
८. दक्षिण में सभ्य राजाओं का अभाव ।
९. वैदेशिक जातियों का अभाव ।
१०. दक्षिण में उच्च संस्कृति का अभाव ।

महाभारत

१. कथा असंबद्ध एवं संग्रहमात्र ।
२. शैली अपरिष्कृत, ऊबड़-खाबड़ ।
३. नायक अनेक, दुर्योधन, युधिष्ठिर, कृष्ण आदि ।
४. पात्र प्रतिक्रियावादी ।
५. वर्णाश्रम-व्यवस्था शिथिल ।
६. संस्कृति की अनेकरूपता ।
७. गणतन्त्रों का प्रादुर्भाव ।
८. दक्षिण में सभ्य राज्य ।
९. अनेक वैदेशिक जातियों की सत्ता ।

१०. दक्षिण में उच्च संस्कृति ।

विषमताएँ

रामायण

महाभारत

- | | |
|---|--|
| ११. करुणा, भावुकता, सरलता और संयम । | ११. दर्प, औद्धत्य, उग्रता और तेजस्विता । |
| १२. धर्म-प्रधान । | १२. कर्म-प्रधान । |
| १३. केवल भारतेतर लंका से परिचय । | १३. अनेक विदेशों से परिचय । |
| १४. एक ही पति । | १४. अनेक पति । |
| १५. स्त्रियाँ सरल, निष्कपट । | १५. स्त्रियाँ उद्धत, गर्विता, राग-द्वेष-परिपूर्ण । |
| १६. भ्रातृ-प्रेम का आदर्श । | १६. भ्रातृ-द्रोह का चरमोत्कर्ष । |
| १७. अग्रज-भक्ति एवं अनुशासन । | १७. अग्रज के प्रति अनुशासनहीनता । |
| १८. भरत का राज्य-त्याग । | १८. दुर्योधन की राज्य-लिप्सा । |
| १९. अपहृता सीता की अग्नि-परीक्षा । | १९. अपहृता द्रौपदी की कोई परीक्षा नहीं । |
| २०. पुरुष एवं स्त्री पात्रों में चारित्रिक आदर्श । | २०. पुरुष एवं स्त्री पात्रों में चारित्रिक आदर्श का अभाव । |
| २१. सती-प्रथा का अभाव । | २१. सती-प्रथा का प्रचलन । |
| २२. युद्ध में धर्म का अनुशासन । | २२. युद्ध में छल-कपट भी । |
| २३. युद्ध में उत्तेजनापूर्ण अपशब्दों का प्रयोग वर्जित । | २३. युद्ध में अपशब्दों का प्रयोग सामान्य बात । |
| २४. युद्ध में व्यूह-रचना नहीं थी । | २४. युद्ध में अनेक प्रकार के व्यूहों की रचना । |
| २५. विदेशी प्रभाव नहीं । | २५. विदेशी प्रभाव है । |
| २६. समसामयिक राजनीतिक-स्थिति आदि का तथ्य-वर्णन नहीं । | २६. सम-सामयिक राजनीतिक स्थिति का वर्णन । |
| २७. सत्ययुग की झाँकी मिलती है । | २७. कलियुग की झाँकी मिलती है । |
| २८. संकुचित एवं आदर्शवादी दृष्टि-कोण । | २८. व्यापक और व्यावहारिक दृष्टिकोण । |

अध्याय ५

महाकाव्य

महाकाव्य के लक्षण

मामह (७०० ई०) ने मामहालंकार (१-१८-२३) में, दण्डी (७वीं शताब्दी) ने काव्यादर्श (१-१४-२२) में, अग्निपुराण (अध्याय ३३७) में और विश्वनाथ (१३५० ई०) ने साहित्य-दर्पण (६-३१५ से ३२५) में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। साहित्य-दर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वांगीण और व्यापक है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण है^१ :—

(१) यह सर्गों में विभक्त होता है। (२) इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं। (३) शृंगार, वीर और शान्त-रस में से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक। (४) इसमें सभी नाटकीय संघर्षाँ होती हैं। (५) इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से संबद्ध। (६) इसमें चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥३१५॥

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥३१६॥

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।

अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंघयः ॥३१७॥

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥३१८॥

आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्षा वस्तुनिर्देश एव वा ।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥३१९॥

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥३२०॥

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥३२४॥

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥३२५॥

(सा० द० परि० ६)

का वर्णन होता है और उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है। (७) प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु-निर्देश होता है। कहीं दुर्जन-निन्दा और सज्जन प्रशंसा भी रहती है। (८) प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं, किन्तु अन्त में छन्द-परिवर्तन हो जाता है। (९) इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न बहुत छोटे और न बड़े होते हैं। (१०) कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी होते हैं। (११) सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत होता है। (१२) इसमें इन चीजों के वर्णन रहते हैं :—सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष (गोघूलिवेला), अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र (राजनीति के ६ अंग), पुत्र, उदय (उत्थान) आदि। (१३) ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए। (१४) सर्गों का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिए। आर्ष महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) में सर्गों का नाम आख्यान पर निर्भर होता है।

उदाहरण के रूप में रामायण और महाभारत में उपर्युक्त सभी तत्त्वों का समावेश है। रामायण, महाभारत और रघुवंश में अनेक नायक हैं। रामायण आदि का कथानक ऐतिहासिक है। रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध और नैषधीयचरित महाकाव्य के सभी लक्षणों के सुन्दर दृष्टान्त हैं। इनमें वीर या शृंगार रस मुख्य है। एक सर्ग में एक ही छन्द है, अन्त में छन्द-परिवर्तन हो जाता है। इनमें ८ से अधिक सर्ग हैं। साथ ही सूर्योदय, चन्द्रोदय, प्रातःकाल, सायंकाल, मृगया, विवाहादि का वर्णन है। रामायण, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषध० नायक के नाम पर हैं; किराता० और शिशुपाल-वध आदि कथानक के नाम पर हैं; भट्टिकाव्य कवि के नाम पर है। इनमें सर्गों के नाम वर्णित कथा के आधार पर हैं। जैसे—इति श्रीरघुवंशे महाकाव्ये रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः।

महाकाव्यों का उद्भव और विकास

महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान-सूक्तों, इन्द्र, वरुण, विष्णु और उषा आदि के स्तुति-मन्त्रों तथा नाराशंसी और गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन आख्यानों आदि का बृहद् रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गए हैं।

रामायण और महाभारत के बाद कालिदास की उत्पत्ति तक जो महाकाव्य लिखे गए थे, वे केवल नाममात्र ही शेष हैं। कालिदास की अलौकिक प्रतिभा और व्युत्पत्ति ने सभी पूर्ववर्ती काव्यों और महाकाव्यों को निष्प्रम कर दिया। फलस्वरूप उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त-सा हो गया। इस काल के कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

(१) पाणिनि (४५० ई० पू०) कृत जाम्बवती-जय या पाताल-विजय। इसमें १८ सर्गों में श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय और परिणय की कथा वर्णित है।

(२) वररुचि (३५० ई० पू०) ने 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य बनाया था। इसे पतञ्जलि (४-३-१०१) ने 'वाररुचि काव्यम्' कहकर संबोधित किया है। समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' काव्य में इसका उल्लेख है।

(३) महामाष्यकार पतञ्जलि (१५० ई० पू०) ने भी इसी शृंखला में 'महानन्द-काव्य' लिखा है। समुद्रगुप्त ने 'कृष्णचरित' की प्रस्तावना में लिखा है कि पतञ्जलि ने योगशास्त्र की व्याख्या के रूप में 'महानन्द' नामक काव्य लिखा।

इसके पश्चात् महाकवि कालिदास का काव्याकाश में उदय होता है। कालिदास को ही वस्तुतः प्रौढ, परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज्ञ काव्य-शैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उसने जो आदर्श उपस्थित किए, वह परकालीन कवियों और महाकवियों के लिए अनुकरणीय हुए। सरस, सालंकार एवं उच्च कल्पनाओं से ओत-प्रोत कविता की निर्झरिणी कालिदास-शैल-शिखर से ही प्रवाहित होती है। इसी शृंखला में महाकवि भारवि, माघ और श्रीहर्ष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१. नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।

आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ॥

(राजशेखर)

२. यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि ।

काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः ॥

३. गतंजलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा ॥.....

महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम् ।

योगव्याख्यानभूतं तद् रचितं चित्तदोषहम् ॥

(युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ३१७) ।

महाकाव्यों के विकास के इतिहास को दो दृष्टि से उपस्थित किया जा सकता है—(१) रूपगत-विकास, (२) शैलीगत-विकास ।

(१) रूपगत विकास—इसके ३ स्तर हैं :—(क) वैदिक काल—सरल आख्यान, देवस्तुति आदि । इनमें भाव-प्रधानता है । (ख) वीर-महाकाव्य-काल—इसमें रामायण और महाभारत हैं । इनमें भाव और आख्यान तत्त्वों की प्रधानता है । (ग) लौकिक-महाकाव्य-काल—इसमें कालिदास तथा परवर्ती काव्यकार हैं । इनके काव्यों में भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-तत्त्व अधिक उदात्त है ।

(२) शैलीगत विकास के भी ३ स्तर हैं :—(क) प्रसादात्मक शैली—यह रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि में प्राप्त है । इसमें सरलता, सरसता और अर्थ-गाम्भीर्य पर अधिक बल है । (ख) अलंकारात्मक शैली—यह भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के सालंकृत काव्यों में मुख्यतया प्राप्य है । (ग) श्लेषात्मक शैली—यह द्व्यर्थक और त्र्यर्थक काव्यों में प्राप्य है । इस शैली के काव्य हैं—घनंजय-कृत—द्विसन्धान-काव्य, कविराज सूरिकृत—राघवपाण्डवीय, हरिदत्त सूरि-कृत—राघवनेषधीय । विद्यमाधव-कृत—पार्वतीरक्षिमणीय (ये द्व्यर्थक काव्य हैं) । राजचूडामणि-दीक्षित-कृत राघव-यादव-पाण्डवीय तथा चिदम्बर सुमति-कृत राघव-पाण्डव-यादवीय (ये त्र्यर्थक काव्य हैं) ।

(क) कालिदास

(१) जीवन-वृत्त

महाकवि कालिदास के जीवन-वृत्त के विषय में कोई भी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है । महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में, महाकवि बाण के तुल्य, अपने जीवन के विषय में कोई सामग्री नहीं दी है, अतः अन्तःसाक्ष्य का अभाव है । परवर्ती काव्यों, महाकाव्यों या नाटकों में भी कहीं कालिदास के जीवन के विषय में कोई उल्लेख नहीं है, अतः बहिःसाक्ष्य का भी प्रायः अभाव है । केवल कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनके आधार पर कालिदास के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है । संक्षेप में किंवदन्तियाँ ये हैं :—

(१) विद्योत्तमा-वृत्त—किंवदन्ती है कि महाकवि कालिदास बाल्यकाल में अत्यन्त मूर्ख थे । अपने समय की सर्वोत्तम विदुषी और ज्ञानगविता विद्योत्तमा नाम की एक राजकुमारी के साथ उनके विवाह का षड्यन्त्र रचा गया । पण्डितों

ने मूक-शास्त्रार्थ का अयोजन किया और उसमें कालिदास को विजयी घोषित किया। विवाह के पश्चात् पत्नी के द्वारा तिरस्कृत होने पर कालिदास ने काली-देवी की उपासना की और विद्या का वरदान प्राप्त कर घर लौटे। कालिदास ने पत्नी से 'अनावृतकपाटं द्वारं देहि' (दरवाजा खोलो) कहा। उत्तर में पत्नी ने कहा—'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' (वाणी में अब कुछ विशेषता आ गई है)। कालिदास पत्नी के इस वाक्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उपर्युक्त वाक्य के तीन शब्दों को लेकर एक-एक से एक-एक काव्य की रचना कर डाली। अस्ति से कुमारसंभव (अस्त्युत्तरस्यां दिशि०, कु० १-१), कश्चित् से मेघदूत (कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा०, मे० १-१), वाग् से रघुवंश (वागर्थविव संपृक्तौ०, रघु० १-१)।

(२) नवरत्न-वृत्त—ज्योतिर्विदामरण में एक श्लोक उपलब्ध होता है कि विक्रमादित्य की समा में ६ रत्न थे, जिसमें से एक कालिदास भी थे।

धन्वन्तरि-क्षपणका-मरसिंह-शङ्कु-

वेतालभट्ट-घटकर्पर-कालिदासाः

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां

रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

(२२-१०)

यह विक्रमादित्य कौन हैं, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है।

(३) भोज-वृत्त—किंवदन्ती है कि घारा के राजा भोज (१००५ ई०—१०५४ ई०) के प्रधान कवि कालिदास थे। राजा भोज संस्कृत-भाषा के आश्रय-दाता नरेशों में से सर्वाग्रणी हैं। 'भोजप्रबन्ध' ग्रन्थ में राजा भोज और कालिदास की घनिष्ट मित्रता का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार आद्य शंकराचार्य के नाम से शंकराचार्य की गढ़ियाँ बनीं और उन पर बैठने वाले संन्यासियों को शंकराचार्य कहा जाता है, उसी प्रकार आद्य कालिदास के नाम पर राज-कवियों को कालिदास कहने की परम्परा चल पड़ी। राजा भोज के आश्रित राजकवि 'पद्मगुप्त' या 'परिमल कालिदास' को भी इसी प्रकार कालिदास कहा गया है। वे रघुवंश-आदि के लेखक आद्य कालिदास नहीं हैं।

(४) कुमारदास-वृत्त—किंवदन्ती है कि कालिदास का अन्तिम समय लंका के महाराज कुमारदास (५०० ई०) के यहाँ बीता। वहाँ पर घन के लोभ में एक वेश्या ने उनकी हत्या करा दी।

जन्म-स्थान—कालिदास के जन्मस्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। काश्मीर के विद्वान् उनको काश्मीरी सिद्ध करते हैं, बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी-निवासी। मेघदूत में कालिदास ने उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह और आदर-भाव प्रदर्शित किया है, इससे ज्ञात होता है कि वे उज्जयिनी के निवासी थे या अधिक समय तक उज्जयिनी में रहे। मेघदूत में उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य, सिप्रा नदी और महाकाल के मन्दिर का विशेष भावुकता के साथ वर्णन मिलता है।

अन्य परिचय—कालिदास के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे। अन्य देवों के प्रति भी उनका आदर भाव था। रघुवंश और मेघदूत के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी। अतएव उनके भौगोलिक वर्णन सत्य, स्वाभाविक और मनोरम हुए हैं। उनका भौतिक जीवन सुखमय था। उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं था, अतः उनके ग्रन्थों में घनहीनता या दारिद्र्य का वर्णन नहीं मिलता है। उनका राज-परिवारों से संपर्क था। अतएव उन्हें राज-द्वारों और राजकीय जीवन का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। अपने जीवन-काल में ही उन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी। उन्होंने स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया है, किन्तु वे कामुकता और विषय-वासनामय जीवन को श्रेयस्कर नहीं मानते। वे शारीरिक सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम को वास्तविक प्रेम नहीं मानते, अपितु हार्दिक और तपोमूलक प्रेम को ही प्रेम मानते हैं।

उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीत-शास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, काव्य-शास्त्र आदि का गंभीर अध्ययन किया था।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि राजकवियों को कालिदास कहने की परम्परा चल पड़ी थी। सभी का उपनाम कालिदास था। कालिदास उपनाम वालों के भी कई ग्रन्थ हैं और वे सभी कालिदास की रचनाएँ कही जाती हैं। राजशेखर ने ऐसे तीन कालिदासों का उल्लेख किया है।

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।

शृङ्गारे ललितोद्गारे, कालिदासत्रयी किमु ॥

कालिदास की ७ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं :—(क) नाटक—(१) अभिज्ञान-शाकुन्तल, (२) विक्रमोर्वशीय, (३) मालविकाग्निमित्र, (ख) काव्य-ग्रन्थ—

(४) रघुवंश, (५) कुमारसंभव, (ग) गीति-काव्य—(६) मेघदूत, (७) ऋतु-संहार । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियाँ भी कालिदास की रचना बताई जाती हैं :—(१) कालीस्तोत्र, (२) गङ्गाष्टक, (३) ज्योतिर्विदामरण, (४) राक्षस-काव्य, (५) श्रुतबोध । इनको लेते हुए ४१ ग्रन्थ कालिदास की रचना बताए जाते हैं । वस्तुतः उपर्युक्त ७ ग्रन्थों को छोड़कर शेष रचनाएँ आद्य कालिदास की न होकर परवर्ती कालिदास उपनाम वाले कवियों की रचनाएँ समझनी चाहिएँ, क्योंकि ये रचनाएँ भाव, भाषा, शैली, प्रौढ़ता आदि की दृष्टि से न्यून स्तर की हैं ।

कालिदास की सभी रचनाओं को कालक्रम की दृष्टि से इस प्रकार रखा जा सकता है :—(१) ऋतुसंहार, (२) कुमारसंभव, (३) मालविकाग्निमित्र, (४) विक्रमोर्वशीय, (५) मेघदूत, (६) रघुवंश, (७) अभिज्ञानशाकुन्तल ।

(२) कालिदास का समय

कालिदास के समय के विषय में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है । कालिदास ने स्वयं या उनके समकालीन किसी भी लेखक ने उनके विषय में कुछ नहीं लिखा है । उनके समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किए गए हैं, वे अनुमान पर आवृत हैं । कालिदास के समय के विषय में केवल एक तथ्य अकाट्य माना जाता रहा है, वह है कालिदास का विक्रमादित्य के नवरत्नों में होना । किन्तु विक्रमादित्य राजा कौन है ? यह प्रश्न भी उतना ही उलझा हुआ है । एक ओर अधिकांश भारतीय विद्वान् शकारि एवं विक्रमीय संवत् के संस्थापक उज्जयिनी के राजा, विक्रमादित्य-नामक सम्राट्, ५७ ई० पू० में विद्यमान, को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं; दूसरी ओर पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वान् 'विक्रमादित्य' उपाधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१३ ई०) को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं । ये ही दो मत प्रमुख हैं ।

छठी शताब्दी ई० का मत—उपर्युक्त दो मतों के अतिरिक्त प्रो० फर्गुसन (Fergusson) ने कालिदास का समय छठी शताब्दी ई० निर्धारित किया था । उनका तर्क था—रघुवंश में हूणों का उल्लेख है । ५०० ई० में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया था । हर्ष विक्रमादित्य ने हूणों और शकों को हराया था । हर्ष ने ही अपने संवत् को प्राचीन बनाने के लिए ६०० वर्ष प्राचीन विक्रम

संवत् नाम दिया, जो ५७ ई० पू० से प्रारम्भ हुआ। अतः कालिदास का समय ५०० ई० के बाद मानना चाहिए।

इन मत पर निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं :—(१) इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि ६०० वर्ष बाद वाला व्यक्ति प्राचीनता के लिए ६०० वर्ष प्राचीन संवत् चला दे और सभी लोग उसको प्रामाणिक भी मान लें। (२) ५०० ई० से पूर्व भी ४२३ ई० (४८० विक्रम सं०) और ४३६ ई० (४९३ वि०) के शिलालेखों में विक्रम संवत् 'मालवानां गणस्थित्या' 'मालवगणस्थितिबंशात्' नाम से उल्लिखित है। (३) रघुवंश में हूणों का उल्लेख भारत की सीमा पर है। इसवीय पूर्व प्रथम और द्वितीय शताब्दी में हूण भारत की उत्तरी सीमा पर थे। (४) ४७३ ई० के मन्दसोर वाली वत्सभट्टि-कृत प्रशस्ति में मेघदूत और ऋतुसंहार का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। उपर्युक्त कारणों से फर्गुसन के मत का खंडन होता है। अतएव फर्गुसन का मत सर्वथा लुप्त हो गया है।

कालिदास के समय की पूर्व सीमा—कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में शुंगवंशी पुष्पमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाया है। उसका समय १५० ई० पू० के लगभग है, अतः कालिदास १५० ई० पू० से पहले नहीं माने जा सकते।

अपर सीमा—(क) बाण ने हर्षचरित की भूमिका के १६ वें श्लोक में कालिदास का उल्लेख किया है। बाण सम्राट् हर्ष (६०६ ई०-६४८ ई०) का आश्रित कवि था। अतः कालिदास का समय ६०६ ई० से पूर्व होना चाहिए। (ख) ऐहोल (Aihole) शिलालेख (६३४ ई०, ५५६ शक सं०) में कवि रविकीर्ति ने अपने आपको कालिदास और भारवि के तुल्य महाकवि बताया है। विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः। (ग) ४७३ ई० के मन्दसोर के शिलालेख पर कालिदास के ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अतः कालिदास ४७३ ई० से पूर्व रहे होंगे।

चतुर्थ शताब्दी ई० या गुप्तकालीन मत

इस मत के समर्थन में निम्नलिखित युक्तियाँ दी जाती हैं। इन युक्तियों की समीक्षा भी साथ ही दी गई है।

- विस्तृत विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत अभिज्ञानशाकुन्तल, भूमिका पृ० १३ से ३६।

(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य—चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५ ई०-४१३ ई०) ही वस्तुतः प्रथम विक्रमादित्य है, जिसने कालिदास को आश्रय दिया । उसने ही पूर्व प्रचलित मालव संवत् को अपना विक्रम नाम लगाकर विक्रम संवत् प्रचलित किया । उसने शकवंशी क्षत्रपों का नाश किया, अतः उसे शकारि कह सकते हैं ।

समीक्षा—(क) चन्द्रगुप्त द्वितीय से पहले ई० पू० प्रथम शताब्दी में शकों का निहन्ता, उज्जयिनी का सम्राट् और 'विक्रमादित्य' नामधारी व्यक्ति हुआ था । उसने ही ई० पू० प्रथम शताब्दी में शकों पर विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया था । यह साहित्यिक एवं ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है । (ख) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्राचीन मालव संवत् को विक्रम नाम दिया, यह अत्यन्त आपत्तिजनक है । इसके निम्नलिखित कारण हैं :—(१) एक सम्राट् दूसरे के चलाए संवत् को अपने नाम से चलाना स्वीकार नहीं करता । (२) चन्द्रगुप्त द्वितीय के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने ३२० ई० में गुप्त-संवत् चलाया था । उनके पौत्र के लिए उचित नहीं है कि वह अपने वंश-परम्परागत संवत् को छोड़कर नया संवत् चलावे या अपनावे । (३) स्वयं गुप्त राजाओं ने बाद में विक्रम संवत् को स्वीकार न करके गुप्त संवत् का ही उल्लेख किया है । जैसे—स्कन्दगुप्त के गिरनार वाले शिलालेख में 'गुप्तप्रकाले गणनां विधाय' कहकर गुप्त संवत् का उल्लेख है । अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रम संवत् का संस्थापक कहना युक्तिसंगत नहीं है । (४) चन्द्रगुप्त द्वितीय से पूर्व प्रथम शताब्दी ई० पू० में शक पश्चिमोत्तर प्रान्त में विद्यमान थे । उनके आक्रमण और घोर अत्याचार का वर्णन 'गर्गसंहिता' में मिलता है । शकों के विध्वंस को बहुत महत्त्व दिया गया और शकारि विक्रमादित्य के नाम से नया संवत् चलाया गया । (५) संवत् जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य उपाधि पर निर्भर न होकर व्यक्तिगत नाम से चलते हैं । व्यक्तिगत नाम चन्द्रगुप्त था, न कि विक्रमादित्य । अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को प्रथम विक्रमादित्य या कालिदास का आश्रयदाता नहीं कहा जा सकता है ।

(२) गुप्तकाल समृद्धि का समय—कालिदास के ग्रन्थों में जिस सुख-शान्ति-युक्त समाज का चित्रण मिलता है, वह इतिहास में गुप्तकाल में ही था ।

समीक्षा—यह कथन सत्य नहीं है । ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों के उच्छेद के बाद सामाजिक स्थिति सुख-शान्तिमय थी । धर्म-कर्म की सुप्रतिष्ठा हो गई थी, अतः कालिदास को इस आधार पर गुप्तकालीन कहना असंगत है ।

(३) गुप्त-काल में संस्कृत का पुनरुत्थान—गुप्तकालीन राजाओं ने संस्कृत भाषा के अम्युदय के लिए अनेक प्रयत्न किए एवं संस्कृत-कवियों का आदर किया। यह संस्कृत के पुनरुत्थान का समय था। कालिदास भी इसी युग में हुए होंगे।

समीक्षा—गुप्तकाल से पूर्व भी संस्कृत की परम्परा अक्षुण्ण चल रही थी। रामायण और महाभारत का परिवर्धन इसी काल में हुआ है। पुराण, स्मृति-ग्रन्थ, अश्वघोष के २ महाकाव्य और नाटक, हाल की गाथा-सप्तशती, प्रवरसेन का सेतुबन्ध आदि ग्रन्थ इसी समय में लिखे गए हैं। क्षत्रप राजा रुद्रदामन् (१५० ई०) का गिरनार का शिलालेख, हरिषेणकृत समुद्रगुप्त-प्रशस्तियुक्त प्रयाग-स्तम्भ लेख (३५० ई०) आदि संस्कृत भाषा के वैभव को सूचित करते हैं।

(४) कालिदास के ग्रन्थों में गुप् धातु का प्रयोग—कालिदास ने अपने आश्रयदाता गुप्त राजाओं के स्मृत्यर्थ रघुवंश आदि में बार-बार गुप् धातु का प्रयोग किया है। देखो—रघु० १-२१, १-५५, २-३, २-२४ आदि। अतः कालिदास किसी गुप्त राजा के आश्रित कवि थे।

समीक्षा—(१) यदि गुप् धातु का विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग होता तो यह निष्कर्ष निकालना संभव था। गुप् धातु का सामान्य रक्षा अर्थ में प्रयोग है। (२) रक्षा अर्थ में ही गुप् धातु के साथ रक्ष्, पा और त्रै धातुओं के भी प्रयोग सामान्यतया रघुवंश आदि में सर्वत्र मिलते हैं। रामायण, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा स्मृति-ग्रन्थों में रक्षा अर्थ में गुप् धातु का प्रयोग अति प्रचलित है। (३) यदि गुप् धातु के प्रयोग के आधार पर कालिदास को गुप्त राजाओं का आश्रित माना जा सकता है तो इसी प्रकार शक् (सकना) धातु के प्रयोग के आधार पर उन्हें शक राजाओं का आश्रित कवि कहा जा सकता है। (४) यदि इसी कुतर्क का लाभ उठाया जाय तो कालिदास को 'गुप्त वैश्य' सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने प्रेम से गुप् धातु का प्रयोग किया है।

(५) कुमारसंभव में कुमार शब्द—कुमारसंभव में 'कुमार' शब्द कुमार-गुप्त प्रथम के जन्म के स्मृत्यर्थ प्रयुक्त है। रघुवंश आदि में भी कुमार शब्द का प्रयोग मिलता है।

समीक्षा—(१) पुत्र अर्थ में कुमार शब्द का प्रयोग सभी काव्यों और नाटकों में मिलता है। (२) शिव के पुत्र स्कन्द के लिए 'कुमार' शब्द अत्यन्त प्रचलित

है। उसके लिए ही कुमारसंभव में कुमार शब्द है। अतः कुमारसंभव के कुमार शब्द को लेकर कालिदास को गुप्त राजाओं का आश्रित कवि सिद्ध करना निरर्थक प्रयास है।

(६) चन्द्र शब्द का प्रयोग—अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त के स्मृत्यर्थ रघुवंश आदि में अनेक स्थलों पर चन्द्र शब्द तथा चन्द्रवाचक इन्दु आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार समुद्रवाचक शब्द समुद्रगुप्त के सूचक हैं।

समीक्षा—समी काव्यों और नाटकों में चन्द्र और समुद्र के वर्णन सामान्यतया मिलते हैं। इसके आधार पर चन्द्र और समुद्र शब्दों से चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त अर्थ निकालना अत्यन्त असंगत है।

(७) विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द—विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का सूचक है।

समीक्षा—(१) विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द पुरुरवा के पराक्रम के लिए है। (२) विक्रम शब्द विक्रमादित्य नाम का सूचक हो सकता है, न कि विक्रमादित्य उपाधि का। (३) इतिहास में चार विक्रमादित्य हुए हैं। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विक्रम शब्द से लेने का कोई आधार नहीं है।

(८) मालविकाग्निमित्र की रचना—चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त के वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय के साथ विवाह के अवसर पर अभिनयार्थ इस नाटक की रचना हुई।

समीक्षा—यह युक्ति गुप्तकालीन मत की साधक न होकर वस्तुतः घातक युक्ति है। मालविकाग्निमित्र की रचना सिद्ध करती है कि कालिदास का समय शुंगवंशी राजा अग्निमित्र (१५० ई० पू० के लगभग) के समीप है। इसके आधार पर कालिदास का समय ई० पू० में सिद्ध होता है।

(९) रघु-दिग्विजय और समुद्रगुप्त-दिग्विजय में साम्य—हरिषेण-कृत प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित समुद्रगुप्त की दिग्विजय को आधार मानकर रघुवंश में रघु की दिग्विजय का वर्णन है। इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र में वर्णित अश्वमेध का आधार समुद्रगुप्त द्वारा किया गया अश्वमेध है।

समीक्षा—(१) रघु की दिग्विजय का आधार वस्तुतः वाल्मीकि-रामायण, महाभारत और पुराणों में वर्णित दिग्विजय हैं। (२) समुद्रगुप्त दक्षिण में पांड्य राजाओं से पराजित हुए थे और रघु ने पांड्य राजाओं को पराजित किया

है। अतः पराजित समुद्रगुप्त को विजेता रघु का आदर्श बताना अत्यन्त असंगत है। (२) पतञ्जलि के महामाष्य से सिद्ध है कि पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था। अतः उपर्युक्त दोनों युक्तियाँ असार हैं।

(१०) हूणों का उल्लेख—कालिदास ने रघुवंश (४, ६७-६८) में वंशु नदी के तट पर हूणों के होने का उल्लेख किया है। ४५० ई० के लगभग हूण कहीं पर थे। स्कन्दगुप्त ने उन्हें हराया था। 'हूणैर्यस्य समागतस्य समरे०' गिरनार का शिलालेख ४५५-४५६ ई०। अतः कालिदास का समय ४५० ई० के बाद होना चाहिए।

समीक्षा—महामारत में हूण, पारसीक, यवन, शक, चीनी आदि का उल्लेख है।

चीनान् शकांस्तथा चोड्रान् बर्बरान् वनवासिनः।

वाष्णैयान् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा ॥ आदि।

(महामारत १-५५-१ से ३)

पुराणों के भुवनविन्यास प्रकरण में भी हूणों आदि का उल्लेख है। कालिदास के वर्णन के आधार महामारत आदि हैं। (२) पारसियों के धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' (समय ई० पू०) में हूणों का उल्लेख है। (३) कनिष्क (७८ ई० के लगभग) के समय में लिखित 'ललित-विस्तर' में हूणों का उल्लेख है। (४) प्रो० आर० एन० आप्टे ने सिद्ध किया है कि २५० ई० पू० में हूण बैक्ट्रिया में थे। मध्य एशिया के इतिहास से ज्ञात होता है कि हूण द्वितीय शताब्दी ई० पू० में भारत के पश्चिमी भाग में विद्यमान थे। (५) गर्ग संहिता (१म शताब्दी ई० पू०) में हूणों और शकों द्वारा भारत पर घोर आक्रमण का वर्णन है, अतः हूणों के उल्लेख के आधार पर कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करना संभव नहीं है।

(११) दिङ्नाग का उल्लेख—मेघदूत में कालिदास ने दिङ्नाग का उल्लेख किया है। (दिङ्नागानां पथि परिहरन्०, पूर्वमेघ श्लोक १४)। ४०० ई० के लगभग दिङ्नाग नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक हुआ है। वह कालिदास का प्रतिस्पर्धी कहा जाता है। अतः कालिदास का समय ४०० ई० के बाद होना चाहिए।

समीक्षा—(१) दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक था, न कि कवि। (२) दोनों प्रतिस्पर्धी थे, इसका कोई आधार नहीं है। (३) कालिदास के लिए असंभव था

वह प्रतिस्पर्धी की स्मृति में श्लोक बनावें और उसके साथ बहुवचन का प्रयोग (दिङ्नागानाम्) करें। (४) कालिदास श्लेष-प्रिय कवि नहीं थे। (५) कवि रूप में 'कुश्माला' नाटक के लेखक दिङ्नाग हैं। इन्होंने नान्दीपाठ में हेरम्ब (गणेश) और शिव की स्तुति की है, अतः वे बौद्ध न होकर शैव कवि हैं। इनका समय १००० ई० के लगभग है। (६) 'दिङ्नागानाम्' में दिङ्नाग शब्द दिग्गजों के लिए है। अतः दिङ्नाग शब्द के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना असंभव है।

(१२) ज्योतिष के शब्दों का प्रयोग—कालिदास ने रघुवंश आदि में राशि-नाम, जामित्र आदि शब्दों तथा ग्रहों के उच्च-नीच होने आदि का वर्णन किया है। यह यूनानी प्रभाव के कारण है और सर्वप्रथम आर्यभट (जन्म सन् ४७६ ई०) ने इनका प्रयोग किया है। अतः कालिदास का समय ४७६ ई० के बाद होना चाहिए।

समीक्षा—(१) यूनानियों के प्रभाव के कारण राशि-नाम, जामित्र आदि शब्द भारत में आए, यह समझना भारी भूल है। वस्तुतः ज्योतिष के शब्दों के लिए यूनानी भारत के ऋषी हैं। ईसा पूर्व ४थ तथा ५म शताब्दी में बेबीलोनिया के लोगों ने भारत से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया और यूनानियों ने बेबीलोनिया के लोगों से उसकी शिक्षा प्राप्त की। (२) बौधायन गृह्य-सूत्र (५०० ई० पू०) में मीन, मेष, वृष आदि राशियों का उल्लेख है। 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः'। रामायण, महाभारत आदि में भी राशियों का उल्लेख है। (३) जामित्र शब्द यूनानी Diametron का परिवर्तित रूप न होकर शुद्ध भारतीय शब्द है। यह जन्मपत्री में लग्न से सप्तम स्थान को सूचित करता है। इसमें कन्या के सौभाग्य, सुरक्षा आदि का विचार होता है। जामित्र की व्युत्पत्ति है—'जामि (स्त्रियं) आयते इति जामित्रम्'। वेदों में स्त्री के अर्थ में जामि शब्द प्रचलित है। अतः इन प्रयोगों के आधार पर कालिदास को गुप्तकालीन नहीं कहा जा सकता है।

(१३) कालिदास पर अश्वघोष का प्रभाव—कालिदास के ग्रन्थों और अश्वघोष (७८ ई० के लगभग) के ग्रन्थों में कई स्थानों पर पर्याप्त साम्य है। अश्वघोष के आदर्श पर कालिदास ने विविध वर्णन किए हैं, अतः कालिदास अश्वघोष के परवर्ती हैं। साम्य वाले स्थल मुख्य रूप से ये हैं :—(क) कुमारसंभव में रति-विलाप और सौन्दरनन्द में सुन्दरी-विलाप, (ख) रघुवंश में अज-विलाप

और सौन्दर० में नन्द-विलाप, (ग) कुमार० सर्ग ७ में शिव-दर्शनार्थ, रघु० सर्ग ७ में अज-दर्शनार्थ और बुद्धचरित सर्ग ३ में गौतम-दर्शनार्थ स्त्रियों की भीड़ एवं उनकी विविध चेष्टाओं का वर्णन ।

(क) सोऽनिश्चयाभ्रापि ययौ न तस्थौ

तरंस्तरङ्गेष्विव

राजहंसः ॥

(सौन्दर० ४-४२)

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥

(कुमार० ५-८५)

(ख) आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते

नवं वयो दीप्तमिवं वपुश्च ॥

(बुद्ध० १०-४)

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं

नवं वयः कान्तमिवं वपुश्च ॥

(रघु० २-४७)

समीक्षा—कालिदास और अश्वघोष के काव्यों की तुलना से ज्ञात होता है कि दोनों के काव्य परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं । दोनों में से किसी एक ने दूसरे से भाव ग्रहण किए हैं । कौन किसका ऋणी है, यह विचारणीय है । इस विषय में कुछ ध्यान देने योग्य बातें ये हैं :—(१) अश्वघोष मुख्यतः दार्शनिक है, न कि महाकवि । कालिदास मुख्यतः महाकवि है । एक महाकवि एक दार्शनिक का साहित्यिक वर्णन में ऋणी हो, यह असंगत प्रतीत होता है । (२) कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में अपने पूर्ववर्ती महाकवियों भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि का उल्लेख किया है । यदि अश्वघोष आदरणीय और अनुकरणीय कवि होते तो उनका भी नाम लिखा जाता । (३) अश्वघोष का नाम बाण, राज-शेखर आदि ने भी आदर्श कवियों में नहीं दिया है । (४) अश्वघोष को निम्न-स्तरीय कवि मानने के कारण साहित्यशास्त्रियों ने उसके ग्रन्थों से उद्धरण नहीं दिए हैं । (५) अश्वघोष के काव्यों में 'नु, खलु, तु, किल, हि, च आदि पाद-पूर्त्यर्थक शब्दों का विपुल भंडार उसकी निम्नस्तरीयता को द्योतित करता है । (६) अश्वघोष का वाक्य-विन्यास शिथिल है । (७) अश्वघोष ने कहीं-कहीं केवल पाण्डित्य-प्रदर्शनार्थ भट्टि-काव्य के तुल्य बौद्धिक व्यायाम का प्रदर्शन किया है । यथा—मा और मी वातुओं से बनने वाले 'मीयते' का चार विभिन्न अर्थों में प्रयोग ।

यत्र स्म मीयते ब्रह्म कैश्चित् कैश्चिन्न मीयते ।

काले निमीयते सोमो न चाकाले प्रमीयते ॥

(सौन्दर० १-१५)

इसमें मीयते के क्रमशः ये चार अर्थ हैं :—(१) मा—देखना, (२) मी—हिंसा करना, (३) नि+मा—निचोड़ना, (४) प्र+मा—मरना ।

अतः यह असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि कालिदास अश्वघोष का ऋणी नहीं है, अपितु अश्वघोष ही कालिदास का ऋणी है । इस आधार पर कालिदास को गुप्तकालीन नहीं कहा जा सकता है !

प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत

प्राचीन भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे । विक्रमादित्य का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी था । इस मत के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप हैं । इनका निराकरण भी साथ ही दिया गया है ।

(१) विक्रमादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं—प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य राजा के होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है ।

निराकरण—(१) सोमदेव-कृत कथासरित्सागर में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख है । यह ग्रन्थ गुणाढ्य (७८ ई० के लगभग) कृत बृहत्कथा पर आधारित है । प्रथम शताब्दी ई० के कवि को ई० पू० प्रथम शताब्दी के प्रसिद्ध राजा का वास्तविक ज्ञान होना अत्यन्त संभव है । कथासरित्सागर में उल्लेख है कि परमारवंशी राजा महेन्द्रादित्य अपने पुत्र विक्रमादित्य को राज्य-भार देकर वाराणसी चले गए और विक्रमादित्य ने विधिवत् शासन किया ।

ततश्च यौवनस्थं तं विलोक्य प्राज्यविक्रमम् ।

अभिषिच्य सुतं राज्ये यथाविधि जनप्रियम् ॥

महेन्द्रादित्यनृपतिः सभार्यासचिवोऽपि सः ।

वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिष्ये शिवम् ॥

सोऽपि तद् विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पतृकम् ।

नभो भास्वानिवारेभे राजा प्रतपितुं क्रमात् ॥

(कथासरित्सागर० २८-५६ से ६१)

(२) सातवाहन राजा हाल (प्रथम शताब्दी ई०) ने अपने ग्रन्थ गाथा-मप्तशती में एक विक्रमादित्य का उल्लेख किया है और उसके टीकाकार गदाधर ने उस राजा को अति उदार और अपने नौकर को एक लाख ६० दान देने वाला बताया है।

संवाहण सुहरस.....चलणेन विक्कमाइत्तचरिअं (गाथा० ५-६४)
विक्रमादित्योऽपि...मृत्यस्य करे लक्षं ददाति इत्यर्थः। (गदाधर)। प्रथम शताब्दी ई० के एक राजा द्वारा अपने पूर्ववर्ती विक्रमादित्य के उल्लेख से ई० पू० प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य का होना साहित्यिक प्रमाण से पुष्ट होता है। (३) विस्व के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि व्यक्ति न हुआ हो और उसके नाम से संवत् चल पड़े या परवर्ती कोई राजा संवत् को प्राचीन सिद्ध करने के लिए ६०० वर्ष पूर्ववर्ती बनाकर प्रचलित करे। (४) शिलालेखों आदि में उल्लेख न होना कोई अभाव का सूचक नहीं है। ईसा का भी कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं है। (५) कालिदास का आश्रयदाता विक्रमादित्य उज्जयिनी का राजा गा, गुप्त राजा पाटलिपुत्र के राजा थे। उज्जयिनी इनकी प्रान्तीय राजधानी थी। (६) विन्सेंट स्मिथ (Vincent Smith) और एडगर्टन (Edgerton) ने ई० पू० प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य का होना संभव बताया है। (७) मेरुतुंगाचार्य ने जैन-चरित-पद्मावली में विक्रमादित्य का उल्लेख किया है और महावीर के निर्वाण के ४७० वें वर्ष में उसकी सत्ता बताई है। महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० में हुआ। अतः $५२७ - ४७० = ५७$ ई० पू० विक्रमादित्य का समय सिद्ध होता है।

(२) विक्रमादित्य उपाधिमात्र—विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है, अपितु यह कुछ राजाओं की उपाधि मात्र थी।

निराकरण—ई० पू० प्रथम शताब्दी में हुए राजा का नाम ही विक्रमादित्य था। उसके पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। उसके आदर्श चरित के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय आदि ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की। इस तथ्य का समर्थन इस बात से भी होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त ने अपना महत्त्व अधिक सिद्ध करने के लिए विक्रमादित्य के पिता 'महेन्द्रादित्य' का नाम उपाधि रूप में ग्रहण किया।

(३) नवरत्नों की अप्रामाणिकता—ज्योतिर्विदामरण (२२-१०) के श्लोक धन्वन्तरिक्षपणका० में जिम नवरत्नों का उल्लेख किया गया है, वे सभी व्यक्ति वस्तुतः समकालीन नहीं रहे हैं। इनमें वराहमिहिर का समय ६ठी शताब्दी

ई० है और अमरकोषकार अमरसिंह का समय ४१४ ई० से ६४२ ई० के मध्य माना जाता है।

निराकरण—उक्त जनश्रुति में केवल इतनी सत्यता असन्दिग्ध है कि विक्रमादित्य नाम का एक राजा था और उसके ९ रत्न थे, जिनमें कालिदास भी एक था।

कालिदास को ई० पू० प्रथम शताब्दी में मानने के कारण

- (१) भाषा-शैली—कालिदास की भाषा और शैली रामायण और महाभारत की भाषा-शैली के बहुत समीप है। इसमें वह कृत्रिमता, समास-बहुलता आदि नहीं मिलती है, जो गुप्तकालीन शिलालेखों में मिलती है। इस सन्दर्भ में प्रयाग-प्रशस्ति वाला स्तम्भ-लेख विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें ३०-३५ पंक्तियों का एक लंबा वाक्य है। (२) अपाणिनीय प्रयोग—कालिदास के काव्यों में बहुत से अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे—तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात् (रघु० ६-६१) में पातयामास को तोड़ कर प्रयोग करना। प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार (रघु० १३-३६) में प्रभ्रंशयांचकार को पृथक् करना। कामयमान के स्थान पर 'कामयान' (शाकु० अंक ३), दत्तवान् के स्थान पर वैदिक 'दाश्वान्' (रघु० १४-७१) आदि प्रयोग। गुप्तकाल में पाणिनीय व्याकरण पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुका था। उस समय अपाणिनीय प्रयोग किसी महाकवि के लिए अशक्य था। अतः कालिदास का समय रामायण, महाभारत की रचना के समीप सिद्ध होता है।
- (३) वैदिक शब्दावली और वैदिक छन्द—कालिदास ने वैदिक एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—परमेष्ठी, पेलव, विषूष्य आदि शब्द। शाकुन्तल (४-८) में 'अग्नी वेदि परितः० वैदिक त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है। (४) संस्कृत बोलचाल की भाषा—कालिदास की शैली से ज्ञात होता है कि उसके समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। (५) भालविकाग्निमित्र की रचना—मालविकाग्निमित्र में शुंगवंशी राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाना, उसका भरत-वाक्य और इतिहास-ग्रन्थों में अप्राप्त अग्निमित्र-विषयक तथ्यों का उल्लेख सिद्ध करता है कि वह अग्निमित्र (१५० ई० पू०) के अधिक समीप था।
- (६) परशुराम को अवतार न मानना—कालिदास ने परशुराम को ऋषि माना है, अवतार नहीं। इसवीय सन् में ही परशुराम को अवतार मानने की कल्पना हुई है। (७) अश्वघोष पर प्रभाव—महाकवि अश्वघोष (७८ ई० के लगभग) पर कालिदास के प्रभाव का उल्लेख किया जा चुका है। यह सिद्ध करता है कि

कालिदास प्रथम शताब्दी ई० से पूर्व हुए हैं। (८) पाण्ड्य राजा का वर्णन—कालिदास ने रघुवंश (पाण्ड्योऽयमंसापितलम्बहारः ०, ६-६०) में पाण्ड्य राजा का वर्णन किया है। उसे रघुवंश (६-६३) में दक्षिण का सर्वश्रेष्ठ राजा बताया गया है। रघुवंश (४-४६) में कालिदास ने पाण्ड्य राजा पर रघु की विजय का वर्णन किया है। 'तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे'। ई० पू० प्रथम शताब्दी में पाण्ड्य राजा थे। चतुर्थ शताब्दी ई० में उनका राज्य समाप्त हो गया था। यह ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध करता है कि कालिदास गुप्तकालीन नहीं थे। (९) वैदिक कर्मकांड का समर्थन—कालिदास ने रघुवंश, कुमारसंभव और शाकुन्तल में अनेक स्थानों पर वैदिक कर्मकांड का प्रबल समर्थन किया है। 'सहजं किल यद्' (शाकु० ६-१) के द्वारा सिद्ध किया है कि बौद्ध धर्म के तीव्र विरोध के होने पर भी वैदिक कर्मकांड का परित्याग नहीं करना चाहिए। यह प्रबल विरोध की स्थिति ई० पू० में थी। (१०) उत्तराधिकार के नियम, विधवा स्त्री को पति की संपत्ति पर अधिकार, चोरी के लिए दण्ड आदि का जो वर्णन कालिदास ने किया है, वह ई० पू० में प्रचलित विधान-संहिता से मेल खाता है।

उपर्युक्त कारणों से कालिदास का ई० पू० प्रथम शताब्दी में मानना उचित है।

(३) महाकाव्यों की संक्षिप्त कथा

(क) कुमारसंभव

इस महाकाव्य में हिमालय की पुत्री पार्वती द्वारा घोर तपस्या के फलस्वरूप वर रूप में शिव को प्राप्त करने तथा उनसे कार्तिकेय (स्कन्द, कुमार) की उत्पत्ति का वर्णन है। सर्गानुसार कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—सर्ग १—हिमालय-वर्णन तथा पार्वती की उत्पत्ति; सर्ग २—तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास जाना और शिव-पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा बताया जाना; सर्ग ३—कामदेव द्वारा शिव की तपस्या का भंग किया जाना और क्रुद्ध शिव द्वारा कामदेव को भस्मसात् करना; सर्ग ४—पति के नाश पर रति का विलाप; सर्ग ५—पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन और ब्रह्मचारी वेशधारी शिव से पार्वती का संलाप और समागम; सर्ग ६—विवाहेच्छुक शिव का पार्वती के याचनार्थ सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजना; सर्ग ७—शिव की वरमात्रा और पार्वती-परिणय; सर्ग ८—शिव-पार्वती का दाम्पत्य जीवन,

केलि-विहार-वर्णन । (कुछ विद्वान् केवल ८ सर्ग ही कालिदास की रचना मानते हैं) । सर्ग ९—दाम्पत्य सुखानुभव करते हुए विविध पर्वतों आदि पर घूमकर कैलास पर्वत पर वापस आना; सर्ग १०—कार्तिकेय (कुमार, स्कन्द) का गर्भ में आना; सर्ग ११—कुमार-जन्म तथा कुमार का बाल्य-वर्णन; सर्ग १२—कुमार का सेनापतित्व, सर्ग १३—कुमार द्वारा सैन्य-संचालन, सर्ग १४—देव-सेना का आक्रमणार्थ प्रयाण; सर्ग १५—देवासुर-सैन्य-संघर्ष, सर्ग १६—युद्ध-वर्णन, सर्ग १७—तारकासुर-वध ।

समीक्षा—कुमारसंभव कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है । इसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुमधुर समन्वय है । अलंकारों की सुन्दर छटा, वर्णनों में सजीवता व्यापकता और स्वाभाविकता, भाषा का परिष्कार, कल्पना की उदात्तता, भावों की मनोज्ञता, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज शृंगार का सर्वांगीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व-प्रतिपादन तथा छन्दोयोजना में सिद्धहस्तता कुमारसंभव की प्रमुख विशेषताएँ हैं । इस दृष्टि से कुमारसंभव एक सफल महाकाव्य है । इसकी अन्य विशेषताओं का वर्णन आगे किया गया है ।

कतिपय विद्वानों का मत है कि कुमारसंभव के प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास की कृति हैं । आगे के ९ सर्ग किसी अन्य कवि की रचना हैं । इसके लिए भाव, भाषा, शैली, व्याकरण और छन्द सम्बन्धी दोष एवं पाद-पूर्त्यर्थक शब्द-प्रयोग कारण बताए गए हैं । आठ सर्गों पर ही मल्लिनाथ की टीका का होना भी एक कारण माना गया है । अष्टम सर्ग में शिव-पार्वती की रतिक्रीड़ा का वर्णन भी आपत्तिजनक माना गया है । अतः कहा जाता है कि इन कटु आलोचनाओं के कारण कालिदास ने आगे लिखना छोड़ दिया था ।

वस्तुतः यह मन्तव्य अपुष्ट एवं अस्पष्ट आधारों पर निर्भर है । (१) मल्लिनाथ की टीका वस्तुतः ७ सर्गों पर ही है । ८वें सर्ग की टीका अत्यन्त दोषपूर्ण है, अतः मल्लिनाथ की कृति नहीं मानी जाती है । टीकाकार सीताराम कवि का भी यही मत है । 'टीका सप्तसु मल्लिनाथकृतिना संजीविनीसंज्ञिका, या सर्गेषु कुमारसंभवमहाकाव्यस्य चक्रे पुरा ।'^१ (२) टीकाकार सीताराम कवि ने ८ से

१. विवरण के लिए देखो—कुमारसंभव, निर्णय सागर प्रेस, १९५५, पृष्ठ १७७ और ३७४ पर संपादक की टिप्पणी ।

२. कुमारसंभव, वही, पृष्ठ १७७ पर सीताराम-कृत प्रारम्भिक श्लोक ।

१७ सर्गों को कालिदास की कृति मानकर उनकी टीका की है। (३) वामन (८०० ई०) ने आक्षेपास्पद अष्टम सर्ग से उद्धरण दिया है। (४) कुमार के जन्म का वर्णन ११वें सर्ग में है। उससे पूर्व ग्रन्थ की समाप्ति का कोई कारण नहीं है। (५) अन्तिम ६ सर्गों के बिना कुमारसंभव का महाकाव्यत्व अपूर्ण रहता है। (६) भाव, भाषा, शैली आदि की हीनता के दोष सर्वथा अस्पष्ट और अपुष्ट हैं। (७) अन्तिम ६ सर्गों में भी भाव और भाषा की पुष्टि, प्रौढ़ता एवं आलंकारिक चमत्कार पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं। (८) यदि भाषा, अलंकार आदि को ही इसका आधार माना जाए तो रघुवंश के अन्तिम सर्गों में भी ये न्यूनताएँ सर्वथा सुलभ हैं।

अतः पूरे १७ सर्गों को कालिदास की कृति मानना उचित है।

(ख) रघुवंश

इसमें मनु से लेकर सूर्यवंशी ३१ राजाओं के जीवन का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के जीवन का विशद एवं विस्तृत वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—सर्ग १—राजा दिलीप की सन्तान-हीनता और सन्तान-प्राप्त्यर्थ कुलगुरु वसिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना; सर्ग २—नन्दिनी की सेवा, राजा की परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान-लाभ का वरदान; सर्ग ३—रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय-प्राप्ति तथा रघु का राज्याभिषेक; सर्ग ४—रघु के दिग्विजय का वर्णन, सर्ग ५—ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणार्थ १४ करोड़ रुपए की याचना, तदर्थ रघु का कुबेर पर आक्रमण, धन-वृष्टि, प्रसन्न कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती-स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान; सर्ग ६—इन्दुमती-स्वयंवर का वर्णन; सर्ग ७—अज-इन्दुमती-परिणय, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय; सर्ग ८—अज का राज्याभिषेक, दशरथ-जन्म, इन्दुमती-वियोग और अज का विलाप; सर्ग ९—दशरथ का मृगया-वर्णन, श्रवणकुमार की हत्या और दशरथ को शाप-प्राप्ति; सर्ग १०—पुत्रेष्टियज्ञ, राम आदि ४ पुत्रों का जन्म; सर्ग ११—सीता-स्वयंवर और राम आदि का विवाह; सर्ग १२—राम-वनवास, सीता-हरण, युद्ध, रावण-वध; सर्ग १३—राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन; सर्ग १४—राम-राज्याभिषेक, सीता-परित्याग; सर्ग १५—कुश-लव-जन्म, राम का स्वर्गारोहण; सर्ग १६—कुश का राज्याभिषेक,

कुश का कुमुद्वती से विवाह; सर्ग १७—कुश का स्वर्गवास, कुश-पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक; सर्ग १८—अतिथि तथा उसके वंशज २१ राजाओं का संक्षिप्त वर्णन, सर्ग १९—अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर स्वर्गवास, उसकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय ।

रघुवंशियों का वंश-वृक्ष—रघुवंश में ३१ सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है । उसका क्रम यह है :—१. मनु (वैवस्वत) > (वंशज) २. दिलीप > ३. रघु > ४. अज > ५. दशरथ > ६. राम > ७. लव—८. कुश > ९. अतिथि > १०. निषघ > ११. नल > १२ > नम > १३. पुण्डरीक > १४. क्षेमघन्वा > १५. देवानीक > १६. अहीनग > १७. पारियात्र > १८. शिल > १९. उन्नाम > २०. वज्रणाम > २१. शंखण > २२. व्युषिताश्व > २३. विश्वसह > २४. हिरण्यनाम > २५. कौसल्य > २६. ब्रह्मिष्ठ > २७. पुत्र > २८. पुष्य > २९. ध्रुवसंधि > ३०. सुदर्शन > ३१. अग्निवर्ण । तत्पश्चात् अग्निवर्ण की पत्नी तथा गर्भस्थ बालक को राज्याधिकार ।

समीक्षा—रघुवंश कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन है । कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पद-पद पर परिलक्षित होता है । एक ओर भावों का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार । एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर अलंकारों की अनुपम छटा । एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी ओर व्यंग्यार्थ का अपूर्व संयोजन । एक ओर संमोग शृंगार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ शृंगार की मार्मिक अनुभूति । एक ओर बाह्य प्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी ओर अन्तः प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण । एक ओर अज-इन्दुमती के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता-परित्याग का मार्मिक दृश्य । एक ओर दिलीप आदि का तपोमय जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयासक्ति । एक ओर राजा का आदर्श और उसकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी ओर प्रजा की राजभक्ति । एक ओर राजतन्त्र का महत्त्व है तो दूसरी ओर प्रजा में विचार-स्वातन्त्र्य । इस प्रकार रघुवंश विविध विरोधी गुणों का समन्वय है । कहीं दार्शनिक पाण्डित्य-प्रदर्शन है तो कहीं काव्य-शास्त्रीय वैदुष्य; कहीं उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कहीं अर्थान्तरन्यास की छटा; कहीं श्रमसाध्य यमक है तो कहीं सहज उत्प्रेक्षाएँ; कहीं वर्णन-वैविध्य है तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान । इस प्रकार कालिदास समी दृष्टि

से कवियों के लिए आदर्श हो गए। रघुकार कालिदास के इस वैशिष्ट्य के कारण ही कवियों और आलोचकों को कहना पड़ा है कि—‘क इह रघुकारे न रमते’।

(४) कालिदास की शैली

विलासिनीलासमनोभिरामा,

रामार्पितश्रीः श्रितसौकुमार्या ।

सालंकृतिर्वाग्वनिता विभाति

श्रीकालिदासस्य

कलाकलापैः ॥

(कपिलस्य)

कविता-कामिनी-कान्त कालिदास न केवल संस्कृत-वाङ्मय के, अपितु विश्व-वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य-जगत् और अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अनुस्यूत करती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरस में सरसता, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता, काव्य में सर्वात्मकता और प्रसाद में माधुर्य का संचार करती है। उनकी कलात्मक रुचि की छाप पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है। भावों की अगाधता और विविधता उनके काव्याकाश में इन्द्रधनुष की छटा प्रस्तुत करती हैं। उनकी भाषारूपी कालिन्दी और भावरूपी भागीरथी के मध्य सालंकृत-पदावली रूपी सरस्वती संगम का महनीय वैभव उपस्थित करती है। उनकी शैली में दुरुहता में सुबोधता, काव्य में नाटकीयता, नैसर्गिक सुषमा में सालंकारता, सरलता में सरसता, सहज-भावामि व्यक्त में कल्पना-प्राचुर्य और शृंगार में भी करुण-रसाप्लावन जैसे विरोधी गुणों का समन्वय मिलता है। उनकी शैली में भाषा-सौष्ठव, मनोरम भावाभिव्यक्ति, अलंकारों का सहज-विन्यास, अन्तः और बाह्य प्रकृति का चारु चित्रण, रसों का सुन्दर परिपाक, जीवन-दर्शन की रुचिर स्थापना, विविध-विद्या-निधानता और मनोभावों की मार्मिक अनुभूति मनोज्ञ मणि-कांचन-संयोग उपस्थित करती है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य-गौरव को अधिक समुन्नत करती है। इनकी शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है, तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ-नाम्नीय; कहीं उत्प्रेक्षाओं की ऊँची उड़ान है तो कहीं प्रांजल पदावली का सौकुमार्य; कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य; कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना।

(क) भाषा-सौष्ठव—कालिदास ने भाव-सौष्ठव आदि के साथ ही भाषा-

सौष्ठवं, पद-लालित्य एवं प्राञ्जलता पर भी पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य-विषय के अनुरूप शब्दावली का संचयन मिलता है। कहीं-कहीं पर शब्द-ध्वनि भाव-ध्वनि की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार के पद-माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता का दर्शन होता है। उदाहरण-स्वरूप कुछ श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के करुण-क्रन्दन का क्या ही मार्मिक चित्रण कालिदास ने प्रस्तुत किया है! जानकी के शोक पर समवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भ्रमरों ने कुसुम-रसास्वाद, मृगियों ने कुश-चर्वण छोड़ दिया था। इस प्रकार सारे वन में करुण का ही दृश्य उपस्थित था।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भुङ्गा
दर्भानुपात्तान् विजहृर्हरिण्यः ।

तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव-
मत्यन्तमासीद् हृदितं वनेऽपि ॥ (रघु० १४-६६)

एक वीररस का उदाहरण प्रस्तुत है। इसमें कवि ने किस चातुरी के साथ अनुकूल पदावली के द्वारा युद्ध-चित्र चित्रित किया है।

पत्तिः पदाति रथिनं रथेश-
स्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम् ।

यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं
तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ॥ (रघु० ७-३७)

उस युद्ध में सम-बलशालियों से समान शक्तिशालियों का संग्राम हुआ—
पैदल से पैदल, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही और गजारूढ़ से गजारूढ़ की मिड़न्त हुई।

शृंगार का भी भाषा-मूलक सौन्दर्य देखिए। मधुयामिनी का रसास्वाद करते हुए दम्पती शिव-पार्वती को कैलास पर्वत पर शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर क्या ही उनके भाव-विलास को समीरित कर रहा था?

स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी

रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी ।

तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गौ

मरुत् सिषेवे गिरिजागिरीशौ ॥ (कुमार० ६-३८)

इसमें व, र, श, स वर्णों का अनुप्रासमूलक भाषासौष्ठव क्या ही श्रुति-सुखद है !

कालिदास की भाषा वशवर्तिनी के तुल्य उनके भावों का अनुगमन करती है । अनुप्रास, यमक आदि अनायास आते रहते हैं । जैसे—

(१) ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी

वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।

जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा-

दुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धुतारिः ॥ (रघु० २-३०)

(२) सुवदनावदनासवसंभृत-

स्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः ।

मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपै-

र्बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥ (रघु० ६-३०)

(३) पुरो भव त्वं न पुरो भवामि

नाहं पुरोगोऽस्मि पुरःसरस्त्वम् ॥ (कुमार० १३-११)

इस प्रकार भाषा-सौष्ठव के उदाहरण पग-पग पर प्राप्य हैं ।

(ख) भावाभिव्यक्ति—कालिदास ललित भावों के कवि हैं । उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव-सौन्दर्य पग-पग पर परिलक्षित होता है ।

कन्या-मुलम शालीनता और संकोच का क्या ही सुन्दर वर्णन पार्वती के वर-चयन के प्रसंग में मिलता है ।

एवंवादिनि देवर्षौ पाश्वे पितुरघोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

(कुमार० ६-८४)

नारद ने जब वररूप में शंकर का उल्लेख किया तो पिता के समीप बैठी हुई पार्वती शील और संकोच के कारण नीचे मुख किए हुए लीला-कमलों के पत्तों को गिनती रही ।

कालिदास ने पार्वती द्वारा शिव के वरण के प्रसंग में मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है। एक ओर शिव की अकिंचनता, दुर्वेष, असौन्दर्य और अप्रभावोत्पादकता है, दूसरी ओर पार्वती का अलौकिक सौन्दर्य, सुकुमारता और दिव्य आकर्षण है। दोनों का विरोध हास्य-मिश्रित व्यंग्य में प्रकट किया गया है। वटुरूपधारी शिव का कथन है कि शिव से प्रेम करके चन्द्रकला और तुम दोनों ने अपना दुर्भाग्य बुलाया है। कोमल भाव के साथ ललित पदावली का समन्वय भी दर्शनीय है।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां

समागमप्रार्थनया कपालिनः ।

कला च सा कान्तिमती कलावत-

स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥ (कुमार० ५-७१)

दम्पती के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक संपर्क की अभिव्यक्ति अज-विलाप में परिलक्षित होती है। अज के लिए इन्दुमती न केवल गृहिणी थी, अपितु मित्र, सचिव और ललितकलाविद् शिष्या थी। उसका वियोग अज का सर्वस्व-हरण है। ऐसा दाम्पत्य-प्रेम दुर्लभ है।

गृहिणी सचिवः सखी-मित्रः

प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।

करुणा-विमुखेन मृत्युना

हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥ (रघु० ८-६७)

जीवन-मरण का दर्शन कितने सरल और सुबोध किन्तु भावातिशयपूर्ण शब्दों में प्रकट किया गया है।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां

विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।

क्षणमप्येव तिष्ठते इव सन्

यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥ (रघु० ८-८७)

मृत्यु प्राणी का स्वभाव है, इसका विकार ही जीवन है। क्षण भर का भी जीवन लाभ नहीं तो और क्या है?

(ग) रस-परिपाक—कालिदास मूलतः शृंगार रस के कवि हैं। संभोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी कतिपय वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। वीर रस के प्रसंग यद्यपि कम हैं, तथापि

उनमें कालिदास की योग्यता किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। अन्य रसों के वर्णन अत्यल्प हैं।

शिव-पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिए समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिए भागीरथी। यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी।

तं यथात्मसदृशं वरं बधू-
रन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।

सागरावनपगा हि जाह्नवी
सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक् ॥ (कुमार० ८-१६)

संभोग शृंगार के एक सुन्दर प्रसंग में कवि ने पार्वती के अघर-क्षत की ओषधि शिव-शिरःस्थित चन्द्रकला बताई है।

बष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका
वेदनाविधुतहस्तपल्लवा।

शीतलेन निरवापयत् क्षणं
मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः ॥ (कुमार० ८-१८)

विप्रलम्भ शृंगार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मनोज्ञ वर्णन राम-परित्यक्ता सीता की भाव-विह्वलता में प्राप्त होता है। दुःखातिमार के कारण संज्ञा-शून्य सीता को दुःख का भार इतना दुःखदायी न हुआ, जितना होश में आने पर प्रबोध।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं
प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।

तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो
मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः ॥ (रघु० १४-५६)

करुण रस की भी अभिव्यक्ति शृंगार से किसी भी अर्थ में न्यून नहीं है। कामदेव के विनाश पर शोक-विधुरा रति मरने के लिए उद्यत है। उसका कथन है—चन्द्रमा के साथ चांदनी और मेघ के साथ बिजली चली जाती है। पत्नी पति के साथ जाती है, यह अचेतनों में भी दृष्टिगोचर होता है।

अशिना सह याति कौमुदी

सह मेघेन तडित् प्रलीयते ।

प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति

प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥ (कुमार० ४-३३)

करण रस का एक अन्य सुन्दर उदाहरण देखिए। परमात्मा की लीला विचित्र है। कहीं अमृत भी विष हो जाता है और कहीं विष भी अमृत। पुष्पमान्ना भी इन्दुमती के लिए विष हो गई, पर वही अज के लिए प्रभावहीन है।

अगियं यदि जीवितापहा

हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवे-

दमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ (रघु० ८-४६)

हास्यरस का भी एक उदाहरण उपयुक्त प्रतीत होता है। वटु-वेषधारी शिव का कथन है कि यदि पार्वती का शिव से परिणय होता है तो हाथी पर सवारी के योग्य वधू को बूढ़े नान्दी बैल पर बैठा देखकर सभी लोग हँसेंगे।

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना

यवूढया वारणराजहार्यया ।

विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया

महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥ (कुमार० ५-७०)

(घ) अलंकार-निरूपण—कालिदास के काव्यों में अलंकार-विधान आयास-साध्य न होकर अनायास सिद्ध है। पद-पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते हैं। यद्यपि यमक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, श्लेष, निदर्शना, एकावली, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम आदि अलंकारों के भी सुन्दर प्रयोग मिलते हैं, तथापि आयास-साध्य होने के कारण कवि ने इनको महत्त्व नहीं दिया है। केवल वाग्वैचित्र्य और पांडित्य-प्रदर्शक चित्रालंकारों का इनके काव्यों में सर्वथा अभाव है।

(१) उपमा कालिदासस्य—उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलंकार है। यह कट्टना असंगत न होगा कि कालिदास उपमा से अलंकृत है। वह उपमा के बिना जीवित नहीं रह सकते। उनकी उपमाएँ असाधारण और मनोरम होती हैं। उनकी विशेषता यह है कि उनमें लिंग-साम्य, भाव-साम्य और रमणीयता का

अनुपम समन्वय है। उनकी उपमाएँ एकांगी न होकर सर्वांगीण और व्यापक हैं। कहीं काव्य-शास्त्रीय, दार्शनिक, व्याकरण से संबद्ध और वेद-विषयक हैं, तो कहीं प्रकृति के विभिन्न रूपों से संबद्ध हैं। कहीं मूर्त की मूर्त से तुलना है तो कहीं मूर्त की अमूर्त से।'

कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से 'दीपशिखा कालिदास' हो गए। इन्दुमती-स्वयंवर वर्णन में इन्दुमती की उपमा संचारिणी दीपशिखा से दी गई है। वह जिस जिस राजा को छोड़कर आगे निकल जाती थी, वह उसी प्रकार विवर्ण एवं विषादाकुल हो जाता था, जैसे संचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राज-प्रासाद अन्धकारावृत हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है !

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ

यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा ।

नरेन्द्रमार्गद्वि इव प्रपेदे

विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ (रघु० ६-६७)

कामदेव के विनाश से दुःखित रति की अवस्था वायु से बुझाए हुए दीपक की घूमावृत वर्तिका के तुल्य अन्धकारावृत (विषादमय) थी। यह कवि की सर्वश्रेष्ठ उपमाओं में से एक है। इसमें शोकाकुल व्यक्ति का क्या ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है !

गत एव न ते निवर्तते

स सखा दीप इवानिलाहतः ।

अहमस्य दशेव पश्य मा-

मविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥ (कुमार० ४-३०)

एक और सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है—दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु-पुत्री नन्दिनी की स्थिति।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन

प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।

१. विशेष विवरण के लिए देखो—लेखक-कृत प्रौढ-रचनानुवाद-कौमुदी पृष्ठ ३१३-३१६।

तदन्तरे सा विरराज धेनु-

दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ (रघु० २-२०)

विश्वसुन्दरी के लावण्य पर मन्त्रमुग्ध एक वीतराग व्रती के भावोद्रेक का क्या ही सुन्दर निदर्शन उपमा के द्वारा प्रस्तुत किया गया है :-

हरस्तु किञ्चित् परिलुप्तधैर्य-

श्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।

उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे

व्यापारयामास विलोचनानि ॥ (कुमार० ३-६७)

पार्वती के सुन्दर मुख को देखकर श्री शंकर का धैर्य उसी प्रकार लुप्त हो रहा था, जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रोदय से समुद्र का धैर्य (मर्यादा) लुप्त होता है ।

कुछ सुन्दर उपमाओं का केवल संकेतमात्र निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है । यथा—(१) आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव (रघु० १-११) महाराज मनु राजाओं में इसी प्रकार सर्वाग्रणी थे, जैसे मन्त्रों के पूर्व 'ओम्' । (२) मार्ग मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्यं स्मृतिरन्वगच्छत् (रघु० २-२) जिस प्रकार श्रुति (वेद) का अनुसरण स्मृति करती है, उसी प्रकार नन्दिनी धेनु का अनुसरण रानी सुदक्षिणा ने किया । इसमें दोनों के उत्कर्षापकर्ष का साम्य भी विशेष अवधेय है । (३) एक दार्शनिक उपमा में बताया गया है कि जिस प्रकार सांख्यदर्शन में बुद्धि (महत्तत्त्व) का कारण अव्यक्त (मूल प्रकृति) को बताया गया है, उसी प्रकार सरयू नदी का उद्गम स्थान मानसरोवर है । 'ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवव्यक्तमुदाहरन्ति' (रघु० १३-६०) । अन्य उपमा-प्रयोग ये हैं :-

(४) फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव (रघु० १-२०), (५) वागर्थाविव संपृक्तौ.... पार्वती-परमेश्वरी (रघु० १-१), (६) श्रद्धेव साक्षाद् विधिनापपन्ना (रघु० २-१६), (७) अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः (रघु० १५-७), (८) हिमनिर्मुक्तयोयोगे चित्राचन्द्रमसोरिव (रघु० १-४६), (९) बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः (रघु० १४-८४), (१०) पश्चिमाद् यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना (रघु० १७-१), (११) साऽमूद् रामाश्रया भूयो नदीवोमयकूलभाक् (रघु० १२-३५), (१२) प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः० (मालोपमा, कुमार० १-२८); (१३) पर्याप्तपूष्पस्तबकावनम्ना संचारिणी पल्लविनी लतेव (कु० ३-५४) ।

(२) अर्थान्तरन्यास—कालिदास की उपमाओं में जो भावामिव्यक्ति और रस-सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान-धारा भी बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो गए हैं। 'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते'।

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य

हिमं न सौभाग्यविलोपि ज्ञातम्।

एको हि दोषो गुणसंनिपाते

निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ (कुमार० १-३)

रत्नराशि हिमालय की शोभा को हिम नष्ट नहीं कर सका, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है, उसी प्रकार गुण-समूह में एक दोष भी छिप जाता है।

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां

शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः

पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥ (कुमार० ५-५)

दृढ़ निश्चयवाली पार्वती को उसकी माता मेना अपने निश्चय से नहीं रोक सकी। दृढ़-निश्चयी व्यक्ति के मन को और नीचे की ओर बहते हुए जल को कौन रोक सकता है?

कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध एवं मनोरम अर्थान्तरन्यास निम्नलिखित हैं। इनमें विषय-वैविध्य, विविधशास्त्रज्ञता, वैदुष्य, कलात्मक पावीष्य और मनोज्ञता दर्शनीय हैं। (१) आत्मेस्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति (कु० ३-४०), (२) कठिनाः खलु स्त्रियः (कु० ४-५), (३) प्रियेषु सौभाग्य-फला हि चाक्षता (कु० ५-१), (४) न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते (कु० ५-६), (५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कु० ५-१६), (६) शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कु० ५-३३), (७) भवन्ति साम्येऽपि निविष्ट-चेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः (कु० ५-३१), (८) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कु० ५-४५), (९) मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कु० ५-६४), (१०) क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते (कु० ५-८६), (११) वृत्तं हि महितं सताम् (कु० ६-१२), (१२) क्रियाणां खलु धर्माणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् सं० सा० सं० इ०—११

(कु० ६-१३), (१३) प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्येषु कुटुम्बिनः (कु० ६-८५), (१४) भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः (कु० ६-८६), (१५) स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः (कु० ७-२२), (१६) हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाजपि वा (रघु० १-१०), (१७) सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे (रघु० १-६६), (१८) एकांन्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु (रघु० २-५७), (१९) क्रिया हि बस्तूपहिता प्रसीदति (रघु० ३-२६), (२०) मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (रघु० ७-१५), (२१) तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (रघु० ११-१), (२२) प्रह्वेष्वनिर्बन्धरूपो हि सन्तः (रघु० १६-८०), (२३) अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते (रघु० १७-६०), (२४) सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (रघु० ५-१३), (२५) पर्याय-पीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (रघु० ५-१६) ।

(३) अन्य अलंकार—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास, यमक आदि के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । यहाँ पर केवल दिग्दर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं । उत्प्रेक्षा अलंकार की क्या ही भाव-भीनी रचना है ! सीता के चरणों से वियुक्त नूपुर मानो सीता-चरण-विरह-व्यथा से मौन है । नूपुर के प्रति राम की यह उक्ति कितनी हृदय-स्पर्शी है :—

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां

अष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अवृक्ष्यत त्वच्चरणारविन्द-

विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ (रघु० १३-२३)

गंगा-यमुना-संगम-वर्णन में उत्प्रेक्षाओं की सुन्दर माला (रघु० १३. ५३-५७) अनुपम छटा प्रस्तुत करती है । केवल एक उत्प्रेक्षा उदाहरणार्थ दी जा रही है ।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव

भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्वान्नि विभाति गङ्गा

भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गः ॥ (रघु० १३-५७)

यमुना की तरंगों से संश्लिष्ट गंगा ऐसी शोभित हो रही है, मानो साक्षात् शिव की मूर्ति हो, जो एक ओर कृष्ण सपों से वेष्टित हो और दूसरी ओर भस्म-लेप से अलंकृत ।

पार्वती के स्मित के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कालिदास को असंबन्ध में संबन्ध-रूप अतिशयोक्ति का आश्रय लेना पड़ा है।

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्या-

न्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्यम्।

ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्या-

स्ताम्रौष्ठपर्यस्तश्चः स्मितस्य ॥ (कुमार० १-४४)

पार्वती के ताम्रवर्ण ओष्ठों पर स्मित की शुभ्र छटा की समानता तभी हो सकती है, जब किसलय पर श्वेत पुष्प रखा हुआ हो या मूंगे पर मोती रखा हो।

वसन्त के आगमन पर प्रकृति में अपूर्व उल्लास था। सभी प्राकृतिक वस्तुओं में ऋतुराज की मादकता व्याप्त थी। मनुष्य ही नहीं, लता और वृक्ष भी प्रेम-विमोर थे। रूपकालंकार का आश्रय लेकर इसी का चित्रण हुआ है। इसमें प्रकृति का मानवीकरण भी द्रष्टव्य है।

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाम्यः

स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराम्यः।

लतावधूम्यस्तरवोऽप्यवापु-

विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥ (कु० ३-३६)

लतारूपी वधुओं से वृक्षरूपी पुरुषों ने कोमल शाखारूपी भुजाओं से आलिगन प्राप्त किया।

रामावतार-वर्णन के प्रसंग में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों का विरोधाभास के द्वारा सुन्दर निरूपण किया गया है।

अज्ञस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।

स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥

(रघु० १०-२४)

इसी प्रकार कुमारसंभव में 'जगद्योनिरयोनिस्त्वं' (२-६) और 'अकिंचनः सन् प्रभवः स संपदां' (५-७७) विरोधाभास के सुन्दर उदाहरण हैं।

यद्यपि कालिदास आयास-साध्य चित्रालंकारों के प्रेमी नहीं हैं, तथापि अनुप्रास और यमक आदि अलंकारों की अनूठी छवि दृष्टिगोचर होती है। रघुवंश का पूरा नवम सर्ग यमक अलंकार के सुन्दर उदाहरणों का आकर है। उदाहरणार्थ केवल दो श्लोक प्रस्तुत हैं :—

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं
न च शशिप्रतिमाभरणं मधु ।
तमुदयाय न वा नवयौवना

प्रियतमा यतमानमपाहरत् ॥ (रघु० ६-७)

इसमें राजा दशरथ की जितेन्द्रियता का वर्णन है ।

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा-
स्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।

इति यथाक्रममाविरभून्मधु-
र्ध्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥ (रघु० ६-२६)

इसमें वसन्तागम का चारु-चित्रण है ।

कालिदास के श्रम-साध्य इन यमक अलंकारों आदि से प्रेरित होकर परवर्ती भारवि, माघ आदि कवियों ने विविध प्रकार के यमकों तथा आयास-साध्य चित्रा-लंकारों की परम्परा प्रस्तुत की है ।

(इ) वर्णन-वैचित्र्य—कालिदास के वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं । उन्होंने अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है । मनोभावों का विशद वर्णन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति, वर्णनों में सजीवता और स्वाभाविकता, भावानुकूल पद-विन्यास, तात्त्विक वर्णनों के साथ व्यंजना वृत्ति का आश्रयण, कला में कल्पना का संयोग और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति आदि गुण कालिदास के वर्णनों की विशेषताएँ हैं ।

सन्ध्याकाल में सूर्यास्त का कितना मनोरम वर्णन है :—

संचारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा विनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताभ्रा

प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥ (रघु० २-१५)

राम सरयू नदी को देखकर भाव-विभोर हैं और उसे माता संबोधित करते हैं । यह प्रकृति के मानवीकरण तथा उसके साथ तादात्म्य का अनूठा निदर्शन है ।

सेयं मदीया जननीव तेन
मान्येन राज्ञा सरयूवियुक्ता ।

दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मा
तरङ्गहस्तरूपगूहतीव ॥ (रघु० १३-६३)

(च) छन्दोयोजना—रघुवंश और कुमारसंभव के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कालिदास को छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। बड़े छन्दों का प्रयोग सर्गान्त में किया गया है। छोटे छन्दों में भी उपजाति और अनुष्टुप् अतिप्रिय छन्द हैं। निम्नलिखित सारणी में रघुवंश और कुमारसंभव में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों का विवरण दिया गया है। विभिन्न छन्दों का कितने सर्गों में या सर्गान्त में प्रयोग हुआ है तथा किन सर्गों में उनका प्रयोग है, इसका भी कोष्ठ में उल्लेख है।

छन्दः सारणी

(क) पूरे सर्ग में प्रयुक्त

छन्दोनाम	रघुवंश—सर्गसंख्या	कुमारसंभव—सर्गसंख्या
उपजाति	६ (२, ५, ६, ७, १३, १४, १६, १८, १९)	६ (१, ३, ७, ८, ११, १२, १३, १४, १५)
अनुष्टुप्	६ (१, ४, १०, १२, १५, १७)	४ (२, ६, १०, १६)
वंशस्थ	१ (३)	२ (५, १५)
रथोद्धता	१ (११)	१ (८)
वैतालीय	१ (८)	—
द्रुतविलम्बित	१ (६)	—
वसन्ततिलका	—	१ (१७)
वियोगिनी	—	१ (४)

(ख) सर्गान्त में प्रयुक्त

छन्दोनाम	रघुवंश—सर्गसंख्या	कुमार० सर्गसंख्या
मालिनी	६ (२, ६, ७, १०, ११, १८)	८ (१, २, ३, ७, ८, १३, १४, १७)
मन्दाक्रान्ता	६ (८, १४, १५, १६, १७, १९)	१ (१०)
वसन्ततिलका	२ (६, १३)	१ (५)
हरिणी	१ (३)	३ (११, १२, १६)
पुष्पिताग्रा	१ (५)	३ (४, ६, ९)

प्रहर्षिणी	२ (१, ४)	—
महामालिनी	१ (१२)	—
शार्दूलविक्रीडित	—	१ (१५)

कालिदास ने रघुवंश के नवम सर्ग में कई छन्दों का प्रयोग किया है। उनके नाम हैं—दुतविलम्बित, वसन्ततिलका, शालिनी, प्रहर्षिणी, औपच्छन्दसिक, मालिनी, रथोद्धता, मंजुभाषिणी, पुष्पिताग्रा, स्वागता, वैतालीय, मत्तमयूर। इसके अतिरिक्त रघुवंश सर्ग ५, ८, १२, १३, १६ में अन्तिम श्लोकों में एक से अधिक छन्दों का प्रयोग है। छोटे एवं सरल छन्दों के प्रयोग से कालिदास को रामायण और महाभारत से प्रभावित एवं उनके समीपवर्ती मानना उचित है। छन्दोयोजना की दृष्टि से कुमारसंभव के सर्ग ६ से १७ प्रारम्भिक सर्गों से पूर्णतया साम्य रखते हैं। अतः इन्हें प्रक्षिप्त या परकालीन कहना युक्ति-संगत नहीं है।

(५) कालिदास का पाण्डित्य

रघुवंश और कुमारसंभव के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कालिदास विविध विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके ग्रन्थों में वेद, दर्शन, काव्य-शास्त्र, राजनीति, व्याकरण, पुराण, ज्योतिष, संगीत, आयुर्वेद, प्राचीन विज्ञान आदि के सूक्ष्म वर्णन मिलते हैं। उदाहरणार्थ कुछ संकेत ये हैं :—

(१) बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति (रघु० १३-६०) में सांख्य-सिद्धान्त, (२) संस्काराः प्राक्तना इव (रघु० १-२०) में मनोविज्ञान, (३) अघ्वरस्येव दक्षिणा (र० १-३१), श्रुतेरिवाथ स्मृतिरन्वगच्छत् (र० २-२) में वेद-ज्ञान, (४) त्रिसाधना शक्तिरिवाथर्मक्षयम् (र० ३-१३) में राजनीति, (५) ग्रहेस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैः (र० ३-१३) में ज्योतिष, (६) अपवाद् इवोत्सर्गं (र० १५-७), पश्चादध्ययनार्थस्य घातोरधिरिवामवत् (र० १५-६) में व्याकरण, (७) प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताम्यो बलिमग्रहीत् (र० १-१८) में राजनीति, (८) न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव। स पुरस्कृत-मध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन् (र० ८-६) में कूटनीति, (९) पुपोष वृद्धि हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः (रघु० ३-२२) में सौर-विज्ञान, (१०) उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम् (कु० १-३२) में चित्रकला का वर्णन है।

(६) कालिदास-विषयक प्रशस्तियाँ

कालिदास का भाव-सौष्ठव, उसकी उपमाएँ और अर्थान्तरन्यास, उसकी कोमल कान्त पदावली, कल्पना-माधुर्य, सहृदय-हृद्यता एवं अर्थगाम्भीर्य गुण सभी कवियों के द्वारा अभिनन्दनीय रहे हैं। 'कुछ सूक्ति-मुक्ताएँ ये हैं :—

(१) निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।

प्रीतिर्भधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

(बाण, हर्ष० १६)

(२) साकूतमधुरकोमलविलासिनोकण्ठकूजितप्राये ।

शिक्षासमयेऽपि भुवे रतलीला-कालिदासोक्ती ॥

(गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती भू० ३६)

(३) कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः । (जयदेव, प्रसन्न० १-२२)

(४) लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः ।

तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥

(दण्डी, अवन्ति-सुन्दरीकथा, मूमिका १५)

(५) अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हारावलीव ग्रथिता गुणोद्यः ।

प्रियाङ्गुपालीव प्रकामहृद्या, न कालिदासादपरस्य वाणी ॥

(श्रीकृष्ण)

(६) ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः, शुद्धा मुधा स्वादुमती च यस्य ।

वाणीमिषान्चण्डमरीचिगोत्रसन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः ॥

(सोडढ्छ)

(ख) अश्वघोष

(१) जीवन-वृत्त और कृतियाँ

(क) जीवनवृत्त—अश्वघोष के विषय में विस्तृत परिचय उपलब्ध नहीं है। अश्वघोष ने बुद्धचरित, सौन्दरनन्द और शारिपुत्रप्रकरण की पुष्पिका (अन्तिम वाक्य)¹ में जो निर्देश किया है उससे ज्ञात होता है कि वह साकेत

१. आर्यासुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम् । बुद्ध०, सौन्दर० और शारि० का ग्रन्थान्त वाक्य ।

(अयोध्या) का निवासी था। माता का नाम सुवर्णाञ्जी था। वह बौद्ध भिक्षु था। उसे आर्य भदन्त भी कहते थे। वह महाकवि और महावक्ता था। किंवदन्ती है कि वह जन्म से ब्राह्मण था। बाद में बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था। उसने वेद, शास्त्र, रामायण, महाभारत एवं दर्शनों का गहन अध्ययन किया था। उसके ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उसको युवावस्थां विषय-भोग-प्रधान थी।^१ बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर उसने सुदूर प्रदेशों तक यात्रा की और बौद्ध धर्म का प्रचार किया। वह कनिष्क (७८ ई० के लगभग) का समकालीन और उसका गुरु माना जाता है। वह कनिष्क के समय में आयोजित चतुर्थ बौद्ध-महासमिति का संचालक एवं कार्याध्यक्ष था। उसने अभिघर्म (अभिवम्म) की 'विभाषा' नामक व्याख्या की है। वह एक उच्चकोटि का कवि, दार्शनिक, आचार्य, संन्यासी, वैयाकरण, वाग्मी और प्रचारक था।

(ख) कृतियाँ—अश्वघोष के नाम से निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—
 (१) बुद्धचरित, (२) सौन्दरनन्द (ये दोनों महाकाव्य हैं), (३) शारिपुत्र-प्रकरण (नाटक), (४) सूत्रालंकार (पाली-जातकों की कथाओं का संग्रह), (५) वज्रसूची (जन्मना जातिवाद पर आक्षेपात्मक ग्रन्थ), (६) महायान-श्रद्धोत्पाद (महायान संप्रदाय पर दार्शनिक ग्रन्थ), (७) गण्डीस्तोत्रगाथा (बुद्ध और संघ की स्तुति-परक), (८) राष्ट्रपाल (एक गेय नाटक)।

(२) अश्वघोष का समय

बुद्धचरित (सर्ग २८ श्लोक ६३ से ६७) में सम्राट् अशोक का उल्लेख है। अतः अश्वघोष का समय अशोक (२७३-२३२ ई० पू०) के बाद का है। पंचम शताब्दी ई० में बुद्धचरित का चीनी अनुवाद हुआ है। अतः इससे पूर्ववर्ती है। कालिदास के ग्रन्थों का इस पर प्रभाव है, अतः कालिदास (५७ ई० पू० के लगभग) से परवर्ती है। चीनी परम्परा से तथा शारिपुत्रप्रकरण की पांडुलिपि से ज्ञात होता है कि वह कनिष्क का समकालीन था। कनिष्क का समय ७८ ई० के लगभग माना जाता है। अतः अश्वघोष का समय भी प्रथम शताब्दी ई० मानना उचित है। कुछ विद्वान् कनिष्क का समय १२५ ई० के लगभग मानते हैं।

१. अहो बताश्चर्यमिदं विमुक्तये करोति रागी यदयं कथामिति। सौन्दर०

(३) महाकाव्यों की संक्षिप्त-कथा

(क) बुद्धचरित

यह एक महाकाव्य है। इसमें बुद्ध का जीवन-चरित तथा उनके सिद्धान्त वर्णित हैं। इसमें बुद्ध के जन्म से लेकर महानिर्वाण तक की कथा वर्णित है। इस महाकाव्य में मूल रूप में २८ सर्ग थे। चीनी और तिब्बती भाषा में किए गए इसके २८ सर्गों के अनुवाद उपलब्ध हैं। संस्कृत में प्रारम्भ से लेकर १४ सर्ग (१४वें के ३१ श्लोक तक) ही प्राप्त होते हैं। १४ से १७ सर्ग तक का पद्यात्मक भाग १८३० ई० में अमृतानन्द नामक एक नेपाली पंडित ने जोड़ा था। पूरे बुद्धचरित का चीनी अनुवाद धर्मरक्ष, धर्मक्षेम या धर्माक्षर नामक भारतीय विद्वान् ने (४१४ से ४२१ ई० में) किया था। तिब्बती भाषा में इसका अनुवाद ८०० ई० के लगभग हुआ था। चीनी यात्री ईत्सिंग ने इसको विशाल महाकाव्य बताया है। प्रो० कवेल (E. B. Cowell) ने १८६३ ई० में इंग्लैण्ड से इसका संस्करण प्रकाशित किया था। बुद्धचरित का अंग्रेजी अनुवाद डा० जॉनस्टन (Dr. Johnston) ने चीनी और तिब्बती अनुवादों को आधार मानकर किया है। सम्प्रति सर्ग १ से १४ तक का श्लोकों सहित तथा शेष का जॉनस्टन के आधार पर हिन्दी-अनुवाद सूर्यनारायण चौधरी-कृत (१९४३ ई०) प्राप्य है।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—सर्ग १—बुद्ध का जन्म; सर्ग २—अन्तःपुर में विहार, सर्ग ३—रोगी और वृद्ध आदि व्यक्तियों को देखकर मन में संवेग की उत्पत्ति; सर्ग ४—रमणियों द्वारा बुद्ध को अपने जाल में फँसाने की चेष्टा और बुद्ध द्वारा उनका तिरस्कार; सर्ग ५—बुद्ध का घर से अभिनिष्क्रमण, सर्ग ६—बुद्ध को छोड़कर घुड़सवार छन्दक का नगर में लौटना; सर्ग ७—गोतम का तपोवन में प्रवेश; सर्ग ८—अन्तःपुर की नारियों का विलास, सर्ग ९—कुमार का अन्वेषण; सर्ग १०—बिम्बसार का आगमन; सर्ग ११—काम की निन्दा; सर्ग १२—बुद्ध का अराड ऋषि के आश्रम में गमन और अराड द्वारा धर्मोपदेश; सर्ग १३—मार (कामदेव) का बुद्ध की तपस्या में विघ्न डालना। दोनों का युद्ध और कामदेव की पराजय। सर्ग १४—बुद्धत्व की प्राप्ति। (संस्कृत अंश यहाँ तक प्राप्त होता है।) शेष सर्गों की कथा इस प्रकार है :—सर्ग १५—धर्मचक्र-प्रवर्तन; सर्ग १६—अनेक शिष्यों का दीक्षित होना; सर्ग १७—महाशिष्यों की प्रव्रज्या; सर्ग १८—अनाथ पिण्डद की दीक्षा; सर्ग १९—पिता-पुत्र-समागम;

सर्ग २०—जेटवन-स्वीकार; सर्ग २१—प्रव्रज्या-स्रोत-वर्णन, सर्ग २२—गौतम का आम्रपाली के उपवन में गमन, सर्ग २३—आयु पर अधिकार करने के प्रकार का वर्णन; सर्ग २४—गौतम की लिच्छवियों पर अनुकम्पा; सर्ग २५—गौतम का निर्वाण-पथ पर अभियान; सर्ग २६—महापरिनिर्वाण; सर्ग २७—निर्वाण की प्रशंसा; सर्ग २८—घातु-विभाजन ।

(ख) सौन्दरनन्द

यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है । इसमें १८ सर्ग हैं । महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल महाराज-पुस्तकालय से जीर्ण-शीर्ण रूप में प्राप्त २ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संपादन करके १९१० ई० में इसे प्रकाशित कराया था । बाद में डॉ० जान्स्टन (Johnston) ने १९२८ ई० में इसका एक सुन्दर संस्करण अंग्रेजी-अनुवाद के साथ प्रकाशित किया था । इसका बंगला-अनुवाद श्री लाहा ने तथा हिन्दी अनुवाद-सहित संस्करण सूर्यनारायण चौधरी ने (१९४८ ई०) प्रकाशित किया है ।

इसमें नन्द और सुन्दरी की कथा वर्णित है । गौतम बुद्ध का सौतेला भाई नन्द अत्यन्त सुन्दर और विलासी-प्रकृति का व्यक्ति था । वह अपनी पत्नी सुन्दरी पर अत्यन्त आसक्त था । दोनों चकवा-चकवी के तुल्य एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते थे । गौतम बुद्ध ने बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर नन्द को बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी । इसी कथा को इसमें काव्यात्मक रूप दिया गया है ।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—सर्ग १—गौतम बुद्ध की जन्म-भूमि कपिलवस्तु का वर्णन; सर्ग २—राजा शुद्धोदन का वर्णन, गौतम और नन्द का जन्म; सर्ग ३—गौतम की बुद्धत्व-प्राप्ति; सर्ग ४—नन्द का अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ विहार, बुद्ध का मिक्षार्थ नन्द के घर आना, मिक्षा पाए बिना वापस जाना, नन्द का लज्जित होना, बुद्ध के पास क्षमा-याचनार्थ जाने के लिए पत्नी से अनुमति लेना, सर्ग ५—बुद्ध द्वारा नन्द को दीक्षा देना, नन्द का काषाय-ग्रहण; सर्ग ६—सुन्दरी का करुण विलाप; सर्ग ७—सुन्दरी के वियोग में नन्द का विलाप; सर्ग ८—एक श्रमण का नन्द को उपदेश, स्त्री-निन्दा, स्त्री-प्रसंग से निवृत्ति का उपदेश; सर्ग ९—अभिमान की निन्दा, संयम की शिक्षा; सर्ग १०—स्वर्ग-दर्शन; सर्ग ११—स्वर्ग की निन्दा; सर्ग १२—बुद्ध द्वारा नन्द को विवेक का उपदेश; सर्ग १३—शील और इन्द्रिय-संयम का महत्त्व, सर्ग १४—इन्द्रियजय के लिए

आवश्यक कर्तव्य; सर्ग १५—मानसिक शुद्धि की विधि; सर्ग १६—चार आर्य सत्त्यों की व्याख्या; सर्ग १७—नन्द को अमृतत्व की प्राप्ति; सर्ग १८—आज्ञा-व्याकरण, उत्तम गुणों का उपदेश।

बुद्धचरित और सौन्दरनन्द—अश्वघोष के महाकवित्व के क्रमिक विकास का सुन्दर निदर्शन बुद्धचरित और सौन्दरनन्द हैं। बुद्धचरित प्रथम महाकाव्य है। यद्यपि इसका भाव, दर्शन, अध्यात्म और आदर्श अनुपमेय है, तथापि भाव, भाषा, काव्य-सौन्दर्य और लालित्य आदि की दृष्टि से उतना उच्च नहीं बन पड़ा है। कवि की प्रतिभा का निखार सौन्दरनन्द में परिलक्षित होता है। यद्यपि कहीं-कहीं अधिक वैयाकरण प्रयोग एवं व्याकरण-पाण्डित्य-प्रदर्शन अखरता है, तथापि भाव, भाषा एवं काव्य-सौन्दर्य वस्तुतः कवि की उच्चकोटि की प्रतिभा का प्रकाशन करता है और यही काव्य कवित्व की दृष्टि से विशेष प्रशंसनीय है।

(४) अश्वघोष की शैली

सुघोषोऽप्यश्वघोषो यो

बौद्धदर्शनमर्मधुक् ।

कवितावनिताकान्तः

सोऽसङ्गोऽपि ससङ्गदृक् ॥

(कपिलस्य)

अश्वघोष वैदर्भी रीति का कवि है। वह रामायण, महाभारत और कालिदास की शैली से अधिक प्रभावित है, अतः उसकी शैली में प्रसाद और माधुर्य का बाहुल्य है। उसका दर्शनशास्त्र और व्याकरण पर असाधारण अधिकार है, अतः वह दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों को अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में रखने में समर्थ है। व्याकरण के पाण्डित्य के कारण वह कहीं-कहीं शब्द-चित्रों का-सा चित्र उपस्थित कर देता है। कुछ स्थानों पर ऐसे क्रियापदों का प्रयोग किया है, जिनसे एक-दो नहीं, अपितु चार-चार अर्थ निकलते हैं (सौन्दर० १-१५)। कहीं-कहीं पर उसका व्याकरण-ज्ञान कठपुतली का-सा नृत्य प्रस्तुत करता है (सौन्दर० ६-३४)। वर्णनों में यथार्थता, सजीवता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। उसने अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। भाषा और भाव-सौष्ठव प्रचुर मात्रा में हैं। संभोग और विप्रलम्भ शृंगार तथा करुण रस का मनोहर प्रतिपादन है। उसका शास्त्रीय ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है ।

(क) भाषा-सौष्ठव—भावों के अनुसार भाषा में उतार-चढ़ाव तथा संतुलित भाषा का प्रयोग अश्वघोष की विशेषता है। इसी भाषा-सौष्ठव के कारण कहीं-कहीं पर लयात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु की-सी है। क्या ही सुन्दर भाषा में उसका वर्णन है !

न मे प्रियं किञ्चन नाप्रियं मे

न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः ।

तयोरभावात् सुखितोऽस्मि सद्यो

हिमातपाम्यामिव विप्रमुक्तः ॥ (सौन्दर० १७-६७)

गौतम बुद्ध के जन्म के समय प्रकृति आह्लादित थी। उसकी अभिव्यक्ति कितने सुन्दर शब्दों में की गई है।

धाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा

दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः ।

सूर्यः स एवाम्यधिकं चकाशे

जज्वाल सौम्यार्चिरनोरितोऽग्निः ॥ (बुद्ध० १-२२)

गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन के आत्मसंयम में भाषा का आरोह-अवरोह प्रेक्षणीय है।

तत्याज शस्त्रं विममशं शास्त्रं

शमं सिषेवे नियमं विषेहे ।

वशीव कञ्चिद् विषयं न भजे

पितेव सर्वान् विषयान् बद्धशं ॥ (बुद्ध० २-५२)

काम-निन्दा के प्रसंग में एक ही भाव 'कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात्' को समस्या रूप में रखकर उसकी पूर्ति ११ श्लोकों में की है। (बुद्ध० सर्ग ११—२३ से ३३)। इससे भाषा पर उसके असाधारण अधिकार का पता लगता है।

(ख) भावाभिव्यक्ति—अश्वघोष ने कहीं-कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। शुद्धोदन की आत्म-शुद्धि का सुन्दर वर्णन किया है कि उसने तीर्थ-जल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया। उसने वेदोक्त सोमरस का पान किया और हार्दिक सुख की रक्षा की।

सन्तौ शरीरं पवितुं मनश्च

तीर्याम्बुभिश्चैव गुणाम्बुभिश्च ।

वेदोपदिष्टं सममात्मजं च

सोमं पपौ शान्तिसुखं च हार्दम् ॥ (बुद्ध० २-३७)

इसमें पपौ का श्लिष्ट प्रयोग है—(१) पपौ (पा पाने, १, पर० लिट् प्र० १)
—पिया, (२) पपौ (पा रक्षणे, २, पर० लिट् प्र० १) रक्षा की।

यशोधरा की चिन्ता का कितने भावपूर्ण शब्दों में वर्णन किया गया है।
सोने की शय्या पर सोने वाले और मधुर वाद्य-ध्वनि से जगने वाले प्रियतम किस
प्रकार कठोर भूमि पर सो सकेंगे ?

शुचौ शयित्वा शयने हिरण्मये

प्रबोध्यमातो निशि तूर्यनिस्त्वनैः ।

कथं बत स्वप्स्यति सोऽद्य मे व्रती

पटकवेशान्तरिते महीतले ॥ (बुद्ध० ८-५८)

नन्द और सुन्दरी का प्रेम चकवा-चकवी के प्रेम के तुल्य अनिर्वचनीय था।
दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते थे। अतः वे इन्द्र, कुबेर और धर्म तक की
चिन्ता नहीं करते थे। क्या ही सुन्दर भावाभिव्यक्ति है !

स चक्रवाक्येव हि चक्रवाक-

स्तया समेतः प्रियया प्रियाहं ।

नाचिन्तयद् वैश्रवणं न शक्रं

तत्स्थानहेतोः कुत एव धर्मः ॥ (सौन्दर० ४-२)

आत्मसंयम का क्या ही सुन्दर प्रकार बताया गया है ! जिस प्रकार चोरों
के भय से व्यक्ति रात्रि में अपना मकान किसी प्रिय तक के लिए नहीं खोलता,
उसी प्रकार संयमी व्यक्ति शुभ और अशुभ सभी प्रकार के विचारों के लिए अपना
इन्द्रिय-मार्ग अवरुद्ध कर देता है।

यथा हि भीतो निशि तस्करेभ्यो

द्वारं प्रियेभ्योऽपि न दातुमिच्छेत् ।

प्राज्ञस्तथा संहरति प्रयोगं

समं शुभस्याप्यशुभस्य दोषः ॥ (सौन्दर० १६-७६)

(ग) रस-परिपाक—अश्वघोष ने शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। संभोग शृंगार का सुन्दर उदाहरण नन्द-सुन्दरी के अनुराग-वर्णन में मिलता है। नन्द और सुन्दरी एक दूसरे पर किनर-किनरी के तुल्य अनुरक्त थे और वे रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विषय-भोग में लिप्त रहते थे।

भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ

तौ किनरीकिपुरुषाविवोभौ ।

चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च

रूपश्रियाऽन्योन्यमिवाक्षिपन्तौ ॥ (सौन्दर० ४-१०)

नन्द और सुन्दरी के पारस्परिक हास-विलास-वर्णन में कवि अपनी सुब-बुध खो बैठता है और काव्य में व्याकरण का मिश्रण करके भी रसमंग-दोष नहीं आने देता। इसमें अरीरमत् और अमीमदत् जैसे लुङ् के कठिन प्रयोग अवधेय हैं।

अन्योन्यसंरागविवर्धनेन

तद्वद्वन्द्वमन्योन्यमरीरमच्च ।

क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन

सलीलमन्योन्यमीमदच्च ॥ (सौ० ४-११)

प्रिय-विप्रयुक्ता सुन्दरी की अवस्था घूप से सुखाई हुई पद्ममाला के सदृश थी।

सा पद्मरागं वसनं वसाना

पद्मानना पद्मदलायताक्षी ।

पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः

शुशोष पद्मल्लगिवातपेन ॥ (सौ० ६-२६)

(घ) अलंकार-निरूपण—अश्वघोष के काव्यों में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, वक्रोक्ति और एकावली आदि अलंकार प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। दिग्दर्शनार्थ कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

कपिलवस्तु की समृद्धि मालोपमा से अलंकृत करके प्रस्तुत की गई है।

संनिधानमिवार्थानामाधानमिव तेजसाम् ।

निकेतमिव विद्यानां संकेतमिव सम्पदाम् ॥ (सौ० १-५३)

राजा शुद्धोदन का वर्णन मालोपमा और विरोधाभास के कारण कितना मनोरम हो गया है ?

मधुमास इव प्राप्तश्चन्द्रो नव इवोदितः ।

अङ्गवानिव चानङ्गः स बभौ कान्तया धिया ॥ (सौ० २-५६)

बुद्ध के प्रति भक्ति और प्रिया के प्रति अनुरक्ति नन्द को व्याकुल किए हुए हैं। वह कोई निर्णय लेने में असमर्थ है, जैसे तरंगों में तैरता हुआ राजहंस कमी उठता है और कमी नीचे गिरता है।

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष

भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।

सोऽनिश्चयाज्ञापि ययौ न तस्थौ

तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः ॥ (सौ० ४-४२)

कालिदास और अश्वघोष के पौर्वापर्य-निर्णय में यह श्लोक मुख्य रूप से उद्धृत किया जाता है। इससे मिलता हुआ ही भाव सौन्दर० ४-४४ में भी मिलता है।

बुद्ध के दर्शनार्थ खिड़कियों से झाँकती हुई स्त्रियों के मुख भवनस्थ कमलवत् प्रतीत होते थे।

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि

परस्परयासितकुण्डलानि

स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि

सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ॥ (बुद्ध० ३-१६)

शोकमूर्च्छित स्त्रियाँ बुद्ध-दर्शन के लिए अपने श्वेत भवनों से इसी प्रकार निकल पड़ीं, जैसे शरत्कालीन बादल से चंचल बिजली।

अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्च्छिताः

कुमारसंदर्शनलोललोचनाः ।

गृहाद् विनिश्चक्रमुराशया स्त्रियः

शरत्पयोदादिव विद्युतश्चलाः ॥ (बुद्ध० ८-२०)

नन्दरूपी सूर्य के उदय होते ही सुन्दरीरूपी पद्मिनी (सरोवर) विकसित हो गई। उस पद्मिनी में हास्यरूपी हंस, नेत्ररूपी भ्रमर और उन्नत उरोजरूपी पद्म-कोश थे। नन्द-दिवाकर और सुन्दरी-पद्मिनी का क्या ही मधुर रूपक बाँधा गया है! श्लोक का श्रुतिमुखदत्त अनुपम है।

सा हासहंसा नयनद्विरेफा
पीनस्तनात्युन्नतपद्मकोशा ।

भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्रीपद्मिनी नन्द-दिवाकरेण ॥ (सौ० ४-४)

सांगरूपक के ही दो और उदाहरण प्रस्तुत हैं। इनसे कवि की विशेषज्ञता का परिचय मिलता है।

मैत्रीस्तनी व्यञ्जनचारुसास्नां
सद्धर्मदुग्धां प्रतिभानभृङ्गाम् ।

तवास्मि गां साधु निपीय तृप्त-
स्तृषेव गामुत्तमवत्सवर्णः ॥ (सौ० १८-११)

प्रज्ञाम्बुवेगां स्थिरशीलवप्रां
समाधिशितां व्रतचक्रवाकाम् ।

अस्योत्तमां धर्मनदीं प्रवृत्तां
तृष्णादितः पास्यति जीवलोकः ॥ (बुद्ध० १-७१)

एकावली की एक हारावली क्या ही सुन्दर बन पड़ी है! शुद्धोदन के राज्य में किसी ने भी रति के लिए काम, काम के लिए अर्थ, अर्थ के लिए धर्म और धर्म के लिए हिंसा का आश्रय नहीं लिया।

कश्चित् सिषेवे रतये न कामं
कामार्थमर्थं न जुगोप कश्चित् ।

कश्चिद् धनार्थं न चचार धर्मं
धर्माय कश्चिन्न चकार हिंसाम् ॥ (बुद्ध० २-१४)

सौन्दरनन्द का अष्टम सर्ग अर्थान्तरन्यास अलंकार का आकर है। ६२ श्लोकों में से प्रायः सभी में कोई न कोई अर्थान्तरन्यास या सुमाषित है। अन्यत्र भी अर्थान्तरन्यासों की कमी नहीं है। कुछ अर्थान्तरन्यास संकेत रूप में उपस्थित किए जा रहे हैं:—(१) नहि बाष्पश्च शमश्च शोभते (सौ० ८-१), (२) विनिगुह्य हि रोगमातुरो नचिरात् तीव्रमनर्थमृच्छति (सौ० ८-४), (३) प्रविविक्षति वागुरां मृगश्चपलो गीतरवेण वञ्चितः (सौ० ८-१५), (४) अविषक्तमतेश्च-ज्ञात्मनो नहि धर्मोऽभिरतिविधीयते (सौ० ८-२४), (५) व्यसनान्ता हि भवन्ति योषितः (सौ० ८-३१), (६) प्रमदानां तु मनो न गृह्यते (सौ० ८-३६),

(७) प्रमदानामगतिर्न विद्यते (सौ० ८-४४), (८) अघृणः खल्वघृतिश्च मन्मथः (सौ० ८-५३), (९) निघनमपि वरं स्थिरात्मनश्च्युतविनयस्य न चैव जीवितम् (सौ० ८-५७), (१०) सर्वापदां क्षेत्रमिदं हि जन्म (सौ० १६-७), (११) सर्वस्य लोके नियतो विनाशः (बुद्ध० ३-५६), (१२) कः कामसंज्ञं विषमाददीत (बुद्ध० ११-१६), (१३) जरासमो नास्ति शरीरिणां रिपुः (सौ० ६-३३), (१४) वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम् (बुद्ध० ८-३५), (१५) न कामभोगैरुपशान्तिमृच्छति (सौ० ६-४४) । इन अर्थान्तरन्यासों में वैविध्य, भावोत्कर्ष, विशेषज्ञता, अर्थगाम्भीर्य और प्रसाद गुण विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(६) वर्णन-वैचित्र्य—अश्वघोष ने आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक वस्तुओं, बुद्ध-मार-युद्ध, शृंगार, करुण वीर आदि रसों एवं स्वर्ग निर्वाण आदि का मार्मिक वर्णन अन्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से किया है । नन्द-सुन्दरी अविभाज्य हैं । वे एक दूसरे के बिना निशा-निशाकर के तुल्य शोभित नहीं होते ।

तां सुन्दरीं चेन्न सभेत नन्दः

सा वा निषेवेत न तं नतभूः ।

इन्द्रं ध्रुवं तद् विकलं न शोभे-

तान्योऽन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥ (सौ० ४-७)

बुद्ध के दर्शनार्थ उत्सुक स्त्रियों की अस्त-व्यस्त अवस्था का क्या ही सुन्दर चित्रण है !

ताः स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताश्च

मुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च

वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च

कौतूहलेनानिभृताः परीयुः ॥ (बुद्ध० ३-१४)

सुन्दरी का सौन्दर्य नन्द के लिए अतृप्ति का कारण था ।

छातोदरीं पीनपयोधरोऽं

स सुन्दरीं रुक्मदरीमिवाद्रं ।

काक्षेण पश्यन्न ततर्प नन्दः

पिबन्निर्वकेन जलं करेण ॥ (सौ० ४-४१)

(च) छन्दोयोजना—अश्वघोष के प्रिय छन्द अनुष्टुप् और उपजाति हैं । बुद्धचरित और सौन्दरनन्द में अधिकांश सर्गों में उपजाति का प्रयोग हुआ है ।

उसके बाद अनुष्टुप् का प्रयोग है। सर्गान्त श्लोकों में वंशस्थ, शिखरिणी, मन्दा-
क्रान्ता और शार्दूलविक्रीडित आदि के प्रयोग हैं।

(५) अश्वघोष का पाण्डित्य

अश्वघोष अनेक विषयों का महापण्डित था। उसने व्याकरण^१, दर्शन^२, पुराण^३ राजनीति^४, नीतिशास्त्र^५, आयुर्वेद^६, कामशास्त्र^७ और बौद्ध साहित्य का गंभीर अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था। उसका भाषा पर असाधारण अधिकार था। उसने कहीं-कहीं एक ही क्रियापद का विभिन्न चार अर्थों में प्रयोग किया है।^८ कहीं व्याकरण की सुन्दर छटा है तो कहीं दर्शन की; कहीं कामशास्त्र की प्रमुखता है तो कहीं विरक्ति की; कहीं शृंगार है तो कहीं करुण; कहीं प्रसाद और माधुर्य हैं तो कहीं ओज; कहीं भाषा-सौष्ठव है तो कहीं भाव-गाम्भीर्य। व्याकरण और दर्शन के कुछ विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

व्याकरण—अश्वघोष ने सौन्दरनन्द सर्ग १ और २ में भट्टि-काव्य जैसी व्याकरण की छटा प्रस्तुत की है, मानो काव्य के बहाने से व्याकरण की शिक्षा दी जा रही हो। सौन्दरनन्द में लिट् का ४६० बार, लुङ् का ११८ बार और लङ् का ३८ बार प्रयोग हुआ है।^९ निम्नलिखित श्लोक में लिट् के १२ रूपों का प्रयोग उसके वैदुष्य का द्योतक है।

१. सौन्दरनन्द १-१५, ४४, ४५, ४७, ४९, ५०, ५१, ५६; २-१०, २२, २६ से ४४। बुद्धचरित २-१६, ३३, ३५, ४४; ८-२५।
२. सौन्दर० १६-५ से ११, २८, २९, ३५; १७-६६, ६७। बुद्ध० ९-६०, ११-५९, १२-७०, ७८ से ८०।
३. बुद्ध० ४-१६ से २०, ७२ से ८०; ११-१३ से १६। सौ० १-५९।
४. सौ० १-६०। बुद्ध० २-५५।
५. सौ० २-९; ३-३२, ३३; ९-३३, ४३, ४४, ४६। बुद्ध० ४-७०, ८-३५, ११-४७, ५२।
६. सौ० ८-४।
७. बुद्ध० सर्ग ५। सौन्दर० सर्ग ४।
८. सौन्दर० १-१५; २-२८, २९, ३३, ३४, ३५, ३६।
९. सौन्दरनन्द, सूर्यनारायण चौधरी, १९४८ भूमिका पृष्ठ १३।

हरोद मम्लौ विहराव जग्लौ

बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ ।

चकार रोषं विचकार माल्यं

चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम् ॥ (सौ० ६-३४)

‘उपसर्गेण घात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते’ का क्या ही सुन्दर निदर्शन है ! सोप-
सर्गः ग्रह्, घातु के विभिन्न ४ अर्थ देखिए :-

प्रणताननुजग्राह विजग्राह कुलद्विष्टः ।

आपन्नान् परिजग्राह, निजग्राहास्थितान् पथि ॥ (सौ० २-१०)

अनुजग्राह—अनुगृहीत किया, विजग्राह—युद्ध किया, परिजग्राह—अपनाया,
विजग्राह—नियन्त्रित किया ।

मीयते के विभिन्न चार अर्थ देखिए :—१. मीयते(मा)—मापना, चिन्तन
करना २. मी—हिंसा करना. ३. नि+मा—निचोड़ना, ४. प्र+मा—मरना ।

यत्र स्म मीयते ब्रह्म कैश्चित् कैश्चिन्न मीयते ।

काले निमीयते सोमो न चाकाले प्रमीयते ॥ (सौ० १-१५)

वर्णन—अश्वघोष की विशेषता है कि वह गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक भावों को
अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त करता है । बौद्ध-संमत निर्वाण का दीपक
के दृष्टान्तः से क्या ही सरल रूप में वर्णन है ! निर्वाण का अर्थ है—क्लेशक्षय ।
निर्वाण के बाद आवागमन नहीं होता है ।

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो

नैवारानि गच्छति नान्तरिक्षम् ।

दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्

स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥ (सौ० १६-२८)

एवं कृत्वा निर्वृतिमभ्युपेतो

नैवारानि गच्छति नान्तरिक्षम् ।

दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्

क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥ (सौ० १६-२६)

कहीं-कहीं दार्शनिक भावों को कूट शैली में व्यक्त किया गया है । उसका भाव-
ग्रहण पाठक की योग्यता पर निर्भर है ।

एकं विनित्ये स जुगोप सप्त,

सप्तैव तत्याज रराक्ष पञ्च ।

प्राप त्रिवर्गं बुबुधे त्रिवर्गं

जज्ञे द्विवर्गं प्रजहौ द्विवर्गम् ॥ (बुद्ध० २-४१)

राजा शुद्धोदन ने एक (=आत्मा) को विनीत किया, सात (=राज्य के ७ अंग) की रक्षा की, सात (=राजाओं के ७ दुर्गुण) छोड़े, पाँच (=५ उपाय) की रक्षा की, त्रिवर्ग (=धर्म, अर्थ, काम) को प्राप्त किया, त्रिवर्ग (=शत्रु, मित्र, मध्यस्थ) को समझा, द्विवर्ग (=नीति, अनीति) को जाना और द्विवर्ग (=काम, क्रोध) को छोड़ा ।

अपने महाकाव्यों के उपर्युक्त गुणों के कारण अश्वघोष महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए और आज भी देश-विदेश में उनकी कीर्ति अजर-अमर है ।

काव्ये चारुणि बुद्धवृत्तमहिते यस्य प्रशस्यं यशः

सुन्दर्यां सुरसुन्दरीभितसूतौ नन्दान्वितायां महत् ।

बुबुधं परिलक्ष्य यस्य विशदं सबर्जनानां भूतेः

लोकः स्तौत्यथ पाटवेबुधजनस्तन्त्यते संस्तवम् ॥

(कपिलस्य)

५. (ग) भारवि

अयं दीधितिसंवीता, सश्रीरजसुहासिनी ।

अज्ञोलूकनिरानन्दा, भा रवेरिव भारवेः ॥ (कपिलस्य)

(१) भारवि का जीवन-वृत्त और कृतित्व

(क) जीवन-वृत्त—भारवि का प्रामाणिक जीवन-वृत्त सर्वथा अप्राप्त है । भारवि के विषय में कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । पुष्ट तथ्यों के अभाव में इन किंवदन्तियों का ही आश्रय लिया जाता है । संक्षेप में ये किंवदन्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) दण्डि-विरचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के अनुसार भारवि दण्डी के प्रपितामह थे ।

(२) अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुसार भारवि पुलकेशिन् द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन (६१५ ई० के लगभग) के समापण्डित थे ।

(३) एक किंवदन्ती के अनुसार 'सहसा विदधोत न क्रियाम्०' भारवि का अति प्रिय श्लोक था। उसने अपने शयनकक्ष में इसे लगा रखा था। उसके पिता उसकी व्युत्पत्ति और योग्यता-वृद्धि के लिए समय-समय पर उसे टोकते रहते थे। एक बार भारवि के संमान में आयोजित सभा में उसके पिता ने उसे डाँट दिया। क्रुद्ध भारवि ने अपने पिता की हत्या का निश्चय किया। रात्रि में घर पहुँचने पर खिड़की से उसे वह श्लोक दिखाई दिया। वह खिड़की के पास रुककर माता-पिता का वार्तालाप सुनने लगा। पिता कह रहे थे—उसकी योग्यता-वृद्धि के लिए मैंने उसे डाँटा है। यह सुनकर उसका क्रोध शान्त हो गया और उसने अनुचित क्रोध के लिए माता-पिता से क्षमा माँगी।

(४) इसी किंवदन्ती का परिवर्धित रूप यह है कि भारवि ने पिता से इस अपराध का प्रायश्चित्त पूछा और उन्होंने कहा कि ससुराल जाकर सेवा-वृत्ति करो। उसने वहाँ गो-सेवा का कार्य किया। किसी समय पत्नी की आवश्यकता पूर्ति के लिए उसे एक वणिक् से कुछ ऋण लेना पड़ा और घरोहर के रूप में उसने 'सहसा विदधोत न क्रियाम्०' श्लोक रख दिया। वणिक् ने श्लोक का अर्थ समझा और ९८ लिया। वणिक् व्यापार के लिए विदेश गया और कई वर्ष बाद लौटा। उसका छोटा बालक युवा हो चुका था और माता के पास सो रहा था। वणिक् उसे पर-पुरुष समझ कर पुत्र और पत्नी दोनों की हत्या के लिए उद्यत था। सहसा घरोहर का श्लोक स्मरण हो आया और उसने अपनी पत्नी को जगाया। तब उसे ज्ञात हुआ कि वह पर-पुरुष नहीं, अपितु उसी का इकलौता बेटा है। पुत्र और पत्नी की हत्या से बचाने वाले श्लोक-कर्ता के प्रति उसने हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की।

(५) भारवि के जन्मस्थान, माता-पिता के नाम आदि के विषय में भी विभिन्न किंवदन्तियाँ हैं। एक के अनुसार वह घारातगरी का निवासी था। उसकी माता का नाम मुशीला और पिता का नाम श्रीधर था। उसकी पत्नी का नाम रसिकवती या रसिका था। 'अवन्तिमुन्दरीकथा' के अनुसार उसके पिता का नाम नारायण स्वामी था। उसका वास्तविक नाम दामोदर था और 'भारवि' उसकी उपाधि। प्रायः सभी विद्वान् उसे दाक्षिणात्य मानते हैं। श्री एन० सी० चटर्जी ने उसे ट्रावनकोर जिले का निवासी सिद्ध किया है।^१

१. N. C. Chatterji : Home of Bharavi, Proceedings of oriental Conference, 1944.

(६) 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' के अनुसार भारवि का जन्म कुशिक गोत्र में हुआ था। चालुक्यवंशी राजा विष्णुवर्धन ने उसकी मित्रता हो गई थी। भारवि उसके सभापंडित थे।^१

(७) भारवि शैव थे। किरातार्जुनीय सर्ग १८ में उसने शिवस्तुति बड़े भावुक रूप में की है।

(८) भारवि का उपनाम 'आतपत्र भारवि' था। महदय विद्वानों ने निम्नलिखित श्लोक में कनकमय आतपत्र (सोने का छाता) की उपमा को अति सुन्दर मानकर कवि का नाम ही 'आतपत्र भारवि' रख दिया।

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मा-

दुद्धूतः सरसिजसंभवः परागः ।

वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता-

दाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥

(किराता० ५-३६)

गुलाब के वन खिले हुए हैं। हवा का झोंका पराग को आकाश में उड़ा कर चारों ओर फैला रहा है। चारों ओर फैला हुआ और मध्य में दण्डाकार पराग सुवर्ण-छत्र के तुल्य शोभित हो रहा था। वस्तुतः सुवर्ण-छत्र का यह काल्पनिक रूप अत्यन्त रमणीय है।

(ख) कृतित्व—सम्प्रति भारवि का केवल 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य ही प्राप्त होता है। इसके उदात्त गुणों के कारण ही इसकी गणना 'बृहत्त्रयी' में है। बृहत्त्रयी में अन्य दो महाकाव्य हैं :—माघ-रचित शिशुपालवध और श्रीहर्षकृत 'नैषधीयचरित'।

(२) भारवि का समय

महाकवि भारवि ने अपने काव्य में अपने विषय में कुछ भी संकेत नहीं किया है। अतः अन्तरंग प्रमाणों का अभाव है। बहिरंग प्रमाण निम्नलिखित हैं :—

(क) ऐहोल (Aihole) शिलालेख—यह शिलालेख दक्षिण में बीजापुर जिले के ऐहोल ग्राम में एक जैन मन्दिर में मिला है। इसका लेखक चालुक्य राजा

१. स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवो गिराम् ।

अनुसाध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने ॥

पुलकेशी द्वितीय का आश्रित रविकीर्ति नामक जैन-कवि है। इस शिलालेख का समय ५५६ शकाब्द (६३४ ई०) है।^१ इस शिलालेख में रविकीर्ति अपने आपको कालिदास और भारवि का समकक्ष कवि बताता है।^२ अतः भारवि की अपर सोमा ६३४ ई० है।

(ख) भारवि और विष्णुवर्धन—विष्णुवर्धन पुलकेशी द्वितीय का अनुज था। उसने ही सेनापति के रूप में हर्षवर्धन को हराया था। वह युवराज था। उसने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य वंश की स्थापना ६१५ ई० में की थी।^३ भारवि की विष्णुवर्धन से मित्रता थी,^४ अतः उसने भारवि को अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार भारवि का रचनाकाल ६१५ ई० के लगभग मानना उचित है।

(ग) भारवि और सिंहविष्णु तथा दुर्विनीत—अवन्तिमुन्दरीकथा में ही उल्लेख है कि भारवि सिंहविष्णु का आश्रित कवि था। सिंहविष्णु का शासन-काल ५७५ से ६०० ई० के मध्य है। वह कांची का पल्लव राजा था। सिंहविष्णु से मिलने के समय भारवि की आयु २० वर्ष बताई गई है। इससे ज्ञात होता है कि भारवि का जन्म-समय ५६० ई० के लगभग है।

दुर्विनीत कोंकण के गंग नरेश अविनीत का पुत्र था। उसका समय ५८० ई० माना जाता है। पिता-द्वारा अधिकार से वंचित होकर वह इधर-उधर घूमता रहा। वह भारवि का आश्रयदाता माना जाता है। उसने बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' नाम से किया है और किरातार्जुनीयम् के १५वें सर्ग को टीका भी लिखी है।^५ इससे भी भारवि का जन्म-समय ५६० ई० के लगभग ज्ञात होता है।

१. पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।

समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

२. येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

३. History of Classical Sanskrit Literature, M. Krishnamachari.

४. यतः कौशिककुमारो (दामोदरः)....पुण्यकर्मणि विष्णुवर्धनाख्ये राज-सूनौ प्रणयमन्वबध्नात्। (अवन्तिमुन्दरीकथा)

५. श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबृहत्कथेन किरातार्जुनीयपंचदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीत-नामधेयेन...Archaeological report.—M. Krishnamachari (1916) 36.

(५) काशिकाकार वामन-जयादित्य—६६० ई० के लगभग अष्टाध्यायी की काशिका टीका लिखी गई है। इसमें प्रकाशन० (१-३-२३) सूत्र की वृत्ति में 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः' (किराता० ३-१४) किरातार्जुनीय का उदाहरण दिया गया है। इससे ज्ञात होता है कि भारवि ६६० ई० तक बहुत प्रसिद्ध हो चुका था।

(६) निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—(क) जन्म—५६० ई० के लगभग। सिंहविष्णु का शासन-काल ५७५ से ६०० ई० है। उससे मिलने के समय भारवि की आयु २० वर्ष (५६०+२०=५८० ई०) मानी जाती है। इसी आयु में उसका परिचय दुर्विनीत (५८० ई०) से भी हुआ था। (ख) रचना-काल—भारवि का महा-काव्य-रचना-काल ५८० ई० के बाद है। जो संभवतः ४० या ५० वर्ष रहा। चालुक्यवंशी राजा विष्णुवर्धन (६१५ ई०) का वह आश्रित समा-पंडित था। किरातार्जुनीय की रचना का यही काल ज्ञात होता है। (ग) मृत्यु—ऐहोल (६३४ ई०) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि भारवि की कीर्ति उस समय अत्यन्त प्रचलित थी। 'कचिताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः' से ध्वनि निकलती है कि उस समय तक भारवि का स्वर्गवास हो चुका था। अतः उसके स्वर्गवास का समय ६३० ई० के लगभग मानना उचित है। (घ) बाण द्वारा भारवि का अनुल्लेख—बाण ने हर्षचरित की भूमिका में श्रेष्ठ कवियों में भारवि का उल्लेख नहीं किया है। इसके दो कारण हैं :—(१) भारवि का समकालीन होना। अतः बाण के समय में उसकी अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई होगी। (२) बाण के आश्रयदाता राजा हर्ष के शत्रु पुलकेशी द्वितीय के भाई का आश्रित कवि होने के कारण बाण ने भारवि का उल्लेख करना उचित नहीं समझा।

(३) किरातार्जुनीय की संक्षिप्त कथा

इसमें कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए अर्जुन का हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेषधारी शिव से युद्ध और प्रसन्न शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—सर्ग १—दूत वनेचर का आकर युधिष्ठिर से मिलना, दुर्योधन के शासन-प्रबन्ध का वर्णन तथा युधिष्ठिर-द्रौपदी का कौरवों के प्रति कर्तव्य-विषयक संवाद; सर्ग २—युधिष्ठिर-भीम का संवाद, व्यास का आगमन; सर्ग ३—युधिष्ठिर-व्यास-संवाद, व्यास

का अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए हिमालय पर जाने का आदेश, अर्जुन का प्रस्थान; सर्ग ४—शरद्-वर्णन; सर्ग ५—हिमालय-वर्णन; सर्ग ६—हिमालय पर अर्जुन की तपस्या, तपोविघ्नार्थ इन्द्र का अप्सराओं को भेजना; सर्ग ७—गन्धर्वों और अप्सराओं के विलासों का वर्णन; सर्ग ८—गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान-क्रीड़ा और जलक्रीड़ा; सर्ग ९—सायंकाल और चन्द्रोदय-वर्णन; सुरत-वर्णन तथा प्रमात-वर्णन; सर्ग १०—वर्षादि-वर्णन, अप्सराओं का चेष्टा-वर्णन तथा उनका प्रयत्न-वैफल्य; सर्ग ११—मुनि रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्र-अर्जुन-संवाद, इन्द्र का पाशुपत अस्त्र-प्राप्त्यर्थ अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश; सर्ग १२—अर्जुन की तपस्या, शूकर रूप में मूक दानव का अर्जुन-वधार्थ आगमन, किरात-वेषधारी शिव का आगमन; सर्ग १३—शूकररूपधारी मूक दानव पर शिव और अर्जुन के बाणों का प्रहार, वराह-मृत्यु, बाण के विषय में शिव के अनुचर और अर्जुन का विवाद, सर्ग १४—सेना-सहित शिव का आगमन और सेना के साथ अर्जुन का युद्ध; सर्ग १५—चित्र-युद्ध-वर्णन; सर्ग १६—शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध; सर्ग १७—सेना के साथ अर्जुन का युद्ध, शिव और अर्जुन का युद्ध; सर्ग १८—शिव और अर्जुन का बाहुयुद्ध, शिव का वास्तविक रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, इन्द्र आदि का अर्जुन को विविध अस्त्र देना, सफल-मनोरथ अर्जुन का युधिष्ठिर के समीप पहुँचना ।

(४) भारवि की शैली

महाकवि भारवि संस्कृत-साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक हैं । उसका महाकाव्य बृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है । भारवि भाषा, भाव, काव्य-सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन-वैचित्र्य, अलंकार-प्रयोग, विविध छन्दोयोजना और शास्त्रीय पाण्डित्य के सुन्दर निदर्शन हैं । उसकी भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है । उसका शब्द-संचय भावानुकूल है । भावानुसार कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज । भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है । मनोभाव, उदात्त कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही है । अर्थ-गाम्भीर्य और अर्थ-गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है । पद-पद पर अर्थ-गौरव उसके वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है । भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है । शृंगार और वीर रस

उसके अतिप्रिय रस हैं। इनके भेद और उपभेदों तक का सुललित भाषा में प्रयोग है। अलंकारों के प्रयोग में उसकी जादूगरी दर्शनीय है। १५वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष की कान्ति को भी निष्प्रभ कर देती है। कहीं एक ही अक्षर वाले श्लोक हैं तो कहीं दो अक्षर वाले; कहीं पादादियमक है तो कहीं पादान्तादियमक, कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा और उल्टा एक ही होता है तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है; कहीं दो पद समान हैं तो कहीं चारों पद एक ही हैं; कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं शृङ्खला-यमक; कहीं निरोष्ठ्यवर्ण श्लोक है तो कहीं अर्धभ्रमक; कहीं द्व्यर्थक और त्र्यर्थक श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले भी श्लोक हैं (१५-५२)। वस्तुतः भारवि संस्कृत-काव्यों में रीति-शैली का जन्मदाता है। उसके ग्रन्थ के आरम्भ में 'श्री' शब्द तथा सर्गान्त श्लोकों में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग उसकी प्रमुख विषेशता है। माघ ने शिशुपालवध में इसी शैली का अनुसरण किया है। भारवि का प्रकृति-चित्रण, अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उसने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना-सम्बन्धी दक्षता प्रदर्शित की है। उसका काव्य-सौन्दर्य 'नारिकेलफल-संमितम्' माना गया है, जो बाहर कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से संबद्ध वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं। 'भारवेरर्थगौरवम्', 'भारवेरिव भारवेः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' आदि सूक्तियाँ वस्तुतः कवि की गरिमा को प्रकट करती हैं।

(क) भाषा-सौष्ठव—भारवि की भाषा में लालित्य, माधुर्य और प्रौढ़ता का सुन्दर समन्वय है। प्रसंग और भाव के अनुकूल शब्दावली का सर्वत्र प्रयोग है। कहीं-कहीं व्याकरण के कठिन रूपों का भी अतिदक्षता के साथ प्रयोग किया गया है। तपस्या के लिए जाते समय द्रौपदी से विदाई लेते हुए अर्जुन का कितना सुन्दर वर्णन है :—

अकृत्रिमप्रेमरसाभिरामं

रामार्पितं दृष्टिविलोभि दृष्टम् ।

मनः प्रसादाञ्जलिना निकामं

जग्राह पायेयमिवेन्द्रसूनुः ॥

(कि० ३-३७)

शिव और अर्जुन के युद्ध में एक ही श्लोक में एक ही शब्दावली में दोनों के बाणों का युगपत् पतन अत्यन्त सुन्दर भाषा में वर्णित हैं ।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं

ससारबाणोज्युगलोचनस्य ।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं

ससार बाणो युगलोचनस्य ॥

(कि० १५-५०)

(ख) भावाभिव्यक्ति—भारवि ने अर्थगौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारों का मधुर संमिश्रण किया है । उसने अपना मन्तव्य निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया है :—

✓ स्फुटता न पदरपाकृता

न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।

रचिता पृथगर्थता गिरां

न च मामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥

(२-२७)

पदों में स्पष्टता, अर्थगौरव-युक्तता, अपुनरुक्तदोष और साक्षात्ता-गुण का होना अनिवार्य है ।

सांसारिक विषय-भोगों की नश्वरता और दुःखान्तेता का क्या ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया गया है :—

शरदम्बुधरच्छायागतवर्यो यौवनश्रियः ।

आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥

(११-१२)

यौवन शरत्कालीन बादलों के तुल्य क्षणिक है । भौतिक विषय-भोग आपाततः मनोहर होते हैं, किन्तु इनका अन्त दुःखद होता है ।

भाषा के वैभव का अत्यन्त सुन्दर रूप में वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि प्रसाद, माधुर्य और अर्थगौरव से युक्त वाग्देवी पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती है :—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः

प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।

प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां

प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥

(१४-३)

वाग्मिता की प्रशंसा में कवि का कथन है कि—

भवन्ति ते सम्यतमा विपश्चितां

मनोगतं वांचि निवेशयन्ति ये ।

नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननपुणा

गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ॥ (१४-४)

अपने मनोगत विचारों को सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति ही सम्यतम होते हैं। उनमें भी विशेष दक्ष व्यक्ति ही गंभीर भावों को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं।

मानव-स्वभाव का क्या ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है कि कोई भाव और अर्थगौरव पर बल देते हैं तो कोई भाषा के परिष्कार पर। ऐसी स्थिति में बड़ी कठिनाई यह है कि सबकी मन-पसन्द बात कैसे कहा जाए :—

स्तुवन्ति गुर्वभिधेयसम्पदं

विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः ।

इति स्थितायां प्रतिपूरुषं रुचौ

सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥ (१४-५)

कहीं-कहीं पर भारवि ने सामान्य वर्णनों में भी शास्त्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन करके उसे गंभीर बना दिया है। प्रस्तुत श्लोक में अर्जुन के अमोघ बाणों की व्याकरण के सार्थक शब्दों से तुलना की गई है और उनकी सार्थकता प्रतिपादित की गई है।

संस्कारवत्त्वाद् रमयत्सु चैतः

प्रयोगशिक्षागुणभूषणेषु

ज्यं यथार्थेषु शरेषु पार्थः

शब्धेषु भावार्थमिवाशशंसे ॥ (१७-६)

(ग) रस-परिपाक—भारवि ने शृंगार और वीर रसों के वर्णन में अतिशय सिद्धहस्तता दिखाई है। सर्ग ८ और ९ में संभोग शृंगार का सटीक वर्णन है। सर्ग १३ से १७ तक युद्ध-वर्णन में वीररस का परिपाक है। अन्य रस गौण रूप में हैं और यत्र-तत्र संक्षेप में दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ शृंगार और वीर रस के कुछ श्लोक दिए जा रहे हैं।

जल-क्रीडा के वर्णन में शृंगार-रस का सुन्दर चित्रण हुआ है। पति ने पत्नी

का हाथ पकड़ा और प्रेमविभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गए और आर्द्र मेखला ने उन्हें रोक कर लज्जा-संवरण किया ।

विहस्य पाणौ विधूते धृताम्भसि

प्रियेण वध्वा भवनार्द्रचेतसः ।

सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता

भभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ॥ (८-५१)

सुरत-वर्णन में काम को सुखद की अपेक्षा खेदावह सिद्ध करते हुए उसकी व्याख्या में कहा है :—

आवृता नखपद्मेः परिरम्भा—

इचुम्बितानि घनवन्तनिपातैः ।

सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्ति-

वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥ (९-४९)

वीर रस के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं । शिव-सेना के पराक्रम, उत्साह और अघर्षणीयता का क्या ही सुन्दर वर्णन है :—

सुगेषु दुर्गेषु च तुल्यविक्रमै-

जवाबहंपूविकया यियासुभिः ।

गणैरविच्छेदनिरुद्धमाभभौ

वनं निरुच्छ्वासमिवाकुलाकुलम् ॥ (१४-३२)

अर्जुन के बाणों की प्रशंसा करते हुए शिव के सैनिकों का कथन है कि क्या अर्जुन के गुणों या मय से छिपकर देवता अर्जुन की ओर से बाण चला रहे हैं । अन्यथा कैसे अर्जुन के बाण समुद्र की लहरों के तुल्य अनेक होते जा रहे हैं ।

हता गुणैरस्य भयेन वा मुने-

स्तिरोहिताः स्त्वित् प्रहरन्ति देवताः ।

कथं न्वमी संततमस्य सायका

भवन्त्यनेके जलधेरिवोर्मयः ॥ (१४-६१)

(घ) अलंकार-निरूपण—जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारवि महाकाव्यों में रीति-शैली का जन्मदाता है । उसने ही सर्वप्रथम चित्रालंकारों का प्रयोग बाहुल्य से किया है । यद्यपि अलंकारों की सुन्दर छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, तथापि १५वें सर्ग में चित्र-युद्ध के प्रसंग में चित्रालंकारों का आश्रय लेते

हुए विविध व्यूहों का वर्णन किया गया है। चित्रालंकारों में कहीं एकाक्षर श्लोक ह (१५-१४) तो कहीं दो या चार अक्षर वाले (१५-५, ३८); कहीं पादादियमक है (१५-१०) तो कहीं पादान्तादियमक (१५-८); कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (१५-१२) तो कहीं सर्वतोमद्र (१५-२५); कहीं एक ही श्लोक सीधा और उलटा एक ही होता है (१५-१८, २०) तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही हैं (१५-१६, ५०); कहीं दो पद समान हैं (१५-३५) तो कहीं चारों पद एक ही हैं (१५-५२), कहीं आद्यन्तयमक है (१५-३१) तो कहीं शृङ्खलायमक (१५-४२); कहीं निरोष्ठ्यवर्ण श्लोक है (१५-७) तो कहीं अर्धभ्रमक (१५-२७); कहीं द्व्यर्थक (१५-१६, ५०) और व्यर्थक (१५-४२) श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले श्लोक (१५-५२) भी हैं।

चित्रालंकार—चित्रालंकार के कुछ सुन्दर उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। निम्नलिखित श्लोक में केवल एक वर्ण का प्रयोग है। यह भारवि के असाधारण कौशल का ज्वलन्त निदर्शन है।

न नोननुन्नो नुन्नो नो नाना नानानना ननु ।

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ (१५-१४)

(नानाननाः) हे नाना प्रकार के मुख वाले शिव सैनिकों, (ऊननुन्नः ना न) निकृष्ट के द्वारा घायल किया गया व्यक्ति वीर पुरुष नहीं है। (नुन्नोः ना अना ननु) निकृष्ट को घायल करने वाला व्यक्ति भी वस्तुतः वीर पुरुष नहीं है। (ननुन्नः नुन्नः अनुन्नः) जिसका स्वामी अक्षत है, ऐसा क्षत व्यक्ति भी वस्तुतः अक्षत ही है। (नुन्ननुन्ननुत् न अनेनाः) अत्यधिक घायल को क्षति पहुँचाने वाला व्यक्ति भी निर्दोष नहीं होता।

चित्रालंकार का एक उदाहरण गोमूत्रिकाबन्ध है। इसमें प्रत्येक चरण में विषम वर्णों पर वर्ण-परिवर्तन हो सकता है। यह निम्नलिखित ढंग से पढ़ा जा सकता है।

ना सु रो यं न वा ना गो ध र सं स्थो न रा क्ष सः ।

ना सु खो यं न वा भो गो ध र णि स्थो हि रा ज सः ॥ (१५-१२)

स्कन्द अपनी भागती हुई सेना को समझाते हुए कहते हैं कि यह मुनिवेषधारी अर्जुन न दैत्य है, न नागराज (गजेन्द्र या सर्पराज) हैं, न पर्वताकार राक्षस ही है, अपितु सुखद, महोत्साही, रजोगुण-प्रधान एवं भूलतचारी एक मनुष्य है।

इसी प्रकार चित्रालंकार का एक अत्यन्त श्रम-साध्य भेद सर्वतोभद्र है। इसे सीधा, उल्टा, ऊपर या नीचे जिस प्रकार भी पढ़ा जाएगा, वही पद बनता है।

देवाकानिनि कावादे वाहिकास्वस्वकाहि वा ।

काकारेभमरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि ॥ (१५-२५)

शिव की भागती हुई सेना के प्रति सेनापति स्कन्द का कथन कि आप लोग कायरता दिखाकर हमारे गौरव को नष्ट न कीजिए। (काकाः) हैं काक-तुल्य कापुरुषो ? इस युद्ध में जो कि (देवाकानिनि) देवों के लिए उत्साहप्रद है, (कावादे) वाग्बुद्ध-प्रधान है, (वाहिकास्वस्वकाहि वा) क्रमशः नेतृत्व के समय शत्रुओं पर सम्यक्तया प्रहरणशील है, (काकारेभमरे) मंदस्त्रावी हस्ति-समूह से युक्त है और जो (निस्वभव्यव्यभस्वनि) निर्बल तथा सबल दोनों के पराक्रम से सुशोभित है, (अपना पुरुषार्थ न छोड़िए) ।

चित्रालंकार का एक सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित श्लोक है। इसमें पूर्वार्ध और उत्तरार्ध समान हैं। शिव और अर्जुन दोनों के बाणों की समान शब्दावली में प्रशंसा है।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं
ससारबाणोऽयुगलोचनस्य ।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं
ससार बाणो युगलोचनस्य ॥ (१५-५०)

इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घने बाण-समूह को छिन्न-भिन्न करता हुआ व्याप्त हुआ, उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण घने अर्जुन वृक्ष, बाण वृक्ष और सुपारी के वन को फाड़ता हुआ व्याप्त हुआ।

भारवि ने निम्नलिखित श्लोक में महायमक का प्रयोग किया है। इसके चारों पद समान हैं, परन्तु पृथक् चार अर्थ निकलते हैं। यह भारवि की विशेष योग्यता का परिचायक है।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ॥ (१५-५२)

इसके चार अर्थ इस प्रकार हैं :—(१) (जगतीश-मार्गणाः विकाशम् ईयुः) पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार को प्राप्त हुए। (२) (जगति ईशमार्गणाः विकाशम् ईयुः) संसार में शिव के बाण वि-काश (विच्छेद) को प्राप्त हुए। (३) (जगती-श-मार्-गणाः विकाशम् ईयुः) संसार को दुःख देने वाले राक्षसों को मारने वाले शिव के गण (अर्जुन के पराक्रम से) प्रफुल्लित हुए। (४) (जगतीश-मार्गणाः वि-काशम् ईयुः) जगती के ईश शिव के अन्वेषक देव आदि पक्षियों की गति के स्थान आकाश को प्राप्त हुए।

उपमा—यद्यपि भारवि में कालिदास के तुल्य उपमाओं का बाहुल्य नहीं है, तथापि उपमा-प्रयोगों में सौन्दर्य, स्वारस्य, सरसता, पाण्डित्य और औचित्य का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। युधिष्ठिर का क्या ही सुन्दर कथन है कि मनुष्य जब किंकर्तव्यविमूढ़ होता है तो आगम उसका मार्ग-निर्देश करता है, जैसे अन्धकार में दीपक।

मतिभेदस्तमस्तिरोहिते

गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम् ।

सुकृतः परिशुद्ध आगमः

कुप्ते दीप इवार्यदर्शनम् ॥

(२-३३)

यह दार्शनिक उपमा का सुन्दर उदाहरण है। एक वैयाकरणी उपमा का भी रसास्वाद करें। शिव और अर्जुन के बीच में मरने के लिए उपस्थित वराह की उपमा प्रकृति और प्रत्यय के बीच में विद्यमान अनुबन्ध (इत्संज्ञक क्, आदि, जैसे क्त्वा और क्तिन् में क् अनुबन्ध) से दी गई है।

स भवस्य भवक्षयकहेतोः

सितसप्तेश्च विधास्यतोः सहार्थम् ।

रिपुराप पराभवाय भव्यं

प्रकृतिप्रत्यययोरिवानुबन्धः

॥

(१३-१६)

सर्ग १३ और १७ में प्रायः पूरे सर्ग में उपमा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

१. उपमा के अन्य कुछ स्थल—कि० २-३१; ४-२८; १३-१४, २०, ३३; १४-४२; १७-२ से ६ आदि।

ग्रन्थ अलंकार—भारवि ने उपमा के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा^१, रूपक^२, अतिशयोक्ति^३ अर्थान्तरन्यास^४ और श्लेष^५ अलंकारों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त एकावली (२-३२), समासोक्ति (२-३६, ३-६०, ५-२७), दृष्टान्त (२-५१, १५-१५), अर्थापत्ति (७-२७), विरोधामास (१८-४१) आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

(ङ) भारवेरर्थगौरवम्

भारवि का वैदुष्य व्यापक है। उसने जीवन की ऊँच-नीच सभी अवस्थाओं का वैयक्तिक अनुभव प्राप्त किया था। अतएव उसके सैकड़ों सुभाषितों में वेद, दर्शन, नीति, राजनीति पुराण, ज्योतिष, कामशास्त्र, कृषि, काव्य-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र एवं नाट्यशास्त्र आदि का अगाध पाण्डित्य मिलता है। यहाँ पर उदाहरण रूप में कुछ अर्थगौरव वाले पद प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ये सभी अर्थान्तरन्यास के उदाहरण हैं।

भारवि का नीतिशास्त्रीय ज्ञान बहुत व्यापक था। जैसे—(१) असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि (३-१४)—असज्जनों की संगति परामव और विपत्ति का कारण है। (२) मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि (३-५३)—ईर्ष्यालु व्यक्ति सज्जनों से भी द्वेष करने में नहीं चूकते। (३) किमिवावसादकरमात्मवताम् (६-१६)—मनस्वियों के लिए क्या दुःख क्या सुख? (४) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (६-१६)—सभी निर्बिघ्न स्थान पर रहना चाहते हैं। (५) न्यायाधारा हि साधवः (११-३०)—सज्जन न्यायमार्ग का ही आश्रय लेते हैं। (६) जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः (११-५६)—स्वामिमान-रहित व्यक्ति और तिनके की समान अवस्था होती है। (७) आपदेत्युभयलोकदूषणी वर्तमानमपथे हि दुर्मतिम् (१३-६४)—

१. कि० २-१०, ११; ३-८; ५-३०; ६-३३; ७-३१; ११-४३, १४-५०; १७-८, ४८।
 २. कि० २-५०; ४-३; ११-४।
 ३. कि० ३-६०, ६-४, १२-७।
 ४. कि० १-२, २३; २-४३; ३-१२; १७; ४-२३; ८-३७; ६-७०; १०-५०; ११-८, ११।
 ५. कि० १-२४; १३-१४, १५; १५-४५।
- सं० सा० सं० इ०—१३

कुमार्गंगामी मूलं पर सभी ओर से विपत्तियाँ आती हैं। (८) तेजोविहीनं विजहाति दर्पः शान्ताचिषं दीपमिव प्रकाशः (१७-१६)—निस्तेज व्यक्ति में स्वामिमान इसी प्रकार नहीं रहता है, जैसे बुझे हुए दीपक में प्रकाश।

राजनीति-विषयक कुछ सुमाषित ये हैं :—(१) ब्रजन्ति ते मूढधियः परामवं मवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (१-३०)—दुष्ट के साथ दुष्टता ही उचित है। (२) प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (३-१७)—युद्ध में पराक्रम पर विजय निर्भर है। (३) परमं लाभमरातिमङ्गमाहुः (१३-१२)—शत्रु-नाश सबसे बड़ा लाभ है। (४) नयहीनादपरज्यते जनः (२-४६)—नीतिहीन राजा से प्रजा प्रसन्न नहीं रहती। (५) सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रति नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (१-५)—राजा और मन्त्री के अनुकूल होने पर ही सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। (६) ब्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूमृतः (१-४२)—शत्रुओं की उपेक्षा करके मुनि ही शान्ति लाभ कर सकते हैं, राजा नहीं।

कुछ अन्य सुन्दर सुमाषित ये हैं :—(१) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (१-४)। (२) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः (१-८)—नीचों की संगति की अपेक्षा महात्माओं से विरोध भी अच्छा है, क्योंकि वह ऐश्वर्य का साधक है। (३) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (१-२३)—बलवान् से विरोध दुःस्वपायी है। (४) वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (८-३७)—प्रेम में गुण बसते हैं, न कि वस्तु में। (५) मित्र-लाभमनु लाभ-सम्पदः (१३-५२)—सबसे बड़ा लाभ मित्र-लाभ है। (६) विमलं कलुषीम-वच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा (१३-६)। (७) अविज्ञातेऽपि बन्धो हि बलात् प्रह्लादते मनः (११-८)। (८) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (११-१२)। (९) कामाः कष्टा हि शत्रवः (११-३५)। (१०) सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (११-११)। (११) गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः (१२-१०)। (१२) पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते (११-६१)। (१३) अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति बश्याः स्वयमेव देहिनः (१-३३)। (१४) ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः (२-२०)। (१५) शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः (२-३६)। (१६) मुखरताऽवसरे हि विराजते (५-१६)। (१७) न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (४-२३)। (१८) रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति (७-५)। (१९) सा

लक्ष्मीस्पर्शकृते यथा परेषाम् (७-२८) । (२०) भवन्ति भव्येषु हि भक्षपाताः (३-१२) । (२१) भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः (१४-२२) । (२३) न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः (१४-१३) (२३) गुणगृह्या वचने विपश्चितः (२-५) । (२४) सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः (२-३०) ।

(ख) वर्णन-वैचित्र्य—भारवि द्विविध विषयों के वर्णन में सिद्धहस्त है । उसके प्रकृति-वर्णन, मनोभाव-वर्णन, अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति-का समन्वय युद्ध-वर्णन, जलविहार-वर्णन, ऋतु-वर्णन, सुरत-वर्णन, सैन्य-वर्णन आदि अत्यन्त मनोहर हैं । जैसे—सर्ग ४ में शरद्-वर्णन, सर्ग ५ में हिमालय-वर्णन, सर्ग ८ में जलक्रीडा-वर्णन, सर्ग ९ में संध्या, चन्द्रोदय और सुरत-वर्णन, सर्ग १२ से १८ तक युद्ध-वर्णन ।

वसन्त-वर्णन में क्या ही सुन्दर रूप में कवि ने शृंगार और वीर रसों को एक स्थान पर बैठाया है । इसमें रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का भी सुन्दर समन्वय है ।

विकसितकुसुमाधरं हसन्तीं

कुरबकराजिवधूं विलोकयन्तम् ।

वदशरिष सुराङ्गना निषण्णं

सशरमनङ्गमशोकपल्लवेषु

॥

(१०-३२)

अप्सरारै मानो यह दृश्य देख रही हैं कि अशोक के पत्तों पर कामदेव अपना बाण लिए बैठा है और वह विकसित पुष्परूपी अधरों से हँसती हुई कुरबकपुष्प-राशिरूपी वधू को देख रहा है । एक ओर काम की कामुकता है तो दूसरी ओर वधुओं पर काम-बाण-निक्षेप । क्या ही रसों का सांकर्य है !

(छ) छन्दोयोजना—छन्दोयोजना पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भारवि छन्दःप्रयोग की दृष्टि से कालिदास से आगे है । कालिदास के विशेष प्रयुक्त छन्द ६ हैं—उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, रथोद्धता, वैतालीय और द्रुतविलम्बित । भारवि ने विभिन्न सर्गों में ११ छन्दों का प्रयोग किया है और सर्गान्त श्लोकों में मालिनी और वसन्ततिलका प्रमुख हैं । इस प्रकार ज्ञात होता है कि छन्दोवैशिष्ट्य क्रमशः उन्नति पर था । भारवि के प्रयुक्त मुख्य छन्द १३ हैं । माघ ने और आगे बढ़कर १६ छन्दों का प्रयोग किया है । भारवि का अत्यन्त प्रिय छन्द वंशस्थ है ।

अतएव क्षेमेन्द्र ने भारवि की प्रशंसा में कहा है कि उसने वंशस्थ छन्द के द्वारा वंशस्थ गोल छोटों से छाया के तुल्य अपनी प्रतिभा का अधिक विस्तार किया है।

वृत्तछत्रस्य सा काऽपि वंशस्थस्य विचित्रता ।

प्रतिभा भारवेर्येन सञ्छायेनाधिकीकृता ॥

किरातार्जुनीय की परीक्षा से ज्ञात होता है कि भारवि ने ८ वर्ण से लेकर १३ वर्ण तक के छन्दों पर पूर्णाधिकार प्राप्त किया था। अतएव वसन्ततिलका (१४ वर्ण) और मालिनी (१५ वर्ण) का सर्गान्त में ही प्रयोग किया है।

भारवि के प्रयुक्त छन्दों का विवरण इस प्रकार है :—

छन्दोनाम	सर्ग में प्रयुक्त	छन्दोनाम	सर्गान्त श्लोक में प्रयुक्त
(१) वंशस्थ—१, ४, ८, १४ (४)		मालिनी—	१, ३, ४, ५, ६, ९, १४,
(२) उपजाति—३, १६, १७ (३)			१७, १८ (६)
(३) द्रुतविलम्बित—५, १८ (२)		वसन्ततिलका—	२, ७, ८, ११, १३,
(४) अनुष्टुप्—११, १५ (२)			१५, १६, (७)
(५) वियोगिनी—२ (१)		प्रहर्षिणी—	१२ (१)
(६) प्रमिताक्षरा—६ (१)		शिखरिणी—	१० (१)
(७) प्रहर्षिणी—७ (१)			
(८) स्वागता—६ (१)			
(९) पुष्पिताग्रा—१० (१)			
(१०) उद्गता—१६ (१)			
(११) औपच्छन्दसिक—१३ (१)			

(५) भारवि की न्यूनताएँ

पाश्चात्य तथा कतिपय भारतीय विद्वानों ने भारवि की कुछ न्यूनताओं का उल्लेख किया है। वे ये हैं :—(१) १५वें सर्ग में चित्रालंकारों का प्रयोग। श्रम-साध्यता और दुर्बोधिता के कारण कीथ आदि ने इस पद्धति की कटु आलोचना की है। (२) लिट् लकार का कर्मवाच्य और भाववाच्य में अधिक प्रयोग। (३) कतिपय शब्दों, धातुओं और पदावली की पुनरावृत्ति। (४) क्लिष्ट वैयाकरण-प्रयोग। जैसे—शास् का द्विकर्मक प्रयोग, अनुजीविसात्कृताः (१-१४) में देये त्रा च (५-४-५५) से सात् प्रत्यय, दर्शयते (१-१०) में आत्मनेपद का प्रयोग,

स्तनोपपीडम् में णमुल् (अम्) प्रत्यय । (५) कुछ उपमाओं की पुनरावृत्ति । (६) कहीं-कहीं पर व्याकरण आदि की पारिभाषिक उपमाएँ । जैसे—प्रकृति-प्रत्यययोरिवानुबन्धः (१३-१६) में व्याकरण-सम्बन्धी उपमा । (७) सर्ग १ और १३ में वनेचर के द्वारा गूढ राजनीति और धर्मशास्त्र की चर्चा । (८) आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः (१७-६२) में अपाणिनीय आत्मनेपद का प्रयोग ।

इस विषय में निम्नलिखित वक्तव्य है :—ऊपर जिन न्यूनताओं की चर्चा की गई है, उन्हें भारतीय आचार्यों ने न्यूनता में नहीं गिना है । भारवि संस्कृत-साहित्य में रीति-काव्य-परंपरा के जन्मदाता हैं, अतः ऐसे काव्यों में प्रतिभा-प्रदर्शन, अलंकारों की बहुलता, श्रमसाध्य चित्रालंकारों का प्रयोग, पद-पद पर व्याकरण दर्शन आदि का पाण्डित्य-प्रदर्शन, कर्मवाच्य और भाववाच्य की प्रमुखता विशेष महत्त्वपूर्ण मानी गई है । अतएव माघ और श्रीहर्ष में इनका उत्तरोत्तर उत्कर्ष देखने को मिलता है । पाश्चात्य विद्वानों के लिए ये भले ही दुरूह, अरुचिकर, श्रमसाध्य और अत्यन्त अनुचित प्रतीत हों, भारतीय विद्वत्परंपरा इसको रुचिकर और ग्राह्य समझती है । विश्व के सभी कवियों में कतिपय भावों, विचारों, शब्दों और पदावली के प्रति विशेष अभिरुचि दृष्टिगोचर होती है, अतः इनकी पुनरावृत्ति भी देखने को मिलती है । भारवि का वनेचर कहने मात्र के लिए वनेचर था । वह प्रौढ़ विद्वान्, वर्णिलिगी और व्युत्पन्न व्यक्ति था । 'आजघ्ने' प्रयोग को भी 'भेतुम्' पद का अध्याहार करके शिष्ट माना गया है । (देखो सिद्धान्तकौमुदी सूत्र १-३-२८ की व्याख्या) ।

(६) भारवि-विषयक प्रशस्तियाँ

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने भारवि की रचना की उपमा नारियल के फल से दी है, जो ऊपर से कठोर, किन्तु अन्दर कोमल और सरस होता है । किरातार्जुनीय के प्रथम तीन सर्ग विशेष कठिन हैं, अतः उन्हें 'पाषाणत्रय' (तीन पत्थर) कहा जाता है । आगे १५वें सर्ग में चित्रकाव्य की रचना से विशेष क्लिष्टता आ गई है । अतः मल्लिनाथ का कथन है :—

नारिकेलफलसंमितं वचो

भारवेः सपवि तद् विभज्यते ।

स्वावयन्तु रसगर्भनिभंरं

सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ॥

भारवि कौ सरस पदावली और अर्थगौरव ने कवियों का मार्ग-प्रदर्शन किया है, अतः कृष्ण कवि का कथन है :—

प्रवेशवृत्त्याऽपि महान्तमर्थं, प्रदर्शयन्ती रसमावधाना ।
सा भारवेः सत्यथदीपिकेव, रम्या कृतिः करिव नोपजीव्या ॥

संस्कृत-साहित्य में भारवि रीति-काल का जन्मदाता है। उसे कविराज का समान प्राप्त हुआ है। उसने एक राजा के तुल्य रीति-सम्प्रदाय के लिए राजमार्ग प्रशस्त किया है।

वंशस्थवृत्तेन धृतातपत्रो
वृत्तेन संवर्शितराजवृत्तिः ।
अर्थप्रकर्षाद्भूतराजलक्ष्मी-
नृपायते भारविराजतकीर्तिः ॥ (कपिलस्य)

५. (घ) माघ

कवितावनितावृतवन्द्यवरः
सरसालिरसालरसान्वितधीः ।
रसभावविभाभूतभूरियशाः
कविमाघवरः कृतिचित्तहरः ॥ (कपिलस्य)

(१) माघ का जीवन-वृत्त और कृतित्व

(क) जीवन-वृत्त—माघ के जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा शिशुपालवध के अन्त में दिए हुए 'कवि-वंश-वर्णन' के श्लोकों से मिलती है। ये ५ श्लोक माघकृत ही माने जाते हैं। इनके अनुसार माघ के पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलात (बंगला-संस्करण के अनुसार घर्मनाम) के सर्वाधिकारी थे। कुछ विद्वानों ने सर्वाधिकारी का प्रधान मन्त्री अर्थ लिया है और टीकाकार वल्लभदेव ने सर्वाधिकारी का महासेनापति अर्थ लिया है। सुप्रभदेव के पुत्र 'दत्तक' थे।

१. सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः ।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥ श्लोक १ ।
२. तस्याभवद् दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपस्तनूजः । (२)

इनको सभी के आश्रयदाता होने के कारण 'सर्वाश्रय' भी कहते थे। माघ इनके पुत्र थे।'

भोजप्रबन्ध में राजा भोज (१०१०-१०५० ई०) के समय में महाकवि माघ की सत्ता बताई गई है और सर्वस्वदानी होने के कारण धनहीन माघ का भोज से संपर्क बताकर धारानगरी में ही उनके देहावसान का वर्णन मिलता है। भोज-प्रबन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त अप्रामाणिक है। अतः उसके आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

शिशुपालवध की कुछ प्रतियों में यह उल्लेख मिलता है :—

“इति श्रीभिन्नमालवास्तव्यवत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये.....” इससे तीन बातों पर प्रकाश पड़ता है। (१) माघ के पिता का नाम वत्तक था। (२) वे महावैयाकरण थे। (३) इनके पूर्वज श्रीभिन्नमाल के रहने वाले थे। यह स्थान संप्रति 'मीनमाल' कहा जाता है, जो मूलतः गुजरात प्रान्त में था, परन्तु अब वह राजस्थान की सीमा में आ गया है। श्रीभिन्नमाल का ही दूसरा नाम 'श्रीमाल' ज्ञात होता है। इसके आधार पर वहाँ के निवासी ब्राह्मण श्रीमाली ब्राह्मण कहे जाते हैं, जो गुजरात और राजस्थान दोनों प्रान्तों में फैले हुए हैं। इससे ज्ञात होता है कि माघ भी श्रीमाली ब्राह्मण थे। वंश-परम्परा के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि वे एक सुप्रतिष्ठित, संपन्न और विद्वत्परिवार के व्यक्ति थे। शिशुपालवध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माघ ने व्याकरण, दर्शन, काव्य-शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, कामशास्त्र, पुराण, इतिहास आदि का गहन अध्ययन किया था।

(ख) कृतित्व—माघ की केवल एक ही कृति 'शिशुपालवध' प्राप्त होती है। यह एक ही कृति उसे अमर रखने के लिए पर्याप्त है।

(२) माघ का समय

माघ के समय के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं। इनकी आलोचना से ज्ञात होता है कि माघ का समय सातवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है अर्थात् ६७५ ई० के लगभग।

१. तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः

काव्यं व्यघत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥ (श्लोक ५)

(१) माघ के पितामह सुप्रभदेव वर्मलात के प्रधान मन्त्री थे। वर्मलात का एक शिलालेख डा० कीलहार्न को राजपूताना के वसन्तगढ़ स्थान से मिला था। इसका समय ६२५ ई० है। यदि एक पीढ़ी के लिए २५ वर्ष का समय माना जाए तो दत्तक का समय ६५० ई० और माघ का समय ६७५ ई० के लगभग होगा। इस तथ्य के आधार पर अधिकांश विद्वान् माघ का यही समय स्वीकार करते हैं।

(२) अपर सीमा—(क) सोमदेव (६५६ ई०) ने अपने ग्रन्थ यशस्तिलक-चम्पू में माघ का उल्लेख किया है। अतः माघ ६५० ई० के बाद का नहीं है। (ख) आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में शिशुपालवध के दो श्लोक उदाहरण के रूप में दिए हैं।^१ आनन्दवर्धनाचार्य का समय ८५० ई० के लगभग है। (ग) इससे पूर्ववर्ती राजा अमोघवर्ष (९वीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध) के समकालीन कवि नृपतुंग ने अपने कन्नड भाषा के ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में माघ का उल्लेख किया है। (घ) आचार्य वामन (८०० ई० के लगभग) ने तुल्य-योगिता के उदाहरण में माघ का श्लोक 'रम्या इति प्राप्तवतीः पताका० (३-५३) उद्धृत किया है। इन बहिरंग प्रमाणों के आधार पर माघ की अपर सीमा ८०० ई० के बाद नहीं रखी जा सकती है।

(३) अन्तरङ्ग साक्ष्य—माघ के समय के निर्धारण के लिए अन्तःसाक्ष्य भी उपलब्ध होता है। शिशुपालवध में यह श्लोक मिलता है—

अनुत्सृज्य न्यासा सद्बृत्तिः सन्निरन्धना ।

शब्दविद्येव नो भगति राजनीतिरपस्पशा ॥ (२-११२)

मल्लिनाथ ने इस श्लोक की राजनीति और व्याकरण-परक व्याख्या की है और वृत्ति शब्द से अष्टाध्यायी की वामन-जयादित्य (६५० ई०) रचित 'काशिका-वृत्ति' अर्थ लिया है।^२ अतः माघ का समय ६५० ई० के बाद ही होना चाहिए। 'न्यास' शब्द के ऊपर विद्वानों में पर्याप्त विवाद है। जिनेन्द्र बुद्धि (७०० ई० के लगभग) ने काशिका वृत्ति पर 'विवरणपञ्जिका' नामक टीका लिखी है, जो 'न्यास' नाम से प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् इस न्यास ग्रन्थ को लेकर माघ का समय ७०० ई० के बाद मानते हैं। मल्लिनाथ ने न्यास का अर्थ वृत्ति-व्याख्यान ग्रन्थ

१. रम्या इति प्राप्तवतीः पताका० (शिशु० ३-५३) ।

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्० (५-२६) ।

२. वृत्तिः काशिकाख्यसूत्रव्याख्यानग्रन्थविशेषः०

(मल्लिनाथ) ।

दिया है।^१ किन्तु इससे स्पष्ट नहीं है कि वह काशिका की टीका है या अन्य ग्रन्थ। जिनेन्द्रबुद्धि ने अपने ग्रन्थ से पूर्व कतिपय न्यास ग्रन्थों का उल्लेख किया है। बाण (६२० ई० के लगभग) ने भी हर्षचरित में श्लेष द्वारा एक न्यास ग्रन्थ का उल्लेख किया है।^२ इससे स्पष्ट है कि माघ से पूर्ववर्ती बाण के समय से पहले भी कोई प्रामाणिक न्यास ग्रन्थ था। उसके आधार पर ही माघ ने न्यास का नाम लिया है।

इस प्रकार माघ का समय ६७५ ई० के लगभग ही मानना उचित है।

(३) शिशुपालवध की संक्षिप्त कथा

इसमें देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, शिशुपाल का अमर व्यवहार और क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—
सर्ग १—देवर्षि नारद का आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों और उसके अत्याचारों का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को इन्द्र का सन्देश सुनाना और उन्हें शिशुपाल के वधार्थ उद्यत करना; सर्ग २—श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव की गुप्त मंत्रणा, बलराम की शिशुपाल के वधार्थ तुरन्त अभियान की सलाह, नीतिज्ञ उद्धव का इस विषय में अधिक शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने का परामर्श; सर्ग ३—द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान; द्वारका, सेना और समुद्र का वर्णन, सर्ग ४—रैवतक पर्वत का वर्णन; सर्ग ५—रैवतक पर्वत पर सैन्य-शिविर का संस्थापन; सर्ग ६—षड्ऋतु-वर्णन; सर्ग ७—वन-विहार-वर्णन; सर्ग ८—जलक्रीड़ा-वर्णन; सर्ग ९—सायंकाल-चन्द्रोदय-शृंगारविधानादि-वर्णन; सर्ग १०—पानगोष्ठी-वर्णन और रात्रि-क्रीड़ा-वर्णन; सर्ग ११—प्रभात-वर्णन; सर्ग १२—श्रीकृष्ण के पुनः प्रस्थान और यमुना नदी का वर्णन; सर्ग १३—श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलन, श्रीकृष्ण का नगर-प्रवेश, दर्शक नारियों की विलासपूर्ण चेष्टाएँ; सर्ग १४—युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा और भीष्म द्वारा उनकी स्तुति; सर्ग १५—शिशुपाल का क्रुद्ध होना और उसके पक्ष के राजाओं का युद्धार्थ तैयार होना; सर्ग १६—शिशुपाल के दूत का श्रीकृष्ण की सभा में उभयार्थक

१. न्यासो वृत्तिव्याख्यानग्रन्थविशेषः० (मल्लिनाथ)।

२. कृतगुरुपदन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि० (हर्षचरित)।

वाक्यों का प्रयोग, सात्यकि द्वारा उसका उत्तर तथा पुनः दूत का उत्तर और उसके द्वारा शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन; सर्ग १७—श्रीकृष्णपक्षीय राजाओं का अत्यन्त क्रुद्ध होना, श्रीकृष्ण की सेना की तैयारी और उसका प्रस्थान; सर्ग १८—दोनों सेनाओं का साक्षात्कार और घोर युद्ध का वर्णन; सर्ग १९—चित्रालंकार-युक्त श्लोकों से विचित्र व्यूह-रचना एवं युद्ध का वर्णन; सर्ग २०—श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र युद्ध, दिव्यास्त्र-युद्ध, वायुयुद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का शिरच्छेदन।

(४) माघ की शैली

महाकवि माघ संस्कृत-काव्य-जगत् के अनर्घ रत्नों में एक है। उसका महाकाव्य 'शिशुपालवध' बृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण उत्कृष्ट मात्रा में उपलब्ध होते हैं। माघ ने अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों के उत्कृष्ट गुणों का समन्वय किया है। उसने कालिदास से काव्य-सौन्दर्य, भारवि से अर्थ-गौरव और भट्टि से व्याकरण-पाठव का संकलन किया है। माघ की विशेषता यह है कि उसने तीनों गुणों का मणि-कंचन-संयोग प्रस्तुत किया है। उसमें एक ओर काव्य-निपुणता का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर व्याकरण-मंदुता का; एक ओर कलापक्ष की प्रचुरता है तो दूसरी ओर भावपक्ष की; एक ओर वीर रस का निरूपण है तो दूसरी ओर शृंगार का; एक ओर राजनीति का उपदेश है तो दूसरी ओर दर्शन-दिग्दर्शन, एक ओर अर्थालंकारों की सुन्दर छटा है तो दूसरी ओर चित्रालंकारों की सप्तरंगी प्रभा; एक ओर कोमल-कान्त-पदावली है तो दूसरी ओर दुर्बोध-वाग्जाल। उसकी भाषा में परिष्कार, लालित्य, प्रवाह और असाधारण लोच है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। भाषा सबल, पुष्ट और सुसंघटित है। भावाभिव्यक्ति और कल्पना की ऊँची उड़ान में माघ ने अपने पूर्ववर्ती कवियों को तिरस्कृत कर दिया है। माघ का काव्य-सौन्दर्य सभी कवियों के लिए अनुकरणीय और प्रशंसनीय रहा है। इसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों का संतुलित सामंजस्य है। उपमा, अर्थगौरव और पद-लालित्य, इन तीनों गुणों की प्रचुरता के कारण 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' उक्ति कवि-वृन्द में बहुश्रुत है। यद्यपि माघ ने अर्थालंकारों का सामान्यतया तथा अनेक स्थानों पर अमसाध्य प्रयोग भी किया है, तथापि चित्रालंकारों की अम-साध्यता को देखकर अर्थालंकारों के प्रयोग अभिमूत हो जाते हैं। माघ ने भारवि और भट्टि की होड़ में

एकाक्षरपाद, एकाक्षर, द्व्यक्षर, गोमूत्रिका-बन्ध, मुरजबन्ध, चक्रबन्ध, अर्धभ्रमक, सर्वतोभद्र, अनुलोम-प्रतिलोम, असंयुक्ताक्षर, अतालव्य, गूढ चतुर्थ, द्व्यर्थक, त्र्यर्थक आदि अनेक प्रकार के श्लोक १६वें सर्ग में दिए हैं, जिनकी विचित्रता और चमत्कृति ने विश्व के सभी आलोचकों को चमत्कृत किया है। माघ ने अर्थालंकारों में उपमा और अर्थान्तरन्यास को बहुत महत्त्व दिया है। इनके अतिरिक्त उसने उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास, दृष्टान्त, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक और सन्देह आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। माघ की बहुज्ञता पद-पद पर प्रकट होती है। वेद, व्याकरण, काव्य-शास्त्र, दर्शन, संगीत, ज्योतिष, आयुर्वेद, नीति, राजनीति, पुराण, कामशास्त्र, नाट्य-शास्त्र, चित्रकला, हस्तिविद्या, अश्वविद्या आदि का गहन अध्ययन उसके महाकाव्य से लक्षित होता है। भारवि ने जिस रीति-सम्प्रदाय का काव्यों में प्रवर्तन किया था, उसकी परिणति माघ में मिलती है। माघ की कला में सुन्दर नर्तकी का-सा हाव-भाव, विलास, स्नेह, माधुर्य और मनोरमता है। कहीं पद-संचार में मनोहारिता है तो कहीं रति-विलास में भावुकता; कहीं नीति-वचनरूपी कटाक्ष है तो कहीं सरस शब्दों का माधुर्य; कहीं भाव-मंगिमा है तो कहीं मधुर अंग-संचार। अतएव रसिक सहृदयों का कथन है कि—'मेघे माघे गतं वयः'।

माघ ने कहीं-कहीं पर अपनी अपूर्व कल्पना का परिचय दिया है। निदर्शना अलंकार का उपयोग करते हुए रैवतक पर्वत के एक और सूर्योदय और दूसरी ओर चन्द्रास्त को देखकर महाकाय हाथी के दोनों ओर सटकते हुए दो विशाल घंटों की कल्पना कवि ने की है। इस कल्पना की उत्कृष्टता के आधार पर माघ का नाम ही 'घण्टामाघ' पड़ गया।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरञ्जना-

वह्निमरुधौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।

बहति गिरिरयं विलम्बिधण्टा-

द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ (शि० ४-२०)

माघ ने शिशुपालवध के प्रथम ६ सर्गों में अपने अक्षय शब्दकोष का पूर्ण प्रदर्शन किया है। उसने प्रत्येक पूर्वक एक भाव या अर्थ के लिए प्रत्येक स्थान पर नया शब्द दिया है। इस प्रकार ६ सर्गों में विशाल शब्दराशि तैयार हो जाती है। इसी वैशिष्ट्य के आधार पर कहा गया है कि—

‘नवसर्गंगते माधे नवशब्दो न विद्यते’ ।

काव्य के सौन्दर्य और रमणीयता का मानदण्ड माध ने नित-नवीनता को माना है, अतएव उसके काव्य में सभी नवीन विधाओं का प्रयोग और उपयोग है ।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥ (४-१७)

(क) भाषा-सौष्ठव—मौघ की भाषा में पाण्डित्य के साथ ही परिष्कार है, कोमलता के साथ माधुर्य है, ओज के साथ सशक्तता है और अर्थगाम्भीर्य के साथ स्फूर्ति भी है । कहीं प्रसाद गुण है, कहीं समास-बहुलता, कहीं पद-माधुरी और कहीं अभिव्यक्ति-चातुरी । पदमाधुरी के साथ स्वर-माधुरी का एक सुन्दर उदाहरण देखिए :—

या न ययौ प्रियमन्यवधूम्यः

सारतरागमना यतमानम् ।

तेन सहेह बिभर्ति रहः स्त्री

सा रतरागमनायतमानम् ॥

(४-४५)

ध्वन्यनुकरणात्मक शब्दों के द्वारा मेखला की ध्वनि का क्या ही सुन्दर चित्रण है—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्-

भ्रमरसंभ्रमसंभृतशोभया

चलितया विदधे कलमेखला-

कलकलोऽलकलोलवृशाऽथया ॥

(६-१४)

मधुकर के गुंजन और कवि के गुंजन में देखिए कितना साम्य है—

मधुरया मधुबोधितमाधवी-

मधुसमृद्धिसमेधितमेधया

मधुकराङ्गनया मुहुर्गन्ध-

ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

(६-२०)

१. भाषा-सौष्ठव के स्थल—१-१२, २६; २-१४, ७२, ७३; ३-१६, ६०, ७०; ४-१२, १८, २४; ६-१६, ४६; ७-७०; १४-१४, ३३; १६-८४; १७-४, ६१; १८-३६ ।

समास-बहुल भाषा का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

कसुमकार्मुककार्मुक-संहित-

द्रुतशिलीमुखसखितविग्रहाः ।

मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे

किम् मृदुर्मृदुर्गतभर्तृकाः ॥

(६-१६)

(ख) भावामिव्यक्ति—माघ में विविध दर्शनों आदि के भावों का संकलन, कल्पना की ऊँची उड़ान, भावों में अनुभूति का समन्वय और विचारों में चिन्तन का आधार प्राप्त होता है। कहीं-कहीं पर भाव-गाम्भीर्य के कारण अर्थ में दुर्बोधता आ गई है। कहीं पर शास्त्रीय उपमाओं के कारण दुरूहता अनुभव की जाती है।

समय ही मनुष्य के उत्थान और पतन का कारण है। शरद् ऋतु का समय है। अब हंसों की ध्वनि के समक्ष मोरों की केका ध्वनि कठोर प्रतीत हो रही है। उक्त नैतिक तथ्य की क्या ही सुन्दर भाषा में अभिव्यक्ति है :—

समय एव करोति बलाबलं

प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम् ।

शरदि हंसरवाः पक्षीकृत-

स्वरमयूरमयू रमणीयताम् ॥

(६-४४)

भाग्य की क्या ही विचित्र गति है! रात्रि के समाप्त होते ही चन्द्र अस्त हो रहा है, सूर्य उदय हो रहा है। कुमुद-वन निस्तेज हो रहा है और कमल-वन सश्रीक हो रहा है। उल्लू खिन्न हो रहे हैं और चकवा प्रसन्नचित्त।

कुमुदवनमपथि श्रीमदम्भोजषण्डं

त्यजति भुवमुलूकः प्रीतिमाश्चकवाकः ।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं

हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः ॥ (११-६४)

(ग) रस-परिपाक—महाकवि माघ का शिशुपालवध में अंगी रस वीर है और शृंगार, हास्य आदि रस अंग हैं, किन्तु वीर रस-प्रधान काव्य में भी कवि की सहृदयता एवं सरसता के उद्रेक के कारण अंग-स्वरूप शृंगार रस अङ्गी के तुल्य प्रधान हो गया है। सर्ग ७ से १२ तक ६ सर्गों में शृंगार का ही प्राधान्य है। वीर

१. भावामिव्यक्ति के सुन्दर स्थल—२-४८; ३-१८; ११-३३; १६-११७।

रस मुख्यतः १८ से २० तक ३ सर्गों में ही प्राप्य है। ११वें सर्ग में चित्रालंकार का आश्रय लेकर मुरजबन्ध, चक्रबन्ध आदि के द्वारा विविध सेना-व्यूहों का चित्रण है।

युद्ध-भूमिरूपी दूकान से वीर सैनिक प्राणरूपी मूल्य देकर यशरूपी सामान खरीद रहे थे। क्या ही सुन्दर रूपक है !

रोहोरध्रं व्यधनुवानानि लोलै-

रङ्गस्यान्तर्मापितैः स्थावराणि ।

केचिद् गुर्वमित्य संयमिष्यां

कीर्णन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि ॥

(१८-१५)

युद्धभूमि में वीरों में इतना उत्साह था कि वे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं कर रहे थे। सामने की उठाई हुई नंगी तलवारें उनकी छाती में भूठ तक अनायास घुस जाती थीं।

आधावन्तः संमुखं वारिताना-

मन्यैरन्ये तीक्ष्णकौशेयकाणाम् ।

वसःपीठैरात्सरोरात्मनेष

कोधेनान्धाः प्राचिशान् पुष्करणि ॥

(१८-१७)

शृंगार-रस के वर्णनों में संयोग शृंगार का ही मुख्यतया वर्णन है। रावण का काम-भाव इतना उद्बुद्ध था कि हवा के द्वारा उसकी पत्निमों के जघन-स्थलों से वस्त्र हटाया जाना उसके नेत्रों की तृप्ति का साधन था। अतः वामु ने अन्य देवों को भी उससे मुक्त करा लिया था।

निशान्तनारीपरिधानधूनव-

स्फुटायसाध्व्युदयु स्तेष्वधनुषः ।

प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः

प्रकम्बनेनानुचकम्पिते सुराः ॥

(१-६१)

श्रीकृष्ण के प्रस्थान के समय स्त्रियों ने उन्हें घेर रखा था। वे जिसकी ओर दृष्टिपात करते थे, वह लज्जावनतमुखी हो जाती थी और वे जिसकी ओर नहीं देखते थे, वह ईर्ष्या से निःशंक उन पर कटाक्ष-अहार करती थी।

यां यां प्रियः प्रेक्षत क्षतराक्षे

सा सा ह्रिया नभमुखी बभूव ।

निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-

स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षः ॥

(३-१६)

यद्यपि माघ हास्यरस का कवि नहीं है, तथापि शिशुपालवध में यत्र-तत्र हास्य की सुन्दर पुट दिखाई पड़ती है। हथिनी की आवाज से बिदके हुए खच्चरों का कौतुक देखिए :—

अस्तौ समासन्नकरेणुसूक्तता-

न्नियन्तरि व्याकुलमुत्तरज्जुके ।

क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां

विलङ्घ्य सध्वीं करभी बभञ्जतुः ॥ (१२-२४)

एक राजकुलीन महिला छोटे रथ पर जा रही थी। दो खच्चर उस रथ को खींच रहे थे। सहसा हथिनी की सूँ-सूँ की ध्वनि से वे बिदक गए और रस्सी छड़ा कर भाग खड़े हुए। बेचारी महिला उलट गई और रथ भी टूट गया।

इसी प्रकार कई अन्य स्थलों पर भी विनोदप्रियता का परिचय दिया गया है। जैसे—घुड़सवार को गिराकर भाग निकलते हुए घोड़े को देखकर सैनिकों का ठहाका लगाना (१२-२२), हथिनी को देखकर बिदके हुए गधे का उछल-कूद करना और बैठी हुई महिला को गिराना। (५-७)

(घ) अलंकार-निरूपण—भारवि ने जिस रीति-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, वह मट्टि से होते हुए माघ पर परिपूर्ण हुआ। एक ओर उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और अर्थान्तरन्यास आदि पर बल दिया गया है तो दूसरी ओर चित्रालंकार के भेद-उपभेदों के प्रयोग में अपनी विशेषज्ञता की पराकाष्ठा कर दी है। यद्यपि चित्रालंकारों के प्रयोग पर पाश्चात्य विद्वानों ने घोर आपत्ति और कटु समीक्षा की है तथा ऐसे प्रयोगों को कुरुचि का द्योतक माना है, तथापि भारतीय विद्वन्मण्डली इसको चमत्कृति-मूलक मानकर हेय नहीं मानती। माघ के समय में भी ऐसी ही परिस्थिति थी, अतः उसने चित्रालंकारों में अपनी प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन किया है। माघ चित्रालंकारों के प्रयोग में भारवि से आगे है। मुरजबन्ध, चक्रबन्ध आदि नए बन्धों का भी प्रयोग किया है। १९वें सर्ग में चित्रालंकारों का आश्रय लेकर व्यूह-रचना के भेदों का वर्णन है। चित्रालंकारों में कहीं एकाक्षर श्लोक (१९-११४) है तो कहीं द्व्यक्षर (१९-६६, ८४, ८६, ९४, ९८, १००, १०२, १०४, १०६, १०८); कहीं एकाक्षरपाद श्लोक (१९-३) है तो कहीं

अर्धसम (१६-५, ५४); कहीं गोमूत्रिकाबन्ध (१६-४६) है तो कहीं मुरजबन्ध (१६-२६); कहीं चक्रबन्ध (१६-१२०) है तो कहीं सर्वतोमद्र (१६-२७); कहीं पर एक श्लोक को सर्वथा उलटा करके प्रतिलोमयमक (१६-३३, ३४) है तो कहीं प्रारम्भ या अन्त दोनों ओर से पढ़ने पर श्लोक का एक ही अर्थ निकलता है (१६-६०); कहीं श्लोक में संयुक्त वर्ण का सर्वथा अभाव है (१६-६८) तो कहीं तालव्य वर्ण का अभाव है (१६-११०); कहीं द्व्यर्थक श्लोक (१६-५८) हैं तो कहीं त्र्यर्थक (१६-११६); कहीं गूढ़ चतुर्थ (१६-६६) है तो कहीं गत-प्रत्यागत (१६-८८)। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि माघ ने बौद्धिक व्यायाम में अपूर्व चातुरी दिखाई है।

चित्रालंकार—चित्रालंकार के कुछ सुन्दर उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। मुरज-बन्ध में ढोलक की रस्सियों के बन्धन के तुल्य तिरछे ढंग से पढ़ने पर भी प्रत्येक चरण का वही रूप होता है। जैसे—

सा	से	ना	ग	म	ना	र	म्भे
र	से	ना	सी	द	ना	र	ता ।
ता	र	ना	द	ज	ना	म	स
धी	र	ना	ग	म	ना	म	या ॥ (१६-२६)

कष्टसाध्य चक्रबन्ध का भी एक उदाहरण देखिए। इसमें १६ वर्ण वाले शार्दूलविक्रीडित छन्द के १०वें वर्ण को केन्द्र में रखकर ६ परिधियाँ बनाई गई हैं। प्रथम तीन चरणों को मध्य में विभक्त करके ६ पंक्तियों में रखा गया है। चतुर्थ चरण बाहरी घेरे में पढ़ा गया है। इसमें इस प्रकार पढ़ने पर तृतीय परिधि में 'माघकाव्यमिदं' और षष्ठ परिधि में 'शिशुपालवधः' निकलता है।

सत्त्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो

लब्धाघक्षयशुद्धिरुद्धुरतरश्रीवत्सभूमिर्मुवा ।

मुक्त्वा काममपास्तभीः परमगव्याधः स नावं हरे-

रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तवा तस्तरे ॥ (१६-१२०)

इसी प्रकार सर्वतोमद्र भी अत्यन्त कठिन और श्रमसाध्य बन्ध है। इसमें

१. मुरजबन्ध, चक्रबन्ध और सर्वतोमद्र के स्वरूप को समझने के लिए देखो शिशुपालवध, निर्णयसागर संस्करण पृष्ठ ४७२-४७३ के बीच में दिया गया रेखाचित्र।

चारों चरणों के १ और ८ वर्ण, २ और ७, ३ और ६ तथा ४ और ५ वर्ण समान होते हैं। प्रत्येक चरण आघे के बाद उलट दिया जाता है। इस प्रकार प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ चरण क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ पंक्ति किसी भी ओर से पढ़ने पर वही पद बनता है। श्लोक के चारों चरणों को उलट कर (१, २, ३, ४ को पुनः ४, ३, २, १ चरण) रख देने पर सर्वतोभद्र बन जाता है।

स	का	र	ना	ना	र	का	स
का	य	सा	द	द	सा	य	का
र	सा	ह	वा	वा	ह	सा	र
ना	द	वा	द	द	वा	द	ना

॥ (१६-२७)

केवल दो वर्णों वाला एक श्लोक देखिए :—

विभावि विभवो भावो विभाभावि विवो विभीः ।

भवाभिभावो भावावो भवाभावो भवो विभुः ॥ (१६-८६)

यमक का एक प्रकार समुद्ग है। इसमें चरण १-२, ३-४ समान होते हैं। इसमें पदच्छेद मात्र से भेद होता है।

सदैव संपन्नवपू रणेषु, स दैवसंपन्नवपूरणेषु ।

महोदधे स्तारिमहानितान्तं, महोदधेऽस्तारिमहा नितान्तम् ॥ (१६-११८)

उपमा—माघ के उपमा अलंकार के प्रयोग अत्यन्त पाण्डित्ययुक्त और सुरुचिपूर्ण हैं। यद्यपि कालिदास की उपमाओं के तुल्य इनमें औचित्य, लिंगसाम्य, भावोदात्तता और माधुर्य नहीं है, फिर भी उपमाएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं। उपमा-प्रयोगों में कहीं शास्त्रीय-पाण्डित्य है, कहीं सूक्ष्म दृष्टि और कहीं गंभीर चिन्तन। अतएव माघ की उपमाएँ भी उतनी ही प्रसिद्ध हैं।^१

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का ही जीवन में समान महत्त्व है, जैसे काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का समान महत्त्व है। उपमा में कितनी सुन्दर सूझ-बूझ है।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।

शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥ (२-८६)

१. उपमा के कुछ उदाहरण ये हैं :—१-४, ५, ७, ८, १६ से २१; २-२, १८, २६, ७४; १०-१५; ११-६५, १२-५५, १३-२७, १५-१५, १७-७।

सं० सा० स० इ०—१४

काव्य-शास्त्रीय उपमा का एक सुन्दर उदाहरण लीजिए। सामान्य राजा प्रमुख राजा के उसी प्रकार सहायक होते हैं, जैसे संचारी भाव स्थायी भाव के।

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।

रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभूतः ॥ (२-८७)

रात्रि बीत रही है। पूर्व-सन्ध्या अभी प्रकट हुई है। पक्षियों का कलरव गुंज रहा है। कवि ने कोमल कल्पना का आश्रय लेकर क्या ही सुन्दर प्राकृतिक उपमा प्रस्तुत की है कि रात्रिरूपी माता जा रही है और प्रातःकालीन सन्ध्यारूपी पुत्री खगरवरूपी क्रन्दन करती हुई उसके पीछे जा रही है।

अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती।

रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥ (११-४०)

अर्थान्तरन्यास—माघ ने अर्थान्तरन्यास के रूप में अनेक सुभाषित दिए हैं, जो उसके गहन अध्ययन और भाव-गाम्भीर्य के द्योतक हैं।

नारद श्रीकृष्ण की स्तुति में कहते हैं कि आप ही शिशुपाल जैसे अत्याचारियों से संसार का उद्धार कर सकते हैं, क्योंकि सूर्य के अतिरिक्त संसार का अन्वकार और कौन दूर कर सकता है?

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतं-

स्त्वमेव विश्वंभर विश्वमोशिषे।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः

क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥ (१-३८)

मनुष्य को अपना स्वाभिमान कभी नहीं छोड़ना चाहिए। धूल भी पैर की चोट खाकर सिर पर चढ़ जाती है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।

स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः ॥ (२-४६)

अन्य अलंकार—माघ ने उपमा, अर्थान्तरन्यास के अतिरिक्त यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास, तद्गुण, अपह्नुति, अर्थापत्ति, दीपक, व्यतिरेक, दृष्टान्त, अप्रस्तुतप्रशंसा, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, तुल्ययोगिता, सन्देह, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का सैकड़ों श्लोकों में प्रयोग किया है। कुछ अलंकारों के मुख्य उदाहरण दिए जा रहे हैं।

यमक अलंकार की सुन्दर छटा इस श्लोक में देखिए :—

नवपलाशपलाशवनं पुरः

स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।

मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्

स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरं ॥ (६-२)

इसमें वसन्त ऋतु के वैभव का वर्णन करते हुए चारों चरणों में यमक का प्रयोग है ।

श्लेष अलंकार के भी सुन्दर प्रयोग हैं । भाग्य के प्रतिकूल होने पर सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं । चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा के प्रतिकूल होने पर सहस्रों किरणों वाला भी सूर्य अस्त हो ही जाता है ।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ

विफलत्वमेति बहुसाधनता ।

अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-

न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥ (६-६)

इसमें विधौ (विधि और विधु का सप्तमी एकवचन) में वर्णश्लेष है और कर (हाथ, किरण) में पदश्लेष है ।

रैवतक पर्वत से निकली हुई नदियाँ समुद्र की ओर जा रही हैं । इस पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि नदीरूपी पुत्रियाँ समुद्ररूपी पति के पास जा रही हैं, अतः पिता-रूपी पर्वत मानो पक्षियों के कलरव से रोदन कर रहा है ।

अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिता-

श्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्तजाः ।

अनुरोदित्व करुणेन पत्रिणां

विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ॥ (४-४७)

जिन श्रीकृष्ण में प्रलयकाल के समय सारा संसार समाहित हो जाता है, उन्हीं में देवर्षि नारद के आगमन की प्रसन्नता नहीं समा सकी ।

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो

जगन्ति यस्यां सविकासमासत ।

तनौ ममुस्तत्र न कंटभट्टिष-

स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥ (१-२३)

सम्बन्ध में असम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति का यह सुन्दर उदाहरण है ।

(ङ) माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।

माघ का वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वांगीण है । उसमें कालिदास के तुल्य सुन्दर उपमा-प्रयोग ही नहीं है, अपितु भारवि के तुल्य अर्थगौरव और दण्डी के तुल्य पद-लालित्य भी है । माघ का यह दृष्टिकोण रहा है कि उसकी कविता में उसके समय तक प्रचलित सभी गुण आ जाएँ, जिससे किसी भी दृष्टि से देखने पर उसका काव्य एकांगी या न्यून प्रतीत न हो । इसलिए उसने एक ओर अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर भाव-सौष्ठव का । एक ओर उपमा का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यासों की छटा । एक ओर भाषा-सौष्ठव है तो दूसरी ओर भाव-गाम्भीर्य । इसी समन्वयात्मकता से मुग्ध होकर 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' कहा गया है ।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का यह अर्थ कदापि नहीं है कि माघ उपमा-प्रयोग में कालिदास से, अर्थगौरव में भारवि से तथा पदलालित्य में दण्डी से बढ़कर है या उनके समकक्ष है । इस उक्ति का अभिप्राय है कि कालिदास आदि में केवल एक-एक गुण मुख्य रूप से हैं, किन्तु माघ में ये तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान हैं । इसीलिए यह कथन युक्तिसंगत है कि—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

उदाहरणार्थ कुछ प्रसंग निम्नलिखित हैं :—

वर्णमाला के क आदि वर्णों पर सारा वाङ्मय इसी प्रकार आश्रित है, जैसे स र ग म आदि सप्त स्वर पर सारा संगीत-शास्त्र ।

वर्णः दत्तिपयैरेव, प्रथितस्य स्वरैरिव ।

अनन्ता वाङ्मयस्याहो, गेयस्येव विचित्रता ॥ (२-७२)

बढ़ते हुए शत्रु की उसी प्रकार उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जैसे बढ़ते हुए रोग की । दोनों की वृद्धि दुःखदायी है ।

१. विशेष विवरण एवं सन्दर्भों के लिए देखो प्रौढ-रचनानुवाद-कौमुदी, पृष्ठ ३२३ से ३२६ ।

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।

समौ हि शिष्टैराम्नातौ, वत्स्यन्तावामप्रः स च ॥ (२-१०)

एक दार्शनिक उपमा का उदाहरण द्रष्टव्य है । बलराम का श्रीकृष्ण से कथन है कि आप केवल साक्षी रहकर विजय का फल पाइए, जैसे बुद्धि के भोग को आत्मा प्राप्त करता है ।

विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।

फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ॥ (२-५६)

जिस प्रकार बौद्धदर्शन में रूपादि स्कन्ध-पञ्चक को ही आत्मा माना गया है, उसी प्रकार सहाय, साधनोपाय आदि पाँच अंग ही राजा के मन्त्र हैं ।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।

सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभूताम् ॥ (२-२८)

उपमा-प्रयोग के स्थल ये हैं :—

कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्धनं घनान्ते तडितां गणैरिव (१-७), सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपिकाः । प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः (२-५५), स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः । विदिद्युते वाडव-जातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः । (१-२०) ।

इसी प्रकार भावगाम्भीर्य के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार से युक्त अर्थ-गौरव के उदाहरण अनेक हैं । जैसे—स्वाभिमानियों का मान ही धन होता है—सदाभिमानैकधना हि मानिनः (१-६७) । मनुष्य का स्वभाव जन्मान्तर में भी जाता है—सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि (१-७२) । श्रेष्ठ व्यक्ति स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं—महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (२-१३) । सभी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं—सर्वः स्वार्थं समीहते (२-६५) । अर्थगाम्भीर्य से युक्त प्रबन्ध दुष्कर है—अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः (२-७३) । सुयोग्य कवि प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीनों गुणों को अपनाता है—नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः (२-८३) । बड़े के सहारे छोटा भी तर जाता है—बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति (२-१००) । शत्रुकृत अपमान असह्य होता है—परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः (६-४५) । शेर बादल की ध्वनि सुनकर हुंकार करता है, न कि गीदड़ की ध्वनि पर—अनुहुंकुस्ते घनध्वनिं न हि गोमायुस्तानि केसरी

(१६-२५) । राजाज्ञा व्याकरण की परिभाषा के तुल्य बहुत व्यापक होती है—परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा (१६-८०) । कड़वी ओषधि बिन पिए मिटे न तन का ताप—अरुच्यमपि रोगघ्नं निसर्गादिव मेषजम् (१६-८६) । शत्रु को नष्ट किए बिना प्रतिष्ठा दुर्लभ है—विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा (२-३४) ।

माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है, अतः पद-पद पर पद-लालित्य प्राप्त होता है । जैसे—अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् (१-१६), न रौहिणेयो न च रोहिणीशः (३-६०), कुसुमकार्मुककार्मुकसंहित...किमु मुहुर्मुहुर्गत-मर्तृकाः (६-१६), वलिभयालिभयादिव सस्वजे (६-१३), न चक्रमे च कमेकरसं रहः (६-२६), प्रभावनीके तनवै जयन्तीः...प्रभावनी केतनवैजयन्तीः (६-६६), रुचिरं कमनीयतरा गमिता...रुचिरंकमनीयत रागमिता (६-७१), कामे कान्ते सारसिकाकाकुस्तेन...कामेकान्ते सा रसिका का कुस्ते न (६-७६), क्षोभमाशु हृदयं नयदूनां, रागवृद्धिमकरोन् न यदूनाम् (१०-६०), विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः, सुरमितमकरन्दं मन्दमावाति वातः (११-१६) ।

(ज) वर्णन-वैचित्र्य—माघ ने वर्णनों में अपनी कला, प्रतिभा और कल्पना का उच्च कोटि का समन्वय किया है । माघ के वर्णनों में सजीवता, सरसता, चित्रात्मकता और अलंकृतता सर्वत्र विद्यमान है । वर्णनों में माघ की सूक्ष्म-दृष्टि अत्यन्त प्रशंसनीय है । कहीं-कहीं भावों और कल्पनाओं की इतनी गहराई है कि एक ही विषय पर पूरा सर्ग समाप्त हो गया है । जैसे—सर्ग ३ में द्वारका और समुद्र का वर्णन, सर्ग ४ में रैवतक पर्वत का वर्णन, सर्ग ६ में ६ ऋतुओं का वर्णन, सर्ग ८ में जलक्रीडा-वर्णन, सर्ग ११ में प्रभात-वर्णन, सर्ग १८ से २० में युद्ध-वर्णन । वर्णनों में कल्पना की नवीनता और नई सूझ-बूझ विशेष उल्लेखनीय है ।

रावण के उत्पातों का एक सुन्दर चित्रण देखिए । उसने अपने दुष्कृत्यों के द्वारा इन्द्र के लिए आराम हराम कर दिया था । उसने नगर को लूटा, नन्दन वन को नष्ट-भ्रष्ट किया, रत्नों को चुराया और अप्सराओं का अपहरण किया । इस प्रकार उसने इन्द्र के लिए शिरोवेदना उपस्थित कर दी ।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं, मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।

विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली, य इत्थमस्वास्थ्यमर्हादिवं दिवः ॥

(१-५१)

(छ) छन्दोयोजना—छन्दोविधान पर विचार करने से ज्ञात होता है कि

छन्दःप्रयोग की प्रक्रिया क्रमशः विकसित होती जा रही थी। कालिदास के अति-प्रिय ६ छन्दों के अनुपात में भारवि ने १२ छन्दों में वैशिष्ट्य दिखाया है और माघ ने १६ छन्दों में। भारवि ने किरातार्जुनीय के ५वें और १८वें सर्गों में १६ छन्दों का प्रयोग करके छन्दोनिपुणता प्रदर्शित की है तो माघ ने ४थं सर्ग में उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुत-विलम्बित, शालिनी आदि २२ छन्दों का प्रयोग करके भारवि से अपनी उत्कृष्टता सिद्ध की है।

माघ ने विभिन्न सर्गों में इन छन्दों का प्रयोग किया है :—वंशस्थ (सर्ग १, १२), अनुष्टुप् (२, १६), उपजाति (३), वसन्ततिलका आदि २२ छन्द (सर्ग ४), वसन्ततिलका (५), द्रुतविलम्बित (६), पुष्पिताग्रा (७), प्रहर्षिणी, (८), प्रमिताक्षरा (९), स्वागता (१०), मालिनी (११), मंजुभाषिणी (१३), रथोद्धता (१४), उद्गाता (१५), बैतालीय (१६), रुचिरा (१७), शालिनी (१८), औपच्छन्दसिक (२०)।

इनके अतिरिक्त सर्गान्त श्लोकों, सर्ग ४ आदि में जिन विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है, उनमें मुख्य ये हैं :—आर्या (२ बार), चित्रलेखा, तोटक, दोधक, पृथ्वी, प्रभा, सग्विणी, हरिणी, शिखरिणी, स्रग्धरा आदि (ये सभी १ बार), मत्तमयूर (२ बार), मन्दाक्रान्ता (३ बार) और शार्दूलविक्रीडित (४ बार)।

माघ ने छन्दों के चयन में पटुता प्रदर्शित की है। भावगाम्भीर्य तथा चित्रालंकारों के प्रयोग में अनुष्टुप् जैसे सरल छन्द का क्रमशः सर्ग २ और १६ ने उपयोग किया है। अन्यत्र रसानुकूल छन्दों का उपयोग किया है।

(५) काव्य-सौन्दर्य

माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह प्रसंगानुसार सरल से सरल और कठिन से कठिन पदावली के प्रयोग में दक्ष है। अतएव कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। इसी प्रकार कहीं शृंगार के विविध भावों का सौन्दर्य है तो कहीं वीर रस का प्रस्फुरण।

भाव-सौन्दर्य और प्रसाद तथा माधुर्य का सुन्दर समन्वय एकत्र देखिए :—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः । (४-१७)

१. छन्दाविषयक विशेष विवरण के लिए देखो—कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ १६०-१६२।

भाषा में लोच और माधुर्य का संमिश्रण भी द्रष्टव्य है।

राजीवराजीवशूलभृङ्गं

मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरुणाम् ।

कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां

रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥ (४-६)

माधुर्य, यमक और लयात्मकता के समन्वय की एक झाँकी देखिए :—

वर्जयन्त्या जनैः संगमेकान्तत-

स्तर्कयन्त्या सुखं संगमे कान्ततः ।

योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गन्या

सेव्यतेऽनेकया संनतापाङ्गन्या ॥ (४-४२)

(६) शास्त्रीय-पाण्डित्य

माघ बहुश्रुत और अनेकशास्त्रज्ञ महाकवि है। शिशुपालवध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माघ ने वेद,^१ व्याकरण,^२ काव्य-शास्त्र,^३ दर्शन,^४ राजनीति,^५ आयुर्वेद,^६ नीति-शास्त्र,^७ संगीत,^८ हस्ति-अश्वादि-विद्याएँ,^९ पुराण,^{१०} पाकशास्त्र,^{११} ज्योतिष^{१२} और कामशास्त्र^{१३} आदि में विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त की थी। सैकड़ों श्लोक ऐसे हैं, जिनसे उसका शास्त्रीय-पाण्डित्य प्रकट होता है। सर्ग २ में उसने अपने शास्त्रीय ज्ञान का चरमोत्कर्ष प्रदर्शित किया है। सर्ग १६ में चित्रालंकारों के प्रयोग में उसने व्यूह-रचना तथा सभी प्रकार के क्लिष्ट बन्धों का प्रदर्शन किया है। व्याकरण, नीति, राजनीति, कामशास्त्र आदि के उदाहरण पद-पद पर उपलब्ध होते हैं।

वैदिक व्याकरण में अन्य स्वरों को समाप्त कर एक पद में एक ही उदात्त स्वर सामान्यतया शेष रहता है। इस भाव का वर्णन देखिए—

१. शिशु० २-१०७, ४-३७। २. शिशु० १-४७, ५१; २-१४, ६५; १०-१५; १६-८०। ३. शिशु० १-६६, २-८, ८३, ८६, ८७। ४. १-३२, ३३; २-२८, ५६; १३-२८, १४-६२। ५. २-२६, २६, ७६, ८०, ८१, ८२; ८५, ६०, ६१, ६२, ६३, ११२। ६. २-५४, ६३, ६४, ६६, २०-७६। ७. २-१०, ३२, ३४ से ३७, ४२, ४३, ४५ से ५३, ६५, ७६, १०६। ८. १-१०, २-६०, ११-१। ९. सर्ग ५ पूरा। १०. १-३५, २-१०७, २०-५६। ११, २-५५। १२. २-२, ६१; ६-२३। १३. सर्ग १० पूरा।

तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा ।

निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव ॥ (२-६५)

व्याकरण में महामाष्य का पस्पशाह्निक (आ० १-१) और राजनीति में गुप्तचर-विभाग प्राण-स्वरूप हैं । इसका सुन्दर समन्वय देखिए :—

शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा । (२-११२)

व्याकरण के लिट् आदि के कुछ ठोस प्रयोग एकत्र करके माला रूप में गुम्फित हैं । जैसे—सस्नुः, पपुः, अनेनिजुः, जक्षुः, आदि ।

सस्नुः पयः पपुरनेनिजुरम्बराणि

जक्षुबिसं धृतविकासिबिसप्रसूनाः । (५-२८)

दार्शनिक व्युत्पत्ति के सूचक कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं । शब्द आकाश का गुण है । इसका सुन्दर वर्णन इस प्रकार है :—

व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः ॥ (२-६१)

सांख्य और योग दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त 'सत्त्व-पुरुषान्यता-ख्याति', मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा ४ चित्तवृत्तियाँ, अविद्या आदि पंचक्लेश, सविकल्प एवं निर्विकल्प समाधि आदि का एकत्र समन्वय किस दार्शनिक का चित्त-हरण नहीं कर लेगा ।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय

क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः ।

ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य

वाञ्छन्ति तामपि समाधिभूतो निरोदधुम् ॥ (४-५५)

सांख्य दर्शन में प्रतिपादित प्रकृति और विकृति से पृथक् पुरुष के स्वरूप का दार्शनिक तत्त्व इस श्लोक में उपस्थित किया गया है :—

उदासितारं निगृहीतमानसै-

र्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः

पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥ (१-३३)

संगीत-शास्त्र के पारिभाषिक श्रुतिमण्डल, ग्राम, स्वर, मूर्च्छना आदि शब्दों के प्रयोग से उसकी संगीत-निपुणता द्योतित होती है ।

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः

पृथग्बिभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।

स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-

मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥ (१-१०)

पूर्वरङ्ग की स्थापना के साथ नाट्यशास्त्रीय ज्ञान की भी एक झाँकी दर्शनीय है :—

पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः । (२-८)

(७) भारवि और माघ की तुलना

माघ अपनी काव्य-रचना के लिए भारवि का पूर्णतया ऋणी है। उसने कथानक, शैली, प्रत्येक सर्ग में कथा-संयोजन, विषय-वस्तु, अलंकार-प्रयोग, छन्दो-विधान आदि सभी बातों में भारवि का अनुकरण किया है। माघ का लक्ष्य रहा है—भारवि की कृति को सभी दृष्टि से पीछे छोड़ देना। माघ अपने लक्ष्य में प्रायः सफल रहा है। भारवि के किरातार्जुनीय और माघ के शिशुपालवध की तुलना से निम्नलिखित तथ्य ज्ञात होते हैं :—

किरातार्जुनीय

१. कथा महाभारत से ली गई है।
२. 'श्री' शब्द से ग्रन्थ का प्रारम्भ।
३. सर्गान्त श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द।
४. सर्ग १ में युधिष्ठिर-वनेचर-संवाद, राजनीतिक-चर्चा।
५. सर्ग २ में राजनीति-वर्णन।
६. सर्ग ४ में शरद्-वर्णन।
७. सर्ग ५ में हिमालय पर्वत-वर्णन।
८. सर्ग ५ और १८ में विविध १६ छन्द।
९. सर्ग १ और २ में युधिष्ठिर को द्रौपदी एवं भीम द्वारा उभाड़ा जाना।

१०. सर्ग ८ में पुष्पावचय-वर्णन।

शिशुपालवध

१. कथा महाभारत से ली गई है।
२. 'श्री' शब्द से ग्रन्थ का प्रारम्भ।
३. सर्गान्त श्लोक में 'श्री' शब्द।
४. सर्ग १ में कृष्ण-नारद-संवाद, राजनीतिक-चर्चा।
५. सर्ग २ में राजनीति-वर्णन।
६. सर्ग ६ में षड्ऋतु-वर्णन।
७. सर्ग ४ में रैवतक पर्वत-वर्णन।
८. सर्ग ४ में विविध २२ छन्द।
९. सर्ग १ और २ में नारद आदि द्वारा कृष्ण को उभाड़ना।

१०. सर्ग ७ में पुष्पावचय-वर्णन।

- | | |
|---|---|
| ११. सर्ग ८ में जलक्रीडा-वर्णन । | ११. सर्ग ८ में जलक्रीडा-वर्णन । |
| १२. सर्ग ९ में प्रभात-वर्णन । | १२. सर्ग ११ में प्रभात-वर्णन । |
| १३. सर्ग ९ में सायंकाल एवं चन्द्रोदय-वर्णन । | १३. सर्ग ९ में सायंकाल एवं चन्द्रोदय-वर्णन । |
| १४. सर्ग ७ में शिविर-संनिवेश-वर्णन । | १४. सर्ग ५ में शिविर-संनिवेश-वर्णन । |
| १५. सर्ग ९ में सुरत-पानगोष्ठी-वर्णन । | १५. सर्ग १० में सुरत-पानगोष्ठी-वर्णन । |
| १६. सर्ग १० में अर्जुन को देखकर अप्सराओं की चेष्टाओं का वर्णन । | १६. सर्ग १३ में कृष्ण को देखकर पौर-नारियों की चेष्टाओं का वर्णन । |
| १७. सर्ग १३ में शिव के दूत से वाद-विवाद । | १७. सर्ग १६ में शिशुपाल के दूत से वाद-विवाद । |
| १८. सर्ग १४ में सेना-संनाह और युद्ध-वर्णन । | १८. सर्ग १५, १७ तथा १८ में सेना-संनाह और युद्ध-वर्णन । |
| १९. सर्ग १५ में चित्रालंकार । | १९. सर्ग १९ में चित्रालंकार । |
| २०. व्यास द्वारा पथ-प्रदर्शन । | २०. नारद द्वारा पथ-प्रदर्शन । |
| २१. हिमालय-वर्णन में यमक अलंकार । | २१. रैवतक-वर्णन में यमक अलंकार । |
| २२. अर्जुन के अपमानार्थ किरात-वेषधारी दूत का आना । | २२. कृष्ण के अपमानार्थ शिशुपाल के दूत का आना । |
| २३. अन्त में शिव-अर्जुन-युद्ध । | २३. अन्त में कृष्ण-शिशुपाल-युद्ध । |
| २४. राजनीति-चर्चा में युक्तियों की प्रमुखता । | २४. राजनीति-चर्चा में शास्त्रीय प्रमाणों की बहुलता । |
| २५. शिव-स्तुति से समाप्ति । | २५. कृष्ण-स्तुति से प्रारम्भ एवं समाप्ति । |

भारवि के कला-पक्ष को माघ ने प्रौढता प्रदान की है। भावमिव्यक्ति, व्यंजना, कल्पना तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन में माघ भारवि से आगे है। छन्दोयोजना तथा चित्रालंकार के प्रयोगों में भी वह भारवि से आगे है। कहीं-कहीं भारवि के भावों को वह अधिक स्पष्ट करने में सफल सिद्ध हुआ है। दोनों ने स्वाभिमान पर बहुत बल दिया है। भारवि विवेचक है तो माघ समीक्षक; भारवि में ओज है तो माघ में माधुर्य; भारवि कुशल कलाकार हैं तो माघ भावमिव्यक्ति में कुशल चित्रकार, भारवि में कविता की सुकुमारता है तो माघ में उसकी प्रौढता।

(८) माघ की न्यूनताएँ

यद्यपि माघ में गुणों की दृष्टि से अनेक विशेषताएँ हैं, तथापि कुछ न्यूनताएँ अवश्य खटकती हैं। (१) शिशुपालवध का कथानक एक महाकाव्य की रचना के लिए पर्याप्त नहीं है। अप्रासंगिक वर्णनों एवं विवरणों के द्वारा सर्गों की पूर्ति की गई है। (२) कथा में प्रवाह का अभाव है। (३) सुरत आदि के वर्णन आवश्यकता से अधिक और कुछ अंशों में अनौचित्यपूर्ण हैं। (४) वर्णनों वाले प्रसंग, यमकादि अलंकार वाले स्थल तथा चित्रालंकार के श्लोक मुक्तक शैली में लिखे गए प्रतीत होते हैं, जिनका यथास्थान संनिवेश कर दिया गया है। (५) पाण्डित्य-प्रदर्शन वाले स्थल नीरस और दुरूह हो गए हैं। (६) कहीं-कहीं शब्दाडम्बर के जाल में फँस जाने के कारण अर्थ-पक्ष दब गया है। (७) परम्परागत प्रणाली का अनुसरण करने के कारण प्रकृति-वर्णनों आदि में सरसता और स्वाभाविकता की न्यूनता है। अलंकार लादे गए से प्रतीत होते हैं। (८) प्रकृति-निरीक्षण में कालिदासादि जैसी सूक्ष्म-दृष्टि का अभाव है। (९) पाण्डित्य-प्रदर्शन-हेतु व्याकरण के कठिन रूपों का प्रयोग किया गया है। जैसे—मध्यसमुद्रम्, पारेजलम्, निषेदिवान्, उपेयुषः, न्यधायिषाताम्, वैरायितारः, बिमरांभभूवे आदि। (१०) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग। जैसे—प्रोह (हाथी का पैर, १२-५), रवण (ऊँट, १२-६), कूबरी (रथ, १२-२१), अय (दैव, १३-२३), दस्र (अश्विनौ, १३-२३), कपिश (मद्य, १२-३८), वलज (धान्यराशि, १४-७)।

माघ की विशेषताओं को लक्ष्य में रखते हुए ये न्यूनताएँ नगण्य हैं। तत्कालीन परम्पराएँ प्रकृति आदि के विस्तृत वर्णन को महाकाव्य का अनिवार्य अंग मानती थीं। पाण्डित्य-प्रदर्शन, यमक-प्रयोग, चित्रालंकार-प्रयोग आदि वैदुष्य के निकष माने जाते थे, अतः उपर्युक्त न्यूनताएँ उपेक्षणीय हैं।

(९) माघ-विषयक प्रशस्तियाँ

माघ को विविध शास्त्रज्ञता के कारण विद्वत्ता की कसौटी माना जाता है। उसके पद-माधुर्य, रचना-कौशल, उपमा-प्रयोग, अर्थगौरव, छन्दोविधान, प्रकाण्ड पाण्डित्य, सालंकारता, वर्णन-वैविध्य आदि गुणों ने उसको भारवि से बढ़कर सिद्ध

१. देखो—संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामजी उपाध्याय, पृष्ठ ३२२-३२४। २. वही—पृष्ठ ३१६।

किया है, सभी परवर्ती कवि और महाकवि उससे प्रभावित हुए हैं, अतएव अनेक सुभाषित उसके विषय में प्रचलित हैं। माघ मास में सूर्य की किरणें (मा-रवि) क्षीण हो जाती हैं, इसी प्रकार माघ के समक्ष भारवि द्युतिहीन प्रतीत होते हैं, इसी भाव को कई कवियों ने विभिन्न रूप में रखा है :—

(क) तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।

उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव ॥

(ख) माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।

स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥ (धनपाल)

(ग) कृत्स्नप्रबोधकृद् वाणी भा रवेरिव भारवेः ।

माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते ॥ (राजशेखर)

जैसे मुरारि (कृष्ण) के चरणों की प्राप्ति के लिए पाप-त्याग (मा+अघ) सोपान है, इसी प्रकार मुरारिकृत अनर्घराघव के अध्ययन के लिए माघकृत शिशुपालवध सोपान है।

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु ।

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माऽघे रतिं कुरु ॥

माघ ने कृष्ण-चरित के द्वारा पापनाशन किया है, अतः वह पाप-हर्ता है।

रसज्ञशिशुपालोऽपि, शिशुपालवधप्रियः ।

कृष्णवृत्तहृताघालि-माघो घोराघध्वंसकृत् ॥ (कपिलस्य)

५. (ङ) श्रीहर्ष

नैषधाम्भोधिसंभूतां, कलाधरकलारचिम् ।

प्रेक्षं प्रेक्षं वितन्वन्ति, बुधाः श्रीहर्षहर्षकम् ॥ (कपिलस्य)

(१) श्रीहर्ष का जीवन-वृत्त और कृतित्व

(क) जीवन-वृत्त—नैषधीयचरित के सर्गान्त श्लोकों में श्रीहर्ष ने अपने जीवन-वृत्त से संबद्ध कतिपय बातों का उल्लेख किया है, जिससे उनके माता-पिता का नाम, आश्रयदाता का नाम और प्रमुख ग्रन्थों का नाम हमें ज्ञात होता है। इससे उनके समय-निर्धारण में सरलता होती है। कतिपय तथ्य ये हैं :—(१) श्रीहर्ष

के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था ।^१ (२) कन्नौज के राजा जयन्तचन्द्र (प्रचलित नाम जयचन्द्र) उनके आश्रयदाता थे । श्रीहर्ष के प्रति गौरव-सूचनार्थ राजा उनको दो पान और आसन देते थे ।^२ (३) काश्मीर के उद्भट विद्वानों ने इनके ग्रन्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।^३ (४) कई सर्गों के अन्तिम श्लोकों में इनके अन्य ग्रन्थों के नाम प्राप्य हैं ।^४ (५) श्रीहर्ष ने चिन्तामणि-मन्त्र के जप के फलस्वरूप सिद्धि और विद्वत्ता प्राप्त की थी ।^५ (६) नैषधीयचरित में श्रीहर्ष ने जान-बूझकर यत्र-तत्र घोर पाण्डित्य-प्रदर्शन किया है, अतएव अनेक ग्रन्थि या कूट पद्य प्राप्त होते हैं ।^६ (७) उन्हें अपने वैदुष्य का दुरभिमान था और कुछ अंश तक उनके अक्खड़ एवं स्वच्छन्द वृत्ति का परिचय मिलता है । उन्होंने अन्य कवियों को अत्यन्त तुच्छ बताया है ।^७ (८) माऽस्मिन् खलः खेलतु (२२-१५२) से ज्ञात होता है कि उनके कटु आलोचक भी विद्यमान थे, जिन्हें उन्होंने आड़े-हाथ लिया है ।^८

श्रीहर्ष के विषय में कुछ किंवदन्तियाँ मिलती हैं । इनकी प्रामाणिकता विचारणीय है ।

(क) श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर को प्रसिद्ध नैयायिक आचार्य उदयन ने शास्त्रार्थ में हराया था । पिता के आदेशानुसार उन्होंने चिन्तामणि मन्त्र का जप करके त्रिपुरसुन्दरी का वरदान प्राप्त किया, जिससे उन्हें अपराजेय पाण्डित्य मिला । उन्होंने उदयनाचार्य को हराकर पिता की कामना पूर्ण की । श्रीहर्ष के राज-दरबार

१. श्रीहर्ष कविराजराजमुकुटालंकारहीरः सुतं,
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ॥ (१-१४५)
२. ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् । (२२-१५३)
३. काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिर्महाकाव्ये० । (१६-१३१)
४. सर्ग ४, ५, ६, ७, ८, १७, १८, २२ के अन्तिम श्लोक ।
५. तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले० (१-१४५) ।
६. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया । (२२-१५२)
७. प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु । (२२-१५२)
दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीम्० । (२२-१५१)
८. मदुक्तिश्चेदन्तमंदयति सुधीभूय सुधियः ।
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः ॥ (२२-१५०)

में उनके आने पर उदयनाचार्य ने 'गौगौ' रागतः' (बैल आया) कहा। इसका मुंहतोड़ उत्तर श्रीहर्ष ने इस प्रकार दिया :—

किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वं, यदि गवि गोत्वं नहि मयि गोत्वम् ।

अगवि च गोत्वं तव यदि साध्यं, भवतु भवत्यपि संप्रति गोत्वम् ॥

अर्थात् गोमित्र को यदि तुम गो (बैल, मूर्ख) सिद्ध करना चाहते हो तो वह गोत्व (मूर्खत्व) तुममें भी है।

(ख) काव्यप्रकाशकार मम्मट श्रीहर्ष के मामा कहे जाते हैं। किंवदन्ती है कि श्रीहर्ष ने जब उन्हें नैषधीयचरित दिखाया तो मम्मट ने कहा कि यदि तुमने यह ग्रन्थ पहले दिखाया होता तो मुझे दोष-प्रकरण के लिए अन्य ग्रन्थों को देखने की आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए यह श्लोक मुख्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है :—तव वर्त्मनि वर्ततां शिवम्० (२-६२) १. तेरा मार्ग शुभ हो। २. तव वर्त्म निवर्ततां शिवम्, इस प्रकार पढ़ने में थोड़ा-सा अन्तर करने से अर्थ होगा—तेरा मार्ग अशुभ हो। मम्मट और श्रीहर्ष के समय में लगभग २०० वर्ष का अन्तर है, अतः यह किंवदन्ती रुचिकर होने पर भी अत्यन्त काल्पनिक ही है।

(ख) कृतित्व—नैषधीयचरित के सर्गान्त श्लोकों में श्रीहर्ष की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख है :—स्थैर्यविचारप्रकरण (सर्ग ४), श्रीविजयप्रशस्ति (५), खण्डनखण्डखाद्य (६), गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति (७), अर्णववर्णन (८), छिन्दप्रशस्ति (१७), शिवशक्तिसिद्धि (१८), नवसाहसार्कचरितचम्पू (२२)। खण्डनखण्डखाद्य में 'ईश्वराभिसन्धि' ग्रन्थ का ५ बार उल्लेख है। इस प्रकार नैषधीयचरित को लेकर श्रीहर्ष की १० रचनाएँ ज्ञात होती हैं। राजशेखर ने अपने 'प्रबन्धकोश' ग्रन्थ में श्रीहर्ष को सौ से अधिक ग्रन्थों का लेखक बताया है,^२ परन्तु ग्रन्थों का नाम नहीं दिया है। श्रीहर्ष के ग्रन्थों में श्रीविजय, गौडोर्वीश,

१. स्थैर्यविचारणप्रकरणभ्रातरि० (४-१२३), श्रीविजयप्रशस्तिरचना-
तातस्य० (५-१३८), खण्डनखण्डतोऽपि० (६-११३), गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति०
(७-११०), सद्बुधार्णववर्णनस्य० (८-१६०), छिन्दप्रशस्तेः० (१७-
२२२), शिवशक्तिसिद्धिभगिनी० (१८-१५४), नवसाहसांकचरिते चम्पू-
कृतोऽयं० (२२-१४६)।

२. खण्डनादिग्रन्थान् परश्शतान् जग्रन्थ । (पृष्ठ ५५, जिनविजय सं०)

अर्णव, छिन्द और नवसाहसांक से किन राजाओं और किस समुद्र का उल्लेख है, इस विषय पर बहुत मतभेद है।^१ इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष जयचन्द के दरबार में जाने से पूर्व कई राजाओं के आश्रित कवि रह चुके थे। संभवत वे अपनी दुरभिमानी प्रकृति के कारण किसी एक राजा के आश्रय में अधिक समय तक नहीं रह सके। कश्मीर, काशी, गौडोर्वीश और अर्णव के उल्लेख से स्पष्ट है कि उन्होंने कश्मीर से बंगाल की खाड़ी तक का सारा प्रदेश घूमा हुआ था।

(२) श्रीहर्ष का समय

श्रीहर्ष ने स्वयं उल्लेख किया है कि वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा के आश्रित कवि थे और उन्हें राजदरबार में २ पान और आसन मिलता था।

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् (२२-१५३)

डा० ब्यूलर (Bühler) ने सर्वप्रथम इस विषय पर प्रकाश डाला था। उनके निर्णय का आधार राजशेखर सूरि (१३४८ ई०) कृत 'प्रबन्धकोष' में दिया गया विवरण है। तदनुसार श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के राजा जयन्तचन्द्र (जयचन्द) के आश्रित कवि थे। यह जयन्तचन्द्र कुमारपाल का समकालीन था। जयचन्द का समय ११६३-११६४ ई० है और कुमारपाल का समय ११४३-११७४ ई० है। ११६३ ई० से ११७४ तक जयचन्द और कुमारपाल दोनों की स्थिति थी। अतः ब्यूलर ने निष्कर्ष निकाला है कि नैषधीयचरित की रचना ११६३ से ११७४ ई० के बीच हुई होगी।^२ इस प्रकार श्रीहर्ष का समय निर्विवाद रूप से १२वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध मानना चाहिए।

(३) नैषधीयचरित की संक्षिप्त कथा

इसमें २२ सर्ग हैं। १३ (५६ श्लोक) और १६ (६७ श्लोक) सर्ग को छोड़कर शेष सभी सर्गों में १०० से अधिक श्लोक हैं। कई सर्गों में १५० से अधिक श्लोक हैं। सर्ग १७ में श्लोक-संख्या २२२ हो गई है। इसमें नल-दमयन्ती के प्रणय से लेकर परिणय (विवाह) तक का सांगोपांग वर्णन है। सर्गानुसार कथा इस प्रकार है :—

१. विशेष विवरण के लिए देखो—H. S. L. Vol. I दासगुप्त-डे, पृष्ठ ३२६, संस्कृत-काव्यकार—डा० हरिदत्त शास्त्री, पृष्ठ ५५६-५६१, ५६६-५७१।
२. JBRAS. X, 1871, P. 31.

सर्ग १—नल और दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना । नल का वन-विहार, एक हंस को पकड़ना, दयाद्रं होकर उसे छोड़ना; सर्ग २—हंस का कृतज्ञताज्ञापन और दमयन्ती का गुणानुवाद । नल के आग्रह पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना; सर्ग ३—हंस का दमयन्ती के सामने नल का गुणानुवाद, दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना; सर्ग ४—दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय; सर्ग ५—इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना; सर्ग ६—अदृश्य नल का दमयन्ती के यहाँ पहुँचना और उसका सौन्दर्य देखना; सर्ग ७—दमयन्ती का नख-शिख वर्णन; सर्ग ८—नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को चुनने का आग्रह करना; सर्ग ९—नल-दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती का देवों में से किसी को न वरण करने का निश्चय और नल को विवाहार्थ राजी करना; सर्ग १०—स्वयंवर-विवरण, दमयन्ती का स्वयंवर-वर्णन; सर्ग ११ और १२—सरस्वती के द्वारा राजाओं आदि का परिचय दिया जाना; सर्ग १३—चार देवता और नल (पंचनली) का सरस्वती द्वारा श्लेषयुक्त वर्णन; सर्ग १४—देवों की स्वीकृति से दमयन्ती का नल को वरण करना और देवों का आशीर्वाद देना; सर्ग १५—विवाह की तैयारी; सर्ग १६—विवाह-संस्कार आदि, ज्योनार (विशेष वैवाहिक भोजन) आदि का वर्णन, ६ दिन रुककर नल का अपनी राजधानी पहुँचना; सर्ग १७—देवों का लौटते समय कलि से मिलना, कलि के मुँह से चार्वाक-सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन, देवों द्वारा चार्वाक-सिद्धान्त-खण्डन, क्रुद्ध कलि का नल को राज्यच्युत तथा दमयन्ती से वियुक्त करने का शाप; सर्ग १८—नल-दमयन्ती का प्रथम मिलन तथा काम-क्रीडा-वर्णन; सर्ग १९ से २२—चार सर्गों में नल-दमयन्ती की दिन-चर्या, देवस्तुति, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन, नल-दमयन्ती का विलास-वर्णन तथा कवि-वृत्त-वर्णन से समाप्ति ।

(४) श्रीहर्ष की शैली

श्रीहर्ष संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य महाकवियों में एक हैं । इनका नैषधीय-चरित महाकाव्य ही इनके गुण-गौरव और विद्वत्ता का आकर है । पाण्डित्य-प्रदर्शन, योग्यता, विद्वत्ता और व्युत्पत्ति में श्रीहर्ष ने सभी महाकवियों को पीछे छोड़ दिया है । अतएव नैषधीयचरित बृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट रत्न माना जाता है । सं० सा० स० इ०—१५

इसमें एक ओर भाषा-सौन्दर्य है तो दूसरी ओर भाव-सौष्ठव; एक ओर पद-लालित्य है तो दूसरी ओर स्वर-माधुर्य; एक ओर प्रसाद गुण है तो दूसरी ओर ओज; एक ओर वैदर्भी की छटा है तो दूसरी ओर गौडी का चमत्कार; एक ओर उत्प्रेक्षाओं का बाहुल्य है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यास का वैभव; एक ओर कलापक्ष की प्रधानता है तो दूसरी ओर भाव-पक्ष की उदात्तता; एक ओर कल्पनाओं का प्राचुर्य है तो दूसरी ओर चिन्तन की विशालता; एक ओर शृंगार की रस-क्रीड़ाएँ हैं तो दूसरी ओर करुण का द्रवीभाव। श्रीहर्ष ने संस्कृत-काव्यों के रीति-काल में द्वयर्थक या व्यर्थक पद्य-रचना की एक नई विधा को जन्म दिया है। इसके आधार पर राघवपाण्डवीयम्, राघवनैषधीयम् आदि द्वयर्थक या व्यर्थक काव्यों की रचना हुई। पञ्चनली-प्रसंग में श्रीहर्ष ने इस प्रकार के द्वयर्थक से लेकर पाँच अर्थ वाले श्लोकों की रचना की है। श्रीहर्ष की कल्पना-शक्ति अत्यन्त उर्वर है। वह बात की बात में धरती और आकाश को एक कर देता है। उसकी कल्पनाओं की कोई सीमा नहीं है। श्रीहर्ष की अन्य विशेषता यह है कि उसने पुरातन पद्धति का अन्धानुकरण नहीं किया है। उसने कालिदास से प्रसाद गुण नहीं, अपितु कल्पना; भारवि से चित्रालंकार आदि नहीं, अपितु अर्थगौरव और माघ से कथा-शैथिल्य नहीं, अपितु पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं वाग्वैशारद्य आदि गुणों को अपनाया है। श्रीहर्ष का काव्य सरस, सहृदय एवं व्युत्पन्न पाठकों के लिए शस्य-श्यामल, कुसुमित एवं सुरमित उद्यान है, किन्तु पल्लवग्राही, अव्युत्पन्न, अरसिक एवं कोमल-बुद्धि पाठकों के लिए नीरस एवं कण्टकाञ्चित कान्तार है। यदि भारवि की सौर कान्ति को माघ के माघ-मास ने निष्प्रभ कर दिया है तो श्रीहर्ष की वासन्ती सुषमा ने माघ के कम्प को भी निरस्त कर दिया है। अतएव कहा गया है—

तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः ।

उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः ॥

श्रीहर्ष के प्रौढ पाण्डित्यपूर्ण काव्य ने पण्डित-मण्डली को यह कहने के लिए बाध्य कर दिया कि—नैषधं विद्वदौषधम्, नैषध विद्वानों के लिए 'टॉनिक' है।

(क) भाषा-सौष्ठव—श्रीहर्ष की भाषा में प्रौढता के साथ परिष्कार है। उनकी भाषा में दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्राञ्जल, सरस, प्रवाहयुक्त, ध्वन्यात्मक और लयात्मक है। भावों के अनुसार भाषा में उतार-चढ़ाव है। रसानुगुण भाषा में प्रसाद, माधुर्य या ओज गुणों का

समन्वय है। कहीं-कहीं पर लम्बे समास, अप्रचलित शब्द, दुरूह वैयाकरण-प्रयोग, श्लिष्ट शब्दावली का बाहुल्य और कर्मवाच्य-प्रयोगों की प्रचुरता मिलती है।

भाषा में माधुर्य, लयात्मकता, भाववैशद्य और संगीतात्मकता का एक सुन्दर समन्वय प्रस्तुत है :—

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्

दीनदयालुतयाऽवनिपालः ।

रूपमर्दाशि धृतोऽसि यदर्थं

गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥

(नै० १-१४३)

दमयन्ती के मुखचन्द्र के वर्णन में यमक की छटा के साथ आरोह-अवरोह दर्शनीय है।

तारा रदानां वदनस्य चन्द्रं

रुचा कचानां च नभो जयन्तीम् ।

आकण्ठमक्ष्णोद्वितयं मधूनि

महीभुजः कस्य न भोजयन्तीम् ॥

(१०-१०७)

दमयन्ती के दाँतों की कान्ति ने तारावलि को, मुखकी कान्ति ने चन्द्र को और बालों की कान्ति ने आकाश की शोभा को जीत कर किस राजा के नेत्रों को आकण्ठ तृप्त नहीं किया ?

(ख) भावाभिव्यक्ति—श्रीहर्ष में भावाभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति है। उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। यद्यपि भावों में गाम्भीर्य है, किन्तु अभिव्यक्ति के साथ उनका सौन्दर्य निखर उठता है।

भावितव्यता और मानव-हृदय के मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध को कितने सरल और भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया गया है।

अवश्यमव्येष्टवनवग्रहग्रहा

यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ।

तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते

जनस्य चित्तेन भृशाऽवशात्मना ॥

(१-१२०)

अवश्यंभावी विषयों में विधि की इच्छा जिस ओर जाती है, विवश होकर मनुष्य का चित्त भी उसी ओर जाता है, जैसे आँधी के साथ तिनका।

एक उच्चकोटि की कल्पना का निदर्शन देखिए—कालरूपी किरात ने दिन-रूपी हाथी का वध किया है और उसके खून की धारा मानो लाल सन्ध्या है और उसके मस्तक के मोती ही मानो तारे रूप में बिखर गए हैं।

कालः किरातः स्फुटपद्मकस्य
वधं व्यधाद् यस्य दिनद्विपस्य ।
तस्यैव सन्ध्या रुचिरालधारा
ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ॥

(२२-६)

जन्द्रमा के कलंक पर कल्पना की एक ऊँची उड़ान देखिए :—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः
स्फुरत्प्रतापानलधूममज्जिम ।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ
दधाति पङ्क्रीभवदङ्कृतां विधौ ॥

(१-८)

नल की दिग्विजय-यात्राओं में जो धूल-राशि समुद्र में जाकर गिरी थी, वही कीचड़ होकर समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा में कलंक के रूप में दिखाई पड़ती है।

नल के तीव्रगामी घोड़े आधे आकाश तक पहुँच कर इसलिए लज्जित होकर लौट आए कि विष्णु ने एक पैर से आकाश को नाप लिया था, हम चार पैरों से क्यों नापें ?

हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं
पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः ।
त्रपा हरीणामिति नञ्जिताननै-
न्यर्वाति तैरर्धनभःकृतक्रमैः ॥

(१-७०)

(ग) रस-परिपाक—नैषध में शृंगार अंगी रस है; वीर, करुण, हास्य आदि अंगभूत रस हैं। नैषध में शृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का वर्णन है। संभोग-पक्ष अत्यन्त व्यापक है। अन्य रसों का अल्प मात्रा में यथास्थान प्रयोग है। यद्यपि श्रीहर्ष में कालिदास जैसा रस-परिपाक नहीं है, तथापि भाव-प्रवणता का प्राचुर्य है। सर्ग १२ और १३ में स्वयंवर में आए हुए राजाओं के वर्णन में वीर रस का प्रयोग मिलता है तथा १६वें सर्ग में हास्यरस की यत्र-तत्र पुट मिलती है।

श्रीहर्ष ने १८वें सर्ग में विवाह के पश्चात् नल-दमयन्ती के प्रथम-मिलन का विस्तृत वर्णन किया है। प्रथम समागम का एक प्रसंग इस प्रकार है—

वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे

दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम् ।

एककश्चिरमरोधि बालया

तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया ॥

(१८-४३)

विवाह से पूर्व नल-विषयक रति से परिपीड़ित दमयन्ती सूर्य की किरणों से क्षीणप्रभ चन्द्रकला के तुल्य कृश हो गई थी और वह किसे दयार्द्रचित्त नहीं कर देती थी ?

इयमनङ्गशरावलिपद्मग-

क्षतविसारिवियोगविषावशा ।

शशिकलेव खरांशुकरादिता

करुणनीरनिधौ निदधौ न कम ॥

(२-३३)

करुण रस के प्रवाह में भाव-सौष्ठव और प्रसादगुण का सुन्दर प्रयोग मनोहर है ।

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा

नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दय-

ग्रहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि नो ॥

(१-१३५)

हे भाग्य, मैं वृद्धा माता का एकमात्र पुत्र हूँ। बेचारी पत्नी के अभी नव सन्तान हुई है। मैं ही उन दोनों का आश्रय हूँ। ऐसे मुझको मारते हुए क्या तुझे दया नहीं आती ?

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा

त्वया विचित्राङ्गि विपद्यते यदि ।

तवाऽस्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः

स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः ॥

(१-१४०)

हे देवि, यदि मेरे वियोग में तुम मर जाओगी तो बेचारे वे छोटे बच्चे भी मर जाएँगे और भाग्य का मारा मैं अधिकाधिक मारा जाऊँगा ।

(घ) अलंकार-निरूपण—श्रीहर्ष की भाषा सालंकार है। इसमें पद-पद पर अलंकार मिलते हैं, परन्तु ये श्रमसाध्य नहीं हैं। स्वाभाविक रूप से अलंकारों के प्रयोगों के कारण उसकी तुलना कालिदास से की जा सकती है। आर्यास-साध्य चित्रालंकारों का प्रदर्शन भारवि और माघ के तुल्य श्रीहर्ष को रुचिकर नहीं है, अतः नैषध में ऐसे प्रयोग उपेक्षित हैं। अलंकारों में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति कवि को अतिप्रिय हैं, अतः पदे-पदे कल्पना की ऊँची उड़ानों का दर्शन होता है। अनुप्रास और यमक जैसे शब्दालंकार अनायास सर्वत्र प्राप्य हैं। श्लेष के प्रयोग श्रम-साध्य हैं और कवि की व्युत्पत्ति, अक्षय शब्दकोष तथा बहुज्ञता के परिचायक हैं। अर्थान्तरन्यास के प्रयोग उनको अर्थगौरव की दृष्टि से कालिदास और भारवि की कोटि में रखते हैं। उन्होंने मुख्यतया उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, श्लेष, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। श्रीहर्ष पर वक्रोक्ति-सम्प्रदाय का अधिक प्रभाव प्रतीत होता है, अतएव उन्होंने बहुत से स्थलों पर बातों को साधारण ढंग से न कहकर व्यंग्यपूर्ण चमत्कारिक प्रयोग किए हैं। १७वें सर्ग में कलि की उक्ति में चार्वाक मत का प्रतिपादन करते हुए ब्राह्मण धर्म, पौरोहित्य, पातिव्रत्य, पाखण्ड और ढोंग आदि पर बहुत कठोर व्यंग्य किया है, जो व्यंग्योक्ति के कारण चमत्कारिक हो गए हैं। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण दिए जा रहे हैं। पादान्त यमक का एक उदाहरण इस प्रकार है—

यथासीत् कानने तत्र विनिद्रकलिका लता ।

तथा नलच्छलासक्तिविनिद्रकलिकालता ॥ (१७-२१८)

रूपक और उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर समन्वय देखिए :—

आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु

योज्यं परिभ्रामति भानुमिक्षुः ।

अन्धौ निमज्जन्निव तापसोज्यं

सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥

(२२-१२)

भानुरूपी मिक्षुक दण्ड (किरण) का आश्रय लेकर चारों ओर घूम रहा है और सायंकाल के समय मानो पश्चिम-समुद्र में स्नान करके सन्ध्याकालीन बादल-रूपी गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है। इसमें दिक्षु-मिक्षु, सोज्यम्-सायम् में अन्त्यनुप्रास भी अवधेय है।

उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण दमयन्ती के मुख की रचना के सन्दर्भ में द्रष्टव्य है।

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं, दमयन्तीवदनाय वेधसा ।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते, धृतगम्भीरखनीखनीलिम ॥ (२-२५)

परत्मात्मा ने दमयन्ती के मुख के निर्माणार्थ चन्द्रमा का सार भाग निकाल लिया है, अतः उसमें छिद्र हो गया है और उसके मध्य से आकाश की नीलिमा दिखाई देती है । वस्तुतः चन्द्रमा में यह कलंक नहीं है ।

उत्प्रेक्षा का एक दूसरा उदाहरण देखिए । आकाश में तारे मानो कामदेव के बाण हैं, जो देवों और अप्सराओं के लिए छोड़े गए हैं । कामदेव को जो पंच-शर (५ बाण वाला) कहा जाता है उसमें पंच शब्द केवल ५ का वाचक न होकर प्रपंच (अनेक या विस्तृत) का वाचक है, जैसे पंचानन (शेर) में पंच विस्तृत का बोधक है ।

मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्ताराः शराः पुष्पशरेण शङ्के ।
पञ्चास्यवत् पञ्चशरस्य नास्मि, प्रपञ्चवाची खलु पञ्च शब्दः ॥
(२२-१८)

श्लेष अलंकार का एक अत्यन्त मनोरम उदाहरण दमयन्ती की यह उक्ति है । इसमें उसके कथन के तीन अर्थ प्रासंगिक रूप से प्रस्तुत होते हैं ।

इतीरिता पत्ररथेन तेन, ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी ।

चेतो नलङ्कामयते मदीयं, नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम् ॥ (३-६७)

हंस से दमयन्ती की इस उक्ति में 'चेतो नलं०' के तीन अर्थ हैं :—(१) चेतः नलं कामयते मदीयम्—मेरा हृदय नल को चाहता है; (२) चेतः न लङ्काम् अयते मदीयम्—मेरा चित्त धन का लोभी होकर लंका की ओर नहीं जाता है; (३) चेतः अनलं कामयते मदीयम्—नल के न मिलने पर मेरा चित्त अनल (अग्नि) को चाहता है, अर्थात् मैं सती हो जाऊँगी ।

इसी प्रकार श्लेष का एक दूसरा उदाहरण दमयन्ती की पूर्वरागजन्य अस्वस्थता से संबद्ध है ।

कन्यान्तःपुरबाधनाय यदधीकाराद्बन्ध दोषा नृपं

द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदंकारश्च तावूचतुः ।

देवाकर्णय सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलं

स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः ॥ (४-११६)

राजा भीम ने अन्तःपुर के निरीक्षणार्थ एक मन्त्री और एक वैद्य की नियुक्ति की थी। दोनों ने दमयन्ती की अस्वस्थता के विषय में राजा को जो सूचना दी, वह श्लोक की अन्तिम श्लिष्ट दो पंक्तियों में है। (१) मन्त्री की सूचना—राजन्, प्रामाणिक सूचना प्राप्त करने वाले दूत के कथन से मुझे सब बातें ज्ञात हैं। नलद (नल राजा को विवाह में देने) के अतिरिक्त सन्ताप को दूर करने का और कोई उपाय नहीं है। (२) वैद्य की सूचना—मैं सुश्रुत और चरक ग्रन्थों के द्वारा सब बात (निदान) जानता हूँ। नलद (खस के लेप) के बिना इसके सन्ताप को दूर करने का अन्य उपाय नहीं है।

नैषध में १२५ से अधिक अर्थान्तरन्यास के प्रयोग हैं। इनके द्वारा श्रीहर्ष के गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और व्यवहार-निष्णातता का ज्ञान होता है। कुछ उदाहरण ये हैं :—(१) जनानने कः करमर्पयिष्यति (६-१२५, कौन लोगों का मुँह बन्द कर सकता है), (२) आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (५-१०३, शठे शाठ्यं समाचरेत्), (३) मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता (६-८, वाग्मिता का लक्षण है—संक्षिप्त और सारपूर्ण भाषण), (४) कर्म कः स्वकृतमत्र न मुञ्क्ते (५-६, कौन अपने किए का फल नहीं पाता?); (५) दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि (५-१०६, कामवासना विद्वानों के लिए भी दुर्जेय है), (६) प्रत्ययः परवाचि कः (२०-४५, दूसरे की बात का क्या भरोसा?), (७) किं विदग्धमनसामगोचरः (१८-८६, विद्वानों के लिए क्या अज्ञात है?), (८) चकास्ति योग्येन हि योग्य-संगमः (६-५६, योग्य का योग्य से मेल शोभित होता है), (९) झटिति पराशय-वेदिनो हि विज्ञाः (४-११८, विद्वान् दूसरे के मन की बात तुरन्त जान लेते हैं), (१०) क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः (१-१०२, भाग्यवान् आदमी को कहाँ सुख नहीं मिलता?), (११) प्रतीक्षते जातु न कालमार्तिः (३-६१, दुःख समय की प्रतीक्षा नहीं करता), (१२) अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (३-६३), (१३) पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते० (३-६४), (१४) इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति (३-११६), (१५) त्यजन्त्यसून् शर्मं च मानिनो वरं त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् (१-५०), (१६) स्मरः स्म रत्यामनिरुद्धमेव यत् सृजत्ययं सर्गं निसर्ग ईदृशः (१-५४), (१७) विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि (१-१३१), (१८) ब्रूवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् (२-४८), (१९) कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते (३-१७), (२०) नामापि जागर्ति हि यत्र शत्रोस्तेजस्विनस्तं

कतमे सहन्ते (८-७४), (२१) आकरः स्वपरमूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदां सहवासः (५-१२), (२२) दैवे विरुन्धति निबन्धनतां वहन्ति हन्त प्रयासपरुषाणि न पौरुषाणि (११-५५), (२३) दृष्टादृष्टा हि नायत्ताः कार्यीया हेतवस्तव (१७-१४७), (२४) नाकतिपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम् (१३-४६), (२५) जातौ न वित्ते न गुणे न कामः सौन्दर्यं एव प्रवणः स वामः (१०-१३) ।

(ङ) वर्णन-वैचित्र्य—श्रीहर्ष में वर्णन की अपूर्व क्षमता है। वह साधारण से साधारण प्रसंग के सूक्ष्म निरूपण में दक्ष हैं। उदाहरणार्थ कुछ प्रसंग ये हैं :— सरोवर-वर्णन (सर्ग १), दमयन्ती का नखशिख-वर्णन (सर्ग ७), राज-वर्णन (सर्ग ११ से १३), पंचनली-वर्णन (सर्ग १३), चार्वाक मत-वर्णन (सर्ग १७), संभोग-वर्णन (१८), प्रातःकाल, सूर्योदय, चन्द्रास्त-वर्णन (१६), सन्ध्या-वर्णन, चन्द्रोदय-वर्णन (सर्ग २२) । नल के उद्यान का एक सुन्दर वर्णन देखिए :—

विलासवापीतटवीचिवादानात्

पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् ।

वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं

क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः ॥

(१-१०२)

नल के विलास-वन में तट-वीचि का वाद्य, कोयल और भ्रमर का संगीत तथा मोरों का नृत्य हो रहा था। इस प्रकार नृत्य-वाद्य-संगीत तीनों बातें नल को वहाँ प्राप्त हुई ।

(च) छन्दोयोजना—श्रीहर्ष को छन्दःप्रयोग में विशेष दक्षता प्राप्त थी। छोटे छन्दों के तुल्य ही हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा आदि बड़े छन्दों के प्रयोग में भी उन्हें उतनी ही सफलता मिली है। सर्ग १६ में हरिणी छन्द के ५६ श्लोक तथा सर्ग २१ और २२ में विभिन्न शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि के प्रयोग इसके प्रमाण हैं। श्रीहर्ष ने नैषध में १६ छन्दों का प्रयोग किया है। ७ सर्गों में उपजाति छन्द है, अतः यह उनका सबसे अधिक प्रिय छन्द ज्ञात होता है। ४ सर्गों में वंशस्थ वृत्त का प्रयोग है। इनके अतिरिक्त अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, स्वागता का दो-दो सर्गों में प्रयोग हुआ है। द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, वैतालीय और हरिणी का एक-एक सर्ग में प्रयोग है। इनके अतिरिक्त इन छन्दों का भी न्यूनाधिक प्रयोग हुआ है—अचलधृति, तोटक, दोधक, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा, मालिनी, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा ।

(५) काव्य-सौन्दर्य

नैषधे पदलालित्यम्—नैषध में काव्य-सौन्दर्य पद-पद पर परिलक्षित होता है। कहीं प्रसाद, कहीं माधुर्य और कहीं ओज गुण है। प्रसाद और माधुर्य के साथ पदलालित्य सोने में सुहागे का काम करता है। काव्य की लयात्मकता और संगीतात्मकता श्रुति-सुखद तथा मनोभावों के लिए आह्लादक हैं। अतएव विद्वानों ने विवश होकर 'नैषधे पदलालित्यम्' कहकर श्रीहर्ष के पदलालित्य की प्रशंसा की है। कुछ उदाहरण ये हैं :—

(क) अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा

क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे ।

तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां

न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥

(१-२०)

(ख) अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽ-

प्यभिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम् ॥

(१-४१)

(ग) सकलया कलया किल दंष्ट्रया

समवधाय यमाय विनिर्मितः ॥

(४-७२)

(घ) यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयाऽपि रमणी

कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुर्वते ।

मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः

किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः ॥

(२२-१५०)

(६) नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीहर्ष ने नैषध में अपनी व्युत्पत्ति के प्रदर्शन का जो उपक्रम किया है, उससे पद-पद पर क्लिष्टता और दुरुहता आ गई है। विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन, क्लिष्ट और क्लिष्ट प्रयोग तथा बहुज्ञता के प्रकाशन ने काव्य के गागर में सागर भर दिया है। अतएव नैषध को विद्वानों के लिए औषध या रसायन माना गया है। नैषध में विशेष-योग्यता प्राप्त करना विविध-शास्त्रज्ञता का परिचायक है। श्रीहर्ष ने नैषध में श्लेषयुक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि दर्शनों के कठिन सिद्धान्तों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है। उन विभिन्न सिद्धान्तों को ठीक-ठीक न जानने

वाले पाठक के लिए अर्थावगम दुःसाध्य हो जाता है। इसलिए केवल पाश्चात्य विद्वानों के लिए ही नहीं, अपितु तथाकथित भारतीय विद्वानों के लिए भी नैषध टेढ़ी खीर ही है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि नैषध का भाव-पक्ष निर्बल पड़ गया है और कला-पक्ष प्रबल।^१ नमूने के रूप में कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं :—

पाणिनि के अपवर्गे तृतीया (२-३-६) सूत्र पर व्यंग्य किया गया है कि अपवर्ग (मोक्ष) के लिए तृतीय (पुरुष और स्त्री से भिन्न नपुंसक व्यक्ति) ही उपयुक्त हैं।

उभयो प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।

अपवर्गं तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि ॥ (१७-७०)

न्यायामिमत आनन्द-रहित मोक्ष के वर्णन पर व्यंग्य किया है कि न्याय का मोक्ष गोतम (बड़े बैल, मूर्खतम) का मत है—

मुक्तये यः शिलात्वाय, शास्त्रमूचे सचेतसाम्।

गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः ॥ (१७-७५)

वैशेषिक दर्शन में तमस् (अन्धकार) को पदार्थ मानने पर पर्याप्त विवेचन है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद का दूसरा नाम उलूक है, अतः इस दर्शन को औलूक दर्शन कहते हैं। इसी पर व्यंग्य किया गया है कि उलूक (उल्लू) ही तमस्तत्त्व का परीक्षण कर सकता है और इस विषय में उसकी ही राय मान्य है।

ध्वान्तस्य वामोर विचारणायां वैशेषिकं चारु मतं मतं मे।

औलूकमाहुः खलु दर्शनं तत् क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥ (२२-३५)

वेदान्त-दर्शन के अनुसार मुक्ति में जीवात्मा के लय के साथ ब्रह्मैक्य होता है। इसी पर व्यंग्य किया गया है कि मूर्ख व्यक्ति ही अपने अस्तित्व की समाप्ति पसन्द करेंगे।

स्वं च ब्रह्म च संसारे, मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम्।

इति स्वोच्छ्रित्तमुक्त्युक्तिवैदग्ध्यो वेदवादिनाम् ॥ (१७-७४)

श्रीहर्ष ने विविध दार्शनिक मतों का खण्डन करते हुए अद्वैतवाद को ही सर्व-मान्य बताया है।

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखो—लेखक-कृत प्रौढ-रचनानुवाद-कौमुदी में 'नैषधं विद्वदौषधम्' शीर्षक निबन्ध, पृष्ठ ३३५-३३८।

श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मताना-

मद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः ॥

(१३-३६)

सरस्वती के स्वरूप का वर्णन करते हुए एक ही श्लोक में बौद्ध दर्शन की तीन शाखाओं के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। ये तीन सिद्धान्त हैं—शून्यवाद, विज्ञानवाद और साकार विज्ञानवाद (सौत्रान्तिक)।

या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोदरेव ।

विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारतासिद्धिमयाखिलेव ॥ (१०-८८)

इसी प्रकार 'नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः' (५-६४) में सांख्य के सत्कार्यवाद का; 'संप्रज्ञातवासिततमः समपादि' (२१-११८) में योगदर्शन की संप्रज्ञात समाधि का, 'आदाविव द्व्यणुककृत् परमाणुयुग्मम्' (३-१२५) में वैशेषिक के परमाणुवाद का, 'मनोभिरासीदनणुप्रमाणैः' (३-३७) और 'जनस्य चेतोभिरि-
वाणिमाङ्गकितैः' (१-५६) में मन की अणु-स्वरूपता का, 'मखं हि मन्त्राधिक-
देवभावे' (१४-७३) में मीमांसाभिमत देवों की सशरीरता का, 'अजस्रमभ्याश-
मुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बधेन च' (१-१७) में ज्योतिष के सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। इन शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिपादन के कारण नैषध में पदे-पदे दुरुहता मिलती है। श्लेषमूलक प्रयोगों ने इस दुरुहता को और अधिक जटिल बना दिया है। पंचनली-वर्णन में श्लेष द्वारा इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम और नल पाँचों का एक साथ वर्णन इस श्लोक में किया गया है।

देवः पतिविदुषि नैष धराजगत्या

निर्णीयते न किमु न त्रियते भवत्या ।

नायं नलः खलु तदातिमहानलाभो

यद्देनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते ॥

(१३-३४)

श्रीहर्ष की कुछ नवीनताएँ—(१) श्रीहर्ष ने नैषध में कुछ ऐसे प्रयोग किए हैं, जो आज भी बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—जनाने कः कर्मर्षिष्यति (६-१२५, कौन लोगों का मुँह बन्द कर सकता है?) आसितुं नादत्त (१८-५३, बैठने नहीं दिया), वीक्षितुं नादत्त (१८-५३, देखने नहीं दिया)। कथमास्यं दर्शयिताहे (५-७१, मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा?) नवीनमश्रावि तवानना-
दिदम् (६-४१, मैंने तुम्हारे मुँह से ही यह नई बात सुनी है)। (२) श्रीहर्ष ने वातालाप के प्रसंगों में नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है। जैसे—दृष्ट दृष्टम्

(देख लिया, देख लिया), तद्वद (तो बताओ), न न (६-११४, नहीं, नहीं), हुँ हुम् (२०-६५, हूँ-हूँ, हुंकारी भरना), ब्रवीषि न (६-८६, पूर्वी भाषा का प्रयोग—कहते हो न, अर्थात् कहते हो) ।

(३) श्रीहर्ष ने अनेक नए शब्द गढ़े हैं । जैसे—भूजानि (१-२, राजा), सूननायक (१८-१२६, कामदेव), अप्रतीतचर (१८-१२६, पहले से अज्ञात), अधिगामुका (१८-१२६, जानने वाली), हसस्पृशम् (१८-१३०, हँसते हुए) ।

(४) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग—अगदंकारः (४-११६, वैद्य), अकूपार (१२-१८, समुद्र), चिपिटः (२२-८५, चपटा), श्यनंपाता (१६-१२, मृगया), मिहिकारुचम् (१६-३५, चन्द्रमा) । (५) लोकभाषा के शब्द—इंगाल (१-६, अंगारा), विरुद (११-३७, प्रताप), घोरणि (१५-४६, परम्परा) ।

(७) श्रीहर्ष की न्यूनताएँ

(१) पाश्चात्य विद्वानों ने श्रीहर्ष को अशुचिपूर्ण शैली और वर्णन के लिए बुरा मला कहा है । प्रो० एस० के० डे ने भी नैषध के विषय में अपनी संमति इस प्रकार दी है—“It is no wonder, therefore, that judging by modern standards, an impatient Western critic should stigmatise the work as a perfect masterpiece of bad taste and bad style.”

(२) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करना । (३) नए शब्दों को गढ़कर भाषा में जटिलता उत्पन्न करना । (४) शास्त्रीय सन्दर्भों के द्वारा दुरुहता लाना । (५) कल्पनाओं की क्लिष्टता । (६) शृंगार का आवश्यकता से अधिक तथा अश्लील वर्णन । (७) दमयन्ती के नख-शिख का अनावश्यक रूप से विस्तृत वर्णन । (८) १७वें सर्ग में अनावश्यक रूप से देव, ब्राह्मणों, दार्शनिकों, वेदज्ञों, पुरोहितों और पण्डितों आदि के पाखंडों की छीछालेदर । (९) वर्णनों में औचित्य का पूर्णतया निर्वाह न करना । जैसे—१-३०, ५-२७, १०-५१, ७-६५, ५-३५, १५-६२, १७-७५ । (१०) रचना-दोष के कारण अनर्थ का बोध । जैसे—तव वर्तमान वर्ततां शिवम्० (२-६२) । (११) भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता ।

श्रीहर्ष के गुणों पर ध्यान देने से ये दोष नगण्य हैं । रीतिकालीन कवियों के लिए शृंगार-वर्णन, नख-शिख-वर्णन, श्लेष-प्रयोग, पाण्डित्य-प्रदर्शन आदि अनिवार्य

हो गए थे। इनके बिना विद्वत्समुदाय में कवि को विशेष आदर नहीं प्राप्त होता था। १७वें सर्ग में कलि के मुख से पाखंडों आदि की निन्दा संभवतः प्रचलित सामाजिक भावना का प्रतिबिम्ब है। पाश्चात्य विद्वानों का शैली और रस-विषयक आक्षेप अतिरंजित प्रतीत होता है, क्योंकि यह श्रीहर्ष के काव्य की दुरूहता पर आश्रित है। इसमें पाश्चात्य विद्वानों की अबाध गति न होने के कारण उन्होंने इस काव्य को ही निकृष्ट कोटि का सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यास्क के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि—नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति। (निरुक्त)

५. (च) अन्य महाकवि

(क) भट्टि

१. भट्टि का जीवन-वृत्त, कृतित्व और समय

जीवन-वृत्त—महाकवि भट्टि अपने समय के असाधारण विद्वान् थे। ये व्याकरण और काव्य-शास्त्र के धुरन्धर एवं मर्मज्ञ पण्डित थे। व्याकरण-शास्त्र की कठिनाइयों को दूर करते हुए काव्य के द्वारा व्याकरण सिखाने का प्रयत्न करने का श्रेय भट्टि को है। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। इसका प्रमाण यही है कि ग्रन्थ का मुख्य नाम 'रावणवध' प्रचलित न होकर 'भट्टि-काव्य' ही प्रचलित हो गया।

ये वल्लभी के राजा श्रीधरसेन के आश्रित कवि थे। संभवतः राजा श्रीधरसेन ने संस्कृत-व्याकरण, अलंकार-शास्त्र तथा प्राकृत-परिचय प्राप्त करने के लिए सरलतम उपाय निकालने के लिए प्रार्थना की। भट्टि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर काव्य एवं सुशुचिपूर्ण कथानक के माध्यम से तीनों बातों की शिक्षा दी है। अतएव अन्तिम श्लोक में प्रजावत्सल राजा को आशीर्वाद देते हुए ग्रन्थ की समाप्ति की गई है।

काव्यमिवं विहितं मया वलग्न्यां

श्रीधरसेन-नरेन्द्र - पालितायाम् ।

कीर्तिरतो भवतान्पुत्रस्य तस्य

प्रेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम् ॥ (भट्टि २२-३५)

कृतित्व—भट्टि की केवल एक रचना प्राप्त होती है। इसका नाम 'रावण-वध' है, परन्तु प्रचलित नाम 'भट्टिकाव्य' ही है। इसमें २२ सर्ग और १६२४ श्लोक हैं। इसमें राम-जन्म से लेकर लंका-विजय और राम-राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। यह काव्य ४ भागों में विभक्त है :—(१) प्रकीर्णकाण्ड—इसमें १ से ५ सर्ग हैं। इसमें राम-जन्म से लेकर सीताहरण तक की कथा है। इसमें कृत प्रत्ययों का मुख्यतया वर्णन है। (२) अधिकार-काण्ड—इसमें ६ से ९ सर्ग तक हैं। इसमें बालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, अशोक-वनदाह, हनुमान्-निग्रह का वर्णन है। इसमें लुङ्, कृत्, षत्व, णत्व, कारक, आत्मनेपद आदि का वर्णन है। (३) प्रसन्नकाण्ड—सर्ग १० से १३ तक। इसमें सीताभिज्ञान-दर्शन, विभीषण-आगमन, सेतुबन्ध का वर्णन है। इसमें शब्दालंकार, अर्थालंकार, माधुर्य और भाविक का वर्णन है। सर्ग १३ में संस्कृत और प्राकृत दोनों के समशब्दों का प्रयोग है। (४) तिङन्तकाण्ड—१४ से २२ सर्ग तक। इसमें क्रमशः ९ सर्गों में लिट्, लुङ्, लृट्, लङ्, लट्, लिङ्, लोट्, लृङ् और लुट् इन ९ लकारों का प्रयोग सिखाया गया है। इसमें युद्ध, रावणवध, विभीषण-राज्याभिषेक और राम-राज्याभिषेक का वर्णन है।

भट्टि का समय—वलमी में श्रीघरसेन के समय में भट्टिकाव्य की रचना हुई है, अतः भट्टि श्रीघरसेन का समकालीन है। वलमी में श्रीघरसेन नाम के चार राजा हुए हैं। इनका समय ५०० ई० से ६४१ ई० तक है। इनमें से श्रीघरसेन द्वितीय के ६१० ई० के एक शिलालेख में भट्टि नामक एक व्यक्ति को भूमि देने का उल्लेख है। यदि इसी व्यक्ति को भट्टि कवि माना जाए तो उसका समय ६१० ई० के लगभग सिद्ध होता है। इस प्रकार भट्टि का समय ६ठी शताब्दी ई० का उत्तरार्ध और ७वीं ई० का प्रथम चरण मानना उचित प्रतीत होता है। हमारे विचार से भट्टि का समय ५५० ई० से ६१० ई० के बीच है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि भामह (लगभग ६२० ई०) ने भट्टि के निम्नलिखित श्लोक को रूपान्तर से प्रयुक्त किया है।

भट्टि—व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम् ।

हता दुर्मेधसश्चास्मिन्, विद्वत्प्रियतया मया ॥ (२२-३४)

भामह—काव्यान्यपि यदीमानि, व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।

उत्सवः सुधियामेव, हन्त दुर्मेधसो हताः ।

भट्टि की शैली एवं काव्य-सौन्दर्य

भट्टि का लक्ष्य यद्यपि व्याकरण-शिक्षण है और उसने व्याकरण की क्रमिक शिक्षा दी है, तथापि उसमें कवित्व और भाव पक्ष की न्यूनता नहीं है। उसमें एक ओर कालिदास की-सी सरसता, सरलता और सहृदयता है तो दूसरी ओर भारवि का-सा पाण्डित्य और चित्रालंकार-प्रयोग। व्याकरण-मूलक काव्यशैली की एक नवीन विधा को जन्म देने का श्रेय भट्टि को है। भट्टि में वर्णन की अपूर्व क्षमता है। व्याकरण जैसे विषय को लेते हुए प्रबन्ध काव्य की रचना का सफलतापूर्वक निर्वाह कर जाना भट्टि के लिए ही संभव है। आलोचकों ने उस पर कृत्रिमता, आडम्बर, जटिलता और नीरसता के अनेक आरोप लगाए हैं, परन्तु ये आरोप वस्तुस्थिति से दूर हैं। भट्टि काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यदि वह एक स्थान पर रुखा है तो दूसरे स्थान पर अत्यन्त सरस। यदि कहीं लुब्ध और लिट् के प्रयोग नीरसता लाते हैं तो भाषा-सम के प्रयोग सरस कविता का रसास्वाद कराते हैं। यदि कहीं व्याकरण की जटिलता से मन ऊबता है तो अन्यत्र अलंकारों की सुन्दर झंकार से पाठक आह्लादित हो उठता है। वस्तुतः भट्टि स्वयं विरोधाभास के उदाहरण हैं। वे न कोरे वैयाकरण हैं और न कोरे साहित्यिक। वे नर-सिंहावतार के तुल्य खर औप कोमल दोनों हैं।

व्याकरण-ज्ञान के लिए यह महाकाव्य दीपक के तुल्य है, अन्यथा मनुष्य शब्द-शास्त्र में अन्धवत् रहता है।

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम् ।

हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते ॥ (२२-३३)

भट्टि के सरस एवं सुन्दर भावों वाले श्लोक यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। प्रातःकाल का वर्णन देखिए—

निशातुषारैर्नयनाम्बुकल्पैः

पत्रान्तर्पर्यागिलदच्छबिन्दुः ।

उपाश्रोदेय नदत्पतङ्गः

कुमुद्वती तीरतरुदिनादौ ॥

(२-४)

प्रातःकाल के समय सरोवर के किनारे का वृक्ष चन्द्र-वियुक्त कुमुद्वती की दंशा पर रो-सा रहा था। रात्रि की आँस की बूँदें पत्तों से गिरती हुई उसके आँसू की बूँदें थीं और पेड़ पर बोलता हुआ पक्षी उसका क्रन्दन था।

प्रभातवाताहतिकम्पिताकृतिः

कुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम् ।

निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी

न मानिनी संसहतेऽन्यसंगमम् ॥ (२-६)

प्रातःकाल का समय है। वायु से पद्मिनी हिल रही है। भ्रमर रात्रि भर कुमुदिनी में रहा है। अतः पद्मिनी अन्यस्त्री-संपर्क के कारण भ्रमर से क्रुद्ध है और शरीरकम्प के द्वारा उसे बाहर निकाल देती है। स्वाभिमानी स्त्री अपने पति के परस्त्री-संपर्क को सहन नहीं कर सकती।

विभीषण के द्वारा रावण को राम से सन्धि का उपदेश कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। राम सीताहरण से संतप्त हैं और हम लोग मृत बन्धुओं के शोक से। दोनों ही संतप्त हैं, अतः सीता को मुक्त करके राम से संधि कर लें। दोनों तपे हुए लोहे के तुल्य मिल जाएँ।

रामोऽपि दाराहरर्णेन तप्तो, वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यः ।

तप्तस्य तप्तेन यथायसो नः, संधिः परेणास्तु विमुञ्च सीताम् ॥ १२-४०

विभीषण के द्वारा राजनीति का कितना सुन्दर उपदेश है। देखें—

एकेन संधिः कलहोऽपरेण, कार्योऽभितो वा प्रसमीक्ष्य वृद्धिम् ।

एवं प्रयुञ्जीत जिगीषुरेता, नीतीविज्ञानघृहितात्मसारम् ॥ १२-३५

जो राजा विजय चाहता हो, वह शत्रु के और अपने बल की जाँच करके दोनों बातें करे—एक ओर संधि की बात चलाता रहे और दूसरी ओर लड़ाई की तैयारी करता रहे। यह उपदेश वर्तमान विश्व-राजनीति से कितना मेल खाता है।

कवि का एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी दर्शनीय है। स्त्रियों के स्वभाव का कितना सुन्दर चित्रण है कि गोपियाँ भोली-भाली और लज्जाशील हैं। कटाक्ष-पात-रहित उनकी दृष्टि है। उनमें सरलता और विश्वसनीय स्वभाव है। राम उन्हें देखकर प्रसन्न हो गए।

स्त्रीभूषणं चेष्टितमप्रगल्भं

चारुण्यवक्राण्यपि वीक्षितानि ।

ऋजूंश्च विश्वासकृतः स्वभावान्

गोपाङ्गनानां मुमुदे विलोक्य ॥ २-१५

एकावली अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण देखिए :—

न तज्जलं यन्न मुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥ २-१६

उस सरोवर में ऐसा कोई जल नहीं था, जहाँ सुन्दर कमल न हो; ऐसा कोई कमल नहीं था, जिसमें भीरे न हों; ऐसा कोई भीरा नहीं था, जो सुन्दर गूँज न रहा हो और ऐसा कोई गुंजन नहीं था जो मन को न हर ले ।

माधुर्य गुण का एक मनोरम निदर्शन देखें :—

तमः प्रसुप्तं मरणं सुखं नु
मूर्छा नु माया नु मनोभवस्य ।
किं तत् कथं येत्युपलब्धसंज्ञा
विकल्पयन्तोऽपि न संप्रतीयुः ॥ ११-१०

इसकी तुलना कालिदास के स्वप्नो नु माया नु० (शाकु० ६-१०) से करें ।

एक भाषासम का उदाहरण देखिए । यह श्लोक संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में समान है :—

चल - किसलय - सविलासं
चारु-मही-कमल-रेणु-पिञ्जर-वसुधम् ।
सकुसुम - केसर - बाणं
लवङ्ग-तरु-तरुण-वल्लरी-वर-हासम् ॥ १३-३६

भट्टि ने १०वें सर्ग में सभी शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के उदाहरण दिए हैं । यमक के विविध भेदों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) अवसितं हसितं प्रसितं मुदा
विलसितं हसितं स्मर-भासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः
पुरहितं विहितं न समीहितम् ॥ १०-६ (चक्रवाल यमक)

(ख) न गजा नगजा वयिता वयिता
विगतं विगतं ललितं ललितम् ।

प्रमदा प्रमदाऽऽमहता महता—

मरणं मरणं समयात् समयात् ॥ १०-६ (यमकावली)

(ग) बभौ मरुत्वान् वि-कृतः स-मुद्रो

बभौ मरुत्वान् विकृतः स-मुद्रः ।

बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रो

बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रः ॥ १०-१६ (सर्वयमक)

व्याकरण के कुछ मनोरम उदाहरण भट्टि की प्रौढता के प्रदर्शनार्थ पर्याप्त हैं । लुङ लकार के प्रयोग देखें :—अर्घ्यैष्ट (पढ़ा), अयष्ट (यज्ञ किया), अपारीत् (तृप्त किया), सममंस्तं (समान किया), व्यजेष्ट (जीता), अरंस्त (रमा), न्यवधीत् (वध किया) ।

सोऽर्घ्यैष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट

पितृनपारीत् सममंस्त बन्धून् ।

व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ

समूलधातं न्यवधीदरंश्च ॥ १-३

एक पद के व्यवधान से लिट् के रूपों का प्रयोग देखें :—

तेनेऽद्विबन्धो ववधे पयोधि-

स्तुतोष रामो मुमुदे कपीन्द्रः ।

तत्रास शत्रुर्ददृशे सुबेलः

प्रापे जलान्तो जहृषुः प्लवङ्गाः ॥ १३-२७

समुद्र पार लंका पहुँच कर वानरों को जो आनन्द आया, उस उच्छल-कूद का केवल लिट्-लकार के क्रियापदों में वर्णन देखिए । इसमें केवल क्रियापद ही हैं ।

भ्रेमु - ववल्गु - ननंतु - जंजक्षु-

जंगुः समुत्पुप्लुविरे निषेदुः ।

आस्फोटयांचक्रुरभिप्रणेद्व

रेजु- ननन्दु - विययुः समीयुः ॥ १३-२८

हेतुहेतुमद् भविष्यत् (लृङ) का एक प्रयोग देखें :—

संकल्पं नाकरिष्यच्च, तत्रेयं शुद्धमानसा ।

सत्याऽमर्षमवाप्स्यस्त्वं, रामः सीतानिबन्धनम् ॥ २१-४

इस प्रकार भट्टि में विविध विरुद्ध गुणों का समन्वय है ।

भट्टि ने यद्यपि अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, तथापि प्रयोग की दृष्टि से अनुष्टुप्, उपजाति, आर्या और पुष्पिताग्रा प्रमुख छन्द हैं। सर्ग ४ से ६ और १४ से २२ में अनुष्टुप् है। उपजाति १, २, १२, १३ सर्गों में है। १३वें सर्ग में आर्या गीति और १०वें सर्ग में पुष्पिताग्रा छन्द मुख्य हैं। अन्य छन्दों का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। उनमें मुख्य ये हैं—प्रहर्षिणी, मालिनी, वंशस्थ, औपच्छन्दसिक, वैतालीय, पृथ्वी, रुचिरा, तोटक, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा।

(ख) कुमारदास

(१) जीवन-वृत्त, कृतित्व और समय

कुमारदास के जन्मस्थान के विषय में पर्याप्त मतभेद है, किन्तु अधिकांश प्रमाणों के आधार पर इनका जन्मस्थान लंका मानना उचित है। लंका में इस नाम का एक राजा हुआ है। उसका समय ५१७-५२६ ई० माना जाता है। 'जानकी-हरण' ग्रन्थ की प्रतियाँ प्रारम्भ में लंका से ही प्राप्त हुई हैं। कुमारदास के काव्य पर अनेक स्थलों पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट है। काशिका (६५० ई०) में जिन विशेष अर्थों में कुछ शब्दों का प्रयोग है, उन्हीं अर्थों में जानकीहरण में भी उनके प्रयोग मिलते हैं। अतः ६५० ई० के बाद कुमारदास का समय हो सकता इसलिए है। वामन (८०० ई०) ने कुमारदास के 'खलु' शब्द के प्रयोग की निन्दा की है, इसलिए उससे पूर्ववर्ती हैं। अतः कुमारदास का समय ६५० से ७५० ई० के मध्य मानना चाहिए।

कुमारदास की केवल एक ही कृति 'जानकीहरण' महाकाव्य प्राप्त होता है। इसमें २० सर्ग थे, कुछ विद्वानों के मतानुसार २५ सर्ग थे। पूरा ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ के २ संस्करण प्रकाशित हुए हैं। एक में केवल १० सर्ग हैं और जानकीहरण तक की कथा है। दूसरे में १५वें सर्ग के २२ श्लोक तक का ही अंश मिलता है। इसके २० सर्गों में दशरथ-राज्य-वर्णन से लेकर रावण पर राम-विजय तक की कथा वर्णित है।

(२) कुमारदास की शैली

कुमारदास वैदर्भी शैली के कवि हैं। इनकी रचना पर कालिदास का बहुत प्रभाव है। रघुवंश और कुमारसंभव की पदावलि तथा वाक्य-विन्यास का यत्र-

तत्र स्पष्ट अनुकरण मिलता है। भाषा में सरलता, सरसता, प्रवाह और प्राञ्जलता है। भावों में सहृदयता और सुकुमारता सर्वत्र व्याप्त है। वर्णनों में विविधता और व्यापकता है। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है, तथापि अनुप्रास, यमक और अर्थान्तरन्यास अधिक मात्रा में प्राप्य हैं। शब्द-सौष्ठव, छन्दों की लयात्मकता और नाद-माधुर्य के कारण इनकी शैली में मनोहरता है।

कुमारदास की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण हैं। प्रायः सरल पदावली है, किन्तु आवश्यकतानुसार दीर्घ समासयुक्त ओजगुण भी है। भाषा-सौष्ठव, नादमाधुर्य और अलंकृत पदावली के कुछ उदाहरण देखिए :—

(क) ततः सलीलं सलिलं विभिन्द-

न्नेवं वदन्नेव वराङ्गनाभिः ॥ (जा० ३-३२)

(ख) याते च रामे नयनाभिरामे

दृष्ट्वा दिशः किं फलमस्ति शून्याः ॥ (जा० ७-२४)

(ग) सारङ्गाक्षि शरस्तस्य केवलं तु खरे खरः ।

दूषणे दूषणो भद्रे न त्रिलोक्या विभौ रणे ॥ (जा० १०-८१)

ओजगुण का भी एक प्रयोग देखिए :—

उत्फुल्लोद्धूतपक्षच्युतिहिमकणिकावृष्टिरावासयष्ट्यां

दृष्ट्वा मार्तण्डधामोदयमुदितमुदोज्ज्वलभते ताण्डवार्थी ॥ ३-८०

कुमारदास की कुछ सुन्दर कल्पनाएँ द्रष्टव्य हैं। रानी के मुखचन्द्र और पूर्णचन्द्र में अन्तर देखिए—पूर्णचन्द्र में पूरा मृग है, अतः वह सकलंक है। रानी के मुखचन्द्र में मृग के केवल नेत्र हैं और वे शोभा की वृद्धि कर रहे हैं।

आसीदयं चन्द्रमसो विशेष-

स्तद्वक्त्रचन्द्रस्य च भासुरस्य ।

बिर्भाति पूर्वः सकलं कुरङ्गं

तस्यैव नेत्रद्वितयं द्वितीयः ॥ (जा० १-३७)

वसन्त ऋतु में रात्रि के छोटे होने और दिन के बढ़ जाने पर कवि की कल्पना है कि शिशिररूपी प्रिय के वियोग के कारण रात्रि क्षीण हो गई है और ग्रीष्म की कठोर गर्मी से थका हुआ दिन धीरे-धीरे चलता है।

प्रात्येकालप्रियविप्रयोग-

ग्लानेव रात्रिः क्षयमाससाव ।

जगाम मन्दं दिवसो वसन्त-

क्रूरातपश्चान्त इव क्रमेण ॥

(जा० ३-१३)

कुमारदास पशु-पक्षियों को भी वात्सल्य का केन्द्र बनाया है। मुनि बालक पेड़ से गिरे हुए पक्षि-शावकों के लिए सरकंडों की रुई का पिंजड़ा तैयार कर प्रेम-प्रदर्शन करते हैं।

महीरुहभ्रष्टविहङ्गपोतिका-

सुखोपवेशाय तपस्विसूनुभिः ।

इषीकतुलेन विधाय मार्दवं

क्वचित् समासज्जितनीडपञ्जरम् ॥

(जा० ५-८)

बालक्रीडा का एक सुन्दर वर्णन देखिए। बालक राम से माताओं ने पूछा कि राम कहाँ हैं? इस पर वे अपने हाथ से मुँह को ढँककर कहते हैं कि राम यहाँ नहीं है।

न स राम इह क्व यात इ-

त्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः ।

निजहस्तपुटावृताननो

विदधेऽलीकनिलीनमर्भकः ॥

(जा० ४-८)

शृंगार-वर्णन में स्त्रीजनोजित लज्जाशीलता तथा हाव-भावों का कितना सहज-सुन्दर चित्रण है :—

सा मदेन यदनेन लज्जया

साध्वसेन च विमिश्रचेष्टिता ।

आययौ सपदि तादृशीं दशां

या न वक्तुमपि शक्यविभ्रमा ॥

(जा० ८-१८)

सालंकार भाषा के कुछ उदाहरण ये हैं :—

(क) अन्याऽपि कन्या जितसिद्धकन्या

तादृगुणा तस्य बभूव देवी ॥

(जा० १-४२)

(ख) हरिर्हारि हितं वाक्यं जगाद गदनाशनः ॥

(जा० २-१९)

(ग) प्रभुः प्रजानामथ स प्रभाते

हरिप्रभावो हरिमाहरोह ॥

(जा० १-७०)

अन्तिम उद्धरण में 'अथ प्रजानामधिपः प्रभाते० (रघु० २-१) का अनुकरण भी उल्लेखनीय है।

कुमारदास ने यत्र-तत्र अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग किया है, जो उसके अर्थगौरव के परिचायक हैं।

(क) सज्जनेषु विहितं हि यच्छुभं
सद्य एव फलबन्धि जायते ॥ (जा० ८-४५)

सज्जनों के प्रति किया गया शुभ कर्म शीघ्र ही सुफल देने वाला होता है।

(ख) योषितां, स्वामिसंमदफलं हि मण्डनम् ॥ (जा० ८-४२)

स्त्रियों की सजावट पति को प्रसन्न करने के लिए होती है।

(ग) पतिप्रसादोन्नतयो हि योषितः ॥ (जा० ९-४)

पति की प्रसन्नता से ही स्त्रियों की उन्नति होती है।

(घ) कुलस्त्रियो भर्तृजनस्य भर्त्सने
परं हि मौनं प्रवदन्ति साधनम् ॥ (जा० ९-६)

पति के क्रुद्ध होने पर कुलवधुओं के लिए मौन धारण करना ही उत्तम साधन है।

(ङ) विनष्टचारित्रगुणा गुणैषिणः
पराभवं भर्तुरुपैति दुस्तरम् ॥ (जा० ९-७)

दुश्चरित्र स्त्री पति के द्वारा घोर निरादर प्राप्त करती है।

(च) स्त्रियो न पुंसामुदयस्य साधनं
त एव तद्धामविभूतिहेतवः ।
तड्दिव्युक्तोऽपि घनः प्रजृम्भते
विना न मेघं विलसन्ति विद्युतः ॥ (जा० ९-५)

स्त्रियाँ पुरुष की उन्नति की साधन नहीं हैं, अपितु पुरुष ही उनके कल्याण के कारण हैं। बिजली के बिना भी बादल शोभित होता है, परन्तु बादल के बिना बिजली की शोभा नहीं होती।

कुमारदास के गुणों से मुग्ध होकर राजशेखर ने यहाँ तक कह दिया है कि रघुवंश (१. ग्रन्थ, २. राम) के रहते हुए जानकीहरण (१. ग्रन्थ, २. सीता-

हरग) करने का साहस केवल दो ही व्यक्तियों में है, एक कुमारदास और दूसरा रावण ।

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।

कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥

(ग) रत्नाकर

रत्नाकर एक बहुश्रुत कवि हैं । इनकी जन्मभूमि कश्मीर थी । इनके पिता का नाम अमृतभानु था । ये काश्मीर के राजा चिप्टट जयापीड (७७६-८१३ ई०) के आश्रित कवि थे । कल्हण ने राजतरंगिणी में उल्लेख किया है कि राजा अवन्ति-वर्मा (८५५-८८४ ई०) के राज्यकाल में रत्नाकर की कीर्ति फैली ।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।

प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ ५-३६

ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नाकर ८०० ई० के लगभग चिप्टट जयापीड के आश्रित राजकवि थे और ८५५ ई० के लगभग अवन्तिवर्मा के समय में उनकी प्रसिद्धि बहुत हो गई थी । अतः उनका समय ८०० ई० से ८६० ई० के मध्य समझना चाहिए ।

रत्नाकर का प्रमुख ग्रन्थ 'हरविजय' महाकाव्य है । इसके अतिरिक्त उनके दो ग्रन्थ और हैं—वक्रोक्तिपञ्चाशिका और ध्वनिगाथापञ्जिका । हरविजय संस्कृत साहित्य का सबसे विशालकाय काव्य है । इसमें ५० सर्गों में ४३२१ श्लोक हैं । इसमें शिव से अन्धकासुर के जन्म का वर्णन है और अन्धकासुर के संहार से कथा समाप्त होती है । इसमें कथा छोटी है, अतः कथा-प्रवाह नहीं के बराबर है । बीच में अन्य प्रसंग कई-कई सर्गों में फैले हुए हैं । जैसे—११ सर्गों में अन्धकासुर के वधार्थ शिव के मन्त्रियों का परामर्श, १३ सर्गों में शिव के गणों का विहार, ७ सर्गों में शिव-दूत और अन्धकासुर का संवाद और ४ सर्गों में शिव-सेना की तैयारी वर्णित है । रत्नाकर ने बाण का समकक्ष होने का दावा किया है । उसने अपने काव्य को 'चन्द्रार्घचूडचरिताश्रयचारु' कहा है तथा भारवि एवं माघ के 'लक्ष्मी' और 'श्री' शब्द के अनुकरण पर प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'रत्न' शब्द का प्रयोग किया है ।

रत्नाकर रीति-वादी कवि हैं । कहीं भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो कहीं

क्लिष्ट बन्ध; कहीं सरलता है तो कहीं पाण्डित्य-प्रदर्शन; कहीं उपमा उत्प्रेक्षा आदि हैं तो कहीं चित्रालंकारों के नवीनतम प्रयोग; कहीं शृंगार-प्रधान है तो कहीं वीर; कहीं काव्यशास्त्र प्रधान है तो कहीं दर्शनशास्त्र; कहीं राजनीति-विमर्श है तो कहीं कामशास्त्र-समीक्षा। भारवि और माघ के अनुकरण पर चित्रालंकारों के प्रयोग में असाधारण दक्षता है। रत्नाकर ने मुरजबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, सर्वतोमद्र आदि ही नहीं दिया है, अपितु आवलिबन्ध, तूणीबन्ध, काञ्चीबन्ध, पद्मबन्ध आदि नए चित्रालंकार भी दिए हैं। भारवि और माघ ने केवल अनुष्टुप् में द्व्यक्षर पाद या श्लोक दिए हैं, परन्तु रत्नाकर ने शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता आदि बड़े छन्दों में भी इसका सफल प्रयोग किया है। रत्नाकर का दार्शनिक पाण्डित्य पद-पद पर दृष्टिगोचर होता है। कवि ने प्रयत्न किया है कि महाकाव्य के सभी लक्षणों का सर्वांगपूर्ण वर्णन हो। चित्रकला, संगीत और नृत्य का वैज्ञानिक विश्लेषण और विवेचन होने के कारण यह ग्रन्थ बहुमूल्य है।

रत्नाकर को उत्प्रेक्षा अलंकार बहुत प्रिय है। चोट पर पट्टी बाँधने की उत्प्रेक्षा अनेक स्थानों पर है। मन्थन से व्याकुल समुद्र के भी पट्टी बाँधी गई है।

आकृष्टि-वेग-विगलद्भुजगेन्द्रभोग-

निर्मोकपट्ट-परिवेष्टनयाऽम्बुराशेः ।

मन्थ-व्यथाव्युपशमार्थमिवाशु यस्य

मन्दाकिनी चिरमवेष्टत पादमूले ॥

शिवस्तुति में सांख्य के मतानुसार पुरुष का प्रतिपादन है।

प्रकृतेः पृथक् प्रकृतिशून्यतां गतः

प्रतिषिद्धवस्तुगतधर्मनिष्क्रियः ।

पुरुष त्वमेव किल पञ्चविंशकः

स्फुटचूलिकार्थवचनैर्निगद्यसे ॥

कवि ने ग्रन्थ में प्रतिज्ञा की है कि इस काव्य को पढ़ने वाला अकवि भी कवि हो जाएगा और कवि महाकवि। उनका उद्देश्य अवश्य प्रशंसनीय है।

हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां

शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे ।

अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद्

भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ॥

कवि ने अपने ग्रन्थ के विषय में गर्वोक्ति की है कि इसमें प्रसाद, माधुर्य, ओज, लालित्य, श्लेष, यमक और चित्रालंकार सभी कुछ है।

ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोहरा

विकटयमकश्लेषोद्धारप्रबन्धनिरर्गलाः ।

असदृशमतीशचित्रे मार्गे मयोद्गिरतो गिरो

न खलु नृपते चेतो वाचस्पतेरपि शङ्कते ॥

रत्नाकर की रचना से प्रसन्न होकर राजशेखर ने कहा है कि ब्रह्मा चार रत्नाकरों (समुद्रों) से सन्तुष्ट नहीं हुए, अतएव उन्होंने पाँचवां रत्नाकर (कवि) उत्पन्न किया।

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।

इतीव सत्कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपरः ॥

(घ) हरिचन्द्र

हरिचन्द्र उच्चकोटि के जैन महाकवि हैं। इनका समय अनिश्चित है। इन पर माघ (६७५ ई०) का और वाक्पतिराज (८वीं शताब्दी ई०) के गउडवहो का स्पष्ट प्रभाव है। इनकी कृति 'धर्मशर्माभ्युदय' नामक महाकाव्य है। इसकी एक पाण्डुलिपि १२३० ई० (१२८७ वि०) की प्राप्त होती है। एक जैन कवि वाग्मट (१२०० ई०) के 'नेमिनिर्वाण' पर इस महाकाव्य का प्रभाव है। अतः इनका समय ९०० ई० से ११०० ई० के मध्य मानना उचित है।

एक जैन कवि हरिचन्द्र के नाम से ही 'जीवन्धरचम्पू' भी प्रचलित है। उस पर भी माघ और वाक्पतिराज का प्रभाव है। अतः कतिपय विद्वान् दोनों लेखकों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। कुछ विद्वानों ने हरिचन्द्र और प्रयाग-प्रशस्ति के लेखक हरिषेण को एक ही माना है। परन्तु यह विचार असंगत है, क्योंकि दोनों के समय में सैकड़ों वर्षों का अन्तर है। इसी प्रकार बाण के हर्षचरित में उल्लिखित गद्य-लेखक भट्टार हरिचन्द्र से इनकी अभिन्नता मानना असंगत है।

'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य में २१ सर्ग हैं। इसमें १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ का जीवनचरित वर्णित है। जैन सम्प्रदाय में यह महाकाव्य शिशुपालवध और नैषध के तुल्य आदत है।

हरिचन्द्र की भाषा में सरसता, सरलता, माधुर्य और रमणीयता है। इसमें वैदर्भी रीति है। इसमें उच्चकोटि की कल्पनाओं के साथ ही भाव-गाम्भीर्य भी है। उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक आदि अलंकारों के प्रयोग के साथ ही रस-परिपाक सुन्दर है। अतः कवि का यह कथन सार्थक है :—

सकर्णपीयूषरसप्रवाहं रसध्वनेरध्वनि सार्थवाहः ।

श्रीधर्मशर्माभ्युदयाभिधानं महाकविः काव्यमिदं विधत्ते ॥

सन्देह अलंकार का एक सुन्दर प्रयोग देखिए :—

तारकाः क्व नु विवोदितद्युतो विद्युतोऽपि न वियत्यनम्बुदे ।

क्वाप्यनेघसि न बह्व्यो महस्तत् किमेतदिति दत्तविस्मयाः ॥ ५-२

इस पर शिशुपालवध १-२ श्लोक का प्रभाव स्पष्ट है।

संस्कृत के प्रमुख महाकवियों में उदात्तगुणों के कारण ही हरिचन्द्र की गणना हृदयहारी के रूप में की गई है। 'सदुवितकर्णामृत' का श्लोक है :—

सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते

धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।

विशुद्धोक्तिः सूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिर-

स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥

(ङ) कविराज

कविराज का मूल नाम संभवतः माधवभट्ट था। ये जयन्तपुरी के कदम्ब राजा कामदेव (११८२-९७) के आश्रित कवि थे।^१ अतः इनका समय १२वीं शताब्दी ई० का अन्तिम चरण समझना चाहिए। इनकी कविराज, सूरि, पण्डित आदि उपाधियाँ थीं। कविराज उपाधि ही इनका मुख्य नाम हो गया।

इन्होंने 'राघवपाण्डवीय' महाकाव्य लिखा है। इसमें १३ सर्ग और ६६८ श्लोक हैं। यह प्रबन्ध द्विसन्धान-काव्य है, अर्थात् प्रत्येक पद्य के दो अर्थ हैं—एक रामायण-कथा से संबद्ध और दूसरा महाभारत-कथा से संबद्ध। इस प्रकार इसमें रामायण और महाभारत दोनों की कथा श्लेष के आधार पर एक ही पद्यों

१. अस्ति कादम्बसन्तानसन्तानकनवाङ्कुरः ।

कामदेवः क्षमादेवः कामधेनुर्जनेश्वरः ॥ राघव० १-१३

में मिलती है। ऐसी रचना संस्कृत में ही संभव है, जहाँ श्लेष से दो विभिन्न अर्थ पूरे काव्य में दिए जा सकें। स्वयं कविराज का इस विषय में कथन है कि रामायण-रूपी गंगा और महाभारतरूपी सागर को मिलाकर गंगा-सागर (तीर्थ) तैयार करना भगीरथ और कविराज के लिए ही संभव है।

श्रीमद्रामायणं गङ्गा, भारतं सागरो महान् ।

तत्संयोजनकार्यज्ञौ, कविराजभगीरथौ ॥ (रा० १-३६)

कविराज ने अपनी शैली का निर्देश स्वयं समुद्र-वर्णन में श्लेषयुक्त उपमा के द्वारा उत्तम-काव्य का वर्णन करते हुए किया है कि—इसमें रस, योजना, भाव-गाम्भीर्य, प्रसाद, अर्थगौरव तथा व्यंजना-प्राधान्य होना चाहिए।

सरसं बहुयोजनाधिवासं धृतगाम्भीर्यमनुज्झितप्रसादम् ।

स महार्थमुपासदत् समुद्रं ध्वनिभाजं सुकवेरिव प्रबन्धम् ॥ ७-१०

कविराज की भाषा में प्रसाद, माधुर्य और लालित्य है, साथ ही सर्वत्र कक्रोक्ति की पुष्ट है। आश्रयदाता कामदेव की प्रशस्ति के ये श्लोक कितने सुन्दर हैं। इनमें सरसता के साथ परिसंख्या और विरोधाभास जैसे अलंकार भी हैं।

(क) कस्त्राता कामदेवः समरविजयिनां कोऽप्रणीः कामदेवः

कस्त्यागी कामदेवः सरसकविगिरां कः पदं कामदेवः ।

कः सेव्यः कामदेवः श्रितभरणविधौ कः कृती कामदेवः

प्रदानामेवमेषां प्रतिभवनमहो रामवत् कामदेवः ॥ १-२७

(ख) कामः पुरातनो येन, नूतनेनाभिभूयते ।

भार्गवो राघवेणैव रामो रामेण संगरे ॥ (रा० १-१४)

कविराज चित्रालंकारों के प्रयोग में भी पीछे नहीं हैं। सर्वतोभद्र और चक्रबन्ध के भी प्रयोग किए हैं। इनके उदाहरण क्रमशः ये हैं :—

(क)	र	मा	र	सा	सा	र	मा	र
	मा	न	ता	न	न	ता	न	मा ।
	र	ता	ग	मा	मा	ग	ता	र
	सा	न	मा	न	न	मा	न	सा ॥

(रा० १३-६१)

(ख) रम्या कल्पविलासिनी क्षितिपतेर्लाविष्यतेजस्विनी !

नित्याविष्कृतमण्डना स्थितिमती याभीष्टलोकान्तरा ।

लक्ष्मीराश्रयते स्म सा मतिमतामाद्यं सुसेव्यं मुदा

दातारं रमतानुजेन च शतानीकेन रामं तदा ॥ १३-६२

इसमें प्रथम तीन चरणों में आदि और अन्त से तृतीय वर्ण को लेने पर 'कविराजकाव्यम्' निकलता है।

श्लेष से रामायण और महाभारत-परक अर्थ के दो नमूने देखिए। पहले में रामायण के पात्र हैं और दूसरे में महाभारत के, परन्तु दोनों ही दोनों अर्थ बताते हैं।

(क) स लक्ष्मणोऽभीतसमृद्धिरुद्ध-

च्छत्रुघ्नसंपद्भरतैर्धितश्रीः ।

ज्यायान् विरेजे क्रमशोभिरामः

कौमारमासाद्य वयः कुमारः ॥

(रा० १-६७)

(ख) युधिष्ठिरं भीमधनं जयाभ्यां समं दधानं नकुलेन लक्ष्मीम् ।

समादवाप्तं सहदेवनिष्ठं ज्येष्ठं सुतं वीक्ष्य तुतोष तातः ॥ १-६८

(क) रामायण के पक्ष में—लक्ष्मण से जिसकी समृद्धि बढ़ी है, उन्नत शत्रुघ्नरूपी संपत्तियुक्त भरत से जिसकी श्री बढ़ी हुई है, ऐसे बड़े भाई राजकुमार राम क्रम से शोभायुक्त कुमारावस्था को प्राप्त कर सुशोभित हुए।

महाभारत के पक्ष में—बाण के चिह्न (लक्ष्मण) से जिसकी समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है; उन्नत शत्रुओं को नष्ट करने वाली (शत्रुघ्न) शक्ति से युक्त भरत (दृष्यन्त पुत्र) की तरह जिसकी शोभा बढ़ी हुई है, ऐसे बड़े भाई सुन्दर राजकुमार (युधिष्ठिर) कुमारावस्था को प्राप्त कर सुशोभित हुए।

इस विवेचन से कवि की यह गर्वोक्ति चरितार्थ होती है कि सुबन्धु, बाणभट्ट और कविराज के अतिरिक्त वक्रोक्ति-प्रयोग में निपुण शायद ही कोई चौथा कवि हो।

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।

वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥ (रा० १-४०)

(च) अन्य महाकवि

उक्त महाकवियों के अतिरिक्त संस्कृत में काव्यों और महाकाव्यों के रचयिताओं की एक बृहत् परम्परा है। इनमें से कुछ कवियों के नाममात्र ज्ञात हैं,

कुछ के काव्य लुप्तप्राय हैं, अज्ञात हैं या अप्रकाशित हैं। इनमें से कुछ सुप्रचलित हैं, कुछ अप्रचलित और कुछ उद्धरणों आदि में निर्दिष्ट। कुछ कवियों ने अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं, उनके नाम के आगे प्रमुख काव्यों का निर्देश है और नीचे सारणी में ग्रन्थ-संख्या दे दी गई है। बहुत से कवियों का समय अर्निणीत है, अतः आनुमानिक समय ही दिया गया है। कहीं-कहीं समय-निर्धारण में इतना मतभेद है कि सैकड़ों वर्षों का अन्तर है। सारणी में निर्दिष्ट समय संबद्ध काव्य का रचना-काल समझा जाना चाहिए।

सारणी में निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है :—(१) 'विशेष' शीर्षक में वर्ण्य-विषय या कथानक जिससे संबद्ध है, उसका नाम-निर्देश है। सर्गों की संख्या के लिए केवल अंक हैं। अ०=अध्याय। (२) 'समय' शीर्षक में ल०=लगभग, पू०=पूर्वार्ध, उ०=उत्तरार्ध, सं०=सन्धिकाल, ई०=ईसवीय सन्, ई० पू०=ईसा पूर्व, श०=शताब्दी।

(१) कवि-सामान्य

कवि	काव्य	समय	विशेष
१. पाणिनि	जाम्बवतीविजय (पातालविजय)	५वीं श० ई० पू०	कृष्ण-जाम्बवती
२. कात्यायन (वररुचि)	स्वर्गारोहण	४ थं श० ई० पू०	
३. पतञ्जलि	महानन्द-काव्य	१५० ई० पू०	महानन्द
४. हरिषेण	प्रयाग-प्रशस्ति	३४५ ई०	समुद्रगुप्त
५. प्रवरसेन	सेतुबन्ध	४थं श० ई०	रामकथा, १५ अ०
६. भर्तृमेष्ठ	हयग्रीववध	४३० ई०	
७. वत्सभट्टि	मन्दसोर-लेख	४७२ ई०	
८. वाक्पति	गुडवहो	७४० ई०	यशोवर्मन्, प्राकृत
९. शंकुक	भुवनाभ्युदय	८५० ई०	मम्म-उप्पल
१०. नीतिवर्मा	कीचक-वध	९वीं श० ई०	भीम-कीचक
११. अभिनन्द	रामचरित	९वीं पू०	रामकथा, ३६ सर्ग
१२. वासुदेव	युधिष्ठिर-विजय, त्रिपुर-दहन शौरिकथोदय	९०० ई०	युधिष्ठिर, ८ सर्ग शिव, ३ कृष्णकथा, ६

कवि	काव्य	समय	विशेष
१३. हलायुध	कविरहस्य	१०वीं उ० ई०	राजा कृष्ण
१४. अभिनन्द	कादम्बरीकथासार	९५० ई०	कादम्बरी, ८
१५. पद्मगुप्त	नवसाहसांकचरित	१००५ ई०	मोज राजा, १८
१६. लोलिम्बराज	हरिविलास	१०५० ई०	कृष्ण-कथा, ५
१७. कृष्णलीलाशुक (बिल्वमंगल)	गोविन्दाभिषेक (श्रीचिह्नकाव्य)	१२वीं श० ई०	कृष्ण-कथा, १२
१८. शंकराराध्य	वसवेश-विजय	११५० ई०	वसव-कथा ।
१९. सोमनाथ	पण्डिताराध्यचरित	११५० ई०	पण्डिताराध्य-कथा
२०. कवि कर्णपूर (कविराज)	पारिजातहरण	११८५ ई०	कृष्ण-कथा, १८
२१. चण्ड कवि	पृथ्वीराज-विजय	१२०० ई०	पृथ्वीराज, ८
२२. वस्तुपाल	नरनारायणानन्द	१२२० ई०	नर-नारायण, १६
२३. अरिसिंह	सुकृत-संकीर्तन	१२२१ ई०	वस्तुपाल, ११
२४. माघवाचार्य	यमक-भारत	१२२५ ई०	महाभारत-कथा
२५. अमरचन्द्र	बालभारत	१२६० ई०	महाभारत-कथा
२६. त्रिविक्रम	उषाहरण-काव्य	१२६० ई०	उषा-अनिरुद्ध
२७. नारायण	पारिजात-हरण	१२८० ई०	यमक-काव्य
२८. विद्या चक्रवर्ती	रुक्मिणी-कल्याण	१३०० ई०	कृष्ण-रुक्मिणी, १६
२९. कृष्णानन्द	सहृदयानन्द	१३०० ई०	नलकथा, १५
३०. अगस्त्य	बालभारत	१३०० ई०	महाभारत-कथा, २०
३१. वैकटनाथ (वेदांतदेशिक)	यादवाभ्युदय (१२० ग्रन्थ)	१३०० ई०	कृष्ण-कथा, २४
३२. नयचन्द्र	हम्मीर-काव्य	१३१० ई०	हम्मीर, १७
३३. वासुदेव	युधिष्ठिर-विजय, नलोदय (२१ काव्य)	१३२० ई०	युधिष्ठिर-कथा नल-कथा
३४. साकल्यमल्ल	उदारराघव	१३३० ई०	रामकथा, १८
३५. माघव	नरकासुर-विजय	१३८० ई०	कृष्ण-कथा, ९
३६. वामनभट्ट बाण	रघुनाथ-चरित, नलाभ्युदय	१४०० ई०	रामकथा, ३० नलकथा, ८

कवि	काव्य	समय	विशेष
३७. व्यासतीर्थ	जयतीर्थ-विजय	१४०० ई०	जयतीर्थ
३८. कृष्ण	जयतीर्थ-विजयाब्धि	"	जयतीर्थ
३९. संकर्षण	जयतीर्थ-विजय	"	जयतीर्थ
४०. श्रीनिवास	जयीन्द्रोदय	"	जयतीर्थ
४१. सुकुमार	कृष्णविलास	१४२५ ई०	कृष्णकथा, ४
४२. राजनाथ द्वितीय	सालुवाभ्युदय	१४३० ई०	साल्व नरसिंह, १३
४३. शंकर	कृष्ण-विजय	१४३० ई०	कृष्णकथा
४४. कृष्णाचार्य	भरत-चरित	१४३० ई०	दौष्यन्ति भरत, १२
४५. रामवर्मा	भारत-संग्रह	१४३० ई०	महाभारत, २२
४६. शिवसूर्य	पाण्डवाभ्युदय	१४५० ई०	महाभारत, ८
४७. सलुव नरसिंह	रामाभ्युदय	१४६० ई०	रामकथा, २४
४८. (अज्ञात)	कुशाभ्युदय	१४६० ई०	कुश-कथा
४९. चतुर्भुज	हरिचरित-काव्य	१४६३ ई०	कृष्णचरित, १३
५०. राजनाथ तृतीय	अच्युतरायाभ्युदय	१५४० ई०	अच्युतराय, २०
५१. स्वयंभूनाथ	कृष्णविलास	१५४० ई०	कृष्णकथा, १४
५२. गोविन्द दीक्षित	साहित्यसुधा	१५६० ई०	अच्युत, रघुनाथ
५३. उत्प्रेक्षावल्लभ	भिक्षाटन-काव्य	१५६० ई०	शिवकथा, ३९ अ०
५४. रुद्र कवि	राष्ट्रौढवंशमहा- काव्य	१५६६ ई०	राष्ट्रौढ वंश, २०
५५. रघुनाथ	नलाभ्युदय, पारि- जातहरण आदि ५	१६०० ई०	नल-कथा
५६. यज्ञनारायण	रघुनाथभूप-विजय	१६०० ई०	रघुनाथ राजा, १६
५७. वेंकटेश्वर	साहित्य-साम्राज्य	१६०० ई०	—
५८. राजचूडामणि दीक्षित	रुक्मिणी-कल्याण, शंकराभ्युदय	१६२० ई०	कृष्ण-रुक्मिणी, १० शंकराचार्य, ६
५९. मृत्युंजय दीक्षित	प्रद्युम्नोत्तरचरित	१६२० ई०	प्रद्युम्न-कथा, ११

कवि	काव्य	समय	विशेष
६०. चक्र कवि	जानकी-परिणय	१६५० ई०	राम-सीता विवाह, ८
६१. नीलकण्ठ	शिवलीलार्णव गंगावतरण	१६५० ई०	शिवकथा, २२ गंगा, ८
६२. वेंकटेश	रामचन्द्रोदय, रामयमकार्णव	१६५० ई०	रामकथा, ३० रामकथा,
६३. वेंकटकृष्ण यज्वा	नाटेश-विजय	१६५० ई०	शिवकथा ७
६४. श्रीनिवास	भूवराहविजय	१६६० ई०	वराहावतार, ८
६५. वरददेशिक	लक्ष्मीनारायण- चरित, रघुवर- विजय	१६८० ई०	विष्णुकथा, राम- कथा
६६. भगवन्त	मुकुन्द-विलास	१६९० ई०	कृष्णकथा, १०
६७. रामभद्र दीक्षित	पतंजलि-चरित्र	१७०० ई०	पतंजलि, ८
६८. घनश्याम	भगवत्पादचरित, वेंकटेशचरित	१७२५ ई०	—
६९. रामपाणिवाद	विष्णुविलास, राघवीय-काव्य	१७२५ ई०	विष्णुकथा, ८ रामायण, २०
७०. राम वर्मा (युवराज)	रामचरित	१८०० ई०	रामकथा, १२
७१. केरल वर्मा	विशाखराज	१८६० ई०	—
७२. परमेश्वरशिव द्विज	श्रीरामवर्ममहाराज- चरित्र	१८७० ई०	श्रीरामवर्मवंचि, ८
७३. अभिनव रामानुजाचार्य	श्रीनिवास-गुणाकर	१८७५ ई०	वेंकटेश
७४. लक्ष्मण सूरि	कृष्णलीलामृत	१८८० ई०	कृष्णकथा
७५. विधुशेखर भट्टाचार्य	उमा-परिणय, हरिश्चन्द्रचरित	१८८० ई०	

कवि	काव्य	समय	विशेष
७६. चण्डमारुता- चार्य	अलीन-राजकथा	१६०० ई०	६ सर्ग
७७. नारायण शास्त्री	सौन्दर-विजय	१६०० ई०	२४ सर्ग
७८. भद्राद्विराम शास्त्री	श्रीरामविजय	१६०० ई०	
७९. कालिदास	नलोदय-काव्य	१६०० ई०	नल-कथा
८०. शंकरलाल	रावजीराजकीर्ति- विलास, बालचरित	१६०० ई०	
८१. शिवकुमार शास्त्री	यतीन्द्र-जीवन- चरित	१६१० ई०	भास्करानन्द
८२. हेमचन्द्रराय	हैहय-विजय, पाण्डव-विजय, आदि ४	१६२० ई०	
८३. अन्नदाचरण	रामभ्युदय, महाप्रस्थान	१६३० ई०	
८४. बटुकनाथ शर्मा	सीता-स्वयंवर	१६३० ई०	
८५. गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य	श्रीरास-महाकाव्य	१६३० ई०	
८६. नागराज	सीता-स्वयंवर, भारतीय-देशभक्त- चरित, ४	१६४० ई०	रामकथा, १६
८७. भगवदाचार्य	भारत-पारिजात, पारिजातापहार, पारिजात-सौरभ	१६४० ई० १६४५ ई० १६५० ई०	गांधी-चरित, २५ भारत छोड़ो, २६ स्वाधीन भारत, २१
८८. विष्णुदत्त शुक्ल वियोगी	सौलोचनीय, गंगा- काव्य	१६५८ ई०	मुलोचना

कवि	काव्य	समय	विशेष
८६. मेघावत कविरत्न	दयानन्द-दिग्विजय	१६५० ई०	स्वामी दयानन्द
९०. रामावतार शर्मा	भारतानुवर्णन	२०वीं श० पू०	भारतवर्ष
९१. दिलीपदत्त शर्मा उपाध्याय	मुनिचरितामृतम्	"	स्वा० दयानन्द, २२ बिन्दु
९२. अखिलानन्द शर्मा	दयानन्द-दिग्विजय	"	स्वा० दयानन्द, २२
९३. गंगाघर शास्त्री तैलंग	अलिविलासि- संलाप	"	षड्दर्शन
९४. मट्ट मथुरा- नाथ शास्त्री	जयपुर-वैभव, गोविन्द-वैभव	"	जयपुर कृष्ण
९५. रघुनाथशास्त्री	चन्द्रोपालम्भवर्णन, सुरहा-वर्णन-महा- काव्यम्	"	
९६. हनुमत्प्रसाद शास्त्री	अभिनवमुद्भिज्ज- विज्ञानम्, सिद्ध- मैषज्य-मंजूषा	"	
९७. मथुराप्रसाद शास्त्री	प्रतापविजयम्, भारतविजयम्, ८	"	
९८. बदरीनाथ शर्मा मैथिल	राधा-परिणयम्	"	कृष्ण-कथा, २०
९९. गंगाप्रसाद उपाध्याय	आर्योदय	"	आर्यसमाज, २१
१००. उमापति शर्मा द्विवेदी	पारिजातहरण	"	कृष्णकथा, २२
१०१. रामसनेहीदास	जानकीचरितामृत	१६५० ई०	रामकथा, १०८ अ०
१०२. द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री	स्वराज्य-विजय	१६६० ई०	स्वतन्त्रता, १८

कवि	काव्य	समय	विशेष
१०३. डा० सत्यव्रत शास्त्री	बोधिसत्त्व-चरित, गुरुगोविन्दसिंह- महाकाव्यम्	२०वीं श० उ०	बुद्धचरित, गुरु गोविन्दसिंह
१०४. डा० रेवा- प्रसाद द्विवेदी	सीताचरितम्	१९६८ ई०	सीता-कथा, १०

(२) काश्मीरी कवि

१०५. मातृगुप्त	सेतुकाव्य	५वीं श० ई०	
१०६. अभिनन्द	कादम्बरी-कथासार	६वीं पू० ई०	कादम्बरी-कथा, ८
१०७. शिव स्वामी	कप्पणाभ्युदय	८५० ई०	राजा कप्पण, २०
१०८. क्षेमेन्द्र	रामायण-मंजरी, भारत-मंजरी आदि	१९५० ई०	रामायण, महा- भारत
१०९. बिल्हण	विक्रमांकदेवचरित	१०८५ ई०	१८ सर्ग
११०. मंख (मंखक)	श्रीकण्ठचरित	११४० ई०	शिवकथा, २५
१११. कल्हण	राजतरंगिणी	११५० ई०	काश्मीरी राजा, ८ अ०
११२. जल्हण	सोमपाल-विजय	११५० ई०	सोमपाल,
११३. जयद्रथ	हरचरित-चिन्ता- मणि	१२०० ई०	शिवकथा, ३२ प्रकाश १

(३) बौद्ध महाकवि

११४. मातृचेट	वर्णाहंवर्णस्तोत्र, अर्धशतक	४थं श०	
११५. आर्य शूर	पारमिता-समास, जातकमाला	४०० ई०	
११६. बुद्धघोषाचार्य	पद्यचूडामणि	५वीं श०	१० सर्ग

(४) जैन महाकवि

११७. धनेश्वर सूरि	शत्रुंजय-महाकाव्य	६१० ई०	१४ सर्ग
११८. जटासिंहनन्दि	वरांगचरित	७०० ई०	वरांग-कथा

कवि	काव्य	समय	विशेष
११६. गुणभद्राचार्य	जिनदत्त-चरित्र	८५५ ई०	जिनदत्त-कथा, ६
१२०. वीरनन्दि	चन्द्रप्रभ-चरित	६८० ई०	चन्द्रप्रभ, १८
१२१. कनकसेन वादिराज	यशोधर-चरित	६५० ई०	यशोधर, ४
१२२. महासेन	प्रद्युम्न-चरित	१०१० ई०	प्रद्युम्न, १४
१२३. वादीभर्षिह	क्षत्रचूडामणि	१०२५ ई०	जीवधर, ११ लंभक
१२४. वादिराज सूरि	पार्श्वनाथ-चरित	१०२५ ई०	पार्श्वनाथ
१२५. वाग्भट	नेमिनिर्वाण	११४० ई०	नेमिनाथ, १५
१२६. हेमचन्द्र	त्रिषष्टिशलाका- पुरुष-चरित, कुमारपाल-चरित	११५० ई०	६३ जैनमुनि, १० पर्व, कुमारपाल, सं० प्राकृत, २८
१२७. मुनिरत्न सूरि	अमामस्वामिचरित, ११६५ मुनिसुव्रतचरित		अमाम स्वामी, ३० जैनमुनि, २३
१२८. माणिक्यचन्द्र	पार्श्वनाथ-चरित शान्तिनाथ-चरित	१२१७	पार्श्वनाथ शान्तिनाथ
१२९. अभयदेव	जयन्त-विजय	१२२१ ई०	जयन्त, १६
१३०. उदयप्रभसूरि	धर्माभ्युदय	१२४० ई०	शत्रुजयतीर्थयात्रा
१३१. देवप्रभसूरि	पाण्डव-चरित	१२५० ई०	महाभारत-कथा, १८
१३२. अर्हददास	सुव्रत-काव्य	१२५० ई०	सुव्रतमुनि
१३३. लक्ष्मीतिलक	प्रत्येक बुद्धचरित	१२५४ ई०	जैन मुनिकथा, १७
१३४. अमरचन्द्र	पद्मानन्द-काव्य	१२६० ई०	२४ तीर्थकर
१३५. धर्मकुमार	शालिभद्र-चरित	१२७७ ई०	शालिभद्र, ७
१३६. वस्तुपाल	नरनारायणनन्द	१३वीं श० उ०	—
१३७. बालचन्द्र सूरि	वसन्त-विलास	,,	१४ सर्ग
१३८. जिनप्रभ	पार्श्वनाथस्तव द्वयाश्रय-महाकाव्य	१३०० ई०	पार्श्वनाथ, श्रेणिक, सं० प्राकृत
१३९. वीर नन्दी	चन्द्रप्रभचरित	१३०० ई०	चन्द्रप्रभ
१४०. कीर्तिराज	नेमिनाथ-महाकाव्य	१४१० ई०	नेमिनाथ, १२

कवि	काव्य	समय	विशेष
१४१. चरित्रमुन्दर	महीपाल-चरित्र	१५वीं श०	महीपाल, १४
१४२. देवविमलगणि	हीर-सौभाग्य	१७वीं श०	
१४३. भूरामल ब्रह्मचारी	जयोदय-महाकाव्य	२०वीं श० पू०	जयकुमार, २२

(५) अनेक-सन्धान (श्लेषमूलक) काव्य-कार

१४४. भूमक	रावणार्जुनीय	७वीं श०	रावण-सहस्रार्जुन, २७
१४५. विद्यामाधव	पार्वतीरुक्मिणीय	११२५ ई०	पार्वती-रुक्मिणी, ६
१४६. धनञ्जय	राघव-पाण्डवीय	११३० ई०	रामा०-महा०, १८
१४७. संध्याकरनंदी	रामपाल-चरित	११६० ई०	राम-रामपाल, ४ परि०
१४८. रामचन्द्र	रसिकरंजन	१५४२ ई०	शृंगार-वैराग्य
१४९. चिदम्बर	राघव-पाण्डव- यादवीय	१६०० ई०	राम-कृष्ण-पाण्डव
१५०. राजचूडामणि दीक्षित	रत्नखेट-विजय	१६२० ई०	राम-कृष्ण-पाण्डव
१५१. वेंकटाध्वरी	यादवराघवीय	१६५० ई०	राम-कृष्ण, ३० श्लो०
१५२. मेघविजयगणि	सप्तसन्धान-महा- काव्य	१६७१ ई०	कृष्ण-बलदेव तथा ५ तीर्थंकर । ७ अर्थ । ६ सर्ग
१५३. हरदत्त सूरि	राघव-नैषधीय	१७२५ ई०	राम-नल । २
१५४. धनश्याम	आबोधकर	१८वीं श०	कृष्ण-नल- हरिश्चन्द्र

(६) स्त्री-कवि

१५५. विजयांका (विजया, विज्जिका)	स्फुट पद्य	८५० ई०
---------------------------------------	------------	--------

कवि	काव्य	समय	विशेष
१५६. गंगादेवी	मधुरा-विजय (वीरकम्पराय- चरित)	१३८० ई०	वीरकम्पराय
१५७. अमिराम कामाक्षी	अभिनवरामाम्युदय	१४२५ ई०	रामकथा, २४
१५८. रामसद्राम्बा	रघुनाथाम्युदय	१५६० ई०	रघुनाथ, १२
१५९. मधुरवाणी	रामकथा	१५६० ई०	रामकथा, १४
१६०. पंडिता क्षमा- राव	सत्याग्रह-गीता आदि ४	१६४० ई०	महात्मा गांधी

इन कवयित्रियों के केवल स्फुट पद्य मिलते हैं :—

सुमद्रा, फल्गुहस्तिनी, मोरिका, इन्दुलेखा, मारुला, विकटनितम्बा, शीला-
मट्टारिका, देवकुमारिका, तिरुमलाम्बा ।

६. नाटक

(१) नाटक का महत्त्व (काव्येषु नाटकं रम्यम्)

सर्वप्रथम भरत मुनि (द्वितीय शताब्दी ई० पू०) ने अपने आकर-ग्रन्थ नाट्य-
शास्त्र में ३६ अध्यायों में नाट्य-शास्त्र का प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत
किया है। नाट्य-शास्त्र का महत्त्व बताते हुए उनका कथन है कि विश्व का ऐसा
कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग (प्रयोग) और कर्म नहीं है, जो इसमें न
आ जाता हो।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥ (ना० १-११६)

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है :—

(१) दृश्य, (२) श्रव्य ।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।

दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपान्तु रूपकम् ॥

(सा० द० ६-१)

दृश्यकाव्य में रूपकों (नाटकों) तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है। ये दर्शकों के द्वारा देखे जाते हैं। नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द रूपक है, क्योंकि अभिनय की अवस्था में अभिनेता अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है। रूपक के ही १० भेदों में से एक भेद नाटक है। रूपक के १० भेद हैं और उपरूपक के १८। दस रूपकों के नाम हैं:—(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी, (१०) प्रहसन।

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

ईहामृगाङ्गवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥ (सा० द० ६-३)

नाटकों में श्रव्यकाव्यों की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य अधिक जनप्रिय होता है। इसीलिए कहा गया है—काव्येषु नाटकं रम्यम् ।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र (१-१०७ मे ११५) में नाटक के महत्त्व का विस्तार से प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि—इसमें केवल धर्म और देवों की ही चर्चा नहीं होती है, अपितु विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की सभी घटनाओं का चित्रण रहता है, जैसे—धर्म, मनोरंजन, हास्य, युद्ध, शृंगार, श्रम आदि। प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त करता है। नाटक के द्वारा दर्शकों में उत्साह की वृद्धि होती है। अपढ़, सुपढ़ हो जाते हैं और सुपढ़ विशेषज्ञ हो जाते हैं। यह धनियों के लिए मनोरंजन, दुःखितों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आश्रय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। इसमें विविध जीवन-चर्याओं का निरूपण रहता है। यह बड़े से लेकर छोटे तक सभी के लिए हितोपदेशक, मनोरंजक और सुखप्रद है। इससे सभी का दुःख दूर हो जाता है, चाहे वह दुःखित हो, थका हो, विकल हो या साधु हो। इससे मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं—धर्म, यश, स्वास्थ्य-लाभ, ज्ञान-वृद्धि और आचार-लाभ।

अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि ॥ (नाट्य १-११०)

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखादितस्य च ।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम् ॥

१-१११

लोकवृत्तानुकरणं नाट्येतन्मया कृतम् ।	१-११२
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।	
विश्रान्तिजननं काले, नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥	१-११४
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ।	
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥	१-११५

(२) संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति

(क) भारतीय परम्परा—भारतीय नाट्य-शास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसे मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सार भाग लेकर पंचम वेद 'नाट्यवेद' की रचना की। उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥ (ना० १-१२)

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदानुस्मरन् ।

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम् ॥ १-१६

जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ १-१७

(ख) ऋक्संवाद-सूक्तवाद—इस वाद के प्रवर्तकों में अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् हैं। इनमें प्रो० मैक्समूलर (Max Müller), प्रो० सिल्वा लेवी (Sylvan Levi), प्रो० फॉन श्रोएदर (Von Schroeder) और डा० हर्टल (Hertel) मुख्य हैं। इनका विचार भारतीय परम्परा से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इनका कथन है कि ऋग्वेद में कई संवाद-सूक्त हैं, जिनके आधार पर संस्कृत-नाटकों की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में प्राप्त संवाद-सूक्तों की अभिनयात्मक व्याख्या की जा सकती है। जैसे—इन्द्र-मरुत्-संवाद (ऋ० १-१६५, १-१७०), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (ऋ० १-१७९), विश्वामित्र-नदी-संवाद (ऋ० ३-३३), वशिष्ठ-सुदास-संवाद (ऋ० ७-८३), यम-यमी-संवाद (ऋ० १०-१०), इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद (ऋ० १०-८६), पुरुरवा-उर्वशी-संवाद (ऋ० १०-

६५), सरमा-पणि-संवाद (ऋ० १०-१०८) । प्रो० ओल्डेनबर्ग (Oldenberg), विन्डिश (Windisch) और पिशेल (Pischel) का भी मत है कि ये संवादात्मक सूक्त नाटकीय थे ।

(ग) मृतात्म-श्राद्धवाद—प्रो० रिजवे (Ridgeway) ने यह मत प्रस्तुत किया है कि विश्व की सभी संस्कृतियों में मृतात्माओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की परम्परा है । मृतात्माओं को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न अभिनयात्मक आयोजन आज भी प्रचलित हैं । इनको ही नाटकों का पूर्वरूप मानना चाहिए ।

(घ) पर्ववाद—पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत भी प्रस्तुत किया है कि जिस प्रकार यूरोप में मे-पोल (May-Pole) का पर्व अभिनय-प्रधान ढंग से मनाया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समय में इन्द्र-ध्वज उत्सव पर अभिनयादि होते थे । बाद में भी पर्वों पर अभिनयादि-युक्त आयोजन होने लगे । जैसे—वसन्तपंचमी और होली आदि के आयोजन । इस प्रकार के आयोजनों से ही नाटकों का उद्भव हुआ ।

(ङ) रासलीला-वाद—एक मत यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कृष्ण की रासलीला तथा कृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में आयोजित रासलीलालयों को नाटकों का आदि रूप मानना चाहिए ।

(च) स्वांगवाद—प्रो० हिलब्रान्ड (Hillebrandt) और स्टेन कोनो (Sten Konow) का मत है कि लोकप्रिय स्वांगों से नाटकों की उत्पत्ति हुई है । उनका कथन है कि स्वांगों के साथ रामायण और महाभारत की कथाओं ने मिलकर नाटकों को जन्म दिया है ।

(छ) पुत्तलिका-नृत्यवाद—डा० पिशेल (Pischel) ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि प्राचीन समय में कठपुतली का नाच प्रचलित था । उसका ही विकसित रूप नाटक हुआ । संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार (घागा पकड़ने वाला) शब्द इस कथन की पुष्टि करता है ।

(ज) छाया-नाटकवाद—प्रो० ल्यूडर्स (Lüders) और स्टेन कोनो ने यह मत प्रस्तुत किया है कि छाया-नाटकों में जो छाया-चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है, उससे नाटकों की उत्पत्ति हुई ।

(झ) यूनानी प्रभाववाद—प्रो० वेबर (Weber) और प्रो० विन्डिश

ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भारतीय नाटकों का जन्म यूनानी प्रभाव से हुआ है। संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द इसका आधार है।

विविध वादों की समीक्षा—संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के विषय में जो वाद प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें दो तथ्य विशेष अवश्य हैं :—१. नाटकीय तत्त्वों का होना, २. नाटकों का प्रारम्भिक रूप। नाटकीय तत्त्वों के प्राचीनतम रूप पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में नाटक के प्रमुख सभी तत्त्व मिल जाते हैं। अतएव भरत मुनि ने नाट्यवेद को 'चतुर्वेदाङ्गसंभवम्' कहा है। नाटक के लिए मुख्यतः ४ तत्त्वों की आवश्यकता है :—१. पाठ्य (कथावस्तु), २. संगीत, ३. अभिनय, ४. रस। ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों में कथा-वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सामवेद में संगीत-तत्त्व प्रमुख है। यजुर्वेद के कर्मकाण्ड में वाचिक और हस्तादि-संचालन के अभिनय पूर्णतया प्राप्य हैं। अथर्ववेद में कामः (६-२, १६-५२), कामस्य इषुः (३-२५), कामिनीमनोऽभिमुखीकरणम् (२-३०), सपत्नीनाशनम् (६-३५), केवलः पतिः (६-३८) आदि सूक्तों में शृंगार रस प्रधान है तथा शत्रुनाशनम् (२-१२, १८-३४; ३-६, ४-३), सेना-निरीक्षणम् (४-३१), शत्रु-सेना-संमोहनम् (३-१), सेना-संयोजनम् (४-३२), संग्रामजयः (६-६६) आदि सूक्तों में वीर रस प्रमुख है। भारतीय नाटकों में शृंगार और वीर रस मुख्य हैं। इन रसों के लिए अथर्ववेद उत्तम आधार है। अथर्ववेद में करुण आदि रसों का भी वर्णन है। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक चारों तत्त्व वेदों में उपलब्ध हैं। अतः भरतमुनि का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि भारतीय नाट्यशास्त्र 'चतुर्वेदाङ्गसंभवम्' है। दूसरी विचारणीय बात है कि भारतीय नाटकों का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ? इसका प्रारम्भिक रूप हमें यज्ञादि के अवसरों पर धार्मिक अभिनयों में मिलता है। ऋग्वेद के संवाद-सूक्त इस दिशा में प्रथम अभिनयात्मक प्रयोग हैं। ये प्रयोग यज्ञों तक ही सीमित न रहकर धार्मिक क्रिया-कलाप के अंग बन गए। प्रारम्भ में धार्मिक अभिनयों की लोक-प्रियता के कारण इन्हें पर्व-उत्सव आदि का भी अंग बनाया गया। इस क्रमिक विकास की प्रक्रिया में इन्द्र-ध्वज महोत्सव आदि को एक कड़ी समझना चाहिए। यही प्रक्रिया आगे बढ़ने पर पर्वों, उत्सवों, रासलीला आदि में प्रयुक्त होने के कारण अधिक लोकप्रिय होती गई। इस प्रकार विवेचन से ज्ञात होता है कि पर्व-वाद और रासलीलावाद नाटक के उद्भव के मूल कारण न होकर विकास की प्रक्रिया के अंग हैं। अतः इसी रूप में इनकी उपयोगिता स्वीकार्य है।

मैक्समूलर आदि ने ऋक्-संवाद-सूक्तवाद की जो स्थापना की है, उसमें संवाद-पक्ष का पूर्णतया तथा अभिनय-पक्ष का आंशिक समावेश हो जाता है। भरतमुनि ने नाट्य में संगीत, अभिनय और रस की जो आवश्यकता बताई है, वह इसमें न्यून है।

मृतात्म-श्राद्धवाद भारतीय नाटकों की उत्पत्ति के लिए सर्वथा अग्राह्य है। यूनानी नाटक प्रायः दुःखान्त होते हैं, उनके लिए इस मत की उपयोगिता मानी जा सकती है। ऊरुभग जैसे नाटक, जो तथाकथित दुःखान्त नाटक हैं, वे भी वस्तुतः पापी का नाश होने के कारण मूलतः सुखान्त ही हैं।

स्वांगवाद और पुत्तलिका-नृत्यवाद को भारतीय नाटकों की उत्पत्ति का मूल कारण नहीं माना जा सकता है। वस्तुतः ये दोनों शिष्ट समाज में प्रचलित परिष्कृत नाटकों के विकृत रूप हैं। इन दोनों प्रकार के नाटक अनुकरणमूलक हैं और अर्धशिक्षित तथा अशिक्षित समाज में परिष्कृत नाटकों के विकृत रूप हैं।

छायानाटक-वाद की कल्पना वस्तुतः अप्रुष्ट आधारों पर है। डा० कीथ ने भी इस मत के साक्ष्यों को सर्वथा अविश्वसनीय माना है।^१

यूनानी प्रभाववाद को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। कुछ अंश में इसका कारण राजनीतिक भी है। डा० कीथ ने इस विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया है।^२ वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारतीय नाटकों पर यूनानी-प्रभाव मानना असंगत है। इस विषय में कुछ मुख्य बातें ये हैं :— (१) संस्कृत नाटकों में पदों के लिए 'यवनिका' शब्द प्रयुक्त होता है। इसमें 'यवन' शब्द के कारण यूनानी प्रभाव का भ्रम चल पड़ा। वस्तुतः यवन (Ionia) देश से आए हुए वस्त्र से निर्मित होने के कारण पदों का यवनिका नाम पड़ा है। इसके आधार पर यूनानी प्रभाव मानना निराधार है। (२) संस्कृत नाटकों का विभाजन कार्य के विश्लेषण पर आश्रित है। ऐसा यूनानी नाटकों में नहीं है। (३) भारतीय नाटक सुखान्त हैं, दुःखान्त सर्वथा नहीं। इसके विपरीत यूनानी नाटक प्रायः दुःखान्त हैं। (४) संस्कृत-नाटकों में अन्वितित्रय (संकलन-त्रय (Unity of time, place and action) का सर्वथा अभाव है। यूनानी नाटकों में इतका पालन अनिवार्य है। (५) अभिनेताओं की संख्या की

१. देखो—कीथ—संस्कृत नाटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ४६-४९)।

२. देखो—वही, पृष्ठ ४९ से ६२।

दृष्टि से भारतीय और यूनानी नाटकों में बहुत वैषम्य है। (६) भारतीय नाटकों में अंगरक्षक के रूप में 'यवनी' स्त्रियों का शाकुन्तल आदि में उल्लेख है। इसके आधार पर यूनानी प्रभाव मानना असंगत है। इससे केवल यह सिद्ध हो सकता है कि भारतीय राजाओं के दरबार में अंगरक्षक के रूप में 'यवनी' स्त्रियाँ रहती थीं, क्योंकि ये अधिक निर्भीक और कार्यकुशल होती थीं। (७) रंगमंच की दृष्टि से भारतीय और यूनानी नाट्यशालाओं में अन्तर है। 'विन्डिश (Windisch) ने यह स्वीकार किया है कि नाट्यशालाओं के संबन्ध में तुलना की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि भारतीय नाट्यशाला स्थायी नहीं होती थी'।

(३) संस्कृत-नाटकों का विकास

पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। प्रो० मैक्समूलर, पिशेल, लेबी, मैकडानल और कीथ आदि ने इस मन्तव्य को स्थिर किया है।

रामायण और महाभारत-काल—रामायण और महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय नाटक प्रचलित हो चुके थे और नाटकों के विकास का क्रम प्रगति पर था। नाटकों में रस-परिपाक पर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। शैलूष और उनकी स्त्रियों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भी थीं। हास्य-रस वाले नाटक भी खेले जाते थे। वाल्मीकि-रामायण के निम्न-लिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है।

(क) रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।

वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ (रामा० १-४-६)

(ख) नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः ॥ (रामा० २-६७-१५)

(ग) वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे ।

नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ॥ (रामा० २-६६-४)

(घ) शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति० । (रा० २-८३-१५)

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

(क) इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सुतः पौराणिकस्तथा । (महा० १-५१-१५)

१. वही, पृष्ठ ६० ।

(ख) नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः । (महा० २-१२-३६)

(ग) आनतश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः । (महा० २-१५-१३)

महाभारत के विराट् पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत के हरिवंश पर्व (६१ से ६७ अध्याय) में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नामक नाटक खेले गए थे।

पाणिनि और पतञ्जलि—पाणिनि का समय ईसा से ४थं शताब्दी पूर्व माना जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। एक नाट्यशास्त्र के रचयिता शिलालिन् थे और दूसरे के कृशाश्व।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः । (अष्टा० ४-३-११०)

कर्मन्दकृशाश्वदिनिः । (अष्टा० ४-३-१११)

इससे ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की थी, अपितु जाम्बवतीजय (पाताल-विजय) नामक नाटक भी लिखा था। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है :—

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः ।

आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम् ॥

महर्षि पतञ्जलि (१५० ई० पू०) ने अपने महाभाष्य (अष्टा० ३-२-१११) में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतञ्जलि का कथन है :—

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति ।

(महाभाष्य ३-२-१११)

भरतमुनि—भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाट्य-संबन्धी 'नाट्यशास्त्र' नामक श्लोकबद्ध विशाल ग्रन्थ ३६ अध्यायों में है। लगभग ७०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाट्य-संबन्धी सभी विषयों का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसका समय २०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई० पू० तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्य-कला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

वात्स्यायन—इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों, जैनग्रन्थों और वात्स्यायन के काम-सूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी

ई०) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक दिखावें और दूसरे दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा करें।

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। (कामसूत्र १-४-२८ से ३१)

कुशीलव शब्द से भी ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम अभिनय का कार्य राम के पुत्र कुश और लव ने किया था। अतः उनके अनुकरण और उनकी स्मृति में अभिनेता के लिए कुशीलव नाम चल पड़ा।

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएँ महाकवि भास की प्राप्त होती हैं। तत्पश्चात् शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक हैं। इनका विवरण आगे दिया गया है।

(ग) संस्कृत-नाटकों की विशेषताएँ

संस्कृत नाटकों के अध्ययन से तथा उनकी यूनानी नाटकों से तुलना करने से कतिपय विशेषताएँ ज्ञात होती हैं। ये विशेषताएँ मुख्यतया कथा, कथावस्तु-संयोजन (Plot-Construction), आकार, पात्र-संख्या, रस-परिपाक, उद्देश्य, नाट्यशाला-निर्माण आदि की दृष्टि से हैं। विशेष उल्लेखनीय विशेषताएँ ये हैं :—

(१) सुखान्तता—भारतीय नाटकों में यद्यपि मध्य में सुख और दुःख दोनों का सम्मिश्रण है, तथापि सभी नाटक सुखान्त ही होते हैं। ऊरुभंग आदि को भी दुःखान्त न समझकर सुखान्त ही समझना चाहिए, क्योंकि भारतीय परम्परा के अनुसार पापी का वध भी सुखकर होता है। इसलिए ऐसे नाटक सुखान्त ही समझने चाहिए।

(२) रमणीय कल्पना—भारतीय नाटक स्वरूपतः रमणीय-कल्पना-प्रधान होते हैं। इनमें शृंगार और वीर-रस के रोचक उपाख्यान मुख्यतः होते हैं।

(३) कथावस्तु प्रचलित, ऐतिहासिक या कथा-ग्रन्थों पर आधारित—संस्कृत के नाटक मुख्यतया रामायण, महाभारत, पुराण, बृहत्कथा आदि के कथानकों पर आश्रित हैं।

(४) अन्वितित्रय का अभाव—यूनानी नाटकों में काल, स्थान तथा गति

की अन्विति पर बहुत बल दिया गया है, परन्तु संस्कृत नाटकों में इस अन्वितित्रय की सर्वथा उपेक्षा की गई है।

(५) सहगान (Chorus) का अभाव—यूनानी नाटकों में सहगान का बहुत प्रचलन है, परन्तु संस्कृत नाटकों में इसका अत्यन्त अभाव है।

(६) रूपक और उपरूपकों के भेद—संस्कृत नाट्यशास्त्र में रूपकों के १० भेद तथा उपरूपकों के १८ भेद माने गए हैं। इनके स्वरूप, अंक-संख्या, पात्र आदि के विषय में गंभीर विवेचन किया गया है। अतएव भारतीय नाट्य-शास्त्र अत्यन्त जटिल हो गया है। इस प्रकार का विभाजन और विवेचन आदि यूनानी नाटकों में नहीं है।

(७) गद्य-पद्य का मिश्रण—संस्कृत नाटकों में कथोपकथन के लिए गद्य का प्रयोग किया जाता है। रोचकता, प्रकृति-वर्णन, नीति-शिक्षा, सुमाषित आदि के लिए पद्यों का प्रयोग किया जाता है, इस प्रकार गद्य और पद्य का समन्वय रहता है।

(८) संस्कृत के साथ प्राकृतों का प्रयोग—संस्कृत-नाटकों में प्रथम श्रेणी तथा मध्यम श्रेणी के पुरुष पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। सभी स्त्री-पात्र और अधम श्रेणी के पात्र प्राकृत में बोलते हैं। प्राकृत-पद्यों की रचना मुख्यतया महाराष्ट्री प्राकृत में होती थी। प्राकृतों में विशेष रूप से महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी का प्रयोग हुआ है। सभी कोटि के पात्र संस्कृत समझते थे, किन्तु अपने सामाजिक स्तर के अनुसार संस्कृत या प्राकृत बोलते थे।

(९) कथा-प्रवाह (Action) पर बल नहीं—यूनानी नाटकों के तुल्य संस्कृत नाटकों में कथा-प्रवाह की तीव्रता नहीं है और गति पर इतना बल भी नहीं दिया गया है।

(१०) नाटकों की रचना-विधि—संस्कृत-नाटकों की रचना की एक विशेष विधि है। पूरा नाटक कई अंकों में विभक्त होता है। नान्दी-पाठ से प्रारम्भ, सूत्रधार द्वारा स्थापना, स्थापना या प्रस्तावना में कवि-परिचय, संक्षेप या कथानक को जोड़ने के लिए विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग, भरत-वाक्य से समाप्ति आदि संस्कृत-नाटकों की रचना-विधि की विशेषताएँ हैं।

(११) विदूषक की कल्पना—यूनानी नाटकों में Clown या Fool नाम का पात्र केवल मनोरंजन या हास्य के लिए होता है, परन्तु संस्कृत-नाटकों में

विदूषक हास्य के साथ ही कथानक की प्रगति में सहायक होता है और यथावसर नायक को परामर्श आदि देता है।

(१२) नाटकों में अभिनय-संकेत—संस्कृत-नाटकों में अभिनय-सम्बन्धी संकेत यथास्थान सूक्ष्मता के साथ दिए जाते हैं। जैसे—प्रकाशम्, स्वगतम्, अपवारितम्, जनान्तिकम्, आकाशे, सरोषम्, विहस्य, ससंभ्रमम्। शाकुन्तल अंक ३ में—इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन, ऐसे संकेतों से अभिनेता को अभिनय में पूरी सुविधा होती है।

(१३) अर्थ-प्रकृतियाँ आदि—संस्कृत-नाटकों में ५ अर्थ-प्रकृतियों, ५ अवस्थाओं और ५ सन्धियों का प्रयोग होता है।

(१४) नाटक का आकार—यूनानी नाटकों की अपेक्षा संस्कृत-नाटकों का रूप बहुत बड़ा होता है। यह इस उदाहरण से जाना जा सकता है कि शूद्रक का मृच्छकटिक आकार में ऐस्काइलस (Aeschylus) के प्रत्येक नाटक से तिगुना है।

(१५) पात्र-संख्या अनियत—संस्कृत-नाटकों में पात्रों की संख्या का निर्धारण नहीं है। लौकिक, दिव्य और अदिव्य सभी प्रकार के पात्र होते हैं। यूनानी नाटकों में पात्रों की संख्या बहुत कम होती है।

(१६) पात्र समूह-विशेष के प्रतिनिधि (Typical).—संस्कृत-नाटक व्यक्ति-विशेष (Individual) के प्रतिनिधि न होकर समूह-विशेष (Type) का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे—शकुन्तला स्त्री-विशेष का प्रतिनिधित्व न करके साध्वी-स्त्री-समूह का प्रतिनिधित्व करती है।

(१७) रस-विशेष का परिपाक—संस्कृत-नाटकों में अंगी रूप से शृंगार, वीर या करुण रस का परिपाक लक्ष्य होता है। यूनानी नाटकों में इसका अभाव है।

(१८) अनुचित प्रदर्शनों पर रोक—संस्कृत-नाटकों में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि अनुचित, अशिष्ट, असभ्य और अशुभ दृश्य रंगमंच पर न दिखाए जायें। जैसे—चुम्बन, आलिंगन, संभोग, युद्ध, मृत्यु, भोजन, शापदान आदि।

(१९) लक्ष्य-शान्ति और अनौद्धत्य—संस्कृत-नाटकों का लक्ष्य है—शान्ति और अनुद्धतता की स्थापना तथा सुख-समृद्धि की कामना।

(२०) लोक-मनोरंजन—संस्कृत-नाटकों का उद्देश्य है—लोक-मनोरंजन । अतः नाटक सुखान्त ही हों, इस बात पर बल दिया गया है ।

(२१) आदर्श-प्रधान एवं नैतिक—संस्कृत-नाटकों का उद्देश्य है—मनोरंजन के साथ ही स्वस्थ नैतिकता एवं उच्च आदर्शों का जन-मानस में संचार करना ।

(२२) नाट्यशाला का आकार—संस्कृत-नाटकों के प्रदर्शन के लिए जिन नाट्यशालाओं का प्रयोग होता था, वे वर्गाकार, आयताकार या त्रिभुजाकार होती थीं ।

(२३) प्रदर्शन के अवसर—संस्कृत-नाटकों के प्रदर्शन विशेष अवसर पर ही किए जाते थे । जैसे—पर्व, उत्सव, पुत्र-जन्म, राजतिलक, विवाह, गृहप्रवेश आदि ।

(२४) प्रकृति-वर्णन और प्रकृति-तादात्म्य—संस्कृत-नाटकों में प्रकृति-वर्णन को महत्त्व दिया गया है । साथ ही नाटककार प्रकृति के साथ तादात्म्य का सुन्दर निरूपण करते हैं ।

(२५) एकांकी नाटकों का प्रचलन—भास आदि के नाटकों से ज्ञात होता है कि संस्कृत में एकांकी नाटकों का पर्याप्त प्रचलन था । भास के नाटकों में ५ एकांकी नाटक हैं ।

६ (क) महाकवि भास

(१) जीवनवृत्त और कृतित्व

जीवनवृत्त—महाकवि भास के जीवन-चरित के विषय में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है । महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में (प्रथितयशसां भाससौमिल्ल०) के द्वारा भास को सादर स्मरण किया है, अतः वह कालिदास से पूर्ववर्ती था एवं प्रसिद्ध नाटककार था, इतना स्पष्टतया ज्ञात होता है । भास के नाटकों में जीवन-सम्बन्धी कोई विवरण नहीं मिलता है । भास उच्चकोटि का विद्वान् था । उसने वेद, शास्त्र, स्मृति, काव्य-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, दर्शन, पुराण, रामायण और महाभारत आदि का गंभीर अध्ययन किया था । वह नाट्यकला में इतना विख्यात था कि कालिदास को भी उसे सफल नाटककार के रूप में मान्यता देनी पड़ी ।

कृतित्व—भास के नाम से संप्रति १३ नाटक उपलब्ध होते हैं। सन् १९०६ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने ट्रावनकोर राज्य से इन्हें प्राप्त किया था। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय उनको ही है।

भास के १३ नाटक

भास के नाटकों को कथा-स्रोत की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) उदयन-कथा-मूलक—(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, (२) स्वप्न-वासवदत्तम् ।

(ख) महाभारत-मूलक—(३) ऊरुभंग, (४) दूतवाक्य, (५) पञ्चरात्र, (६) बालचरित, (७) दूतघटोत्कच, (८) कर्णभार, (९) मध्यमव्यायोग ।

(ग) रामायण-मूलक—(१०) प्रतिमानाटक, (११) अभिषेकनाटक ।

(घ) कल्पना-मूलक—(१२) अविमारक, (१३) चारुदत्त ।

(२) नाटकों की संक्षिप्त कथा

(१) प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण—इस नाटक में चार अंक हैं। उदयन के वासवदत्ता से प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण के द्वारा उदयन को प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने और उसकी नीतिमत्ता का वर्णन है।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्—इस नाटक में ६ अंक हैं। मन्त्री यौगन्धरायण का 'वासवदत्ता अग्नि में जलकर मर गई' इस प्रवाद को फैला कर उदयन का पद्मावती से विवाह कराना तथा उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त कराने का वर्णन है।

(३) ऊरुभङ्ग—यह एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसको मारने का वर्णन है।

(४) दूत-वाक्य—यह भी एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाना और विफल-मनोरथ लौटने का वर्णन है।

(५) पञ्चरात्र—इस नाटक में तीन अंक हैं। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि

यदि पाँच रात्रि के अन्दर पाण्डव मिल जाएँगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव मिलते हैं और आधा राज्य प्राप्त करते हैं।

(६) बालचरित—इस नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की कथा वर्णित है।

(७) दूत-घटोत्कच—यह एकांकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजना और दुर्योधन द्वारा उसका अपमान। दुर्योधन कहता है कि—‘मैं इसका उत्तर बाणों से दूँगा’।

(८) कर्णभार—यह एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्र को कवच और कुंडल दान में देने का वर्णन है।

(९) मध्यमव्यायोग—यह व्यायोग नामक एकांकी नाटक है। मध्यम पाण्डव भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण-पुत्र को बचाने का वर्णन है। भीम अपने पुत्र घटोत्कच को देखकर आनन्दित होता है तथा पत्नी हिडिम्बा से उसका पुनर्मिलन होता है।

(१०) प्रतिमानाटक—इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें रामायण की कथा संक्षेप में वर्णित है। इसमें राम का राज्याभिषेक रुकना, १४ वर्ष का वनवास, दशरथ की प्रतिमा देखकर भरत को दशरथ की मृत्यु का ज्ञान, अयोध्या में बिना आए भरत का राम के पास जाना, पादुका लेकर लौटना, सीताहरण, रावणवध, राम-राज्याभिषेक आदि का वर्णन है।

(११) अभिषेक-नाटक—इस नाटक में ६ अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धा काण्ड से युद्धकांड तक की सारी कथा संक्षेप में दी गई है। अन्त में रावण-वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।

(१२) अविमारक—इस नाटक में ६ अंक हैं। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी के साथ प्रणय-विवाह का वर्णन है।

(१३) चारुदत्त—इस नाटक में चार अंक हैं। इसमें निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय का वर्णन है। इसमें भरत-वाक्य नहीं है और कथा अधूरी है। चारुदत्त के यहाँ अभिसार के लिए वसन्तसेना की तैयारी तक का वर्णन है। संभवतः भास की मृत्यु के कारण यह नाटक पूरा नहीं हो सका था। यह माना जाता है कि इसी नाटक के आधार

पर शूद्रक ने अपना मृच्छकटिक नाटक लिखा है और भास की कथा को पूर्ण किया है।

(३) क्या इन १३ नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है ?

इन १३ नाटकों में कहीं भी लेखक का नाम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में नहीं है। अतएव विद्वानों के लिए यह अत्यन्त विवादास्पद विषय रहा है कि इनका लेखक कोई एक ही व्यक्ति है या अनेक व्यक्ति। इन ग्रन्थों की अन्तरंग परीक्षा से ज्ञात होता है कि सभी नाटकों में कुछ मूलभूत समानताएँ हैं, जिनके कारण यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि इनका लेखक चाहे कोई भी व्यक्ति हो, परन्तु ये रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। इसके लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) इन सभी नाटकों की एक मुख्य विशेषता यह है कि ये सभी नाटक 'सूत्रधार' से प्रारम्भ होते हैं। सभी नाटकों में 'रंगमंच-सम्बन्धी प्रथम संकेत यह मिलता है कि—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'। अन्य संस्कृत-नाटक नान्दी-पाठ से प्रारम्भ होते हैं। उनमें नान्दी-पाठ के बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है।

(२) इन नाटकों में से पाँच (अर्थात् स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमानाटक, पंचरात्र और ऊरुभंग) में प्रथम श्लोक में मुद्रा अलंकार प्राप्त होता है। मुद्रालंकार की विशेषता यह है कि उसमें श्लेष अलंकार का आश्रय लेकर कथावस्तु और प्रमुख नाटकीय पात्रों की सूचना दी जाती है।

(३) इन नाटकों में 'प्ररोचना' का अभाव है, अर्थात् प्रस्तावना में न लेखक का नाम है, न नाटक का नाम और न नाटककार का परिचय। अन्य नाटकों में नाटककार का नाम, नाटक-नाम तथा नाटककार का परिचय आदि प्राप्त होते हैं।

(४) इन नाटकों में भूमिका के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य नाटकों में भूमिका के लिए 'प्रस्तावना' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

(५) इन नाटकों में भूमिका (स्थापना) बहुत छोटी है। प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः एक से हैं। जैसे—एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि, ... इत्यादि।

(६) इन नाटकों में 'भरत-वाक्य' प्रायः समान हैं। थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ ये श्लोक कई नाटकों में मिलते हैं। जैसे—'इमामि महीं कृत्स्नां राजसिंहः

प्रशास्तु नः' यह वाक्य प्रायः सभी भरत-वाक्यों में है। प्रतिज्ञा०, अविमारक और अभिषेक-नाटक के भरत-वाक्य एक ही हैं। इसी प्रकार स्वप्न० और दूत-वाक्य के भरत-वाक्य एक हैं।

(७) भास के नाटकों में अन्य नाटककारों के नाटकों की अपेक्षा पात्र-संख्या बहुत अधिक है। बाण ने भी 'बहुभूमिकैः' (अधिक पात्रों वाले) कहकर इस विशेषता का संकेत किया है।

(८) विभिन्न नाटकों में कुछ पात्रों के नाम एक हैं। जैसे—प्रतिज्ञा० और दूतवाक्य में कंचुकी का नाम 'बादरायण'। चार नाटकों में प्रतीहारी का नाम 'विजया' है।

(९) बहुत से नाटकों में नाटकीय-विशेषता 'पताका-स्थानक' (नाटकीय व्यंग्य) का प्रयोग किया गया है।

(१०) सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों, वाक्यों, पदों और श्लोकों को कई नाटकों में दुहराया गया है। वही उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ अनेक नाटकों में मिलती हैं। डा० सूक्तथंकर (Sukthankar) ने अपनी पुस्तक 'Studies in Bhasa' में ऐसे समान-वाक्यों आदि की सूची दी है। इनकी संख्या १२७ है।

(११) इन नाटकों में कवि-कल्पनाएँ प्रायः समान हैं। जैसे—(क) दो प्रतिस्पर्धियों में एक की उपमा सिंह से और दूसरे की हाथी से, (ख) शक्तिशाली पुरुष की उपमा मन्दर पर्वत से दी गई है, (ग) कार्तिकेय के पराक्रमों का कई नाटकों में वर्णन, (घ) क्रोध की उपमा अग्नि से दी गई है।

(१२) इन नाटकों में कुछ विचारों की आवृत्ति मिलती है। जैसे—(क) शपामि सत्येन भयं न जाने (मध्यम०), किमेतद् भो! भयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम् (बालचरित), (ख) अथवा सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम्, अनेक नाटकों में आया है।

(१३) इन नाटकों में शब्दावली और भावाभिव्यक्ति की समानता है। जैसे—पर्दे के लिए 'यवनिका' शब्द; दुःखाभिव्यक्ति के लिए—अहो अकरुणाः खलु ईश्वराः।

(१४) कुछ नाटकों में घटना, परिस्थिति और वर्णनों में साम्य पाया जाता है।

(१५) कतिपय नाटकों में मृत्यु के समय करुणापूर्ण दृश्य प्रायः समान हैं । ६ नाटकों में मरणासन्न व्यक्ति 'आपस्तावत्' कहकर जल माँगता है ।

(१६) कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग इन नाटकों में मिलता है । जैसे—सुवदना, दण्डक आदि । अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग अधिक मात्रा में है ।

(१७) कुछ नाटक अन्योन्य-संबद्ध हैं । जैसे—स्वप्नवासवदत्तम् प्रतिज्ञा-योगन्वरायण का ही उत्तरभाग समझना चाहिए । इसी प्रकार प्रतिमा-नाटक और अभिषेक-नाटक परस्पर संबद्ध हैं ।

(१८) इन नाटकों में अपाणिनीय और आर्ष प्रयोगों की संख्या अधिक है, जो पाणिनीय व्याकरण के अनुसार असिद्ध है । जैसे—आ+प्रच्छ् (आत्मने-पदी होनी चाहिए) का प्रयोग परस्मैपद में । समास के अन्त में भी राज के स्थान पर राजन् का प्रयोग । जैसे—काशिराज्ञे, सर्वराज्ञः आदि ।

(१९) कई नाटकों में माता के नाम के साथ पुत्र का नाम-निर्देश मिलता है । जैसे—राम के लिए—कौसल्यामाता, लक्ष्मण के लिए—सुमित्रामाता आदि ।

(२०) प्रायः सभी नाटकों में आश्रयदाता राजा का 'राजसिंहः' कहकर उल्लेख है ।

(४) इन १३ नाटकों का रचयिता भास है

इन नाटकों में कहीं भी लेखक का नाम-निर्देश नहीं है । अतः विद्वानों में इस विषय पर पर्याप्त विवाद है कि ये नाटक भास-कृत हैं या अन्य-कृत । ये नाटक भास-कृत ही हैं, इस पक्ष की समर्थक युक्तियाँ अधिक तर्क-संगत हैं, अतः अधिकांश विद्वान् इस पक्ष के ही समर्थक हैं । इन नाटकों को भास-कृत न मानने वाले विद्वानों में भी दो पक्ष हैं । कुछ इनको किसी अज्ञात कवि की रचना मानते हैं और कुछ इनको केरल प्रदेश के चाक्यार नामक नटों द्वारा प्रदर्शनार्थ संकलन-मात्र मानते हैं ।

श्री गणपति शास्त्री ने सर्वप्रथम इन नाटकों को भास-कृत होने का उल्लेख किया था । इस पक्ष के विशेष समर्थक विद्वान् ये हैं :—श्री शिवराम महादेव परांजपे, एम० आर० काले, कीथ, याकोबी, स्टैन कोनो, लैकाटे, थॉमस और हिंदारगावकर । इस पक्ष के विरोधियों में मुख्य ये हैं :—श्री पी० बी० काणे, रंगाचार्य रेड्डी, डा० बार्नेट, पिशरोडी तथा भट्टनाथ शास्त्री । डा० सूकथंकर

और प्रो० विन्टरनिस्स मध्यमार्गी हैं। उनके मतानुसार ये सभी नाटक भास-कृत हैं, किन्तु अभी तक प्राप्त युक्तियाँ पूर्णतया निर्णयात्मक नहीं हैं।

इनको भास-कृत मानने के लिए प्रमुख तर्क ये हैं :—

(१) महाकवि बाण (७वीं शताब्दी ई०) ने हर्षचरित के प्रारम्भ में (श्लोक १५) भास की प्रशंसा में लिखा है कि उसके नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार से होता है, पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है और इनमें पताका-स्थानकों का प्रयोग है।

सूत्रधारकृतारम्भेर्नाटकेर्बहुभूमिकैः ।

सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्ष० १५)

इन १३ नाटकों में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। ये नाटक नान्दी-पाठ से प्रारम्भ न होकर सूत्रधार से ही प्रारम्भ होते हैं।

(२) बण्डी (षष्ठ शताब्दी ई०) ने अपने काव्यादर्श (२-२२६) में यह पंक्ति उद्धृत की है—‘लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नमः’। यह श्लोक भास के बालचरित (१-१५) और चारुदत्त (१-१६) में मिलता है। इससे इसका भास-कृत होना ज्ञात होता है।

(३) वाक्पति (८०० ई०) ने अपने ग्रन्थ ‘अउडवहो’ में भास को ‘जलण-मित्त’ (ज्वलन-मित्र) अर्थात् अग्नि का मित्र कहा है। भास के लिए यह विशेषण सार्थक है, क्योंकि उसके बहुत से नाटकों में अग्निदाह का दृश्य मिलता है।

भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेवे अ जस्स रघुआरे ।

सौबन्धवे अ बन्धम्मि हारीयन्दे अ आणन्दो ॥

(भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।

सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दः ॥)

(४) भामह (८०० ई०) ने अपने काव्यालंकार (अध्याय ४) में न्याय-विरोध के उदाहरण में ‘हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम’ यह पद उद्धृत किया है। यह पद प्राकृत रूप में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रथम अंक में प्राप्त होता है। ‘अणेण मम भादा हदो, अणेण मम पिदा, अणेण मम सुदो०’ (श्लोक ८ के पश्चात्)।

(५) वामन (९०० ई०) ने अपने ‘काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति’ में भास के नाटकों से तीन उद्धरण दिए हैं :—(क) अध्याय ३ अधिकरण ५ में व्याजोक्ति

का उदाहरण—शरच्छशांकगौरेण० । यह स्वप्न० अंक ४ में प्राप्य है । (ख) 'यो भर्तृ पिण्डस्य कृते न युध्येत्' । यह प्रतिज्ञा० (४-२) का उद्धरण है । (ग) अध्याय १ अधिकरण ५ में उद्धृत 'यासां बलिर्मद्गृहदेहलीनां०' । यह चारुदत्त (अंक १ श्लोक २) में मिलता है ।

(६) राजशेखर (१६वीं शताब्दी ई०) ने निम्नलिखित श्लोक में भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम् को सर्वश्रेष्ठ बताया है ।

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

अर्थात् समालोचकों ने भास के सभी नाटकों की कठोर परीक्षा की, किन्तु उनकी समालोचनारूपी अग्नि स्वप्न० नाटक को न जला सकी, अर्थात् स्वप्न० निर्दोष नाटक सिद्ध हुआ ।

राजशेखर के उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि स्वप्नवासवदत्त नाटक का रचयिता भास ही है । १३ नाटकों की भाषा, शैली आदि सर्वथा मिलती है, अतः इन १३ नाटकों को भास-कृत माना जाता है ।

(७) अभिनवगुप्त (१०वीं शताब्दी ई०) ने भरत-नाट्य-विवृति में स्वप्न-वासवदत्ता का उल्लेख किया है कि :—'क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्' । यह स्वप्न० अंक २ में पद्मावती की क्रीडा (कन्दुक-क्रीडा) का संकेत करता है ।

(८) भोजदेव (११वीं शताब्दी ई०) ने अपनी पुस्तक शृंगार-प्रकाश में स्वप्नवासवदत्त का निम्नलिखित रूप से निर्देश किया है :—

'स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः । पद्मावती-रहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप । वासवदत्तां च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे ।' यह स्वप्न० के पंचम अंक में वर्णित घटना का संक्षेप है ।

(९) रामचन्द्र और गुणचन्द्र (१२वीं शताब्दी ई०) ने अपनी पुस्तक 'नाट्यदर्पण' में स्वप्नवासवदत्त को भास-कृत बताते हुए उसका एक श्लोक भी उद्धृत किया है । इस श्लोक का ठीक स्थान चतुर्थ अंक में श्लोक ३ के बाद है ।

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्तं शोफालिकातलमवलोक्य वत्सराजः ।

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।

नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥

उपर्युक्त कथनों में से बाण, राजशेखर, रामचन्द्र और गुणचन्द्र के कथनों से स्पष्ट है कि स्वप्नवासवदत्त नाटक भासकृत ही है। ये नाटक अन्योन्यसंबद्ध हैं। इनकी भाषा, शैली आदि एक-सी है। अतएव इनको भास-कृत मानना उप-युक्त है।

संस्कृत की सुभाषितावलियों में कुछ श्लोक भास के नाम से दिए गए हैं। उनमें से कुछ श्लोक इन नाटकों में उपलब्ध नहीं होते हैं। इस आधार पर विपक्षी विद्वान् भास को इन नाटकों का कर्ता नहीं मानते हैं। उनका कथन है कि यदि ये नाटक भास की कृति हैं तो इनमें ये श्लोक भी होने चाहिए। परन्तु उनकी यह युक्ति तर्कसंगत नहीं है। भास के ये १३ ही नाटक हैं, ऐसा कोई नहीं कहता। अब तक केवल १३ नाटक प्राप्त हुए हैं। सम्भव है कि भविष्य में अन्य नाटक भी प्राप्त हों। यह भी संभव है कि भास ने कुछ स्फुट पद्यों या किसी काव्य की रचना की हो। अप्राप्त श्लोक अन्य नाटकों या पद्य-ग्रन्थों से लिए गए होंगे। इसलिए विपक्षियों की युक्ति असंगत है।

श्री ए० के० पिशरोडी और के० आर० पिशरोडी ने इन नाटकों के विषय में एक नवीन कल्पना प्रस्तुत की है कि इन नाटकों की रचना केरल के वंश-परम्परागत अभिनय करने वाले चाक्यार नामक नटों ने की है। चाक्यार लोग प्रसिद्ध नाटकों के संक्षिप्त रूपान्तर का अभिनय करते थे। उन्होंने भास के नाटकों के संक्षिप्त रूपान्तर का अभिनय किया था। इस आधार पर पिशरोडी-महानुभावों ने इन नाटकों का रचयिता इन चाक्यारों को माना है। यह विचार तर्क-संगत नहीं है, क्योंकि अभिनयोपयोगी संक्षिप्त रूपान्तर करने और नाटककार होने में अन्तर है। इसलिए केवल रूपान्तर करके अभिनय करने के कारण चाक्यार इन नाटकों के कर्ता नहीं माने जा सकते हैं।

अतः उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर इन १३ नाटकों का कर्ता भास को ही मानना उचित है।

(५) भास का समय

भास के समय के विषय में अभी निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि भास कालिदास से पूर्ववर्ती है। कालिदास ने माल-विकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास का नाम बहुत आदरपूर्वक लिया है :—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः ।

इस कथन में 'प्रथितयशसाम्' पद से ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में भास की कीर्ति व्याप्त थी । एतदर्थ कम से कम १०० वर्ष का अन्तर होना चाहिए । कालिदास का समय सामान्यतया प्रथम शताब्दी ई० पू० माना जाता है । अतः भास का समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० से बाद का नहीं माना जा सकता है ।

शूद्रक का मृच्छकटिक नाटक भास के चारुदत्त नाटक का ही परिवर्धित रूप ज्ञात होता है । इसका कारण यह ज्ञात होता है कि भास-कृत चारुदत्त अपूर्ण था । उसे शूद्रक ने पूर्ण एवं परिवर्धित किया ।

प्रो० विन्सेन्ट ए० स्मिथ के मतानुसार शूद्रक २२० ई० पू० में गद्दी पर बैठा था और १६७ ई० पू० में उसका स्वर्गवास हुआ । इस प्रकार मृच्छकटिक का रचना-काल तृतीय शताब्दी ई० पू० सिद्ध होता है । अतः भास का समय तृतीय शताब्दी ई० पू० के पूर्वार्ध के बाद ही रखा जा सकता है ।

कौटिल्य (चाणक्य) ने अपने अर्थशास्त्र में भास के निम्नलिखित श्लोक को आप्तवाक्य के रूप में उद्धृत किया है ।

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं, सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्, यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥

(कौटिल्य अर्थशास्त्र १०-३)

इस श्लोक के पूर्व लिखित 'अपीह श्लोकौ भवतः' कथन से स्पष्ट होता है कि ये श्लोक किसी अन्य कवि से उद्धृत किए गए हैं । इनमें से पूर्वोक्त श्लोक भास के, प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक के चतुर्थ अंक का द्वितीय श्लोक है । चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री था । चन्द्रगुप्त मौर्य ३२१ ई० पू० गद्दी पर बैठा था । भास का समय कौटिल्य से कम से कम ५० वर्ष पूर्व मानना चाहिए । इस प्रकार भास का समय ३७० ई० पू० से बाद का नहीं हो सकता है ।

भास ने प्रतिमानाटक के अंक ५ में कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया है । इनमें बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख है, किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र का नहीं ।

रावणः—भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि । सांगोपांगं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्ध-कल्पं च ।

(प्रतिमा० अंक ५ श्लोक ८ के बाद)

इस आधार पर विद्वानों का विचार है कि भास कौटिल्य से पहले हुआ था । यदि वह कौटिल्य से बाद में हुआ होता तो उसके अर्थशास्त्र का नाम-निर्देश करता । महाभारत शान्तिपर्व (पृष्ठ ५६) में अर्थशास्त्र के प्राचीन आचार्य बृहस्पति का उल्लेख है । कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में 'ओं नमः शुक्र-बृहस्पति-भ्याम्' लिखकर बृहस्पति को अर्थशास्त्र का आचार्य माना है ।

भास के नाटकों में से दो नाटक स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण ऐतिहासिक घटना पर निर्भर हैं । अतः भास की पूर्व-सीमा भी इनके द्वारा निर्धारित की जा सकती है । भास ने इन नाटकों में तीन राजाओं का उल्लेख किया है :—(१) कौशाम्बी के राजा उदयन, (२) उज्जयिनी के राजा प्रद्योत, (३) मगध के राजा दर्शक । इन तीनों राजाओं का उल्लेख पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में मिलता है । विष्णुपुराण और वायुपुराण की वंशावली के अनुसार उदयन और प्रद्योत समकालीन थे । बौद्ध और जैन ग्रन्थों के अनुसार प्रद्योत और अजातशत्रु ये दोनों बुद्ध और महावीर के समकालीन थे । वायुपुराण आदि से ज्ञात होता है कि दर्शक अजातशत्रु का उत्तराधिकारी था ।

भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है । विन्सेन्ट ए० स्मिथ के मतानुसार दर्शक और उसके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५० ई० पू० है । अतः यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत, दर्शक और उदयन ये तीनों ४७५ ई० पू० से ४५० ई० पू० के मध्य में समकालीन रहे हैं । अतः भास का समय ४५० ई० पू० से पहले नहीं माना जा सकता है । इस प्रकार भास का समय ४५० ई० पू० के पश्चात् और ३७० ई० पू० से पूर्व सिद्ध होता है ।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि भास ने अपने बहुत से नाटकों में भरत-वाक्य प्रायः एक ही दिया है और सभी में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह अंश दिया है । यह राजसिंह शब्द किसके लिए है ? ऐसा प्रतीत होता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक का आश्रित कवि था । अतः उसने उनका उल्लेख विशेष रूप से किया है । इन तीनों राजाओं में से भी भास उदयन का ही आश्रित राजकवि प्रतीत होता है, क्योंकि उसने अपने आश्रयदाता को अमर बनाने के

१. Rhys David—Buddhist India (पृष्ठ ३) ।

२. Early History of India. पृष्ठ ३८-३९ ।

लिए स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इन दोनों नाटकों की रचना की है और स्वप्नवासवदत्त में अपनी विद्वत्ता और योग्यता का पूर्ण परिचय दिया है। ये दोनों नाटक समकालीन प्रत्यक्षदर्शी के तुल्य लिखे गए हैं। यौगन्धरायण के प्रयत्न से उदयन को पुनः राज्य प्राप्त होने की ओर भरत-वाक्यों में विशेष संकेत मिलता है। ऊरुभंग के भरत-वाक्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि—‘गां पातु नो नरपतिः शमितारिपक्षः’। इसमें ‘शमितारिपक्षः’ विशेष अभिप्राय से है। यही भाव अन्य भरत-वाक्यों से भी प्रकट होता है। ‘भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु। इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।’ इस प्रकार भास को उदयन का समकालीन समझना उचित है। अतः भास का समय ४५० ई० पू० के लगभग मानना उचित है।

(६) भास की नाट्यकला

भास संस्कृत-साहित्य का सबसे प्राचीन नाटककार कहा जा सकता है। भास की नाटकीय कुशलता का परिचय उसके नाटकों की संख्या और विषय की विभिन्नता से प्राप्त होता है। उसके नाटकों की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—भाषा की सरलता, अकृत्रिम शैली, वर्णनों में यथार्थता, नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में व्यक्तित्व-प्राधान्य और नाटकीय गुण—प्रवाह, सजीवता और प्रभावोत्पादकता। भास के नाटकों में यद्यपि नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं हुआ है, तथापि उसके नाटक अत्यन्त रोचक और रंगमंच की दृष्टि से विशेष सफल हुए हैं। भास के नाटकों में उसकी मौलिकता और कल्पना-वैचित्र्य विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। रामायण के आधार पर प्रतिमा-नाटक और अभिषेक-नाटक की रचना हुई है। इनमें से प्रतिमा-नाटक में भास ने अपनी मौलिकता और कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। सामान्य आख्यानक में भी विशेष रोचकता ला दी है। महाभारत के आधार पर लिखे गए नाटकों में भास की कल्पना-शक्ति और रमणीयता अधिक स्पष्ट है। इन नाटकों में वीररस का संचार अधिक है। वीर रस की अभिव्यक्ति में भास अन्य कवियों से बहुत आगे है। वीररस के अतिरिक्त प्रेम, कारुण्य एवं विस्मय के दृश्य बहुत सफलता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में यह त्रुटि है कि वे अभिनय के लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं हैं, परन्तु भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं। बाद के नाटकों में प्राप्त होने वाली कृत्रिमता इन नाटकों में नहीं है। संस्कृत

में सर्वप्रथम एकांकी नाटक लिखने का श्रेय भास को ही है। भास के नाटकों में पाँच एकांकी नाटक हैं :—ऊरुमंग, दूतवाक्य, दूत-घटोत्कच, कर्णभार और मध्यम-व्यायोग।

नाटकों की सफलता के लिए ये ६ गुण आवश्यक हैं :—(१) घटना की एकता, (२) घटना की सार्थकता, (३) घटनाओं का घात-प्रतिघात और गति, (४) चरित्र-चित्रण में व्यक्तित्व का प्राधान्य, (५) स्वाभाविकता, (६) कवित्व। ये सभी गुण भास के नाटकों में उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक नाटक की कथावस्तु को इस प्रकार प्रभावोत्पादक घटनाओं से विकसित किया गया है कि उनमें स्वाभाविकता और गतिशीलता के साथ ही साथ रस-परिपाक भी समुचित रूप से होता गया है।

भास ने अपने नाटकों में 'पताका-स्थानक' (नाटकीय व्यंग्य) का सुन्दर समन्वय किया है और इसके द्वारा वह आश्चर्य-भावना को उत्तेजित कर देता है। जैसे—प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण (अंक २) में वासवदत्ता के माता-पिता विचार कर रहे हैं कि—'इनमें कौन-सा व्यक्ति वासवदत्ता का पति होने योग्य है?' इतने में सहसा कंचुकी प्रविष्ट होकर कहता है कि—'वत्सराज' (अर्थात् उदयन)। वह कहना चाहता था कि—वत्सराज उदयन बन्दी बनाकर लाया गया है। इसी प्रकार अभिषेक-नाटक (अंक ५) में रावण सीता से कहता है—'अब कौन तुम्हारी रक्षा कर सकता है?' इतने में एक राक्षस आकर कहता है—'राम'। इस प्रकार पताका-स्थानक के द्वारा नाटकों में विशेष रोचकता आ गई है।

भास ने अपने कई नाटकों में प्रथम श्लोक में मुद्रालंकार का प्रयोग किया है अर्थात् नाटक के प्रमुख पात्रों का नाम भी मंगलाचरण के श्लोक में दे दिया है। भास की एक विशेषता यह भी है कि वह कहीं-कहीं नाटकीय पात्रों का संवाद श्लोक में ही कराता है। एक ही श्लोक के एक पाद या उपपाद को एक पात्र बोलता है और दूसरे को दूसरा। इस प्रकार एक ही श्लोक में संवाद पूरा हो जाता है। जैसे—प्रतिमा० ३-१, पंचरात्र १-५५, ऊरुमंग श्लोक २१। भास के नाटकों में उत्तर-प्रत्युत्तर एवं संवाद बहुत संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक हैं। वह अनावश्यक विवरण और विस्तार का सर्वथा परित्याग करता है। उसके नाटकों में शिष्ट और परिष्कृत हास्य एवं व्यंग्य भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

भास चरित्र-चित्रण में भी बहुत कुशल है। उसके प्रत्येक पात्र में अपना

व्यक्तित्व है। प्रत्येक पात्र में कुछ पृथक् विशेषताएँ हैं और उनका विकास भी बहुत व्यवस्थित रूप में हुआ है। नाटकों में पुरुष पात्रों की अधिकता है और वीर रस का अधिक समावेश है, अतः यह ज्ञात होता है कि वह वीरकाल से संबद्ध है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भास एक सफल और कुशल नाटककार है। उसके नाटक रंगमंच की आवश्यकताओं और मर्यादाओं को लक्ष्य में रखकर लिखे गए हैं, अतः रंगमंच के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

(४) भास की शैली

भास की शैली वैदभी है। उसकी शैली में शैली के तीनों गुण—प्रसाद, माधुर्य और ओज—विद्यमान हैं। परकालीन नाटकों में प्राप्त होने वाली क्लिष्ट-कल्पना, समासों की अधिकता, क्लिष्टता और अस्वाभाविकता आदि दोष उसके नाटकों में नहीं हैं। उसकी भाषा में सरसता, सरलता, सुबोधता, स्वाभाविकता और प्रवाह है। भास की शैली पर वाल्मीकीय रामायण का विशेष प्रभाव पड़ा है। अतएव उसमें सरलता और सरसता है। भास भारतीय भावों का कवि है। उसमें भारतीय आदर्श पदे-पदे प्राप्त होता है। राम और कृष्ण से संबद्ध नाटकों में यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं पर कालिदास के तुल्य भावों की गम्भीरता और कल्पना का उत्कर्ष दिखाई देता है। अलंकारों के प्रयोग में भास ने पर्याप्त संयम दिखाया है। अलंकारों के प्रयोग के लिए ही कहीं पर भी अलंकारों का प्रयोग नहीं है। सामान्यतया अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। प्रकृति-वर्णन, मानवीय भावों का वर्णन तथा प्रकृति-तादात्म्य का स्थान-स्थान पर सुन्दर समावेश है। भास ने अपने नाटकों में २४ छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें मुख्य छन्द ये हैं—अनुष्टुप् (४३७ श्लोक), वसन्ततिलका (१७६), शार्दूल-विक्रीडित (६२), उपजाति (६१), मालिनी (७२), पुष्पिताग्रा (५५) और वंशस्थ (३५)।

भाषा-सौष्ठव—भास की भाषा सरल और सुबोध है। प्रसाद और रम्यता गुणों ने भास के नाटकों को अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है।

राम का महत्त्व और उनका पौरुष कितने सरल शब्दों में व्यक्त किया गया है।

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।

राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ (प्रतिमा० ५-१४)

कृतज्ञता गुण की दुर्लभता का कितना सहज चित्रण किया गया है :—

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।

कर्तारः सुलभा 'लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ (स्वप्न० ४-६)

चारुदत्त नाटक में सज्जलक भयभीत चेटी का वर्णन करते हुए कहता है—

विषादस्तसर्वाङ्गी संभ्रमोत्फुल्ललोचना ।

मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ (चारु० ४-३)

इसमें माधुर्य के साथ यमक का समन्वय द्रष्टव्य है ।

अभिषेक-नाटक में समुद्र की विशालता, विचित्रता और वैविध्य का वर्णन करते हुए राम के कथन में क्या ही माधुर्य है !

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः

क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।

क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः

क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ ४-१७

विस्तृत विवरण के स्थान पर संक्षेप भास को बहुत रुचिकर है । प्रतिमा-नाटक में राम-लक्ष्मण आदि का पिता के लिए क्या सन्देश है ? यह पूछने पर भास ने वर्णन किया है कि वे दुःखावेग के कारण कुछ बोल न सके और वन चले गए । वक्तव्य की अपेक्षा भावावेश में कुछ न बोल सकना अधिक प्रभावोत्पादक और मार्मिक है ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।

बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ (प्रतिमा० २-१७)

भावाभिव्यक्ति—भास के नाटकों में भारतीय भावों और आदर्शों का सुन्दर समन्वय मिलता है । पितृभक्ति, पातिव्रत्य, भ्रातृप्रेम, क्षमाशीलता और त्याग आदि गुणों का अनेक स्थानों पर वर्णन है ।

पातिव्रत्य धर्म का आदर्श उपस्थित करते हुए कवि का कथन है कि स्त्रियों का पति ही स्वामी है और प्रत्येक अवस्था में उन्हें उनका अनुसरण करना चाहिए ।

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।

त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं

ब्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ (प्रतिमा० १-२५)

इसी प्रकार पितृभक्ति, संयम आदि का सुन्दर वर्णन मिलता है। जैसे—

- (१) स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः । (प्रतिमा० १-५), (२) कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् । (प्रतिमा० ६-६) । (३) अयुक्तं परपुरुष-संकीर्तनं श्रोतुम् (स्वप्न० अंक ३) । (४) नहि सिद्ध-वाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि (स्वप्न० १-११) ।

भास भाव-जगत् का मूर्तवत् चित्रण करने में अत्यन्त पटु है। दशरथ सीता की सुरक्षा के लिए चिन्तित हैं और वात्सल्य भाव के कारण नामोच्चारण में भी वे सीता का नाम राम और लक्ष्मण के बीच में रखना चाहते हैं, जिससे वह सुरक्षित रहे।

अथ कः क्रमः ? राजा—रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम् ।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली ।

बहुदोषाण्यरण्यानि सनायैषा भविष्यति ॥ (प्रतिमा० २-१५)

भास मानवीय मनोवृत्तियों के वर्णन में आदर्श है। उसका मनोवैज्ञानिक विवेचन बहुत उच्चकोटि का है। प्रेम, प्रिय-वियोग, शोकानुभूति, अश्रुपात और शान्ति-लाभ का कितना सुन्दर विवेचन इस श्लोक में है :—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।

यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं

प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ (स्वप्न० ४-६)

मानवीय संस्कारों का स्नेह और द्वेष से गहरा संबन्ध है :—

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते । (स्वप्न० १-७)

शत्रु केवल शरीर पर ही प्रहार करते हैं, किन्तु स्वजन (दायाद) हृदय पर आघात करते हैं।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा । (प्रतिमा० १-१२)

पुत्र-स्नेह और भ्रातृ-स्नेह कितना प्रबल होता है, इसका सूक्ष्म निरीक्षण देखिए :—

कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः । (प्रतिमा० ४-१२)

वर्णन-कुशलता—भास प्रकृति-वर्णन, रस-वर्णन, मनोभाव-वर्णन एवं नाटकीय तत्त्वों के वर्णन में बहुत कुशल है। भास ने अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का समन्वय भी प्रस्तुत किया है। प्रकृति-वर्णन में भास ने प्रसाद गुण का विशेषतया उपयोग किया है। सूर्यास्त का कितना सजीव चित्रण स्वप्नवासवदत्त में प्राप्त होता है।

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः

प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो

रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ स्वप्न० १-१६

पक्षि-समूह अपने घोंसलों में पहुँच गया है। मुनिगण स्नानार्थ जल में प्रविष्ट हो गए हैं। यज्ञिय अग्नि जल रही है और धुआँ मुनि-वन में फैल रहा है। सूर्य अपनी किरणों को समेट कर और अपने रथ को लौटा कर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर जा रहा है।

तीव्र गति से चलते हुए रथ का स्वाभाविक और सजीव वर्णन कितना मनोहर है !

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया

नदीवोद्वृत्ताम्बुनिपतति मही नेमिविवरे ।

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं

रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ प्रतिमा० ३-२

वृक्ष भागते हुए से प्रतीत होते हैं। रथ की अति तीव्र गति के कारण वृक्षों के बीच का व्यवधान नष्ट-सा हो रहा है। भँवर-युक्त नदी के तुल्य पृथ्वी रथ की धुरी में प्रविष्ट-सी हो रही है। चक्र के अरों का स्पष्ट दीखना बन्द हो गया है। वेग के कारण पहियों का घेरा रुका हुआ-सा प्रतीत होता है। घोड़ों के खुरों द्वारा उठाई हुई धूल रथ के सामने उठती है, परन्तु रथ का पीछा नहीं कर पाती। रेलगाड़ी या कार आदि से यात्रा करते समय ऐसा सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

मानव-जीवन की नश्वरता और मृत्यु की अवश्यंभाविता का वन के उदाहरण के द्वारा कितना स्वभाविक वर्णन भास ने किया है। वासवदत्ता के निधन से संतप्त राजा उदयन को कंचुकी धैर्य बँधाते हुए कहता है :—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले

रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ॥

एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां

काले काले छिद्यते रह्यते च ॥

(स्वप्न० ६-१०)

मृत्यु का काल आ जाने पर कौन किसको बचा सकता है? रस्ती टूट जाने पर घड़े को कौन रोक सकता है? संसार की गति जंगल के तुल्य है। यह समय-समय पर काटा जाता है और उत्पन्न होता रहता है।

रस-परिपाक—भास के नाटकों में मुख्यतया शृंगार और वीर रसों का परिपाक है। करुण, रौद्र, हास्य, बीभत्स और भयानक रसों का बीच-बीच में अंगभूत रस के रूप में प्रयोग है। शृंगार रस की कई स्थानों पर सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। अविमारक नाटक में अविमारक कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी पर आसक्त है और वह उसके वक्षःस्थल, जंघा, मुख, अघर आदि की मनोज्ञता का वर्णन करता है।

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः

मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् ।

भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः

कथं नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत् ॥ (अवि० २-६)

इसका वक्षःस्थल स्तनभार से आलस्य-युक्त है, शरीर जघन-भार से खिन्ना है, मुख नेत्रों के लिए अभिराम है, बिम्बफल-तुल्य अघर स्वभाव से रक्त है। इसका शरीर भय की अवस्था में भी इतना दर्शनीय है तो प्रेम की अवस्था में कितना मनोहर होगा?

वीर रस के प्रयोग में भावों की उदात्तता, वर्णन-प्रौढ़ता और शक्तिमत्ता है। उसके वीर रस के वर्णन निर्जीव में भी जीवन का संचार कर देते हैं। ऊरुभंग में युद्धरूपी यज्ञ के लिए वीरों का आह्वान किया जा रहा है। रूपक अलंकार भाव-सौष्ठव का साधक हो गया है।

करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदभो
हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्तः ।

ध्वजविततवितानः सिंहनादोच्चमन्त्रः

पतितपशुमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञः ॥ (ऊ० १-६)

श्रेष्ठ हाथियों के सूँड़ ही यूप हैं, बाण ही बिखरे हुए कुश हैं, मरे हुए हाथी ही समिधा-समूह हैं, वैररूपी अग्नि जल रही है, फैली हुई ध्वजाएँ ही शामियाना हैं, सिंहनाद ही उच्च स्वर से मंत्र-पाठ है, मरे हुए मनुष्य ही बलि के पशु हैं, ऐसा युद्धरूपी यज्ञ प्रारम्भ हो रहा है।

प्रतिमानाटक में रावण जटायु को मारने की धमकी देते हुए कहता है कि मैं अभी तीक्ष्ण तलवार की धार से तेरे पंख काट कर यमलोक को पहुँचाता हूँ।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिशकृत्पक्षक्षतच्युतः ।

रुधिरैराद्र्गगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ (प्रतिमा० ५-२२)

प्रतिमानाटक में राम को राज्य न देने पर क्रुद्ध लक्ष्मण का कथन है कि हमारे साथ अन्याय किया गया है। हम विद्रोह करेंगे और धनुष उठाते हैं। हमें सीधा समझकर दबाया जा रहा है। आज कैकेयी के छल के कारण मैं संसार को ही स्त्री-रहित कर दूँगा।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दयां

स्वजननिभूतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।

अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो

युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ (प्र० १-१८)

अलंकार-निरूपण.—भास के नाटकों में अलंकारों की सुन्दर छटा दर्शनीय है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास आदि अलंकारों का स्थान-स्थान पर रस और भावों के अनुरूप प्रयोग मिलता है। अलंकारों के प्रयोग प्रसाद और माधुर्य गुणों के साधक हैं, न कि बाधक। अनुप्रास-युक्त शब्द-सौष्ठव भी दर्शनीय है। जैसे—हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम० (प्रतिमा० २-४), हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः (प्रतिमा० अंक २), त्रैलोक्यविद्रावणं रावणम्... गुणगणविमूषणं विभीषणम्... शरद्विमलगनचन्द्राभिरामो रामः (प्रतिमा० अंक ७ वक्तव्य सं० ३) ।

उपमा का एक सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। राम-सीता और लक्ष्मण के वन-गमन में उपमा का प्रयोग करते हुए भास ने वर्णन किया है कि राम सूर्यवत् हैं, अस्त हो गए हैं, सूर्य के पश्चात् दिन के तुल्य लक्ष्मण भी चले गए और सूर्य तथा दिन की समाप्ति पर सन्ध्या के तुल्य सीता भी चली गई।

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।

सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ (प्रतिमा० २-७)

रावण के द्वारा हरण की जाती हुई सीता छटपटाती सर्पिणी के तुल्य, हिलाई हुई पुष्पित लता के तुल्य और मानो तपोवन की सिद्धि थी, जो अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा रही थी।

विचेष्टमानेव भुजंगमाङ्गना

विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।

प्रसह्य पापेन दशाननेन सा

तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ (प्रतिमा० ६-२)

इसमें मालोपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

शरत्कालीन गगन में उड़ती हुई सारस-पंक्ति के वर्णन में स्वभावोक्ति और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर समन्वय हुआ है। सारसपंक्ति सीधी, लम्बी, ऊँची-नीची और मोड़ पर सप्तर्षि नक्षत्र के तुल्य तिरछी है। वह केंचुली-रहित साँप के पेट के तुल्य स्वच्छ है और मानो अन्तरिक्ष को दो भागों में विभक्त करने वाली सीमा है।

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च

सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।

निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य

सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ (स्वप्न० ४-२)

पंचरात्र में बृहन्नला युधिष्ठिर का विरोधाभास-युक्त वर्णन करते हुए कहता है :—

सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो

नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तमाश्रितः ।

विमुक्तराज्योऽप्यभिर्वाहितः श्रिया

त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥ (पंचरात्र २-३२)

भास ने अपने नाटकों में शास्त्रीय, राजनीतिक, मनोविज्ञान एवं नीति आदि से संबद्ध अनेक अर्थान्तरन्यास अलंकार-युक्त सुभाषित दिए हैं, जो उसकी बहुज्ञता और बहुश्रुतता के निर्दशन हैं। कुछ प्रसिद्ध सुभाषित ये हैं :—भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमा० १-२५), स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः (प्रतिमा० १-५), कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् (प्रतिमा० ६-६), अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् (स्वप्न० अंक ३), नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि (स्वप्न० १-११), सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते- कलत्रम् (प्रतिज्ञा० १-४), सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणाम् (प्रतिज्ञा० १-१८), अच्छलो हि स्नेहो नाम (अविमारक), प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे, समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः (अवि० ५-५), अकारणं रूपमकारणं कुलं, महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते (पंचरात्र २-३३), सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः (पंच० ३-४), न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति (प्रतिमा० ५-१८), अनतिक्रमणीयो हि विधिः (स्वप्न०), कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य-पंक्तिः (स्वप्न० १-४) सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम (स्वप्न० अंक २), स्त्रीस्वभावस्तु कातरः (स्वप्न०), निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च (प्रतिमा० १-२६), हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः (प्रतिमा० ३-१३)।

छन्दोयोजना—भास ने अपने १३ नाटकों में २४ छन्दों और १०६२ श्लोकों का प्रयोग किया है।^१ इन २४ छन्दों में उसके अतिप्रिय छन्द हैं :—श्लोक (४३७ श्लोक), वसन्ततिलका (१७६ श्लोक), शार्दूलविक्रीडित (६२), उपजाति (६१), मालिनी (७२), पुष्पिताग्रा (५५), वंशस्थ (३५), शालिनी (२२), इन्द्रवज्रा (२१), शिखरिणी (१६), प्रहर्षिणी (१७)। अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द के बहुत अधिक प्रयोग से ज्ञात होता है कि भास वाल्मीकीय-रामायण आदि के समय के समीपवर्ती है। उसने कुछ कम प्रचलित छन्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे—वैश्वदेवी, सुवदना, दण्डक, वैतालीय, मेघमाला, उपगीति आदि।

इतना ही नहीं, भास ने वृत्त-कल्पना में अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का भी परिचय दिया है। उसने सर्वथा नवीन छन्दों का भी प्रयोग किया है। प्रतिमा-नाटक

१. विशेष विवरण के लिए देखो—भासनाटकचक्रम्—सं० देवधर, १९५१, पृष्ठ ५६१-५६७।

अंक ३ के श्लोक ३ और ४ में उसने प्रभा और सखिणी छन्दों के मिश्रण से सर्वथा नवीन प्रकार का उपजाति छन्द प्रस्तुत किया है।

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः

स्निह्यतेवास्य राज्ञो समुत्थापितः।

त्वरितमुपगता इव भ्रातरः

क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः॥

(प्रतिमा० ३-३)

(८) भास का विविध कला-ज्ञान

भास के नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसने वेद, काव्य-शास्त्र, संगीत-शास्त्र, मनोविज्ञान, नीति, राजनीति आदि का गंभीर अध्ययन किया था। उसने अपने शास्त्रीय पाण्डित्य को इस प्रकार सरल और सुबोध रूप से प्रस्तुत किया है कि पाठक को उसका भाव सरलता से हृदयंगम हो जाता है। उसने प्रतिमा-नाटक में वेद-ज्ञान का उदाहरण प्रस्तुत किया है। रावण सीता का हरण करते हुए कहता है कि मैं सीता का इसी प्रकार हरण कर रहा हूँ, जिस प्रकार मन्त्र-हीन आहुति को। मन्त्रहीन आहुति राक्षसों का हिस्सा होती है।

हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम्॥ (प्रतिमा० ५-१५)

वीणा को समुद्र से न निकला हुआ रत्न कहते हुए (वीणा नामासमुद्रोत्थितं रत्नम्) उसने वीणा के गुणों और लय आदि का सुन्दर वर्णन किया है। (चारुदत्त ३-१, २)। ये दोनों श्लोक उसकी संगीतज्ञता को सूचित करते हैं।

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च

भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम्॥

(चारुदत्त ३-२)

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा सखीव

संकीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी।

क्रोडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता

स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी॥

(चारुदत्त ३-१)

वीणा की ध्वनि में राग है, मधुरता है, समता और स्पष्टता है। इसमें भावों का माधुर्य है और अभिनय की क्षमता है। वीणा क्या है? यह विरही के लिए मनोनुकूल सखी है, विविध चर्चाओं में संकीर्णता-रहित गोष्ठी है, क्रीडा-प्रसंगों और काम-व्यापारों में प्रियतमा है तथा स्त्रियों के प्रेम-प्रसंग में विघ्न डालने वाली सौत है।

भास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन गंभीर है। उसने वर्णन किया है कि किसी के प्रति प्रेम और किसी के प्रति घृणा या द्वेष प्राचीन संस्कारों का फल है।

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते । (स्वप्न० १-७)

बद्धमूल प्रेम छोड़ा नहीं जा सकता है। प्रिय व्यक्ति का स्मरण आते ही प्राचीन दुःख नवीन हो जाता है।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः

स्मृत्या स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ॥ (स्वप्न० ४-६)

शत्रु शरीर पर प्रहार करते हैं, परन्तु आत्मीय व्यक्ति (दायाद) हृदय पर प्रहार करते हैं।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा । (प्रतिमा० १-१२)

राजनीति और नीति के अनेक सुभाषित भास के नाटकों में मिलते हैं। राजा राष्ट्र का रक्षक है। राजा के बिना प्रजा नष्ट हो जाती है, जैसे ग्वाले के बिना गाएँ।

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।

एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ (प्रतिमा० ३-२४)

राज्य के प्रति क्षण भर भी असावधानी नहीं बरतनी चाहिए।

राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् । (प्रतिमा० ४ वक्तव्य ६६)

बालक स्त्री आदि की रक्षा के लिए असत्य वचन भी क्षम्य है।

कुमाररक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि । (बालचरित अंक २)

शिक्षा आदि सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, परन्तु हवन और दान का फल कभी नष्ट नहीं होता।

शिक्षा क्षं गच्छति कालपर्ययात् . .

हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ (कर्णभार १-२२)

माता का गौरव बताया है कि माता सबसे बड़ी देवता है।

माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम् । (म० व्या० १-३७)

(६) भास की न्यूनताएँ

भास अत्यन्त प्राचीन नाटककार है, अतः उसके नाटकों में कुछ न्यूनताएँ रह गई हैं।

(१) भास के नाटकों में कालिदास और भवभूति के तुल्य भाषा का परिष्कार, भावों की प्रौढ़ता एवं काव्य का लालित्य प्राप्त नहीं होता है।

(२) भास ने समास-शैली अर्थात् संक्षिप्त पदावली वाली शैली का प्रयोग किया है। अतः अनेक स्थानों पर उसका भाव अस्पष्ट हो गया है। जैसे—प्रतिमानाटक (अंक ३ वक्तव्य सं० १०८) में—‘कैकेयी—जात, शुक्ललुब्धा प्रष्टव्या’ का वास्तविक अभिप्राय अस्पष्ट है।

(३) भास ने कतिपय अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—(प्रतिमानटक में) अभिसरी, शिरःस्थानानि, नियोगात्, प्राणिधर्मम्, अनुयात्रम्, न्यंगभूतः, महाकच्छः, प्रतिव्यूहते आदि।^१

(४) भास ने कुछ स्थानों पर केवल छन्दोभंग से बचने के लिए सन्धि-नियमों का उल्लंघन किया है। जैसे—स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः (स्वप्न० ३-५, शुद्ध-अवन्त्याधिपतेः०), हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघम् (प्रतिमा० ७-१०, शुद्ध-तम ओघम्)।

(५) भास ने कितने ही ऐसे प्रयोग किए हैं, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध हैं। इन्हें असिद्ध या अशुद्ध प्रयोग कह सकते हैं। कहीं पर परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद का प्रयोग है और कहीं आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद। कहीं धातु का गण-परिवर्तन है, कहीं सामान्य क्रिया के लिए णिजन्त प्रयोग है, कहीं लिंग-परिवर्तन है, कहीं अकर्मक धातु का सकर्मक प्रयोग है, कहीं णिजन्त के स्थान पर सामान्य क्रिया का प्रयोग, कहीं समासान्त प्रत्ययों का अभाव और कहीं अनियमित रूप से कृत् प्रत्ययों का प्रयोग है।^२ कोष्ठ में संकेतार्थ शुद्ध रूप दिया गया है। जैसे—

(क) आत्मने० के स्थान पर परस्मैपद—आपृच्छ (पृ० २६८, आपृच्छस्व), परिष्वज (पृ० १७५, परिष्वजस्व)। (ख) पर० के स्थान पर आत्मनेपद—श्लिष्यते (पृ० ३, श्लिष्यति), रुह्यते (पृ० ५०, रोहति)। (ग) गण-

१. देखो—लेखक-सम्पादित प्रतिमा-नाटक में इनकी व्याख्या आदि।

२. विशेष विवरण के लिए देखो—भासनाटकचक्रम्—सं० देवधर, पृष्ठ ५६८ से ५७३। पृष्ठ-संख्या देवधर-संस्करण के अनुसार है। प्रतिमा-नाटक के असिद्ध प्रयोगों के लिए देखो लेखक-संपादित प्रतिमानाटक परिशिष्ट ५, पृष्ठ ४६५-४६६।

परिवर्तन—घरते (पृ० ४३, ध्रियते), मां हस्यते (पृ० ४०५, हससि) । (घ) अकर्मक का सकर्मक प्रयोग—लज्जते ह्येष पुत्रम् (पृ० ४१३, पुत्रः लज्जते) । (ङ) सामान्य क्रिया के लिए णिजन्त-प्रयोग—कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये (पृ० ७, विश्रमिष्यामि), (च) णिजन्त के स्थान पर अणिजन्त प्रयोग—राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्राहीतुमिच्छामि (पृ० २६१, प्रतिग्राहयितुम्), (छ) लिंग-परिवर्तन—निष्क्रमणः क्रियताम् (पृ० २१२, निष्क्रमणम्), (ज) समासान्त-प्रत्यय न करना—काशिराज्ञे (पृ० १८७, काशिराजाय), (झ) अनियमित कृत प्रत्यय—मा उत्पाद्य (पृ० २५८, अलम् उत्पाद्य), अलं कर्तुम् (पृ० २७६, अलं कृत्वा), (ञ) अशुद्ध प्रयोग—नमयि (पृ० २६१, नमयानि), रुदन्तीम् (पृ० ४४५, रुदतीम्) ।

भास की न्यूनताओं के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि (१) भास के नाटकों में प्रयुक्त अप्रचलित शब्द उसके समय में प्रचलित रहे होंगे । भास के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, अतः उसने जन-साधारण में प्रचलित कुछ शब्दों को अपने नाटकों में लिया होगा । (२) छन्दोभंग को दोष माना गया है, अतः छन्द की गति को स्वच्छ रखने के लिए सन्धि-नियमों का उल्लंघन प्राचीन समय में विशेष आपत्तिजनक नहीं माना जाता था । अतएव कहा जाता है—‘अपि माषं मषं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्’ माष को मष रख सकते हैं । (३) व्याकरण-सम्बन्धी न्यूनताओं और त्रुटियों के लिए संभव है कि भास के समय तक पाणिनि का व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित और मान्य न हुआ हो । उस समय अन्य व्याकरण भी चलते रहे होंगे । उनके अनुसार ये प्रयोग शुद्ध हो सकते हैं । (४) डा० कीथ ने अपाणिनीय प्रयोगों का कारण ऐतिहासिक काव्यों—रामायण, महाभारत—में ऐसे प्रयोगों का होना माना है । (५) व्याकरण-सम्बन्धी कुछ न्यूनताएँ सभी कदियों और नाटककारों में न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्य हैं ।

भास के विशाल साहित्य को देखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास जैसे व्यक्ति उसे ‘प्रथितयशसाम्’ शब्द से संमानित करें । भास वस्तुतः कविताकामिनी का हास है । अतः ‘भासो हासः’ कहकर उसे काव्य की ह्लादकता का स्रोत माना गया है । भास ने १३ नाटक, उनमें भी ५ एकांकी नाटक, लिखकर परवर्ती नाटककारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है । भास के नाटकों में सरलता, सरसता, भावामिव्यक्ति, भाषा-सौष्ठव और सालंकारिता है । उसके नाटक

कवित्व की दृष्टि से भले ही कालिदास आदि से न्यून हों, परन्तु रगमंच की दृष्टि से, आकर्षकता की दृष्टि से, अभिनय की दृष्टि से तथा सर्वजन-मनोभिरामता की दृष्टि से किसी भी नाटककार से न्यून नहीं हैं।

६. (ख) महाकवि शूद्रक

(१) जीवन-वृत्त और कृतित्व

जीवन-वृत्त—संस्कृत के अन्य महाकवियों के तुल्य शूद्रक का भी प्रामाणिक जीवन-वृत्त अप्राप्य है। उसके जीवन के विषय में मृच्छकटिक के आमुख (प्रस्तावना) के तीन श्लोकों से कुछ विवरण प्राप्त होता है। ये श्लोक भी पर्याप्त विवाद के कारण हैं। इनमें शूद्रक का परोक्षे लिट् (परोक्षभूत) 'बभूव' (हुआ था) द्वारा वर्णन है और 'शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः' (शूद्रक राजा अग्नि में प्रविष्ट हुए अर्थात् स्वेच्छा से आत्मदाह किया) में भी भूतकाल का प्रयोग है, अतः ये श्लोक लेखक की रचना नहीं हो सकते हैं। इस आधार पर प्रायः सभी विद्वानों ने इन तीनों श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। ये महत्त्वपूर्ण श्लोक इस प्रकार हैं :—

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।

द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥ (मृ० १-३)

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां

ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।

राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा

लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥ (मृ० १-४)

समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदं वेदविदां तपोधनश्च ।

परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥ (मृ० १-५)

वह गजेन्द्र के तुल्य गति वाले, चकोर-तुल्य नेत्रवाले, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश सुन्दर मुख वाले और सुन्दर शरीर वाले थे। वे द्विजों (ब्राह्मणों) में प्रमुख, कवि और महाशक्तिशाली थे। वे शूद्रक नाम से प्रसिद्ध थे। वे ऋग्वेद, सामवेद, गणित, वैशिक (संगीत, नृत्य आदि) कला और हस्ति-विद्या में निपुण थे। शिव की कृपा से अज्ञानान्धकार के नाश से दिव्य दृष्टि पाकर, पुत्र को राजसिंहासन देकर, महामहिमशाली अश्वमेध यज्ञ करके, सौ वर्ष तथा दस दिन की दीर्घ आयु प्राप्त कर,

शूद्रक अग्नि में प्रविष्ट हुए। वे युद्ध के प्रेमी थे, सतत-जागरूक, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, तपस्वी तथा शत्रुओं के हाथियों से मल्लयुद्ध के इच्छुक, शूद्रक नाम के राजा थे।

उपर्युक्त श्लोकों से ज्ञात होता है कि शूद्रक सुन्दर आकृति वाले, महा-पराक्रमी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, कवि, ऋग्वेद-सामवेद आदि वेदों के ज्ञाता, गणित-संगीत-हस्तिविद्या आदि के विशेषज्ञ थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था और उनकी आयु १०० वर्ष १० दिन थी। उन्होंने अपने जीवन में अनेक युद्ध किए थे। वे वेदवेत्ता और तपस्वी राजा थे। शर्वप्रसादात्, शम्भोर्वः पातु (१-१) तथा गौरीभुजलता (१-२) से ज्ञात होता है कि वे शिव-पार्वती के भक्त थे। ब्रह्मलग्नः समाधिः (१-१) से ज्ञात होता है कि वे योगी या योगाम्यासी भी थे।

कतिपय विद्वानों ने 'द्विजमुख्यतमः' का अर्थ क्षत्रियों में श्रेष्ठ लिया है, परन्तु यह अर्थ क्लिष्ट-कल्पना और असंगत है। आगे वर्णन किया गया है कि सात-बाहन-वंशी आन्ध्रभृत्य राजा अपने आपको ब्राह्मण कहते थे। अतएव उनको ऋग्वेद आदि का ज्ञाता, 'ककुदं वेदविदाम्' आदि कहा गया है। मृच्छकटिक के कई प्रयोगों (कर्णाटिकलह, खुण्टमोडक, वरंडलबुक आदि) से ज्ञात होता है कि वह दाक्षिणात्य थे। 'वयं दाक्षिणात्याः' (अंक ६) से इसी बात की पुष्टि होती है। 'द्राविड-चोल-चीन-बर्बर-खैर-खान-मधुघात-प्रभृतीनां म्लेच्छजातीनाम् अनेकदेशभाषाभिज्ञाः' (अंक ६) से ज्ञात होता है कि शूद्रक संस्कृत ही नहीं अनेक प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के ज्ञाता थे। मृच्छकटिक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्हें नाट्यशास्त्र, काव्य-शास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिष और राजनीति-शास्त्र का उच्चकोटि का ज्ञान था। वे वर्ण-व्यवस्था को मानते थे। भरत-वाक्य से ज्ञात होता है कि वे गाय और ब्राह्मणों का महत्त्व चाहते थे।

कृत्स्नत्व—शूद्रक की एकमात्र रचना मृच्छकटिक ही प्राप्य है। शीघ्र ही प्राप्त हुए 'पद्म-प्राभृतक' नामक भाणरूपक का लेखक शूद्रक को मानने का प्रस्ताव किया गया है, परन्तु यह सर्वथा सन्दिग्ध है।

मृच्छकटिक का लेखक कौन है ?

मृच्छकटिक नाटक के लेखक के विषय में बहुत विवाद है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में पर्याप्त विवेचन किया है, परन्तु अभी तक कोई निश्चित मत निर्धारित नहीं हो सका है। इस विषय में जो निर्णय दिए गए हैं,

उनमें कल्पना और अनुमान का अंश अधिक है। यहाँ पर संक्षेप में उनका विवरण दिया जा रहा है।

मुख्य समस्याएँ—इस विषय में मुख्य समस्याएँ ये हैं :—(१) शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति है या नहीं ? (२) मृच्छकटिक का भास के चारुदत्त नाटक का परिवर्धित रूप होना, (३) कालिदास-द्वारा शूद्रक का उल्लेख न होना, (४) राजा का शूद्रक (शूद्र) नाम रखना, (५) छठी शताब्दी ई० से पूर्व मृच्छकटिक का उल्लेख न मिलना।

दो मत—इस विषय में मुख्यतया दो मत प्रस्तुत किए गए हैं :—(१) शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति है और वह ई० पू० प्रथम शताब्दी में हुआ है। (२) शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है।

पूर्वसीमा—भास ने चार अंकों में 'चारुदत्त' नाटक लिखा है। वह अपूर्ण नाटक है। उसमें ६ अंक और जोड़कर शूद्रक ने १० अंकों का मृच्छकटिक नाटक लिखा है। अतः शूद्रक भास का परवर्ती है। भास का समय ५वीं शताब्दी ई० पू० है। अतः शूद्रक ५वीं शताब्दी ई० पू० के बाद का है।

अपर सीमा—वामन (७७५ ई० के लगभग) ने शूद्रक के प्रबन्ध (नाटक) का उल्लेख किया है।

शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेष्वस्य भूयान् प्रपञ्चो दृश्यते।

(काव्यालंकारसूत्र ३-२-४)

अतः शूद्रक का समय ७५० ई० से बाद का नहीं हो सकता है।

मृच्छकटिक का लेखक शूद्रक है

मृच्छकटिक का लेखक शूद्रक को मानने में कुछ विद्वानों ने आपत्ति की है। उनकी आपत्तियाँ वस्तुतः युक्ति-संगत नहीं हैं। संक्षेप में उनकी आपत्तियों का तिराकरण इस प्रकार है :—

(क) शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है :—डा० कीथ का कथन है कि 'शूद्रक एक निजधरी व्यक्ति थे।' वे शूद्रक जैसा हास्यास्पद नाम रखना ही इसका आधार मानते हैं। अन्य अनेक विद्वानों में भी इस मत का अनुसरण किया है।

समीक्षा—संस्कृत के प्राचीन साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि शूद्रक बहुत प्रसिद्ध नाम था। अनेक आख्यानों का उसे नायक बनाया गया है।

(१) स्कन्दपुराण के कुमारिका खंड में शूद्रक नामक एक आन्ध्रवंशी महाराज का उल्लेख है।^१ कर्नल विल्फ्रेड (Col. Wilfred) ने इस पर विचार करके शूद्रक नाम की ऐतिहासिकता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।^१ डा० मण्डारकर ने इस पर विचार कर निष्कर्ष निकाला है कि शूद्रक, विक्रमादित्य से २७ वर्ष ई० पू० (अर्थात् ५६+२७=८३ ई० पू०) हुआ था। स्कन्दपुराण शूद्रक को विक्रमादित्य से २७ वर्ष पूर्ववर्ती मानता है। यह शिमुक आन्ध्रभृत्य वंश का संस्थापक था। इसने कण्ववंश के राजा सुशर्मन् को मारकर गद्दी पर अधिकार किया था। इसका वंश सातवाहन-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नासिक के शिला लेख में इस वंश को 'बम्हन' (ब्राह्मण) कहा गया है और इन्हें 'खतिपमान-मदनस' (क्षितिपमान-मर्दनकर्ता, अर्थात् क्षत्रियों का गर्व-नाशक) कहा गया है।

(२) क्षीरस्वामी (१०७५ ई०) ने अमरकोष (२-८) में चक्रवर्ती शब्द की व्याख्या में चक्रवर्ती राजाओं में शूद्रक का नाम दिया है।

विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः।

शूद्रकस्त्वग्निमित्रो वा हालः स्याच्छालिवाहनः ॥

(३) भर्तृहरि-कृत वाक्यपदीय की टीका में शूद्रक राजा का उल्लेख मिलता है। 'लोकेऽपि राजपुरुष इत्युक्ते कस्य राज्ञः शूद्रकस्येति'।

(४) दण्डी के काव्यादर्श (१-१५) पर 'हृदयंगम' टीकाकार ने सदाश्रय के उदाहरण में शूद्रक राजा का उल्लेख किया है। 'सदाश्रयम्—हर्षशूद्रकोदयनादि-सत्पुरुषतमाश्रयम्'।

१. त्रिषु वर्षसहस्रेषु कलेयतिषु पार्थिवः।

त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥ १ ॥

शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमित्र सः।

चर्चितायां यमाराध्य लप्स्यते भूमयापहः ॥ २ ॥

स्कन्द पु० कुमारिकाखंड। देखो—हरिदत्त शास्त्री, संस्कृत-काव्यकार, पृ० ५०।

२. विवरण के लिए देखो मृच्छकटिक-संपादक वसन्त-रामचन्द्र नेरूरकर, भूमिका पृष्ठ ७ से १४, मुद्रक—बाम्बे बुक डिपो, बम्बई, सन् १९३७।

(५) राजशेखर ने उल्लेख किया है कि रामिल-सोमिल ने 'शूद्रक-कथा' लिखी थी।

इन उल्लेखों से सिद्ध होता है कि शूद्रक नामक राजा अवश्य हुआ था।

(ख) चारुदत्त और मृच्छकटिक—चारुदत्त और मृच्छकटिक की तुलना से ज्ञात होता है कि भास ने चारुदत्त नाटक ४ अंकों में लिखकर अपूर्ण छोड़ दिया था। उन ४ अंकों को प्रायः उसी रूप में लेते हुए ६ अंक और जोड़कर तथा पालक-आर्यक की राजनीतिक कथा को जोड़कर शूद्रक ने इसे पूरा किया है।

वस्तुतः शूद्रक ने 'चारुदत्त' की अति रोचक कथा को राजनीति की पुट देकर अत्यन्त आकर्षक बना दिया है।

(ग) कालिदास के द्वारा शूद्रक का नामोल्लेख न होना—कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि प्रसिद्ध नाटककारों का उल्लेख किया है, परन्तु शूद्रक का नहीं। अतः शूद्रक कालिदास का पूर्ववर्ती नहीं है।

समीक्षा—कालिदास और शूद्रक थोड़े ही अन्तर से सम-सामयिक हैं। कालिदास ५६ ई० पू० के लगभग प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य के आश्रित कवि थे। शूद्रक राजा विक्रमादित्य से २७ वर्ष पूर्ववर्ती है। अतः कालिदास के समय तक शूद्रक की प्रसिद्धि बहुत अधिक नहीं हुई होगी। इसलिए कालिदास ने अति प्रसिद्ध नाटककार के रूप में शूद्रक का नामोल्लेख नहीं किया है।

(घ) शूद्रक नाम—राजा का शूद्रक (अर्थात् शूद्र) नाम हास्यास्पद है।

समीक्षा—शूद्रक का वास्तविक नाम शिमुक (या सिमुक) था। स्कन्द-पुराण में स्पष्टतया इसका नाम शूद्रक उल्लिखित है। इसका नाम अनेक पुराणों में पृथक्-पृथक् मिलता है। इसका नाम वायुपुराण में सिन्धुक, मत्स्यपुराण में शिशुक, विष्णुपुराण में शिप्रक और भागवत में अन्ध्र, शूद्र, वृषल। ये आन्ध्रभृत्य राजा हैं। ये लोग कण्ववंशी राजाओं के भृत्य थे और इन्होंने बाद में कण्ववंशी सुशर्मा को मारकर राज्य छीन लिया और स्वयं शासक बन गए।^१ ये सम्भवतः निम्न कोटि के ब्राह्मण थे, और शिवभक्त थे अतः भागवतपुराण आदि इन्हें

१. हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।

गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कंचित् कालमसत्तमः ॥

भागवत०—१२-१-२० ।

वर्गीय द्वेष (कृष्णभक्त न होने से) के कारण वृषल या शूद्र कहता है। गुण-कर्मनुसार वर्ण-व्यवस्था के आधार पर ये आन्ध्रमृत्यु सातवाहन वंशीय राजा अपने आपको वेदज्ञ एवं उच्चकोटि का ब्राह्मण घोषित करते हैं। शिमुक और शूद्रक वस्तुतः एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम हैं। अतएव पुराणों में उसे शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक आदि कहा गया है।

लेखक ने स्वयं अपना नाम शूद्रक नहीं दिया है, अपितु परवर्ती लेखकों ने जातीय ऊँच-नीच की भावना को प्रदर्शित करने के लिए उसे 'शूद्रक' कहना अधिक पसन्द किया। यह बात इस बात से स्पष्ट है कि इसी भावना को लेकर महाराज अशोक को देवानांप्रियः (मूल अर्थ—देवों का प्रिय, व्यंग्य अर्थ—मूर्ख) अर्थात् मूर्ख प्रसिद्ध किया गया। इसका कारण धार्मिक एवं वर्गीय द्वेष ही है।

(३) कोई अन्य लेखक—कई विद्वानों ने मृच्छकटिक का लेखक भास, दण्डी या अज्ञात व्यक्ति को माना है। इनके तर्क एवं आधार अत्यन्त निम्न कोटि के हैं। जैसे—

(१) डा० पिशेल (Pischel)—मृच्छकटिक का लेखक दण्डी है। दण्डी की तीसरी रचना ढूँढते हुए वे 'लिम्पतोव०' (मृच्छ० १-३४, दण्डी-काव्यादर्श २-२२६) श्लोक के आधार पर दण्डी को कर्ता मान बैठे। दण्डी से इसका नाम-मात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

(२) डा० सिल्वी लेवी (Sylvan Levi)—किसी अज्ञात व्यक्ति की कृति है। उसने इसे शूद्रक के नाम से चला दिया। यह युक्ति स्वयं में ही हास्यास्पद है। दूसरे के नाम से चलाने का कारण स्पष्ट होना चाहिए।

(३) डा० कीथ (Keith)—शूद्रक काल्पनिक व्यक्ति है तथा मृच्छकटिक का लेखक कोई अन्य है। शूद्रक स्वयं ऐतिहासिक व्यक्ति है और अनेक विद्याओं का विशेषज्ञ है। वह दूसरे की रचना को अपने नाम से क्यों चलाता? भास-कृत अपूर्ण 'चारुदत्त' उसको खटकता था। साथ ही ब्राह्मण-वर्ग की कुरीतियों से वह असन्तुष्ट था। अतः उसने नाटक की पूर्ति के साथ कई लक्ष्यों की सिद्धि की। (१) 'चारुदत्त' नाटक की पूर्ति, (२) ब्राह्मण-वर्ग में व्याप्त कुरीतियाँ, (३) सामाजिक शोषण का विरोध, (४) तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण, (५) राजनीतिक अस्थिरता और अशान्ति, (६) प्रगतिवादी नाटक,

१. कीथ—संस्कृत-नाटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १२६-१२८।

(७) गणिका आदि का उदात्त चित्रण, (८) निम्नवर्गीय व्यक्तियों का सेनापति आदि होना ।

(४) श्री नेरूरकर—मृच्छकटिक भी भास की रचना है ।^१ यदि भास मृच्छकटिक का कर्ता होता तो वह अपने नाटक 'चारुदत्त' को ही क्यों न पूरा करता ? इससे ज्ञात होता है कि मृच्छकटिक का लेखक शूद्रक ही है ।

मृच्छकटिक का रचना-काल

मृच्छकटिक के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि यह भास (लगभग ४५० ई० पू०) के बाद और कालिदास (प्रथम शताब्दी ई० पू०) के पूर्व की रचना है ।

मृच्छकटिक के रचना-काल के विषय में दो मत मुख्यतया प्रचलित हैं :—

(१) ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी, (२) षष्ठ शताब्दी ईसवीय ।

(१) ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी—इसके लिए निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :—

(क) शूद्रक और आन्ध्रभृत्य राजा शिमुक (८३ ई० पू०) दोनों एक व्यक्ति हैं । पुराणों आदि के आधार पर ई० पू० प्रथम शताब्दी में शूद्रक राजा की सत्ता सिद्ध होती है । मृच्छकटिक उसी की रचना है ।

(ख) मृच्छकटिक भास के 'चारुदत्त' नाटक पर आश्रित है । अतः भास (४५० ई० पू० के लगभग) के बाद की रचना है ।

(ग) मृच्छकटिक में मनु (लगभग २०० ई० पू०) को प्रमाणरूप में उद्धृत किया गया है ।^२ यह भाव मनुस्मृति में प्राप्त होता है कि ब्राह्मण का वध न किया जाए ।^३ ब्यूलर (Bühler) ने मनु का समय २०० ई० पू० से लेकर २०० ई० के मध्य माना है ।

(घ) मृच्छकटिक में वैदिक धर्म के साथ ही बौद्ध-धर्म को भी आदरणीय स्थान दिया गया है । यह स्थिति ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विशेष रूप से थी ।

१. नेरूरकर—मृच्छकटिक, भूमिका पृ० १४ ।

२. अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुब्रवीत् ।

राष्ट्रादस्मात् तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ॥

(मृच्छ० ६-३६)

३. न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।

राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षयम् ॥

(मनु० ८-३८०)

सं० सा० सं० ६०—२०

(ड) राज-तन्त्र निर्बल था और असामाजिक तत्त्व प्रबल थे। यह स्थिति ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में थी। सातवाहन-वंशी राजाओं ने कण्ववंशी राजाओं को पदच्युत किया और विक्रमादित्य ने शकों को नष्ट किया।

(च) मृच्छकटिक की भाषा रामायण-महाभारत के तुल्य जन-भाषा के रूप में प्रयुक्त हुई है। भाषा सरल, सुबोध और पाण्डित्य-प्रदर्शन-रहित है। कालिदास के बाद, मुख्यतया गुप्तकाल में, भाषा में स्वाभाविकता के स्थान में कृत्रिमता, क्लिष्टता और समास-बहुलता अधिक है।

(छ) मृच्छकटिक में नाट्य-शास्त्र के प्राकृत-प्रयोग-सम्बन्धी नियमों का कठोरता से पालन किया गया है। भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र का समय २०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। अतः प्रथम शताब्दी ई० पू० मृच्छकटिक का काल ज्ञात होता है।

(ज) वररुचि-कृत प्राकृत-व्याकरण के नियमों से मृच्छकटिक की भाषा का बहुत साम्य है। कावेल (Cowell) ने वररुचि का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० माना है। ह्वेन-त्सांग (Hiuan Tsang) ने वररुचि का समय बुद्ध-निर्वाण (५४३ ई० पू०) के ३०० वर्ष बाद, अर्थात् २४३ ई० पू० के लगभग, माना है।

(झ) मृच्छकटिक (१-४) में 'कलां वैशिकीम्' वेश्या-सम्बन्धी कलाओं, अर्थात् संगीत नृत्य आदि, का उल्लेख है। वात्स्यायन (प्रथम शताब्दी ई० पू०) के कामसूत्र में 'वैशिकी' अध्याय है। अतः मृच्छकटिक का समय वात्स्यायन के आसपास का होना चाहिए। वात्स्यायन ने कामसूत्र में सातवाहन या आन्ध्र-मृत्यु वंश के एक राजा का उल्लेख भी किया है?'

अतः मृच्छकटिक का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० ज्ञात होता है।

(२) षष्ठ शताब्दी ईसवीय—इस मत के प्रतिपादन में जो युक्तियाँ दी गई हैं, उनसे केवल यही सिद्ध होता है कि मृच्छकटिक की अपर-सीमा षष्ठ शताब्दी ई० है। ये युक्तियाँ प्रथम शताब्दी ई० पू० का खंडन नहीं करती हैं।

(क) दशरूपक की धनिक (१०वीं शताब्दी ई०) कृत अवलोक टीका में मृच्छकटिक का नामोल्लेख है और उसका एक श्लोक (१०-१२) उद्धृत है।'

१. देखो, वी० वरदाचार्य—सं० सा० का इतिहास (हिन्दी) पृष्ठ १०३।

२. दशरूपक।

(ख) वामन (७२५ ई० के लगभग) ने काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति में मृच्छकटिक के दो उद्धरण दिए हैं और शूद्रक का नाम दिया है।^१

(ग) पंचतन्त्र (लगभग ५०० ई०) में मृच्छकटिक के दो श्लोक और एक पंक्ति मिलती हैं।

(घ) दण्डी (७वीं ई०) ने काव्यादर्श में 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि०' (मृ० १-३४) श्लोक उद्धृत किया है।

(ङ) मृच्छकटिक (६-३३) में 'अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः' कहकर मंगल को बृहस्पति का शत्रु ग्रह बताया है। परन्तु वराहमिहिर (६ठीं शताब्दी ई०, मृत्यु ५८६ ई०) ने इन दोनों को मित्रग्रह माना है।^२ वराहमिहिर से पहले इन्हें शत्रु-ग्रह माना जाता था।

अतः मृच्छकटिक का रचना-काल षष्ठ शताब्दी ई० से पूर्व मानना चाहिए। उपर्युक्त तर्कों में कोई ऐसा तर्क नहीं है, जो मृच्छकटिक को प्रथम शताब्दी ई० पू० से बाद में रखने के लिए पुष्ट प्रमाण हो। अतः इसका रचना-काल प्रथम शताब्दी ई० पू० मानना उचित है।

(३) मृच्छकटिक की संक्षिप्त-कथा

इस नाटक में १० अंक हैं। यह रूपक का एक भेद 'प्रकरण' है। इसमें एक निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त का वसन्तसेना नामक गणिका (वेश्या) से प्रेम-वर्णन है। अन्त में दोनों का प्रेम सफल होता है और वसन्तसेना का चारुदत्त से विवाह होता है। साथ ही 'पालक' नामक राजा को मार कर आर्यक के राजा होने का वर्णन है। अंकों के अनुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—

(अंक १) इस अंक का नाम 'अलंकार-न्यास' है। राजा का साला वसन्तसेना पर अनुरक्त है और उसे पकड़ने के लिए उसका अँधेरी रात में पीछा करता है। वह चारुदत्त के घर में घुस जाती है और अपने प्रेमी निर्धन चारुदत्त से वार्तालाप करती है तथा धूर्तों से बचने के लिए अपने गहने उतार कर उसके पास

१. (क) द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम् (मृ० २, काव्या० ४-३-२३),
यासां बलि० (मृ० १-६, का० ५-१-३); शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेषु (का० ३-२-४)।

२. जीवेन्द्राणकराः कुजस्य सुहृदः। बृहज्जातक २-१६।

छोड़ देती है। (अंक २) इस अंक का नाम 'द्यूतकर-संवाहक' है। चारुदत्त का एक पुराना नौकर संवाहक जुए में ऋणी होकर वसन्तसेना के पास आता है। वह उसे धन देकर ऋण-मुक्त करती है। वह संवाहक बौद्ध भिक्षुक बन जाता है। थोड़ी देर बाद वसन्तसेना का मत्त हाथी उस पर आक्रमण करता है और वसन्तसेना का नौकर उस नए भिक्षुक को बचाता है। चारुदत्त पुरस्कार रूप में उसे अपना उत्तरीय (रेशमी चादर) देता है। (अंक ३) इस अंक का नाम 'सन्धिच्छेद' (संध लगाना) है। वसन्तसेना की दासी मदनिका को मुक्त कराने के लिए शर्विलक चारुदत्त के मकान में संध लगाता है और वसन्तसेना के आभूषण चारुदत्त के घर से चुरा ले जाता है। चारुदत्त की पत्नी धूता उन आभूषणों के बदले में अपनी रत्न-माला देती है। विदूषक उसे वसन्तसेना के पास ले जाता है। (अंक ४) इस अंक का नाम 'मदनिका-शर्विलक' है। शर्विलक वसन्तसेना के चुराए आभूषण वसन्तसेना को देकर अपनी प्रेयसी मदनिका को मुक्त कराता है और उसे वधू बनाता है। शर्विलक को अपने मित्र आर्यक के बन्दी होने की सूचना मिलती है। वह मदनिका को छोड़कर आर्यक, जो राजा होने वाला है, को बचाने के लिए चल पड़ता है। विदूषक धूता की रत्नमाला वसन्तसेना के पास पहुँचाता है। वसन्तसेना रात्रि में चारुदत्त से मिलने आने का सन्देश भेजती है। (अंक ५) इस अंक का नाम 'दुर्दिन' है। इसमें वर्षा का सुन्दर प्राकृतिक वर्णन है। वसन्तसेना चारुदत्त के घर ही वह रात्रि बिताती है। (अंक ६) इस अंक का नाम 'प्रवहण-विपर्यय' (गाड़ी बदलना) है। अगले दिन आतः वसन्तसेना चारुदत्त की पत्नी को उसकी रत्नमाला लौटाना चाहती है, परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करती। चारुदत्त का पुत्र रोहसेन मिट्टी की गाड़ी (मृत्—मिट्टी, शकटिका—गाड़ी, मृच्छकटिक) लिए हुए आता है और शिकायत करता है कि उसे सोने की गाड़ी चाहिए। वसन्तसेना उसकी गाड़ी पर अपने आभूषण रख देती है, जिससे वह सोने की गाड़ी खरीद सके। वसन्तसेना को अपने प्रेमी चारुदत्त से मिलने उद्यान में जाना है। वह भूल से वहीं खड़ी शकार की गाड़ी पर सवार हो जाती है। आर्यक जेल से भागा हुआ है और शरण चाहता है। वह वसन्तसेना के लिए खड़ी चारुदत्त की गाड़ी पर बैठ जाता है। मार्ग में चन्दनक नामक एक सिपाही आर्यक को अभयदान देकर उसकी गाड़ी आगे जाने देता है। (अंक ७) इस अंक का नाम 'आर्यकापहरण' (आर्यक का भागना) है। आर्यक उद्यान में चारुदत्त से मिलता है। चारुदत्त उसे अभयदान देता है और उसके बन्धन कटवा

कर उसी गाड़ी में उसे विदा करता है। (अंक ८) इस अंक का नाम 'वसन्त-सेना-मोटन' (वसन्तसेना का गला घोटना) है। वसन्तसेना उद्यान में पहुँचती है। शकार उससे प्रणय-निवेदन करता है। प्रणय अस्वीकार करने पर वह वसन्तसेना का गला घोटता है। उसे मरा समझ कर पत्तों से ढँक देता है और चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का मुकदमा चलाने के लिए न्यायालय जाता है। बौद्ध भिक्षुक संवाहक वहाँ आता है और वसन्तसेना को मृतप्राय देखकर उसकी सेवा करके उसे पुनरुज्जीवित करता है। (अंक ९) इस अंक का नाम 'व्यवहार' (न्यायालय) है। शकार चारुदत्त के विरुद्ध अभियोग चलाता है। चारुदत्त बुलाया जाता है। बालक रोहसेन को दिए आभूषण लौटाने के लिए विदूषक वसन्तसेना के पास जा रहा है। उसके पास से आभूषण निकलने से सिद्ध हो जाता है कि आभूषणों के लिए चारुदत्त ने वसन्तसेना की हत्या की है। चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया जाता है। (अंक १०) इस अंक का नाम 'संहार' (उपसंहार) है। राजा पालक को मारकर आर्यक राजा हो जाता है। वह वध के लिए प्रस्तुत चारुदत्त को तुरन्त छोड़वाता है। चारुदत्त का वसन्तसेना से पुनर्मिलन होता है। वसन्तसेना चारुदत्त की वधू बनती है। चारुदत्त शकार को क्षमा कर देता है। इस प्रकार चारुदत्त-वसन्तसेना के विवाह के साथ कथा समाप्त होती है।

(४) शूद्रक की नाट्यकला-सम्बन्धी विशेषताएँ

शूद्रक का मृच्छकटिक संस्कृत-नाटक-साहित्य में एक अद्भुत रचना है। इसमें जन-जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। यह वस्तुतः जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा विरचित है। जन-जीवन का जितना विस्तृत, वास्तविक और व्यापक चित्रण मृच्छकटिक में मिलता है, उतना अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। इसकी प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(क) कथा-वस्तु या कथानक

१. यह रूपक के १० भेदों में से 'प्रकरण' रूपक है। भरतमुनि ने नाट्य-शास्त्र (अध्याय १८ श्लोक ६५-१०५) में प्रकरण के लिए जो आवश्यक निर्देश दिए हैं, उनका इसमें पालन किया गया है।

(२) नाटक की कथा-वस्तु कल्पित है ।^१

(३) इसका नायक राजा आदि न होकर एक निर्धन ब्राह्मण है तथा नायिका रानी आदि न होकर एक विदुषी गणिका है ।^२

(४) इसमें मध्यमवर्गीय पात्रों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक चित्रण है । इसमें विट, शकार, वेश्या, सार्थवाह, द्यूतकार आदि के दैनिक कार्यों का उल्लेख है ।^३

(५) इसमें नाटकीयता के साथ काव्य का भी समन्वय है ।^४

(६) इसमें प्रकरण के लिए निर्धारित १० अंक हैं ।^५

(७) इसमें शृंगार (संभोग शृंगार) रस अंगी है और हास्य, करुण, भय, अद्भुत आदि अंग रस हैं ।^६

(८) इसमें २ प्रणय-कथाएँ और एक राजनीतिक कथा परस्पर संश्लिष्ट एवं अविभाज्य रूप से प्रस्तुत की गई हैं । (१) प्रणय-कथा—चारुदत्त और वसन्तसेना, (२) प्रणय कथा—शविलक और मदनिका, (३) राजनीतिक कथा—राजा पालक का पतन और आर्यक का राज्यारूढ़ होना ।

(९) इसकी कथा आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी है ।

(१०) कथा-वस्तु में प्रारम्भ से अन्त तक गतिशीलता है ।

(११) कथानक में प्रणय-सम्बन्ध में प्रकृति-विपर्यय । सामान्यतया पुरुष स्त्री पर रीझता है । इसमें वसन्तसेना स्त्री चारुदत्त पुरुष पर रीझती है ।

१. यत्र कविरात्मबुद्ध्या वस्तु शरीरं च नाटकं चैव ।

औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद् बुधैर्ज्ञेयम् ॥ (नाट्य० १८-६६)

२. विप्रवर्णिकसचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम् ।

चरितं यत्रैकविधं ज्ञेयं तत् प्रकरणं नाम ॥ (ना० १८-६६)

नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसंभोगः । (ना० १८-१००)

३. दासविटश्रेष्ठियुतं वेशस्त्र्युपचारकरणोपेतम् ॥ (ना० १८-१०१)

४. काव्यं कार्यं प्रयोगे तु । (नाट्य० १८-१०१)

५. प्रकरणनाटकविषये पञ्चाद्या दश परास्तथा चैव ।

अंकाः कर्तव्याः स्युः । (ना० १८-१०५)

६. नानारसभावसंयुक्ताः ॥ (ना० १८-१०५)

(१२) कथानक के मध्य में (अंक ५ में) प्रणय-सम्बन्ध की परिपूर्णता । अंक ५ में दोनों का प्रणय-सम्बन्ध पूर्ण हो जाता है, सामान्यतया नाटक के अन्त में इसकी पूर्णता होती है ।

(ख) पात्र

(१३) सभी कोटि के पात्र लिए गए हैं । निम्न श्रेणी के पात्रों की संख्या अधिक है, अतः नाटक अधिक यथार्थवादी है ।

(१४) पात्र सभी वर्गों का तथा जीवन के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे केवल राजापेक्षी नहीं हैं ।

(१५) गौण पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष जागरूकता दृष्टिगोचर होती है ।

(१६) पात्रों में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है । वे लेखक के हाथ की कठ-पुतली नहीं हैं ।

(१७) पात्र सार्वभौम हैं । वे किसी भी देश, काल और समाज में सरलता से प्राप्य हैं । उनके आचरण सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं ।

(१८) चरित्र-चित्रण में मानववादी दृष्टिकोण है । मानव-सुलभ सद्गुणों और दुर्गुणों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है ।

(ग) शैली

(१९) शैली में सरलता, सरसता, स्पष्टता और अकृत्रिमता है ।

(२०) सरल भाषा का प्रयोग किया गया है और कठिन समासों का अभाव है ।

(२१) इसमें वैदर्भी रीति अपनाई गई है । कहीं-कहीं गौडी रीति का भी आश्रय लिया गया है ।

(२२) भवभूति जैसी क्लिष्ट रचना का इसमें सर्वथा अभाव है ।

(२३) वर्णन अपेक्षाकृत छोटे हैं । इसमें कल्पना की ऊँची उड़ानों का सर्वथा अभाव है, तथापि वर्णनों में सहृदयता और रोचकता है ।

(घ) कथोपकथन

(२४) संवाद सजीव हैं ।

(२५) लम्बे कथोपकथन का अभाव है ।

(२६) उत्तर-प्रत्युत्तर छोटे और स्वाभाविक हैं।

(२७) संवादों में व्यंग्य और हास्य का सुन्दर पुट है।

(२८) संवादों में यथार्थता और स्वाभाविकता है।

(२९) संवादों में प्रसंग के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है।

(ङ) अन्वितित्रय

(३०) अन्य भारतीय नाटकों के तुल्य इसमें भी अन्वितित्रय (संकलनत्रय) का अभाव है।

(च) उद्देश्य

(३१) इसमें यथार्थ जीवन का मूल्यांकन किया गया है।

(३२) कर्म के आधार पर उच्चता और नीचता का सिद्धान्त माना गया है।

(३३) गुणों से मनुष्य का महत्त्व होता है, जाति या वर्ग आदि के आधार पर नहीं।

(३४) ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का समन्वय प्रदर्शित किया गया है।

(३५) चरित्र की उदात्तता पर बल दिया गया है।

(३६) राजनीति में जनतान्त्रिक तत्त्वों के महत्त्व का प्रतिपादन है।

(३७) समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति और समाज में उनकी उपयोगिता का प्रतिपादन है।

(छ) अभिनेयता

(३८) नाटक अधिक लम्बा है। १० अंक हैं। प्रत्येक अंक में कई दृश्य हैं। ५वें अंक में वर्षा-वर्णन तथा चौथे अंक में वसन्तसेना के प्रासाद के ७ खंड रंगमंच पर दिखाना संभव नहीं है।

(३९) पूरा नाटक एक बैठक में दिखाना संभव नहीं है। २ बैठकों में दिखाने से निरन्तरता नहीं रहेगी और रस-भंग होगा।

(४०) नाटक की कथावस्तु अभिनय के लिए पूर्णतया उपयुक्त है। एक बैठक में पूरे नाटक का अभिनय करने के लिए आवश्यक है कि अनावश्यक विस्तार एवं अनुपयुक्त दृश्यों को छोड़ दिया जाए। इस प्रकार संक्षिप्त नाटक अभिनय के लिए उपयोगी हो सकेगा।

(५) शूद्रक की शैली

शूद्रक एक सफल नाटककार होने के साथ ही कुशल कवि भी है। उसने प्रयत्न किया है कि सभी नाटकीय गुण मृच्छकटिक में समाविष्ट हों, साथ ही कवित्व की भी सुन्दर झाँकी मिले। प्रकृति-वर्णन, वर्षा-वर्णन, दारिद्र्य-वर्णन, न्यायालय-वर्णन, नारी-स्वभाव-वर्णन, द्यूत-वर्णन आदि अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो सहृदय पाठक का हृदय बलात् हर लेते हैं। शूद्रक वैदर्भी रीति का कवि है। कहीं-कहीं पर गौड़ी रीति को भी अपनाया है। भाषा में सरलता, स्पष्टता और सुबोधता है। इस सरलता गुण के कारण ही शूद्रक का नाम भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रसाद गुणयुक्त पद-रचना नाटक में सजीवता और शक्तिमत्ता ला देती है। सरस अमिव्यंजना पर भी कवि का पूर्ण अधिकार है। शूद्रक के छोटे, भावपूर्ण एवं मार्मिक पद्य हृदय पर तीर का-सा प्रभाव डालते हैं।

पंचम अंक में उद्दीपन विभाव के रूप में वर्षा का वर्णन कई श्लोकों में प्राप्त होता है। वसन्तसेना बिजली में सपत्नी के क्रोध का भाव देखती है। बिजली कड़क कर वसन्तसेना को प्रियतम के घर जाने से रोक-सी रही है।

मूढे निरन्तरपयोधरया मयैव,

कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र ।

मां गर्जितैरिति मुहुर्बिनिवारयन्ती

मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी ॥

मृ० ५-१५

सपत्नी के तुल्य क्रुद्ध रात्रि बार-बार गर्जन के द्वारा मुझे मना कर रही है और मेरा मार्ग रोक रही है। हे मूर्ख रात्रि, यदि मेरे प्रियतम (चारुदत्त) सघन कुचों वाली मुझसे मिलते हैं तो इसमें तेरी क्या हानि है?

वर्षा ऋतु का कितना सजीव वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है—

गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने

वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः ।

प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना

ब्रवीभूतं मय्ये पतति जलरूपेण गगनम् ॥ मृ० ५-२५

दुर्जन पर किए गए उपकार के तुल्य तारे विलीन हो गए हैं; पति से वियुक्त

स्त्रियों के तुल्य (सूर्य से वियुक्त) दिशाएँ शोभित नहीं हो रही हैं। इन्द्र के वज्र की आग से अत्यधिक तप्त होकर आकाश मानो जल के रूप में बरस रहा है।

विट ने वर्षा ऋतु का मनोहर वर्णन किया है। कीचड़ से सने हुए और वर्षा के जल से ताड़ित मेंढक जल पी रहे हैं; कामातुर मोर मधुर ध्वनि कर रहे हैं; कदम्ब वृक्ष दीपक के तुल्य शोभित हो रहा है; अकुलीन व्यक्ति जिस प्रकार संन्यास आश्रम को कलंकित करते हैं, उसी प्रकार बादल चन्द्रमा को घेरे हुए हैं; नीच कुल की स्त्री के तुल्य बिजली एक स्थान पर नहीं रुकती है, इधर-उधर घूमती है।

पङ्कक्लिन्नमुखाः पिबन्ति सलिलं धाराहता दर्वुराः

कण्ठं मुञ्चति बर्हिणः समदनो नीपः प्रदीपायते ।

संन्यासः कुलदूषणैरिव जनैर्भेद्यत्तश्चन्द्रमा

विद्युन्नीचकुलोदगतेव युवतिर्नैकत्र संतिष्ठते ॥ मृ० ५-१४

बादल नवीन घनाढ्य व्यक्ति के तुल्य नित नए रूप दिखा रहा है। कभी ऊपर उठता है, कभी नीचे झुकता है, कभी बरसता है, कभी गरजता है और कभी अन्वकार फैलाता है।

उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौघम् ।

प्रथमशोरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि ॥ मृ० ५-२६

वसन्तसेना के इस कथन से स्त्री-स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया है कि प्रियतम से मिलने के लिए जाती हुई स्त्रियों को कोई नहीं रोक सकता है। भले ही बादल गरजें, बरसें या बिजली गिरावें।

गर्ज वा वर्ष वा शक्र, मुञ्च वा शतशोऽशनिम् ।

न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ मृ० ५-३१

वसन्तसेना की इस उक्ति में भी चमत्कार है कि बादलरूपी पुरुष भले ही स्त्रियों का दुःख न समझें, क्योंकि पुरुष निष्ठुर होते हैं। हे विद्युत्, तू स्त्री होते हुए भी स्त्रियों के दुःख को नहीं समझती ?

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।

अपि विद्युत् प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥ मृ० ५-३२

जीवन में निर्धनता कितनी दुःखद होती है, इसका कितना मार्मिक प्रतिपादन कवि ने चारुदत्त के शब्दों में किया है—

निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो धैर्यमपरं

जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।

वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो

हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ॥ मृ० १-१५

निर्धनता चिन्ताओं का आश्रय है; शत्रुओं के अपमान का आधार है; अन्यो से शत्रुता, मित्रों की धृणा और आत्मीय जनों से शत्रुता का कारण है। घर छोड़कर वन में जाने की इच्छा होती है। पत्नी से अपमान होता है। यह हृदय में विद्यमान शोकरूपी अग्नि है, जो एक बार जलाकर नष्ट नहीं कर देती, अपितु सदा सन्तप्त करती रहती है।

न्यायालय का सजीव चित्रण कवि की राज-कार्य-विदग्धता को सूचित करता है। कवि ने न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनीति की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है।

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं

पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंसाश्रयम् ।

नानावाशककङ्कपक्षिरुचिरं

कायस्थसर्पास्पदं

नीतिभुण्णतटं च राजकरणं हितैः समुद्रायते ॥ मृ० ६-१४

हिंसात्मक कार्यों के कारण न्यायालय समुद्र के तुल्य है, जिसमें चिन्तायुक्त मन्त्री जल हैं, दूतगण तरंग और शंख हैं, चारों ओर बैठे हुए गुप्तचर घड़ियाल और मगर हैं, हाथी-घोड़े हिंसक जलजन्तु हैं, विविध वादी-प्रतिवादी कंक पक्षी हैं, लेखक (पेशकार) कायस्थ सर्प हैं और नीति ही टूटा हुआ किनारा है।

शूद्रक का मनोवैज्ञानिक निरीक्षण उच्च कोटि का है। उसने स्त्री-स्वभाव के उच्च और नीच दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है। वह स्त्री को एक ओर मार्ग-दर्शक तथा ज्ञान की ज्योति बतलाता है तो दूसरी ओर उसे धन-लोभी, अविश्वसनीय और अत्यन्त स्वार्थी बताता है। शर्विलक स्त्री-बुद्धि को मार्ग-दर्शक बतलाता है।

मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता ।

निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः ॥

मृ० ४-२१

स्त्री-स्वभाव का कितना सुन्दर चित्रण किया है कि वे जन्म से चतुर होती हैं। मनुष्य विद्या पढ़कर चतुर होता है।

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसगदिव पण्डिताः ।

पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥ मृ० ४-१६

नाटककार ने स्त्रियों के घनलोभ और अविश्वसनीयता का भी मार्मिक वर्णन किया है ।

अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे, ये स्त्रीषु च श्रोषु च विश्वसन्ति ।

श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि ॥ ४-१२

जो स्त्रियों और लक्ष्मी पर विश्वास करते हैं, वे मनुष्य मूर्ख हैं । स्त्रियाँ और लक्ष्मी सर्पिणी के तुल्य कुटिल चाल चलती हैं ।

कवि ने विट के शब्दों में स्त्री-हृदय का मार्मिक चित्रण किया है कि प्रेम के द्वारा ही स्त्री को वश में किया जा सकता है । यदि प्रेम नहीं है तो उसके हृदय पर अधिकार असंभव है ।

आलाने गृह्यते हस्ती, बाजी बलासु गृह्यते ।

हृदये गृह्यते नारी, यदिदं नास्ति गम्यताम् ॥ मृ० १-५०

हाथी को खंभे से, घोड़े को लगाम से और स्त्री को हृदय से वश में किया जाता है । यदि ऐसी बात न हो तो निराश चले जाओ ।

कवि ने जुए की बहुत प्रशंसा की है । साथ ही उसका दुष्परिणाम भी बताया है ।

द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनं राज्यम् ॥ (अंक २)

जुआ मनुष्य के लिए बिना सिंहासन का राज्य है ।

जुए के लाभ-हानि का कितना विशद वर्णन है :—

द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव, दारा मित्रं द्यूतेनैव ।

दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव, सर्वं नष्टं द्यूतेनैव ॥

मृ० २-८

जुए से ही धन मिला । जुए से ही स्त्री और मित्र मिले । जुए से ही दान और भोग किया और जुए से ही सर्वनाश हुआ ।

कवि ने यह भी घोषित किया है कि जुआ ऐसा दुर्व्यसन है, जिसके खेलने का अधिकारी वही मनुष्य है, जिसे घोर कष्ट और घोर अपमान सहने का अभ्यास हो ।

यः स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुल्लम्बितो

यस्योद्धर्षणलोष्ठकैरपि सदा पृष्ठे न जातः किञ्च ।

यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जङ्घान्तरं चर्व्यते

तस्यात्यायतकोमलस्य सततं द्यूतप्रसङ्गेन किम् ॥ मृ० २-१२

जो दिन भर उल्टे सिर न लटक सके, पत्थरों पर घसीटे जाने से जिसकी पीठ पर चिह्न न पड़े, कुत्तों से जिसकी जाँघ न चबाई गई हो, ऐसे सुकुमार व्यक्तियों को जुआ नहीं खेलना चाहिए।

कवि ने संभोग शृंगार का भी सुन्दर वर्णन किया है।

धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम् ।

आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ॥ मृ० ५-४६

उन मनुष्यों का जीवन धन्य है, जो स्वयं घर में आई हुई प्रेयसियों के वर्षाजल से भीगे एवं शीतल अंगों का अपने अंगों से आर्द्रगन्ध करते हैं।

कवि ने विभिन्न वर्णनों के साथ कुछ उच्चकोटि की नैतिक शिक्षाएँ भी दी हैं। चारुदत्त का कथन है कि—

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः ।

विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥ मृ० १०-२७

मैं मरने से नहीं डरता हूँ। मुझे डर यही है कि मेरा यश कलंकित हुआ है। निष्कलंक मेरी मृत्यु होती तो मुझे पुत्रजन्म के तुल्य सुख होता।

(६) चारुदत्त और मृच्छकटिक का साम्य-वैषम्य

चारुदत्त और मृच्छकटिक के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि मृच्छकटिक भास के चारुदत्त पर आश्रित नाटक है। शूद्रक ने अपूर्ण चारुदत्त को पूर्ण बनाकर मृच्छकटिक का रूप दिया है। दोनों में घनिष्ठ समानताएँ हैं। साथ ही अनेक विषमताएँ भी हैं।

(क) समानता

चारुदत्त

मृच्छकटिक

१. कथा-साम्य ।

१. कथा समान है।

(वसन्तसेना-चारुदत्त की प्रेमकथा)

२. पद्य-साम्य ।

२. पद्य प्रायः वे ही हैं।

३. पात्र-साम्य ।

३. पात्र प्रायः वे ही हैं।

- | | |
|--|---|
| ४. चार अंकों के गद्य, पद्य, कथा आदि में समानता । | ४. चार अंकों की कथा, गद्य आदि में पर्याप्त साम्य है । |
| ५. सुभाषित पद्य एवं गद्य । | ५. सुभाषित पद्य एवं गद्य । |

(ख) विषमताएँ

- | | |
|---|---|
| १. केवल चार अंक हैं । | १. नाटक १० अंकों में है । |
| २. केवल प्रणय-कथा । | २. प्रणय-कथा के साथ राजनीति का संबंध है । पालक की कथा भी है । |
| ३. राजनीति का अभाव । | ३. राजनीति का मिश्रण है । |
| ४. पालक की कथा का अभाव । | ४. पालक की कथा समन्वित की है । |
| ५. नाटक अपूर्ण है । | ५. नाटक पूर्ण है । |
| ६. प्रस्तावना में लेखक परिचय नहीं है । | ६. प्रस्तावना में लेखक-परिचय है । |
| ७. नान्दी-पाठ नहीं है । | ७. नान्दी-पाठ है । |
| ८. जुआरियों के दृश्य का अभाव । | ८. जुआरियों का दृश्य है । |
| ९. हास्यरस का अभाव । | ९. हास्यरस का वर्णन है । |
| १०. पात्रों की संख्या कम है । | १०. पात्रों की संख्या अधिक है । |
| ११. चोर ब्राह्मण का नाम सज्जलक । | ११. चोर ब्राह्मण का नाम शविलक । |
| १२. प्रस्तावना में पालक का नाम नहीं । | १२. प्रस्तावना में पालक का नाम है । |
| १३. प्राकृतों का वैविध्य नहीं है । | १३. सात प्राकृतों का प्रयोग है । |
| १४. प्राकृतों का प्राचीन रूप है । | १४. प्राकृतों का नवीन रूप है । |
| १५. प्राकृतों में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्द हैं । | १५. प्राकृतों में देशी शब्दों की प्रचलना है । |
| १६. पद्य-रचना कम प्रशस्त । | १६. पद्य-रचना अधिक प्रशस्त । |
| १७. समान श्लोक अपरिष्कृत हैं । | १७. समान श्लोकों का परिष्कार है । |
| १८. संस्कृत का प्राचीनतर रूप है । | १८. संस्कृत का नवीन रूप मिलता है । |
| १९. व्याकरण की न्यूनताएँ हैं । | १९. व्याकरण की न्यूनताओं का संशोधन किया गया है । |

२०. कुछ असंगतियाँ हैं। २०. असंगतियों का निराकरण किया है।
 २१. घटनाक्रम में विविधता नहीं है। २१. घटनाक्रम में विविधता है।
 २२. आर्यक का उल्लेख नहीं है। २२. आर्यक के राजा होने का वर्णन है।

(७) मृच्छकटिक का सामाजिक और राजनीतिक मूल्यांकन

सांस्कृतिक मूल्यांकन के लिए मृच्छकटिक अत्यन्त महत्वपूर्ण नाटक है। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का यथार्थ स्वरूप वर्णित है। इसमें चारों वर्णों की स्थिति, नारी का समाज में स्थान, शूद्र वर्ग की स्थिति, समाज में प्रचलित जुए आदि व्यसन, संगीत नृत्य तथा कलाओं की उन्नति, देश की आर्थिक स्थिति, राजनीतिक दुरवस्था, न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा दण्डविधान में कठोरता आदि का विशद चित्रण मिलता है।

सामाजिक अवस्था—चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था प्रचलित थी। ब्राह्मणों का स्थान उच्च था। उन्हें आदरणीय माना जाता था। ब्राह्मण भी वैश्य का कार्य करते थे। कुछ ब्राह्मण चोरी भी करते थे। वे कर्मानुसार वैश्य या शूद्र माने जाते थे। चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा वैश्य है और शर्विलक ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा चोर है। समाज में स्त्रियों का आदरपूर्ण स्थान था। कुलवधू का पद उच्चकोटि का था। स्त्रियों के दो वर्ग थे—कुलवधू और गणिका। गणिकाओं के भी दो वर्ग थे—वेश्या और गणिका। वेश्याएँ अपने रूप-यौवन द्वारा धनोपार्जन करती थीं तथा गणिकाएँ नृत्य-संगीत आदि को अपनी आजीविका का साधन मानती थीं। वसन्तसेना गणिका-कोटि में है। गणिका भी विवाह करके कुलवधू हो सकती थी। समाज में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान था। स्त्रियाँ बहुमूल्य आभूषण पहनती थीं। राजा लोग कुछ खेलियाँ भी रखते थे। शकार इसी प्रकार की एक खेली स्त्री (काणेलीमाता-अविवाहिता स्त्री या खेली का पुत्र) का पुत्र था। शकार को राजा पालक का साला (राजश्यालः) कहा गया है, अर्थात् शकार की बहिन पालक की खेली थी। जुए का बहुत प्रचार था। जुआ वैध कार्यों में था। जुए में हार कर रुपया न देने पर उसका मुकदमा न्यायालय में चलाया जा सकता था। जुआ खेलने वालों का प्रमुख समिक होता था। वह जुए के मुकदमों का निर्णय करता था। शराब पीने की भी प्रथा थी। दास-प्रथा का प्रचलन था। वसन्तसेना ने मदनिका को धन देकर खरीद रखा था। शर्विलक रुपया देकर उसे दासीत्व से मुक्त कराता

है। संगीत, नृत्य आदि कलाएँ उन्नत अवस्था में थीं। कुछ गणिकाएँ, जैसे वसन्तसेना, उच्चकोटि की कलाप्रेमी और कलाकार थीं। वे संगीत, नृत्य आदि के द्वारा असीम धन उपार्जित करती थीं। वसन्तसेना और चारुदत्त का वैभव उस समय की उन्नत आर्थिक स्थिति को सूचित करता है। निर्धन चारुदत्त की पत्नी धूता के पास चतुःसमुद्रसारभूत रत्नावली थी। धनी बच्चे सोने की गाड़ी से खेलते थे। शूद्रवर्ग की स्थिति बहुत अच्छी थी। शूद्र वीरक (नाई) और चन्दनक (चमार) सेनापति हैं। गोप-बालक (यादव) आर्यक राजापालक को मारकर राजा बनता है। समाज में कोई भी उच्चतम स्थान उन्हें मिल सकता था। वैश्यों की स्थिति भी उन्नत थी। उनके अलग मुहल्ले (श्रेष्ठिचत्वर) होते थे। ब्राह्मण भी वैश्य कर्म करने में संकोच नहीं करते थे। चारुदत्त सार्थवाह-पुत्र है और स्वयं भी सार्थवाह (वणिक्) है। उस समय वैदिक धर्म राजधर्म था और उसका ही सर्वत्र प्रचार था। बौद्ध धर्म अवनति पर था। कुछ बौद्ध संन्यासी दुराचार और दुर्व्यसनों में फंसे हुए थे। चोरी भी वैज्ञानिक कार्य बन गया था। इसके शास्त्र और नियम थे।

राजनीतिक अवस्था—उस समय राजनीतिक अवस्था बहुत बिगड़ी हुई थी। राजा दुर्व्यसनी, विलासी, अयोग्य और अनुदार थे। राजा पालक का शासन-प्रबन्ध अत्यन्त दूषित था। जनता उससे असंतुष्ट थी। शासन-प्रबन्ध इतना ढीला था कि चोर, उचक्के और लफंगों का प्रकोप था। कोई भी बहू और बेटी रात्रि में निःशंक नहीं निकल सकती थी। शकार जैसे लम्पट वसन्तसेना का पीछा करके उससे बलात्कार करना चाहते हैं, अन्यथा उसे मार डालने की धमकी देते हैं। राजा अपने विरोधियों और विद्रोहियों को जेल में डाल देते थे। राज्य में कभी भी विद्रोह हो सकता था। अतएव आर्यक को जेल में डाला गया था। वह छूटकर पालक की हत्या करता है और स्वयं राजा बनता है। राज-परिवार के लोग उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होते थे। वे अपने राजकीय संबन्धों का अनुचित लाभ उठाते थे। शकार सदा अपने आपको राजश्यालः कहकर किसी को डराता है, किसी को धमकाता है और न्यायाधीश तक को अपनी इच्छा के अनुसार निर्णय देने के लिए बाध्य करता है। न्याय और दण्ड-व्यवस्था भी अत्यन्त अव्यवस्थित थी। न्यायाधीश चारुदत्त को निर्दोष जानने पर भी उसे मृत्युदण्ड से नहीं रोक सके। झूठे बयान, झूठी गवाही, घूस लेना आदि दुर्गुण

न्यायालयों में पूर्णतया व्याप्त थे। राज-विद्रोह, हत्या तथा अन्य ऐसे कार्यों पर फाँसी पर चढ़ाने का प्रचलन था। ब्राह्मण को फाँसी पर न चढ़ाकर सामान्यतया देश से निर्वासित किया जाता था। फिर भी राजा की आज्ञा अन्तिम होती थी। अतएव पालक के आदेशानुसार चारुदत्त को फाँसी की सजा दी गई। किसी भी समय देश में विद्रोह होकर राजा को गद्दी से हटाया जा सकता था और तुरन्त नए राजा का शासन लागू हो जाता था। आर्यक ने गद्दी पर बैठते ही चारुदत्त को मृत्युदण्ड से मुक्त कर दिया।

(८) चारुदत्त और वसन्तसेना

शूद्रक ने चारुदत्त और वसन्तसेना के चरित्र-चित्रण में असाधारण कुशलता दिखाई है। दोनों सामान्य भारतीय नागरिकों के प्रतिनिधि हैं और जनसाधारण की भावना से ओतप्रोत हैं। ये दोनों वस्तुतः विश्व-नागरिक भी हैं और विश्व के किसी भी कोने में ऐसे नायक-नायिका प्राप्त किए जा सकते हैं। फिर भी इनके चरित्रों में भारतीयता की पुट भरी हुई है।

चारुदत्त—चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा सार्थवाह (वैश्य) है। वह अत्यन्त उदार, गुणी, कलावित्, सुरूप, दानी, सहृदय, परोपकारी और गुणग्राही युवा है। उज्जयिनी उसके गुणों पर मुग्ध है। वह अतिदानशीलता के कारण निर्धन हो गया है। वसन्तसेना उसके गुणों पर अत्यन्त मुग्ध है और उसे पति के रूप में वरण करना चाहती है। चारुदत्त भी हृदय से वसन्तसेना पर अनुरक्त है और उसकी प्रेमपूर्ण भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता। निर्धन हो जाने पर भी उसका हृदय अत्यन्त सहृदय और विशाल है। वह कीर्ति को सर्वोत्तम मानता है और तदर्थ मरने से भी नहीं डरता। वह धर्मपरायण है। धार्मिक कृत्यों का विधिवत् अनुष्ठान करता है। परिणीता वधू धूता से उसका प्रेम अक्षुण्ण है। गार्हस्थ्य-जीवन का उसे पूरा ध्यान है। बालक रोहसेन उसके हृदय का टुकड़ा है। वह अपने निश्चय के लिए सर्वस्व का त्याग कर सकता है। उसका चरित्र उदात्त और प्रशंसनीय है।

वसन्तसेना—वसन्तसेना उज्जयिनी की विख्यात गणिका है। उसके पास कुबेर के समान धन-लक्ष्मी है। वह सौन्दर्य, कला और सुशीलता की अप्रतिम प्रतिमूर्ति है। वह प्रगल्भा नायिका है। उसका प्रेम अदम्य, अविचल और आदर्श है। उसमें निर्भीकता, धैर्य, गुणग्राहिता, अलोलुपता, सहनशीलता और

त्याग की उत्कृष्ट भावना है। वह शरणागतों की रक्षा करती है, लम्पटों (शकार आदि) को दुत्कारती है, मदनिका और शविलक के प्रेम का आदर करती है तथा उसे दासीत्व से मुक्त करती है। चारुदत्त से उसका प्रेम अविभाज्य है। शकार ने गला घोट कर जब उसे मारा है, तब भी उसके अन्तिम शब्द हैं—नम आर्य-चारुदत्ताय (अंक ८)। वह धर्मपरायण है। नियमित पूजा-पाठ करती है।

प्रभावशाली व्यक्ति—आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यद्यपि चारुदत्त सफल नायक है, आदर्श प्रेमी है, अत्यन्त परोपकारी है, तथापि जहाँ तक प्रभावशाली व्यक्तित्व का प्रश्न है वसन्तसेना ही नाटक में सबसे अधिक प्रभावशाली है। उसका व्यक्तित्व सर्वातिशायी है। प्रत्येक घटना में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह घटनाचक्र का नियामिका है। विद्युत् की भाँति रंगमंच पर विचरण करती है। सज्जन से लेकर दुर्जन तक उसके गुणों पर मुग्ध हैं और उसकी प्रेमभरी दृष्टि के लिए लालायित हैं। भास के चारुदत्त में यद्यपि चारुदत्त का व्यक्तित्व प्रधान है, तथापि मृच्छकटिक में वसन्तसेना का ही व्यक्तित्व प्रभावशाली चित्रित किया गया है।

(६) मृच्छकटिक की सार्वभौमिकता एवं लोकप्रियता

संस्कृत के नाटकों में केवल मृच्छकटिक को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसे सार्वभौमिक कहा जा सके। विश्व के किसी भी भाग में इसके पात्र, तत्सम परिस्थितियाँ और समस्याएँ तथा कार्य-व्यापार किसी भी समय प्राप्त हो सकते हैं। इसमें किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह का पूर्णतया अभाव है। दैनन्दिन व्यवहार में घटित होने वाली घटनाओं का वास्तविक चित्रण है, अतएव यह नाटक इतना सार्वभौम एवं लोकप्रिय हुआ है। इसकी सार्वभौमिकता एवं लोकप्रियता के प्रमुख कारण ये हैं:—

(१) नायक और नायिका रूढिसंमत नहीं हैं। केवल राजा, ब्राह्मण या उच्चकुल से संबद्ध व्यक्ति ही नायक-नायिका हो सकते हैं, इस नियम का परित्याग किया गया है। 'प्रकरण' नाटकों में ऐसी ही व्यवस्था है।

(२) इसमें सामान्य जन-जीवन का चित्रण किया गया है। इसमें उच्च-वर्ग से लेकर निम्नवर्ग तक के पात्र हैं। इसमें ब्राह्मण, राजा, राज-विद्रोही, चोर, उच्चके, सिपाही, जुआरी, चाण्डाल, बौद्ध संन्यासी, गणिका, सती साध्वी पत्नी, सभी का चित्रण मिलता है। सभी अपने स्वभाविक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

(३) यह प्रगतिवादी एवं समाजवादी नाटक है। इसमें शोषित, दलित एवं उपेक्षित वर्ग का सहानुभूति-पूर्ण चित्रण है। उन्हें राजा तथा अन्य उच्च पदों पर प्रतिष्ठित दिखाया गया है। अतएव समाजवादी और साम्यवादी देशों में यह नाटक अतिप्रिय हुआ है।

(४) इसमें सभी वर्गों का संतुलित चित्रण किया गया है। सभी वर्ग के पात्रों के गुण-दोषों का नीर-क्षीर-विवेक प्रस्तुत किया गया है। एक ओर ब्राह्मणों के गुणों का वर्णन है तो दूसरी ओर उनमें व्याप्त बुराइयों का भी चित्रण है। गणिकाओं के दोषों के साथ ही उनके सद्गुणों का भी यथार्थ चित्रण है। इसी प्रकार सभी अन्य वर्गों के गुण-दोषों का विवेचन है।

(५) इसके पात्र सार्वभौम हैं। सभी देशों में, सभी काल में, ऐसे पात्र सहज प्राप्य हैं। जैसे—शविलक (चोर ब्राह्मण), मैत्रेय (विदूषक), वसन्तसेना, मदनिका, शकार, सभिक, जुआरी आदि।

(६) इसमें समाज का सार्वभौम एवं सार्वकालिक यथार्थ चित्रण है।

(७) इसमें मनुष्य का महत्त्व गुण और कर्म से आँका गया है, न कि जन्म के आधार पर।

(८) जन-जीवन का राजनीति से समन्वय दिखाया गया है।

(९) इसमें रूढिगत विचारों का परित्याग किया गया है, जैसे—गणिका का कुलवधू होना; गणिकाओं से ब्राह्मणों का विवाह; नाई, चमार आदि का सेनापति होना; मध्यमवर्गीय व्यक्ति का राजा होना।

(१०) इसकी लोकप्रियता के ये कारण हैं—यथार्थ वर्णन, प्रसाद और मार्घ्य गुणयुक्त पद्य, सजीव संवाद, पात्रों में प्रत्युत्पन्नमतित्व और नाटक की सरलता।

(१०) मृच्छकटिक की प्राकृत

प्राकृत भाषाओं के प्रयोग की दृष्टि से मृच्छकटिक का बहुत अधिक महत्त्व है। मृच्छकटिक के टीकाकार पृथ्वीधर के अनुसार इसमें संस्कृत भाषा के अतिरिक्त सात प्राकृतों का प्रयोग हुआ है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में देश और पात्र के अनुसार विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग का निर्देश किया है। भरतमुनि ने प्राकृतों में सात को भाषा तथा शेष को विभाषा माना है। सात भाषाएँ हैं—मागधी,

अवन्तिजा, प्राच्या, सूरसेनी (शौरसेनी), अर्धमागधी, बाह्लीक, दाक्षिणात्य (माहाराष्ट्री) । शाबरी, आभीरी, चाण्डाली, सचरी, द्राविडी, उद्रजा, वनेचरों की भाषा, विभाषाएँ हैं ।

मागध्यवन्तिजा प्राच्या सूरसेन्यर्धमागधी ।

बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः ॥ (ना० १७-४८)

शाबराभीरचण्डालसचरद्राविडोद्रजाः ।

होना वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृता ॥ (ना० १७-४९)

संभवतः शूद्रक ने नाट्यशास्त्र के नियमों के पालन के लिए ही इतनी प्राकृतों का प्रयोग किया है । पृथ्वीधर के अनुसार ७ प्राकृतों में ४ भाषा (शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या और मागधी) और ३ विभाषा (शकारी, चाण्डाली और ढक्की) हैं । मृच्छकटिक के ३० पात्रों में ६ संस्कृत बोलते हैं, शेष प्राकृत । इसका विवरण निम्नलिखित है :—

(१) संस्कृत—(६ पात्र) चारुदत्त, आर्यक, शर्विलक, विट, सूत्रधार, अधिकरणिक ।

(२) शौरसेनी—(११ पात्र) सूत्रधार, नटो, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना, उसकी माता और चेटी, कर्णपूरक, धूता, शोधनक और श्रेष्ठी ।

(३) अवन्तिजा (अवन्तिका, आवन्ती)—(२ पात्र) चन्दनक, वीरक ।

(४) प्राच्या—(१ पात्र) विदूषक ।

(५) मागधी—(६ पात्र) संवाहक, शकार का चेट स्थावरक, कुंभीलक, वर्धमानक, रोहसेन, भिक्षु ।

(६) शकारी—(१ पात्र) शकार (संस्थानक) ।

(७) चाण्डाली—(२ पात्र)—दोनों चाण्डाल ।

(८) ढक्की—(३ पात्र)—समिक, माथुर, द्यूतकार ।

ढक्की नाम के विषय में मतभेद है । डा० कीथ ने इसका टक्की या टाक्की नाम माना है । यह उकारबहुल भाषा मानी गई है । डा० ग्रियर्सन और कीथ इसे पश्चिमी प्राकृत मानते हैं और डा० पिशेल पूर्वी प्राकृत । इसमें पूर्वी प्राकृत के लक्षण अधिकता से मिलते हैं ।

प्राकृत

विशेषताएँ

१. शौरसेनी (१) प्र० एक० में ओ, एषः>एसो, जनः>जणो (पृ० ४२८), (२) प्र० पु० १ के द का लोप नहीं, विपद्यते>विपज्जदि (पृ० ४२८), प्रेक्षते>पेक्खदि (पृ० ४२७), (३) श को स, श्लाघनीयानि>सलाहणिआइं (पृ० ४२७) ।
२. अवन्तिका (१) प्र० १ में ओ, एषः>एसो (पृ० ३३६), (२) तु को द, भणति>भणादि (पृ० ३३६), (३) स को श, वसन्त-सेना>वशन्तशेणा (पृ० ३३६), (४) न को ण, पूर्वोक्त उदा०, (५) र को ल, आरूढा>आलूढा (पृ० ३३६) । चन्दनक र को र, ल को ल और श को स बोलता है । आरूढः>आरूढो (पृ० ३४५), शरणागतः>सरणाअदो (पृ० ३४५) ।
३. प्राच्या (१) य को ज, यः>जो (२१), (२) श>स, शत>सद, अशितः>असिदो (२१), (३) र>ल, दरिद्रतया>दलिद्ददाए (पृ० २१), (४) प्र० १ में ओ, एषः>एसो (२५) ।
४. मागधी (१) प्र० १ में ए, एषः>एशे (१२३), (२) स्>श, कस्य>कश्श, (३) र>ल, द्वारके>दुआलके ।
५. शकारी (१) र>ल, शूरः>शूले (७२), (२) स>श, ससुवर्णा>शशुवण्णा (७८) (३) त>द, श्वेतकेतुः>शेदकेदू (७२), (४) टवर्गप्रधान, वृन्ता>वेण्टा (७६)
६. चाण्डाली (१) सं० १ में आ, चारुदत्त>चालुदत्ता (५२७), (२) र>ल, रे चारुदत्त>ले चालुदत्ता (५२७), (३) श ष स>श, करोषि>कलेशि (५३२), अपसरत>ओशलघ (५४८), (४) प्र० १ में ए, नप्ता>णत्थिके (५२८), (५) स्वार्थिक क, नप्ता>णत्थिके (५२८) ।

७. ढक्की

(१) उकारबहुल—धूर्त, माथुरोऽहं निपुणः>धुत्तु, माथुरु अहं
 णिज्जणु (१११), (२) र>ल, राजमार्गम्>लाजमर्गं
 (११२), (३) प्र० १ में ओ, धूर्तः>धूत्तो (१२६), (४)
 त>द, गमिष्यति>गमिस्सदि (१२६), (५) य>ज, युक्तं>
 जुत्तं (१२०), (६) न>ण, नाम>णाम (१२०), (७) श
 ष स>स, मुषितोऽस्मि>मुसिदोमिह (१३३) ।

काव्यसौन्दर्यसञ्चोको नाट्येऽप्यप्रतिमप्रभः ।

शूद्रको भासते नित्यं सन्मृच्छकटिकाकरः ॥

(कपिलस्य)

६. (ग) महाकवि कालिदास

यो ह्यग्निमित्रं वृणुते वरिष्ठं

श्रीविक्रमं स्तौति गुणैरजस्रम् ।

शकुन्तलाराधनतत्परो यः

श्रीकालिदासः प्रथते कवीन्द्रः ॥

(कपिलस्य)

नाटककार कालिदास—महाकवि कालिदास के जीवनवृत्त तथा समय
 आदि का वर्णन कवि के रूप में पहले किया जा चुका है । महाकवि कालिदास
 नाटककार के रूप में विश्वविश्रुत हैं । उनका शाकुन्तल नाटक विश्व के सर्वप्रमुख
 नाटक के रूप में विख्यात है । इस महाकवि के तीन नाटक प्राप्य हैं । कालक्रम की
 दृष्टि से तीनों नाटकों का क्रम इस प्रकार है :—(१) मालविकाग्निमित्र,
 (२) विक्रमोर्वशीय, (३) अमिज्ञानशाकुन्तल ।

(१) नाटकों की संक्षिप्त कथा एवं समीक्षा

(क) मालविकाग्निमित्र

इसमें ५ अंकों में मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन
 है । मालविका विदर्भराजपुत्र माधवसेन की बहिन है । दायादों द्वारा राज्य
 अपहृत होने पर अमात्य सुमति मालविका को सुरक्षित रखने के लिए छिपा कर
 लाता है । वन में डाकुओं के द्वारा सुमति की हत्या कर दी जाती है और मालविका
 राजा अग्निमित्र की महारानी धारिणी के भाई वीरसेन को प्राप्त हुई । तदनन्तर

मालविका दासी के रूप में धारिणी के पास रहती है और राजा अग्निमित्र उस पर अनुरक्त हो जाता है।

अंकानुसार कथा इस प्रकार है—(अंक १) मालविका राजा अग्निमित्र की रानी धारिणी की सेविका है। धारिणी मालविका को संगीत-नृत्य आदि सिखाने के लिए नाट्याचार्य गणदास को शिक्षक नियुक्त करती है। धारिणी प्रयत्न करती है कि राजा मालविका के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध न हो जाए, अतः वह उसे छिपाकर रखती है। एक चित्र में राजा मालविका को देख लेता है और उस पर मुग्ध हो जाता है। विदूषक मालविका को अग्निमित्र के सामने लाने की योजना बनाता है। तदनुसार नाट्याचार्य गणदास और हरदत्त में योग्यता-विषयक विवाद होता है। निर्णय होता है कि भगवती कौशिकी (एक संन्यासिनी) की अध्यक्षता में दोनों नाट्याचार्य अपनी शिष्याओं के द्वारा अभिनय-कला-प्रदर्शन करावें। धारिणी इस प्रदर्शन को रोकना चाहती है, परन्तु असफल रहती है। (अंक २) मालविका की नाट्यकला का प्रदर्शन होता है। गणदास विजयी घोषित होते हैं। राजा मालविका पर मन्त्रमुग्ध होते हैं और उसे विषबुद्धा हुआ काम का बाण कहते हैं। विदूषक से उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को कहते हैं। (अंक ३) अग्निमित्र और मालविका का अनुराग प्रकट हो जाता है। छोटी रानी इरावती के आदेशानुसार राजा प्रमदवन जाते हैं। पैर में चोट के कारण रानी धारिणी अशोक की दोहद-पूर्ति के लिए नहीं जाती है और वह अपने स्थान पर मालविका को एतदर्थ भेजती है। राजा और मालविका का मिलन होता है। इरावती आकर विघ्न डालती है और राजा को बुरा-भला कहती है। (अंक ४) क्रुद्ध होकर रानी धारिणी मालविका और उसकी सखी बकुलावलिका को जेल में डाल देती है। विदूषक साँप से काटे जाने का बहाना बनाकर धारिणी की सर्प-मुद्रायुक्त अँगूठी प्राप्त करता है और उसे दिखाकर मालविका और उसकी सखी को मुक्त कराता है। (अंक ५) इस अंक में विदर्भ देश से आई हुई दो सेविकाओं से मालविका का परिचय प्राप्त होता है। पूरा विवरण ज्ञात होने पर रानी धारिणी की अनुमति से राजा अग्निमित्र और मालविका का विवाह हो जाता है।

समीक्षा—यह कालिदास की प्रथम कृति है। उनकी प्रतिभा का इसमें पूर्ण प्रस्फुरण नहीं हुआ है। फिर भी कवित्व, नाटकीय-कौशल, घटना-संयोजन, संवाद और चरित्र-चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। इसमें सूक्ष्म

मनोवैज्ञानिक वर्णन, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तःप्रकृति के विश्लेषण का अभाव है, तथापि बाह्य जगत् और बाह्य परिस्थितियों का अच्छा चित्रण है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—(१) नाटकीय तत्त्व गतिशीलता की विशिष्ट योजना, (२) प्रत्येक घटना की सार्थकता, (३) अग्निमित्र और मालविका के प्रणय-व्यापार पर सभी घटनाओं का केन्द्रित होना, (४) कथा-संयोजन में अनावश्यक विवरणों का परित्याग, (५) शृंगार का अंगी रस होना, (६) विदूषक के कारण हास्य रस का समावेश, (७) विदूषक को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान देना, (वही दोनों की प्रणय-सिद्धि का संयोजक है), (८) संवादों में संक्षिप्तता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता और विनोद-प्रियता, (९) भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण युक्त है। (१०) यह 'नाटक' कोटि का रूपक है। इसमें ५ अंक हैं। ६६ श्लोक हैं। वस्तु-विन्यास और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से रत्नावली के तुल्य 'नाटिका' की कोटि में आना चाहिए, परन्तु ५ अंक के कारण नाटक माना जाता है। नायक धीरोदात्त माना जाता है, परन्तु वह धीरललित कोटि का है। (११) इसके पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ केवल इसी नाटक में प्राप्त होती हैं। यथा माधवसेन और अंजुसेन की शत्रुता; अग्निमित्र की सैनिक सहायता से माधवसेन की कारागृह से मुक्ति और राज्य-प्राप्ति। अग्निमित्र दुंगवंशी राजा पुष्यमित्र (१८५ ई० पू० के लगभग) का पुत्र है। (१२) भाषा-सौन्दर्य और भावगाम्भीर्य की दृष्टि से यह नाटक शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय से न्यून है, परन्तु अभिनेयता की दृष्टि से बहुत सुन्दर है।

इस नाटक में कालिदास का क्रान्तिकारी रूप परिलक्षित होता है। केवल प्राचीनता को ही बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए और नवीनता (आधुनिकता) का निरादर नहीं करना चाहिए। विद्वान् गुण-दोष का विचार कर उपयुक्त को अपनाते हैं और मूर्ख दूसरों के कहने पर चलते हैं।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ (मा० १-२)

कवि ने शिक्षकों का बहुत सुन्दर लक्षण दिया है कि कुछ स्वयं विशेष योग्यता-संपन्न होते हैं और कुछ अपनी योग्यता दूसरों तक पहुँचाने में दक्ष होते हैं। वही शिक्षक योग्यतम मानना चाहिए जिसमें ये दोनों गुण हों, स्वयं सुयोग्य हो और दूसरों को योग्य बना सके।

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था, संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥

(मा० १-१६)

कालिदास ने इसमें भी कुछ सुन्दर भावपूर्ण सुभाषितों का समावेश किया है। योग्य पात्र में रखी गई वस्तु (विद्या आदि) विशेष गुणयुक्त हो जाती है, जैसे जल की बूंदे सीपी में पड़कर मोती बन जाती है।

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।

जलमिव समुद्रशुक्तौ, मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ (मा० १-६)

प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कवि का कथन है कि बुद्धि के द्वारा ही मित्र-कार्य पूरा नहीं होता है, अपितु स्नेह से ही मित्र का कार्य सिद्ध होता है।

नहि बुद्धिगुणैर्नैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।

कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ॥ (मा० ४-६)

कवि ने मालविका के नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए उसको विधाता द्वारा निर्मित विष से बुझा हुआ काम का बाण बताया है।

अव्याजमुन्दरीं तां विज्ञानेन ललितेन योजयता ।

परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः ॥ (मा० २-१३)

गणदास के शब्दों में कवि ने नाट्यशास्त्र का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा है कि यह देवों की दृष्टि को शान्ति देने वाला यज्ञ है। शिव ने पार्वती से विवाह करके इसके दो रूप (ताण्डव और लास्य) कर दिए। सत्त्व, रजस् और तमोमय लोक-वृत्तान्त इसमें मिलता है। प्रायः सभी रस इसमें रहते हैं। विभिन्न रुचि वाले व्यक्तियों के मनोरंजन का यही एकमात्र साधन है।

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं

रुद्रेणैवमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥ (मा० १-४)

(ख) विक्रमोर्वशीय

यह कालिदास का द्वितीय नाटक है। यह ५ अंकों में 'त्रोटक' नामक उप-रूपक है। इसमें राजा पुरुरवा (विक्रम) और उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय-

कथा वर्णित है। (अंक १) राजा पुरुरवा केशी राक्षस से संव्रस्त उर्वशी का उद्धार करता है। उर्वशी के सौन्दर्य और राजा के पराक्रम के कारण वे दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हैं। (अंक २) उर्वशी को राजा के प्रेम का पता लगता है। उर्वशी का एक प्रेमपत्र विदूषक की त्रुटि से देवी औशीनरी को मिल जाता है और वह राजा को डाँटती है। राजा अनुनय करके उसका क्रोध शान्त करता है। (अंक ३) भरतमुनि द्वारा निर्देशित एक नाटक में उर्वशी 'पुरुषोत्तम विष्णु' के नाम के स्थान पर 'पुरुरवा' का नाम ले लेती है। इस पर क्रुद्ध होकर भरतमुनि ने शाप दिया कि पुत्र-दर्शन तक वह मर्त्यलोक में रहे। उर्वशी राजा के पास रहती है। (अंक ४) राजा एक विद्याधर-कुमारी को देखकर मुग्ध होता है। इस पर क्रुद्ध होकर उर्वशी कार्तिकेय के गन्धमादन उपवन में चली जाती है। कार्तिकेय का नियम था कि जो स्त्री इस उपवन में आएगी, वह लता हो जाएगी। उर्वशी भी लता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। राजा अत्यन्त शोक करता है। आकाशवाणी होती है कि संगमनीय मणि को लेकर लतारूपी उर्वशी का आलिङ्गन करने पर वह अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो जाएगी। ऐसा करके राजा लता को पुनः उर्वशी के रूप में परिवर्तित कर लेता है। (अंक ५) एक गिद्ध उस मणि को चुरा लेता है। एक अज्ञात व्यक्ति के बाण से वह गिद्ध मारा जाता है। उस बाण पर 'पुरुरवा का पुत्र आयुष्' लिखा है। उर्वशी ने अपने पुत्र को जान बूझकर च्यवन ऋषि के आश्रम में छिपा रखा था। पुत्र-दर्शन होते ही उर्वशी को पुनः स्वर्ग जाने के आदेश से वह बहुत दुःखित है। इसी समय नारद इन्द्रलोक से आते हैं और सूचित करते हैं कि इन्द्र को युद्ध में पुरुरवा की सहायता अपेक्षित है, अतः इन्द्र ने कृपा की है कि उर्वशी अब सदा पुरुरवा के पास ही रहेगी।

समीक्षा—पुरुरवा और उर्वशी की कथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, शतपथब्राह्मण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण और महाभारत आदि में मिलती है। कालिदास ने वैदिक आख्यान को नवीन रूप दिया है और इसमें कई नई बातें जोड़ी हैं। जैसे—भरतमुनि का उर्वशी को मर्त्यलोक में जाने का शाप; कार्तिकेय का नियम कि उसके उपवन में आने वाली स्त्री लता बन जाएगी; उर्वशी का लता बनना और पुरुरवा का विलाप; सारा पंचम अंक नवीन है।

वैदिक आख्यान का अभिप्राय है कि पुरुरवस् (मेघ, पुरु—अधिक, रवस्—शब्द करने वाला) और उर्वशी (बिजली, उरु—अधिक, अशी—व्याप्त रहने वाली)

के संयोग से आयुष् (अन्न) का जन्म होता है। निरुक्त (१०-४६) में पुरुरवा का अर्थ मेघ और यजुर्वेद (१५-१६) तथा निरुक्त (५-१३) में उर्वशी की व्याख्या विद्युत् है। इस प्रकार पुरुरवा और उर्वशी मेघ और विद्युत् हैं। ये एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते, यही इनका श्रृंगारिक पक्ष है।

विक्रमोर्वशीय की मुख्य विशेषताएँ ये हैं:—(१) इसमें कवि की प्रतिभा का पर्याप्त विकास है। (२) मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा इसमें पात्रों की अन्तर्दशा का सुन्दर चित्रण है। (३) दिव्य उर्वशी में मानवीय भावों का सुन्दर चित्रण है। (४) भाषा और भावों में कवि की प्रतिभा विकासोन्मुख है। भाषा में सरलता के साथ प्राञ्जलता है। प्रसाद के साथ माधुर्य है। भावों में अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक दशा का सुन्दर विश्लेषण है। (५) चतुर्थ अंक में राजा का विलाप अपभ्रंश छंदों में है। कवित्व की दृष्टि से ये पद्य अत्यन्त सुन्दर हैं, पर अपभ्रंश पद्यों की प्रधिकता खटकती है। (६) गतिशीलता में यह मालविकाग्निमित्र से न्यून है, परन्तु विचार-वैशारद्य में यह जहुत आगे है। (७) कवि की वर्णन-शक्ति प्रबुद्ध रूप में है। (८) अंक २ और ३ नाटक की प्रगति में बाधक हैं। (९) इसमें श्रृंगार के दोनों पक्षों—संभोग और विप्रलम्भ—का सुन्दर परिपाक हुआ है। (१०) छोटे वाक्य, मुहावरेदार प्रयोग, सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण, कथानक का सौन्दर्य, करुणरस का प्रवाह, हास्यरस की पुट तथा काव्य-सुषमा नाटक को अत्यन्त मनोहर बनाती हैं।

कवि की कल्पनाओं की मनोज्ञता नाटक के प्रारम्भ से ही देखी जा सकती है। उर्वशी का नैसर्गिक मनोभिराम सौन्दर्य राजा को यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि यह ब्रह्मा की रचना नहीं है।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

शृङ्गारकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातुं प्रभवेन्मनोरममिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ (वि० १-१०)

इस सुन्दरी की रचना करने वाला शोभाप्रद चन्द्रमा रहा होगा या श्रृंगारमय कामदेव होगा या वसन्त मास होगा। ब्रह्मा वेदाभ्यास से हृदयहीन और लौकिक कृतहलताओं से रहित हैं। वे ऐसा मनोहर रूप नहीं बना सकते हैं।

उर्वशी का सौन्दर्य अनुपम एवं अवर्णनीय है।

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः ।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥ (वि० २-३)

व्यतिरेक अलंकार का आश्रय लेते हुए कवि का कथन है कि उर्वशी का शरीर आभूषणों का भी आभूषण है, अलंकरण विधि का भी अलंकरण है और उपमानों का भी उपमान है ।

राक्षसों के भय से त्रस्त उर्वशी के होश में आने का कैसा सजीव चित्रण है :—

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रिः

नैशस्थार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा ।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना

गङ्गा रोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम् ॥ (वि० १-६)

जैसे चन्द्रोदय होने पर रात्रि अन्धकार से मुक्त होने लगती है, जैसे रात्रि में धुआँ निकल जाने पर अग्नि की ज्वाला तेजोमयी होती है, जैसे किनारों के गिरने से कलुषित गंगा धीरे-धीरे स्वच्छ होती है, उसी प्रकार यह सुन्दरी उर्वशी मूर्च्छा से होश में आती हुई दिखाई दे रही है ।

संभोग शृंगार का सुन्दर वर्णन मिलता है । उर्वशी को पाकर राजा फूले नहीं समाते । उनके सब दुःख कट गए हैं ।

पावास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं

बाणास्त एव मदनस्य मनोऽनुकूलाः ।

संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि यद्यवासीत्

त्वत्संगमेन मम तत्तदिवानुनीतम् ॥ (वि० ३-२०)

वे ही चन्द्रमा की दुःखद किरणें अब सुखद हो गई हैं, वे ही कामदेव के दुःखद बाण अब सुखदायी हो गए हैं और वे कठोर तथा रूखी लगने वाली वस्तुएँ अब तुम्हारे मिलन के कारण मनोहर हो गई हैं ।

कवि ने विप्रलम्भ शृंगार का भी सुन्दर चित्रण किया है । पूरा चतुर्थ अंक विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन से पूर्ण है । उर्वशी के वियोग में संतप्त राजा आत्म-चिन्तन करते हुए कहता है कि मेरी जानकारी में ऐसा कोई अपराध नहीं हुआ कि तुम रुष्ट होकर चली जातीं । वैसे तो स्त्रियों का पुरुषों पर प्रभुत्व होता ही है और वे अकारण भी क्रुद्ध हो सकती हैं ।

कुपिता न तु कोपकारणं सकृदप्यात्मगतं स्मराम्यहम् ।

प्रभुता रमणेषु योषितां नहि भावस्खलनान्यपेक्षते ॥ (वि० ४-२६)

राजा उर्वशी के लिए व्याकुल हैं। उन्हें रात भर नींद नहीं आती है, अतः स्वप्न में भी उर्वशी से मिलन नहीं हो पाता। आँखों में आँसू आ जाने से चित्र में भी उसका दर्शन संभव नहीं हो पाता। मेघदूत के पद्य त्वामालिख्य० (उत्तर० श्लोक ४७) से इसका अत्यधिक भावसाम्य हैं।

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा

कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् ।

न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां

मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ॥ (वि० २-१०)

उर्वशी के वियोग में राजा की उन्मत्तता का भी सुन्दर चित्रण मिलता है। वह सर्वत्र उर्वशी की ही कल्पना करता है।

नवजलधरः संतद्भोऽयं न वृष्टनिशाचरः

सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम् ।

अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा

कनकनिकषस्तिग्धा विद्युत् प्रिया मम नोर्वशी ॥ (वि० ४-७)

विक्षिप्त अवस्था में राजा बादलों को राक्षस समझता है। इन्द्रधनुष को राक्षस का धनुष, घोर वृष्टि को बाण-वर्षा तथा बिजली को उर्वशी मानकर कल्पना करता है कि वह उर्वशी का अपहरण कर रहा है, किन्तु थोड़ी देर बाद उसका भ्रम दूर होता है और वह वास्तविकता से अवगत होता है।

हंस में उर्वशी का चाल देखकर राजा हंस से विक्षिप्त अवस्था में रहता है कि तूने मेरी प्रेयसी की चाल चुराई है, अतः पूरी चीज (उर्वशी) को चुराने का दोषी है। तू उसे वापस कर। यह मनोरम कल्पना है !

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हता :

विभावितैकवेशेन देयं यदभियुज्यते ॥ (वि० ४-३३)

(ग) अभिज्ञानशाकुन्तल

शाकुन्तल संस्कृत-साहित्य ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट

नाटक है। इसमें ७ अंकों में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है। (अंक १) मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश करके शकुन्तला का दर्शन करता है। भ्रमर से शकुन्तला की रक्षा करता है। राजा शकुन्तला पर अनुरक्त होता है। शकुन्तला का परिचय प्राप्त होता है कि वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा कण्व द्वारा पालित-पोषित है। शकुन्तला राजा के गुणों पर भुग्ध है। (अंक २) राजा शकुन्तला पर अपने प्रेम की सूचना विदूषक को देता है। (अंक ३) शकुन्तला दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ है। वह एक प्रेम-पत्र लिखती है। राजा प्रकट होकर उससे गान्धर्व-विवाह करता है। (अंक ४) हस्तिनापुर लौटने से पूर्व राजा शकुन्तला को अपनी अँगूठी देता है और कहता है कि इसमें जितने अक्षर हैं, उतने दिन से पूर्व मैं तुम्हें अपने अन्तःपुर में बुला लूंगा। आतिथ्य न करने पर दुर्वासा ऋषि शकुन्तला को शाप देते हैं कि अवसर आने पर तुम्हारा पति तुम्हें नहीं पहचानेगा। अनसूया की प्रार्थना पर दुर्वासा आश्वासन देते हैं कि अँगूठी दिखाने पर शाप निवृत्त होगा। कण्व ऋषि सोमतीर्थ की यात्रा से लौटते हैं। उन्हें आकाशवाणी से शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व-विवाह और शकुन्तला के गर्भवती होने का समाचार मिलता है। ऋषि दो शिष्यों के साथ शकुन्तला को राजा के पास भेजते हैं। शकुन्तला वृक्षों, लताओं, पशु-पक्षियों, मृग-शिशु, सखियों और पिता से विदाई लेकर हस्तिनापुर के लिए चल पड़ती है। (अंक ५) शकुन्तला राजा दुष्यन्त के राजद्वार में पहुँचती है और राजा दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को नहीं पहचानता है। रोती हुई शकुन्तला को एक अप्सरा (उसकी माता मेनका) उठा ले जाती है। (अंक ६) शचीतीर्थ में शकुन्तला की गिरी हुई अँगूठी एक मछल को एक मछली के पेट में मिली। उस अँगूठी के मिलते ही राजा को शकुन्तला के विवाह की सारी बातें स्मरण हो आईं। राजा दिन-रात दुःखित रहने लगा। सभी प्रसन्नता के आयोजन समाप्त कर दिए गए। इन्द्र का सारथि मातलि आकर राजा को सन्देश सुनाता है कि इन्द्र ने राक्षसों के वधार्थ आपको बुलाया है। राजा स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है। (अंक ७) राजा दैत्यों पर विजय प्राप्त करता है। स्वर्ग से लौटते समय मारीच ऋषि के आश्रम में, शकुन्तला और पुत्र भरत से राजा का मिलन होता है। मारीच ऋषि दोनों को आशीर्वाद देते हैं। इन्द्र के रथ पर दोनों हस्तिनापुर पहुँचते हैं।

मूलकथा और उसमें परिवर्तन

शाकुन्तल की कथा महाभारत के आदि पर्व (अध्याय ६७ से ७४) में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से ली गई है। पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में भी यह कथा प्राप्त होती है, परन्तु यह कथा महाभारत और 'शाकुन्तल' की कथा पर आश्रित है, अतः उसे आधार नहीं माना जा सकता है। महाभारत की सीधी-सादी कथा को कालिदास ने अपनी प्रतिभा एवं अनुपम कल्पना-शक्ति के द्वारा एक मनोरम आख्यान बना दिया है। कालिदास ने मूलकथा में मुख्य परिवर्तन निम्नलिखित किए हैं :—

(१) ऋषि की सोमतीर्थ-यात्रा—शाकुन्तल में ऋषि कण्व शकुन्तला पर आने वाली विपत्ति के निवारणार्थ सोमतीर्थ जाते हैं और कई मास बाद लौटते हैं। मूलकथा में ऋषि फल लाने के लिए वन में गए थे। इतने समय में राजा का शकुन्तला से प्रणय, विवाह, विहार और गर्भाधान आदि सब कुछ सम्भव नहीं है।

(२) राजा का अकेले आश्रम में प्रवेश—मूलकथा में राजा सेना-सहित आश्रम के पास पहुँचता है और सेना को बाहर रोक कर आश्रम में जाता है।

(३) शकुन्तला का जन्म-वृत्तान्त—शकुन्तला की जन्म-विषयक बातें अनसूया और प्रियंवदा बताती हैं। मूलकथा में शकुन्तला अपने जन्म का विवरण स्वयं देती है। इससे उसका चरित्र निर्लज्ज का-सा प्रतीत होता है।

(४) अमर-वृत्त—मूलकथा में भौरे के द्वारा शकुन्तला को तंग करने का वर्णन सर्वथा नहीं है। इससे राजा का शकुन्तला के रक्षार्थ आना स्वाभाविक ढंग से हुआ है।

(५) विवाह की शर्त—मूलकथा में शकुन्तला ने विवाह की शर्त रखी है कि मेरा पुत्र युवराज होगा। कालिदास ने यह शर्त हटा दी है और शकुन्तला का एक मुग्धा बालिका के रूप में चित्रण किया है। मूलकथा में वह निर्भीक एवं प्रगल्भा तरुणी है। मूलकथा में दुष्यन्त शकुन्तला से मिलते ही विवाह का प्रस्ताव करता है। शाकुन्तल में तृतीय अंक में यह प्रस्ताव हुआ है।

(६) अँगूठी—यह कालिदास की मौलिक देन है। राजा का शकुन्तला को अँगूठी देना, अँगूठी का खोना, उसका पुनः मिलना, अँगूठी से शाप-निवृत्ति, ये सभी बातें नई हैं।

(७) अंक २—पूर्णतया मौलिक रचना है।

(८) दुर्वासा का शाप—यह कालिदास की मौलिक कल्पना है। शाप के कारण दुष्यन्त का चरित्र उदात्त रहता है।

(९) शकुन्तला-प्रत्याख्यान—मूलकथा में राजा सारी घटनाएँ याद होने पर भी लोकापवाद के डर से शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता है। आर्काश-वाणी के द्वारा समर्थन होने पर उसे स्वीकार करता है। इससे राजा का चरित्र अत्यन्त निम्नकोटि का ज्ञात होता है। शकुन्तल में दुर्वासा के शाप के कारण राजा शकुन्तला को नहीं पहचानता। इससे उसके चरित्र पर दोष नहीं आता।

(१०) शकुन्तला की विदाई—मूलकथा में शकुन्तला का पुत्र आश्रम में ही होता है। जब वह बालक ६ वर्ष का हो जाता है, तब ऋषि उसे राजा के पास भेजते हैं। शकुन्तल में ऋषि तीर्थयात्रा से लौटते ही शकुन्तला को गर्भवती जानकर राजा के पास विदा कर देते हैं।

(११) शार्ङ्गरव से राजा का विवाद—मूलकथा में नहीं है।

(१२) मेनका द्वारा शकुन्तला को उठा ले जाना—मूलकथा में नहीं है।

(१३) अंक ६—यह पूरा अंक कालिदास की मौलिक कल्पना है। धीवर को अँगूठी मिलना, धीवर से राजा को अँगूठी मिलना, शाप-निवृत्ति, राजा का दुःखित होना, धनमित्र व्यापारी की मृत्यु का समाचार, अपुत्रता के कारण राजा का दुःखित होना, मातलि का आगमन, राजा का स्वर्ग जाना।

(१४) अंक ७—यह पूरा अंक मूलकथा में नहीं है। राक्षसों पर विजय, मारीच ऋषि के आश्रम में राजा का जाना, पुत्र-दर्शन, शकुन्तला-मिलन, ऋषि का आशीर्वाद, ये सभी बातें नवीन कल्पनाएँ हैं।

(२) कालिदास की नाट्यकला

(क) घटना-संयोजन में सौष्ठव—कालिदास ने शकुन्तल के घटना-संयोजन में असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है। घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया गया है कि उनमें पूर्णरूप से स्वाभाविकता ज्ञात होती है। प्रत्येक घटना सार्थक है, अतः कथानक के विकास में पूर्ण योग देती है। घटनाएँ बहुत विचारपूर्वक यथास्थान रखी गई हैं, अतः नाटक की गति स्वाभाविक और

अविच्छिन्न है। जैसे—भ्रमर से पीड़ित शकुन्तला की रक्षा के लिए राजा का प्रवेश, शकुन्तला का राजा को देखकर उस पर मुग्ध होना, क्षत्रिय-कन्या जानकर राजा का शकुन्तला से विवाह का निर्णय, गान्धर्व-विवाह, दुर्वासा का शाप, शाप के कारण शकुन्तला का प्रत्याख्यान, स्वर्ग से लौटते समय मारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और पुत्र से मिलन। सभी बातें सुसंबद्ध हो गई हैं।

(ख) घटनाओं की सार्थकता—शकुन्तल की प्रत्येक घटना सार्थक है और किसी विशेष उद्देश्य से रखी गई है। जैसे—अंक १ में तपस्वियों का आशीर्वाद कि चक्रवर्ती पुत्र होगा। फलस्वरूप अंक ७ में चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति। ऋषि के सोमतीर्थ जाने से शकुन्तला की विपत्ति का दूर होना और पुनः पति-मिलन। दुर्वासा के शाप से शकुन्तला को भूलना, अँगूठी खोने से अंक ५ में पहचान के समय कठिनाई, अँगूठी मिलने से शाप की समाप्ति, स्वर्ग से लौटते समय देवों के आशीर्वाद से अनायास पुत्र और पत्नी से मिलन।

(ग) वर्णनों में स्वाभाविकता—कालिदास के प्रत्येक वर्णन स्वाभाविक हैं। वे आँखों के सामने घटना को मूर्तवत् चित्रित कर देते हैं। जैसे—मृग के दौड़ने का वर्णन (अंक १-७), रथ की तीव्र गति का वर्णन (१-८, ९), मृगया के गुणों का वर्णन (२-५), अंक ४ में शकुन्तला की विदाई का वर्णन—लता, मृगशावक, सखियों और पिता से विदाई लेना, अंक ५ में राजा और शाङ्गरव का विवाद, शकुन्तला का प्रत्याख्यान, अंक ६ में शोकाकुल राजा का वर्णन, अंक ७ में बालक भरत की क्रीड़ा।

(घ) रचना-कौशल—महाभारत के एक साधारण और नीरस कथानक को अत्यन्त सरस और मनोरम बना देना कालिदास की ही उर्वर कल्पना-शक्ति का प्रभाव है। मूलकथा में परिवर्तन और उनका महत्त्व-वर्णन किया जा चुका है।

(ङ) वर्णनों और घटनाओं की ध्वन्यात्मकता—कालिदास के काव्यों में ध्वनि या व्यंजना का प्रमुख स्थान है। उनके वर्णन और घटनाएँ संकेतात्मक होती हैं। वे भावी घटनाओं की ओर संकेत करती हैं। प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन—दिवसाः परिणामरमणीयाः (१-३) सूचित करता है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। नटी का कथन—'ईषदीषच्छुम्बितानि भ्रमरैः' (१-४) संकेत सं० सा० रा० ६०--२२

करता है कि अमर तुल्य राजा शकुन्तला से प्रेम करेगा। सूत्रधार का कथन— 'अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया (१ वाक्य १२) सूचित करता है कि नाटक में 'भूलना' महत्वपूर्ण घटना है। राजा शकुन्तला को भूलता है, शकुन्तला भूल से अँगूठी खो देती है, शकुन्तला दुर्वासा का आतिथ्य भूल जाती है, अतः शाप-ग्रस्त होती है। प्रभात-वर्णन में 'यात्येकतोऽस्तशिवरं०' (४-२) संकेत करता है कि सुख-दुःख का क्रम अनिवार्य है, अतः शकुन्तला पर विपत्ति आएगी और फिर वह दूर हो जाएगी। इन्द्र द्वारा दुष्यन्त का विशेष सत्कार संकेत करता है कि दुष्यन्त की अभिलाषा शीघ्र पूर्ण होगी।

(च) चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता—कालिदास चरित्र-चित्रण में अत्यन्त पटु हैं। उनके प्रत्येक पात्र में अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्रत्येक पात्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनका विकास बहुत व्यवस्थित रूप से हुआ है। शाकुन्तल के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं। उनका सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चित्रण उत्तम रूप से हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास का मानव-प्रवृत्ति-निरीक्षण कितना गम्भीर था। राजा दुष्यन्त वीरोदात्त नायक है। उसे अपने कर्तव्य-पालन का सदा ध्यान रहता है। वह शाप के प्रभाव के कारण ही शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है और उसकी स्मृति आने पर उसे पुनः स्वीकार करता है। तीन ऋषियों का वर्णन किया है और तीनों में अन्तर किया है—(१) कण्व—अत्यन्त सज्जन महर्षि हैं। वे शकुन्तला के धर्मपिता हैं। (२) मारीच—वीतराग ऋषि हैं। (३) दुर्वासा—अत्यन्त क्रोधी ऋषि हैं। दो ऋषि-शिष्य हैं। (१) शार्ङ्गरव—अभिमानी, क्रोधी और अधिक बोलने वाला है। (२) शारद्वत—विनीत, शान्त, मितभाषी है। तीन सखियाँ हैं। (१) शकुन्तला—लज्जाशील, मितभाषी, सरल हृदय है। (२) अनसूया—शान्त, गम्भीर, विवेकशील है। (३) प्रियंवदा—हास्यप्रिय, वाक्पटु और मधुरभाषी है। अन्य नाटकों से शाकुन्तल में दो बातों में कालिदास ने अन्तर किया है—(१) उपनायिका का अभाव, (२) विदूषक को अनावश्यक महत्त्व न देना।

(छ) पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग—कालिदास ने पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है। प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करता है। प्रियंवदा और अनसूया शकुन्तला से सखीजनोचित हास-परिहास करती हैं। कण्व ऋषिजनोचित ही शकुन्तला का अभिनन्दन करते हैं।

कि माग्य से यजमान की आहुति अग्नि में ही पड़ी है। सुशिष्य को दी गई विद्या के तुल्य तू अशोचनीय हो गई है—सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता (४ वा० ३८)। पुरोहित दार्शनिक भाषा का प्रयोग करता है—कुत इदमुच्यत इति चेत्० (५ वा० १०२)। विदूषक सदा खाने की ही बात करता है। क्या लड्डू खाना है? किं मोदकखादिकायाम् (२ वा० १६)।

(३) शाकुन्तल में रस-निरूपण

शाकुन्तल शृङ्गाररस-प्रधान नाटक है। इसमें संभोग (संयोग) शृङ्गार अंगी रस है और विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार, करुण, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक, वत्सल और शान्त, ये अंग रस हैं। यद्यपि शाकुन्तल में विप्रलम्भ शृङ्गार का पर्याप्त विस्तार है, परन्तु नाटक की समाप्ति दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन के साथ होती है। नाटक सुखान्त है, अतः इसमें संभोग शृङ्गार को ही मुख्य रस मानना उचित है।

संभोग शृङ्गार—कालिदास ने शाकुन्तल में विभिन्न रसों का बहुत कुशलता के साथ समावेश किया है। प्रथम तीन अंकों में संभोग शृङ्गार का पूर्वराग मुख्यतया वर्णित है। वल्कलधारिणी शकुन्तला के नैसर्गिक सौन्दर्य पर राजा मुग्ध है और कहता है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ (शा० १-२०)

वाई से घिरा हुआ भी कमल सुन्दर लगता है। चन्द्रमा का कलंक भी उसकी शोभा को बढ़ाता है। यह सुन्दरी वल्कल से भी सुशोभित हो रही है। सुन्दर आकृति वालों के लिए कौन-सी वस्तु शोभाजनक नहीं होती ?

गान्धर्व-विवाह के बाद राजा प्रेम-विह्वल है और वह शकुन्तला के पैर दबाने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करता है।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्

संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।

अङ्ग्रे निधाय करभोरु यथामुखं ते

संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥

(शा० ३-१८)

क्या मैं कमलदल के पंखे से ठंडी हवा करूँ या गोद में रखकर तुम्हारे चरण-कमलों को धीरे-धीरे दबाऊँ।

विप्रलम्भ शृङ्गार—शाकुन्तल में कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का विस्तृत वर्णन किया है। पंचम अंक में राजा शकुन्तला का परित्याग करता है और षष्ठ अंक में अँगूठी मिलने पर शकुन्तला की स्मृति आते ही शोक-विह्वल है। सभी आमोद-प्रमोद छोड़ दिए हैं; सुन्दर वस्तुओं से घृणा हो गई है; मन्त्रिओं आदि से मिलना छोड़ दिया है; रात भर नींद नहीं आती है; वार्तालाप में अन्य रानियों के नाम के स्थान पर 'शकुन्तला' कहकर अत्यन्त लज्जित होता है।

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते

शय्या-प्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।

दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा

गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ (शा० ६-५)

शकुन्तला के प्रत्याख्यान की घटना को स्मरण करके राजा बार-बार अधीर हो जाता है और कहता है कि मेरे द्वारा परित्याग किए जाने पर वह अपने सम्बन्धियों के पीछे जाने लगी और शार्ङ्गरव के द्वारा डाँटे जाने पर रुक गई और उस अवस्था में उसने अश्रुपूर्ण दृष्टि से मुझ क्रूर को देखा था। वह घटना मुझे अत्यन्त कष्ट देती है। 'इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता०' (शा० ६-६) ।

वात्सल्य विप्रलम्भ—शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई है और वह पूरा प्रसंग वात्सल्य विप्रलम्भ में आता है। पुत्री की विदाई का दृश्य है। सभी आश्रमवासी, पशु-पक्षी, मृग, मयूर आदि भाव-विह्वल हैं और पुत्री के लिए अपनी हार्दिक शुभकामना प्रकट करते हैं। ऋषि कण्व शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उतने ही दुःखित हैं, जितना कि एक सद्गृहस्थ। उनका हृदय दुःख से भरा हुआ है, गला अवरुद्ध है, आँखों में आँसू हैं। वे कहते हैं कि कन्या की विदाई के अवसर जब मुझ जैसे ऋषि का यह हाल है तो सामान्य गृहस्थ की क्या स्थिति होती होगी?

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संपृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः

पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ (शा० ४-६)

वीर रस—शाकुन्तल में वीर रस का वर्णन बहुत कम है। अंक २ में दो ऋषि कुमार राजा के पराक्रम का वर्णन करते हैं। उसकी कीर्ति स्वर्ग तक पहुँची हुई है और वह इन्द्र के समकक्ष योद्धा है। अध्याक्रान्ता वसतिरमुना० (शा० २-१४)। अंक ७ में राजा राक्षसों पर विजय प्राप्त करके लौट रहा है। उसकी यशोगाथा देवगण कल्पवृक्ष के वस्त्रों पर लिख रहे हैं।

विचिच्छितिशेषैः सुरमुन्दरीणां, वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।

विचिन्त्य गीतक्षममर्थंजातं, दिवौकसस्त्वन्चरितं लिखन्ति ॥ (शा० ७-५)

हास्यरस—शाकुन्तल में शिष्ट और परिष्कृत हास्य का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। हास्यरस के प्रसंगों का अधिकांश श्रेय विदूषक को है। शकुन्तला अपनी चोली के कसे होने का दोष प्रियंवदा को देती है। प्रियंवदा हँसकर उत्तर देती है कि—मैं दोषी नहीं हूँ, अपितु तुम्हारी युवावस्था दोषी है। 'अत्र पयोधर-विस्तारयितु आत्मनो यौवनमुपालभस्व।' (शाकु० १)। विदूषक सदा खाने की बात करता है। राजा एक काम में उसकी सहायता माँगता है तो वह कहता है कि—क्या लड्डू खाना है? कि मोदकखादिकायाम् (अंक २)।

इन रसों के अतिरिक्त अद्भुत, भयानक, रौद्र, वात्सल्य और शान्त रसों का भी यत्र-तत्र वर्णन मिलता है।

(४) कालिदास का काव्य-सौन्दर्य

शाकुन्तल के मार्मिक प्रसंग—शाकुन्तल में कालिदास ने कई ऐसे प्रसंग उपस्थित किए हैं, जो भावों की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक हैं। इनमें कालिदास की कल्पना-शक्ति, प्रतिभा, कवित्व और नाट्य-कुशलता का विशेष परिचय प्राप्त होता है। इनमें विशेष उल्लेखनीय प्रसंग हैं :—अंक १ में भ्रमर-वृत्तान्त और शकुन्तला की सखियों से राजा का वार्तालाप; अंक २ में शकुन्तला के लावण्य का वर्णन; अंक ३ में राजा और शकुन्तला की प्रेम-विह्वलता तथा उनका गान्धर्व-विवाह; अंक ४ में शकुन्तला की विदाई; अंक ५ में राजा और शार्ङ्गरव का विवाद; अंक ६ में राजा की शोकावस्था; अंक ७ में पुत्र-दर्शन और शकुन्तला से मिलन।

शाकुन्तल की श्लोक-चतुष्टयी—विद्वज्जनों में प्रसिद्ध सूक्ति है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्गस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

शकुन्तल के चतुर्थ अंक के चार श्लोक अपने भाव, कल्पना, कवित्व और अर्थोदात्तता के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक श्लोक में पुत्री की विदाई का मार्मिक वर्णन है; दूसरे में पुत्री को पतिगृह के लिए आदर्श शिक्षा दी गई है; तीसरे में शकुन्तला की सुकुमार भावनाओं का चित्रण है और चौथे में ऋषि कण्व का राजा के लिए आदर्श सन्देश है। भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से चार श्लोक क्रमशः ये हैं :—

(१) यास्यत्यद्य शकुन्तलेति० (४-६), वात्सल्य विप्रलम्भ में दिया गया है।

(२) शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने
भर्तुविप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ (४-१८)

ऋषि कण्व शकुन्तला को उपदेश देते हैं कि तुम अपने बड़ों की सेवा करना; सपत्नियों से सखी भाव रखना; पति से तिरस्कृत होने पर भी कटु वचन न बोलना; सेवकों पर उदारवृत्ति रखना; ऐश्वर्य का अभिमान न करना। ऐसी स्त्रियाँ गृहस्वामिनी होती हैं और विपरीत आचरण वाली कुल-कलंकिनी।

(३) पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ (४-६)

शकुन्तला की सुकुमार भावनाओं का चित्रण किया गया है कि वह वृक्षों को बिना सींचे स्वयं जलपान नहीं करती थी; अलंकार-प्रिय होने पर भी पल्लवों को नहीं तोड़ती थी; वृक्षों में नए पत्ते आने पर उत्सव मनाती थी। उस शकुन्तला की विदाई के लिए कण्व वृक्षों से अनुमति माँगते हैं।

(४) अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुन्वैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ (४-१७)

ऋषि कण्व राजा दुष्यन्त को सन्देश देते हैं कि हमारा और आपका कुल

उच्च है। आपका और शकुन्तला का प्रेम स्वतःसिद्ध है। आप शकुन्तला को मामान्य आदरपूर्वक देखना। कन्यापक्ष वाले हम लोगों को इससे अधिक कुछ नहीं कहना है।

कुछ विद्वान् 'पातुं न०' और 'अस्मान् साधु०' के स्थान पर क्रमशः 'भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी'० (४-२०) और 'अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणी-पदे'० (४-१६) को चार श्लोकों में समाविष्ट करते हैं।

अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का समन्वय—कालिदास ने अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का सुन्दर समन्वय किया है। जो घटना मानव के हृदय में हो रही है, वैसी ही घटना बाह्य-प्रकृति में भी होती है। अंक ४ में पति के वियोग में शकुन्तला की अवस्था दयनीय है, उधर चन्द्रमा के वियोग में कुमुदिनी की दशा भी शोचनीय है।

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।

इष्टप्रवासजनिनितान्यबलाजनस्य

दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ (४-३)

शकुन्तला की विदाई के अवसर पर आश्रम के सभी व्यक्ति खिन्न हैं। वृक्ष और वनदेवता भी उससे सहानुभूति प्रकट करते हैं। वे रेशमी वस्त्र, अलक्तक तथा आभूषण देकर शकुन्तला के प्रति अपना घनिष्ट प्रेम प्रकट करते हैं। प्रकृति के साथ इस प्रकार भावात्मक सम्बन्ध एवं आदान-प्रदान विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठचूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-

र्दितान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ (४-५)

शकुन्तला के वियोग में राजा शोकाकुल हैं, उधर प्रकृति की भी यही अवस्था है। वसन्त ऋतु आने पर भी आमों में बौर नहीं है, कोयलों का बोलना बन्द है, कुरबक आदि पुष्प खिल नहीं रहे हैं।

चूतानां चिरनिर्गताऽपि कलिका बध्नाति न स्वं रजः० (६-४)

कालिदास का प्रकृति-प्रेम—कालिदास प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत मानते हैं। मनुष्य के तुल्य वह भी सुख-दुःख का अनुभव करती है और मनुष्य के सुख-दुःख में सहानुभूति प्रकट करती है। मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का परस्पर आदान-प्रदान चलता रहता है। शकुन्तला वृक्षों को सगा भाई और लताओं को अपनी बहिन समझती है और उसी प्रकार उनकी सेवा करती है। अतएव वह कहती है—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (१ वा० ४८)। राजा दुष्यन्त मृगों की आँखों में शकुन्तला की आँखों की झाँकी देखता है, अतः वह उन पर बाण चलाने में असमर्थ है।

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो

धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।

सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः

कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥

(शा० २-३)

शकुन्तला के वियोग में मृगियों ने तृण खाना छोड़ दिया है, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताएँ पीले पत्तेरूपी आँसू गिरा रही हैं।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यभ्रूणीव लताः ॥ (शा० ४-१२)

सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण—कालिदास ने सौन्दर्य एवं प्रेम के विषय में कुछ मौलिक मन्तव्यों को स्थान दिया है, अतएव उनका सौन्दर्य और प्रेम का वर्णन असाधारण हो गया है। सौन्दर्य बाह्य साधनों पर निर्भर नहीं होता है। सुन्दर वस्तुएँ सभी अवस्थाओं में सुन्दर होती हैं। 'अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृति-विशेषाणाम्' (६ वा० ६२)। शकुन्तला का नैसर्गिक सौन्दर्य बल्कल पहनने पर भी अक्षुण्ण है। 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' (१-२०)। उनका मन्तव्य है कि—'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'। अतएव अनमूया कहती है कि दुष्यन्त जैसे सुन्दर व्यक्ति शकुन्तला को भुला नहीं सकते हैं। 'न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिना वन्ति' (४ वा० ४)। स्त्री में लज्जाशीलता आदि गुणों का होना अनिवार्य है, अतएव शकुन्तला राजा से स्वयं बात नहीं करती। 'वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः०' (१-३१)। कालिदास के मतानुसार स्त्री केवल उपभोग की वस्तु नहीं है, अपितु वह गृहिणी, सचिव और सखा भी

है। 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' (रघु० ८-६७)। स्त्री का वास्तविक सौन्दर्य सच्चरित्रता है, अतएव पार्वती ने तपस्या के द्वारा अपने सौन्दर्य को सफल बनाना चाहा। 'इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोमिरात्मनः' (कु० ५-२)। कालिदास का मन्तव्य है कि स्त्री के सौन्दर्य का फल है, पति का प्रेम प्राप्त करना। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' (कु० ५-१)।

कालिदास ने प्रेम का चित्रण करते हुए यह सिद्ध किया है कि विषय-वासना से युक्त प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं है, अपितु तपस्या से निखरा हुआ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। इसीलिए पार्वती अपने शारीरिक सौन्दर्य से शिव को नहीं जीत सकी, किन्तु तपस्या से जीत पाई। 'अद्य प्रमृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभिः०' (कुमार० ५-८६)। इसी प्रकार दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम प्रेम बाह्य सौन्दर्य पर आश्रित होने के कारण सफल नहीं हुआ, किन्तु तपस्या की अग्नि में तप कर उनका प्रेम सफल हुआ। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास भ्रमरवृत्ति के समर्थक नहीं हैं और अनियन्त्रित प्रेम को प्रेम नहीं मानते। कालिदास ने युवक और युवतियों के लिए सन्देश दिया है कि वे अज्ञात व्यक्तियों से एकान्त में वैवाहिक प्रेम स्थापित न करें, यह दुःखान्त होता है।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः।

अज्ञातहृदयेष्वेवं वरीभवति सौहृदम् ॥ (शा० ५-२४)

अलौकिक तत्त्व—कालिदास के नाटकों में अलौकिक तत्त्वों का भी समावेश है। ऐसे तत्त्व विक्रमोर्वशीय में अधिक हैं और शकुन्तल में कम। ये दो प्रकार के हैं :—(क) कथानक पर प्रभाव डालने वाले, (ख) कथानक पर प्रभाव न डालने वाले।

शकुन्तल में कथानक पर प्रभाव डालने वाले अलौकिक तत्त्व ये हैं :—
(१) अंक ४ में कण्व को आकाशवाणी से शकुन्तला के गान्धर्व-विवाह और उसके गर्भवती होने का ज्ञान, (२) अंक ५ में मेनका को शकुन्तला को आकाश में उठा ले जाना, (३) अंक ६ में अदृश्य मातलि का विदूषक को मारना, (४) अंक ६ में तिरस्करिणी विद्या के द्वारा अदृश्य रहते हुए सानुमती अप्सरा का राजा के कार्यों को देखना, (५) अंक ७ में राजा का इन्द्रलोक जाना, (६) अपराजिता ओषधि के द्वारा राजा का अपने पुत्र भरत को पहचानना।

कथानक पर प्रभाव न डालने वाले अलौकिक तत्त्व ये हैं :—(१) कण्व की दिव्य शक्ति, (२) अंक ४ में वृक्षों द्वारा वस्त्रादि तथा वनदेवता द्वारा आभूषण

दिया जाना, (३) राक्षसों का आकाश में उड़ना, (४) इन्द्रलोक से लौटते समय राजा का सात वायुओं में से होकर आना, (५) मातलि के रथ से राजा की इन्द्रलोक-यात्रा, (६) गालव का सशरीर आकाश में उड़ना।

कालिदास के नाटकों में समान घटनाएँ—कालिदास के अन्य नाटकों से शाकुन्तल की तुलना करने से ज्ञात होता है कि कालिदास को कुछ घटनाएँ अधिक प्रिय थीं। उनकी आवृत्ति शाकुन्तल में भी हुई है। विशेष उल्लेखनीय समान घटनाएँ ये हैं :—(१) तीनों नाटक प्रेममूलक हैं और शृङ्गार-प्रधान हैं। (२) तीनों नाटकों में नायक नायिका का कुछ उपकार करता है। (३) प्रथम-मिलन के बाद विदाई के समय नायिका कुछ बहाना बनाकर रुकती है और नायक के प्रति अपना प्रेम-प्रदर्शन करती है। (४) विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल में अंक २ में विदूषक का प्रवेश। (५) नायक का छिपकर नायिका के गुप्त प्रेमालाप को सुनना और उसकी चेष्टाओं को देखना। (६) नायिका का अपने प्रिय को प्रेमपत्र लिखना। (७) किसी चीज को चुराना या उड़ा लेना। विक्रमो० में संगमनीय मणि का चुराया जाना और शाकुन्तल में विदूषक का उड़ाया जाना। (८) नायक को नायिका से किसी बहाने से अलग करना। (९) प्रणय का फल पुत्रोत्पत्ति। (१०) नायक-नायिका का आश्चर्यजनक रूप से मिलन।

(५) कालिदास की शैली

कालिदास संस्कृत-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी सरल, परिष्कृत और प्रसाद-गुण-युक्त शैली है। कालिदास में कल्पना की ऊँची उड़ान है; भावों में गम्भीरता है; विचारों में जीवन की घनी अनुभूति है; भाषा में लोच और प्रांजलता है; कविता में मनोज्ञता और मादकता है; कथानक में सुविचारित घटना-संयोजन है; बाह्य प्रकृति के विश्लेषण के साथ ही अन्तःप्रकृति का सूक्ष्म दर्शन है; चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता का प्राधान्य है; शब्द-चयन में नीर-क्षीर-विवेक है; वर्णनों में अलंकार-प्राधान्य न होकर नैसर्गिक सुषमा की प्रमुखता है।

कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वोच्च कवि हैं। वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं—मबुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या कम समस्त पदों का होना।

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका ।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वंदर्भो रीतिरिष्यते ॥ (सा० दर्पण ६-२, ३)

प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण—कालिदास की शैली में प्रसाद और माधुर्य गुणों का प्राधान्य है। ओज गुण न्यून मात्रा में मिलता है। यद्यपि सभी पद्यों में प्रसाद गुण कम या अधिक मात्रा में विद्यमान है, तथापि कुछ श्लोक इतनी प्रसादमयी भाषा में लिखे गए हैं कि वे पाठक के हृदय पर तुरन्त प्रभाव डालते हैं। जैसे परोपकार का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा है कि—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

(शा० ५-१२)

कालिदास में माधुर्य गुण भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। पद्यों में वीणा की-सी झंकार मिलती है, जो हृदय को आनन्द से उद्वेलित कर देती है। शकुन्तला के सुकुमार सौन्दर्य पर कवि कृपालु है। उसके लिए यह असह्य है कि शकुन्तला जैसी सुकुमारी से वृक्ष-सेचन और तपस्या जैसा कठोर कार्य कराया जाए। कवि अपनी विद्रोही भावना कितने मीठे शब्दों में प्रस्तुत करता है—

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेतुमृषिर्व्यवस्थति ॥ (१-१८)

शकुन्तला के इस सुकुमार शरीर से जो ऋषि तपस्या कराना चाहता है, वह वस्तुतः कमलपत्र की धारा से शमी की लता को काटना चाहता है।

ओज गुण यद्यपि कम मात्रा में है, तथापि कुछ प्रसंगों में ओज गुण का सुन्दर समावेश हुआ है। दुष्यन्त की सेना के रथ को देखकर भयभीत हाथी का वर्णन इसका अच्छा उदाहरण है।

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः

पादाकृष्टव्रततिवलयसङ्गसंजातपाशः ।

मूर्तौ विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥ (शा० १-३३)

हाथी रथ को देखकर भयभीत है; उसने तीव्र प्रहार से एक पेड़ की शाखा को तोड़ा है और उसका एक दांत उसमें फँस गया है; पैर से खींची हुई लताओं

से उसके पैर में बेड़ी-सी पड़ गई है। उसने मृगों के झुण्ड को इधर-उधर भगा दिया है। वह तपस्या का मानो मूर्तरूप विघ्न है।

भाषा सरल, सरस और मनोरम—कालिदास की भाषा सरल, सरस और मनोरम है। उन्होंने लम्बे समासों का सर्वथा परित्याग किया है। जहाँ पर समास है, वहाँ पर भी थोड़े पदों का ही समास है। उन्होंने पाण्डित्य-प्रदर्शन का परित्याग किया है, अतएव क्लिष्ट रचना, क्लिष्ट कल्पना और दुरूह प्रयोगों का अभाव है। शकुन्तला का कितना मनोरम चित्रण सरस पदावली में किया गया है!

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-

रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।

अखण्डं पुष्पानां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ (शा० २-१०)

शकुन्तला का निष्कलंक सौन्दर्य किसी के द्वारा अभी तक न सूँधा गया फूल है, नाखूनों से न काटा गया किसलय है, न बिधा हुआ रत्न है और न चखा गया नया मधु है। यह पुष्पों का अखण्ड फल है। पता नहीं, परमात्मा किसको इसका उपभोक्ता बनाएगा?

भाषा पर अधिकार—कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनकी भाषा परिष्कृत और सुसंस्कृत है। उनका शब्दकोष अगाध है। वे प्रत्येक स्थान पर ऐसे शब्दों का ही प्रयोग करते हैं, जो उस स्थान पर अत्यन्त उचित और सार्थक प्रतीत होते हैं। भाषा और शब्दकोष पर अधिकार होने से उनकी भाषा में असाधारण मनोरमता और प्रवाह हैं। वे सुन्दर भावों को सुन्दर भाषा में प्रकाशित करते हैं। जैसे—पूर्वोक्त 'इदं किलाव्याजमज्जोहरं वपुः० (१-१८) और अनाघ्रातं पुष्पं० (२-१०)।

भाषा में संक्षेप और ध्वन्यात्मकता—कालिदास की शैली संक्षिप्त और ध्वन्यात्मक है। वे किसी बात का लम्बा-चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप में उसकी व्यंजना कर देते हैं, अतएव उनकी कृतियों में ध्वन्यात्मकता मुख्य है। उनकी व्यंजना को पूर्णरूप से समझना सहृदय की सहृदयता पर निर्भर करता है। राजा अपनी प्रेयसी शकुन्तला को देखकर अपना हर्षातिरेक केवल एक वाक्य में प्रकट करता है—अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (३ वा० २), मेरी आँखों को चरम सुख मिल गया। शकुन्तला केवल एक श्लोक में अपना प्रेमपत्र

पूरा करती है कि मैं तुम्हारे हृदय की बात नहीं जानती, किन्तु मेरा हृदय तुम्हारी ओर लगा हुआ है और कामदेव मेरे अंगों को दिन-रात तपा रहा है।

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि ।

निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया अङ्गानि ॥ (३-१३)

राजा और शकुन्तला गान्धर्व-विवाह के बाद लता-मण्डप में हैं। गौतमी अस्वस्थ शकुन्तला को देखने आ रही है। दोनों को पृथक् होने के लिए कितना व्यंग्यात्मक संकेत किया गया है कि—हे चकवी, अपने साथी से विदा लो। रात आ गई। 'चक्रवाक-वधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी' (३ वा० ७४)।

पात्रानुकूल भाषा—कालिदास ने पात्रों के अनुकूल ही कथोपकथन में भाषा का प्रयोग किया है। जो व्यक्ति जिस कोटि का है, वह उसी कोटि की भाषा का प्रयोग करता है। पुरोहित पण्डिताऊ भाषा बोलता है; कण्व ऋषि-जनोचित और प्रियंवदा आदि स्त्री-जनोचित भाषा बोलती हैं।

वर्णन-कुशलता—कालिदास वर्णन में असाधारण कुशल हैं। प्रत्येक वस्तु का वे सजीव वर्णन करते हैं। वे प्रकृति-वर्णन में बहुत पटु हैं। उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, पर्वत, नदी, तालाब आदि सभी वस्तुओं का सुन्दर वर्णन किया है। वर्णन इतने सजीव हैं कि वस्तु का आँखों के सामने चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। दुष्यन्त से पीछा किए जाते हुए मृग का कितना स्वाभाविक और मनोरम वर्णन किया गया है।

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः

पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।

दर्भैरर्धाविलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्मा

पश्योदग्रप्लुतवाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ (शा० १-७)

प्रातःकाल का समय है। सूर्य उदय हो रहा है और चन्द्रमा अस्त हो रहा है। दो तेजों का उदय और अस्त सूचित करता है कि मनुष्य के जीवन में भी उसी प्रकार उत्थान और पतन होता है।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना—

माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाम्यां

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥

(शा० ४-२)

संवादों में संक्षेप और रोचकता—कालिदास के नाटकों में संवाद संक्षिप्त, सरल और रोचक हैं। उनमें अनावश्यक विस्तार का सर्वथा परित्याग किया गया है। उनकी भाषा इतनी चुस्त और मुहावरेदार है कि वह विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है। छोटे-छोटे और सरल वाक्यों से सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति की गई है। जैसे—अंक १ में राजा की प्रियंवदा आदि से वार्ता; अंक २ में राजा और विदूषक का वार्तालाप; अंक ३ में शकुन्तला की सखियों और राजा से बात-चीत; अंक ४ में कण्व और शकुन्तला की वार्ता; अंक ५ में दुष्यन्त और शार्ङ्गरव का विवाद; अंक ७ में पुत्र भरत से राजा की वार्ता।

अलंकारों का प्रयोग—कालिदास ने शाकुन्तल में प्रायः प्रचलित सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है। वे सहज और स्वाभाविक रूप में हैं, श्रमसाध्य नहीं। अलंकार भाव और भाषा को मनोरमता देकर रस-परिपाक में सहायक हैं। मुख्य रूप से इन अलंकारों का प्रयोग हुआ है :—उपमा, यमक, शब्दश्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, तुल्ययोगिता, दीपक, विभावना, विशेषोक्ति, समासोक्ति, व्यतिरेक, विरोधाभास, अर्थान्तरन्यास आदि।^१

उपमा कालिदासस्य—कालिदास अपनी उपमाओं के लिए विश्व-विश्रुत हैं। उनकी उपमाएँ अत्यन्त मनोरम हैं। उनमें लिंग-साम्य, औचित्य आदि का पूरा ध्यान रखा गया है। रम्यता, यथार्थता, विविधता, औचित्य और सर्वाङ्ग-सुन्दरता आदि गुण उनमें मिलते हैं। यद्यपि उपमा के प्रयोग रघुवंश में सर्वाधिक हैं, तथापि शाकुन्तल आदि में भी उनकी संख्या कम नहीं है। कुछ अत्यन्त रोचक उपमा-प्रयोग ये हैं :—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ॥ (शा० १-२१)

शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन है कि उसके अधर में किसलय की-सी लालिमा है; दोनों मुजाएँ कोमल शाखा के तुल्य हैं; उसके अंगों में फूल-सा यौवन व्याप्त है।

शकुन्तला पर आसक्त राजा के चित्त की क्या ही सुन्दर उपमा दी गई है :—

१. विस्तृत वर्णन के लिए देखो—लेखककृत—अभिज्ञानशाकुन्तल, भूमिका पृष्ठ ८५ से ८८।

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।

चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥ (शा० १-३४)

शरीर आगे चल रहा है और मन पीछे की ओर दौड़ रहा है, जैसे हवा के विपरीत ले जाया जाता हुआ ध्वजा का वस्त्र ।

ऋषि कण्व शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं कि तेरा पुत्र सूर्यवत् तेजस्वी हो । 'तनयमचिरात् प्राचीवाकं प्रसूय च पावनम्' (४-१६) । ऋषियों के मध्य में शकुन्तला जीर्ण पत्तों के बीच में किसलय के तुल्य दिखाई देती है । 'मध्ये तपोघनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्' (५-१३) । राजा और शकुन्तला का मिलन ग्रहण के बाद चन्द्रमा और रोहिणी के मिलन के तुल्य है । 'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्' (७-२२) । राजा द्वारा शकुन्तला का परित्याग ऐसी ही मूर्खता थी, जैसे अंधे का सिर पर पड़ी माला को फेंक देना । 'स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां घुनोत्यहिशंकया' (७-२४) ।

ऋषि मारीच ने राजा, शकुन्तला और पुत्र भरत की बहुत सुन्दर उपमा क्रमशः विधि, श्रद्धा और वित्त से दी है ।

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिवं भवान् ।

श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति, त्रितयं तत् समागतम् ॥ (शा० ७-२६)

अर्थान्तरन्यास का प्रयोग—कुछ विद्वानों का मत है कि कालिदास ने उपमाओं का उतना सुन्दर प्रयोग नहीं किया है, जितना अर्थान्तरन्यास का । किसी कवि का कथन है कि—'उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम । अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते' । कालिदास के कुछ अर्थान्तरन्यास सुमाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं । कुछ सुन्दर अर्थान्तरन्यास ये हैं :—
(१) बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (१-२) सुशिक्षितों को भी अपनी योग्यता के विषय में संदेह रहता है । (२) अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (१-१६) होनहार होकर रहती है । (३) किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (१-२०) सुन्दर आकृति वालों के लिए क्या वस्तु आभूषण नहीं हो जाती ? (४) सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (१-२२) सन्देहास्पद विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की वृत्ति ही प्रमाण होती है । (५) कामी स्वतां पश्यति (२-२) कामी व्यक्ति सब जगह अपनी ही बात देखता है । (६) गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (४-१६) आशा का बन्धन महान् विरह-दुःख को भी सहन करा देता है । (७) प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रति-

पद्यते हि जनः (६-३१) उत्तेजित व्यक्ति अपने सामर्थ्य को पहचानता है।
(८) सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः, संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्
(७-४) बड़ों के आशीर्वाद से छोटे व्यक्ति भी बड़े काम कर जाते हैं।

छन्दों का प्रयोग—कालिदास ने शाकुन्तल में २४ छन्दों का प्रयोग किया है।
छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक है और बड़े छन्दों का कम। प्रयोग की दृष्टि से
मुख्य छन्द क्रमशः ये हैं :—आर्या (३६), वसन्ततिलका (३०), अनुष्टुप्
(२७), शार्दूलविक्रीडित (२२), वंशस्थ (१३), उपजाति (११), मालिनी
(६), शिखरिणी (७), मन्दाक्रान्ता (५)।

कालिदास के अन्य नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि आर्या और अनुष्टुप्
छन्द उनको अत्यन्त प्रिय हैं। मालविकाग्निमित्र में आर्या ३५ और अनुष्टुप् १७
बार आए हैं। विक्रमोर्वशीय में आर्या २६ और अनुष्टुप् ३० बार आए हैं।
उपर्युक्त शाकुन्तल के विवरण से ज्ञात होता है कि शाकुन्तल के समय तक वे
शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि बड़े छन्दों के प्रयोग में भी
सिद्धहस्त हो गए थे।

कालिदास के नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें भावों के अनुसार
छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्द भावों को ध्वनित करते हैं। इस प्रकार
भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय मिलता है। करुण भावों को व्यक्त करने
के लिए मन्दाक्रान्ता, हरिणी और वसन्ततिलका का प्रयोग मिलता है। गम्भीर
विचारों के लिए शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा; आन्तरिक भावों के लिए मालिनी
और वंशस्थ; कोमल भावों और सुभाषितों के लिए आर्या छन्द को अपनाया गया है।

प्राकृतों का प्रयोग—शाकुन्तल में साधारणतया गद्य के लिए शौरसेनी प्राकृत
और पद्यों के लिए महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया गया है। अंक ६ में दोनों
सिपाही और धीवर मागधी बोलते हैं। राजा का साला कोतवाल शौरसेनी
प्राकृत बोलता है। साधारणतया सभी उच्च श्रेणी के पुरुष पात्र संस्कृत बोलते हैं
और स्त्रियाँ तथा निम्न श्रेणी के पुरुष पात्र प्राकृत बोलते हैं।

अपाणिनीय प्रयोग—कालिदास के नाटकों में कतिपय अपाणिनीय प्रयोग
भी मिलते हैं। इन प्रयोगों को अशुद्ध न कह कर असिद्ध प्रयोग कहना अधिक
उचित है। संभवतः कालिदास के समय में अन्य व्याकरण भी प्रचलित रहे हों
और उनके अनुसार ये रूप शुद्ध माने जाते रहे हों। उदाहरणार्थ शाकुन्तल के कुछ

असिद्ध प्रयोग दिए जा रहे हैं। इनका पाणिनीय व्याकरण के अनुसार शुद्ध रूप कोष्ठ में दिया गया है। (१) कुसुमावचयम् (४ वा० १, अवचय के स्थान पर अवचाय होना चाहिए)। (२) विश्रामम् (२-६, शुद्ध प्रयोग विश्रम है)। (३) कामयानावस्थः (३ वा० २, कामयमान होना चाहिए)। (४) अङ्गुल्या तर्जयति (१ वा० १०६, तर्जयते होना चाहिए)। (५) अप्सरस्तीर्थम् आरात् (५-३०, आरात् के साथ तीर्थम् में पंचमी चाहिए)। (६) मा....पतिष्यति (२ वा० ४६, मा के साथ लुङ् का प्रयोग होना चाहिए)। (७) मा..... अवलम्ब्य (७ वा० ७३, मा के साथ निषेधार्थ में ल्यप् नहीं होता)।

निष्कर्ष—पूर्वोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कालिदास में सर्वतोमुखी प्रतिभा है। उनमें असाधारण कवित्व शक्ति का नवनवोन्मेष विद्यमान है। शैली में प्राञ्जलता, मनोरमता, अकृत्रिमता, सकेतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, आदर्श-रूपता और संगीतात्मकता का सुन्दर समन्वय है। उनके वर्णन सजीव हैं। उनमें पुराणों आदि के तुल्य न अनावश्यक विस्तार और शैथिल्य है और न परकालीन कवियों के तुल्य पाण्डित्य-प्रदर्शन, लम्बे समास, अलंकारों का भार और कृत्रिम कवित्व है। उनकी कृतियों में कवित्व का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कल्पना की ऊँची उड़ान; हृद्गत भावों को मूर्त रूप में प्रकट करना; मानव-हृदय की सूक्ष्मतम क्रियाओं का तात्त्विक वर्णन; प्रकृति का मानव-हृदय पर प्रभाव; सुकुमार भावों को कोमल भाषा में अभिव्यक्त करना आदि गुण कालिदास में ही मिलते हैं।

कालिदास वस्तुतः संस्कृत-साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनकी कविता साक्षात् त्रिवेणी है। उसमें कवित्व की निर्मल और प्रबल धारा पवित्र मन्दाकिनी की धारा है; भावों और कल्पनाओं की गम्भीर धारा मनोज्ञ कालिन्दी की धारा है; विविध कला, ज्ञान और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा सरस्वती की शुभ्र धारा है। उनके काव्य में स्वर्गीय आनन्द है, भौतिक विलास है, दैवी दिव्यता है, मानवीय मनोज्ञता है और सात्त्विक संमोहन है।

६. (घ) विशाखदत्त

यो मुद्रया राक्षसकीर्तिहारी स्वज्ञानमुद्राजितराक्षसश्रीः।

विज्ञानभानुर्नयवर्त्मदक्षो विशाखदत्तः प्रथते पृथिव्याम् ॥ (कपिलस्य)

(१) जीवनवृत्त और कृतित्व

जीवन-वृत्त—मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से विशाखदत्त के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। अन्य किसी स्रोत से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। प्रस्तावना में कहा गया है—

अद्य सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक्पृथुसूनोः कर्वेविशाखदत्तस्य
कृतिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम् ।

इससे ज्ञात होता है कि विशाखदत्त के पितामह सामन्त वटेश्वरदत्त थे और पिता महाराज पृथु। कुछ संस्करणों में पिता का नाम महाराज भास्करदत्त मिलता है। सामन्त और महाराज शब्दों से ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज किसी राजा के अधीन छोटे राजा थे। सम्भवतः इसीलिए विशाखदत्त की बाल्यकाल से ही राजनीति में रुचि रही और उसी का परिपाक मुद्राराक्षस है। विशाखदत्त का दूसरा नाम विशाखदेव भी मिलता है।

विविध कला-ज्ञान—मुद्राराक्षस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विशाखदत्त ने राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, नाट्यशास्त्र, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र—विशेषतया न्याय, बौद्ध और जैन-दर्शन, व्याकरण, नीतिशास्त्र आदि का गंभीर अध्ययन किया था। कुछ स्थानों पर अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र, ज्योतिष आदि के पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग है।^१

कृतित्व—विशाखदत्त की प्रमुख कृति 'मुद्राराक्षस' है। इसके आधार पर ही उसका गौरव अक्षुण्ण है। विशाखदत्त के नाम से दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है—(१) देवीचन्द्रगुप्त। इसमें रामगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की ऐतिहासिक घटना वर्णित हैं कि चन्द्रगुप्त अन्त में ध्रुवदेवी (ध्रुवस्वामिनी) से विवाह करता है। यह प्रेमाख्यान नाटक है। यह अपूर्ण उपलब्ध है। (२) अभिसारिकावंचितक या अभिसारिकावन्धितक। इसमें उदयन-वासवदत्ता-पद्मावती की प्रणय-कथा है। यह ग्रन्थ अप्राप्य है। इन दोनों की प्रामाणिकता अनिर्णीत है।

१. देखो—मुद्राराक्षस ४-३; अंक ३ श्लोक १६ और २४ के बाद गद्य; १-१५;
अंक १ श्लोक १५ के बाद गद्य; ४-१८; ५-१० ।

(२) विशाखदत्त का समय

विशाखदत्त के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान् इसको चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५ ई० से ४१३ ई०) का समकालीन कवि मानते हैं; कुछ अवन्तिवर्मा (५८२ ई०) का समकालीन और कुछ (प्रो० याकोंबी आदि) मुद्राराक्षस में आए चन्द्रग्रहण की तिथि के आधार पर ८६० ई० के आसपास मानते हैं। विशाखदत्त के समय का निर्णय बहुत कुछ उसके भरत-वाक्य पर आश्रित है। भरत-वाक्य इस प्रकार है—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां

यस्य प्राग्दन्तकोटि प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।

म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः

स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमधतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः ॥

(मुद्रा० ७-१६)

कुछ संस्करणों में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' के स्थान पर 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' 'पार्थिवो रन्तिवर्मा' 'पार्थिवो रन्तवर्मा' पाठ मिलते हैं। अन्तिम दो रन्तिवर्मा और रन्तवर्मा इतिहास में अप्राप्य हैं। दन्तिवर्मा (७२० ई० के लगभग) पल्लव राजा थे। इनके समय में कोई म्लेच्छों का आक्रमण दक्षिण में नहीं हुआ। ये शैव राजा थे और भरत-वाक्य में राजा की विष्णु से तुलना है, अतः ये तीनों पाठ असंगत हैं।

'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा'—अवन्तिवर्मा मौखरि वंश के कन्नौजनरेश हैं। प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री का विवाह उनके पुत्र ग्रहवर्मा से हुआ था। इन्होंने प्रभाकरवर्धन के सहयोग से ५८२ ई० में हूणों को हराया था। अतः इनके साथ 'म्लेच्छैः' (म्लेच्छ-नाश) का सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। इस आधार पर प्रो० के० टी० तेलंग ने विशाखदत्त का समय ७वीं या ८वीं शताब्दी ई० माना है। प्रो० ध्रुव ने इसी आधार पर विशाखदत्त का समय छठी शताब्दी ई० का उत्तरार्ध सिद्ध किया है।

पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः—प्राचीन टीकाकार दुण्डिराज ने इसका अर्थ 'चन्द्रगुप्त मौर्य' लिया है। कुछ विद्वानों ने इस पर आपत्ति की है कि नाटक के भरत-वाक्य में समसामयिक राजा का उल्लेख होता है, अतः चन्द्रगुप्त मौर्य अर्थ लेना ठीक नहीं है। यह मत सर्वथा असंगत है, क्योंकि ऐतिहासिक नाटकों में प्रसंग और घटना-

स्वारस्य के अनुकूल वर्ण्य राजा का ही उल्लेख होता है। जैसे—मालविकाग्निमित्र में भरत-वाक्य में राजा अग्निमित्र का उल्लेख, 'आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे' (मा० ५-२०)। मुद्राराक्षस में भी मूलतः चन्द्रगुप्त मौर्य ही अर्थ है। इसका अपलाप करना अनौचित्य-पूर्ण है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि कवि श्लेष का आश्रय लेकर नाटक का प्रारम्भ करता है और चन्द्र शब्द से चन्द्रमा तथा चन्द्रगुप्त मौर्य, इन दूँ अर्थों का बोध कराता है। 'क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रम्०' (मु० १-६)। यहाँ केतु के भी दो अर्थ हैं—केतु और मलयकेतु राजा। प्रारम्भ के तुल्य ही अन्त में भी श्लेष का आश्रय लेकर मुख्यार्थ—चन्द्रगुप्त मौर्य और लक्ष्यार्थ चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य लिया गया है। जो विशेषण दिए गए हैं, वे दोनों पर पूर्णतया घटते हैं :—१. वैष्णव धर्म मानना, २. म्लेच्छों से पृथ्वी का उद्धार करना, ३. चन्द्रगुप्त नाम होना।

डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने सर्वप्रथम विशाखदत्त का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से स्थापित किया था। प्रो० हिलेब्राँ (Hillebrandt), स्पेयर (Speyer), टॉनी (Towney), आर० एस० पंडित, सी० आर० देवघर आदि इस मत से सहमत हैं और वे विशाखदत्त का समय ४०० ई० के लगभग मानते हैं।

विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन

हमारे विचार से विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१३ ई०) के समकालीन हैं। इसके मुख्य कारण ये हैं :—

(१) भरतवाक्य में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' का श्लेष से 'चन्द्रगुप्त मौर्य' और 'चन्द्रगुप्त द्वितीय' अर्थ होना।

(२) भरतवाक्य में विष्णु के वराहावतार का उल्लेख है। इसका सामंजस्य चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि-अभिलख वाली गुफा में चित्रित वराह मूर्ति से है। इसमें वराह-विष्णु पृथ्वी की असुर से रक्षा कर रहे हैं।

(३) 'म्लेच्छैरद्वेज्यमाना' से ज्ञात होता है कि उसने म्लेच्छों का नाश किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों का उच्छेद किया था। यह उसके कई

अमिलेखों से ज्ञात होता है। उसने अपने लिए 'सर्वराजोच्छेत्तुः०' (मथुरा पाषाणलेख), 'कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन०' (उदयगिरि गुफा-लेख) लिखा है।

(४) भरतवाक्य में राजा को बराह-विष्णु का अवतार बताया गया है। चन्द्रगुप्त ने अपने आपको अमिलेखों में 'परम भागवत' लिखवाया है (गढवा पाषाण-अमिलेख, ४०७ ई०)।

(५) मुद्राराक्षस में 'आ शैलेन्द्रात्०' (३-१६) में हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक साम्राज्य की कामना की गई है। यही भाव चन्द्रगुप्त के मेहरोली के लौहस्तम्भ के पद्यों में प्राप्त होता है कि उसने पश्चिमी सीमाप्रान्त से लेकर दक्षिण समुद्र तक विजय प्राप्त की थी। 'तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाल्हिका यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिर्लैर्दक्षिणः' ॥ (श्लोक १)

(६) मुद्राराक्षस में कौलूतश्चित्रवर्मा० (१-२०) में पाँच प्रमुख म्लेच्छ राजाओं का उल्लेख है। इसमें कुल्लू, कश्मीर, सिन्ध, मलय और फारस के राजाओं के नाम हैं। मेहरोली के पूर्वोक्त लौह-स्तम्भ-लेख 'तीर्त्वा सप्तमुखानि०' में इन म्लेच्छ राजाओं के जीतने का संकेत है। कुछ विद्वानों ने म्लेच्छैः का अर्थ हूण लिया है। यह अनर्थ है। म्लेच्छ शब्द सामान्यता सभी यवन, शक, हूण आदि विदेशी जातियों के लिए प्रयुक्त होता है। चन्द्रगुप्त मुख्यतः शकों का नाशक है।

(७) भरतवाक्य में 'अवन्तिवर्मा' आदि पाठ सर्वथा अप्रासंगिक होने से असंगत और त्याज्य हैं।

(८) भरतवाक्य का 'अधुना' (अब) शब्द प्रासंगिक चन्द्रगुप्त मौर्य की वर्तमान चन्द्रगुप्त द्वितीय से संगति बैठाता है।

(९) विशाखदत्त-रचित 'देवी-चन्द्रगुप्त' नाटक की कथावस्तु इस मत का समर्थन करती है कि वह चन्द्रगुप्त द्वितीय से संबद्ध रहा है।

(१०) कुछ विद्वानों का कथन है कि विशाखदत्त राजनैतिक ज्ञान के लिए भारवि से प्रभावित है। वह स्वयं राजागतिज्ञ परिवार से संबद्ध है, अतः ऐसी कल्पना असंगत है।

(११) मुद्राराक्षस में प्रसाद के साथ गौडी रीति भी मिलती है। इसके आधार पर कुछ विद्वानों ने माना है कि उसका समय गौडी के आदर्श लेखक बाण

के बाद होना चाहिए। यह कल्पना भ्रामक है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति (३५० ई० के लगभग) में गौडी रीति के श्लोक और ३५ पंक्ति का एक समस्त-वाक्य मिलते हैं। इससे चतुर्थ शताब्दी ई० में गौडी रीति का प्रचलन पूर्णतया सिद्ध होता है।

(१२) हर्षचरित में विशाखदत्त का नाम न होने का कारण ज्ञात होता है कि विशाखदत्त की गणना कालिदास जैसे प्रथम श्रेणी के कवियों में नहीं थी।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन था और उसका समय ४०० ई० के आस-पास मानना चाहिए।

(३) मुद्राराक्षस की संक्षिप्त कथा

यह ७ अंकों का राजनीति-विषयक नाटक है। इसमें मुद्रा (अंगूठी) के द्वारा राक्षस को वश में करने का वर्णन है, अतः इसका नाम मुद्राराक्षस पड़ा। इसमें दिखाया गया है—चाणक्य ने नन्दवंश का नाश किया है और अपनी कूटनीतिक चालों से नन्दवंश के मुख्य मन्त्री राक्षस को वह चन्द्रगुप्त का मुख्य मन्त्री बना देता है। इसमें राक्षस और चाणक्य के दाँव-पेंचों, उखाड़-पंछाड़ और सन्धि-विग्रहों का विस्तृत वर्णन है। अंकानुसार कथा इस प्रकार है :—

(अंक १) चाणक्य स्वयं नन्दवंश के नाश की सूचना देता है और प्रतिज्ञा करता है कि वह नन्दवंश के महामन्त्री राक्षस को अपने वश में करके चन्द्रगुप्त का मुख्य मन्त्री बनाकर उसका राज्य सुदृढ़ कर देगा। तदनुसार योजनाएँ बनाई जाती हैं। चाणक्य विषकन्या के प्रयोग से मलयकेतु के पिता पर्वतक की हत्या कराता है और प्रचार कर देता है कि राक्षस ने उसे मरवाया है। मलयकेतु को भी इसका विश्वास दिला देता है। चाणक्य का एक गुप्तचर क्षपणक जीवसिद्धि राक्षस का परम मित्र बन जाता है। राक्षस के अन्य दो मित्र हैं—सेठ चन्दनदास (एक जौहरी) और शकटदास (एक कायस्थ)। चाणक्य के एक गुप्तचर को सेठ चन्दनदास के घर से राक्षस की मुद्रा (अंगूठी) मिल जाती है और वह उसे चाणक्य को दे देता है। चाणक्य एक जाली पत्र लिखकर उस पर राक्षस की मुद्रा से मुहर लगाकर राक्षस के मित्रों के पास भेजकर उन्हें फोड़ लेता है। चाणक्य राजद्रोह के अभियोग में शकटदास को फाँसी और चन्दनदास को सपरिवार कारावास की आज्ञा देता है। (अंक २) राक्षस के एक गुप्तचर द्वारा ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के वध की राक्षस की योजना असफल हो गई है और उसमें राक्षस

के आदमी ही मारे गए हैं। चाणक्य का ही एक व्यक्ति सिद्धार्थक शकटदास को बचाकर राक्षस का प्रेमपात्र बनता है और राक्षस की मुद्रा भी उसे लौटाता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त में मनमुटाव की सूचना दी जाती है। (अंक ३) राक्षस को धोखा देने के लिए चन्द्रगुप्त और चाणक्य का कृत्रिम कलह दिखाया जाता है। 'कौमुदीमहोत्सव' मनाने की चन्द्रगुप्त की आज्ञा को चाणक्य रोक देता है। चन्द्रगुप्त के द्वारा बुलाये जाने पर चाणक्य कृत्रिम क्रोध करके मन्त्री पद से त्याग-पत्र प्रस्तुत करता है। राक्षस के गुप्तचर इसे वास्तविक कलह समझते हैं। (अंक ४) राक्षस का गुप्तचर सूचना देता है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में मन-मुटाव हो गया है और चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को मन्त्रिपद से हटा दिया है। मलयकेतु को विश्वास हो जाता है कि राक्षस चाणक्य से क्रुद्ध है, चन्द्रगुप्त से नहीं। राक्षस और मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का निश्चय करते हैं। (अंक ५) चाणक्य अपनी कूटनीति के द्वारा राक्षस और मलयकेतु में फूट डालने में समर्थ होता है। चाणक्य ने शकटदास से एक कूट-पत्र लिखवाया और उस पर राक्षस की मुद्रा लगाकर उसके मित्रों को भेजा है। राक्षस का कपटी मित्र सिद्धार्थक उसे लेकर जाता है। चाणक्य ने पर्वतेश्वर के आभूषण गुप्तचरों के द्वारा राक्षस के हाथ बेच दिए थे। वे आभूषण पिटाई होने पर सिद्धार्थक के पास से मिलते हैं। इससे मलयकेतु को विश्वास हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया है। (अंक ६) अमात्य राक्षस मलयकेतु के सैन्य-शिविर से निकल कर पटना आ गया है। चाणक्य के आदेशानुसार दो व्यक्ति चन्दनदास को वध्यभूमि में ले जा रहे हैं। चाणक्य के एक गुप्तचर से राक्षस को सूचना मिलती है कि चन्दनदास को फाँसी दी जा रही है। (अंक ७) चन्दनदास फाँसी के लिए वध्यभूमि की ओर ले जाया जा रहा है। अमात्य राक्षस वहाँ पहुँच कर अपने परम मित्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा के लिए आत्म-समर्पण करता है। चाणक्य इस शर्त पर चन्दनदास को छोड़ने के लिए तैयार होता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त का अमात्य बन जाए। विवश होकर राक्षस चन्द्रगुप्त का अमात्य होता है। प्रतिज्ञा पूरी होने के कारण चाणक्य अपनी चोटी बाँधता है।

(४) विशाखदत्त की नाट्यकला

विशाखदत्त संस्कृत के उन नाटककारों में हैं, जिन्हें प्रगतिवादी नाटककार कहा जा सकता है। उनमें क्षमता है कि वे नई विधा, नई परम्परा और नई दिशा को जन्म दे सकें। उनमें मौलिकता है, नवीनता है और शक्तिमता है। वे सशक्त

भाषा में जटिल राजनीतिक घात-प्रतिघातों का वर्णन करने में पूर्णतया दक्ष हैं। यही कारण है कि वे परम्परागत रूढ़ियों का परित्याग करके भी संस्कृत-साहित्य में अपना अनूठा स्थान बना सके हैं।

मौलिकता—विशाखदत्त ने कई दृष्टि से अपने नाटक को मौलिक बनाया है :—(१) सर्वथा राजनीतिक वातावरण; (२) परम्परागत प्रेमाख्यान का परित्याग; (३) राजा के अतिरिक्त अन्य—मंत्री चाणक्य—को नायक बनाना; (४) नायिका का सर्वथा अभाव; (५) विदूषक का बहिष्कार; (६) कथा-संयोजन की नवीन विधा; (७) नाममात्र भी रक्तपात के दिना वीर रस का वर्णन; (८) शृङ्गार और हास्य रस का अभाव; (९) आदर्शवादिता का अभाव; (१०) स्त्री-पात्रों का अभाव, केवल नाममात्र के लिए चन्दनदास की पत्नी का रंगमंच पर प्रवेश।

नाट्य-कुशलता—विशाखदत्त की नाट्य-कुशलता का सबसे प्रमुख अंग गत्यात्मकता है। कथा इस प्रकार रखी गई है कि उसमें कहीं भी गतिरोध या गतिमंग नहीं होता। सभी अनावश्यक प्रसंगों को हटा दिया गया है। घटना-चक्र के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए शृङ्गार और हास्य के वर्णनों की उपेक्षा की गई है, फिर भी नाटक में कहीं अरोचकता नहीं आने पाई है। कवि की नाटकीय विशेषता यह भी है कि नाटक के प्रारम्भ से ही अघटित घटनाओं के लिए उसकी उत्सुकता बनी रहती है। इस नाटक में जासूसी उपन्यासों के तुल्य प्रारम्भ से अन्त तक रहस्यात्मकता व्याप्त है। कोई नहीं जान सकता है कि चाणक्य के किस दाँव-पेंच का क्या परिणाम होगा और उसका क्या उद्देश्य है? नाटक के अन्त में ही सब गुत्थियाँ सुलझती हैं। राजनीतिक नाटक होने पर भी सुखान्त है तथा रंगमंच पर कोई अप्रिय घटना नहीं घटने पाती, यह नाटककार के लिए गौरव की बात है। राजनीतिक नाटक में भी शृङ्गार-प्रधान नाटकों के तुल्य रोचकता, आकर्षण और मनोरंजकता ला देना कवि की नाट्य-कुशलता का परिचायक है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए कवि ने राक्षस के द्वारा नाटक-कार और राजनीतिज्ञ की असाधारण कठिनाइयों की चर्चा कराई है :—

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्

बीजानां गभितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च ।

कुर्वन् बुद्ध्या विमर्शं प्रसूतमपि पुनः संहरन् कार्यजातं

कर्ता वा नाटकानामिममनुभवति बलेशमस्मद्विधो वा ॥ (मुद्रा० ४-३)

कथा-संयोजन—विशाखदत्त की सूक्ष्म दृष्टि कथा-संयोजन में अत्यन्त दक्ष है। नाटक के लिए क्या हेय है, क्या उपादेय है, क्या प्रासंगिक है, क्या अप्रासंगिक है, क्या नाट्योपयोगी है, इनका उन्हें नीर-क्षीर विवेक है। यही कारण है कि वह एक नाटक में नन्दवंश-विनाश से लेकर राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के अमात्य-पद-स्वीकृति तक के विशाल घटनाचक्र को समेटने में सफल हो सका है। संक्षेप के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई गई हैं :—नायक की स्वोक्तियाँ; पत्र द्वारा विवरण; दूतों और गुप्तचरों के सन्देश; स्वगत, आकाशभाषित, पात्रों के संवाद।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—विशाखदत्त पात्रों के चरित्र-चित्रण में असाधारण रूप से कुशल हैं। नाटक में २६ पात्र हैं, जिनमें २८ पुरुष पात्र हैं और केवल एक स्त्री पात्र। प्रमुख पात्र ६ हैं, किन्तु गौण पात्रों का भी महत्त्व कम नहीं है। प्रमुख ६ पात्र हैं—चाणक्य, राक्षस, चन्द्रगुप्त, मलयकेतु, चन्दनदास, शकटदास। विशाखदत्त ने प्रतिद्वन्द्वी-युगल के रूप में प्रथम चार पात्रों को प्रस्तुत किया है। शेष दो राक्षस के परम मित्र हैं। यदि चाणक्य कूटनीतिज्ञ, शक्ति का सूत्रधार, सतत सतर्क, पुरुषार्थवादी, बुद्धिजीवी, जोड़-तोड़ और दाँव-पेंच में दक्ष, विश्वस्तों पर भी विश्वास न करने वाला, प्रधान मन्त्री होकर भी झोपड़ी में रहने वाला है तो राक्षस कूटनीति में अत्यन्त निपुण होने पर भी आस्तीन के साँपों को न पहचानने वाला, भाग्यवादी, कपट मित्रों पर भी विश्वास करने वाला, मित्रों के लिए सर्वस्व त्यागी, उदारमना, कूटनीतिक चालों में सभी साधनों को अपनाने वाला, गुणो से चाणक्य तक को मुग्ध करने वाला है। चन्द्रगुप्त योग्य शासक होने पर भी चाणक्य के हाथ की कठपुतली है। मलयकेतु पुरुषार्थी होने पर भी उद्दण्ड और अविवेकी है। चन्दनदास और शकटदास विश्वसनीय मित्र, मित्र के लिए सर्वस्व त्यागी और प्राणों तक की बलि देने वाले व्यक्ति हैं।

नाटक का नायक—विशाखदत्त नाटकीय परम्पराओं के प्रति विद्रोही हैं। अतः परम्परागत राजा (चन्द्रगुप्त) को नायक न बनाकर प्रधानामात्य (चाणक्य) को नायक बनाया है। चाणक्य ही प्रारम्भ से लेकर अन्त तक घटना-चक्र का नियामक, संचालक, प्रेरक, उद्बोधक और स्वामीष्ट का प्राप्तिकर्ता है। यह कथन भ्रामक है कि फलप्राप्ति चन्द्रगुप्त को होती है। वस्तुतः फल-प्राप्ति चाणक्य को ही होती है, क्योंकि उसकी सभी योजनाएँ, प्रतिज्ञाएँ, निर्णय और निश्चय सफल होते हैं, अतएव वह प्रतिज्ञापूर्ति-सूचनार्थ शिक्षा बाँधता है।

‘प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः’ (६-१) कहकर नाटककार ने भी इसका समर्थन किया है।

नाटकीय तत्त्व—मुद्राराक्षस में अर्थ-प्रकृतियों, अवस्थाओं और सन्धियों का यथास्थान समुचित प्रयोग हुआ है। ये सभी नाटकीय तत्त्व मुद्राराक्षस में प्राप्त होते हैं।

(५) विशाखदत्त की शैली

विशाखदत्त ही वह नाटककार हैं, जिन्होंने नाटक की वास्तविकता को समझ कर नाटक लिखा है और उसे काव्यात्मकता के दोष से बचाया है। अतएव इसमें प्रसाद और माधुर्य गुणों की प्रचुरता है। वीर रस आदि के उदात्त वर्णनों में उन्होंने ओज गुण और गौडी रीति को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है। प्रकृति-वर्णन के प्रसंग कम हैं, किन्तु अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं। अंगी रस वीर है; अतः राजनीति, नीति एवं आचार-शिक्षा आदि के वर्णनों में वैदमी रीति ही मुख्य है। शृङ्गार और करुण आदि के प्रसंग अत्यन्त न्यून हैं; फिर भी इनके वर्णन रोचक एवं प्रभावशाली हैं। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है, तथापि उपमा, रूपक, श्लेष, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास और अप्रस्तुत-प्रशंसा के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। श्लेष के प्रयोग ने व्यंग्यार्थ की प्रतीति में विशेष योग दिया है। कवि ने शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी और स्रन्धरा जैसे बड़े छन्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है।

प्रसाद, माधुर्य और नीति का एकत्र समन्वय करते हुए कवि का कथन है कि बुद्धि, शक्ति और भक्ति, इन तीन गुणों से युक्त ही वास्तविक सेवक होते हैं, अन्य स्त्री-तुल्य केवल भारभूत हैं।

अप्राप्तेन च कातरेण च गुणः स्याद् भक्तियुक्तेन कः

प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

ते भूत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ (मुद्रा० १-१५)

चाणक्य की क्रोधपूर्ण उक्ति में ओज-गुण का समावेश दर्शनीय है। चाणक्य का कथन है कि मेरे रहते हुए जो चन्द्रगुप्त को तिरस्कृत करना चाहता है, वह हाथी के खून से सनी हुई शेर की दाढ़ को उखाड़ने का साहस करता है।

आस्वादितद्विरदशोणित-शोणशोभां

सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य ।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं

को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् ॥ (मुद्रा० १-८)

शरद् ऋतु का कितना सुन्दर वर्णन है। शरद् ऋतु की तुलना शिव के शरीर से की गई है। इसमें काश-पुष्पों की सफेदी, शुभ्र चन्द्र-ज्योत्स्ना और राजहंसों की श्री विद्यमान है।

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती

शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिन्दती कृत्तिमैभीम् ।

कापालीमुद्वहन्ती खजमिव धवलां कौमुदीमित्यपूर्वा

हासश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद् वः ॥ (मुद्रा० ३-२०)

राक्षस के वर्णन में अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुन्दर समन्वय है। वह अपने सन्तप्त हृदय की जीर्ण उपवन से तुलना करता है।

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचनं

सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिव नाशेन सुहृदः ।

फलहीना वृक्षा विगुणविधियोगादिव नया-

स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीत्या ह्यविदुषः ॥ (मुद्रा० ६-११)

चाणक्य के कथन में वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है :—

आरुह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्राङ्गुलीमुक्तचूडं

लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोच्छेददीर्घां प्रतिज्ञाम् ।

केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते

नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य ॥

(मुद्रा० ३-२७)

चाणक्य का कथन है कि—मैंने ही क्रोध के वशीभूत होकर अपनी शिखा खोली थी और सारे शत्रु-कुल के विनाश की प्रतिज्ञा की थी तथा राक्षस की आँखों के सामने ६६ अरब मुद्राओं के स्वामी नन्दों को बलि के पशु के तुल्य मारा है।

कवि का शृङ्गाररस पर भी सुन्दर अधिकार है। वीर रस-पूर्ण नाटक में

शृङ्गार का चमत्कारिक वर्णन विद्युत् की-सी छटा प्रस्तुत करता है। राक्षस की प्रशंसा में उक्ति है कि लक्ष्मी ने यद्यपि चन्द्रगुप्त के गले में बायाँ हाथ डाल दिया है, तथापि राक्षस के प्रताप से वह सशंक है और चन्द्रगुप्त से मुँह फेर कर बैठी है तथा उसकी छाती से अपने दाएँ वक्षःस्थल का स्पर्श नहीं कराती।

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे निवृत्तानना

स्कन्धे दक्षिण्या बलान्निहितयाऽप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।

गाढालिङ्गनसङ्गोपडितमुखं यस्योद्यमाशङ्किनी

मौर्यस्योरसि नाधुनाऽपि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम् ॥ (मुद्रा० २-१२)

विशाखदत्त ने राजनीति के भी कुछ सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किए हैं। राजा और मन्त्री में समन्वय होने पर लक्ष्मी उनके पास रहती है, किन्तु विरोध होने पर वह उन दोनों में से एक को छोड़ देती है।

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च, विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः।

सा स्त्रीस्वभावादसहा भरस्य, तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति ॥ (मुद्रा० ४-१३)

श्लेष अलंकार का आश्रय लेकर कवि ने कई स्थलों पर अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन किया है। जैसे—

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।

अभिभवितुमिच्छति बलाद् रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥ (मुद्रा० १-६)

इसमें ज्योतिष-विषयक केतु से चन्द्रग्रहण का वर्णन है। साथ ही श्लेष से ग्रथं निकलता है कि मलयकेतु चन्द्रगुप्त का नाश करना चाहता है, किन्तु विद्वान् चाणक्य उसकी रक्षा करेगा।

कवि ने एक स्थान पर दर्शन और राजनीति का सुन्दर समन्वय करते हुए न्यायदर्शन के पारिभाषिक शब्दों—पक्ष, सपक्ष, विपक्ष, निग्रह—का प्रयोग किया है और कहा है कि असत् हेतु साध्य की सिद्धि में असमर्थ है।

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थितिं

व्यावृत्तं च विपक्षतो भवति यत् तत् साधनं सिद्धये।

यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्

तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः ॥ (मुद्रा० ५-१०)

चाणक्य ने बुद्धि के महत्त्व पर कितना सुन्दर सुभाषित कहा है कि संसार की सभी वस्तुएँ मेरा साथ छोड़ दें, किन्तु केवल बुद्धि मेरा साथ न छोड़े।

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका,

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ॥ (मुद्रा० १-२६)

विशाखदत्त ने पद्य ही नहीं, गद्य को भी अपनी प्रतिभा से अर्थगाम्भीर्य-युक्त बना दिया है। कुछ सुभाषित अत्यन्त प्रचलित हो गए हैं। जैसे—(१) अत्यादरः शङ्कनीयः (अंक १); (२) शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः (अंक १); (३) पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञान-विमुखी (२-७); (४) निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम् (२-१८); (५) भव्यं रक्षति भवितव्यता (अंक २); (६) सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (३-१४); (७) दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति (अंक ३); (८) अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः (अंक ५); (९) दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति (६-८); (१०) किं कर्तव्यमतः परम् (अंक ७)।

प्राकृत-प्रयोग और छन्दोविधान—मुद्राराक्षस में तीन प्राकृतों का प्रयोग मिलता है—(१) शौरसेनी (सामान्य रूप से व्यवहृत), (२) माहाराष्ट्री (पद्य-रचना में), (३) मागधी (क्षपणक, सिद्धार्थक आदि के द्वारा)। कीथ के अनुसार पुरुष पात्रों द्वारा शौरसेनी पद्यों का भी प्रयोग हुआ है।

मुद्राराक्षस में सबसे अधिक इन छन्दों का प्रयोग हुआ है :—शार्दूलविक्रीडित (३६), स्रग्धरा (२४), वसन्ततिलका (१६), शिखरिणी, श्लोक (२२)। इनके अतिरिक्त इन छन्दों का भी प्रयोग हुआ है—आर्या (प्राकृत), उपजाति, ओपच्छन्दसिक, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, रुचिरा, वंशस्थ, सुवदना, हरिणी।

६. (ङ) हर्ष (हर्षदेव, हर्षवर्धन)

शृङ्गाररम्यां प्रियदर्शनो यश्चकार हर्षः प्रियदर्शिकाख्याम् ।

रत्नावली सागररत्नहृद्यां, विद्वन्मनोज्ञां विदधे हिताय ॥ १ ॥

कारुण्यपूर्ण गुणिवृन्दनन्दं, नागादिनन्दं विममे मुदे यः ।

रत्नत्रयं चारुगुणत्रयेण, प्रस्तौति मूलप्रकृतिं प्रजाम्यः ॥ २ ॥ (कपिलस्य)

(१) जीवन-वृत्त और कृतित्व

जीवन-वृत्त—नाटककार के रूप में हर्ष या हर्षदेव (हर्षवर्धन) को प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द का रचयिता माना जाता है। ये हर्षवर्धन स्थाण्वीश्वर

(थानेश्वर) और कन्नौज के राजा प्रभाकरवर्धन के पुत्र और राज्यवर्धन के छोटे भाई हैं। महाकवि बाण इनके ही आश्रित कवि हैं और इनके ही जीवन को आधार मानकर 'हर्षचरित' ग्रन्थ की रचना की है। हर्षवर्धन का राज्यकाल ६०६ ई० से ६४८ ई० तक है। ये ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ये स्वयं विविध शास्त्रों के ज्ञाता, विद्वान्, कवि, नाटककार, गुणग्राही और प्रसिद्ध कवियों के आश्रयदाता हैं।

कृतित्व—इनकी तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। भाषा, शैली तथा रचना-क्रम की दृष्टि से इनका क्रम इस प्रकार है—(१) प्रियदर्शिका, (२) रत्नावली, (३) नागानन्द।

इन तीन नाटकों का लेखक कौन है ?

विविध मत—इन तीन नाटकों के लेखक के विषय में पर्याप्त मतभेद है। इसका मूल कारण है—काव्यप्रकाशकार मम्मट का कथन—श्रीहर्षदिर्घावका-दीनामिव धनम् (उल्लास १ श्लोक २ की व्याख्या)। इसमें मम्मट ने बताया है कि काव्य का प्रयोजन धन प्राप्ति भी है, जैसे श्रीहर्ष आदि से धावक आदि को धन-प्राप्ति। इस पर कई टीकाकारों ने अटकलबाजी की है कि धावक ने कुछ नाटक बनाए थे और हर्ष से धन लेकर उन्हें उनके नाम से प्रचलित कर दिया। काव्यप्रकाश की निदर्शना टीका में 'धावकादीनामिव धनम्' के स्थान पर 'बाणा-दीनामिव धनम्' पाठ मिलता है। इसके आधार पर डा० हाल (Hall) और व्यूलर (Bühler) ने इन तीनों नाटकों का कर्ता बाणभट्ट को माना है। कवेल (Cowell) के मतानुसार रत्नावली का लेखक बाणभट्ट है; नागानन्द का धावक और प्रियदर्शिका का अज्ञात कवि। इस प्रकार संक्षेप में विविध मत हैं—(१) तीनों नाटकों का रचयिता हर्ष (हर्षदेव, हर्षवर्धन); (२) तीनों का लेखक धावक; (३) तीनों का लेखक बाण; (४) तीनों के लेखक भिन्न-भिन्न व्यक्ति।

समीक्षा—(१) **लेखक धावक**—इस मत का आधार केवल मम्मट का उल्लेख है। मम्मट के लेख का यह अभिप्राय नहीं है कि धावक ने अपनी पुस्तक बेच दी और धन पाया; अपितु उसका अभिप्राय यह है कि हर्ष के दरबार में धावक नामक सुयोग्य कवि था और उसकी कवित्व-निपुणता से प्रसन्न होकर राजा ने उसे बहुत धन दिया। व्याख्याकारों ने असंगत एवं अनावश्यक रूप से इसे तूल दिया है। कुछ लोगों ने 'धावकोऽपि हि यद् भासः कवीनामग्निमोऽभवत्' (राजशेखरकृत कवि-विमर्श) के आधार पर भास और धावक को एक ही माना

है और भास को इन नाटकों का लेखक माना है। हर्ष और भास के समय में सैकड़ों वर्ष का अन्तर है, अतः यह मत असंगत है।

(२) **लेखक बाण**—बाण की शैली और इन ग्रन्थों की शैली में आकाश-पाताल का अन्तर है। बाण से बौद्ध-भावना-प्रधान नागानन्द नाटक लिखवाना, उसकी नैतिक हत्या करना होगा। बाण हर्ष का आश्रित कवि था। उसे राजा से पर्याप्त धन और सम्मान प्राप्त हुआ था, इसी आधार पर यह बात गढ़ी गई है। इस मत में कोई सार नहीं दीखता है।

(३) **विविध लेखक**—कावेल का मत रेत की दीवार पर खड़ा है। इसमें सभी लेखकों के समन्वय की भावना प्रधान है। आधार कुछ नहीं है। तीनों नाटक भाषा, शैली, वाक्य-विन्यास आदि की दृष्टि से एक ही लेखक की कृति सिद्ध होते हैं।

(४) **लेखक हर्ष**—निम्नलिखित कारणों से हर्ष को ही इन तीनों नाटकों का लेखक मानना उचित है—

(क) तीनों नाटकों की प्रस्तावना में इनका लेखक राजा श्रीहर्षदेव बताया गया है। 'श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृता' (प्रियदर्शिका)। 'श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता' (रत्नावली)। 'श्रीहर्षदेवेनापूर्वरचनालंकृतं विद्याधरजातकप्रतिनिबद्धं नागानन्दं नाम नाटकं कृतम्' (नागानन्द)। प्रियदर्शिका (१-३) और रत्नावली (१-५) में 'श्रीहर्षो निपुणः कविः' श्लोक एक ही है।

(ख) बाण ने हर्षचरित में हर्ष को कवि, विद्वान्, शास्त्रज्ञ, काव्यामृतवर्षी सरस्वती का मूर्त रूप बताया है। इससे हर्ष का लेखकत्व सिद्ध होता है।

(ग) चीनी यात्री इत्सिंग (I-tsing, ७वीं शताब्दी ई० अन्तिम चरण) ने अपने संस्मरण में हर्ष को लेखक, जीमूतवाहन से संबद्ध कथा का प्रणेता तथा उसका रंगमंचीय आयोजक बताया है। इससे हर्ष का नागानन्द का लेखकत्व सिद्ध होता है।

(घ) कश्मीर के राजा जयापीड (७७६ ई०—८१३ ई०) के समकालिक दामोदरगुप्त ने अपने ग्रन्थ 'कुट्टनीमत' में रत्नावली के उद्धरण दिए हैं और उसे

१. काव्यकथास्वापीतममृतमुद्वमन्तम् (हर्षचरित, नि० सा० सं०, पृष्ठ ७१),
विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनीं सरस्वतीं दधानम् (वही, पृ० ७४)। प्रज्ञायाः
शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, ... न पर्याप्तो विषयः (वही, पृ० ७८)
सर्वविद्यासंगीतगृहमिव सरस्वत्याः (वही, पृ० ७६)।

एक राजा की रचना बताया है। यह राजा ७वीं शताब्दी ई० का हर्ष ही हो सकता है।

(छ) सोड्डल (११वीं शताब्दी ई०) ने उदयमुन्दरीकथा में हर्ष को राजा, कवीन्द्र, गीर्हर्ष (वाणी का सुखद) और बाण का आश्रयदाता बताया है।^१ इससे हर्ष का नाटकादि-कर्तृत्व सिद्ध होता है।

(च) ११वीं शताब्दी के जयदेव ने भी भास, कालिदास, बाण और मयूर आदि के साथ हर्ष को कवि और कविता का हर्ष कहा है।^२ इससे भी हर्ष का नाटकादि-लेखकत्व सिद्ध होता है।

(छ) 'मयूरशतक' के संपादक मयूरसुदन (१६५४ ई०) ने हर्ष को कविमुख्य और 'रत्नावली' नाटिका का कर्ता बताया है।

(ज) सुभाषितावली और सदुक्तिकर्णामृत ग्रन्थों में हर्ष के स्फुट पद्य मिलते हैं।

(झ) मधुवन और बाँसखेड़ा (६२८ ई०) के अभिलेख स्वयं श्रीहर्ष की कृति हैं और इन पर उनके हस्ताक्षर (स्वहस्तो मम महाराजाविराजश्रीहर्षस्य०) भी हैं। इनमें कुछ श्लोक भी हैं, जिनमें एक सुन्दर श्लोक यह भी है—कर्मणा मनसा वाचा, कर्तव्यं प्राणिनां हितम्। हर्षेणैतत् समाख्यातं धर्माज्जनमनुत्तमम्।

(ञ) हर्ष ने दो बौद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ भी लिखे हैं—सुप्रभातस्तोत्र और अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र। इससे उसका लेखकत्व सिद्ध होता है।

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि हर्ष रत्नावली और नागानन्द का लेखक अवश्य है। तीनों नाटकों में भाव, भाषा, शैली आदि के साम्य के कारण उनका रचयिता हर्ष को ही मानना युक्तिसंगत है। रत्नावली और प्रियदर्शिका के भरतवाक्यों में 'निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरः' से ज्ञात होता है कि हर्ष के समय में भी उसके कटु आलोचक थे, जो उसकी कविता को पराई कहते थे। उसने प्राचीन तथा अर्वाचीन ऐसे आलोचकों का मुँह स्वयं अपने इस कथन से बन्द किया है।

१. श्रीहर्ष इत्यवनिर्वर्तिषु पार्थिवेषु, नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु। गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा संपूजितः कनककोटिशतेन बाणः। (काव्य-मीमांसा की भूमिका, पृष्ठ १०)।

२. हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः ०। प्रसन्नराघव १-२२

(२) नाटकों की संक्षिप्त कथा और समीक्षा

(क) प्रियदर्शिका

यह ४ अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन और आरण्यिका (प्रिय-दर्शिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है। (अंक १) कलिंग के राजा द्वारा पिता दृढवर्मा के मराजित होने पर राजकुमारी प्रियदर्शिका संयोगवश राजा उदयन के महल में पहुँचती है और वहाँ अपनी बहन रानी वासवदत्ता की दासी के रूप में आरण्यिका नाम से रहती है। (अंक २) क्रीडावन में भ्रमर से पीड़ित आरण्यिका की राजा रक्षा करता है और वहीं से दोनों का पूर्वराग प्रारम्भ होता है। (अंक ३) वासवदत्ता की सखी सांकृत्यायनी उसके मनोरंजनार्थ उदयन-वासवदत्ता-प्रेमाख्यान विषयक एक नाटक प्रस्तुत करती है, जिसमें आरण्यिका को वासवदत्ता का तथा मनोरमा को उदयन का अभिनय करना था, किन्तु राजा स्वयं उदयन का अभिनय करते हैं। यह नाटक नकली न रहकर असली हो जाता है। वासवदत्ता इस दृश्य से क्षुब्ध हो उठती है और आरण्यिका को कारागृह में डलवा देती है। (अंक ४) आरण्यिका जीवन से निराश होकर बन्दीगृह में विषपान कर लेती है। सूचना मिलते ही वासवदत्ता उसे विष उतारने की विद्या जानने वाले राजा के सामने मँगाती है। उसी समय दृढवर्मा का कंचुकी आता है और वह राजकुमारी प्रियदर्शिका को पहचान लेता है। उससे वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि आरण्यिका वस्तुतः उसके भौसा दृढवर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका है। राजा आरण्यिका का विष उतारता है और वासवदत्ता दोनों का विवाह कराती है।

समीक्षा—इस नाटिका पर शाकुन्तल और मालविकाग्निमित्र का प्रभाव है। भ्रमर-वृत्तान्त शाकुन्तल से तथा प्रणय-व्यापार एवं विषप्रसंग मालविकाग्निमित्र से प्रभावित हैं। यह हर्ष की प्रथम कृति है, अतः इसमें कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति, भाव-प्रौढ़ता, भाषा-सौष्ठव एवं चरित्र-चित्रण-विदग्धता पूर्ण विकसित रूप में नहीं है, तथापि सुन्दर कवित्व, रचना-कौशल, घटना-संयोजन और सरल भावाभिव्यक्ति प्रशंसनीय हैं। तृतीय अंक में 'गर्भनाटक' विशेष महत्त्वपूर्ण है और कवि की विशेषज्ञता का परिचायक है।

कवि वासवदत्ता के प्रणय-कोप का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। प्रयत्नपूर्वक रोका गया क्रोध छिप नहीं रहा है। आँखों में लाली है, वाणी में

अस्पष्टता है और छाती में कम्पन है। इस श्लोक पर शाकुन्तल के 'स्निग्धं वीक्षितम्० (२-२) का प्रभाव लक्ष्य है।

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्तात्रा तथापि द्युति-

मार्धुर्येऽपि सति स्वलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।

निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः

कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ॥ प्रिय० ३-१३

ग्रीष्म ऋतु का कैसा स्वाभाविक वर्णन मिलता है !

आभात्यर्काशुतापक्वथविव शफरोद्वर्तनैर्दोषिकाम्भ-

श्छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः

सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ॥ १-१२

तालाबों में मछलियाँ उछल रही हैं, मानो धूप से तालाब का जल उबल रहा है। मोर अपना पंख फैला कर उससे छाते का काम ले रहा है। प्यासा मृग का बच्चा थाले के जल के लोभ से पेड़ों की छाया में पहुँच रहा है। भौंरा हाथी के कपोल को छोड़कर उसके कान में घुस रहा है।

राजा एक ओर क्रुद्ध वासवदत्ता से भयभीत है और दूसरी ओर आरण्यिका के मनोहर मुख को देखकर आकृष्ट है। वह घोर संकट में पड़ा हुआ है। उसकी द्विविधापूर्ण मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण देखें :—

स्वेदाम्भःकणभिन्नभीषणतरभ्रभङ्गमेकं रुषा

त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुतमृगव्यालोलनेत्रोत्पलम् ।

उत्पश्यन्नहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा

भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्म्यहं संकटे ॥ (प्रि० ३-१५)

इस श्लोक में क्रोध में गौड़ी और स्नेह में वैदर्भी रीति का एकत्र समन्वय प्रशंसनीय है। कवि ने अर्थान्तरन्यासों का भी स्थान-स्थान पर समावेश किया है।

संजातसाध्वमकरन्दरसां क्रमेण

पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्गः ।

दग्धा निपत्य सहसैव हिमेन चासौ

वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ॥ (प्रि० ४-८)

भाग्य के विपरीत होने पर कोई भी कामना पूर्ण नहीं होती है। भौरा मकरन्दरस से परिपूर्ण कमल की कली का पान करने जाता है और उसी समय हिमपात से वह कली जली हुई मिलती है।

(ख) नागानन्द

यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर-राजकुमार का अपनी बलि देकर शंखचूड़ नामक सर्प को गरुड़ से बचाने का वर्णन है। (अंक १) विद्याधर-कुमार जीमूतवाहन सिद्धकुमार-मित्रावसु की बहन मलयवती पर आसक्त होता है। (अंक २) जीमूतवाहन और मलयवती दोनों पूर्वराग से व्याकुल हैं। मित्रावसु की स्वीकृति से दोनों का विवाह संपन्न हो जाता है। (अंक ३) नायक-नायिका के आमोद-प्रमोद का वर्णन है। (अंक ४) समुद्रतट पर जीमूतवाहन हड्डियों का ढेर देखता है। उसे मित्रावसु से ज्ञात होता है कि यह गरुड़ द्वारा खाए हुए नागों (सर्पों) की हड्डियों का ढेर है। गरुड़ के लिए शंखचूड़ नामक सर्प की बारी है, अतः उसकी माता विलाप कर रही है। जीमूतवाहन अपने आपको उसके स्थान पर प्रस्तुत करता है और लाल वस्त्र पहन कर वध्यशिला पर बैठता है। गरुड़ उसे उठा ले जाता है। (अंक ५) गरुड़ जीमूतवाहन के शौर्य और आत्म-विश्वास से प्रसन्न है। मृतप्राय जीमूतवाहन गौरी की कृपा से पुनरुज्जीवित हो जाता है। अमृत-वर्षा से मृत सर्प भी जीवित हो जाते हैं। गरुड़ पश्चात्ताप करता है और प्रतिज्ञा करता है कि वह भविष्य में सर्पों को नहीं खाएगा।

समीक्षा—नागानन्द हर्ष की अन्तिम रचना मानी जाती है। वेतालपंचविंशति और बृहत्कथा में प्राप्य एक बौद्ध कथा इस नाटक का आधार है। इस नाटक पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट है। इसमें अहिंसा, आत्म-बलिदान, दान, दया, परोपकार और अहिंसा का अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से महत्त्व वर्णित है। यद्यपि नाटकीय दृष्टि से यह नाटक रत्नावली से उत्कृष्ट नहीं है, तथापि भाव-सौन्दर्य, भाषा-विशदता, सरलता, सरसता आदि गुणों की दृष्टि से यह नाटक महत्त्वपूर्ण है। हर्ष के अन्य दो नाटकों में शृङ्गाररस प्रधान है, किन्तु इसमें करुण रस की

प्रमुखता है। जीवन के पूर्वार्ध में शृङ्गार की प्रमुखता होती है और उत्तरार्ध में करुण की, अतः नागानन्द को हर्ष की अन्तिम कृति माना जाता है। इसमें पूर्वार्ध में जीमूतवाहन और मलयवती के विवाह में शृङ्गाररस प्रधान है तथा उत्तरार्ध में आत्मोत्सर्ग की भावना मुख्य होने से दयावीर और करुण की मुख्यता है। इसमें वैदर्भी रीति मुख्य है। कहीं-कहीं पर गौडी की भी सुन्दर छटा दर्शनीय है। नवोढा प्रिया के प्रथम मिलन का कितना स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन कवि ने किया है!

दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता

शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते।

निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनाभिर्गन्तुमेवेहते

याता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया ॥ (ना० ३-४)

देखने पर दृष्टि नीचे कर लेती है; बोलने पर चुप हो जाती है; शय्या पर मुंह फेर कर लेटती है; बलात् आलिङ्गन करने पर काँपती है; सखियों के कमरे से बाहर जाते समय बाहर जाना चाहती है। इस प्रकार प्रतिकूल आचरण करने पर भी नवोढा प्रिया अत्यधिक प्रीति को उत्पन्न करती है।

नैसर्गिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। आभूषण केवल शरीर के लिए भार है। आभूषणों के महत्त्व पर कितना सुन्दर व्यंग्य है!

खेदाय स्तनभार एव किमु ते मध्यस्य हारोऽपरः

आम्यत्यूर्युगं नितम्बभरतः काञ्च्याऽनया किं पुनः।

शक्तिः पादयुगस्य नोर्युगलं बोद्धुं कुतो नूपुरौ

स्वाङ्गैरेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम् ॥ (ना० ३-६)

वन में सभी गुण हैं, परन्तु याचक के अभाव के कारण उसकी समृद्धि व्यर्थ है। परोपकार की भावना का कितना सुन्दर चित्रण है!

शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्यः द्रुमाणामधः

शीतं निर्झरवारि प्राणमशनं कन्दाः सहाया मुगाः।

इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने

दुष्प्रापार्थिनि यत् परार्थघटनावन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ॥ (ना० ४-२)

आत्मोत्सर्ग की भावना से परार्थ जीवनदान करते हुए वध्यशिला पर जो

मुख मिलता है, वह माता की गोद में भी नहीं मिलता। कितनी उदात्त भावना है !

शयितेन मातुरङ्गे विश्रब्धं शैशवे न तत् प्राप्तम् ।

लब्धं सुखं मयाऽस्या वध्यशिलाया यदुत्सङ्गे ॥ (ना० ४-२३)

कवि वैदर्भी ही नहीं, अपितु गौड़ी शैली के प्रयोग में भी दक्ष है। महाश्मशान का समासबहुल गौड़ी शैली में वर्णन देखिए :—

चञ्चच्चञ्चवप्रकृतच्युतपिशितलवप्राससंवृद्धगर्धः

गृध्राबद्धपक्षद्वितयविधुतिभिर्बद्धसान्द्रान्धकारे ।

वक्त्रोद्धान्ताः पतन्त्यः शमितशिखिशिखाश्रेणयोऽस्मिन् शिबानाम्

अस्त्रोत्तस्यजस्रस्रुतिबहुलवसावासविल्ले स्वनन्ति ॥ (ना० ४-१७)

गरुड के प्रहार से मृत पुत्र जीमूतवाहन को देखकर उसका पिता विलाप करता है कि धैर्य का आधार नष्ट हो गया; विनय अनाथ हो गया; क्षमा को कौन धारण करेगा? दानशीलता समाप्त हो गई; सत्य का नाश हो गया; बेचारी कृपा कहाँ जाए; हे पुत्र, तुम्हारे बिना संसार सूना हो गया है।

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः

क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह, विरता दानपरता ।

हतं सत्यं सत्यं व्रजतु च कृपा क्वाद्य कृपणा

जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय लोकान्तरगते ॥ (ना० ५-३०)

सुकुमार भावना का कोमल पदावली में वर्णन देखिए।

समुत्पत्त्यामहे मातर्यस्यां यस्यां गतौ वयम् ।

तस्यां तस्यां प्रियसुते ! माता भूयास्त्वमेव नः ॥ (ना० ४-११)

हे पुत्रवत्सल माता, प्रत्येक जन्म में तुम्हीं मेरी माता रहना। यही मेरी अन्तिम कामना है।

यह शान्तरस-प्रधान नाटक है।

(ग) रत्नावली

यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है।

(अंक १) राजा उदयन के महल में समुद्री दुर्घटना से बची हुई सिंहलराज की पुत्री रत्नावली वासवदत्ता के पास पहुँचती है और सागरिका नाम से उसकी दासी बनकर रहती है। उसके सौन्दर्य पर राजा आसक्त न हो जाए, अतः वह सागरिका को राजा से दूर रखती है, किन्तु मदनमहोत्सव में दोनों का साक्षात्कार हो जाता है तथा दोनों का पूर्वराग प्रारम्भ होता है। (अंक २) सागरिका अपनी सखी सुसंगता को उदयन-विषयक अपना प्रेम बताती है। एक मैना यह सब समाचार सुन लेती है। राजा का पालतू बन्दर उधर आता है और मैना का पिंजड़ा खोल देता है। मैना उड़ जाती है। राजा और विदूषक उस कदलीवन में आते हैं। मैना से उन्हें सारा समाचार ज्ञात होता है। सुसंगता के प्रयत्न से उदयन और सागरिका मिलते हैं। वासवदत्ता वहाँ आकर क्रुद्ध होती है तथा राजा के मनाने पर भी तमक कर चली जाती है। (अंक ३) सुसंगता और विदूषक ने उदयन और सागरिका को माधवीलता-मण्डप में मिलाने का आयोजन किया। वासवदत्ता को षड्यन्त्र का पता चल गया और वह पहले ही वहाँ पहुँचती है। राजा उसे सागरिका नाम से संबोधित करता है। रानी क्रुद्ध होकर चली जाती है। सफ़री बातें जानकर सागरिका लज्जावश फाँसी लगाने का प्रयत्न करती है, किन्तु राजा उसे बचा लेता है। दोनों प्रेमालाप प्रारम्भ करते हैं। इसी बीच पुनः वासवदत्ता आ जाती है और क्रुद्ध हो सागरिका को कैद में डाल देती है तथा उसे उज्जैन भेज देने की अफवाह उड़ा देती है। (अंक ४) एक जादूगर अपना खेल दिखाता है। महल में आग लगती है। वासवदत्ता सागरिका को बचाने के लिए राजा से प्रार्थना करती है। राजा उसे बचा लाता है। इसी समय सिंहल राजा के मंत्री और कंचुकी आते हैं और वे रत्नावली (सागरिका) को पहचान लेते हैं। वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसके मामा की पुत्री है। वह दोनों का प्रेम-विवाह कराती है।

(३) हर्ष की नाट्यकला एवं शैली

नाट्यकला—हर्ष एक नाट्यकला-प्रवीण नाटककार हैं। उनकी नाटिकाओं में वस्तु-विन्यास अत्यन्त प्रभावशाली तथा योजना-बद्ध है। नाटिकाओं में गतिशीलता है और कार्य-व्यापार में धारावाहिकता। इनमें कल्पना की ऊँची उड़ान है। यद्यपि प्रियदर्शिका में कवि का कल्पना पक्ष उतना उभर कर नहीं आया है, तथापि रत्नावली में उसकी क्षतिपूर्ति हो गई है और कवि-कल्पना प्रौढ़

रूप में प्राप्त होती है। प्रियदर्शिका में 'गर्भनाटक' मौलिक कल्पना है तो रत्नावली में ऐन्द्रजालिक का दृश्य मधुर कल्पना है। रत्नावली में वेषभूषा-परिवर्तन भी नई कल्पना है। इसके द्वारा सागरिका वासवदत्ता के रूप में प्रस्तुत होने में समर्थ होती है।

प्रियदर्शिका और रत्नावली—प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों नाटिकाओं में राजा अपनी प्रेयसी पर कुछ उपकार करता है। प्रियदर्शिका में भ्रमर-बाधा से रक्षा करता है और विष का प्रभाव उतारता है तो रत्नावली में फाँसी लगाकर मरने से बचाता है और कृत्रिम अग्निज्वाला से बचाता है। दोनों नाटिकाओं में कई दृष्टि से अन्य साम्य भी हैं—(१) दोनों की कथावस्तु प्रसिद्ध उदयन-वासवदत्ता-कथानक पर आश्रित है। (२) दोनों के प्रणय-व्यापारों में साम्य है। यथा—नायिका का नायक पर मुग्ध होना; गुप्तरूप से नायक-नायिका को मिलाने का प्रयत्न; षड्यन्त्र का भेद खुलना; नायिकाओं का बन्दी बनाया जाना; रानी वासवदत्ता द्वारा पाणिग्रहण कराना। (३) कथा-साम्य—नायिकाओं का राजकुमारी होना; किसी विपत्ति से ग्रस्त होना; संयोगवश वासवदत्ता की शरण में आना; दासी बनकर रहना; वासवदत्ता से किसी प्रकार संबद्ध होना; नाटक के अन्त में वास्तविकता का पता चलना; उपनायिकाओं की पहचान; वासवदत्ता का पश्चात्ताप; ईर्ष्यालु वासवदत्ता में भगिनी प्रेम का आविर्भाव; स्वयं वासवदत्ता द्वारा उनका पाणिग्रहण कराना। (४) दोनों में शृङ्गाररस मुख्य है। (५) दोनों का नायक धीरललित है। (६) दोनों में नायक भ्रमर-वृत्ति है। वह पुरानी प्रेमिका को भुला-सा देता है। इसके लिए अपमान सहने को भी प्रस्तुत रहता है। (७) नायिकाएं पिता द्वारा उदयन के लिए बागदान की गई हैं, परन्तु नायक को इसका ज्ञान नहीं है। (८) नायिकाएं अपने सौन्दर्य से नायक को जीतती हैं। नायक छिपकर उनसे प्रेमालाप करता है। (९) प्रेमियों के मिलाने में विदूषक का सहयोगी होना और जेल जाना। (१०) दोनों में मौलिकता कम है, लालित्य अधिक है। (११) दोनों में शृङ्गाररस के उपयुक्त वातावरण बनाया गया है। (१२) नाट्यकला के विकास की दृष्टि से प्रियदर्शिका षोडशी है तो रत्नावली प्रौढा।

शास्त्रीय महत्त्व—तीनों नाटकों में रत्नावली शास्त्रीय दृष्टि से अनुपम रत्न है। इसकी गरिमा पर दशरूपककार घनंजय मन्त्रमुग्ध हैं और साहित्य-

दर्पणकार विश्वनाथ भी उसके आकर्षण से बच नहीं सके हैं। इसमें अर्थ-प्रकृतियों, अवस्थाओं, सन्धियों और सन्ध्यङ्गों का इतना साङ्गोपाङ्ग निरूपण है कि प्रत्येक नाटकीय तत्त्व का उदाहरण इसमें ढूँढा जा सकता है। यह कल्पना निराधार है कि नाटकीय तत्त्वों की व्याख्या के लिए ही इसका प्रणयन हुआ था। इसका नाटकीय गौरव हर्ष की नाट्य-कुशलता का परिचायक है। हर्ष यद्यपि कथावस्तु और घटना-संयोजन के लिए भास और कालिदास का ऋणी है, तथापि उसकी अपनी मौलिकता है, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है। उसके नाटकों में सफल अभिनेयता है। ये रंगमंच की दृष्टि से पूर्णतया सफल हैं।

हर्ष रोमांचक (Romantic) प्रणय-नाटिका के लेखक तथा रंगमंचीय नाटक-प्रणेता के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे। इन दोनों गुणों ने कालिदास आदि के महत्त्व के समक्ष भी हर्ष का महत्त्व कम नहीं होने दिया है।

शैली—हर्ष वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण पूर्णतया व्याप्त हैं। उनकी भाषा प्रौढ, परिष्कृत, भावाभिव्यक्ति में सक्षम और प्रवाहपूर्ण है। कवि में प्रौढ कवित्व है और उच्चकोटि की कल्पना-शक्ति। कुछ सर्वथा नवीन कल्पनाएँ भी मिलती हैं। काव्य में संगीतात्मकता का समन्वय है। दोनों नाटिकाओं में शृङ्गाररस प्रधान है तथा नागानन्द में शान्तरस प्रमुख है। यथास्थान वीर, हास्य और करुण रसों का भी समावेश है। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है; श्रमसाध्य अलंकारों का अभाव है, तथापि स्वाभाविक रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। कवि प्रकृति-वर्णन में अत्यन्त सिद्धहस्त है। वर्णनों में यथार्थता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। वृक्ष, वन, पर्वत, प्रासाद, उपवन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न, शीष्म आदि का अत्यन्त प्रभावपूर्ण सचित्र चित्रण है। कवि संगीत, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, दर्शन, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि का विशेषज्ञ है। विविध शास्त्रज्ञता के कारण उसके नाटकों में अपूर्व सहृदय-संवेद्यता है।

सायंकाल का समय है, कमल बन्द हो रहे हैं, भीरे उनमें छिप रहे हैं। राजा सागरिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उत्प्रेक्षा करता है कि उसके मुख-सौन्दर्य से लज्जित कमल मुख झुका रहे हैं और उसकी सखियों आदि के संगीत से लज्जित होकर भ्रमरियाँ कमलों में छिप रही हैं। सुन्दर उत्प्रेक्षा है!

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ॥ (रत्ना० १-२५)

प्रेम का प्रकोप प्रबल होता है। असफल होने पर आत्मघात के अतिरिक्त
और कोई गति नहीं रह जाती। प्रेमानुर सागरिका के शब्दों में सुनिए :—

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ॥ (रत्ना० २-१)

राजा सागरिका का चित्र देखकर मन्त्रमुग्ध है। सागरिका की आँखों में
आँसू हैं। प्रेम के प्यासे राजा को पानी मिल जाता है। इस श्लोक में नख-शिक्ष-
वर्णन है।

कृच्छ्रादूर्युगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निष्पन्दतामागता ।

मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
साकांक्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्पन्दिनी लोचने ॥ (रत्ना० २-११)

राजा सागरिका के मुखचन्द्र में चन्द्रमा की सभी विशेषताएँ देखता है।

किं पद्मस्य रुचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं

वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।

वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युदगतो

दर्यः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे ॥ (रत्ना० ३-१३)

तुम्हारा मुख कमल की शोभा को हरण करता है; नेत्रों को आनन्द देता है;
झषकेतन (कामदेव, समुद्र) की वृद्धि करता है। तुम्हारे मुखचन्द्र के रहते हुए
यह चन्द्रमा उदय हो रहा है, यह इसकी मूर्खता है। यदि इसे अमृत का गर्व है
तो वह अमृत भी तुम्हारे अघर में है। प्रेमिका के मुख में कितनी मादकता है !

प्रेमी-प्रेमिका के इस प्रेम में यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो वह असह्य होती
है। सागरिका के प्रति राजा के प्रेम से वासवदत्ता क्षुब्ध है। वह अतिस्नेही राजा
से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं करती। सम्भव है वह प्राण भी त्याग दे। स्त्री-
स्वभाव का कितना सजीव चित्रण है !

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिन

व्यलोकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ

प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ॥ (रत्ना० ३-१५)

सायंकाल का समय है। सूर्य अस्त हो रहा है। कमलिनी दुःखित होकर मुरझा रही है। सूर्य अपनी प्रिया कमलिनी के माथे पर हाथ रखकर आश्वासन देता है कि नियतिचक्र के कारण मुझे प्रवास में जाना पड़ रहा है। मैं स्वयं आकर सोती हुई तुमको जगाऊंगा। निर्जोव प्रकृति में कितना सजीव भावात्मक तादात्म्य स्थापित किया गया है!

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममेष

सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः

सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥ (रत्ना० ३-६)

सागरिका के सौन्दर्य पर राजा इतना मन्त्रमुग्ध है कि वह कल्पना करता है कि स्वयं ब्रह्मा भी इसे बनाकर आनन्द से गद्गद हो गए होंगे; उनके चारों मखों ने एक साथ साधुवाद दिया होगा और आश्चर्य के कारण उनका सिर हिल गया होगा। कवि की यह अनूठी सूझ है!

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विव-

श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् ।

शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा

विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥ (रत्ना० २-१६)

कवि की एक नई कल्पना भी द्रष्टव्य है कि मन स्वभाव से ही चंचल है और प्रणु होने से अलक्ष्य है। फिर भी न जाने कैसे कामदेव इसको अपने बाणों से एक साथ बीध देता है?

मनश्चलं प्रफुर्यैव दुर्लक्ष्यं च तथापि मे ।

कामेनैतत् कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ॥ (रत्ना० ३-२)

कवि वैदर्भी रीति के प्रयोग में ही कुशल नहीं है, अपितु गौडी के प्रयोग में भी उतना ही सिद्धहस्त है। युद्ध के वर्णन में रुमण्वान् के द्वारा कोसलाधिपति के मारे जाने का गौडी रीति में सजीव चित्रण देखें।

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे क्षणं

व्यूढासृक्सरिति स्वन्तप्रहरणे बर्माद्वलद्वह्नि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव-

न्नेकेनैव सम्यक्ता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥ (रत्ना० ४-६)

छन्दोयोजना—हर्ष की छन्दोयोजना के विवेचन से ज्ञात होता है कि उनकी प्रवृत्ति बड़े छन्दों के प्रयोग की ओर थी। यद्यपि बड़े छन्द नाटकीय दृष्टि से अनुपयुक्त हैं, तथापि वर्णन की दृष्टि से वे उपयोगी हैं। बड़े छन्दों के माध्यम से कवि अपने भावों, श्लिष्ट कल्पनाओं और वर्णनों को अधिक व्यापक रूप से चित्रित करने में सफल हुआ है। बड़े छन्दों के प्रयोग उसकी प्रौढ़ता और विदग्धता के परिचायक हैं।

कालिदास से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कालिदास के प्रिय छन्द आर्या, वसन्ततिलका, श्लोक और शार्दूलविक्रीडित थे, किन्तु हर्ष के प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, श्लोक और आर्या हैं। प्रियदर्शिका में ७ छन्दों का प्रयोग है—शार्दूल०, स्रग्धरा, आर्या, इन्द्रवज्रा, वसन्त०, मालिनी और शिखरिणी। इसमें श्लोक (अनुष्टुप्) का सर्वथा अभाव उल्लेखनीय है। रत्नावली में १३ छन्दों का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त ७ छन्दों के अतिरिक्त ६ छन्द ये हैं :—श्लोक, शालिनी, हरिणी, पुष्पिताम्रा, प्रह्विणी और पृथ्वी। नागानन्द में ११ छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रियदर्शिका के ७ छन्दों के अतिरिक्त अन्य ४ छन्द ये हैं—श्लोक, शालिनी, हरिणी, द्रुतविलम्बित।

निम्नलिखित सारणी से तीनों नाटकों का छन्दोविषयक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे तीनों नाटकों के क्रम-निर्धारण में भी सुविधा होती है। इससे ज्ञात होता है कि नागानन्द लेखक की अन्तिम कृति है।

छन्द नाम	प्रियदर्शिका	रत्नावली	नागानन्द
१. शार्दूलविक्रीडित	२०	२३	३०
२. स्रग्धरा	५	११	१७
३. श्लोक	—	६	२४
४. आर्या	६	६	१६
५. प्राकृत आर्या	३	५	३

(४) नाटिका के रूप में—प्रियदर्शिका और रत्नावली

नाटिका की गणना उपरूपकों में की जाती है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र (अध्याय १८ श्लोक ११०-११२) में, धनञ्जय ने दशरूपक (प्रकाश ३ श्लोक ४५-४८) में और विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण (परिच्छेद ६ श्लोक २६६-२७२) में नाटिका के लक्षण दिए हैं। विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों का संग्रह करते हुए नाटिका का लक्षण दिया है :—

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्गिका ।

प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥

स्यादन्तःपुरसंबद्धा संगीतव्यापृताथवा ।

नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥

संप्रवर्तते नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।

देवी भवेत् पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥

पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ।

वृत्तिः स्यात् कैशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

(सा० द० ६.२६६-२७२)

नाटिका में कथा काल्पनिक होती है; स्त्रीपात्र अधिक होते हैं; ४ अंक होते हैं; नायक प्रसिद्ध धीरललित राजा होता है; राजकुमारी कन्या नायिका होती है, वह अन्तःपुर से संबद्ध या संगीतादि में संलग्न नव-प्रेम-युक्त होती है; नायक महादेवी से सशंक रहते हुए प्रेम-व्यापार में प्रवृत्त होता है; महादेवी राजकुलोत्पन्न प्रगल्भा ज्येष्ठा नायिका होती है; वह पद-पद पर मान करने वाली होती है; वही दोनों का संगम (विवाह) कराती है; इसमें कैशिकी वृत्ति होती है; सन्धियाँ भी होती हैं, उनमें विमर्श सन्धि स्वल्प होती है।

नाटिका के सभी लक्षण प्रियदर्शिका और रत्नावली में मिलते हैं। प्रियदर्शिका की अपेक्षा रत्नावली अधिक प्रौढ़ कृति है, अतः नाटिका के आदर्श के रूप में वही सर्वत्र सम्मानित है। ऐसा प्रतीत होता है कि धनञ्जय और विश्वनाथ ने रत्नावली को आदर्श मानकर नाटिका के लक्षण प्रस्तुत किए हैं; अतएव सभी लक्षण शत-प्रतिशत रत्नावली पर घटते हैं। इस प्रकार रत्नावली सर्वोत्तम सफल नाटिका है।

६. (च) भट्टनारायण

भाव-भाषा-रसास्वाद-त्रिवेणी-संहृतौ रतः ।
'वेणीसंहार'-मास्थाय, भट्टनारायणो बभौ ॥ (कपिलस्य)

(१) जीवन-वृत्त और कृतित्व

जीवन-वृत्त—भट्टनारायण का जीवनवृत्त अन्धकारमय है। कवि ने वेणी-संहार की प्रस्तावना में अपने आपको 'मृगराजलक्ष्मा' 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणी भट्टनारायणस्य०' कहा है। इससे ज्ञात होता है कि इन्हें 'कवीन्द्र या कविमृगेन्द्र' कहा जाता था। ठाकुर (या टैगोर) वंशावली में भट्टनारायण को इस वंश का आदिपुरुष बताया गया है। ये मूलतः कान्यकुब्ज (कन्नौज) के निवासी सारस्वत ब्राह्मण माने जाते हैं। किंवदन्ती है कि बंगाल के सेनवंश के प्रवर्तक आदिसूर ने कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण-परिवार वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ बुलाए थे। उनमें से एक भट्टनारायण भी थे।

वेणीसंहार की प्रस्तावना में विष्णु, कृष्ण और शिव की स्तुति है। अंक १ के २३ और २५ श्लोकों में कृष्ण का विष्णुरूप में वर्णन है, अतः कवि मुख्यरूप से वैष्णव है, साथ ही शिव का भी भक्त है। कवि का दृष्टिकोण समन्वयवादी है।

वेणीसंहार के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि अनेक विषयों का विशेषज्ञ है। वह नाट्यशास्त्र, नीति-शास्त्र, व्याकरण, काव्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शन, महाभारत आदि में विशेष निपुण है।

कृतित्व—भट्टनारायण का केवल एक ही ग्रन्थ 'वेणीसंहार' नाटक प्राप्त होता है। शास्त्रीय दृष्टि से 'रत्नावली' के बाद इसी का अत्यधिक महत्त्व है। अधिकांश नाट्यचार्यों ने आलोचना के लिए वेणीसंहार को आदर्श-ग्रन्थ माना है।

(२) भट्टनारायण का समय

भट्टनारायण का समय निर्धारित करने के लिए अनुश्रुति का ही आश्रय लिया जाता है कि सेनवंश के संस्थापक आदिसूर ने कान्यकुब्ज से जिन पाँच ब्राह्मण-परिवारों को बुलाया था, उनमें भट्टनारायण भी एक थे। कनिष्ठम के अनुसार सेनवंश का राज्यकाल ६५० ई० से ११०८ ई० तक रहा है। आदिसूर ('आदिसूर') इस वंश का संस्थापक राजा है, अतः उसका समय ६५० ई० के

लगभग सिद्ध होता है। इस प्रकार भट्टनारायण का समय भी ६५० ई० के आसपास सिद्ध होता है। प्रो० स्टेन कोनो ने मगध के राजा माघवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन और आदिसूर को एक ही व्यक्ति माना है। आदित्यसेन का समय ६७१ ई० है। आर० सी० मजूमदार का कथन है कि आदित्यसेन ६७५ ई० में कान्यकुब्ज से स्वतन्त्र हो गया था और उसने स्वतन्त्र राजवंश चलाया था। इस प्रकार भी भट्टनारायण का समय ६७५ ई० के लगभग सिद्ध होता है।

प्रो० विल्सन ने एक प्राचीन श्लोक^१ के आधार पर सिद्ध किया है कि ७३२ ई० (६५४ शकाब्द) में राजा आदिसूर ने बंगाल में कुछ ब्राह्मण बुलाए थे। उनमें भट्टनारायण भी थे। अतः उनका समय ७३२ ई० के लगभग मानना चाहिए। प्रो० विल्सन के आधारभूत श्लोक की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है, अतः यह मत प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

अपर सीमा—निम्नलिखित लेखकों ने वेणीसंहार से उद्धरण दिए हैं :—
(१) वामन (७८० ई० के लगभग)—काव्यालंकार-सूत्र, (२) आनन्दवर्धन (८५० ई० के लगभग)—ध्वन्यालोक, (३) भोज (१०७० ई० के लगभग)—सरस्वती-कण्ठाभरण, (४) क्षीरस्वामी (११वीं ई० पूर्वार्ध)—अमरकोष की टीका, (५) मम्मट (११०० ई० के लगभग)—काव्यप्रकाश। सर्वप्रथम वामन ने वेणीसंहार से उदाहरण दिए हैं। भट्टनारायण की इतनी प्रसिद्धि के लिए कम से कम १०० वर्ष का समय चाहिए। इस प्रकार भट्टनारायण का समय ६५० ई० से ६७५ ई० के मध्य सिद्ध होता है।

धर्मकीर्ति के 'रूपावतार' की एक टीका की हस्तलिखित प्रति में लेख मिलता है कि बाण की प्रार्थना स्वीकार करके भट्टनारायण किसी बौद्ध महन्त के शिष्य हो गए थे तथा रूपावतार को भट्टनारायण और धर्मकीर्ति ने मिलकर लिखा था।^२ बाण का समकालीन मानने पर भी भट्टनारायण का उपर्युक्त समय (६५० से ६७५ ई० के मध्य) सिद्ध होता है।

(३) वेणीसंहार की संक्षिप्त कथा

इस नाटक में ६ अंक हैं। इसमें भीम के द्वारा द्रौपदी के वेणीसंहार (वेणी

१. वेदबाणाङ्कशाके तु नृपोऽभून्वादिशूरकः।

वसुकर्माङ्कके शाके गोडे विप्राः समागताः॥

२. हंसराज अग्रवाल—सं० सा० का इतिहास, पृष्ठ २६५।

को सँवारने या बाँधने) का वर्णन है, अतः नाटक का नाम वेणीसंहार पड़ा। इसमें द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम प्रतिज्ञा करता है कि वह दुःशासन की छाती का खून पीएगा और दुर्योधन की जाँघ तोड़ेगा। दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी होने पर वह द्रौपदी की वेणी बाँधता है। अंकानुसार कथा इस प्रकार है :—

(अंक १) भीमसेन की प्रतिज्ञा कि दुःशासन की छाती का खून पीऊँगा और दुर्योधन की जाँघ तोड़कर रक्तरंजित हाथ से द्रौपदी के बाल बाँधूँगा। कृष्ण सन्धि के प्रयत्न में असफल होकर लौटते हैं। दुर्योधन ने कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न किया था, परन्तु विश्वरूप-दर्शन से वे उसके चंगुल से बच सके। (अंक २) अभिमन्यू की हत्या; दुर्योधन की पत्नी भानुमती का स्वप्न-वृत्तान्त सुनाना; स्वप्न में नकुल द्वारा सौ सपों का वध और भानुमती का नकुल (न्याले) पर आकृष्ट होना; नकुल (पाण्डव) पर भानुमती का आकृष्ट होना समझ कर दुर्योधन का भानुमती के वधार्थ उद्यत होना; स्वप्न जानकर शान्ति; भानुमती के साथ दुर्योधन की काम-क्रीड़ा का वर्णन; दुर्योधन को अत्यन्त कामुक चित्रित किया जाना; अर्जुन की जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा। (अंक ३) कर्ण द्वारा भीम के पुत्र घटोत्कच का वध; धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोण का वध; कृपाचार्य का अश्वत्थामा को सेनापित बनाने का प्रस्ताव; दुर्योधन का कर्ण को सेनापति बनाना; कर्ण और अश्वत्थामा का वाग्युद्ध; अश्वत्थामा का शस्त्र-त्याग; भीम द्वारा दुःशासन की छाती का खून पीने की सूचना। (अंक ४) दुःशासन की रक्षा करते समय दुर्योधन का घायल होना; अर्जुन के द्वारा कर्ण के पुत्र वृषसेन का वध; कर्ण का दुःखित होना। (अंक ५) अर्जुन द्वारा कर्ण का वध; दुर्योधन का युद्धार्थ उद्यत होना; धृतराष्ट्र के अभिवादनार्थ भीम और अर्जुन का आगमन; वहीं पर भीम और दुर्योधन का वाग्युद्ध; अश्वत्थामा का आगमन, दुर्योधन के व्यवहार से असन्तुष्ट एवं रुष्ट अश्वत्थामा का प्रस्थान। (अंक ६) शल्य की मृत्यु; भीम के द्वारा वध से बचने के लिए दुर्योधन का सरोवर में छिपना; सहदेव के प्रयत्न से दुर्योधन का पता लगना, भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध; दुर्योधन के मित्र चार्वाक नामक राक्षस का युधिष्ठिर को धोखा देना और बताना कि गदायुद्ध में भीम की मृत्यु और अर्जुन से गदायुद्ध चालू है; युधिष्ठिर और द्रौपदी का चिता में जलने के लिए तैयार होना; दुर्योधन को मार कर भीम का आगमन और द्रौपदी का वेणी-बन्धन।

मूलकथा में परिवर्तन

वेणीसंहार की मूलकथा महाभारत से ली गई है। कवि ने आवश्यकतानुसार तथा घटनाओं को नाटकीय रूप देने के लिए अनेक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन किए हैं। अतएव यह नाटक नाट्य-शास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण बन सका है। मुख्य परिवर्तन ये हैं :—

(१) दुर्योधन के रक्त से रंजित हाथों से द्रौपदी की खुली वेणी को बाँधने की भीम की प्रतिज्ञा। मूलकथा में केवल ऊरुभंग की प्रतिज्ञा है।

(२) युधिष्ठिर पाँच गाँव लेकर सन्धि का प्रस्ताव श्रीकृष्ण के द्वारा भिजवाते हैं। मूलकथा में पाँच गाँव देकर सन्धि करने का प्रस्ताव संजय ने दुर्योधन से किया है।

(३) वेणीसंहार में दुर्योधन के चंगुल से बचने के लिए श्रीकृष्ण विश्वरूप दिखाते हैं। मूलकथा में प्रभावातिशय-प्रदर्शनार्थ विश्वरूप-दर्शन है।

(४) प्रथम अंक में भानुमती और द्रौपदी के वार्तालाप का प्रसंग कवि की मौलिक कल्पना है।

(५) द्वितीय अंक की कथा सर्वथा मौलिक है। महाभारत में भानुमती का नाम भी नहीं है।

(६) तृतीय अंक में कर्ण और अश्वत्थामा का वाग्युद्ध द्रोण के निघन के बाद होता है। महाभारत में द्रोण-वध के पूर्व यह वाग्युद्ध वर्णित है। वहाँ इसका प्रारम्भ कर्ण-कृपाचार्य के वाग्युद्ध से होता है।

(७) तृतीय अंक का प्रवेशक कवि की मौलिक कल्पना है। इसमें राक्षस और राक्षसी के संलाप में युद्ध की कई घटनाओं की संक्षिप्त सूचना दी गई है।

(८) षष्ठ अंक में भीम के ललकारने पर दुर्योधन जलाशय से निकलता है। महाभारत में युधिष्ठिर ललकारते हैं।

(९) षष्ठ अंक में चार्वाक राक्षस का आगमन और युधिष्ठिर को घोखा देना, दुर्योधन का कूटनीतिक प्रयोग है। इसका विशेष नाटकीय महत्व है। महाभारत में युद्ध की समाप्ति के बाद युधिष्ठिर की निन्दा के लिए ब्राह्मण रूप में राक्षस हस्तिनापुर जाता है।

(१०) षष्ठ अंक में राक्षस द्वारा भीम की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर

युधिष्ठिर और द्रौपदी के चितारोहण की तैयारी और करुण रस का प्रसंग महाभारत में सर्वथा नहीं है।

तृतीय अंक का महत्त्व

वेणीसंहार में तृतीय अंक नाटकीय एवं कवित्व की दृष्टि से सर्वोत्तम है। इसमें कवि को अपनी नाट्यशास्त्रीय एवं कवित्व की प्रतिभा के प्रदर्शन का सर्वोत्तम सुयोग्य प्राप्त हुआ है। इस अंक में चार प्रमुख वर्णन हैं :—१. राक्षस-राक्षसी-संवाद, २. द्रोण-वध, ३. कर्ण-अश्वत्थामा-वाग्युद्ध, ४. भीम द्वारा दुःशासन के खून पीने की सूचना। ये चारों प्रसंग नाटकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। कवि इसी अंक में अपने आपको पूर्ण रूप से विकसित और अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। यही कारण है कि इस अंक में श्लोकों की संख्या सबसे अधिक (४६ श्लोक) है। सुन्दर भावपूर्ण और अर्थगौरव-युक्त श्लोकों का भी इसमें प्रचुरता से समावेश है। चारों वर्णनों का नाटकीय महत्त्व निम्नलिखित है :—

१. राक्षस-राक्षसी-संवाद—इससे युद्ध की भयंकरता और अपूरणीय क्षति का पता लगता है। युद्ध की कई सामरिक महत्त्व की घटनाओं की सूचना मिलती है। इसी में भीम के पुत्र घटोत्कच और द्रोण की मृत्यु की सूचना मिलती है। दुःशासन के रक्तपान के लिए भीम के शरीर में राक्षसों के अनुप्रवेश की सूचना है। युद्ध चरमसीमा पर है, इसकी सूचना मिलती है।

२. द्रोण-वध—द्रोण के शौर्य का वर्णन; पिता की मृत्यु से अश्वत्थामा का उत्तेजित होना; करुणरस का समावेश।

३. कर्ण-अश्वत्थामा-वाग्युद्ध—यह वाग्युद्ध अत्यन्त सजीव और नाटकीय है। यह प्रसंग पाठकों और दर्शकों के लिए अत्यन्त रोचक है। इसमें मृत्यु की अवश्यंभाविता, व्यक्ति का महत्त्व कर्मणा न कि जन्मना, आदि प्रसंग अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं।

४. भीम द्वारा दुःशासन का रक्तपान—कथा में नया नाटकीय मोड़ लाता है; शक्ति-परीक्षा का अवसर देता है, वाग्युद्ध को समाप्त कर आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान करता है।

नाटक का नायक कौन ?

वेणीसंहार के नायक के विषय में पर्याप्त मतभेद है। (१) शास्त्रीय दृष्टि सं०सा०स०इ०—२५

से राजा नायक होता है, अतः युधिष्ठिर को नायक मानना चाहिए। (२) कथा का नियन्ता व्यक्ति नायक होना चाहिए, अतः भीम को नायक मानना चाहिए। (३) नाटक को दुःखान्त मानने पर दुर्योधन इसका नायक होना चाहिए। (४) नाटक में वीर रस का उत्कर्ष अश्वत्थामा की उक्तियों में है। नाटक वीर-रस-प्रधान है, अतः अश्वत्थामा नायक होना चाहिए। (५) इसी प्रकार वीर-रस की सुन्दर सूक्तियों के कारण कर्ण को भी नायक माना जा सकता है।

अन्तिम तीन मत केवल बौद्धिक व्यायाम हैं, अतः विशेष अवघेय नहीं हैं। युधिष्ठिर और भीम में से किसको नायक माना जाय, यही विवाद का विषय है। यह ठीक है कि राजा नायक होता है, परन्तु फल की प्राप्ति भी उसे ही होनी चाहिए। यहाँ पर फल-प्राप्ति युधिष्ठिर को नहीं होती है। इस प्रकार भीम ही नायक हो सकता है। भीम को नायक मानने के ये कारण हैं :—(१) भीम की प्रतिज्ञा से नाटक प्रारम्भ होता है और उसकी प्रतिज्ञा-पूर्ति के साथ समाप्त होता है। (२) 'बीज' और आरम्भ में भी भीम मुख्य है तथा कार्य, फलागम और निर्वहण में भी वही मुख्य है। (३) नाटक का नामकरण भीम की प्रतिज्ञा पर आश्रित है और भीम की प्रतिज्ञा-पूर्ति के साथ वेणीसंहार समाप्त होता है। (४) नाटक वीर-रस-प्रधान है। उसमें भीम ही वीर रस की प्रतिमूर्ति है। (५) आदि से अन्त तक भीम किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

(४) भट्टनारायण की नाट्यकला

भारतीय नाटककारों में नाटककार के रूप में भट्टनारायण का अपूर्व स्थान है। भट्टनारायण ही वे नाटककार हैं, जिन्होंने नाट्यशास्त्र की नियमावली का विधिवत् पालन किया है, अतएव नाट्य-शास्त्राचार्यों ने भट्टनारायण को बहुत महत्त्व दिया है और पद-पद पर वेणीसंहार के उद्धरण दिए हैं। नाट्य-शास्त्रीय नियमों को ध्यान में रखते हुए नाटक में उनका जितना सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। अर्थप्रकृतियाँ, अवस्थाओं और सन्धियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। कथानक सुन्दर और रोचक है। महाभारत की मूलकथा को कवि ने आवश्यक परिवर्तन करके नाट्योपयोगी बनाया है। कथा-संयोजन में सौष्ठव कवि की प्रतिभा पर निर्भर है। संवाद रोचक हैं, किन्तु कुछ स्थलों पर आवश्यकता से अधिक लम्बे होने के कारण नीरस हो गए हैं। द्वितीय अंक में प्रकृति-वर्णन के कुछ सुन्दर प्रसंग हैं। कथानक यद्यपि

रोचक है, तथापि घटनाचक्र बहुत सीमित है, अतः नाटक के लिए उपयुक्त गति या प्रवाह का अभाव है। भट्टनारायण ने नाटकीय नियमों की पूर्ति के लिए वीर रस के नाटक में भी शृङ्गाररस की उद्भावना की है। युद्ध-काल में दुर्योधन-मानुमती की कामक्रीडा भले ही शृङ्गार रस का सुयोग प्रदान करे, किन्तु इससे रस-भंग दोष उत्पन्न होता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। भीम आदर्श वीर के रूप में प्रस्तुत है। वह प्रण-रक्षा के लिए प्राण गँवाने को तैयार रहता है। उसके चरित्र में कहीं कोई शिथिलता या न्यूनता नहीं है। युधिष्ठिर बहुत सीधे भले आदमी हैं। जो जैसा कहता है, वे वैसा ही मानने को तैयार हो जाते हैं। दुर्योधन कूटनीति और राजनीति का चतुर खिलाड़ी है। वह पराजय पर पराजय होने पर भी हिम्मत नहीं हारता। मित्रों का आदर करता है। उनकी निन्दा नहीं सुन सकता। विलासिता उसके जीवन की कमजोरी है। अश्वत्थामा वीर योद्धा है, किन्तु उसे अवसर का विवेक नहीं है। बार-बार हथियार छोड़ना और उठाना, उसकी बुद्धि की अस्थिरता का सूचक है। कर्ण शूर, वीर, महारथी है। वह स्वामिमानी है। उसमें नाममात्र को भी हीनता की भावना नहीं है। वह मित्र के लिए सर्वस्व अर्पण करता है।

कवि घटना-संयोजन में अत्यन्त दक्ष है। उसने सभी अनावश्यक प्रसंगों को काट दिया है। प्रारम्भ से अन्त तक सभी अंक संबद्ध हैं। 'संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु०' (अंक १-१५) और अंक ६ में दुर्योधन का ऊरुभंग संबद्ध है। इसी प्रकार 'दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः' (अंक १-१५) 'क्षीबो दुःशासनासृजा०' (अंक ५-२८) से साक्षात् संबद्ध है। अंक ३ में कर्ण-अश्वत्थामा-विवाद पंचम अंक के 'ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः' (५-३६) से संबद्ध है। 'मग्नं भीमेन भवतो०' (२-२४) में 'पताकास्थानक' द्रष्टव्य है।

प्रत्येक वर्णन सार्थक है। वर्णनों में स्वामाविकता है। प्रभात-वर्णन (अंक २), युद्ध-वर्णन (अंक ३ और ४), युधिष्ठिर और द्रौपदी का जलने के लिए उद्यत होना (अंक ६), ये वर्णन स्वामाविक, मनोहर और नाट्यकला के सुन्दर निदर्शन हैं। वर्णनों और घटनाओं में संकेतात्मकता है। प्रस्तावना में 'स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः समृत्याः' (१-७) में स्वस्थाः कौरवों के स्वर्गस्थ होने अर्थात् उनकी मृत्यु का संकेत करता है। प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। युधिष्ठिर, भीम, अश्वत्थामा और कर्ण की उक्तियों से उनके

चरित्र का खाका खींचा जा सकता है। भीम के कथनों में धीरोद्धत नायक के सभी गुण प्राप्य हैं। उसकी भाषा में अक्खड़पन है।

इस नाटक में वीर अंगी रस है। शृङ्गार, रौद्र, करुण, भीमत्स आदि अंग-रस हैं। नाटक का प्रारम्भ और अन्त वीर रस से है। वीर रस नाटक की अन्तरात्मा में व्याप्त है। भीम, दुर्योधन, अश्वत्थामा और कर्ण को वीर रस की सामग्री प्रदान करने का श्रेय है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेणीसंहार नाट्यकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(५) भट्टनारायण की शैली और काव्य-सौन्दर्य

भट्टनारायण मुख्यतः गौड़ी रीति के कवि हैं। वेणीसंहार में वीर रस मुख्य है, अतः इसमें ओज गुण और गौड़ी शैली का प्राधान्य है। भीम आदि के कथनों में समास-बहुलता, क्लिष्टता और दुरुहता है। अनेक प्रसंगों में वैदर्भी और पांचाली का भी प्रयोग मिलता है, परन्तु ऐसे प्रयोग शृङ्गार, करुण, संवाद और उपदेशात्मक नीति-श्लोकों में मिलते हैं। पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग है। संवादों में संक्षेप और चुस्ती है। कुछ स्थलों पर युद्ध-वर्णन अवश्य लम्बे हो गए हैं और नाटक की गति में व्यवधान उपस्थित करते हैं। कवि की भाषा अत्यन्त सबल, प्रौढ़ और पुष्ट है। उसकी भाषा में शक्ति है कि वह निर्जीव को भी सजीव और निराश को धीर-वीर बना दे। वीर, शृङ्गार और करुण के प्रसंगों में कवि का कवि-हृदय जागृत हो जाता है और वह भाव-प्रवाह में बह जाता है। कवित्व का आकर्षण उसे इतना भावुक बना देता है कि वह भूल जाता है कि नाटक लिख रहा है या काव्य। इस नाटक में ओज के साथ प्रसाद और माधुर्य भी पर्याप्त मात्रा में है। भाषा परिष्कृत और प्रांजल है। भावों की उदात्तता है। प्रायः सभी मुख्य रस प्राप्य हैं। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है, तथापि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास, श्लेष, विरोधामास आदि अलंकार प्राप्य हैं। छन्दोयोजना की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि कवि ने लम्बे छन्दों के प्रयोग में भी विशेष दक्षता प्राप्त की थी। अनुष्टुप् (६२) के पश्चात् क्रमशः वसन्ततिलका (३८), शार्दूलविक्रीडित (३४), स्रग्धरा (२१) और शिखरिणी (१३) के प्रयोग मिलते हैं।

वेणीसंहार में ओज गुण के साथ प्रसाद गुण मणि-कांचन-संयोग प्रस्तुत करता

है। कर्ण की प्रसाद गुणयुक्त उक्ति में कितना स्वामिमान और तेजस्विता है !
जन्म भाग्याधीन है और पुरुषार्थ मेरे अधीन ।

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥ (वेणी० ३-३७)

आशा के महत्त्व का कितनी सुन्दरता से प्रसाद-गुणयुक्त शैली में वर्णन है
कि भीष्म, द्रोण और कर्ण की मृत्यु के बाद शल्य पर विजय की आशा बैठी है ।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।

आशा बलवती राजन्, शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥ (वेणी० ५-२४)

ग्रहों के शुभाशुभ फल-प्रदान की चर्चा में फलित ज्योतिष पर अच्छी चुटकी
ली गई है कि ग्रहों के फल तीर-तुक्के के हिसाब से कभी ठीक भी बैठ जाते हैं ।

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तौत्पातिकं तथा ।

फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ॥ (वेणी० २-१५)

कवि ने माधुर्य गुण का भी सुन्दर प्रयोग किया है । भानुमती के प्रति दुर्योधन
की उक्ति में ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता तथा तालानुसारी नृत्य का चित्र मिलता
है कि तुम धीरे-धीरे चलो, मत काँपो और मेरा आलिंगन करो ।

कुरु घनोर पदानि शनैः शनैरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।

सुतनु बाहुलतोपरिबन्धनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम् ॥

(वेणी० २-२१)

वीर रस की उक्तियों में ओज और गौडी रीति का वैभव दृष्टिगोचर होता
है । भीम की प्रतिज्ञा में ओज का सुन्दर निदर्शन देखिए :—

चञ्चद्भुजभ्रमित - चण्डगदाभिघात-

संचूर्णितोर्युगलस्य सुयोधनस्य ।

स्त्यानापविद्धघनशोणित - शोणपाणि-

रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥ (वेणी० १-२१)

हे देवी, भीम चंचल मुजाओं से घुमाई हुई प्रचण्ड गदा की चोट से दुर्योधन
की जंघाओं को तोड़कर और उससे निकले हुए खूब गाढ़े और चिपकने वाले खून
से लाल हाथों से तुम्हारे केशों को सँवारेगा ।

गौडी-शैली का एक सुन्दर उदाहरण भीम की उक्ति में मिलता है :—

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः

कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयधनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातिवातः

केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोज्यम् ॥

(वेणी० १-२२)

समुद्र-मंथन के समय मन्दराचल की ध्वनि के तुल्य गंभीर, प्रलयकालीन मेघों की घटाओं के संघर्ष से प्रचण्ड, द्रौपदी के क्रोध का अग्रदूत, कौरवों के विनाश-सूचक उत्पात की प्रचण्ड वायु और हमारे सिंहनाद की प्रतिध्वनि के तुल्य इस नगाड़े को कौन बजा रहा है ?

भीम की उक्तियों में वीर रस की मनोहर अभिव्यक्ति हुई है :—

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु

सांधं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥ (वेणी० १-१५)

भीम सहदेव से कहता है कि क्या मैं युद्ध में क्रोध से सौ कौरवों का वध नहीं करूंगा ? क्या मैं दुःशासन की छाती का खून नहीं पीऊंगा ? क्या मैं गदा से दुर्योधन की जाँघ नहीं तोड़ूंगा ? आपके राजा युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो करते रहें, मैं सन्धि नहीं करूंगा ।

इसी प्रकार दुर्योधन की उक्ति में भी वीर रस का सुन्दर वर्णन है :—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

अस्मिन् वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तर्हता ये नरेन्द्रा

बाह्वोर्बोर्यातिरेकव्रविण्णगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥ (वेणी० ५-३०)

हे भीम, तुम सभी पाण्डवों और राजाओं के सामने मेरी आज्ञा से द्रौपदी को बाल पकड़ कर खींचा गया था । झगड़ा मुझसे है । अन्य राजाओं ने क्या अपकार किया था जो उन्हें मारा है ? मुझ महाबलशाली को बिना जीते ही तुम्हें इतना गर्व है ?

द्वितीय अंक में कुछ श्लोकों में शृङ्गार रस की भी सुन्दर उद्भावना हुई है :—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयसानाब्जशोभं

लज्जाप्रयोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा ।

वक्त्रेणुं ते नियममुषितालक्तकाप्राधरं वा

पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य ॥ (वेणी० २-१८)

दुर्योधन भानुमती से कहता है कि प्रेम के कारण स्तिमित नेत्रों वाले तुम्हारे मुखचन्द्र ने कमल की शोभा जीत ली है; लज्जा के कारण स्पष्ट शब्द नहीं निकल रहे हैं; नियम-पालन के कारण अधरों से अलक्तक हट गया है, ऐसे मन्द स्मित-युक्त तुम्हारे मुखचन्द्र का पान करना चाहता हूँ। मुझ दुर्योधन के लिए अन्य क्या दुर्लभ है ?

कुछ प्रसंगों में करुण रस का भी मनोहर चित्रण हुआ है। चार्वाक राक्षस से भीम की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर युधिष्ठिर शोक करते हुए कहते हैं कि तुमने मेरे बाद माता का दूध पिया; मेरा उच्छिष्ट खाया और यज्ञों में मेरे बाद ही सोमरस का पान किया। अब तुम तर्पण-जलांजलि मुझसे पहले क्यों पीते हो ?

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं

मदुच्छिष्टवृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।

वितांनेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-

न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ॥ (वेणी० ६-३१)

दुर्योधन शोकाकुल अपनी माता को समझाते हुए कहता है कि तुम ऐसी दीनतापूर्ण बात क्यों कहती हो ? तुम वीरांगना हो। तुम अपने मृत सौ पुत्रों की चिन्ता न करके मुझ अयोग्य की चिन्ता कर रही हो ?

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वक्षस्ते

सुक्षत्रिया क्व भवती च दीनतया ।

निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां

त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ॥ (वेणी० ५-३)

प्रकृति के सुकुमार और कठोर दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। कवि उषाकाल का वर्णन करते हुए कहता है कि कमलदल में सूर्य की किरणों के पहुँचने

से भीरे जाग गए हैं और रात्रि भर भ्रमरी के साथ रमण करके कमलिनी से बाहर निकल रहे हैं। इसमें कवि का रसिक एवं भावुक हृदय देखा जा सकता है।

जम्भारम्भप्रविततबलोपान्तजालप्रविष्ट-

भीभिर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा-

न्मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥ (वेणी० २-८)

भयंकर आँधी के वर्णन में प्रकृति के कठोर रूप का चित्रण है :—

विक्षु व्यूढाङ्गघ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांशुदण्डोऽन्तरिक्षे० । (वेणी० २-१६)

अलंकारों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। 'चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मो-पदेष्टा हरिः० (१-२५) में रूपक है। 'तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे (१-४) में विरोधाभास है। 'सत्यक्षा मधुरगिरिः.....निपतन्ति धार्तराष्ट्राः० (१-६) और 'निर्वाणवैरदहनाः....स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः समृत्याः (१-७) में श्लेष की सुन्दर छटा है।

कवि ने कहीं-कहीं दार्शनिक योग्यता भी प्रकट की है। श्रीकृष्ण के वर्णन में परम पुरुष का दार्शनिक विवेचन मिलता है :—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ

ज्ञानोत्सेकाद् विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।

यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्

तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम् ॥ (वेणी० १-२३)

कुछ अत्यन्त सुन्दर सुभाषित भी मिलते हैं। मृत्यु अवश्यभावी है तो युद्ध से भागकर अपने यश को क्यों कलंकित करते हो ?

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयानुम् ।

अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुष्वे ॥

(वेणी० ३-६)

वेणीसंहार में प्राकृत—वेणीसंहार में शौरसेनी प्राकृत का मुख्यतया प्रयोग है। तृतीय अंक में राक्षस और राक्षसी की उक्तियों में मागधी प्राकृत का प्रयोग है। मागधी की मुख्य विशेषताएँ हैं :—र को ल; स को श, अकारान्त शब्द के प्र० १ में ए और संबोधन में आ ।

छन्दोयोजना—वेणीसंहार में १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने बड़े छन्दों के प्रयोग में भी विशेष दक्षता प्राप्त की थी। वीर रस के वर्णन तथा प्रकृति-वर्णन आदि में बड़े छन्दों का प्रयोग है। नीति-श्लोक, करुण रस तथा सामान्य वर्णन में छोटे छन्दों का प्रयोग है। प्रयोग की दृष्टि से मुख्य छन्द ये हैं :—अनुष्टुप् (६२), वसन्ततिलका (३८), शार्दूल-विक्रीडित (३४), स्रग्धरा (२१) और शिखरिणी (१३)। अन्य प्रयुक्त छन्द ये हैं :—आर्या, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, औपच्छन्दसिक, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, प्रहर्षिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, हरिणी, मंजुभाषिणी, वियोगिनी (सुन्दरी)।

भट्टनारायण की न्यूनताएँ—भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने भट्टनारायण की कतिपय न्यूनताओं का उल्लेख किया है। उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :— (१) 'यह नाटक अनाटकीय है, क्योंकि वर्णनों ने व्यापार को अवरुद्ध कर दिया है'। (२) 'विवरणों की बहुलता उलझन पैदा करती है और रोचकता को नष्ट कर देती है'। (३) कार्यान्विति का असंतुलन एवं अभाव। (४) शृङ्गार-रस प्रभावहीन। (५) शास्त्रीय नियमों के प्रति अनावश्यक दासता। (६) अंक २ में दुर्योधन-मानुमती की कामक्रीडा में 'अकाण्डे प्रथनम्' (अनवसरोचित वर्णन) दोष। (७) अंक ४ में सुन्दरक के कथन में अत्यधिक विस्तार, बोझिल शैली, गत्यात्मकता का अभाव। (८) अंक ६ में राक्षस के कथन में अनुचित विस्तार। (९) नायिका द्रौपदी के चरित्र-चित्रण में रोचकता और चारित्रिक विकास का अभाव। (१०) नाटक में कवित्व की प्रधानता के कारण अनाटकीयता और प्रवाह का अभाव। (११) कथानक का असंतुलित संगठन। अतएव नाटकीय दृष्टि से अंक २, ३, ४, ५ अनावश्यक प्रतीत होते हैं। (१२) कर्ण-अश्वत्थामा के वाग्युद्ध में अनावश्यक विस्तार। (१३) श्रमसाध्य शैली का अपनाता, अतएव दुरूहता। (१४) नाटक न होकर काव्यात्मक होना। (१५) घटनाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने में अक्षमता।

संस्कृत-साहित्य में वेणीसंहार का स्थान

आलोचकों ने यद्यपि वेणीसंहार की न्यूनताओं का उल्लेख किया है, परन्तु उसके गुणों को ध्यान में रखने पर ये दोष नगण्य से प्रतीत होते हैं। वेणीसंहार

वीर रस के वर्णन में अनुपम है। उसकी भाषा में ओज है, शक्ति है और संवेदनात्मकता की क्षमता है। वेणीसंहार ही वह नाटक है जो निर्वीर्य में भी शक्ति-संचार करने की क्षमता रखता है। इसमें कहीं रामायण-महामारत के तुल्य प्रसाद और माधुर्य है तो अन्यत्र ओज की सजीव उपस्थिति। वीर और करुण रसों का इतना सुन्दर समन्वय किसी नाटक में प्राप्त नहीं है। भीम जैसा नायक दर्शकों तक को आतंकित करने में समर्थ है। नाटक में काव्यात्मकता दोष होने पर भी यह सहृदयों के हृदय को इतना आप्लावित कर देता है कि वे उसके दोषों को मूलकर गुणों पर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। यही कारण है कि नाट्यशास्त्रियों और काव्यशास्त्रियों को वेणीसंहार अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुआ है। नाटकीय तत्त्वों के वर्णन में तो यह अद्वितीय है। कवि को पूरी महामारत की कथा पार करनी थी, अतः कुछ प्रसंग अवश्य विस्तृत हो गए हैं, परन्तु वे प्रसंग कथा-संयोजन के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं। अंक २, ३, ४, ५ हटाने योग्य या अनावश्यक कहने पर नाटक की आत्मा की ही हत्या हो जाएगी। इसका चरित्र-चित्रण अत्यन्त सुन्दर और प्रभावोत्पादक है। संवादों और वर्णनों में सजीवता और यथार्थता है। इसमें अर्थानुकूल शब्द-विन्यास पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा भी प्रशंसनीय रहा है।

इस प्रकार निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि वेणीसंहार संस्कृत-नाटकों में प्रथम श्रेणी के नाटकों में एक है। मट्टनारायण को यह श्रेय प्राप्त है कि वह वीर रस-प्रधान नाटक में भी शृङ्गार-रस-प्रधान नाटकों के तुल्य रोचकता और आकर्षण उत्पन्न कर सके। अतः मट्टनारायण को सफल नाटककार और वेणीसंहार को उत्तम नाटक कहा जा सकता है।

६. (छ) भवभूति

मालतीमाधवं चक्रे, शृङ्गाररसचंचितम् ।
 महावीरचरित्रं च, वीरभावबिभास्वरम् ॥ १ ॥
 उत्तरे रामचरिते कालिदासाद् विशेषयन् ।
 भवभूतिर्गुणोद्भूतिस्त्रिशूली शिव एव सः ॥ २ ॥

(कपिलस्य)

(१) भवभूति का जीवन-वृत्त और कृतित्व

जीवन-वृत्त—प्रसन्नता की बात है कि महाकवि भवभूति ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावना में अपना वंश-परिचय और जीवन-वृत्त आदि दिया है। ये दक्षिण भारत में पद्मपुर के निवासी थे। ये कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा-पाठी ब्राह्मण थे। इनका गोत्र काश्यप था। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल और पिता का नाम नीलकण्ठ था। माता का नाम जतुकर्णी (या जातुकर्णी) था। इनका मूल-नाम श्रीकण्ठ या भट्ट श्रीकण्ठ था। ये कवि रूप में भवभूति नाम से विख्यात हुए। (श्रीकण्ठपदलाञ्छनः.....'भवभूतिर्नाम, उत्तर०)। ये विविध शास्त्रों के विशेषज्ञ थे, अतः 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' कहे जाते थे।

कृतित्व—भवभूति के तीन नाटक उपलब्ध होते हैं। रचना-क्रम की दृष्टि से इनका क्रम यह है—(१) मालतीमाधव, (२) महावीरचरित, (३) उत्तररामचरित। यदि भवभूति और उम्बेक को एक व्यक्ति माना जाए तो उनके अन्य दो दार्शनिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—१. कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक की तात्पर्य टीका, २. मण्डन मिश्र के भावनाविवेक की टीका। कुछ विद्वान् उपर्युक्त तीनों नाटकों का रचना-क्रम इस प्रकार मानते हैं :—१. महावीरचरित, २. मालतीमाधव, ३. उत्तररामचरित। यह क्रम त्रुटिपूर्ण है। इस क्रम के लिए डा० काणे आदि ने जो तर्क दिए हैं, वे व्यक्ति-संगत नहीं हैं। मालतीमाधव को कवि की प्रथम कृति मानने के मुख्य कारण हैं—(१) मालती० शृङ्गार-रस-प्रधान है, महावीर० वीररस-प्रधान और उत्तर० करुण-रस-प्रधान। जीवन में पहले शृङ्गाररस उदय होता है, फिर वीर रस और अन्त में करुण रस। (२) महावीर० और उत्तर० में कवि अपने आपको वश्यवाक् और परिणतप्रज्ञ कहता है, मालती० में नहीं। (३) महावीर० और उत्तर० रामकथा-संबद्ध हैं। इनमें किसी नाटक का व्यवधान उचित नहीं है। (४) मालती० में क्लिष्ट श्लोक अधिक हैं। अन्य दो में क्लिष्ट श्लोक कम होते गए हैं और भाषा निखरती गई है।^१

१. विशेष विवरण के लिए देखो लेखक-संपादित—उत्तररामचरित, भूमिका पृष्ठ ११ से ४४।

२. विस्तृत आलोचना के लिए देखो—वही, भूमिका पृष्ठ ३८ से ४४।

(२) भवभूति का समय

भवभूति का समय निर्धारित करने में विशेष कठिनाई नहीं है। कुछ तथ्यों के आधार पर उसकी पूर्व सीमा और अपर सीमा निर्धारित की जा सकती है।

पूर्वसीमा और अपर सीमा—बाण (६०६ से ६४८ ई० के लगभग) ने हर्षचरित के आरम्भ में अपने पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों और नाटकारों का उल्लेख किया है, किन्तु उसमें भवभूति का उल्लेख नहीं है। अतः वह बाण का परवर्ती कवि सिद्ध होता है। उसका समय ६५० ई० पूर्व नहीं रखा जा सकता है।

वामन ने अपने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में भवभूति के दो श्लोकों को उद्धृत किया है—श्रीर्लीलाञ्जित० (महावीर० १-५४), इयं गेहे लक्ष्मी० (उत्तर० १-३८)। वामन का समय ८वीं शती ई० का उत्तरार्ध और ९वीं ई० का प्रथम चरण माना जाता है। अतः भवभूति ७५० ई० से परवर्ती नहीं हो सकते।

अन्य तथ्य—कल्हण ने राजतरंगिणी (लगभग ११५८ ई०) में राजा यशोवर्मा को भवभूति और वाक्पतिराज का आश्रयदाता बताया है।

कविर्वाक्पतिराजश्चैव भवभूत्यादिसेवितः ।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥ (राज० ४-१४४)

वाक्पतिराज ने गउडवहो (गौडवधः) में भवभूति की प्रशंसा में प्राकृत में एक पद्य लिखा है (गउडवहो, पद्य सं० ७६९)। इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है।

भवभूतिजलनिधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।

यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥

वाक्पतिराज ने गउडवहो (पद्य ८२७-८३१) में यशोवर्मा के राज्यकाल में एक खग्रास सूर्यग्रहण का उल्लेख किया है। डा० याकोबी ने इस सूर्यग्रहण का समय १४ अगस्त ७३३ ई० निकाला है। अतः सिद्ध होता है कि वाक्पतिराज ७३३ ई० में यशोवर्मा का आश्रित कवि था और उस समय तक भवभूति की कीर्ति फैल चुकी थी और वह उसका ज्येष्ठ समकालीन आश्रित कवि था। वाक्पतिराज संभवतः लगभग ७३० ई० से ७५० ई० या ७५३ ई० तक यशोवर्मा का आश्रित

१. विशेष विवरण के लिए देखो लेखककृत—उत्तररामचरित, भूमिका पृ० ४४ से ४८।

कवि रहा। गउडवहो का रचनाकाल ७४० ई० के लगभग माना जाता है। यदि ७३३ ई० में भवभूति की आयु लगभग ५० वर्ष मानी जाए तो उसका जन्म-समय ६८३ ई० या ६८० ई० मानना उचित होगा। यदि उसकी आयु ७० या ८० वर्ष मानी जाए तो उसका अन्तकाल ७५० या ७६० ई० के लगभग होगा। इस प्रकार भवभूति का समय लगभग ६८० ई० से ७५० ई० तक मानना उचित है।

(३) नाटकों की संक्षिप्त कथा और समीक्षा

(क) मालतीमाधव

यह १० अंकों का प्रकरण नाटक है। इसमें मालती और माधव तथा मकरन्द और मलयन्तिका के प्रणय और परिणय का वर्णन है। अंकानुसार कथा इस प्रकार है—(अंक १) माधव विदर्भराज के मन्त्री देवराज का पुत्र है और मालती पद्मावती-नरेश के मन्त्री भूरिवसु की पुत्री है। दोनों मन्त्रियों ने पहले से निर्णय कर रखा था कि वे अपने पुत्र और पुत्री का विवाह कर देंगे। नन्दन, जो पद्मावती-नरेश का नर्मसचिव है, मालती पर आसक्त है और राजा की सहायता से मालती से विवाह करना चाहता है। मलयन्तिका नन्दन की बहिन और मालती की सखी है। वह माधव के मित्र मकरन्द की प्रेमिका है। कामन्दकी दोनों मन्त्रियों की मित्र है और चाहती है कि मालती-माधव का विवाह निर्विघ्न हो जाए। कामन्दकी संन्यासिनी हो गई है और सौदामिनी तथा अवलोकिता दोनों उसकी शिष्याएँ हैं। मदनोद्यान में माधव और मालती एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। मकरन्द और मलयन्तिका के प्रणय की भी सूचना मिलती है। नन्दन भी मालती से विवाह के लिए राजा से प्रार्थना करता है। (अंक २) राजा के आदेशानुसार भूरिवसु मालती का विवाह नन्दन से करने को उद्यत है। कामन्दकी मालती को तैयार कर लेती है कि वह माधव से गुप्त-रूप से गन्धर्व विवाह कर ले। (अंक ३) कामन्दकी के प्रयत्न से मालती और माधव शिवमन्दिर के कुञ्ज में मिलते हैं। वहीं आई हुई मलयन्तिका पर शेर आक्रमण करता है; मकरन्द शेर को मार देता है; किन्तु घायल होकर अचेत हो जाता है। (अंक ४) होश में आने पर मकरन्द मलयन्तिका को देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। नन्दन और मालती के विवाह का निर्णय हो गया है और तदर्थ मलयन्तिका को बुलाया जाता है। निराश माधव सिद्धि के लिए श्मशान घाट का आश्रय लेता है। (अंक ५) अघोरघण्ट की

शिष्य कपालकुण्डला बलि के लिए मालती को लाती है। वध्यस्थल पर संयोगवशा मावत्र पहुँच जाता है और अधोरघण्ट को मारकर मालती को बचाता है। (अंक ६) कपालकुण्डला गुरु के वध की प्रतिज्ञा करती है। मालती और नन्दन के विवाह की तैयारी होती है। षड्यन्त्र द्वारा मालती-वेषधारी मकरन्द से नन्दन का विवाह ही जाता है। उधर कामन्दकी मालती और माधव का गान्धर्व-विवाह करा देती है। (अंक ७) सुहागरात के समय मालती-वेषधारी मकरन्द अपने पति नन्दन की ठुकाई करता है। उलाहना देने के लिए आई हुई मदयन्तिका को मकरन्द अपनी वास्तविकता प्रकट करता है और दोनों मालती-माधव से मिलने के लिए उद्यान की ओर जाते हैं। (अंक ८) लड़की भगाने के आरोप में पुलिस वाले मकरन्द को पकड़ते हैं। सूचना पाकर माधव भी वहाँ आ जाता है और दोनों मिलकर सिपाहियों को परास्त करते हैं। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा उन्हें अमयदान देता है। लौटने पर उन्हें मालती गायब मिलती है। उसे कपालकुण्डला भगा ले गई है। (अंक ९) सौदामिनी मालती को बचा लेती है और उसे माधव से मिला देती है। (अंक १०) मालती के शोक में भूरिवसु, कामन्दकी, मदयन्तिका आदि आत्मघात के लिए तैयार हैं। मालती-माधव के जीवित होने की सूचना देकर सौदामिनी और मकरन्द उन्हें बचाते हैं। राजा की आज्ञा से मकरन्द और मदयन्तिका का विवाह हो जाता है। कामन्दकी की योजनाएं सफल होती हैं।

समीक्षा—यह भवभूति का प्रथम नाटक है। इसमें गद्य और पद्य दोनों में पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न किया गया है। लम्बे-लम्बे गद्य-सन्दर्भ कादम्बरी का स्मरण दिलाते हैं। ये सन्दर्भ नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त अनुपयुक्त हैं, तथापि भवभूति के पाण्डित्य की घाक जमाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। भवभूति ने काव्य नहीं लिखा है, अतः उसने नाटक को काव्यात्मक नाटक का रूप दे दिया है। श्लोकों में नाटकोपयोगिता कम, कवित्व अधिक है। भवभूति प्रकरण के लिए मृच्छकटिक के ऋणी हैं। कथानक के लिए कालिदास के भी ऋणी हैं। मृच्छकटिक में विदूषक है; हास्यरस है; जीवन का व्यावहारिक पक्ष है तो मालतीमाधव में विदूषक का अभाव है; गंभीरता है; जीवन का गंभीर-पक्ष है। भवभूति ने कथा-संयोजन में कुछ नवीनताएँ प्रस्तुत की हैं—यथा पुरुष पात्रों का स्त्री बनना, दो युवकों का विवाह; संन्यासी और संन्यासियों का तिकड़मी होना; नरबलि की प्रथा; अदृष्ट की प्रधानता; योग-विद्या के आश्चर्यजनक प्रदर्शन उपकथानक

का समावेश; मुख्य कथानक से उपकथानक को अनुचित महत्त्व देना। मुख्य कथा वस्तुतः ८ अंक पर ही समाप्त हो जाती है, किन्तु प्रकरण के १० अंक पूरा करने के लिए २ अंक खींचतान कर बढ़ाए गए हैं। कापालिक-प्रकरण अनावश्यक अंग है। कथा उलझी हुई है; प्रवाह न्यून है; कार्य-शिथिलता है; आश्चर्यजनक घटनाओं का बाहुल्य है। इसमें गौड़ी शैली का आश्रय लिया गया है। स्थान-स्थान पर सुभाषित, अर्थगौरव वाले पद्य, अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का विश्लेषण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, सालंकार भाषा, माधुर्य और ओजगुणों का प्राधान्य मिलता है। भाषा लम्बे समासों और जटिल शब्दों से बोझिल है।

भवभूति कठिन से कठिन छन्दों के प्रयोग में दक्ष हैं। साथ ही भावानुकूल सरल से सरल छन्दों की रचना में भी उतने ही सिद्धहस्त हैं। अर्थगौरवयुक्त सरल रचना का एक उदाहरण देखिए :—

शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः, प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।

कालानुरोधः प्रतिभानवत्वमेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु ॥

(मा० ३-११)

ये गुण सर्वतोमुखी सफलता के कारण हैं—शास्त्रों में निष्ठा, प्रत्युत्पन्न-मतित्व, प्रागल्भ्यता, सूत्रत वाणी, अवसरानुकूलता और प्रतिभाशालिता।

पति-पत्नी के कर्तव्यों और आदर्शों का कितना सुन्दर वर्णन है—

प्रेयो मित्रं बन्धुतां वा समग्रा, सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा ।

स्त्रीणां भर्ता धर्मद्वाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्जातमस्तु ॥

(मा० ६-१८)

कामन्दकी मालती-माधव को शिक्षा देती है कि हे बन्धो, पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी परस्पर परम मित्र हैं; धनिष्ठ सम्बन्धी हैं, समग्र मनोरथ हैं; परम निधि हैं और जीवन के सर्वस्व हैं।

माधव अपनी प्रेयसी मालती की बलि देने के लिए उद्यत अधोरघट को रोकते हुए कहता है—

असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं

निरालोकं लोकं मरणशरणं बान्धवजनम् ।

अवर्षं कन्दर्पं जननयननिर्माणमफलं

जगज्जीर्णारिष्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः ॥ (मा० ५-३०)

सुकुमार भावों का कितनी मधुर भाषा में वर्णन है कि मालती के बिना संसार निःसार हो जाएगा; त्रिलोक रत्नरहित हो जाएगा; संसार की ज्योति नष्ट हो जाएगी; बन्धुजन मृतप्राय हो जाएंगे; काम दर्पहीन हो जाएगा, आँखें निष्फल हो जाएंगी और संसार सूना बन हो जाएगा।

मानकीय मनोभावों का कितना महत्त्व है कि वही दो हृदयों को मिलाते हैं। बाह्य तत्त्वों का कुछ महत्त्व नहीं है। सूर्योदय होने पर कमल खिलता है और चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्त मणि पिघलती है।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-

नं खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं

व्रवति च हिमरश्मावुदगते चन्द्रकान्तः ॥ (मा० १-२७)

श्मशान का बीभत्स वर्णन भी गौड़ी शैली में देखिए—

उत्कृत्योत्कृत्य कूर्ति प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा-

न्यसस्फिक्-पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।

आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्गः करङ्का-

दङ्कुस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमस्ति ॥ (मा० ५-१६)

कवि ने सुन्दर सुभाषितों का भी प्रयोग किया है। भाग्य ही प्रबल है। वही मनुष्यों के शुभाशुभ का विधाता है।

प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः

सर्वकषा भगवती भवितव्यतैव ॥ (मा० १-२६)

कवि ने पाण्डित्य और विदग्धता की कसौटी मानी है कि ग्रन्थ में प्रौढता, प्रबन्ध-सौन्दर्य और अर्थगौरव होना चाहिए। यही भवभूति का आदर्श वाक्य रहा है।

यत् प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं

तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः ॥ (मा० १-१०)

(ख) महावीरचरित

इसमें ७ अंकों में राम के विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक रामायण की कथा वर्णित है। (अंक १) शिव-धनुष तोड़ कर राम सीता से विवाह करते हैं। इस पर रावण अत्यन्त क्रुद्ध है। (अंक २) रावण का मंत्री माल्यवान् राम के विरुद्ध परशुराम को उकसाता है। (अंक ३) राम-परशुराम के वाक्-युद्ध और युद्ध का वर्णन है। (अंक ४) परशुराम पराजित होते हैं। माल्यवान् के षड्यन्त्र से शूर्पणखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र राम को देती है कि दशरथ के वरदान के अनुसार राम १४ वर्ष वन में रहें और भरत राजा हों। (अंक ५) सीता-हरण; जटायु-रावण-युद्ध; विभीषण का राम से मिलना; वालि-वध और सुग्रीव-मैत्री का वर्णन है। (अंक ६) राम-रावण-युद्ध; रावण-वध। (अंक ७) सीता की अग्निपरीक्षा; राम का अयोध्या आना और उनका राज्याभिषेक।

समीक्षा—यह भवभूति की द्वितीय रचना है। इसमें भवभूति की कृत्रिम शैली में कुछ सुचारु हुआ है। लम्बे गद्यांशों का प्रायः अभाव है। पद्यांशों में क्लिष्ट-बन्ध प्रायः पूर्ववत् है। मूलकथा में कई परिवर्तन किए गए हैं, जो कथानक के विकास के लिए उपयुक्त हैं। रावण की कूटनीति की असफलता का कारण राम की शक्ति नहीं, अपितु उनका भाग्य है। यद्यपि नाटक में गतिशीलता का अभाव है, तथापि कवित्व का उत्तम प्रदर्शन है। भाव और भाषा का समन्वय है। भावानुकूल सरल और क्लिष्ट भाषा का प्रयोग है। इसमें वीर रस मुख्य है, अतः श्रोज गुण प्रधान है। चरित्र-चित्रण उच्चकोटि का नहीं है। इसमें उत्तररामचरित के तुल्य मनोभावों का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है। कुछ प्रसंग आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गए हैं, जो नाटक की गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसमें रामकथा के अनुकूल अनुष्टुप् छन्दों का अधिक प्रयोग है। कहीं-कहीं पर सुन्दर सुभाषित और मधुर पदावली का सुन्दर समन्वय है। वर्णनों में अधिकांशतः गौडी रीति है।

राम के वधार्थ उद्यत क्रुद्ध परशुराम की गर्वोक्ति गौडी रीति का सुन्दर उदाहरण है।

कृतशत्रियकण्ठकन्दरसरत्कीलालनिर्वापित-

प्रत्युद्भूतशिखाकलापहुतभुगम्भंकारिभिर्मार्गणैः ।

एतद्धस्मरकालरुद्रकवलव्यापारमभ्यस्यतु

ब्रह्मस्तम्बनिकुञ्जपुञ्जितघनज्याघोषघोरं धनुः ॥

(महा० ३-४८)

मेरे धनुष की घोर ध्वनि ब्रह्माण्ड में व्याप्त है; उसके बाणों ने सत्रियों के काटे गए कण्ठ से निकलती हुई रुधिर धारा से अपनी अग्नि शान्त की है। वह मेरा धनुष आज विश्व-संहारक कालरुद्र का स्वरूप धारण करे।

प्रसाद गुण-युक्त शैली में पुरुषार्थ के महत्त्व का मौलिक वर्णन देखिए :—

जयो वा मृत्युर्वा भवतु नियतं मे मतमिदं

रिपावोदासीन्यं मनसि न समाधानमयते ।

अनारम्भे नित्या विपदितरथा चेदनियता

तदानीमुद्योगो ननु पुरुषधर्मो बहुमतः ॥ (महा० ६-१६)

जय या मृत्यु अवश्यंभावी हैं, अतः शत्रु के प्रति उदासीनता कोई समाधान नहीं है। कार्य न करने पर विपत्ति निश्चित है; कार्य करने पर वह अनिश्चित है, अतः मनुष्य का धर्म है कि वह पुरुषार्थ अवश्य करे।

कवि ने वीर-रसयुक्त इस नाटक में अपने आपको वश्यवाक् कहा है और अपना लक्ष्य बताया है कि इसमें प्रसाद और ओज गुणों का समन्वय किया गया है तथा अर्थ-गाम्भीर्ययुक्त भारती वृत्ति अपनाई गई है।

प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती ॥ (महा० १-२)

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः ॥ (महा० १-३)

वश्यवाचः कवेर्वाक्यम् ॥ (महा० १-४)

(ग) उत्तररामचरित

इसमें ७ अंकों में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमें सीता-परित्याग, राम-विलाप, लव-कुश-प्राप्ति और राम के द्वारा निर्दोष सीता के स्वीकार किए जाने का वर्णन है। (अंक १) राम चित्रवीथी में सीता को विवाह से लेकर अग्निशुद्धि तक के चित्र दिखाते हैं। लोकापवाद के कारण वे सीता का परित्याग करते हैं। (अंक २) वन में लव और कुश का जन्म, राम का अश्वमेध-यज्ञ, लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु का अश्वमेधीय अश्व का रक्षक होना, शम्बूक-वध।

(अंक ३) राम का पंचवटी में पुनरागमन; पूर्व घटनाओं को स्मरण कर मूर्छित होना और अदृश्य सीता द्वारा होश में लाया जाना; अश्वमेघ-यज्ञ में सीता की प्रतिमा रखना। (अंक ४) वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक, कौसल्या आदि का आगमन; बालक लव का दर्शन; अश्वमेधीय अश्व को पकड़ने के लिए लव का प्रस्थान। (अंक ५) लव द्वारा जृम्भक अस्त्र का प्रयोग; चन्द्रकेतु और लव का युद्धार्थ तैयार होना। (अंक ६) लव और चन्द्रकेतु का दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध; राम का आगमन; युद्ध बन्द होना; कुश का आगमन; राम का अनुमान कि लव-कुश सीता के पुत्र हैं। (अंक ७) वाल्मीकि के आश्रम में 'गर्मनाटक' का अभिनय; सीता को निर्दोष सिद्ध करना; लव-कुश और सीता से राम का मिलन।

समीक्षा—उत्तररामचरित भवभूति का अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसकी कथा वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आश्रित है। यह करुण-रस-प्रधान नाटक है। इसमें कवि की योग्यता, विदग्धता, कवित्व-शक्ति, वर्णन-शक्ति, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन और रस-परिपाक चरम उत्कर्ष पर हैं। इसमें करुण-रस का इतना प्रौढ वर्णन है कि इस नाटक के कारण ही भवभूति की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त है।

मूलकथा में परिवर्तन

वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड (सर्ग ४२ से ६७) में राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने तक का वर्णन है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार यह कथा दुःखान्त है, क्योंकि पृथ्वी के फटने से सीता उसमें लुप्त हो जाती हैं। पद्मपुराण (पातालखंड, अध्याय १ से ६८) में वर्णित रामकथा से उत्तररामचरित की कथा में अधिक साम्य है। इसमें अन्त में राम-सीता का मिलन वर्णित है, अतः यह कथा सुखान्त हो जाती है।

इससे ज्ञात होता है कि भवभूति ने यद्यपि रामायण की कथा को आधार बनाया है, तथापि कथावस्तु के लिए पद्मपुराण को ही विशेष रूप से आधार माना है। भवभूति ने उसमें आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन किए हैं। विभिन्न प्रसंगों को नाटकोपयोगी बनाने के लिए ऐसा आवश्यक था। इस नाटक में भवभूति का उद्देश्य है—करुण-रस का प्रवाह लाना और सभी अन्य रसों को करुण-मूलक सिद्ध करना। अतः उन्होंने प्रत्येक घटना के मूल में करुण की भावना

को स्थान दिया है। इसके लिए घटनाओं में यथास्थान परिवर्तन किया है; घटनाओं का क्रम बदला है; नवीन दृश्यों को जोड़ा है; नवीन पात्रों की कल्पना की है और नाटक को सुखान्त बनाया है। इन परिवर्तनों के कारण भवभूति की मौलिकता और नाटकीय प्रतिभा का परिचय मिलता है। विभिन्न प्रसंगों को इस प्रकार जोड़ा गया है कि उनमें नाटकीय गति और स्वभाविकता प्रतीत होती है। विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन ये हैं:—

अंक १—चित्रवीथी का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। दुर्मुख गुप्तचर की सूचना पर लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग। मूलकथा में भद्र समासद् लोकापवाद की सूचना देता है।

अंक २—सीता का गंगा के प्रवाह में लव-कुश को जन्म देना; दूष छोड़ने के बाद बच्चों को वाल्मीकि के संरक्षण में रखना और स्वयं पाताल में रहना। मूलकथा में सीता वाल्मीकि के आश्रम में बच्चों को जन्म देती हैं और वहीं रहती हैं। मूलकथा में वाल्मीकि जृम्भक अस्त्र की शिक्षा देते हैं, उत्तर० में जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं।

अंक ३—इस अंक में 'छायादृश्य' भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसमें सीता अदृश्य रहते हुए राम की दयनीय स्थिति देखती हैं और मूर्छित राम को हस्तस्पर्श से होश में लाती हैं। वासन्ती, तमसा और मुरला, ये पात्र भवभूति की अपनी कल्पना हैं।

अंक ४—पूरा चतुर्थ-अंक कवि-कल्पित है। वाल्मीकि के आश्रम में जनक आदि का आगमन; कौसल्या-जनक-संवाद; लव-दर्शन; घोड़े को पकड़ने के लिए लव का प्रस्थान।

अंक ५—चन्द्रकेतु और लव का वार्तालाप; जृम्भक अस्त्र का प्रयोग; राम के पौरुष की निन्दा।

अंक ६—चन्द्रकेतु-लव का दिव्य अस्त्रों से युद्ध; राम का आगमन; युद्ध-समाप्ति; राम का लव-कुश से स्नेह-प्रदर्शन।

अंक ७—'गर्भनाटक' भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसमें सम्पूर्ण चराचर के सम्मुख सीता को निर्दोष सिद्ध किया गया है। अरुन्धती और जनमत के आदेशानुसार राम का निर्दोष सीता को स्वीकार करना। नाटक की सुखान्त समाप्ति।

(४) भवभूति के नाटकों में समाज और संस्कृति

भवभूति के महावीरचरित और उत्तररामचरित में प्रायः रामायणकालीन समाज और संस्कृति का वर्णन है।^१ उस समय का समाज उन्नत अवस्था में था; धर्मप्रिय था; वर्णाश्रम-व्यवस्था प्रचलित थी। वेदादि के अध्ययन, अस्त्र-शस्त्रादि-शिक्षण तथा कलात्मक प्रवृत्तियों में जनता की अभिरुचि थी। यज्ञ, संस्कार, तप और दार्शनिक विचारों के प्रति उसकी विशेष निष्ठा थी।

ब्राह्मचारी ऋषियों के आश्रम में रहकर संयमी जीवन व्यतीत करते थे और शिक्षा प्राप्त करते थे। वेदत्रयी की शिक्षा के पूर्व उनका उपनयन संस्कार होता था। क्षत्रिय बालक आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद भी पढ़ते थे। गृहस्थ लोग विवाह के बाद अग्निहोत्री होते थे। यज्ञ में पति के साथ पत्नी भी बैठती थी। समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा नहीं था। जनता रूढ़िवादों से ग्रस्त थी; स्त्री-निन्दा और स्त्री-विषयक अफवाहों में विशेष रुचि रखती थी, सीता-परित्याग इसी का परिणाम था। सम्मानित व्यक्ति स्त्रियों को आदर का स्थान देते थे। कुछ स्त्रियाँ वेद, दर्शनों आदि का भी उच्च अध्ययन करती थीं, यथा आत्रेयी आदि। दम्पती के लिए पुत्र-प्राप्ति का विशेष महत्त्व था। अतिथि-सत्कार का प्रचलन था। ब्राह्मण वेद-शास्त्रादि में निपुण थे। राजा लोकोपकारी कार्यों में व्यस्त रहता था। प्रजापालन उसका मुख्य कार्य था। समाज में शूद्रों का स्थान निम्न था। उन्हें तपस्या करने का अधिकार नहीं था, अतः शम्बूक का वध होता है।

उस समय कला उन्नत अवस्था में थी। चित्रवीथी-दृश्य और वाल्मीकि के आश्रम में गर्भनाटक इस बात के प्रमाण हैं। पुष्पक-विमान के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय विमान-निर्माण-कला भी ज्ञात थी। भाग्यवाद, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि दार्शनिक विषयों में लोगों की आस्था थी।

इसके विपरीत मालती-माधव में भवभूतिकालीन समाज और संस्कृति का चित्रण मिलता है। उस समय संन्यासियों का स्तर गिर गया था। वे सांसारिक मामलों में रुचि रखते थे। प्रेमी-प्रेमिकाओं के विवाहादि-सम्बन्धी कार्यों, षड्यन्त्रों, योग-साधनाओं और शक्तियों का दुरुपयोग भी करते थे। तान्त्रिक प्रथाओं का प्रचलन था। नरबलि भी होती थी। पुत्र-पुत्रियों के विवाह का वाग्दान बचपन

१. विस्तृत विवरण के लिए देखो—लेखककृत—उत्तररामचरित, भूमिका पृष्ठ ६६ से ७२।

से ही हो जाता था। एक कन्या के कई प्रेमी हो जाते थे, जो संघर्ष में जीतता था, वह विवाह करता था। सामाजिक जीवन में भी कूटनीति आ गई थी। पुरुष स्त्री बनकर विवाहार्थ षड्यन्त्र करते थे और बाद में धोखा देते थे। वैवाहिक सम्बन्धों के निर्णय में राजा भी अपने पद का दुरुपयोग करते थे। समाज का सामान्य स्तर बहुत उच्च नहीं था। मालती-माधव में जिस समाज का चित्रण हुआ है, वह षड्यन्त्रपूर्ण, स्वार्थनिष्ठ और दैवी चमत्कारों पर आस्थायुक्त है। मालती-माधव का समाज बहुत अंश तक सार्वभौम और सार्वकालिक है।

(५) भवभूति का शास्त्रीय और कलात्मक पाण्डित्य

भवभूति की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका शास्त्रीय और कला-विषयक ज्ञान अगाध था। उन्होंने वेद, उपनिषद्, दर्शन, धर्मशास्त्र, नीति-शास्त्र, राजनीति, धनुर्वेद, साहित्य, कामशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मनोविज्ञान, भूगोल और इतिहास आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। उनकी कृतियों में पाण्डित्य-सूचक अनेक स्थल मिलते हैं। मालती-माधव में उन्होंने अपने आपको वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि का विद्वान् कहा है।^१ तीनों नाटकों में अपने आपको 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' कहा है, जिसका अभिप्राय है कि वे व्याकरण, मीमांसा और न्यायशास्त्र के विद्वान् थे।

(क) भवभूति की नाट्यकला

संस्कृत-साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में लिया जाता है। उनके मालती-माधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित, इन तीन नाटकों में उत्तररामचरित ही सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें भवभूति अपने आपको 'परिणतप्रज्ञ' कहते हैं। इसमें उनकी योग्यता और विद्वत्ता का चरम उत्कर्ष प्राप्त होता है। यह नाटक उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। भवभूति के नाटकों की मुख्य विशेषताएँ हैं :—घटना-संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता, कथोपकथन में स्वाभाविकता, मनोहर शैली, देशकाल का विचार,

१. विस्तृत विवरण के लिए देखो—लेखकृत—उत्तररामचरित, भूमिका पृष्ठ

७२ से ८०।

२. यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च०। मालती० १-१०।

कवित्व और रस-परिपाक । भवभूति के जीवनकाल में ही उनके तीनों नाटकों का सफलता पूर्वक अभिनय हो चुका था ।

धनञ्जय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं—(१) कथावस्तु, (२) नेता या पात्र, (३) रस । पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार नाटक में ६ तत्त्व माने जाते हैं—(१) कथावस्तु, (२) पात्र, (३) शैली, (४) कथोपकथन, (५) अन्वितियाँ, (६) उद्देश्य । भवभूति के नाटकों में उत्तररामचरित ही उनकी परिपक्व नाट्यकला का परिचायक है, अतः उसी के आधार पर उनकी नाट्यकला की समीक्षा प्रस्तुत है ।

(१) कथावस्तु—(क) घटना-रांयोजन में सौष्ठव—कथावस्तु की दृष्टि से उत्तररामचरित सर्वथा सफल नाटक है । इसमें घटनाएँ इतने सुन्दर ढंग से समन्वित और गुम्फित हैं कि उनमें पूर्ण स्वाभाविकता ज्ञात होती है । प्रथम अंक से सप्तम अंक तक की घटनाएँ परस्पर समन्वित हैं । प्रथम अंक की घटनाओं का सप्तम अंक की घटनाओं से साक्षात् सम्बन्ध है । यदि प्रथम अंक के चित्र-वर्णन को हटा दिया जाए तो सप्तम अंक की घटनाएँ अस्पष्ट और दुर्बोध हो जाएँगी । सीता का अदृष्ट रूप में रहकर राम की अवस्था को देखना और दण्डक-वन में राम की प्राण-रक्षा करना द्वितीय और तृतीय अंक को जोड़ता है । चतुर्थ अंक में जनक कौसल्या आदि की वाल्मीकि के आश्रम में उपस्थिति तथा लव का वर्णन अंक ४, ५, ६ को जोड़ता है । वाल्मीकि के आश्रम में सबकी उपस्थिति सातवें अंक के गर्भनाटक के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है ।

(ख) मूलकथा में परिवर्तन—भवभूति ने मूलकथा को अपनी योजना के अनुरूप परिवर्तित किया है । मूलकथा का उतना ही अंश लिया गया है, जितना अत्यावश्यक था । कवि ने अद्भुत रस का आश्रय लेकर नाटक को सुखान्त बनाया है ।

(ग) चित्रदर्शन का महत्त्व—प्रथम अंक में चित्रवीथी-दर्शन कई दृष्टि से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है :—(१) राम खिन्नमना सीता का मनोरंजन करते हैं । (२) चित्रदर्शन में रामायण में प्राप्य करुणरस-प्रधान सभी दृश्यों और घटनाओं का संकलन है । (३) चित्रदर्शन से सीता को गङ्गास्नान और वनगमन का दोहद उत्पन्न होता है । (४) चित्रदर्शन सीता-निर्वासन के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है । (५) इससे सीता की अग्नि-परीक्षा और सीता-विषयक

लोकापवाद का ज्ञान होता है। (६) राम का सीता के पुत्रों को जृम्भक अस्त्र का वरदान सप्तम अंक में लव-कुश को पहचानने में सहायक सिद्ध होता है। (७) राम गंगा और पृथ्वी से सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। सप्तम अंक में वे दोनों अपनी कार्यपूर्ति की सूचना से कृतकृत्यता प्रकट करती हैं। (८) इससे राम-सीता के घनिष्ठ दाम्पत्य-प्रेम का ज्ञान होता है। (९) चित्रदर्शन से राम-सीता के अतीत की घटनाओं और उनके प्रिय स्थानों का ज्ञान होता है। (१०) चित्रदर्शन सीता-परित्याग में परिणत होता है।

(घ) तृतीय अंक या छाया-दृश्य का नाटकीय महत्त्व—कुछ विद्वानों ने तृतीय अंक की नाटकीय उपयोगिता पर आपत्ति की है। उनके मतानुसार यह अंक अनावश्यक और अनुपयुक्त है। इसके हटाने से भी कोई क्षति नहीं होती। यह विचार सुसंगत नहीं है। यह अंक नाटकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। (१) सीता-परित्याग के बाद घटित अनेक घटनाओं का इससे ज्ञान होता है। (२) राम और सीता की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इसमें प्राप्त होता है। (३) अदृश्य सीता का राम से वार्तालाप एक सुन्दर नाटकीय योजना है। भवभूति ने सम्भवतः छायानृत्यों के अनुकरण पर इसकी योजना बनाई है। इससे राम और सीता एक दूसरे की मनःस्थिति से अवगत होते हैं। यह दोनों के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ है। (४) इसके कारण सीता का क्षोभ शान्त होता है। यह राम-सीता के पुनर्मिलन में सहायक है। (५) प्रत्यक्ष राम और अप्रत्यक्ष सीता का वार्तालाप करुणरस के प्रवाह में रोचकता उत्पन्न कर देता है। (६) इसी अंक में करुण-रस का पूर्ण परिपाक हो पाया है। (७) दृश्य-वैचित्र्य, मनोभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, छायानाटक की सृष्टि, करुणरस का सतत प्रवाह, दाम्पत्य-जीवन की झाँकी, इनकी सुन्दर अभिरुचि के कारण तृतीय अंक नाटकीय और सामाजिक दोनों दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(ङ) सप्तम अंक में गर्भनाटक का महत्त्व—गर्भनाटक भवभूति की मौलिक कल्पना है। यह कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। (१) इससे सीता की पवित्रता सार्वभौम रूप से सिद्ध हो जाती है। (२) राम, सीता, लव-कुश आदि का एकत्र मिलन होता है। (३) इसके द्वारा नाटक सुखान्त हो गया है। (४) पवित्र घोषित की गई सीता पाताल से प्रकट होती है और राम उन्हें स्वीकार करते हैं। (५) बालक लव और कुश का १२ वर्ष बाद माता सीता से मिलन होता है।

(च) घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता—उत्तररामचरित की प्रत्येक घटना सार्थक और सोद्देश्य है। घटनाओं और वर्णन विषयों का संकलन बहुत सावधानी से किया गया है। किसी एक भी घटना को हटा देने से कथानक में न्यूनता आ जाएगी। चित्रवीथी-दर्शन, छायादृश्य, जनक-कौसल्या-अरुन्धती का संवाद, लव-दर्शन, लव-चन्द्रकेतु-युद्ध, राम-आगमन, राम का लव-कुश से मिलन, गर्भनाटक के दृश्य अत्यन्त सार्थक हैं। ये सभी प्रसंग रस-निष्पत्ति में सहायक हैं।

(छ) वर्णनों में स्वाभाविकता—भवभूति के वर्णनों में पूर्ण स्वाभाविकता है। इन दृश्यों का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है—चित्रवीथी, पंचवटी-दर्शन, अश्वमेधीय अश्व, लव-चन्द्रकेतु-युद्ध, राम-लव-संवाद, सीता का पाताल से प्रकट होना।

(२) पात्रों का चरित्र-चित्रण—भवभूति असाधारण रूप से चरित्र-चित्रण में पटु हैं। उनके पात्र सजीव एवं सक्रिय हैं। उनमें स्फूर्ति एवं भाव-प्रकाशन-क्षमता है, उत्साह है, संघर्ष करने की शक्ति है। वे भावहीन एवं हृदय-शून्य नहीं हैं। उनमें मानवता के सभी गुण हैं। उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनशीलता है। भवभूति ने मानवीय पात्रों को मानवीय स्तर पर तथा देवी पात्रों को देवी स्तर पर रखा है। इसके विपरीत व्यवहार भवभूति को रुचिकर नहीं है। अतः राम, सीता आदि भी मानव-पात्र हैं और वे मानवीय गुण-दोषों से युक्त हैं।

भवभूति के प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण हैं। प्रत्येक पात्र किसी आदर्श को प्रस्तुत करता है। जैसे—राम कर्तव्यपालन का और सीता पतिव्रता स्त्री का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। भवभूति के पात्रों में गंभीरता और आत्म-संयम है। उनमें तुच्छता, हीनता और उच्छृंखलता नहीं है। चुलबुले-पन की कमी है। गंभीरता गुण के कारण भवभूति के नाटकों में विदूषक का अभाव है। भवभूति के पात्रों में मौलिकता, गंभीरता, भावुकता, कर्तव्यनिष्ठा और आदर्शवादिता है, परन्तु मृच्छकटिक के पात्रों के तुल्य उनमें सजीवता और चुलबुलापन नहीं है।

(३) रस, (४) शैली—इसका विशद वर्णन आगे किया गया है।

(५) कथोपकथन—भवभूति के संवाद सुन्दर और रस-निष्पत्ति में सहायक हैं। उनकी भाषा संयत और भाव-प्रकाशन में समर्थ है। उनके पात्र हृदय खोलकर अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं। संक्षिप्त वर्णन भवभूति की प्रकृति

के विरुद्ध है। वे संवादों में भी विस्तार के प्रेमी हैं, अतएव संवाद कहीं-कहीं अधिक लम्बे हो गए हैं। इससे कहीं-कहीं अरोचकता और गतिरोध उत्पन्न हो गए हैं। सभी आलोचकों ने इस पर आपत्ति की है। इसीलिए कतिपय आलोचकों ने इसे अभिनेय-नाटक न मानकर पाठ्य-नाटक माना है।

(६) अन्वितित्रय या संकलनत्रय—संस्कृत के नाटककारों ने अन्वितित्रय को महत्त्व नहीं दिया है। भवभूति ने प्रत्येक अंक में अन्वितित्रय का पालन अवश्य किया है, किन्तु पूरे नाटक में इसका अभाव है।

(७) उद्देश्य—इस नाटक का उद्देश्य है—राजा द्वारा प्रजा का अनुरंजन। राम ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सीता का परित्याग किया। कर्तव्यपालन का परिणाम सुखद होता है, अतः नाटक के अन्त में राम-सीता का पुनर्मिलन होता है।

(६) उत्तररामचरित में रस-निष्पत्ति

(क) उत्तररामचरित में करुणरस^१

उत्तररामचरित में रस के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ शृङ्गार-रस का भेद करुण-विप्रलम्भ मानते हैं और कुछ करुण-रस। कुछ विद्वान् शास्त्रीय दृष्टि से इसमें करुण-विप्रलम्भ नामक शृङ्गार-रस सिद्ध करते हैं, किन्तु ऐसा मानना भवभूति के साथ घोर अन्याय है। भवभूति ने स्पष्ट रूप से इसमें करुण-रस माना है। उनकी मान्यता है कि शृङ्गार आदि भी करुण के ही विकार हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।

भावर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-

नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम् ॥ (उ० ३-४७)

भवभूति ने तीन नाटक लिखे हैं—(१) मालतीमाधव—शृङ्गार-रसप्रधान,
(२) महावीरचरित—वीररसप्रधान, (३) उत्तररामचरित—करुणरसप्रधान।

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखो लेखककृत—उत्तररामचरित, भूमिका पृष्ठ

६१-११५।

शास्त्रीय मान्यता है कि नाटक में शृङ्गार या वीर अंगी रस होना चाहिए। भवभूति ने शृङ्गार और वीररस-प्रधान नाटक लिखने के बाद अपनी मान्यता स्थापित की कि करुणरस-प्रधान नाटक भी लिखा जा सकता है और उसके आदर्श-रूप उत्तररामचरित की रचना की है।

उत्तररामचरित में करुण-रस मानने के कारण :—

(१) भवभूति ने उत्तररामचरित में करुणरस ही माना है।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः । (उत्तर० ३-१)

करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम् । (उत्तर० ७ वाक्य० ७)

तृतीय अंक का प्रारम्भ 'करुणो रसः' (३-१) से होता है और इसकी समाप्ति 'एको रसः करुण एव' (३-४७) से होती है। इससे स्पष्ट है कि कवि ने स्वयं इसमें करुणरस स्वीकार किया है।

(२) सामान्यतया करुण-विप्रलम्भ शृङ्गार अविवाहित प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय-सम्बन्ध से संबद्ध होता है। उसके आलम्बन विवाहित दम्पती नहीं होते हैं। विश्वनाथ का ऐसा ही मत है—

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।

विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः ॥

(सा० द० ३-२०६)

(३) विप्रलम्भ शृङ्गार के लिए स्थायीभाव रति का निर्बाध रहना अनिवार्य है, किन्तु उत्तर० में सीता-परित्याग के साथ रति समाप्त हो जाती है। इष्ट व्यक्ति के वियोग या नाश से तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुण-रस होता है। इसका स्थायी भाव शोक है। सीता-परित्याग सीता-नाश के समकक्ष है। सीता-विषयक शोक स्थायी भाव है। इस प्रकार इसमें करुण रस का परिपाक हुआ है।

(४) रति दाम्पत्य-सम्बन्ध का मूल है। राम के द्वारा सीता-परित्याग के साथ ही उनका दाम्पत्य-सम्बन्ध समाप्त हो चुका है। अतः दाम्पत्य-मूलक रति समाप्त हो चुकी है। इसलिए संभोग या विप्रलम्भ शृङ्गार इसमें संभव नहीं है। रति के शोक में परिणत हो जाने से करुण-रस है।

(५) सीता-परित्याग के कारण राम विधुर हैं, (विधुरो.....मन्दभाग्यः, उ० ३-३८) । उनके लिए सीता मर चुकी है, (कव्याद्मिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता, उ० ३-२८) । अतः विधुर राम में करुण रस है ।

(६) राम का रोदन वियोगी प्रेमी का रोदन नहीं है, अपितु विधुर पति का रोदन है । वे 'नाशितप्रियतमः' (उ० २-२८) हैं, उन्होंने स्वयं अपनी पत्नी का नाश किया है । उनके हृदय में शोक है, न कि रति, अतः करुण रस है ।

(७) यदि सीता-परित्याग सावधि होता और पुनर्मिलन की आशा होती तो विप्रलम्भ शृङ्गार होता, किन्तु यह परित्याग निरवधि है और पुनर्मिलन की आशा नहीं है, (निरवधिरयं तु प्रविलयः, उ० ३-४४) । अतः सीता-परित्याग-जन्म शोक के कारण करुण रस है ।

(८) विप्रलम्भ शृङ्गार और शोक में मुख्य अन्तर यह है कि विप्रलम्भ दम्पती तक सीमित रहता है, किन्तु शोक का क्षेत्र व्यापक होता है । यहाँ सीता-परित्याग से केवल राम ही नहीं, अपितु सभी संबद्ध व्यक्ति शोकाकुल हैं । इस शोक के कारण करुण रस है ।

(९) भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए । रामायण की मूलकथा दुःखान्त है । उसको भवभूति ने अद्भुत रस का आश्रय लेकर सुखान्त बना दिया है । मूलतः यह कथा करुण-पर्यवसायी है ।

अन्य रस—उत्तररामचरित में करुण रस के अतिरिक्त इन रसों का भी सुन्दर समावेश है—संभोग और विप्रलम्भ शृङ्गार, अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक, वात्सल्य और शान्त ।

(ख) कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

भवभूति का करुण रस में वही स्थान है, जो शृङ्गार-रस में कालिदास का । दोनों ही नाटककार के रूप में प्रतिस्पर्धी महाकवि हैं । भवभूति में बहिर्दृष्टि के साथ ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी है । मानव की अन्तःस्थिति का जितना सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भवभूति ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । जगत् की नश्वरता को देखकर भवभूति के कारुण्य की धारा बह निकलती थी । उन्होंने राम-कथा, मुख्यतया सीता-परित्याग, को लेकर अपनी भावनाओं को मूर्त रूप दिया है । उनकी वाणी में इतना बल है कि वे वृक्ष-वनस्पति ही नहीं, अपितु पर्वतों

को भी रुला देने की क्षमता रखते हैं। नीरस से नीरस व्यक्ति भी उत्तररामचरित को एक बार पढ़कर अवश्य ही आंसू गिरा देगा। भवभूति में भावों की कोमलता, हृदय-स्पर्शिता, तादात्म्यानुभूति और संवेदनशीलता है, अतएव कवियों ने 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' कहकर भवभूति का यशोगान किया है। यहाँ पर करुण रस के कुछ अत्यन्त मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

रावण ने छद्म-नीति का प्रयोग करके सीता का हरण किया। उनके वियोग में राम की वह दयनीय स्थिति थी कि पत्थर भी रो देते थे और वज्र का भी हृदय फट जाता था।

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यययति यथा क्षालितमपि ।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरायं चरितं-
रपि प्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥

(उत्तर० १-२८)

सीता-परित्याग से राम के हृदय की वही अवस्था थी, जो पुटपाक में किसी धातु की होती है।

अनिभिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढधनव्ययः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ (उत्तर० ३-१)

राम ने गर्मिणी सीता का परित्याग किया था। वह भयभीत बाल-मृगी के तुल्य चंचल नेत्र तथा सुकुमार अंगों वाली थी। राम को विश्वास है कि जंगली हिंसक जन्तु उसे अवश्य खा गए होंगे।

अस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा
कव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ॥ (उत्तर० ३-२८)

परित्यक्ता सीता शोक-सन्तप्त हैं। उनकी आभा नष्टप्राय है। वह करुण की मूर्ति हैं या शरीरधारिणी विरह-व्यथा हैं। सीता का क्या ही मार्मिक चित्रण है !

कदणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,

विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥ (उत्तर० ३-४)

राम शोक से इतने सन्तप्त हैं कि वे सोचते हैं कि मैं दुःख भोगने के लिए ही जीवित हूँ। मर्मवेधी प्राण हृदय के लिए वज्र की कील से हो गए हैं।

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम् ।

मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥ (उ० १-४७)

अपने दुःख को शान्त करने के लिए विलाप ही एकमात्र उपाय है। जैसे पानी बढ़ जाने पर उसे निकाल देना ही तालाब के बचाव का उपाय है, उसी प्रकार शोक और क्षोभ में विलाप करना ही हृदय के बचाव का उपाय है।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीबाहः प्रतिक्रिया ।

शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापरेव धार्यते ॥ (उ० ३-२६)

पंचवटी के परिचित स्थानों को देखकर राम का प्राचीन शोक नवीन हो उठता है और उन्हें इसी प्रकार व्याकुल कर रहा है, जैसे फैलता हुआ विष, अपने स्थान से हिला हुआ बाण का अग्रभाग या हृदय के मर्मस्थल में फूटा हुआ फोड़ा। इसमें भवमूर्ति की समवेदना का सुन्दर प्रस्फुरण है।

चिराद् बेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः

कुतश्चित् संवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः ।

व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः

पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव ॥ (उ० २-२६)

राम के शोक का सजीव चित्रण है कि हृदय फट रहा है, किन्तु दो टुकड़े नहीं होता; शरीर मूर्च्छित होता है, किन्तु निर्जीव नहीं होता; शरीर सन्तप्त है, किन्तु भस्मसात् नहीं होता; देव प्रहार करता है, किन्तु मेरे प्राण नहीं हरता।

बलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते

बलति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कुन्तति जीवितम् ॥ (उ० १-३१)

राम कहते हैं—हे सीता, मेरा हृदय फट रहा है; अंग शिथिल हो रहे हैं; संसार सूना हो गया है; मेरा हृदय जल रहा है; घोर अन्धकार में मेरी आत्मा डूब-सी रही है; मूर्च्छा मुझे चारों ओर से घेर रही है। मैं अमागा क्या करूँ?

हा हा वेवि ! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः

शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।

सीदन्नन्वे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वङ्ग मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥ (उ० ३-३८)

(७) भवभूति की शैली

भवभूति संस्कृत-साहित्य के उच्चकोटि के नाटककार और कवि हैं। कालिदास के बाद भवभूति ही सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उत्तररामचरित में वे कवित्व में कालिदास से भी आगे निकल गए हैं। अतएव कहा जाता है—‘उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते’। उनकी असाधारण ख्याति के कारण है—उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार; प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों से युक्त शैली; वर्णनों में असाधारण पटुता; मानवीय भावनाओं का सूक्ष्मतम अध्ययन और विवेचन गम्भीर से गम्भीर भावों को सरल और सुबोध भाषा में प्रकट करना; भाषा में प्रौढ़ता, उदारता और अर्थ-गाम्भीर्य।

भवभूति की शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—

गौड़ी और वैदर्भी रीति—भवभूति गौड़ी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने मालतीमाधव और महावीरचरित में गौड़ी रीति को अपनाया है। उत्तररामचरित करुण-रस-प्रधान नाटक है, अतः इसमें करुण रस के वर्णनों में वैदर्भी रीति है तथा वीर रस और प्रकृति-वर्णनों में गौड़ी रीति है। इस प्रकार उत्तररामचरित में गौड़ी और वैदर्भी रीति का मणि-कांचन-संयोग है।

वीर रस के वर्णन में गौड़ी रीति का प्रयोग देखिए :—

पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकं—

रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः ।

कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तरभिस्तीर्यते

लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव ॥ (उ० ५-१४)

जृम्भक अस्त्र का घुआँ और उसमें चमकती हुई अग्नि ऐसी ही प्रतीत होती है, जैसे विन्ध्य पर्वत की चोटी पर चमकती हुई बिजली से युक्त भयंकर बादल हों।

प्रकृति-वर्णनों में गौड़ी रीति का आश्रय लिया गया है। मध्याह्न के वर्णन में गौड़ी रीति का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर हुआ है।

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकवर्णाकम्पेन संपातिभि-

धर्मस्त्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।

छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः

कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः ॥ (उ० २-६)

करुण रस के वर्णन में वैदर्भी रीति का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। लव को देखकर राम को सीता का स्मरण हो आता है। सीता की मानस-मूर्ति राम को कभी-कभी धैर्य बँधाती है, पर उसका वियोग असह्य है। पत्नी के बिना संसार सूना हो जाता है और हृदय शोकरूपी तुषाग्नि में जलता-सा रहता है।

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः

प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः ।

जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते

कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥ (उ० ६-३८)

प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण—भवभूति ही ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाओं में प्रसाद, माधुर्य और ओज, इन तीनों गुणों का समान रूप से सम्मिश्रण मिलता है। करुण रस तथा सामान्य प्रकृति-वर्णनों में वैदर्भी रीति का आश्रय लेने से प्रसाद और माधुर्य गुणों का तथा वीर रस और भयावह प्रकृति के वर्णनों में ओज गुण का अत्यन्त मनोहर परिपाक हुआ है।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।

ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥ (उ० १-१०)

लौकिक विद्वानों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है, किन्तु प्राचीन ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ चलता है।

सीता के प्रति राम की मधुर प्रेमाभिव्यक्ति कितने मधुर शब्दों में वर्णित है। राम सीता को देखकर मन्त्रमुग्ध हैं और कहते हैं कि यह मेरी गृहलक्ष्मी है; मेरी आँखों के लिए अमृत-शलाका है; इसका स्पर्श चन्दन-लेप के तुल्य शीतल है; गले में पड़ा हुआ इसका हाथ शीतल मोती की माला है। इसकी सभी बातें अति-प्रिय हैं; परन्तु यदि विरह हुआ तो वह अत्यन्त असह्य होगा।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो-

रसावस्थाः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥ (उ० १-३८)

देवी वासन्ती ने सीता-परित्याग पर राम को बहुत कड़ी उलाहना दी है कि तुम सीता को अपना जीवन, दूसरा हृदय, नेत्र-कौमुदी और शरीराह्लादक कहकर फुसलाते थे और उसी को तुमने घर से निकाल दिया। तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्ग ।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुसृत्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥ (उ० ३-२६)

वीर रस और प्रकृति-वर्णनों में ओज गुण विशेष रूप से प्राप्त होता है। गौड़ी रीति के सन्दर्भ में ओज गुण के उदाहरण दिए गए हैं। क्राँच पर्वत के वर्णन में ओज गुण का सुन्दर समावेश है।

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाधूत्कारवत्कीचक-

स्तम्बाडम्बरभूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः ।

एतस्मिन् प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-

रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥ (उ० २-२६)

भाषा पर अधिकार—भवभूति का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनमें शक्ति है कि वे भाषा को अपनी उँगली पर नचा सकें। वे अपने आपको 'वश्यवाक्' कहते हैं और ब्राणी को अपनी अनुवर्तिनी बताते हैं। उनकी भाषा सरल और क्लिष्ट, सुबोध और दुर्बोध, कोमल और कठोर, समासरहित और समास-प्रधान, इन परस्पर विरोधी गुणों से युक्त है।

भावानुकूल भाषा—भवभूति का शब्दकोष अगाध है। वे भाव और प्रसंग के अनुसार सरल से सरल और कठिन से कठिन शब्दावली का अत्यन्त दक्षता के साथ प्रयोग करते हैं। प्रत्येक स्थान पर अत्यन्त उपयुक्त और सार्थक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। भाषा और शब्दकोष पर असाधारण अधिकार के कारण भाषा में असाधारण मनोरमता, प्रौढ़ता, प्राञ्जलता, परिष्कार और अर्थगाम्भीर्य मिलते हैं। उनकी कृतियों में पाण्डित्य और वैदग्ध्य का अपूर्व सम्मिश्रण है। शृङ्गार, करुण और शान्त रसों के प्रयोग में भाषा अत्यन्त सरल और सुबोध है। वीर, बीभत्स, भयानक, रौद्र और अद्भुत रसों के वर्णन में शब्दावली क्लिष्ट

और दुर्बोध है। शृङ्गाररस का एक सरस उदाहरण देखिए। राम अपने शुभ-विवाह का स्मरण करते हुए सीता के कंकण-युक्त हाथों को मूर्तिमान् महोत्सव कहते हैं।

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्वयत् सुमुखि गौतमापितः ।

अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-

स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥

भाषा सबल, संपुष्ट और परिष्कृत—भवभूति की भाषा सबल, संपुष्ट और परिष्कृत है। वे गंभीर से गंभीर भावों को अत्यन्त परिष्कृत और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रकट करने में निष्णात हैं। उन्होंने भावों के अनुकूल शैली अपनाई है और तदनुसार ही शब्दावली का संचयन किया है। उनकी भाषा में ऐसी शक्ति है कि वे करुण रस के प्रसंग में कठोरहृदय व्यक्ति को भी रुला दें; वीर रस के वर्णन में निर्जीव में भी उत्साह भर दें और मनोभावों के वर्णन में मनो-वैज्ञानिक को भी चमत्कृत कर दें। मनोभावों का एक सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत है :

तदस्थं निराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्

वियोगे दीर्घेऽस्मिन् भटिति घटनात् स्तम्भितमिव ।

प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गढिकरुणं

द्विभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षणं इव ॥ (उ० ३-१३)

राम-सीता के छाया-मिलन के बाद तमसा सीता की मानसिक अवस्था का वर्णन करती है कि तेरा हृदय इस समय निराशा के कारण तदस्थ है; परित्याग के कारण कलुषित है, दीर्घ वियोग के बाद आकस्मिक मिलन से स्तब्ध-सा है; राम की सज्जनता से प्रसन्न; राम की दयनीय अवस्था से अत्यन्त खिन्न और प्रेम के कारण द्रवित है।

विवरणात्मक और वाच्यार्थप्रधान शैली—भवभूति की शैली विवरणात्मक व्याख्यात्मक और वाच्यार्थ-प्रधान है। उनके नाटकों में अभिधा वृत्ति मुख्य है लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों का न्यूनतम आश्रय लिया गया है। कालिदास ने व्यंजना है तो भवभूति में अभिधा की मुख्यता है। अतएव वे वर्ण्य वस्तु का साङ्गोपाङ्ग चित्रण प्रस्तुत करते हैं। वर्णन ऐसे व्यापक हैं कि उनके द्वारा वस्-

का चित्र-सा उपस्थित हो जाता है। बालक लव का कितना सजीव चित्रण है। अरुन्वती कहती हैं—

कुवलयवलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन् ।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो
अटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम् ॥ (उ० ४-१६)

यह बालक नीलकमलदल के तुल्य साँवला, चोटी से सुशोभित, बाल-वृन्द का अलंकरण है। राम मानो पुनः बालरूप धारण कर मेरी आँखों को आनन्दित कर रहे हैं।

रससिद्ध कवि—भवभूति रससिद्ध कवि हैं। उनका विभिन्न रसों पर समान अधिकार है। उन्होंने शृङ्गार, वीर और करुण, इन तीन रसों को लेकर अपने तीन नाटक लिखे हैं। वे करुण रस के निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अन्य रसों के वर्णन में भी वे दक्ष हैं। उन्होंने रौद्र, भयानक, बीभत्स और अद्भुत रसों का भी सफलता के साथ वर्णन किया है।

वर्णन-कुशलता—भवभूति प्रकृति-वर्णन, शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन, आन्तरिक सौन्दर्य-वर्णन, मनोभाव-वर्णन, आन्तरिक दशा-वर्णन और मानवीय भावों के वर्णन में असाधारण पटु हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों की ओर अव्याहत गति से प्रवेश करती है। भवभूति में भावामिव्यंजन की अपूर्व शक्ति है। भवभूति के वर्णनों की प्रमुख विशेषता है कि वे स्वानुभूति-जन्य हैं। उनके वर्णन स्वाभाविक हैं। उन्होंने प्रकृति के सुकुमार और कठोर रूपों तथा प्रकृति से तादात्म्य का सुन्दर वर्णन किया है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का सरल, सहज और सुन्दर वर्णन देखिए :—

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजलं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाप्यन्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेहोहि यामः ॥ (उ० ४-२६)

प्रकृति के सुकुमार रूप का वर्णन सुकुमार शब्दों में देखिए—

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।

ग्रामञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि ॥

(उ० २-२३)

महावन के विकराल रूप का वर्णन है कि कहीं मयंकर जन्तु गरज रहे हैं, कहीं महासर्पों की साँस से आग लग रही है, तो कहीं प्यासे गिरगिट अजगर का पसीना पी रहे हैं ।

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित् क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः

स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः ।

सीमानः प्रबरोदरेषु विरलस्वल्पाभसो यास्वयं

तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदव्रवः पीयते ॥

(उ० २-१६)

प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए राम वृक्षों और मृगों को अपना बन्धु समझते हैं और बार-बार उनको स्मरण करते हैं ।

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे

यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।

एतानि तानि बहुकन्दरनिर्भराणि

गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥

(उ० ३-८)

संवादों में औचित्य और रोचकता—भवभूति ने संवादों में सर्वत्र औचित्य और रोचकता का ध्यान रखा है । संवादों में उतना ही अंश दिया गया है, जितना नाटकीय प्रवाह में बाधक न हो । संवाद और उनकी भाषा सर्वथा पात्रों के अनुकूल है । प्रत्येक पात्र अपनी आयु, योग्यता आदि के अनुकूल ही भाव और भाषा का प्रयोग करता है । अंक १ में चित्रवीथि-दर्शन तथा अंक ३ में राम-वासन्ती और सीता तमसा के कथोपकथन में सरस, ललित और संक्षिप्त पदावली का ही प्रयोग हुआ है । कुछ स्थानों पर समासयुक्त पदावली और लम्बे वाक्य भी मिलते हैं, वे प्रगति और रोचकता में बाधक हैं । जैसे—अहो दलघ्नवनीलोत्पल० (१ वा० ५१), यत्प्रलयवातोत्क्षोभ० (६ वाक्य ६) ।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—भवभूति ने पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग से किया है । वे आदर्शवादी हैं, अतः उनके सभी पात्र आदर्श-पालक हैं । वे किसी एक उच्च आदर्श के प्रतीक हैं । राम आदर्श राजा हैं तो सीता

आदर्श सती स्त्री; जनक स्नेही पिता हैं तो कौसल्या स्नेहमयी माता। वाल्मीकि आदर्श ऋषि हैं तो अरुन्धती आदर्श तपस्विनी; लक्ष्मण आदर्श भाई हैं तो वासन्ती आदर्श सखी। प्रत्येक पात्र आदर्श के लिए जीते और मरते हैं। प्रत्येक पात्र अपने अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करता है। भवभूति ने चरित्र-चित्रण में आदर्शवाद, मनोवैज्ञानिकता एवं मर्यादा का पूर्णरूप से ध्यान रखा है। यह सत्य है कि शूद्रक के मृच्छकटिक आदि के तुल्य पात्रों का वैविध्य, वैषम्य एवं अनेकरूपता भवभूति में नहीं है, किन्तु भवभूति के नाटकों में आदर्शवाद, रसोत्कर्ष, भाव-वैविध्य और चरित्र-गौरव उस न्यूनता के पूरक हैं।

अलंकारों का प्रयोग—भवभूति के नाटकों में प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों के प्रयोग मिलते हैं। भाव और भाषा पर असाधारण अधिकार होने के कारण अलंकार अनायास-सिद्ध हैं। भवभूति ने उपमा की नवीन विधाओं को जन्म दिया है। उनके अनेक अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं। उत्तररामचरित में उन्होंने ३८ अलंकारों का प्रयोग किया है और प्रयोग की दृष्टि से उन्हें निम्नलिखित अलंकार अत्यन्त प्रिय रहे हैं:—उपमा (७४ बार), उत्प्रेक्षा (३८), काव्यालिंग (२६), रूपक (२१), अर्थान्तरन्यास (१५)। अन्य प्रयुक्त अलंकारों में मुख्य हैं—तुल्ययोगिता, स्वाभावोक्ति, अतिशयोक्ति, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, विशेषोक्ति, विभावना, दीपक, व्यतिरेक, सन्देह, श्लेष।

(क) **भवभूति की उपमाएँ**—उपमाओं के प्रयोग में भवभूति ने नवीन विधा प्रस्तुत की है। कतिपय नवीन एवं मौलिक उपमाएँ दी हैं। जैसे—बहते आँसू की उपमा टूटी हुई मोती की माला से (उत्तर० १-२६); सस्वेद बाहु की उपमा चन्द्रकौमुदी से परिस्नुत चन्द्रकान्त मणि से (उ० १-३४)। सजीव की उपमा निर्जीव से—जैसे—सीता के लोकापवाद की तुलना पागल कुत्ते के विष से (उ० १-४०); अरुन्धती की उपमा उषा से (उ० ४-१०)। अमूर्त की उपमा मूर्त से—राम के करुण रस की उपमा पुटपाक से (उ० ३-१)। मूर्त की उपमा अमूर्त से—सीता की उपमा कारुण्य और विरह-व्यथा से (उ० ३-४)। गुरु के विद्यादान की उपमा पवित्र मणि और मृत्पिण्ड से दी गई है। विद्यादान पर यह सुन्दर सुभाषित है:—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा नडे

न तु खलु तपोजानि शक्तिं करोत्युपहन्ति वा ।

भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद् यथा

प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ॥ (उ० २-४)

(ख) अर्थान्तरन्यास के प्रयोग—भवभूति ने अर्थान्तरन्यास के कुछ अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग किए हैं। इनमें से कुछ अति प्रचलित सुभाषित हो गए हैं। कुछ उदाहरण ये हैं :—(१) वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति । (उ० २-७) । (२) गुणाः पूजा-स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (उ० ४-११) । (३) ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति (उ० १-१०) । (४) तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः (उ० १-१३) । (५) सतां सद्मिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति (उ० २-१) । (६) रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (उ० २-२) । (७) तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उ० २-१६) । (८) पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (उ० ४-१२) । (९) प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरुण्यं हि भवति (उ० ६-३०) । (१०) अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ० १-२८) ।

अर्थगौरव—भवभूति ने कुछ अत्यन्त मार्मिक भावों की उद्भावना की है, अतएव अनेक स्थानों पर अर्थगौरव प्राप्त होता है। दाम्पत्य-जीवन का जितना स्वाभाविक और मार्मिक वर्णन भवभूति ने किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। भवभूति का कथन है कि दाम्पत्य-भाव सुख-दुःख में एक रूप रहता है; जीवन की सभी अवस्थाओं में व्याप्त रहता है; इसमें हृदय को विश्राम मिलता है; वृद्धावस्था इसके रस को नहीं हर सकती; यह विवाह से मृत्यु तक परिपक्व प्रेम-रूप में रहता है। अतएव इसकी कामना की जाती है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्यासु यद्

विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत् स्नेहसारे स्थितं

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्रार्थ्यते ॥ (उ० १-३६)

सूतृत (प्रिय और सत्य) वाणी का जो महत्त्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है, उसी का भवभूति ने वैदिक शैली अपनाने हुए मनोहर वर्णन किया है कि यह कामनाओं को पूर्ण करती है; दुर्भाग्य का दमन करती है; यश देती है; शत्रुओं का नाश करती है; कामधेनु के तुल्य सभी कामनाओं को पूर्ण करती है।

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं

कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति ।

शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां

धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥

(उ० ५-३०)

छन्दोयोजना—भवभूति ने उत्तररामचरित में १६ छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक किया है और बड़े छन्दों का कम। उत्तररामचरित में प्रयुक्त छन्दों का विवरण इस प्रकार है :—(१) अनुष्टुप् या श्लोक (८४ बार), (२) शिखरिणी (३०), (३) वसन्ततिलका (२६), (४) शार्दूलविक्रीडित (२५), (५) मालिनी (१६), (६) मन्दाक्रान्ता (१३), (७) प्रहर्षिणी (१२), (८) हरिणी (६), (९) इन्द्रवज्रा (७), (१०) उपजाति (७)। अन्य प्रयुक्त छन्द ये हैं :—शालिनी (५), पुष्पिताग्रा (५), मञ्जुभाषिणी (५), रथोद्धता (३), पृथ्वी (३), द्रुतविलम्बित (२), आर्या (२), औपच्छन्दसिक (१), वंशस्थ (१)।

तीनों नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि भवभूति को अनुष्टुप् और शिखरिणी छन्द अधिक प्रिय हैं। महावीरचरित के ३६० श्लोकों में १३१ अनुष्टुप् हैं और उत्तर० के २५६ श्लोकों में ८४ अनुष्टुप् हैं। अनुष्टुप् के बाद भवभूति का प्रिय छन्द शिखरिणी है। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में भवभूति की शिखरिणी की प्रशंसा में उसे निरर्गल-तरंगिणी कहा है।

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी ।

रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ॥

(सु० ३-३३)

उन्हें वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित और मालिनी छन्द भी प्रिय हैं। भवभूति ने मालतीमाधव में चामुण्डा की स्तुति में प्रत्येक पाद में ५४ वर्णों वाले एक दण्डक वृत्त का भी प्रयोग किया है (प्रचलितकरिकृत्ति०, ५-२३)। छन्दों में वे कभी कोमल वर्णों के प्रयोग से, कभी कठोर वर्णों के प्रयोग से और कभी नादात्मक गति से भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी कृतियों में करुण रस के लिए शिखरिणी और वसन्ततिलका, प्रकृति-वर्णन और गंभीर भावों की अभिव्यक्ति के लिए शार्दूलविक्रीडित और शृङ्गार के लिए मालिनी छन्द प्रा आश्रय लिया गया है।

प्राकृत का प्रयोग—भवभूति ने उत्तररामचरित में केवल शौरसेनी प्राकृत

का प्रयोग किया है। सीता, कौसल्या, मुनि बालक सौधातकि, गुप्तचर दुर्मुख तथा विद्याधरी ही प्राकृत बोलते हैं। उत्तर० में प्राकृत का कोई श्लोक नहीं है। मालतीमाधव में प्राकृत के दो श्लोक (६-१०, ११) दिए गए हैं परन्तु वे संस्कृत और प्राकृत में एक से हैं। मालतीमाधव में लम्बे समासों वाले प्राकृत-वाक्य भी हैं।

भवभूति की अन्य विशेषताएँ

(क) मानवीकरण—भवभूति ने पृथ्वी, गङ्गा, गोदावरी, वनदेवता (वासन्ती) आदि प्राकृतिक तत्त्वों को मानव के रूप में प्रस्तुत किया है।

(ख) संवादात्मक श्लोक—श्लोक के एक अंश को एक पात्र और दूसरे अंश को दूसरा पात्र बोलता है। इस प्रकार संवादात्मक श्लोक भी दिए गए हैं। जैसे—सोऽयं शैलः० (उ० १-३३)। कुछ स्थलों पर एक ही श्लोक अनेक पात्र बोलते हैं। जैसे—अवनिरमर० (उ० ३-४८)।

(ग) श्लोकों की आवृत्ति—भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में ४३ श्लोक या श्लोकांशों की आवृत्ति की है।

(घ) व्यंग्य प्रयोग—भवभूति ने कुछ सुन्दर व्यंग्य-प्रयोग भी किए हैं। जैसे—राम को 'नया राजा' (१ वा० १३७), वसिष्ठ को व्याघ्र (४ वा० ८)।

(ङ) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग—जैसे आरकूट (५-१४, पीतल), कन्दल (३-११, अंकुर), प्रतिसूर्यक (२-१६, गिरगिट), अम्बूकृत (२-२१, थूथू करना), मौकुलि (२-२६, कौआ), प्रचलाकिन् (२-२६, मोर), रोहिण (२-२६, चन्दन), कुम्भीनस (२-२६, सर्प)।

(च) परम्परागत प्रणाली का त्याग—भवभूति ने परम्परागत-प्रणाली का परित्याग करके नई प्रणाली को जन्म दिया है। उसने कवि-समय की उपेक्षा करके इनका परम्परागत वर्णन नहीं किया है। जैसे—कोयल की ध्वनि, आम्र-मंजरी, चन्द्र-ज्योत्स्ना, पादाघातादशोकः आदि।

(८) भवभूति की न्यूनताएँ

(१) विदूषक का अभाव—तीनों नाटकों में विदूषक का सर्वथा अभाव है। मालती० में विदूषक का अभाव खटकता है।

१. लेखक-कृत—उत्तररामचरित, परिशिष्ट ५ में विस्तृत विवरण देखें।

- (२) अन्वितित्रय का अभाव—भारतीय नाटकों में यह दोष क्षम्य है।
- (३) भाषा की दुरुहता—तीनों नाटकों में दुरुह शब्दावली का प्रयोग नाटकोचित नहीं है।
- (४) संवादों में विस्तार—कुछ स्थानों पर अधिक लम्बे संवाद खटकते हैं। जैसे—राम-वासन्ती-संवाद, लव-चन्द्रकेतु-विवाद।
- (५) नायक पर लाञ्छन—लव ने वृद्धास्ते० (५-३४) में राम की वीरता पर तीन लाञ्छन लगाए हैं। शास्त्रीय दृष्टि से यह आपत्तिजनक है।
- (६) अनुचित प्रसंग—भवभूति ने अंक ४ में अनावश्यक रूप से समांस या अमांस मधुपर्क का प्रसंग उठाया है।
- (७) पात्रों के वैविध्य का अभाव—सभी आदर्शवादी पात्र हैं। मुच्छ-कटिक के तुल्य पात्रों में वैविध्य और अनेकरूपता नहीं है।
- (८) नायक की अधीरता—राम का बार-बार रोना, मूर्छित होना, अनुचित है।
- (९) श्लोकों की पुनरावृत्ति—तीनों नाटकों में ४३ श्लोकों या श्लोकांशों की आवृत्ति भाव और कल्पना के दारिद्र्य की द्योतक है।
- (१०) वस्तु-विन्यास में शिथिलता—वस्तु-विन्यास शिथिल है, अतः आलोचकों का मत है कि उत्तर० में अंक ५ निकाल देने पर भी कथा-प्रवाह में कमी नहीं आती।
- (११) अपाणिनीय प्रयोग—निम्नलिखित प्रयोग पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध हैं—दूषणखरत्रिमूर्धानः (उ० २-१५), ऋतंभराणि प्रज्ञानानि (७ वा० ८)।

(६) भवभूति और कालिदास

(उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते)

संस्कृत साहित्य में कालिदास के समान ही गौरवास्पद एवं सफल नाटककार होने का श्रेय भवभूति को ही प्राप्त हुआ है। संस्कृत के आलोचकों में यह एक विवादास्पद विषय रहा है कि दोनों महाकवियों में कौन श्रेष्ठ है? कालिदास के समर्थक कालिदास को श्रेष्ठ मानते हैं और भवभूति के समर्थक भवभूति को।

यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि जहाँ तक मुकुमार-भाव-युक्त कवित्व और काव्य का सम्बन्ध है, वहाँ तक कालिदास सर्वोपरि हैं; किन्तु नाटककार के रूप में और ओज गुण-युक्त एवं कृष्ण रस-प्रधान कवि के रूप में भवभूति कालिदास से बढ़कर हैं। उत्तररामचरित में उनकी नाट्यकला और उनके कवित्व का पूर्ण परिपाक है। अतः कहा गया है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से बढ़कर हैं।

‘उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥

भवभूति की कृतियों पर कालिदास का प्रभाव पड़ा है। जैसे—उत्तर-रामचरित के चित्रदर्शन पर रघुवंश (१४-२५) के चित्रदर्शन का प्रभाव प्रतीत होता है। उत्तर० में अदृश्य सीता का विरह-विकल राम को देखने का संकेत संभवतः शाकुन्तल (अंक ६) के सानुमती-प्रसंग से प्राप्त हुआ है। मालती-माधव में विरही माधव का अपनी प्रिया मालती के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजना भाव भाषा आदि सभी दृष्टि से मेघदूत के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यह सत्य है कि भवभूति ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से भाव आदि लिए हैं, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा से उन भावों और विचारों पर ऐसी अनुपम छाप लगाई है कि उनको एक नवीन और चमत्कृत रूप दे दिया है। अधिकांश स्थलों पर वे उन भावों के वर्णन में पूर्व कवियों से आगे बढ़ गए हैं।

समानताएँ—कालिदास और भवभूति में कतिपय समानताएँ हैं:—(१) दोनों संस्कृत-साहित्य के उच्चकोटि के सफल नाटककार हैं। (२) दोनों सफल महा-कवि हैं। (३) दोनों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। (४) दोनों अपने अमीष्ट रस के वर्णन में अनुपम हैं। (५) दोनों में असाधारण प्रतिभा और मौलिकता है। (६) दोनों में पाठकों और दर्शकों को मन्त्रमुग्ध करने की शक्ति है।

विषमताएँ—दोनों में बहुत अन्तर भी है:—(१) कालिदास की प्रतिभा सर्वतो-मुखी है। वे सफल नाटककार, महाकाव्यकार और गीतिकाव्यकार हैं। भवभूति केवल सफल नाटककार हैं।

(२) कालिदास की कृतियों में प्रसाद और माधुर्य गुण अधिक हैं। उनकी कृतियों में लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन का दोष नहीं है। इसके विपरीत भवभूति की कृतियों में ओज गुण अधिक है। वे लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन में

भी संकोच नहीं करते। यथा—प्रवृत्त एवायम् (उ० ६ वा० ३), यत् प्रलयवातोत्क्षोभ० (उ० ६ वा० ६), कण्डूलद्विपगण्ड० (उ० २-६)।

(३) कालिदास शृङ्गार रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। भवभूति करुण रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे वीर रस के वर्णन में भी कालिदास से आगे हैं। वे करुण रस को ही एकमात्र रस मानते हैं और अन्य रसों को उसका रूपान्तर बताते हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान् ॥

(उ० ३-४७)

(४) कालिदास की कृतियों में लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों की प्रधानता है। वे लक्ष्य और व्यंग्य अर्थों के द्वारा अपने अभीष्ट रस को व्यक्त करते हैं। इसके विपरीत भवभूति की कृतियों में अभिधा वृत्ति की प्रधानता है। वे वाच्य अर्थ के द्वारा रस की अभिव्यक्ति करते हैं। कालिदास थोड़े शब्दों के द्वारा अधिक अर्थ को व्यंजना द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। भवभूति उसी भाव को प्रबल एवं निस्तृत वाग्विन्यास के द्वारा प्रकट करते हैं। शाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर केवल इतना ही कहता है—‘अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्’ (अंक ३), परन्तु मालतीमाधव में माधव मालती को देखकर ‘अविरलमिव दाम्ना०’ (मालती० ३-१६) पूरा श्लोक कहता है।

(५) कालिदास की कृतियों में कल्पना की ऊँची उड़ान है तो भवभूति की कृतियों में भावों का गाम्भीर्य। कालिदास में सरलता और सरसता है तो भवभूति में ओज और प्रौढ़ता। कालिदास में कोमलता और प्राञ्जलता है तो भवभूति में प्रगल्भता और उदात्तता। कालिदास में नैसर्गिकता है तो भवभूति में आदर्शरूपता। कालिदास में सजीवता है तो भवभूति में गंभीरता।

(६) कालिदास और भवभूति के उपमा-प्रयोगों में भी अन्तर है। कालिदास प्रायः मूर्त वस्तु की उपमा मूर्त वस्तु से देते हैं, परन्तु भवभूति मूर्त वस्तु की उपमा अमूर्त से भी देते हैं। जैसे—विरहिणी सीता की उपमा करुणा या विरह-व्यथा से (उ० ३-४)।

(७) दोनों ने प्रकृति का वर्णन किया है। कालिदास ने प्रकृति के कोमल और ललित अंश को ही मुख्यतः अपनाया है। भवभूति ने प्रकृति के घोर और प्रचंड अंश को भी अपनाया है। वे भयंकर वनों, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न की कड़ी धूप आदि का भी वर्णन करते हैं। जैसे—उत्तर० २-६, २-१४, २-१६, २-२६।

(५) कालिदास ने नारी के बाह्य सौन्दर्य का मनोहर वर्णन किया है, किन्तु भवभूति ने उसके अन्तःसौन्दर्य को प्रकट किया है। कालिदास के लिए स्त्री 'श्रोणीभारादलसगमना' 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' है। भवभूति के लिए वह गृहलक्ष्मी और आँखों के लिए अमृतशलाका है।

(६) कालिदास ने अपने नाटकों में विदूषक को स्थान दिया है, किन्तु भवभूति ने उसका परित्याग किया है।

(१०) कालिदास के नाटकों में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण पूर्णतया नहीं मिलता है, परन्तु वह भवभूति में प्राप्य है।

अतएव द्विजेन्द्रलाल राय का कथन है—“विश्वास की महिमा में, प्रेम की चित्रता में, भाव की तरंग-श्रीडा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में 'उत्तररामचरित' श्रेष्ठ है और घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना की कोमलता में, मानव-चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' श्रेष्ठ है। संस्कृत-साहित्य में ये दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल शरद् ऋतु की पूर्ण चाँदनी है, उत्तररामचरित नक्षत्रखचित नील आकाश है। एक व्यंजन है, दूसरा हविष्य अन्न है; एक वसन्त है, दूसरा वर्षा है; एक नृत्य है, दूसरा अश्रु है; एक उपभोग है, दूसरा पूजन है।

६. (ज) विविध नाटककार

(क) अश्वघोष

अश्वघोष प्रथम बौद्ध नाटककार हैं। ये सम्राट् कनिष्क (७८ ई०—१२० ई०) के राजगुरु और आश्रित राजकवि थे। इनका समय प्रथम शताब्दी ई० मानना उचित है। प्रो० ल्यूडर्स (Lüders) को मध्य एशिया के तुफानि स्थान से अत्यन्त प्राचीन ताड़पत्रों पर लिखित पांडुलिपियों में अश्वघोष के ३ नाटक प्राप्त हुए थे। इनमें से एक की पुष्पिका सुरक्षित मिली है, जिसमें लेखक का नाम सुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ 'शारिपुत्रप्रकरण' (पूरा नाम—शारद्वतीपुत्रप्रकरण) है। तीनों नाटकों में केवल 'शारिपुत्रप्रकरण' ही काम चलाऊ मिला है। अन्य दो नाटक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मिले हैं। दूसरे में कुछ नाम आदि तथा संक्षिप्त कथा ही पढ़ी जा सकती है। तीसरे नाटक का नाम तक ज्ञात नहीं हो सका है।

शारिपुत्रप्रकरण—यह प्रकरण नाटक है। इसमें ६ अंक हैं। इसमें मौद्गलायन और शारिपुत्र नामक दो युवकों के, बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन है। इस नाटक की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं—(१) नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन करना। (२) प्रकरण नाटक होना। (३) स्वयं बुद्ध का रंगमंच परप्रवेश दिखाना। (४) भरत-वाक्य में नवीनता। भरतवाक्य नायक के द्वारा प्रार्थना के रूप में नहीं है, अपितु बुद्ध के द्वारा नवदीक्षित शिष्यों को आशीर्वाद के रूप में है। इसमें 'अतः परमपि प्रियमस्ति' आदि वाक्य नहीं हैं। भरतवाक्य बुद्ध के शब्दों में इस प्रकार है :— 'अब से ये दोनों इन्द्रिय-निग्रह करते हुए निरन्तर ज्ञान-वृद्धि करते रहें और निर्वाण प्राप्त करें।'।

रूपकात्मक नाटक—दूसरा नाटक अत्यन्त खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है। इसका नाम अज्ञात है। यह रूपकात्मक नाटक है और परकालीन 'प्रबोधचन्द्रोदय' आदि रूपकात्मक नाटकों की शैली का जन्मदाता है। इसके पात्र हैं—बुद्धि, कीर्ति, धृति आदि।

गणिका-विषयक नाटक—तीसरा नाटक गणिका-विषयक है। इसका नाम अज्ञात है। इसके पात्र हैं :—मागधवती (गणिका), कौमुदगन्ध (विदूषक), नायक (संभवतः नाम सोमदत्त), शारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि। इसका उद्देश्य धार्मिक उपदेश है। इसमें हास्यरस भी है।

भाषा और छन्द—बुद्ध, उनके शिष्य तथा उच्च कोटि के पात्र संस्कृत बोलते हैं। स्त्रियाँ और निम्न कौटि के पात्र शौरसेनी, प्राच्या, मागधी या अर्धमागधी बोलते हैं। प्राकृत के प्रभाव के कारण इन पाण्डुलिपियों में संस्कृत की कुछ अशुद्धियाँ हैं। जैसे—अर्थ को आर्थ, कृमि को क्रिमि, तूष्णीम् को तुष्णीम्। इनमें १२ छन्दों का प्रयोग मिलता है। अनुष्टुप् के अतिरिक्त इन छन्दों का प्रयोग है :—उपजाति, शालिनी, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा और सुवदना।

(ख) मुरारि

व्यक्तित्व, कृतित्व और समय

अनर्घराघव की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि मुरारि का जन्म मौद्गल्य

गोत्र में हुआ था। इनके पिता श्रीवर्धमान भट्ट और माता तन्तुमती थीं। 'महाकवि' और 'बाल-वाल्मीकि' इनकी उपाधियाँ थीं। इनकी शिक्षा गुरुकुल में हुई थी।

मुरारि की एकमात्र कृति 'अनर्घराघव' प्राप्त होती है।

मुरारि का समय ८०० ई० के लगभग है, क्योंकि वे भवभूति (६८० से ७५० ई०) से प्रभावित हैं और उत्तररामचरित की शब्दावली (दत्तेन्द्रामय० ६-१८) अनर्घराघव (१-२७) में उद्धृत है। वे रत्नाकर (८५० ई० के लगभग) से पूर्ववर्ती हैं, क्योंकि रत्नाकर ने हरविजय (३८-६८) में मुरारि को नाटककार बताया है।

अनर्घराघव की कथावस्तु—यह सात अंकों का नाटक है। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांगते हैं। यहाँ से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।

नाटककला और शैली—मुरारि ने अपने नाटक में प्राचीन परम्परागत रूढ़ियों के पालन पर बल दिया है। मुरारि का प्रयत्न रहा है कि वे नाटककार के रूप में भवभूति को और कवि रूप में माघ को पीछे छोड़ दें। वे अपने प्रयत्न में साधारणतया असफल रहे हैं। अनर्घराघव की कथा के लिए वे भवभूति के महावीरचरित के ऋणी हैं। पद-पद पर पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न है। मुरारि का शब्दकोष अक्षय है। उनका व्याकरण पर असाधारण अधिकार है, अतएव व्याकरण-जगत् में उनके नाटक की बहुत प्रशंसा है। वे रीतिवादी कवि हैं। उनकी शैली ओजगुण-युक्त होने से गौड़ी है। क्लिष्ट-कल्पना, क्लिष्ट-रचना और दुर्बोध शब्दावली के प्रयोग में उन्हें नाममात्र भी संकोच नहीं है। मुरारि अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के आवेश में भूल जाते हैं कि वे नाटक लिख रहे हैं या काव्य। उनके नाटक में ५६७ श्लोक हैं और प्रत्येक अंक में प्रायः उतने श्लोक हैं, जितने महाकाव्य के एक सर्ग में होते हैं। सबसे कम ५५ श्लोक ५वें अंक में हैं और सबसे अधिक १५२ श्लोक ७वें अंक में हैं। द्वितीय में ८७ और षष्ठ में ८४ श्लोक हैं। महाकवि और महानाटककार दोनों एक साथ बनने की कल्पना ने उन्हें 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' करके उभयतोभ्रष्ट कर दिया है। चरित्र-चित्रण में वे बल एक नवीनता है और वह है परशुराम-राम-विवाद में राम को विनम्र चित्रित करना। चरित्र-चित्रण सामान्यतया परम्परागत है। कथानक में प्रवाह और संतुलन का अभाव है। वर्णन आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गए हैं, अतः

अरोचक प्रतीत होते हैं। राम-रावण-युद्ध-वर्णन विस्तृत और रसहीन है। काव्य की दृष्टि से कोई नवीनता या रोचकता नहीं लाई गई है। कथा परम्परागत है। वालि-वध में औचित्य है। पात्र रूढ़िबद्ध हैं। संवादों में स्वाभाविकता और रोचकता का अभाव है। मुरारि संवाद-कला के मर्मज्ञ नहीं हैं। प्रत्येक भाव में अतिशयोक्ति का समन्वय है। मुरारि में मौलिकता का अभाव है। उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को अपने शब्दों में तथा सशक्त भाषा में प्रयुक्त किया है। मुरारि पद-सौष्ठव, भावानुकूल नादात्मक भाषा, शब्द-विच्छिन्ति और पद-चमत्कृति में असाधारण रूप से सफल हुए हैं। उनकी रचना में संगीतात्मकता और लयात्मकता है। वे गौड़ीरीति के उच्च कोटि के कवि हैं। क्लिष्ट, कठोर वर्ण-युक्त तथा समास-युक्त पदावली के प्रयोग में वे विशेष सफल हुए हैं। अतएव युद्ध आदि के वर्णन में वे विशेष सफल रहे हैं। जैसे—कल्पान्तकूरसुरोत्कर-विकटमुखो मानुषद्वन्द्वयुद्ध० (अनर्घ० ६-३१)। शृङ्गार-रस के वर्णन में वे सफल नहीं हो सके हैं। कुछ शृङ्गार रस के वर्णन अवश्य सुन्दर हैं। मुरारि प्रौढ़ और परिष्कृत शैली के आदर्श हैं। उनकी उपमाएँ मौलिक हैं। नाटक और काव्य को मिश्रित करके प्रस्तुत करने के कारण 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' (मुरारि का तीसरा या नया मार्ग) कहा जाता है। मुरारि के प्रशंसक उन्हें माघ से बड़ा हुआ मानते हैं, अतः उनका कथन है कि मुरारि को जानने के लिए माघ (शिशुपाल-वध) को पढ़ें और मुरारि (विष्णु) की प्राप्ति के लिए मा+अघः (पाप-त्याग) करें।

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु ।

मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु ॥

जो आलोचक मुरारि को भवभूति से बढ़कर मानते हैं, उनका कथन है कि मुरारि के सामने भवभूति तुच्छ है। साथ ही श्लेष के द्वारा अर्थ बताया है कि मुरारि (विष्णु) के सामने भवभूति (शिव) निकृष्ट है।

(१) मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा ।

भवभूति परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु ॥

(२) भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया ।

मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ॥

जनस्थान-वर्णन में प्रकृति-चित्रण का सुन्दर उदाहरण देखिए :—

दृश्यन्ते मधुमत्तकोकिलवधूनिर्धूतचूताङ्कुर-

प्राग्भारप्रसरत्परागसिकतादुर्गास्तटीभूमयः ।

याः कृच्छ्रादतिलङ्घ्य लुब्धकभयात् तैरेव रेणूत्करं-

धारावाहिभिरस्ति लुप्तपदवीनिःशङ्कमेणीकुलम् ॥ (अ० ५-६)

युद्धार्थ प्रस्थान करते हुए रावण के वर्णन में वीर रस और गौडी शैली देखिए :—

न्यञ्चन्न्यञ्चदधरित्रीधृतचरणभरच्चन्द्रहासैकदृष्टि-

व्यावल्गाद्यौगपद्योत्सुकसकलभुजाक्रान्तदिक्चक्रवालः ।

क्रोधकूराक्षिरक्तोत्पलरचितवियत्तोरणलज्जि बिभद्

वक्त्राणि प्रत्यनीकप्रसरसरभसो निर्जिहीते वशास्यः ॥ (अ० ६-२८)

मुरारि की भाषा कहीं-कहीं अत्यन्त सुकुमार और प्रसाद-गुण-युक्त है । जनक राम-लक्ष्मण का वर्णन करते हैं —

इदं वयो मूर्तिरियं मनोज्ञा, वीराद्भुतोऽयं चरितप्ररोहः ।

इमौ कुमारौ बत पश्यतो मे, कृतार्थमन्तर्नटतीव चेतः ॥ (अ० ३-२४)

सज्जनों को देखकर सज्जन प्रसन्न होते हैं, जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुद । सुन्दर भावपूर्ण उक्ति है । देखिए :—

यदिन्दोरन्वेति व्यसनमुदयं वा निधिरपा-

मुपाधिस्तत्रायं जयति जनिकर्तुः प्रकृतिता ।

अयं कः संबन्धो यदनुहरते तस्य कुमुदं

विशुद्धाः शुद्धानां ध्रुवमनभिसन्धिप्रणयिनः ॥ (अ० १-६८)

शृङ्गार का एक सुन्दर उदाहरण देखिए । राम सीता से कहते हैं कि तुम्हारे मुख से चन्द्रमा तोला गया और वह हलका पड़ा । अतः उस कमी को पूरा करने के लिए चन्द्रमा के साथ तारेरूपी छोटे बाट रखे गए हैं ।

अनेन रम्भोह भवन्मुखेन, तुषारभानोस्तुलया धृतस्य ।

ऊनस्य नूनं परिपूरणाय, ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः ॥ (अ० ७-८१)

इन गुणों के कारण मुरारि की निम्नलिखित गर्वोक्ति कुछ अंश तक सत्य

है कि मैंने कठिन परिश्रम से विद्या प्राप्त की है। समुद्र की गहराई मन्दराचल ही जानता है।

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं

जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः।

अग्निर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता-

मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जनाति

मन्थाचलः ॥

(ग) राजशेखर

जीवनवृत्त—राजशेखर महाराष्ट्र के यायावर क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम अमात्य 'दर्दुक' (या दुहिक) था और माता का नाम शीलवती। उनके पितामह 'अकालजलद' थे। वे एक महाकवि-वंश-परम्परा में उत्पन्न हुए थे। उनके पूर्वजों में विख्यात कवि मुरानन्द, तरल और कविराज थे। उनका विवाह चह्वाण कुल की 'अवन्तिमुन्दरी' से हुआ था। वे उदार शैव थे। वे बहुश्रुत विद्वान् थे। उन्होंने बालरामायण में अपने आपको वाल्मीकि, भर्तृमेष्ठ और भवभूति का अवतार बताया है।

कृतित्व—राजशेखर के ४ नाटक प्राप्त होते हैं :—(१) बालरामायण—यह १० अंकों का एक महानाटक है। प्रत्येक अंक एक नाटिका के बराबर है। इसमें ७४१ पद्य हैं। इसमें शार्दूलविक्रीडित (२०३ से अधिक) और खग्वरा (८६) जैसे लम्बे छन्दों का भी अधिकता से प्रयोग हुआ है। इसमें रामकथा वर्णित है। रावण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है और उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई है।

(२) बालभारत (या प्रचण्डपाण्डव)—इसके दो अंक प्राप्त होते हैं। इसमें द्रौपदी-स्वयंर, द्यूत और द्रौपदी-चौरहरण की घटनाएँ वर्णित हैं। (३) विद्वशालभञ्जिका—यह शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका है। इसमें ४ अंक हैं। इसमें रत्नावली आदि के तुल्य राजकीय प्रणय-क्रीडा वर्णित है। (४) कर्पूरमंजरी—यह चार अंकों का 'सट्टक' नामक रूपक है। सट्टक की भाषा प्राकृत होती है। अन्य बातों में यह नाटिका के तुल्य होता है। इसका कथानक रत्नावली के तुल्य राजपरिवार की प्रणय-क्रीडा से संबद्ध है। इनके २ नाटक और माने जाते हैं। एक का नाम हरविलास है और दूसरे का नाम अज्ञात है। दोनों अप्राप्य हैं।

राजशेखर की अन्य एक सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय रचना 'काव्यमीमांसा' है। यह कवि और प्रौढ कृति है और संभवतः उनकी अन्तिम रचना है। इसमें कवि के कर्तव्यों आदि का विस्तृत वर्णन है।

राजशेखर का समय—राजशेखर कन्नौज के प्रतिहार राजा निर्भयराज (महेन्द्रपाल) (८७३ से ९०७ ई०) और उसके पुत्र महीपाल (९१४ ई०) के आश्रित कवि थे। कर्पूरमंजरी में उन्होंने अपने को निर्भय का गुरु बताया है। अतः राजशेखर का समय १०वीं शताब्दी ई० का प्रथम चरण (९०० ई० के लगभग) सिद्ध होता है। राजशेखर ने उद्भट (८०० ई० के लगभग) और आनन्दवर्धन (८५० ई० के लगभग) का उल्लेख काव्यमीमांसा में किया है। अतः वे ८५० ई० के बाद के हैं। यशस्तिलकचम्पू (९६० ई०) और तिलकमंजरी (१००० ई० के लगभग) में राजशेखर की लोकप्रियता का उल्लेख है। इससे भी उनका समय १०वीं का प्रथम चरण ज्ञात होता है।

राजशेखर की नाट्यकला और शैली

राजशेखर नाटककार के रूप में बहुत अधिक सफल नहीं हो सके हैं। मुरारि की अपेक्षा उनमें नाटक-कर्तृत्व गुण अधिक है। वे कालिदास, हर्ष और भवभूति से प्रभावित हैं। उनके नाटक बहुत अधिक विस्तृत हो गए हैं, अतः उनमें अरोचकता, गत्यभाव, कथा-शथिल्य और प्रभावहीनता है। उनका ध्यान शैली और पद्य-रचना पर अधिक है। स्थान-स्थान पर सुन्दर और रोचक पद्य उनके नाटकों का महत्त्व बढ़ाते हैं। उनकी शैली, भावाभिव्यक्ति और शब्दचयन वस्तुतः प्रशंसनीय हैं। उनकी शैली मुख्यतया गौड़ी है, तथापि यत्र-तत्र पांचाली का प्रयोग देखा जा सकता है। लोकोक्तियों का कर्पूरमंजरी में बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। राजशेखर ने स्वयं अपने 'मणितिगुण' (सुन्दर वर्णन-गुण) की प्रशंसा की है।^१ इसी आधार पर वे अपने अत्यन्त लम्बे नाटकों को भी पढ़ने के लिए पाठकों को प्रेरित करते हैं। राजशेखर में नाट्यकला की न्यूनताएँ स्पष्ट हैं:—(१) उनमें पात्रों की सृष्टि करने की शक्ति नहीं है। (२) नाटकीय विशेषताओं का अभाव है। (३) कथानक शिथिल है और वस्तु-योजना पर ध्यान कम है। (४) चरित्र-

१. ब्रूते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्बालरामायणेऽस्मिन्, प्रष्टव्योऽसौ पटीयान् इह मणितिगुणो विद्यते वा न वेति । यद्यस्ति स्वस्ति तुभ्यं भव पठनरुचिः० बालरामायण १-१२ ।

चित्रण की घोर उपेक्षा की गई है। (५) रोचक एवं कुतूहलता के उत्पादक घटनाओं और दृश्यों का अभाव है। (६) लम्बे वर्णन और भावात्मक पद्यों की अधिकता उबाने वाली है। (७) नायक और नायिकाएँ शक्तिहीन एवं गुण-रहित हैं। (८) कर्पूरमंजरी का विदूषक थका देने वाला है। (९) नाटिकाओं में प्रेम-विषयक प्रयोग शिथिल हैं। (१०) कर्पूरमंजरी में प्रवेश और प्रस्थान बहुत उलझा हुआ है। अभिनय की दृष्टि से बहुत कठिन है। (११) विद्वशाल-भंजिका में नायक का एक साथ दो विवाह करने की अभिरुचि अशोभनीय है।

राजशेखर प्रकृति के लम्बे वर्णनों में दक्ष हैं। भावपक्ष भले ही न्यून हो, पर कलापक्ष अवश्य प्रबल है। पद्य मर्मस्पर्शी न होने पर भी अत्यन्त श्रुतिसुखद और रोचक हैं। शब्द-चमत्कार और ध्वन्यात्मकता इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। यद्यपि रस-परिपाक, मानव-प्रकृति-सूक्ष्म-निरीक्षण, मनोभाव-विश्लेषण आदि गुणों का राजशेखर में अभाव है, तथापि संगीतात्मक लम्बे पद्य, नादात्मक भावानुभूति, ध्वन्यात्मक अर्थभिन्नव्यक्ति और ललित पद-रचना में वे अवश्य अग्रगण्य हैं। शार्दूल-विक्रीडित उनका अत्यन्त प्रिय छन्द है। अतएव क्षेमेन्द्र ने उनके शार्दूलविक्रीडित की प्रशंसा की है—

शार्दूलविक्रीडितरेव प्रख्यातो राजशेखरः ।

शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः ॥

वे वसन्ततिलका और स्रग्धरा के प्रयोग में भी अत्यन्त दक्ष हैं। कर्पूरमंजरी में केवल प्राकृत है; गद्य शौरसेनी प्राकृत में और पद्य महाराष्ट्री में। कर्पूरमंजरी में १७ छन्दों में १४४ पद्य हैं। इसमें हास्यरस का सुन्दर समावेश है। इसमें प्रचलित देशज शब्दों का भी प्रयोग है, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, इनसे हिन्दी के प्रचलित कुछ शब्द निकले हैं। जैसे—खिड़किया (खिड़की), लट्ठि (लाठी), टिल्ल (टीला), कहि पि (कहीं भी)। इसमें सुन्दर लोकोक्तियाँ भी हैं। जैसे—वरं तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनः दिवसान्तरिता मयूरी (नौ नगद, न तेरह उधार); इदं तत् शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः; हस्तकङ्कणं किं दर्पणेन दृश्यते (हाथ कंगन को आरसी क्या?)।

विद्वशालभंजिका के नान्दी-श्लोक में सुरतक्रीडा के सूत्रधार कामदेव का ललित और आकर्षक वर्णन देखिए :—

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने

परमसुहृद्वनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य ।

अपि कुसुमपुष्पकंदैवदेवस्य जेता

जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥

(विद्व० १-१)

कर्पूरमंजरी का हिंडोला कवि के ध्वन्यात्मक शब्दों के हिंडोले में झूलता हुआ देखिए और ध्वनि से अभीष्टार्थ-व्यक्ति देखिए :—

रणन्तमणिजेउरं झणझणन्तहारच्छडं

कणक्कणिअकिडकिणीमुहलमेहलाडम्बरं ।

विलोलवलझावली जणिअ मञ्जुसिञ्जारवं

ण कत्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिन्दोलणं ॥ (कर्पूर० २-३२)

(घ) दिङ्नाग

कर्तृत्व और समय—दिङ्नाग का ६ अंकों का नाटक 'कुन्दमाला' मद्रास से १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ है। यह दिङ्नाग ५वीं शताब्दी ई० के बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग से भिन्न है। यह भवभूति के उत्तररामचरित के अनुकरण पर लिखा गया है। दिङ्नाग का नाम घोरनाग या वीरनाग भी माना जाता है। रामचन्द्र गुणचन्द्र (११०० ई०) ने सर्वप्रथम अपने नाट्यदर्पण में कुन्दमाला का उल्लेख किया है (यथा वीरनागनिबद्धायां कुन्दमालायां०, नाट्यदर्पण पृ० ४८)। अतः दिङ्नाग का समय १००० ई० के लगभग है।

संक्षिप्त कथा—कुन्दमाला में राम के द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता-मिलन तक की घटना का वर्णन है। गोमती के तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण ने जल में बहती हुई कुन्द के फूलों की माला को देखकर सीता का पता लगाया, अतः नाटक का नाम कुन्दमाला है।

उत्तररामचरित और कुन्दमाला की तुलना

दोनों नाटकों में पर्याप्त समानताएँ हैं और कुछ विषमताएँ भी हैं :—

समानताएँ—(१) दोनों वाल्मीकि के ऋणी; उत्तरकाण्ड के सीता-परित्याग की कथा। (२) दोनों सुखान्त नाटक। (३) दोनों में अदृश्य सीता की कल्पना। (४) दोनों में कर्ण-रस प्रधान। (५) दोनों में प्रकृति के सुन्दर

१. विस्तृत विवरण के लिए देखो लेखककृत—उत्तररामचरित, भूमिका पृष्ठ ६४ से ६६। प्रथम संस्करण, १९६८ ई०।

रूप का वर्णन । (६) दोनों में सीता-वियोग पर राम का बार-बार रोना ।
(७) दोनों में भाव और भाषा की समानता ।

विषमताएँ—(१) भवभूति उच्च नाटककार तथा मानवीय मनोभावों का सूक्ष्म पारखी; दिङ्नाग मध्यम कोटि का नाटककार तथा मनोभावों के विश्लेषण में सूक्ष्म दृष्टि नहीं । (२) भवभूति के वर्णन रूढ़िसंगत नहीं; दिङ्नाग के रूढ़ि-संगत । (३) 'रस और भाव की दृष्टि' से उत्तररामचरित उत्तम; सजीवता और क्रियाशीलता की दृष्टि से कुन्दमाला उत्कृष्ट । (४) उत्तर० उत्तम नाटकीय काव्य; कुन्दमाला अभिनेय नाटक । (५) उत्तर० में लम्बे समास, ओज गुण, गौडी रीति, संवाद लम्बे; कुन्दमाला में केवल छोटे समास, वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण, संवाद छोटे, रोचक और कौतूहलवर्धक । (६) उत्तर० में वर्णन श्रमसाध्य, दुर्बोध पदावली, चरित्र-चित्रण में अविशदता; कुन्द० में वर्णन सरल, सुबोध पदावली, चरित्र-चित्रण में विशदता और मनोहरता । (७) उत्तर० में करुण और वीर रस; कुन्द० में केवल करुण रस । (८) उत्तर० से कुन्द० के पात्र अधिक पार्थिव । (९) उत्तर० में राम-सीता अधिक आदर्शवादी; कुन्द० में उनमें मानवीय न्यूनताएँ भी । (१०) उत्तर० में सीता की पहचान हस्तस्पर्श से; कुन्द० कुन्दमाला आदि ६ प्रकार से । (११) उत्तर० में विदूषक नहीं; कुन्द० में है । (१२) उत्तर० में लवकुश का राज्याभिषेक नहीं; कुन्द० में उनके राज्याभिषेक का उल्लेख है ।

शैली—दिङ्नाग वैदर्भी रीति का कवि है । उसकी कविता में प्रसाद और माधुर्य है । सरल और सरस पदावली उसकी नाटकीयता को महत्त्व प्रदान करते हैं । कुन्दमाला में कथा-संयोजन, प्रवाह और शक्तिमत्ता उच्चकोटि की है । इसमें चरित्र-चित्रण भी सुन्दर हुआ है । सफल नाटक के प्रायः सभी गुण इसमें मिलते हैं । दिङ्नाग ने नाटक में अपने आपको नाटककार के रूप में प्रस्तुत किया है, न कि कवि के रूप में, अतः यह एक सफल नाटक हो सका है । इसमें करुण रस का मुख्य रूप से वर्णन है । साथ ही प्राकृतिक दृश्यों का भी सुन्दर वर्णन है । कुन्दमाला का कुछ अंश खण्डित और अपूर्ण है । कुछ प्राकृत अंश भी अभी तक अस्पष्ट है ।

दिङ्नाग की सरल मधुर शैली का एक उदाहरण देखिए । राम सीता-वियोग में दुःखित हैं । मृगों ने तृण और मोरों ने नाचना छोड़ दिया है । हंस रो रहे हैं । राम कहते हैं कि ये पशु-पक्षी अच्छे हैं, न कि हम मनुष्य ।

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य

हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।

नृतं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं

तिर्यग्गता वरममी न परं मनुष्याः ॥

(कुन्द० १-१८)

सीता-परित्याग पर अपने को दोषी बताते हुए राम कहते हैं कि समुद्र पर पुल बांधना व्यर्थ हुआ; सीता की अग्निपरीक्षा निष्फल रही; इक्ष्वाकुवंश निर्वंश हो गया; सीता का परित्याग करके मैंने मूर्खतावश क्या-क्या अनुचित नहीं किया ?

नीतस्तावन्मकरवसतौ बद्धतां शैलसेतु-

देवो वह्नितं च विगणितः शुद्धिसाक्ष्ये नियुक्तः ।

इक्ष्वाकूणां भुवनमहिता सन्ततिर्नेक्षिता मे

किं किं मोहादहमकरवं मंथिलीं तां निरस्य ॥ (कु० ३-३)

(ड) कृष्ण मिश्र

कृष्ण मिश्र जेजाकमुक्ति के चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के शासन-काल में हुए थे। कीर्तिवर्मा का एक अभिलेख १०६८ ई० का प्राप्त होता है। प्रबोधचन्द्रोदय की प्रस्तावना में उल्लेख है कि श्रीमान् गोपाल के आदेश से राजा कीर्तिवर्मा की उपस्थिति में इसका अभिनय किया गया। इतिहास से ज्ञात होता है कि १०४२ ई० में गोपाल ने कीर्तिवर्मा को उसका हारा हुआ राज्य प्राप्त कराया था। गोपाल संभवतः उसका सेनापति था। अतः कृष्ण मिश्र का समय १०५० ई० के लगभग सिद्ध होता है।

इसका एकमात्र रूपकात्मक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' प्राप्त होता है। यह अद्वैत वेदान्त-विषयक नाटक है। इसमें ६ अंक हैं। इसमें वर्णन है कि पुरुष मति, विवेक, श्रद्धा, उपनिषद् आदि के सहयोग से अविद्या आदि के अन्धकार को पार करके विष्णुभक्ति की कृपा से अपने वास्तविक स्वरूप 'विष्णु' पद को प्राप्त करता है।

अमूर्त तत्त्व मति, विवेक, करुणा, शान्ति, श्रद्धा, उपनिषद्, क्षमा, सन्तोष, मन, वैराग्य, सरस्वती, विष्णुभक्ति, महामोह, अहंकार, दम्भ आदि इसके पात्र हैं। इसके कुछ अंकों के प्रसंगानुसार नाम भी हैं। जैसे—अंक ४—विवेकोद्योग; अंक ५—वैराग्यप्रादुर्भाव; अंक ६—जीवन्मुक्ति। यद्यपि शुद्ध नाट्यकला की

दृष्टि से यह नाटक बहुत सफल नहीं है, तथापि इसका उद्देश्य उत्तम है। इसमें नाटक के माध्यम से दार्शनिक विषयों का सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। कठिन दार्शनिक भावों को छोटे-छोटे पद्यों में सरल रूप में समन्वित किया गया है। इसमें वेदान्त के ब्रह्मवाद और वैष्णव-भक्ति का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। इसमें शान्त रस प्रधान है। अहंकार, दंभ और चार्वाक आदि की उक्तियों में हास्य की भी पुट है। इसके दार्शनिक पद्य प्रभावशाली और मार्मिक हैं। वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित कवि के प्रिय छन्द हैं।

ऋग्वेद के 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०' का अभिप्राय इन दो श्लोकों में प्राप्त होता है। इसमें जीवात्मा को कर्ता, कर्मफल भोक्ता आदि तथा पुरुष को साक्षी, कर्मफलदाता, असंग बताया गया है।

एकः पश्यति चेष्टितानि जगतामन्यस्तु मोहान्धधी-

रेकः कर्मफलानि वाञ्छति दवात्यन्यस्तु तान्यधिने ।

एकः कर्मसु शिष्यते तनुभूतां शास्तेव देवोऽपरो

निःसङ्गः पुरुषः क्रियासु स कथं कर्तेति संभाव्यते ॥ (प्र० ६-१६)

द्वौ तौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ

समानवृक्षं परिषस्वजाते ।

एकस्तयोः पिप्पलमस्ति पक्व-

मन्यस्त्वनश्नन्नभिचाकशीति ॥

(प्र० ६-२०)

न्याय और सांख्य के सिद्धान्तों का सुन्दर चित्रण देखिए :—

काचिद् विश्वविशेषकल्पनपरा न्यायैः परा तन्वती

वादं सच्छलजातिनिग्रहमयैर्जल्पं वितण्डामपि ।

अन्या तु प्रकृतेर्विभज्य पुरुषस्योदाहरन्तीं भिदां

तत्त्वानां गणनापरा महदहंकारादिसर्गकर्मः ॥ (प्र० ६-२१)

नाटक का निष्कर्ष निम्नलिखित श्लोक में प्राप्त होता है कि पुरुष मोहान्धकार के नष्ट हो जाने पर विश्वात्मक विष्णु-रूप को प्राप्त होता है।

मोहान्धकारमवधूय विकल्पनिद्रा-

मुन्मथ्य कोऽप्यजनि बोधतुषाररश्मिः ।

श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन

विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एषः ॥ (प्र० ६-३०)

दम्भ ने पाखण्ड का भंडाफोड़ करते हुए तथाकथित साधुओं पर छींटाकसी की है कि रात्रि में वेश्यागमन करते हैं और दिन में महात्मा तथा सन्त बनते हैं।

वेश्यावेश्मसु सीधुगन्धिललनावक्त्रासवामोदितै-

नीत्वा निर्भरमन्मथोत्सवरसैरुन्निद्रचन्द्राः क्षपाः ।

सर्वज्ञा इति दीक्षिता इति चिरात् प्राप्ताग्निहोत्रा इति

ब्रह्मज्ञा इति तापसा इति दिवा धूर्तैर्जगद् वञ्च्यते ॥ (प्र० २-१,

(च) जयदेव

जीवनवृत्त और कृतित्व—जयदेव का एक नाटक 'प्रसन्नराघव' प्राप्त होता है। इन्होंने प्रसन्नराघव की भूमिका में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। ये विदर्भ प्रान्त के 'कुण्डिन' नगर के निवासी थे। इनकी माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम महादेव था। इन्होंने अपने आपको 'कवीन्द्र', 'वाणी का विलास' और 'असमरसनिष्यन्दमधुरः' कहा है। इनका 'चन्द्रालोक' नामक एक प्रसिद्ध अलंकार-ग्रन्थ भी है। ये प्रसिद्ध 'गीतगोविन्द' काव्य के रचयिता बंगीय जयदेव से सर्वथा भिन्न हैं।

विलासो यद् वाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः

कुरङ्गाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति ।

कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-

रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः ॥ (प्रसन्न० १-१४)

समय—इनका समय १२०० ई० के लगभग माना जाता है।

संक्षिप्त कथा—प्रसन्नराघव में ७ अंकों में रामायण की कथा वर्णित है। इसमें सीता-स्वयंवर से लेकर रावण-वध के बाद राम के अयोध्या लौटने और राज्याभिषेक का वर्णन है। कवि ने मूलकथा में कुछ परिवर्तन भी किए हैं।

नाट्यकला और शैली—जयदेव का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे प्रसाद और माधुर्य के साथ ओज-गुण-युक्त पद्यों की रचना में भी निपुण हैं। उनके काव्य-सौन्दर्य के आधार पर उन्हें 'पीयूषवर्ष' उपाधि दी गई है। इसमें

नाट्य-सौन्दर्य की अपेक्षा काव्य-सौन्दर्य अधिक है। पाँचवें अंक में समुद्र, गंगा, यमुना, सरयू आदि का संवाद रोचक है। इसमें रामकथा के आधार पर कवित्व और करुण रस का सुन्दर समन्वय है। वसन्ततिलका उनका अतिप्रिय छन्द है। अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी और स्रग्धरा के भी सुन्दर प्रयोग हैं। उनकी कविता से प्रभावित होकर तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' में कई श्लोकों का भावानुवाद दिया है।

सभी सुन्दर सुभाषित सुनना चाहते हैं। ग्राम को जल चाहिए। सुन्दर भाषा में परकाव्यरसिकता का सुन्दर चित्रण देखिए :—

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः

परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।

निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः

कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ॥ (प्र० १-१६)

युद्ध के लिए उठाई हुई रावण की तलवार के वर्णन में काव्य-सौन्दर्य देखिए :—

भिन्नप्रभिन्नसुरकुञ्जरकुम्भमुक्तै-

मुक्ताफलैर्विचलितैः कलिताधिवासः ।

अद्यैव खेचरनिशाचरलोचनाना-

मुन्मीलयन्मुदमुदञ्चति चन्द्रहासः ॥ (प्रसन्न० ७-२५)

रावण द्वारा सीताहरण के वर्णन में करुण रस और प्रसाद का समन्वय देखिए :—

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर

हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षते माम् ।

इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-

मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥ (प्रसन्न० ५-४५)

६. (भू) अन्य नाटककार

उक्त नाटककारों के अतिरिक्त संस्कृत में रूपक के विविध भेदों पर नाटकों की रचना करने वालों की एक बृहत् परम्परा है। इनमें से कुछ नाटककारों के

नाममात्र ही ज्ञात हैं। कुछ के नाटक लुप्तप्राय हैं, अज्ञात हैं या अप्रकाशित हैं। इनमें से कुछ सुप्रचलित हैं; कुछ अप्रचलित और कुछ उद्धरणों आदि में निर्दिष्ट हैं। कुछ नाटककारों ने अनेक नाटक लिखे हैं। उनके नाम के आगे प्रमुख नाटकों का निर्देश है और नीचे सारणी में ग्रन्था-संख्या दे दी गई है। बहुत से नाटककारों का समय अनिर्णीत है, अतः आनुमानिक समय ही दिया गया है। कहीं-कहीं समय-निर्धारण में इतना मतभेद है कि सैकड़ों वर्षों का अन्तर है। सारणी में निर्दिष्ट समय संबद्ध नाटक का रचनाकाल समझना चाहिए।

सारणी में निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग किया गया है :—(१) 'विशेष' शीर्षक में वर्ण्य-विषय या कथानक जिससे संबद्ध है, उसका नामनिर्देश है। नाटक के अंकों की संख्या के लिए केवल अंक (गिनती) दिए गए हैं। अंक=अंक-संख्या। (२) 'समय' शीर्षक में स०=लगभग; पू०=पूर्वार्ध; उ०=उत्तरार्ध; सं०=सन्धि-काल; ई०=ईसवीय सन्; श०=शताब्दी। (३) 'विशेष' शीर्षक में रूपक के १० भेदों या उपरूपकों में से कौन-सा भेद है, इसका भी आवश्यक स्थानों पर निर्देश है। (४) 'समय' शीर्षक में जिनका समय अज्ञात या अनिर्णीत है, उनके आगे × चिह्न लगाया गया है।

(क) सामान्य नाटककार

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
ईसा पूर्व			
१ वररुचि	उभयाभिसारिका	४ ^{थे} श० ई० पू०	माण
प्रथम शता० ई०			
२ ईश्वरदत्त	धूर्तवित्संवाद	१ ^म शता०	माण
३ बोधायन	भगवदज्जुक	"	प्रहसन
४ (अज्ञात)	वीणावासवदत्तम्	"	उदयन-वासवदत्ता, अ० ४
५ (अज्ञात)	दामक	"	प्रहसन, कर्णकथा
चतुर्थ शता० ई०			
६ (अज्ञात स्त्री कवि)	कौमुदीमहोत्सव	३४० ई०	चन्द्रगुप्त द्वितीय, ५ अ०

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
७वीं शता० ई०			
७ महेन्द्रविक्रमवर्मा	मत्तविलास	६१० ई०	प्रहसन, कांची-वर्णन
८ चन्द्र (चन्द्रक)	लोकानन्द	६५० ई० ल०	बौद्धनाटक
९ श्यामिलक	पादताडितक	७वीं पू०	माण, ब्राह्मण- वेश्या-कथा
१० शक्तिभद्र	आश्चर्यचूडामणि, उन्मादवासवदत्त	७०० ई० ,,	रामकथा, १९ अंक वासवदत्ता-कथा
८वीं शता० ई०			
११ यशोवर्मा	रामाभ्युदय	७३३ ई० ल०	राम-कथा, ६ अंक
१२ अनंगहर्ष (मात्र- राज, मात्राराज)	तापस-वत्सराज	८०० ई० ल०	उदयन-वासव- दत्ता, ६
१३ मायुराज	उदात्तराघव	८०० ,, ,,	रामकथा
१४ कुलशेखरवर्मन्	सुमद्राघनञ्जय, तपतीसंवरण	८०० ,, ,,	सुमद्राहरण, ५ संवरण-तपती-कथा, ६ अंक
९वीं शता० ई०			
१५ हनुमान्	महानाटक	८५० ई० ल०	रामकथा, अंक ९
१६ दामोदर मिश्र	हनुमन्नाटक	८५० ई०	रामकथा, अंक १४
१७ शिवस्वामी	(स्फुट पद्य प्राप्य)	८५० ई०	
१८ भीमट	स्वप्नदशानन, प्रतिज्ञा-चाणक्य, ५	९०० ई०	
१९ क्षेमीश्वर	चण्डकौशिक, नैषघानन्द	९०० ई० ,,	हरिश्चन्द्र कथा, ५ अंक नलकथा, ७ अंक
१०वीं शता० ई०			
२० (अज्ञात)	तरंगदत्त	१०वीं श०	घनिक द्वारा उद्धृत
२१ (अज्ञात)	पुष्पदूषितक	,,	,,

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
२२ (अज्ञात)	पाण्डवानन्द	१०वीं श०	
२३ (अज्ञात)	चलितराम	"	
११वीं शता० ई०			
२४ क्षेमेन्द्र	चित्रभारत,	१०५० ई०	महाभारत-कथा
	कनकजानकी	"	रामकथा
२५ बिल्हण	कर्णसुन्दरी	१०८० ई०	कर्णाटकुमारी, नाटिका, ४ अंक
१२वीं शता० ई०			
२६ शंखधर कविराज	लटकमेलक	१२वीं पू०	प्रहसन
२७ यशश्चन्द्र	मुद्रितकुमुदचन्द्र	"	कुमुदचन्द्र-पराजय
२८ कंचनाचार्य	घनञ्जयविजय	"	अर्जुन-विजय-कथा
२९ रामचन्द्र	नलविलास, निर्मयमीम, सत्य- हरिश्चन्द्र, कौमुदी- मित्रानन्द आदि	"	नल-कथा, ७
३० विग्रहराजदेव	हरकेलि-नाटक	११५३ ई०	शिव-अर्जुन-युद्ध
३१ सोमदेव	ललित-विग्रहराज	१२वीं उ०	
३२ वत्सराज	कर्पूरचरित, किरा- तार्जुनीय, हास्य- चूडामणि, रुक्मिणी- हरण, त्रिपुरदाह, समुद्र-मन्थन	१२वीं उ०	माण, व्यायोग, प्रहसन, ईहामृग, डिम, समवकार
३३ सुमट	दूताङ्गद	१२वीं उ०	छायानाटक, अंगद- कथा
१३वीं शता० ई०			
३४ मदन	पारिजात-मंजरी	१३वीं पू०	अर्जुनवर्मा-प्रणय- कथा
३५ जयसिंह सूरि	हम्मीर-मदमर्दन	१२३० ई०	हम्मीर-मर्दन, ५ अंक

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
३६ रुद्रदेव (राजा)	उषर्गेदिय, ययाति-चरित	१३वीं उ०	उषा-अनिरुद्ध ययाति-शर्मिष्ठा
३७ प्रह्लादन	पार्थ-पराक्रम	१३०० ल०	व्यायोग, अर्जुनकथा
३८ मोक्षादित्य	भीम-विक्रम	"	भीमकथा, व्यायोग
३९ राममद्र मुनि	प्रबुद्धरौहिणेय	"	रौहिणेय-कथा, ६ अंक
४० रविवर्मा	प्रद्युम्नाभ्युदय	"	प्रद्युम्न-प्रभावती, ५ अंक
४१ विद्यानाथ	प्रतापशुद्रियकल्याण	"	प्रतापशुद्र-कथा
४२ यशःपाल १४वीं शता० ई०	मोहपराजय	१३वीं उ०	रूपकात्मक नाटक
४३ नरसिंह	कादम्बरी-कथा	१३५० ई०	कादम्बरी-कथा
४४ विश्वनाथ	सौगन्धिकाहरण	१४वीं पू०	व्यायोग, महाभारत कथा
४५ ज्योतिरीश्वर	धूर्तसमागम	"	प्रहसन
४६ भास्कर	उन्मत्तराघव	१३५० ई०	रामकथा, एकांकी
४७ वेदान्तदेशिक (या वैकटनाथ)	संकल्प-सूर्योदय	१४वीं पू०	रूपकात्मक, १० अंक
४८ विरूपाक्ष	उन्मत्तराघव, नारायण-विलास	१४वीं उ०	रामकथा
४९ मणिक	भैरवानन्द	"	भैरव-मदनवती- कथा
५० उद्दण्ड (उद्दण्डी)	मल्लिकामास्त	"	प्रकरण, १० अंक
५१ काशीपति कविराज १५वीं शता० ई०	मुकुन्दानन्द	"	भाण
५२ वामनभट्ट बाण	पार्वती-परिणय, कनकलेखा-कल्याण, शृङ्गार-भूषण	१५वीं पू०	नाटक, ५ अंक नाटिका, ४ अंक भाण

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
५३ व्यास रामदेव	रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय, सुभद्रा-परिणय	१५वीं पू०	रामायण-कथा, छायानाटक, महा- भारत-कथा
५४ गंगाधर	गंगादास-प्रताप- विलास	१४५० ई०	गंगादास-कथा
५५ हरिहर	भर्तृहरिनिर्वेद	१५वीं पू०	भर्तृहरि-वैराग्य, ५ अंक
५६ जीवराम याज्ञिक	मुरारि-विजय	१४८५ ई०	भागवत-कथा
५७ रूपगोस्वामी	विदग्ध-माधव, ललितमाधव, दानकेलि-कौमुदी	१५०० ई०	नाटक, ७ अंक कृष्णकथा, प्रकरण, १० अंक, कृष्ण-कथा भाण, कृष्ण-कथा
५८ गोकुलनाथ	मुदितमदालसा, अमृतोदय	१५०० ई० ल०	नाटक, ७ अंक रूपकात्मक
१६वीं शता० ई०			
५९ बाल कवि	रन्तुकेतूदय, रविवर्मविलास	१५३७ ई० ल०	केरलराज रविवर्मा " "
६० लक्ष्मण माणिक्यदेव	कुवलययाश्वचरित, विख्यातविजय	१६वीं उ०	मदालसा-प्रणय नकुल-कौरव-युद्ध
६१ विलिनाथ	मदनमंजरी-महोत्सव	"	चन्द्रवर्मा-पराजय
६२ श्रीनिवास दीक्षित	भैमीपरिणय, भावनापुरुषोत्तम	१५७० ई०	नल-कथा रूपकात्मक
६३ शेषकृष्ण	कंसवध	१६०० ई०	कंसवध
६४ कवि कर्णपूर	चैतन्यचन्द्रोदय	१६वीं उ०	प्रतीकात्मक, १० अंक
६५ जगदीश्वर भट्टा- चार्य	हास्यार्णव	"	प्रहसन, २ अंक

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
१७वीं शता० ई०			
६६ यज्ञनारायण दीक्षित	रघुनाथ-विलास	१६३० ई०	तंजौर राजा रघुनाथ
६७ जगज्ज्योतिर्मल्ल	हरगौरी-विवाह	१७वीं पू०	संगीतप्रधान
६८ गुरुराम	मदन-गोपाल-विलास, सुमद्रा-धनञ्जय, रत्नेश्वरप्रसादन	१६३० ई०	माण नाटक, ५ अंक नाटक, ५ अंक
६९ राजचूडामणि दीक्षित	आनन्दराघव, कमलिनीकलहंस, शृंगारसर्वस्व-माण	१७वीं पू०	
७० नीलकण्ठ दीक्षित	नलचरित	१६५० ई०	नलकथा, ६ अंक
७१ वेंकटाध्वरी	प्रद्युम्नानन्द	१६५० ई० ल०	प्रद्युम्न-कथा, ६ अंक
७२ रुद्रदास	चन्द्रलेखा	"	सट्टक
७३ महादेव	अद्भुत-दर्पण	"	रामकथा, १० अंक
७४ वेद कवि (या आनन्दराय मखिन्)	विद्या-परिणय, जीवानन्दन	१७वीं उ०	रूपकात्मक, ७ अ० "
७५ रामभद्र दीक्षित	जानकी-परिणय, शृंगार-तिलक	१७०० ई०	रामकथा (अय्यमाण)
७६ नल्ल कवि (भूमिनाथ)	सुमद्रा-परिणय, शृंगारसर्वस्व-माण चित्तवृत्तिकल्याण, जीवन्मुक्ति- कल्याण	"	माण रूपकात्मक
७७ कवितार्किक	कौतुकरत्नाकर	१७वीं श०	प्रहसन
७८ सामराज दीक्षित	धूर्तनर्तक, श्रीदामचरित	"	प्रहसन श्रीदामनूचरित
७९ सठकोप	वसन्तिकापरिणय	"	नरसिंह-प्रेमकथा

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
८० कुमारताताचार्य	पारिजात-नाटक	१७वीं श०	पारिजातहरण, ५ अंक
८१ रामानुज	वसुलक्ष्मीकल्याण	"	रंगनाथ-वसुलक्ष्मी
१८वीं शता० ई०			
८२ भूदेव शुक्ल	धर्मविजय	१७३७ ई०	रूपकात्मक, ५ अंक
८३ विश्वेश्वर	रुक्मिणी-परिणय, नवनाटिका, शृंगारमंजरी	१८वीं पू०	नाटक नाटिका सट्टक
८४ शंकर दीक्षित	प्रद्युम्न-विजय	१८वीं पू०	
८५ जगन्नाथ	रतिमन्थन, वसु- मती-परिणय	१८वीं पू०	
८६ जगन्नाथ	सौभाग्य-महोदय	"	ग्रामभूषण पात्र हैं
८७ मलारी आराध्य	शिर्वालिंगसूर्योदय	"	शैव धर्म
८८ देवराज	बालमार्तण्ड-विजय	१८वीं उ०	
८९ वरदाचार्य	वसन्ततिलक	"	(अम्म भाण),
९० घनश्याम	मदन-संजीवन, नवग्रहचरित, आनन्द-सुन्दरी, डमरुक	"	भाण सट्टक सट्टक, प्रहसन
९१ रामवर्मन्	रुक्मिणी-परिणय, शृंगार-सुधाकर	"	कृष्ण-कथा
९२ विश्वनाथ	मृगांकलेखनाटिका	"	नाटिका
९३ कृष्णदत्त	कुवलयारवीय	१८वीं श०	मदालसा-प्रणय, ७ अंक
	पुरंजन-कथा		भागवत कथा, ५ अंक
९४ वेंकट सुब्रह्मण्य	वसुलक्ष्मी-कल्याण	"	
९५ पेरु सूरि	वसुमंगल	"	प्रणय-कथा

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
६६ रामदेव	विद्यामोदतरंगिणी	१८वीं श०	रूपकात्मक
६७ विठ्ठल	आदिलवंश-कथा	"	छायानाटक, आदिल-वंश
६८ मथुरादास	वृषभानुजा	अनिर्णीत	नाटिका
६९ गोपीनाथ चक्रवर्ती	कौतुक-सर्वस्व	"	प्रहसन
१०० नीलकण्ठ	कल्याण-सौगंधिक	"	
१०१ नरसिंह	शिवनारायणमंज-महोदय	"	आध्यात्मिक
१०२ लोकनाथ भट्ट	कृष्णाम्युदय	"	
१०३ कृष्णावधूत	सर्वविनोद	"	
	घटिकाशत		
१०४ कृष्ण मिश्र	वीर-विजय	"	
१०५ शंकर	शारदा-तिलक	"	
१०६ रामकृष्ण	गोपालकेलि-क्रीडा	"	
१०७ माधव	सुमद्राहरण	"	
१९वीं शता० ई०			
१०८ राम	मन्मथोन्मथन	१८२०	डिभ
१०९ कोटिलिंगपुर-राजकुमार	रससदन-भाण	१८५०	भाण
११० पद्मनाभ	त्रिपुरविजय	१९वीं पू०	व्यायोग, शिवकथा
१११ बल्लिशाय कवि	ययातितरुणनन्दनम्, रोशनानन्दन	"	ययातिकथा
		"	अनिरुद्ध-रोशना, ५ अंक
११२ विरार राघव	रामराज्याभिषेक, वालिपरिणय	"	रामकथा, ७ अंक
११३ रामचन्द्र	शृंगारसुधारण्व	"	वालि-कथा
११४ शंकरलाल, महामहोपाध्याय	सावित्रीचरित, ध्रुवाम्युदय, पार्वती-परिणय आदि	१९वीं उ०	भाण सावित्री-कथा ध्रुवकथा पार्वती-विवाह

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
११५ ईचम्बदी श्रीनिवासाचारी	शृंगारतरंगिणी, उषा-परिणय	१६वीं उ०	— उषा-विवाह
११६ सोंठी भद्रादि रामशास्त्री	मुक्तावल	"	—
११७ वैद्यनाथ वाच- स्पति भट्टाचार्य	चैत्रयज्ञ	"	दक्षयज्ञ, ५ अंक
११८ पेरी काशीनाथ शास्त्री	चांचालिकारक्षणम् याभिनीपूर्णतिलक	"	
११९ श्रीनिवासाचारी	ध्रुवचरित, क्षीराब्धिशयनम्	"	ध्रुव-कथा —
१२० पंचानन	अमरमंगल	"	अमरसिंह-चरित-
१२१ मूलशंकर माणिक- लाल याज्ञिक	छत्रपति-साम्राज्य, प्रताप-विजय,	"	शिवाजी-चरित, १० अंक महाराणा प्रताप, ६ अंक
	संयोगिता-स्वयंवर	"	पृथ्वीराज चौहान
१२२ अम्बिकादत्त व्यास	सामवतम्	"	सामवती-सुमेधा- विवाह
१२३ आर० कृष्णमा- चारी	वासन्तिकस्वप्न	१८६२ ई०	'मिड समर नाइट ड्रीम' का अनुवाद
१२४ चोक्कनाथ	सेवन्तिकापरिणय	अनिर्णीत	अंक ५
१२५ धर्मसूरि	नरकासुर-विजय	"	व्यायोग
२०वीं शता० ई० ^१			
१२६ हरिदास सिद्धान्त वागीश	हंगीय-प्रताप, मेवाड-प्रताप, आदि	२०वीं पू०	शिवाजी-चरित, १० अंक हंगीय-चरित, ८ अं० महाराणा प्रताप
१२७ लक्ष्मण सूरि	दिल्ली-साम्राज्य	१९१२ ई०	—

१. २०वीं शताब्दी के नाटककारों के विवरण के लिए देखो—श्रीमती डा०
उषा सत्यव्रत-कृत Sanskrit Dramas of the Twentieth Century
भाग १, १९७१

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
१२८ मथुराप्रसाद दीक्षित, महा-महोपाध्याय	वीरप्रताप, शंकर-विजय, पृथ्वीराज, गांधी-विजय, भारत-विजय, भक्त-सुदर्शन	२०वीं पू०	राणा प्रताप, दार्शनिक, ऐतिहासिक दुःखान्त, गांधी-चरित, भारत-स्वाधीनता, ७ अंक दुर्गा-महत्त्व
१२९ एस० एन० ताड़पत्रीकर	विश्वमोहन	१९५१ ई०	'गोएथेज पोस्ट पर आश्रित
१३० नीपार्जि भीम भट्ट	काश्मीरसंघान-समुद्यम	१९५४ ई०	कश्मीर-समस्या, एकांकी
१३१ वाई० महर्लिंग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	१९५६ ई०	रूपकात्मक, कलि-कथा
१३२ सदाशिव दीक्षित	सरस्वती, पाणिनि, कुसंगति	२०वीं उ०	भारतीय संस्कृति, एकांकी
१३३ डा० यतीन्द्र विमल चौधरी	निष्किंचन-यशोधर, महिमामय-भारत, भारत-हृदयारविन्द, भारत-भास्कर, १२		अंक ७, भारत-वर्णन, , ,
१३४ जीवन लाल पारीख	छायाशाकुन्तल	"	संक्षिप्त शाकुन्तल, १ अंक
१३५ पिलाई	भीम-पराक्रम	"	भीम-चरित
१३६ के० एस० राम-स्वामी	रति-विजय	"	—
१३७ वेलणकर	यां चिन्तयामि, तमसो मा ज्योतिर्गमय, प्राणाहुती	"	
१३८ डा० कपिलदेव द्विवेदी	परिवर्तनम्	"	सामाजिक-परिवर्तन

(ख) रूपकात्मक (Allegorical) नाटक

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
१ अश्वघोष	शारिपुत्र-प्रकरण	१म श० ई०	पात्र—बुद्धि, कीर्ति, धृति
२ कृष्ण मिश्र	प्रबोध-चन्द्रोदय	११०० ई०	पात्र—मति, दंभ, श्रद्धा आदि
३ यशःदेव	मोहपराजय	१३वीं उ०	पात्र—विवेक, शान्ति, कृपा आदि
४ वेदान्तदेशिक	संकल्प-सूर्योदय	१४वीं पू०	१० अंक, शान्तरस
५ गोकुलनाथ	अमृतोदय	१५०० ई० ल०	पात्र—मीमांसा, श्रुति
६ श्रीनिवास दीक्षित	भावना-पुरुषोत्तम	१५७० ई०	—
७ कण्णूर (गोस्वामी परमानन्द)	चैतन्य-चन्द्रोदय	१६वीं उ०	—
८ वेद कवि (आनन्द-राय मखिन्)	विद्या-परिणय, जीवानन्दनम्	१७वीं उ०	विद्या-जीवात्मा, ७ अं०, जीवमोक्ष-वर्णन
९ नल्ल कवि (नल्लाध्वरी)	चित्तवृत्तिकल्याण, जीवन्मुक्तिकल्याण	१७०० ई०	—
१० मूदेव शुक्ल	धर्म-विजय	१७३७ ई०	धर्ममहत्त्व, ५ अंक
११ रामदेव	विद्यामोदतरंगिणी	१८वीं श०	विद्या-महत्त्व
१२ वाई० महर्लिग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	१९५६ ई०	कलि-प्रारम्भ-चर्चा

(ग) नाटक की अन्य विधाएँ

छाया नाटक

सुमत्	दूतांगद	१२वीं उ०	अंगद-कथा
व्यास रामदेव	सुमद्रा-परिणय, रामाम्युदय, पाण्डवाम्युदय	१५वीं पू०	महाभारत-कथा, रामकथा, महाभारत-कथा

नाटककार	नाटक	समय	विशेष
विट्ठल	आदिल-वंशकथा	१८वीं श०	आदिल-वंश
शंकरलाल	सावित्रीचरित	१८८२ ई०	
रेडियो रूपक			
वेलणकर	प्राणमहुती (हुतात्मा दधीचि, रानी दुर्गावती)	१९६३ दिल्ली से प्रसारित १९६४	“ ”
अनूदित रूपक			
आर० कृष्णमाचारी	वासन्तिक-स्वप्न	१८९२ ई०	मिड्समर नाइट्स ड्रीम का अनुवाद
अनन्त त्रिपाठी शर्मा	द्वादशी रात्रि, यथा ते रोचते	१९६५ ई०	ट्वेल्थ नाइट ,, एज्यूलाइकइट ,,
अनेकार्थक रूपक			
कृष्णानन्द वाचस्पति	अन्तर्व्याकरण- नाट्य-परिशिष्ट	१८९४ ई०	व्याकरण और दर्शनपरक दो अर्थ वाले पद्य

७. गद्य-काव्य

संस्कृत-गद्य की उत्पत्ति और विकास

गद्य का स्वरूप—भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है—१. दृश्य काव्य २. श्रव्य काव्य ।^१ दृश्य (रूपक) काव्य का वर्णन पहले किया जा चुका है । श्रव्य-काव्य को पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है—पद्य, गद्य और चम्पू ।^२ पद्यात्मक महाकाव्यों का वर्णन किया जा चुका है । गद्य शब्द गद् घातु (गद व्यक्तायां वाचि) से यत् (य) प्रत्यय करने

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् । सा० दर्पण ६-१ ।

२. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम् । काव्यादर्श १-११ ।

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते । सा० दर्पण ६-३३६ ।

पर बनता है। यह लय-प्रधान पद्य-बन्ध से भिन्न है। गद्य-काव्य भाषा का वह स्वरूप है, जिसमें पद्य-बन्ध का परित्याग करते हुए भाव, भाषा एवं रस का समुचित परिपाक होता है। इसलिए दण्डी ने काव्यादर्श (१-२३) में गद्य का लक्षण दिया है—अपादः पदसन्तानो गद्यम्, अर्थात् पद-बन्ध-रहित वाक्य-विन्यास को गद्य कहते हैं।

गद्य-काव्य की उत्पत्ति—गद्य-काव्यों की उत्पत्ति के विषय में जो विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—(१) गद्य-काव्यों की उत्पत्ति पद्य-काव्यों से लोककथाओं के माध्यम से हुई। (२) ग्रीक-गद्य-रचनाओं से भारतीय गद्य-काव्यों की उत्पत्ति हुई। (३) गद्य-काव्यों की उत्पत्ति पद्य-काव्यों के समानान्तर स्वाभाविक क्रमिक विकास से हुई। प्रथम मत का अभिप्राय है कि संस्कृत के गद्य-काव्य मूलतः पद्य-काव्यों से उत्पन्न हुए हैं। पद्य-काव्यों के प्रभाव के कारण ही उनमें आलंकारिकता, मनोभावों की अभिव्यक्ति, शारीरिक, नैतिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की प्रचुरता का सामंजस्य प्राप्त होता है। पद्य-काव्यों के तुल्य गद्य-काव्यों में भी कृत्रिमता, पाण्डित्य-प्रदर्शन और रसामिव्यक्ति पर बल है। जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है, वह बृहत्कथा आदि लोक-कथा ग्रन्थों से लिया गया है। दूसरा मत पीटर्सन आदि ने प्रस्तुत किया है कि भारतीय गद्य-काव्य प्रत्यक्षतः यूनानी गद्य-काव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ था।^१ कुछ भारतीय विद्वान् भी यूनानी गद्य के अनुकरण पर संस्कृत गद्य-काव्य के रचना-सम्बन्धी पाश्चात्य विचारकों के मत से सर्वथा सहमत प्रतीत होते हैं।^२ प्रो० सिल्वी लेवी तो यूनानी गद्य की तुलना के योग्य ही संस्कृत-गद्य को नहीं मानते, क्योंकि उनके मत से ये दोनों गद्य-काव्य रचना और भाव की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। संस्कृत गद्य-काव्य में कथा या साहसिकता बहुत कम उपलब्ध होती है। उसमें मुख्य ध्यान काव्य-शास्त्रीय आलंकारिकता, सूक्ष्म प्रकृति-वर्णन तथा नैतिक, मानसिक और शारीरिक गुणों के चित्रण पर दिया जाता है। इसके विपरीत ग्रीक और लैटिन गद्य-काव्यों में कथा ही सब कुछ होती है। पाठक एक से दूसरे साहसिकता-सम्बन्धी घटना-चक्र में क्रमशः डूबता चला जाता है और वे घटना-क्रम क्रमशः अधिक रोचक तथा महत्वपूर्ण

१. पीटर्सन, कादम्बरी की भूमिका, द्वितीय संस्करण १८८६, पृष्ठ १०१-१०४।

२. हेलेनिज्म इन एंशिण्ट इंडिया—जी० बनर्जी।

होते चले जाते हैं। इस गद्य में शैली-सौन्दर्य तथा प्राकृतिक दृश्यों आदि की यथासंभव उपेक्षा ही दिखाई पड़ती है।^१ प्रायः सभी विद्वानों ने संस्कृत गद्य-काव्यों पर यूनानी गद्य-रचनाओं के प्रभाव का खण्डन किया है। प्रो० लाकोटे (Lacote) ने तो यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यूनानी गद्य-काव्यों पर भारतीय गद्य-काव्यों का प्रभाव पड़ा है और यूनानी गद्य-काव्य ही भारतीय गद्य-काव्यों का ऋणी है।^२ भाषा, शैली, कथा-वस्तु, कथानक-संघटन, अलंकार-योजना तथा रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से यूनानी और भारतीय गद्य-काव्य पूर्णतया एक दूसरे से पृथक् हैं, अतः भारतीय गद्य-काव्यों पर यूनानी प्रभाव की चर्चा सर्वथा असंगत है।

प्रथम मत के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि संस्कृत गद्य-काव्यों की कोई धारा नहीं थी और परकाल में पद्य-काव्य की एक नवीन शाखा (नई कलम, New graft) के रूप में गद्य-काव्य का विकास हुआ। परन्तु तात्त्विक विवेचन से यह मत भी असंगत एवं निराधार प्रतीत होता है। वास्तविकता यह है कि वैदिक काल से ही जिस प्रकार वैदिक संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा समानान्तर अविच्छिन्न रूप से विकसित होती रही और आज भी अपने विभिन्न स्वतन्त्र रूपों में विद्यमान है, उसी प्रकार पद्य-शैली के साथ ही गद्य-शैली समानान्तर चलती रही। पद्य-शैली में जब और जिस रूप में विकास और परिवर्तन हुए तदनु रूप ही गद्य-शैली में भी समानान्तर विकास और परिवर्तन परिलक्षित हुए। विभिन्न संस्कृतियों और भावों का यथासमय दोनों ही धाराओं पर समान रूप से प्रभाव पड़ा। लेखन-सामग्री के अभाव के कारण स्मरण-शक्ति को बोझिल न बनाने के लिए एक ओर धार्मिक कृत्यों के लिए पद्य-शैली अपनाई गई और दूसरी ओर शास्त्रीय, दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों के लिए गद्य-शैली अपनाई गई। गद्य-शैली में भी सूत्र-शैली को प्रमुखता दी गई। लेखन-सामग्री की सुविधा के साथ ही दोनों शैलियों में कलात्मक विस्तार और विवरण-प्रधानता आई। एक ओर वाल्मीकि के समय से पद्य-शैली ने लौकिक-काव्यात्मकता और अलंकार-प्रियता का रूप लिया तो दूसरी ओर गद्य-शैली ने अपनी नीरसता एवं अमनोज्ञता को

१. हिस्ट्री आफ़ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—कृष्णमाचारी, पृष्ठ ४४०।

२. इसके विस्तृत विवेचन के लिए देखो—J. H. Gray—कृत वासवदत्ता की भूमिका, पृष्ठ ३५।

छोड़कर कथा और आख्यायिकाओं को अपनाकर सरसता, अलंकार-प्रियता और मनोज्ञता का आधान किया। लोकप्रियता के लिए पद्य-शैली ने राम और कृष्ण के उदात्त चरित का आश्रय लिया तो गद्य-शैली ने अपनी लोकप्रियता के लिए उदयन, नरवाहनदत्त, वासवदत्ता, यक्ष एवं विद्याधरों आदि से संबद्ध कथानकों का आश्रय लिया। कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष आदि ने ज्यों-ज्यों पद्य-धारा को क्रमशः सातिशय अलंकार-बहुल और कृत्रिम बनाया, तदनु रूप ही हरिषेण, दण्डी, सुबन्धु और वाण आदि ने भी गद्य-धारा को समास-प्रधान एवं अलंकार-बहुल और कृत्रिम बनाया। विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों एवं धर्मों के प्रादुर्भाव के कारण दोनों ही धाराओं में समान रूप से विभिन्न परिष्कार आदि गुणों तथा कृत्रिमता आदि दोषों को समावेश हुआ। इस प्रकार दोनों ही धाराओं का स्वतन्त्र रूप से अविच्छिन्न विकास होता गया है। यदि वैदिक-हिमगिरि से निकलने वाली पद्य-धारा गंगा है तो गद्य-धारा यमुना है और सहृदय-हृदय-सरस्वती दोनों का संगम-स्थल है।

गद्य-काव्य का विकास

वैदिक पद्य—गद्य का प्रारम्भिक रूप हमें वैदिक संहिताओं में मिलता है। पद्य और गद्य के लिए प्राचीन पारिभाषिक शब्द क्रमशः ऋक् (ऋक्) और यजुष् (यजुः) थे। ऋक् की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जिस रचना-पद्धति में अर्थ के अनुसार पाद (चरण) की व्यवस्था होती है, उसे 'ऋक्' कहते हैं।^१ अर्थात् पद्यात्मक बन्ध ऋक् है। अतः पद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह (संहिता) ऋग्वेद-संहिता है। जब ऋग्वेद की ऋचाएँ संगीत पद्धति पर गेय होती हैं, तब वे 'साम' कही जाती हैं।^२ इन दोनों के विपरीत छन्द-विधान से रहित वैदिक मन्त्रों को यजुष् कहा जाता है।^३ 'अनियताक्षरावसानो यजुः' और 'गद्यात्मको यजुः' परिभाषाओं के अनुसार यजुष् में अक्षरों का अवसान-सम्बन्धी कोई नियम नहीं होता है। दूसरे शब्दों में एक वाक्य या चरण में आने वाले शब्दों की सीमा-सम्बन्धी बन्धन से मुक्त रचना-पद्धति को यजुष् कहा जाता है। इसी का दूसरा

१. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (पूर्वमीमांसा २-१-३५)।

२. गीतिषु सामाख्या (पू० मी० २-१-३६)।

३. शेषे यजुःशब्दः (पू० मी० २-१-३७)।

नाम 'गद्य' है। 'इज्यतेऽनेति यजुः' व्युत्पत्ति के अनुसार यजुष् नामक वैदिक गद्य का उपयोग वेद-मन्त्रों की विनियोगादि-परक व्याख्याओं में प्राप्त होता है।

वैदिक गद्य का प्राचीनतम रूप हमें शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताओं में मिलता है। अथर्ववेद में भी गद्यांश प्रचुर मात्रा में मिलता है। तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रायः गद्यात्मक हैं। इनमें गद्यात्मक अंश के लिए विशेष उल्लेखनीय—शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय और गोपथ ब्राह्मण हैं। इनमें वैदिक मन्त्रों की विशद व्याख्या, यज्ञादि-परक विनियोग, प्राचीन आख्यान और कर्म-काण्ड-परक विधि वर्णित है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यकों और उपनिषदों में भी वैदिक गद्य प्राप्त होता है। वैदिक गद्य की मुख्य विशेषता यह है कि इनमें सरलता, स्वाभाविकता, प्रवाह-शीलता, रोचकता एवं संवादात्मकता है। इसमें सरल भावों को साधारण बोल-चाल की भाषा में व्यक्त किया गया है। सूत्र-गद्य के अतिरिक्त अन्य वैदिक गद्य में अथ, वै, ह, नु, वाव, खलु, इति आदि निपातों का प्रयोग वाक्यालंकार के लिए किया गया है। वैदिक गद्य लौकिक व्याकरण के नियमों से मुक्त है, अतः आर्ष प्रयोग पर्याप्त मिलते हैं। ऐसे प्रयोग क्रमशः न्यून होते गए हैं।

वैदिक साहित्य से संबद्ध प्रातिशाख्य-ग्रन्थ, चारों प्रकार के कल्प-ग्रन्थ—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र—तथा निरुक्त गद्यात्मक सूत्र-पद्धति में लिखे गए हैं।

१. शुक्ल यजुर्वेद—१. ११-३१; ८. ५३-६०; ११. ५८-६१; १३. ५३-५८; १४. ६-३१; १५. ४-१६; १६. १७-४६; १८. १-२६; २१. ३०-४७; २२. १६-३४; २४. पूरा अध्याय; २५. १-६; ३०. ५-२२; ३६ पूरा अध्याय।
२. तैत्तिरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताएँ अधिकांश गद्यात्मक हैं।
३. अथर्ववेद—कांड ४ सूक्त ३६; कांड ५ सूक्त ६, ६, १०, १६, २४; कांड ६ सू० ४६; कांड १५ और १६ पूरा; कांड १७ अधिकांश; कांड १६ सू० २१-२३; कांड २० सू० १२६-१३२।
४. आरण्यक—ऐतरेय, तैत्तिरीय विशेष रूप से द्रष्टव्य।
५. उपनिषद्—विशेष द्रष्टव्य—केन, प्रश्न (कुछ अंश), माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कोषीतिक, मैत्रायणी, मुक्तिक।

पौराणिक गद्य—पुराणों का अधिकांश भाग पद्यमय है। परन्तु महाभारत, विष्णुपुराण और भागवत पुराण आदि में यत्र-तत्र गद्य भी उपलब्ध होता है। इस पौराणिक गद्य को वैदिक और लौकिक गद्य के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। वैदिक गद्य के समान इसमें भी लघु-बन्धों का प्रयोग किया गया है, आर्ष प्रयोग मिलते हैं और भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भी मिलता है। दूसरी ओर इसमें लौकिक संस्कृत के ललित गद्य के समान प्रासादिकता, अलंकारिता और प्रौढता भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

शास्त्रीय गद्य—वैदिक सूत्र-ग्रन्थों की परम्परा में ही शास्त्रीय गद्य का विकास हुआ। यह गद्य गंभीर मनन, चिन्तन और विश्लेषण से संबद्ध था। भारतीय षड्दर्शन अर्थात् न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तथा मीमांसा-वेदान्त इसी पद्धति पर विकसित हुए। समस्त संस्कृत व्याकरण भी इसी सूत्र-शैली में विकसित हुआ। जिसका चरम उत्कर्ष पाणिनि की अष्टाध्यायी में देखने को मिलता है, जिसमें अर्ध-मात्रा-लाघव को भी पुत्र-जन्मोत्सव के बराबर माना गया है।^१

इन सूत्र-ग्रन्थों की दुर्बोधता को दूर करने के लिए विविध भाष्य-ग्रन्थों की रचना हुई। इन भाष्य-ग्रन्थों में यास्क-प्रणीत निरुक्त, जयन्त भट्ट-कृत न्यायमंजरी, शबर स्वामी-कृत मीमांसाभाष्य, शंकराचार्य-कृत शारीरक-भाष्य बहुत लोकप्रिय हुए। इन भाष्य-ग्रन्थों की सरलता और सरसता ही इनकी लोकप्रियता का कारण रहा।

भाषा की सरलता और प्रसाद गुण के कारण पतञ्जलि-कृत व्याकरण-महाभाष्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। पतञ्जलि की भाषा परकालीन भाष्यकारों के लिए आदर्श हो गई। व्याकरण जैसे नीरस विषय को सरस बना देना पतञ्जलि का ही चमत्कार था।

वैद्यक ग्रन्थों के कुछ अंश, अलंकार-शास्त्र और कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी शास्त्रीय गद्य के उदाहरण हैं।

१. स्वल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम् ।

अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

२. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ।

साहित्यिक गद्य

(१) आख्यायन-आख्यायिका—वैदिक काल से गद्य-साहित्य की जो परम्परा अविच्छिन्न रूप से चल रही थी, वह कात्यायन (३५० ई० पू०) के समय तक पर्याप्त समृद्ध हो चुकी थी। कात्यायन से पूर्व गद्य-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया गया था—(क) आख्यायन—काल्पनिक कथा, (ख) आख्यायिका—व्यक्ति-मूलक या ऐतिहासिक कथा। कात्यायन ने इन दोनों भेदों का उल्लेख किया है।^१ कात्यायन का ही दूसरा नाम वररुचि माना जाता है।^२ भोज (१००५-१०५४ ई०) ने अपने शृङ्गार-प्रकाश में वररुचि के एक आख्यायिका-ग्रन्थ 'चारुमती' से एक पद्य उद्धृत किया है। इसके विषय में अन्य विवरण अप्राप्य हैं।

(२) वासवदत्ता आदि—पाणिनि के सूत्र 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' (४-३-८७) पर कात्यायन ने 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' वार्तिक लिखा है। जिससे स्पष्ट है कि कात्यायन को अपने से पूर्ववर्ती अनेक आख्यायिका-ग्रन्थों का परिचय था। पतञ्जलि ने 'आख्यायिका' शब्द की व्याख्या करते हुए तीन आख्यायिका ग्रन्थों के नाम दिए हैं :—१. वासवदत्ता, २. सुमनोत्तरा, ३. भैमरथी है।^३ ये आख्यायिका-ग्रन्थ कात्यायन से भी पूर्ववर्ती हैं या केवल पतञ्जलि से ही, यह निर्णय करना संभव नहीं है। इतना स्पष्ट है कि कात्यायन और पतञ्जलि से पहले आख्यायिका-ग्रन्थ अपने प्रौढ़ रूप में आ चुके थे और सुप्रसिद्ध हो चुके थे।

(३) शूद्रक-कथा—जल्हण (११५० ई०)-कृत 'सूक्ति-मुक्तावली' में शूद्रक-कथा के लेखक के रूप में रामिल और सौमिल का उल्लेख है। यह दो लेखकों की संयुक्त कृति है, अतः इसे अर्धनारीश्वरोपम बताया गया है।^४ यह

१. वार्तिक—'आख्यायिकाभ्यो बहुलम्। (अष्टा० ४-२-६०)

२. संस्कृत-व्याकरण (लेखक-कृत) भूमिका पृष्ठ २५।

३. आख्यायिकाभ्यो बहुलं लुग् वक्तव्यः। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा। न च भवति, भैमरथी। महाभाष्य ४-३-८७।

४. तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिल-सौमिलौ।

काव्यं

ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥

सौमिल संभवतः वही महाकवि है, जिसका उल्लेख कालिदास ने 'मालविकाग्नि-मित्र' की प्रस्तावना में सौमिल्ल नाम से बहुत आदरपूर्वक किया है।

(४) बृहत्कथा—बाण ने हर्षचरित की भूमिका में महाकवि गुणाढ्य (७८ ई०) कृत बृहत्कथा का उल्लेख किया है और इसे आश्चर्यजनक रचना बताया है। परवर्ती कथा-साहित्य के लिए यह आकर-ग्रन्थ रहा है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि पूरा ग्रन्थ पद्य-बद्ध ही था या गद्य-बद्ध।

(५) तरङ्गवती आदि—आन्ध्रमृत्य राजाओं (२६ ई० पू० से १६५ ई०) के निरीक्षण में कुछ गद्य-रचनाएँ हुईं। इनमें श्रीपालित-कृत 'तरंगवती' और अज्ञात लेखकों द्वारा रचित 'मनोवती' और 'शातकर्णोहरण' आख्यायिका-ग्रन्थों के नाम प्राप्त होते हैं। धनपाल की 'तिलक-मंजरी' तथा अभिनन्द के 'रामचरित' में श्रीपालित-कृत 'तरंगवती' की प्रशंसा की गई है। भोज के भट्टारक-प्रकाश में 'मनोवती' और 'शातकर्णोहरण' की प्रशंसा मिलती है। दण्डी ने भी मनोवती का संकेत किया है। जलहण-कृत 'सूक्ति-मुक्तावली' में कुल-शेखर वर्मा-रचित 'आश्चर्यमंजरी' नामक आख्यायिका तथा शीला-भट्टारिका द्वारा पांचाली रीति में लिखित गद्य-कृति का उल्लेख मिलता है। बाण ने हर्षचरित की भूमिका में भट्टार हरिचन्द्र के गद्य को सर्वश्रेष्ठ माना है। कुछ विद्वान् इस गद्य-बन्ध का नाम 'मालती' मानते हैं। राजा भोज-कृत एक ग्रन्थ 'शूद्रक-कथा' का भी उल्लेख मिलता है। इसका दूसरा नाम 'पञ्चाशिका' भी है।

१. प्रथितयशसां भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य.....

(मालविका०)।

२. हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा। हर्ष० भूमिका श्लोक १७।

३. पुण्या पुनाति गङ्गेव गां तरङ्गवती कथा। तिलकमंजरी।

४. धवलप्रभवा रागं सा वितनोति मनोवती। अवन्तिमुन्दरीकथा।

५. दूरादपि सतां मध्ये लिखित्वाऽऽश्चर्यमञ्जरीम्।

कुलशेखरवर्माख्यश्चकाराश्चर्यमञ्जरीम् ॥

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।

शीलामट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

६. भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते। ह० भू० श्लोक १२

(६) गिरिनार का शिलालेख और समुद्रगुप्त-प्रशस्ति—महाक्षत्रप रुद्र-
दामन् (१५० ई०) के गिरिनार के शिलालेख के गद्य में लम्बे समासों और
अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है।^१ इसमें रुद्रदामन्
को 'स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त-शब्दसमयोदारालंकृत-गद्य-पद्य' के लेखन * में
निपुण बताया गया है। प्रयाग-स्तम्भ पर लिखित हरिषेण (३४५ ई० के
लगभग)-कृत समुद्रगुप्त-प्रशस्ति लगभग ३५ पंक्तियों में एक ही समस्त-वाक्य में
लिखी गई है। यह प्रशस्ति बाण की समास-बहुल शैली का पूर्व-रूप मानी जा
सकती है।

(७) दशकुमारचरित, वासवदत्ता, कादम्बरी आदि—संस्कृत-गद्य-काव्य
का निखरा हुआ रूप हमें दण्डी के दशकुमारचरित से मिलना प्रारम्भ होता है।
सुबन्धु-कृत वासवदत्ता अलंकृत एवं श्लेष-प्रधान शैली का परिचायक है। बाण-कृत
हर्षचरित और कादम्बरी गद्य-शैली के सर्वोत्कृष्ट रूप हैं।

(८) परवर्ती गद्य—परवर्ती गद्य-काव्यों में प्रमुख ये हैं—धनपाल (१०००
ई०)-कृत तिलकमंजरी, वादीभसिंह (१००० ई०)-कृत गद्यचिन्तामणि, वामन
भट्ट बाण (१५०० ई०)-कृत वेमभूपालचरित, अम्बिकादत्त व्यास-कृत 'शिवराज-
विजय, विश्वेश्वर पांडेय-कृत मन्दारमंजरी, हृषीकेश भट्टाचार्य-कृत निबन्धों
का संग्रह 'प्रबन्धमंजरी', पण्डिता क्षमाराव-कृत कथामुक्तावली आदि तथा
डा० रामशरण त्रिपाठी-कृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी। इनका विशेष परिचय
आगे यथास्थान दिया गया है।

कथा और आख्यायिका

संस्कृत के गद्य-काव्य के दो मुख्य भेद माने गए हैं—१. कथा, २. आख्यायिका।
कथा और आख्यायिका नामक दो भेदों की सर्वप्रथम चर्चा अग्निपुराण (अध्याय
३३७-१५ से १७) में मिलती है। तत्पश्चात्-इसका विवेचन रुद्रट के 'काव्यालंकार'
(१.२५ से २६), दण्डी के काव्यादर्श (१.२३ से २८), विश्वनाथ के साहित्य-

१. यथा—'... स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमान्य-
प्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतु सुदर्शनकरं कारितम्'।

दर्पण^१ (६.३३२-३३६) और अमरकोश^२ में हुआ है। इनमें कथा और आख्यायिका में जो अन्तर वर्णित है, उसका सारांश निम्नलिखित है :—

कथा	आख्यायिका
१. कथा कवि-कल्पित होती है। कुछ सत्यांश भी होता है।	१. यह ऐतिहासिक घटना पर निर्भर होती है।
२. कथा का वक्ता नायक स्वयं होता है या अन्य कोई।	२. नायक स्वयं वक्ता होता है। यह आत्मकथा के रूप में होती है। (रुद्रट नायक का ही वक्ता होना आवश्यक नहीं मानते)।
३. इसमें उच्छ्वास जैसा कोई विभाजन नहीं होता।	३. इसका विभाजन उच्छ्वासों में होता है।
४. कथा में वक्त्र और अपरवक्त्र छंदों का प्रयोग नहीं होता। (सा० दर्पण के अनुसार कहीं-कहीं पर इन छन्दों का तथा आर्या का प्रयोग होता है।	४. इसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों के द्वारा भावी घटनाओं की सूचना दी जाती है।
५. भाषा संस्कृत या प्राकृत आदि।	५. भाषा केवल संस्कृत।
६. रचना केवल गद्य में।	६. कहीं-कहीं पद्य भी दिए जाते हैं।
७. स्वचरित-वर्णनादि नहीं।	७. स्व-चरित तथा अन्य कवि-चरित-वर्णन।

१. कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥ ३३२ ॥

क्वचिदत्र भवेदार्था क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके ।

आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेवुत्तकीर्तनम् ॥ ३३३ ॥

आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वैशानुकीर्तनम् ।

अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित् ॥

सा० दर्पण परि० ६ श्लोक ३३२-३३४ ।

२. आख्यायिकोपलब्धार्था । अमर० कांड १ वर्ग ६ श्लोक ५ । प्रबन्धकल्पना कथा । अमर० कांड १ वर्ग ६ श्लोक ६ । कथा स्तोकसत्या (रामाश्रमी टीका) ।

८. कुछ सांकेतिक शब्दों (Catch-words) का प्रयोग होता है।
 ९. इसमें ऐसा नहीं होता।
 ८. कन्याहरण, कन्या-लाम, संग्राम, विप्रलम्ब तथा प्राकृतिक वर्णन।
 ९. इसमें ऐसा नहीं होता।

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में कथा और आख्यायिका के भेदों का वर्णन करने के बाद इस प्रकार के विभाजन को व्यर्थ माना है और इन दोनों को सम-जातीय स्वीकार करते हुए केवल नाममात्र का भेद बताया है :—

तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता ॥

प्रो० एस० के० डे ने उपर्युक्त विभाजन पर टिप्पणों करते हुए मत व्यक्त किया है कि संभवतः बाणभट्ट की दो रचनाओं (आख्यायिका—हर्षचरित और कथा—कादम्बरी) को दृष्टि में रखकर ही काव्यशास्त्रियों ने यह विभाजन किया है। नहीं तो इन दोनों भेदों का भेद-निरूपण बहुत कठिन है।^१

कथा-आख्यायिका का तात्त्विक भेद—उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कथा और आख्यायिका में जो भेद वर्णन किया गया है, वह अपूर्ण, अव्यापक और संकुचित है। अतएव दण्डी को विवश होकर इस विभाजन को व्यर्थ कहना पड़ा है। उपर्युक्त भेद बृहत्कथा, हर्षचरित और कादम्बरी को मुख्य रूप से आधार मानकर किए गए हैं, अतः वे समीक्षा की कसौटी पर खरे न उतरे।

कात्यायन ने सर्वप्रथम दो वार्तिकों में आख्यान और आख्यायिका का उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने इनकी व्याख्या में जो उदाहरण दिए हैं, उनसे कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है और आख्यान तथा आख्यायिका में भेद भी स्पष्ट होता है।^२ पतञ्जलि ने जो उदाहरण दिए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि आख्यान शब्द कथा

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (१९६२) पृ० २०४।

२. (क) आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च (वार्तिक)।

आख्यान—यावक्रीतिकः, प्रैयङ्गविकः, यायातिकः। (महाभाष्य, सूत्र ४-२-६० पर)

(ख) लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम् (वार्तिक)। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा। न च भवति, भैमरथी। (महा० ४-३-८७)।

(ग) यवक्रीतम् अधिकृत्य कृतम् आख्यानम् उपचाराद् यवक्रीतं तदधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः। वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका वासवदत्ता। (सिद्धान्त-कौमुदी सूत्र ४-२-६० पर)।

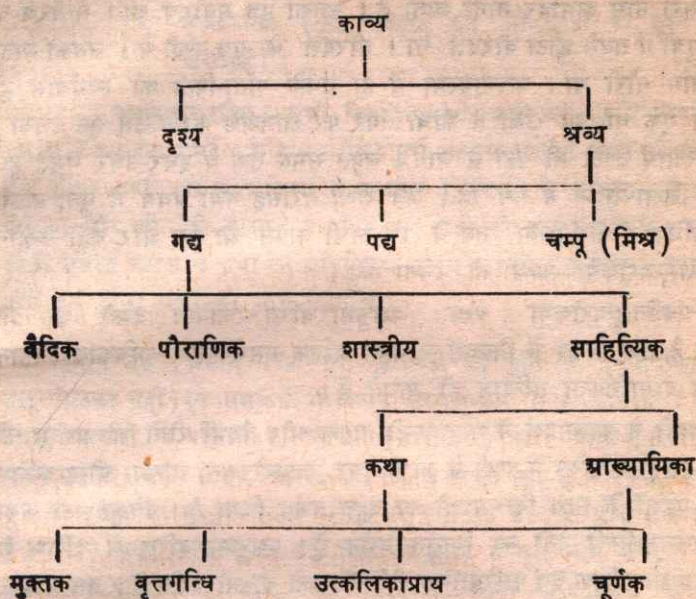
के लिए है और आख्यायिका आख्यायिका के लिए। पतञ्जलि ने दोनों के तीन-तीन उदाहरण दिए हैं :—(१) आख्यान—यावक्रीतिकः, प्रयंगविकः, यायातिकः। (२) आख्यायिका—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी। आख्यान के जो तीन उदाहरण दिए गए हैं, उससे उसकी तीन विधाएँ ज्ञात होती हैं :—

(१) काल्पनिक कथाएँ—जैसे महाभाष्य की यवक्रीत (जो खरीदने वाले) की कथा। ये कथाएँ किसी घटना-विशेष पर निर्भर काल्पनिक कथाएँ होती हैं। जैसे—प्राचीन कथा-ग्रन्थों में बृहत्कथा, कथासरित्सागर आदि। (२) नीति कथाएँ—जैसे महाभाष्य की प्रियंगुलता की कहानी। ऐसी कथाएँ वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी आदि पर निर्भर होती हैं। इनमें उपदेशात्मक तत्त्व प्रधान होता है। जैसे—पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, शुकसप्तति आदि। (३) वैयक्तिक या जीवनवृत्त से संबद्ध कथाएँ—जैसे महाभाष्य की ययाति के जीवन पर निर्भर कथा। ऐसी कथाओं में ऐतिहासिक या ऐतिहासिक-प्राय व्यक्तियों से संबद्ध कथाएँ होती हैं। जैसे—हर्षचरित, जातकमाला, अवदानशतक, सिंहासन-द्वात्रिंशिका आदि। महाभाष्य के उपर्युक्त उदाहरणों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि आख्यान या कथा-साहित्य वर्तमान कथा (=कहानी)-साहित्य का प्रति-निधित्व करता है। इसमें कल्पित कथाएँ, नीति कथाएँ एवं वैयक्तिक कथाएँ आती हैं।

आख्यायिका के जो तीन उदाहरण दिए गए हैं, उनसे ये बातें ज्ञात होती हैं :—(१) ये शृंगार-प्रधान उपन्यास थे, (२) इनका नाम प्रायः नायिकाओं के नाम पर रखा जाता था, (३) भाषा-सौष्ठव, अलंकरण, रसामिव्यक्ति और मनोज्ञता के कारण इनका पर्याप्त प्रचार था। इस कोटि में ये रचनाएँ रखी जा सकती हैं :—चारुमती, सुबन्धुकृत वासवदत्ता, कादम्बरी, तरङ्गवती, मनोवती, आश्चर्यमंजरी, मन्दारमंजरी आदि। उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आख्यान (कथा) और आख्यायिका में प्रायः वही अन्तर है, जो वर्तमान कहानी और उपन्यास में है।

गद्य के अवान्तर भेद—आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में रचना की दृष्टि से संस्कृत गद्य-काव्य के चार भेद माने हैं :—मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिका-प्राय और चूर्णक। (१) मुक्तक—समास-रहित होता है। (२) वृत्तगन्धि में यत्र-तत्र छन्दोमयता का प्रवाह दिखाई पड़ता है। (३) उत्कलिकाप्राय में लम्बे

समासों का बाहुल्य होता है। (४) चूर्णक में छोटे-छोटे समास होते हैं। पूर्वोक्त विवरण को निम्नलिखित सारणी (चार्ट) से सरलता से समझा जा सकता है :—



७. (क) दण्डी

निर्वण्डोऽपि यो दण्डी, यतिर्वंशकुमारकृत् ।

काव्यादर्शो निरादर्शः, सुन्दरौ श्रयते मुनिः ॥ १ ॥

सकषायोऽपि यो दण्डी, नाम्ना दण्डी न चेतसा ।

विरक्तो योऽविरक्तोऽपि, यतिसंज्ञो यतिच्युतः ॥ २ ॥

(कपिलस्य)

(१) जीवन-वृत्त

अन्य महाकवियों के तुल्य महाकवि दण्डी के विषय में भी प्रामाणिक सामग्री का प्रायः अभाव है। दण्डी के विषय में जो कुछ जीवन-चरित-सम्बन्धी सामग्री

१. साहित्यदर्पण परि० ६ श्लोक ३३०-३३२ ।

प्राप्त होती है, उसका एकमात्र आधार 'अवन्तिमुन्दरीकथा' है। उसके अनुसार दण्डी किरातार्जुनीय महाकाव्य के रचयिता भारवि के प्रपौत्र थे। भारवि का ही दूसरा नाम दामोदर माना जाता है। उनका पुत्र मनोरथ था। मनोरथ के चार पुत्रों में सबसे छोटा वीरदत्त था। वीरदत्त के पुत्र दण्डी थे। उनकी माता का नाम गौरी था। बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता का स्वयंवास हो गया। एक चालुक्य राजा ने कांची नगर पर आक्रमण करके उसे लूट लिया। आत्मरक्षार्थ दण्डी भी वहाँ से भागे। बहुत समय तक वे इधर-उधर घूमते हुए उच्च शिक्षा-प्राप्ति में लगे रहे। जब राजा नरसिंह वर्मा प्रथम ने पुनः कांची पर अधिकार कर लिया, तब वे भी कांची वापस आ गए और वहीं उन्होंने 'अवन्तिमुन्दरीकथा' ग्रन्थ की रचना की।

'अवन्तिमुन्दरीकथा' ग्रन्थ 'दशकुमारचरित'-रचयिता दण्डी की ही रचना है, इस विषय में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। अधिकांश विद्वान् उसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही मानते हैं।

दण्डी ने काव्यादर्श में माहाराष्ट्री प्राकृत और वैदर्भी रीति की प्रशंसा की है। 'दशकुमारचरित' में दण्डी ने कांची नगर, काबेरीपत्तन, आन्ध्र, चोल, कलिङ्ग आदि प्रदेशों के साथ विन्ध्याटवी का बहुत वर्णन किया है। विश्रुत की कथा में विन्ध्यवासिनी देवी का विस्तृत वर्णन है। दशकुमारचरित में दक्षिण में प्रचलित सामाजिक एवं पारिवारिक रीति-रिवाजों का भी वर्णन है। इस आधार पर उन्हें दक्षिणात्य मानना उचित है। दक्षिण में भी विदर्भ (महाराष्ट्र) से संलग्न स्थान ही उनकी जन्मभूमि रही होगी।

(२) दण्डी की कृतियाँ

(क) दण्डी के नाम से प्रचलित ग्रन्थ :—

- (१) दशकुमारचरितम्
- (२) काव्यादर्श
- (३) अवन्तिमुन्दरीकथा
- (४) छन्दोविवृति

१. (क) मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति । शाकुन्तल १-२० ।

(ख) लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः । दण्डी ।

- (५) कलापरिच्छेद
- (६) द्विसन्धानकाव्य
- (७) मृच्छकटिक (कुछ विद्वान् इसे भी दण्डी की कृति सिद्ध करते हैं) ।

(१) दशकुमारचरित—सभी विद्वान् इसको दण्डी की कृति मानते हैं। मतभेद केवल इन बातों पर है :—(क) पूर्ण दशकुमारचरित दण्डी की ही कृति है। (ख) दण्डी की कृति केवल मध्य भाग है, जिसमें ८ उच्छ्वास हैं। पूर्व-पीठिका और अन्त की संक्षिप्त उत्तरपीठिका दण्डी की रचना नहीं है। बाद में किसी अज्ञात लेखक ने कथा को अविच्छिन्न बनाने के लिए मूल ग्रन्थ के आगे और पीछे इन दोनों अंशों को जोड़ दिया है।

द्वितीय मत (अर्थात् मध्य भाग ही दण्डी की कृति है, पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नहीं) के समर्थकों में विशेष उल्लेखनीय हैं :—ईग्लिंग (Eggeling)^१ अगाशे (Agashe)^२ विल्सन (Wilson)^३ और कीथ (Keith)^४। अपने मत के समर्थन में इन विद्वानों ने ये तर्क उपस्थित किए हैं :—(क) उपलब्ध कुछ पाण्डुलिपियों में पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका ग्रन्थ के साथ संलग्न नहीं हैं। (ख) पूर्वपीठिका में दी गई वंशावली आदि में मूल भाग से कुछ अन्तर है। (ग) पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका की भाषा में कतिपय व्याकरण-सम्बन्धी शिथिलताएँ हैं। (घ) पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका की पाण्डुलिपियों में पर्याप्त पाठभेद मिलते हैं। (ङ) शैली की दृष्टि से पूर्वपीठिका और उत्तर-पीठिका मध्य-भाग से कुछ शिथिल हैं।^५

१. Eggeling, Ind. office Cat. VII No. 4069/2934 P. 1553.

२. Agashe, दशकुमारचरित, संशोधित संस्करण, बम्बई १९१९, पृष्ठ xxiv.

३. दशकुमारचरित, Ed. H. H. Wilson, London 1846 मूमिका पृष्ठ ३०.

४. A. B. Keith, A History of Sanskrit Literature. 1948 PP. 297-299.

५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वरदाचार्य, अनु० कपिलदेव द्विवेदी, इलाहाबाद, १९६२, पृष्ठ १७५-१७६।

द्वितीय मत की समीक्षा—सम्पूर्ण दशकुमारचरित को दण्डी की रचना न मानने के लिए जो युक्तियाँ ऊपर दी गई हैं, इनके विषय में निम्नलिखित बातें अवचेय हैं :—

(क) दशकुमारचरित की उपलब्ध प्रतियों में से कुछ पाण्डुलिपियाँ अपूर्ण, जीर्ण-शीर्ण और व्यवच्छिन्न प्राप्त हुई हैं। लेखन-सामग्री (तालपत्र, भोजपत्र आदि) की अचिर-स्थायिता एवं पाण्डुलिपि की असुरक्षा के कारण दशकुमारचरित का प्रारम्भिक और अन्तिम भाग कुछ प्रतियों में अविकल न रहा। अतः कुछ प्रतियाँ पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका से रहित हैं।

(ख) वंशावली आदि में अन्तर के लिए प्रो० कीथ ने कुछ उदाहरण दिए हैं। जो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। (१) पाण्डुलिपियों की जीर्ण-शीर्णता के कारण लिपि-वर्ण अस्पष्ट और विवृत हो गए थे, अतः पूर्वपीठिका में दिए गए कतिपय नाम स्पष्ट नहीं पढ़े गए और उनके स्थान पर लिपिकारों और संशोधनकर्ताओं ने स्वबुद्धयनुसार नामादि पूर्ण किए। (२) प्रो० कीथ मी (पृ० २६८) स्वीकार करते हैं कि ऐसी ही मूल से मौलिक पाठ 'सुमन्त्र' के स्थान पर पूर्वपीठिका में 'मन्त्रगुप्त' नाम दिया गया है। पाठ की अस्पष्टता के कारण ही ऐसी भूलें हुई हैं। जैसे—राजपुत्र को मन्त्रिपुत्र पढ़ा गया। तदनुसार 'प्रमति' को राजा कामपाल का पुत्र कहने की जगह उसे मन्त्रिपुत्र अर्थात् सुमति मंत्री का पुत्र बताया गया है। (३) इसी प्रकार दोनों स्थानों पर विश्रुत को वणिक् वैश्रवण का वंशज मानते हैं। परन्तु मूल भाग में प्रपितामह का नाम सिन्धुदत्त है और पूर्वपीठिका में पद्मोद्भव (मंत्री) नाम है। संभवतः सिन्धुदत्त का ही उपनाम पद्मोद्भव था, जो मन्त्री भी था। (४) प्रो० कीथ ने अवन्तिसुन्दरी के अन्तःपुर में राजवाहन के प्रवेश तथा दोनों के प्रणयालाप के समय 'चतुर्दशभुवनवृत्तान्त' के सम्बन्ध में जो आपत्ति उठाई है, वह ग्रन्थ का भावार्थ ठीक न समझने के कारण ही है।

(ग) पूर्वपीठिका में जो व्याकरण-सम्बन्धी शिथिलताएँ हैं, वे संशोधकों और लिपिकारों के प्रमाद के कारण ही संभावित हैं।

१. 'चतुर्दशभुवनवृत्तान्त' की ठीक व्याख्या के लिए देखो—काले—दशकुमारचरित, बम्बई, १९००, पृष्ठ ५४, संस्कृत-व्याख्या।

(घ) पांडुलिपियों में अस्पष्टता और अपूर्णता के कारण ही अनेक पाठभेद मिलते हैं।

(ङ) मूल ग्रन्थ से पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका में शैली की दृष्टि से प्रायः पूर्ण साम्य है। जो कुछ शिथिलता प्रतीत होती है, उसका कारण पूर्वोक्त रूप से अनेक संशोधकों का हाथ लगना है।

प्रथम मत—सम्पूर्ण दशकुमारचरित दण्डी की ही कृति है। इसके प्रमुख कारण ये हैं :—(१) दशकुमारचरित नाम रखना। तथाकथित मूल भाग में केवल ७½ राजकुमारों का वर्णन है। सात का पूरा वर्णन है और राजवाहन का अवूरा। शेष २½ का वर्णन पूर्वपीठिका में है। यदि दण्डी को अपूर्ण ग्रन्थ अभीष्ट होता तो इसका नाम दशकुमारचरित न रखा जाता। (२) भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से प्रायः पूर्ण साम्य है। इसके लिए विभिन्न स्थानों पर वर्णित नख-शिख-वर्णन विशेषतया द्रष्टव्य हैं। भाव, शैली और शब्द-चयन में प्रायः सर्वत्र एकरूपता है। (३) मंगलाचरण में आठ बार तथा गद्य भाग में अनेक बार 'दण्ड' शब्द के प्रयोग के आधार पर संभवतः कवि का उपनाम 'दण्डी' पड़ा होगा। इससे पूर्ण ग्रन्थ का दण्डी-कृत होना ज्ञात होता है।^१

(२) काव्यादर्श—सभी विद्वान् इसे दण्डी की कृति मानते हैं। यह संभवतः उसकी परिपक्वावस्था की कृति है।

(३) अवन्तिमुन्दरीकथा—यह दण्डी की कृति नहीं है, अपितु किसी अन्य कवि ने पर-काल में 'दण्डी' के नाम से यह ग्रन्थ लिखा होगा। इसमें दशकुमार-चरित की पूर्वपीठिका को आधार माना गया है। इसमें वर्णित कवि-चरित में तथाकथित 'दण्डी' का जीवन-चरित है। इसकी अप्रामाणिकता के विषय में प्रो० कीथ का मत उचित प्रतीत होता है।^२ श्री एम० आर० कवि ने इसको दण्डी की तीसरी कृति सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वे पूर्वपीठिका और अवन्तिमुन्दरी-कथा के कथानक के साम्य को इसका आधार मानते हैं, किन्तु वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि दोनों की शैली में भेद है।^३ यह ऊपर लिखा जा चुका

१. ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः....नालदण्डः, ... कूपदण्डः.....केतुदण्डः।

ज्योतिश्चक्राक्षदण्डः...स्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः, ...कालदण्डः॥

(दशकुमार० श्लोक १)

२. Keith: History of Sanskrit Literature. Preface P. xvi.

३. ओरियन्टल कान्फ़ेंस १९२२ का विवरण। (पृष्ठ १९३ से २०१)।

है कि इस ग्रन्थ का आधार पूर्वपीठिका की कथा है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि अवन्तिसुन्दरी-कथा का लेखक मूल दण्डी कवि न होकर 'दण्डी' उपनामक कोई लेखक है। इसका समय बाणभट्ट से पर्याप्त बाद का है, क्योंकि उसने प्राचीन ऋषियों में सुबन्धु, मयूर और बाण का भी गुणानुवाद किया है। उसने दण्डी के दशकुमारचरित और बाण के हर्षचरित की प्रमुख विशेषताओं का समावेश इसमें किया है। यथा—हर्षचरित से प्राचीन कवियों का गुणानुवाद तथा कवि-वंश-वर्णन और दशकुमारचरित से पूर्वपीठिका का कथानक तथा भाषा में पद-लालित्य का प्रयत्न।

(४, ५) छन्दोविचिति और कलापरिच्छेद—काव्यादर्श में दण्डी ने 'छन्दोविचिति' और 'कलापरिच्छेद' का उल्लेख किया है। जैसा कि निम्नलिखित श्लोकों से ज्ञात होता है :—

(क) पद्यं चतुष्पदी तच्च, वृत्तं जातिरिति द्विधा ॥ ११ ॥

छन्दोविचित्यं सकलस्तत्प्रपञ्चो निर्दिशितः ॥ १२ ॥

(काव्यादर्श परिच्छेद १-११, १२)

(ख) इत्थं कलाचतुःषष्टिविरोधः साधु नीयताम्।

तस्याः कलापरिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति ॥

(काव्या० परि० ३-१७१)

उपर्युक्त उद्धरण (क) के 'निर्दिशितः' (बताया गया है) से ज्ञात होता है कि दण्डी ने 'छन्दोविचिति' की रचना की थी, जिसमें छन्दों का विवरण दिया गया था। यह कोई स्वतन्त्र बृहद् ग्रन्थ न होकर छन्द की कोई छोटी पुस्तिका होगी या काव्यादर्श का कोई परिशिष्ट होगा। उद्धरण (ख) के 'आविर्भविष्यति' (प्रकट हो सकेगा) से ज्ञात होता है कि ६४ कलाओं की स्वतन्त्र व्याख्या ले लिए कलापरिच्छेद की रचना की योजना बनाई गई थी। यह भी संभवतः पुस्तिका या परिशिष्ट के रूप में होगी। दण्डी की यह योजना पूर्ण हुई थी या नहीं, इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

(६) द्विसन्धान-काव्य—मोज के 'शृङ्गार-प्रकाश' में दण्डी की एक कृति 'द्विसन्धान-काव्य' का उल्लेख मिलता है :—

द्वितीयस्य (द्विसन्धानप्रकारस्य) उदाहरणं यथा दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसन्धानप्रबन्धौ (शृङ्गारप्रकाश अध्याय ११)।

भोज के इस कथन से स्पष्ट है कि वे स्वयं दण्डी-कृत 'द्विसन्धानकाव्य' के विषय में सन्दिग्ध थे ।

(७) मृच्छकटिक—प्रो० पिशेल (Pischel) ने एक श्लोक' के काव्यादर्श (२-३६२) और मृच्छकटिक (१-३४) में समान रूप से आ जाने के कारण तथा मृच्छकटिक और दशकुमारचरित का सामाजिक चित्रण समान होने के कारण मृच्छकटिक नाटक को ही दण्डी की तीसरी कृति सिद्ध करने का प्रयास किया है । कुछ समय बाद 'भासनाटकचक्र' के प्रकाश में आने पर यही श्लोक भास के चारुदत्त में भी मिला । दण्डी ने काव्यादर्श में चारुदत्त से ही यह श्लोक उद्धृत किया होगा, अतः इसे दण्डी की कृति मानना सर्वथा निराधार है ।

दण्डी की तीन कृतियाँ—राजशेखर ने शार्ङ्गधरपद्धति में निम्नलिखित श्लोक दिया है :—

त्रयोऽनयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।

त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च, त्रिषु लोकेषु बिभ्रुताः ॥

इस श्लोक के 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च' के आधार पर दण्डी की तीन कृतियाँ मानी जाती हैं । विद्वानों ने इस श्लोक को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते हुए तीन प्रबन्धों की खोज प्रारम्भ कर दी, जो हमारे विचार से अभी तक अपूर्ण है । दण्डी की तीसरी कृति होने योग्य कोई तीसरी रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आई है । हमारे विचार से राजशेखर की इस उक्ति को इतना महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए ।

(३) दण्डी का समय

पूर्वसीमा—दण्डी का समय-निर्धारण करने से पूर्व यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि उसकी पूर्व सीमा क्या है ? दण्डी ने काव्यादर्श में प्राकृत-काव्य 'सेतुबन्ध' का उल्लेख किया है :—'सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्' (काव्या० १-३४) । बाण ने हर्षचरित की भूमिका में सेतुबन्ध काव्य को प्रवरसेन की प्रसिद्ध कृति माना है ।^१ वाकाटक-सम्राट् प्रवरसेन प्रथम का समय २८४ ई० से

१. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नमः ।

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ (काव्यादर्श २-३६२)

२. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।

सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ (हर्षचरित भू० १४)

३४४ ई० माना जाता है। कुछ विद्वान् इसको सेतुबन्ध का लेखक मानते हैं। परन्तु अधिकांश विद्वान् प्रवरसेन द्वितीय को 'सेतुबन्ध' का रचयिता मानते हैं। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५ ई०—४१३ ई०) की पुत्री प्रभावती गुप्ता के पति वाकाटक सम्राट् रुद्रसेन द्वितीय का पुत्र था। अतः उसका समय ४५० ई० के लगभग है। यह दण्डी के समय की पूर्वसीमा है।

अपर सीमा—अपर सीमा के लिए तीन तथ्य विशेष रूप से उपादेय हैं :—

(१) काव्यादर्श के आधार पर एक सिंहली भाषा का ग्रन्थ 'सिय-वस-लंकार' (स्वभाषालंकार) है। इसके रचयिता राजा सेन प्रथम का समय ८४६ से ८६६ ई० है। अतः दण्डी का समय ९वीं शताब्दी प्रथम चरण के बाद का नहीं हो सकता है। (२) कन्नड़ भाषा के एक अलंकार ग्रन्थ 'कवि-राजमार्ग' पर दण्डी के काव्यादर्श का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। उसमें कुछ स्थलों पर काव्यादर्श के उदाहरण अविकल रूप से उद्धृत हैं। इसके लेखक अमोघवर्ष का समय ८१५ ई० के लगभग माना जाता है। अतः दण्डी का समय इससे पूर्व होना चाहिए। (३) रानी विजयांका (प्रचलित नाम 'विज्जिका') ने अपने निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक में दण्डी के 'सर्वशुक्ला सरस्वती' पर कठोर व्यंग्य करते हुए कहा है कि दण्डी को नीलकमलदलश्यामल मुझ विज्जिका का पता नहीं था। अतः उन्होंने सरस्वती को सर्वशुक्ला कहा है।

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता ।

वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

यदि विज्जिका पुलकेशी द्वितीय (६३४ ई०) के पुत्र चन्द्रादित्य (६६० ई० के लगभग) की पत्नी विजयभट्टदारिका ही हो तो उसका समय ६६० ई० के लगभग होगा और दण्डी का समय इससे पूर्ववर्ती मानना पड़ेगा। इस आधार पर डा० काणे आदि ने दण्डी का समय ६०० ई० के लगभग माना है।

कुछ विद्वानों ने 'अवन्तिमुन्दरीकथा' को प्रामाणिक मानते हुए उसमें दिए वंशवृत्त के आधार पर दण्डी को भारवि का प्रपौत्र माना है और उसमें प्राप्य एक श्लोक 'मिन्नतीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः। व्यवहारेषु जहौ लीलां न मयूरः०' के आधार पर दण्डी को बाण और मयूर का परवर्ती बताया है। पहले लिखा जा चुका है कि 'अवन्तिमुन्दरीकथा' दण्डी की प्रामाणिक कृति नहीं है, अपितु परवर्ती किसी 'दण्डी' उपनामक कवि की कृति है। यह प्रामाणिक कृति

नहीं है, अतः इसके आधार पर दण्डी के काल-सम्बन्धी सभी निर्णय निराधार समझने चाहिए। इसके आधार पर दण्डी को भारवि का प्रपौत्र मानना और तदनुसार समय-निर्धारण असंगत है।

कुछ शास्त्रीय विद्वानों एवं इतिहासकारों ने इस प्रश्न को भामह के पौर्वापर्य के प्रसंग में अनावश्यक रूप से उलझाया है। इसी प्रकार कुछ ने बाण और सुबन्धु को दण्डी से पूर्ववर्ती सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु इनका मुख्य आधार 'अवन्तिसुन्दरीकथा' ही है।

दण्डी को बाण आदि से पूर्ववर्ती मानने के कुछ विशेष कारण ये हैं :—
(१) दण्डी की भाषा सर्वथा प्रसादगुण-युक्त है। इसमें बाण, सुबन्धु आदि की कृत्रिमता नाममात्र को भी नहीं है। बाण के परवर्ती के लिए आवश्यक था कि वह प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए बाण जैसी रीति-परम्परा का आश्रय लेता। (२) दशकुमारचरित में जिस सामाजिक अवस्था का चित्रण है, वह गुप्त-साम्राज्य के पतन के बाद और हर्ष के राज्यकाल से पूर्व की अवस्था का सूचक है।

इन तथ्यों के आधार पर दण्डी का समय ६०० ई० के लगभग मानना उचित है।

(४) दशकुमारचरित की संक्षिप्त कथा

मगधदेश की राजधानी पुष्पपुरी (वर्तमान पटना) पर राजहंस का शासन था। उसके ३ मन्त्री थे—धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा। इनमें से (१) धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल, (२) पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव, (३) सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा पुत्र थे। इनमें से कामपाल यायावर (अवारा) था, अतः घर छोड़कर चला गया। रत्नोद्भव समुद्री व्यापार में लग गया और सत्यवर्मा संसार की असारता से खिन्न होकर तीर्थयात्रा पर निकला। शेष ४ मन्त्रिपुत्र (सुमन्त्र, सुमित्र, सुश्रुत और सुमति) बड़े होकर राजहंस के मन्त्री बने। राजहंस सर्वथा सुखी होने पर भी सन्तानहीनता के कारण बहुत चिन्तित थे।

मालव-नरेश मानसार ने एक बार मगध पर आक्रमण किया। वह परास्त होकर बन्दी बनाया गया। राजहंस ने दया करके उसे मुक्त कर दिया और उसका राज्य उसे लौटा दिया। पराजित मानसार ने शिव की आराधना से एक मारक गदा प्राप्त की और पुनः राजहंस पर चढ़ाई की। इस बार मानसार की

जीत हुई। घायल राजहंस वन में पहुँचे। मन्त्रियों सहित रानियाँ वन में सुरक्षित पहुँच गई थीं। वे पति को लापता समझकर सती होने की तैयारी करती हुई विलाप कर रही थीं, तभी राजहंस ने वहाँ पहुँचकर उन्हें बचा लिया।

स्वस्थ होकर राजहंस ने वामदेव नामक एक तपस्वी की सेवा की और उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनाई। ध्यान लगाकर वामदेव ने बताया कि राजहंस के एक पुत्र होगा। वह अपने साथियों के साथ विजय-अभियान करके खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करेगा और शत्रुओं का नाश करेगा। वामदेव की भविष्यवाणी सत्य हुई। राजा के पुत्र हुआ। उसका नाम राजवाहन रखा गया। लगभग इसी समय ४ मन्त्रियों के ४ पुत्र हुए। उनके नाम मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, विश्रुत और प्रमति रखे गए। राजहंस राजवाहनसहित इन चार मन्त्रिपुत्रों का भी पालन करने लगे। तभी उनके यायावर मन्त्रिपुत्र कामपाल का पुत्र अर्थपाल, समुद्री व्यापार पर गए रत्नोद्भव का पुत्र पुष्पोद्भव और तीर्थयात्रा पर गए सत्यवर्मा का पुत्र सोमदत्त अपने पिताओं के विभिन्न दुर्घटनाओं में ग्रस्त हो जाने के कारण राजहंस के पास आए गए।

इसी समय राजहंस को ज्ञात हुआ कि मानसार के साथ युद्ध में उनके हारने से खिन्न उनका मित्र मिथिला-नरेश प्रहारवर्मा हताश होकर अपने परिवार के साथ राज्य की ओर लौट रहा था। मार्ग में शबरसेना ने आक्रमण कर उसे मार दिया। रानियाँ विमुक्त हो गईं। उस विपन्न अवस्था में रानियाँ दो पुत्रों को जन्म देकर दिवंगत हो गईं। वे दोनों बालक—उपहारवर्मा और अपहारवर्मा भी राजहंस के पास आए गए। इस प्रकार राजहंस ने १० कुमारों—१ अपना पुत्र, ७ मन्त्रिपुत्र, २ प्रहारवर्मा के पुत्र—का पालन किया।

ये दसों कुमार बड़े होकर दिग्विजय के लिए निकले और अपने अभियान के समय सभी एक दूसरे से अलग हो गए। अन्त में ये सभी कुमार एक एक करके राजवाहन को मिलते गए और अपनी साहसिक विजय-गाथा सुनाते रहे। इन्हीं दस कुमारों की साहसिक विजयगाथाओं का संग्रह दशकुमारचरितम् है।

पूर्वपीठिका में ५ उच्छ्वास हैं। इनमें क्रमशः इन बातों का वर्णन है :—

(उच्छ्वास १) राजवाहन का जन्म (कुमारोत्पत्तिः); (२) मन्त्रिपुत्रों का जन्म (द्विजोपकृतिः); (३) सोमदत्त के साहसिक कार्य (सोमदत्तचरितम्);

(४) पुष्पोद्भव की साहसिक कथा (पुष्पोद्भवचरितम्); (५) राजवाहन का अवन्तिमुन्दरी से विवाह (अवन्तिमुन्दरीपरिणयः)।

मुख्य दशकुमारचरित में ८ उच्छ्वास हैं। इनमें क्रमशः इन कुमारों का चरित वर्णित है :—(१) राजवाहन-चरित, (२) अपहारवर्मा का चरित, (३) उपहारवर्मा का चरित, (४) अर्थपाल-चरित, (५) प्रमति-चरित, (६) मित्रगुप्त-चरित, (७) मन्त्रगुप्त-चरित, (८) विश्रुत-चरित। उत्तरपीठिका ग्रन्थ का उपसंहार है। इसमें वर्णन किया गया है कि सभी कुमार राजहंस और वसुमती से मिलते हैं। राजहंस दसों कुमारों को अपने जीते हुए राज्य सौंपकर वानप्रस्थ स्वीकार करते हैं और दसों कुमारों ने नीतिपूर्वक अपने राज्य का शासन किया।

दशकुमार-परिचय-सारिणी (कोष्ठ में उच्छ्वास-संख्या है)

(क) राजहंस (मगध-नरेश, पूर्व० १) (ख) प्रहारवर्मा (मिथिला-नरेश)

राजवाहन (पूर्व० ५, १)	अपहारवर्मा (२)	उपहारवर्मा (३)

(ग) (राजहंस के मन्त्री) (पूर्वपीठिका २)

धर्मपाल			पद्मोद्भव		सितवर्मा	
मुमन्त्र	सुमित्र	कामपाल	सुश्रुत	रत्नोद्भव	सुमति	सत्यवर्मा
मित्रगुप्त	मन्त्रगुप्त	अर्थपाल	विश्रुत	पुष्पोद्भव	प्रमति	सोमदत्त
(६)	(७)	(४)	(८)	(पूर्व० ४)	(५)	(पूर्व० ३)

(५) दण्डी की शैली और काव्य-सौष्ठव

आचार्य दण्डी परिष्कृत गद्य-शैली के जन्मदाता हैं। गद्य का क्या स्वरूप होना चाहिए और उसमें भाव-भाषा-रस-अलंकारों का किस प्रकार समन्वय प्रस्तुत करना चाहिए, इसका आदर्श उन्होंने दशकुमारचरित में प्रस्तुत किया है। वे वैदर्भी शैली के कवि हैं। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों की चरमसीमा है। उनमें भावों की अभिव्यञ्जना की शक्ति इतनी प्रबल है कि कठिन से कठिन

राजनीति आदि के तत्त्वों को सरलतम भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं। भावानुकूल पदावली का संचयन उनकी प्रमुख विशेषता है। शृंगार, करुण आदि के वर्णन में उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य की मंजुल छटा दर्शनीय है तो नखशिख-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि में समासयुक्त और सालंकार पदावली भी उतनी ही प्रौढ़ तथा परिष्कृत है। उन्हें सदा ध्यान रहता है कि वे कथा लिख रहे हैं, न कि काव्य। अतएव उनकी सबसे प्रमुख विशेषता है कि वे कथा के प्रवाह में कभी भी अवरोध उपस्थित नहीं होने देते। प्रकृति आदि के वर्णन का मोह एवं मायाजाल निर्लिप्त दण्डी स्वामी के तुल्य उन्हें अपने वशीभूत नहीं कर पाता। उनकी शैली सरल होने पर भी प्रांजल है; कोमल होने पर भी प्रौढ़ है; अकृत्रिम होने पर भी सालंकार है; वाच्यार्थप्रधान होने पर भी व्यंग्यार्थक है। दण्डी शृंगार का वर्णन करते हुए भी निर्लिप्त हैं; अर्थ और काम की प्रमुखता बताते हुए भी धर्म-प्रधान हैं; कामशास्त्र की शिक्षा देते हुए भी नीतिशास्त्र के उपदेशक हैं। दण्डी की शैली में एक ओर शृंगार है तो दूसरी ओर हास्य; एक ओर करुण है तो दूसरी ओर भयानक; एक ओर ज्ञान है तो दूसरी ओर नीति; एक ओर आदर्श है तो दूसरी ओर व्यवहार; एक ओर जीवन की वास्तविकता है तो दूसरी ओर नैतिकता। इस प्रकार दण्डी में विरोधी गुणों का अपूर्व समन्वय मिलता है। उनकी भाषा में परिष्कार, प्रांजलता और लोच गुण हैं। उनका पदलालित्य परकालीन लेखकों के लिए आदर्श रहा है, अतएव 'दण्डिनः पद-लालित्यम्' सुभाषित अत्यन्त प्रचलित है। 'मधुराविजय'—महाकाव्यकार गंगादेवी ने दण्डी की कृति को सरस्वती का मणिदर्पण बताया है।

आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम् ।

विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम् ॥

कुछ समालोचकों ने कवि के रूप में दण्डी से पूर्व केवल वाल्मीकि और व्यास को ही स्थान दिया है। वाल्मीकि के होने पर 'कविः' प्रयोग हुआ, व्यास के होने पर 'कवी' (द्विवचन) और दण्डी के होने पर 'कवयः' (बहुवचन) प्रयोग आरम्भ हुआ।

जाते जगति वाल्मीकी कविरित्यभिधाऽभवत् ।

कवी इति ततो व्यासे, कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

कुछ आलोचकों का मत है कि कवित्व का परिपाक केवल दण्डी में ही दृश्य है, अन्यत्र नहीं। अतः कहा है—

‘कविदण्डी कविदण्डी कविदण्डी न संशयः’ ।

दण्डिनः पदलालित्यम्—दण्डी का पदलालित्य गौरव का विषय है। उनकी भाषा में सुकुमारता, कोमलता, परिष्कार, प्राञ्जलता, प्रसाद और माधुर्य गुण हैं। दशकुमारचरित पढ़ने पर पाठक को यह अनुभूति होती है कि वह कुछ सरस रचना का रसास्वाद कर रहा है। जीवन की अनुभूतियाँ आँखों के सामने उतर आती हैं और वह कवि को अपना एक अन्तरंग मित्र मान अनुभव करता है। दण्डी के गद्य में न तो सुबन्धु के तुल्य ‘प्रत्यक्षरश्लेष’ की योजना है और न बाण के तुल्य ‘सरसस्वरवर्णपद’ की कृत्रिमता है। उसमें दैनिक व्यवहार की प्रवाहशील भाषा है। छोटे-छोटे पद और वाक्य नवशिशुओं के तुल्य क्रीड़ा करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं और वे सहसा हृदय को आकृष्ट कर लेते हैं। कथाओं और उपन्यासों में प्रयुक्त मनोज्ञ शैली का इसमें अन्तर्भाव दीखता है। भाषा की सरसता, मधुरता और सहज-सुन्दरता नीरस में भी सरसता का आधान कर देती है।

राजा राजहंस और उसकी पत्नी वसुमती के वर्णन में पदलालित्य और माधुर्य दर्शनीय है :—

अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः.....
राजहंसो नाम धनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव । तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव ।

(पूर्व० उच्छ्वास १)

दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने के इच्छुक राजकुमारों के वर्णन में यमक की निराली छटा कम मनोहर नहीं है।

कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रूषा भस्मीकृतारयो रयोपहसित-समीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः । (पूर्व० उ० २)

कामदेव के तुल्य सुन्दर, रामादिवत् बली, क्रोध से शत्रुओं को भस्म करण वाले, वेग में वायु का उपहास करने वाले राजकुमारों ने दिग्विजयार्थ प्रस्थान के द्वारा राजा के अभ्युदय की सूचना दी।

कतिपय विद्वानों को भ्रम है कि मूल दशकुमारचरित में ऐसे यमकादि के प्रयोग नहीं हैं तथा देवादि-प्रशंसा भी नहीं है। उदाहरणार्थ सप्तम उच्छ्वास में

आर्ष शक्ति का वर्णन, नास्तिकों का निराकरण, महादेव विष्णु ब्रह्मा आदि देवों की स्तुति का प्रसंग दर्शनीय है।

दृश्यतां शक्तिरार्षी, यत् तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षालिनि सरसि सरसिजदलसंनिकाशच्छायस्याधिक-तरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत्। अद्य सकलनास्तिकानां जायेत लज्जा-वनतं शिरः। तदिदानीं चन्द्रशेखर-नरकशासन-सरसिजासनादीनां त्रिदशेशानां स्थानान्यत्थादररचितनृत्यगीताराधनानि क्रियन्ताम्०। (दश० उ० ७)

दशकुमारचरित के सप्तम उच्छ्वास में दण्डी ने अपना एक नवीन चमत्कार दिखाया है। पूरे उच्छ्वास में एक भी ओष्ठ्य वर्ण का प्रयोग नहीं है, फिर भी शैली आयाससाध्य नहीं है। भाषा में वही स्वाभाविकता और प्रवाह है। जैसे—

‘आर्यं, कदर्यस्यास्य कदर्थनाम्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे’। ‘सखे, सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदणीयसि कारणेऽजनीयानादरः संदृश्यते’। ‘असत्येन नास्यास्यं संसृज्यते’। ‘दिष्ट्या दृष्टेष्टसिद्धिः। इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते। श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते संनिहितानि’। ‘तच्छरीरं छिद्रे निधाय नीरान्निरयासिषम्’। ‘बहुभुते विश्रुते विकचराजीवसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः॥ (दश० उ० ७)

दण्डी का काव्य-सौष्ठव—दशकुमारचरित में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जिनसे दण्डी की कलात्मक रुचि का परिज्ञान होता है। प्रसंगानुसार भाषा में भी आरोह-अवरोह मिलता है। बन्धुपाल की पत्नी बालचन्द्रिका के वर्णन में कितनी कोमलता और मधुरता है। भाव और भाषा का समन्वय द्रष्टव्य है :—

कदाचिदिन्दुमुखीं नवयौवनावलीढावयवां नयनचन्द्रिकां बालचन्द्रिकां नाम तरुणीरत्नं वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीं मूर्तिमिवावलोक्य तदीयलावण्यावधूतधीरभावो लतान्तबाणबाणलक्ष्यतामयासिषम्। (पूर्व० उ० ४)

‘एक बार मैंने चन्द्रमुखी, नवयौवन से सर्वांग-सुन्दर, नेत्रों के लिए चांदनी तुल्य, स्त्री-रत्न, मूर्तिमती वैश्यगृह की लक्ष्मी के तुल्य बाल-न्द्रिका नामक उसकी पत्नी को देखा। उसको देखकर मेरा धैर्य जाता रहा और मैं काम-बाणों का लक्ष्य हो गया।’

षष्ठ उच्छ्वास में गोमिनी का नख-शिखवर्णन भी सुन्दर और सर्वांगपूर्ण है। प्रत्येक अंग की विशिष्टताओं का विस्तृत वर्णन है।

रक्ततलाङ्गुली यवमत्स्यकमलकलशाद्यनेकपुण्यलेखालाञ्छितौ करो,
समगुल्फसंधी मांसलावशिरालौ चाङ्गुली, ... तनुतरनीषस्निग्धं गम्भीरं नभि-
मण्डलम्, .. उरोभागव्यापिनावुन्मग्नचूचुकौ विशालारम्भशोभिनी पयोधरो, ...
तन्वी कम्बुवृत्तबन्धुरा च कन्धरा० । (दश० उ० ६)

अष्टम उच्छ्वास में पुण्यवर्मा के वर्णन में भाषा-लालित्य और प्रसाद गुणों का समन्वय देखिए :—

तस्मिन् भोजवंशभूषणम्, ... संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्,
उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, ... अतिनदीष्णः कलासु, ... पुण्य-
श्लोकः पुण्यवर्मा नामासीत् ॥ (उ० ८)

दण्डी ने सूर्योदय, सूर्यास्त, वसन्त ऋतु, निर्जन वन, राजप्रासाद, राजमार्ग और श्मशान आदि का भी वर्णन किया है। कथा के प्रवाह में अवरोध दण्डी को सह्य नहीं है, अतः ये वर्णन सुन्दर और अलंकृत होने पर भी संक्षिप्त और प्रवाहपूर्ण हैं। इन वर्णनों में समासबहुला गौडी का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है। इनमें कवि की कल्पना तथा सूक्ष्मनिरीक्षण-शक्ति का भी दर्शन होता है। सप्तम उच्छ्वास में वसन्तवर्णन परंपरागत होते हुए भी कवि के काव्यकौशल का परिचायक है।

अथ कदाचिदाग्रसितजायारहितचेतसि, लालसालिलङ्घनग्लानघनकेसरे, ...
शालीनकन्यकान्तःकरणसंक्रान्तरागलङ्घितलज्जे, दर्दुरगिरितटचन्दनाश्लेष-
शीतलानिलाचार्यवत्तनानालता नृत्यलीले काले० ।

(उ० ७)

‘पत्नीहीनों के हृदयों को दुःखित करनेवाले, मधुलोलुप भ्रमरों द्वारा घने पुंतागवृक्षों को क्लान्त करने वाले, शालीन कन्याओं में प्रेमोत्पादन से उन्हें प्रगल्भ बनाने वाले, चन्दन की शीतल वायु रूपी आचार्य द्वारा लताओं को नृत्य की शिक्षा देने वाले वसन्त ऋतु में०’ ।

द्वितीय उच्छ्वास में वेश्या काममंजरी और ऋषि मरीचि की कथा रोचक होने के साथ ही उपदेशात्मक है। ऋषि वेश्या पर आसक्त होकर उससे विवाह के लिए उद्यत होते हैं और कामोत्सव (सुहागरात) के दिन काममंजरी ऋषि को प्रणाम कर संबन्ध समाप्त कर देती है। मरीचि इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः होकर उभयतोभ्रष्ट हो जाते हैं। उन्हें न रति मिली और न भक्ति। इसमें ढोंगी

ऋषियों पर भी कठोर व्यंग्य है। काममंजरी ऋषि को प्रणाम करके कहती है कि भगवन्, आपने मुझपर बड़ी दया की, अब अपना काम कीजिए।

भगवन्, अयमञ्जलिः, चिरमनुगृहीतोऽयं दासजनः, स्वार्थ इदानीमनुष्ठेयः।

(उ० २)

काममंजरी ने ऋषि मरीचि को जो धार्मिक प्रवचन दिया है, वह भी काव्यसौन्दर्य की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है।

ननु धर्मादितेऽर्थकामयोरनृत्यत्तिरेव। ...तन्मन्ये नार्थकामौ धर्मस्य शतत-
मीमपि कलां स्पृशतः। ...अर्थस्तत्त्वदर्जनवर्धनरक्षणार्थकः, कृषिपाशुपाल्य-
वाणिज्यसंधिविग्रहादिपरिवारः, तीर्थप्रतिपादनफलश्च। कामस्तु विषयातिसक्त-
चेतसोः स्त्रीपुंसयोनिरतिशयमुखस्पर्शविशेषः।

(उ० २)

‘धर्म के बिना’ अर्थ और काम की उत्पत्ति नहीं होती। अर्थ और काम धर्म की सौवीं कला को भी नहीं प्राप्त कर सकते। संग्रह, वृद्धि और रक्षण ये अर्थ के तत्त्व हैं। कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, संधि, विग्रह आदि इसके साधन हैं। सुपात्रों को देना इसका उपयोग है। कामभावनायुक्त स्त्रीपुरुष का स्पर्शसुखानुभाव काम है।’

अष्टम उच्छ्वास में मन्त्री वसुरक्षित ने राजकुमार अनन्तवर्मा को जो उपदेश दिया है, उसकी तुलना बाण के शुकनासोपदेश से की जा सकती है। दण्डी का उपदेश अत्यन्त युक्तियुक्त और प्रभावोत्पादक है।

बुद्धिहीनो हि भूभूदत्युच्छ्रितोऽपि परैरध्यारुह्यमाणमात्मानं न चेतयते।
न च शक्तः साध्यं साधनं वा विभज्य वर्तितुम्। अयथावृत्तश्च कर्मसु प्रति-
हन्यमानः स्वैः परैश्च परिभूयते। न चावज्ञातस्याज्ञा प्रभवति प्रजानां योगक्षेमा-
राधनाय।...दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च
विषयेषु शास्त्रं नामाप्रतिहतवृत्तिः।

(उ० ८)

‘बुद्धिहीन राजा बड़ा होने पर भी शत्रुओं के घात-प्रतिघात को नहीं समझ पाता। वह साध्य और साधन का विभाजन नहीं कर सकता, उचित कार्य न करने पर वह आत्मीय व्यक्ति और शत्रुओं से तिरस्कृत होता है, तिरस्कृत व्यक्ति की आज्ञा प्रजा के कल्याण के लिए समर्थ नहीं है।...शास्त्र दिव्य चक्षु है; वर्तमान, भूत और भविष्यत् सभी विषयों में तथा व्यधानयुक्त और दूरवर्ती विषयों में भी इसकी गति है।

दण्डी ने इसके बाद एक वेश्या-लम्पट विहारमद्र नामक सेवक के द्वारा राजकुमार को बड़े तार्किक ढंग से बहकाने का वर्णन किया है। वह राजा को विषयभोग आदि का महत्त्व बताकर पथभ्रष्ट करता है। यह वर्णन भी कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति का द्योतक है।

दण्डी की लेखनी में ओज और आकर्षण है। उपन्यास के तुल्य उसकी रचना पाठक को बलात् हर लेती है। पद-लालित्य, प्रांजलता, प्रवाह के साथ ही साथ भाषा सुचिपूर्ण और मुहावरेदार है। छोटे-छोटे वाक्यों में कथा की अक्षुण्णता व्याप्त है। नीति-वाक्य भी बीच-बीच में प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करते हैं। संसार के छल-प्रपंचों, ढोंग, पाखंड और दम्भ का जितना भंडाफोड़ दण्डी ने किया है, संभवतः प्राचीन विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। दण्डी ने कुछ सुन्दर सुभाषित भी दिए हैं—‘दुष्करसाधनं प्रज्ञा’ (उ० ६), ‘पतिरेव दैवतं वनितानाम् ,विशेषतः कुलजानाम्’ (उ० ६), ‘दिव्यं हि चक्षुर्मृतमवद-मविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नाम’ (उ० ८), ‘आत्मान-मात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः; स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धस्य पुरुषस्य’, ‘इह जगति हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते’ (उ० ७), ‘श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते नित्यसानिध्यानि’ (उ० ७), ‘नहि मुनिरिव नरपति-रुपशमरतिरभिभवितुमरिकुलमलम्, अवलम्बितुं च लोकतन्त्रम्’ (उ० ८)।

चरित्र-चित्रण—दण्डी का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। उन्होंने समाज के सभी वर्गों के पात्रों को लिया है। इसमें राजा, राजकुमार, ब्राह्मण, भिक्षुक, चोर, राजकुमारियाँ, वेश्याएँ, दम्भी और पाखंडी सभी सम्मिलित हैं। दण्डी ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन किया है। दण्डी को स्वच्छ समाज से प्रेम है, दम्भी और पाखण्डियों से नहीं। अतः कामातुर ऋषि मरीचि, कुलटा पत्नी घूमिनी, परस्त्रीरत कलहकण्टक, ऋषिमनोहारिणी काममंजरी, कार्यदक्ष उपहारवर्मा, योग्य अमात्य वसुरक्षित, धूर्ताधिराज विहारमद्र आदि के चरित्र-चित्रण जीवन की वास्तविकता का वर्णन करते हैं। भले और बुरे सभी कोटि के पात्र हैं। उनमें मानवोचित हर्ष-शोक, सुख-दुःख, राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, आशा-निराशा व्याप्त हैं।

दण्डी का नैतिक आदर्श—दण्डी आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी और व्यवहारवादी हैं। दशकुमारचरित में ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, हिंसा, व्यभिचार,

बलात्कार, अनैतिकता आदि सभी का वर्णन है। इसके वर्णन के द्वारा दण्डी का उद्देश्य है—समाज की बुराइयों का नग्नचित्र प्रस्तुत करके जनता को सावधान करना; दंभी, पाखंडी, अभिचार-रत तथा स्वार्थपरायण व्यक्तियों से सतत जागरूक रहने की शिक्षा देना और स्वस्थ परम्पराओं को आश्रय देना। दण्डी ने केवल सैद्धान्तिक शिक्षा न देकर व्यावहारिक शिक्षा दी है। व्यवहार-कुशलता से ही जीवन सुखी बन सकता है, यह दण्डी का लक्ष्य है। दण्डी को असंयत, अनैतिक आदि कहना तथ्य से परे है। दण्डी निर्भीक सुधारवादी, क्रान्तिकारी और व्यवहार-कुशल कवि हैं।

७. (ख) सुबन्धु

वासवदत्तामाश्रित्य, शक्तिं गुणमयीं वहन् ।

श्लेषाश्लेषमहोजस्कः,

सुबन्धुर्भावबन्धुरः ॥

(कपिलस्य)

(१) सुबन्धु का जीवनवृत्त और कृतित्व

जीवनवृत्त—सुबन्धु के जीवन की कोई प्रामाणिक सूचना अन्तःसाक्ष्य या बहिःसाक्ष्य से प्राप्य नहीं होती है। उनके माता, पिता, वंश आदि का परिचय अप्राप्य है। कोई उन्हें कश्मीरी मानते हैं और कोई मध्यदेशीय। बाण की काव्यशैली की परिभाषा को यथार्थ मानें तो सुबन्धु को कश्मीरी मानना चाहिए, क्योंकि उनकी शैली श्लेषप्रधान है। श्लेषप्रायमुदीच्छेषु० (हर्ष० १-७)। सुबन्धु ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति के बाद दो श्लोकों में कृष्णस्तुति और एक श्लोक में शिवस्तुति की है, अतः उन्हें सहिष्णु, समन्वयवादी धार्मिक भक्त कहा जा सकता है। वासवदत्ता के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे काव्य-शास्त्र के अतिरिक्त वेद, दर्शन, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, पुराण और संगीत आदि में निपुण थे।

कृतित्व—सुबन्धु की एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' प्राप्त होती है। पतंजलि (१५० ई० पू०) द्वारा निर्दिष्ट 'वासवदत्ता' ग्रन्थ और प्रसिद्ध उदयन-वासवदत्ता की कथा से इसका कोई संबंध नहीं है।

(२) सुबन्धु का समय

सुबन्धु के समय के विषय में निर्णायक सामग्री का अभाव है, अतएव विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि सुबन्धु पूर्ववर्ती हैं या बाण। डा० कीय, डा० एस० के० डे और डा० कागे आदि सुबन्धु को बाण से पूर्ववर्ती मानते हैं तथा डा० पीटर्सन

आदि बाण को सुबन्धु से पूर्ववर्ती मानते हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि दण्डी, सुबन्धु और बाण, ये तीनों ही गद्यकार ५५० ई० से ६५० ई० के मध्य हुए हैं, अतः बहुत थोड़े से अन्तर से ये प्रायः समसामयिक हैं। फिर भी काव्य-शैली, गद्यशैली-विकास आदि की दृष्टि से दण्डी, सुबन्धु और बाण यह क्रम माना जाता है।

पूर्वसीमा—वासवदत्ता में एक युवती के वर्णन में श्लेष के द्वारा न्याय-वार्तिककार 'उद्योतकर' और 'बौद्धसंगत्यलंकार' के कर्ता धर्मकीर्ति का उल्लेख मिलता है।^१ ये दोनों दार्शनिक थे और दोनों ने दोनों के ग्रन्थों का उपयोग किया है।^२ इनका समय ६ठी शताब्दी ई० का अन्तिम भाग माना जाता है। प्रो० सिल्वा लेवी ने भी इस संदर्भ में धर्मकीर्ति के ग्रन्थ का संकेत माना है।^३ अतः सुबन्धु का समय ६०० ई० से पूर्व का नहीं है।

अपरसीमा—(१) महाकवि बाण भट्ट (६२० से ६४० ई०) ने हर्षचरित में स्पष्टरूप से 'वासवदत्ता' ग्रन्थ का उल्लेख किया है और इसे कवित्व के गर्व का नाशक बताया है।^४ कादम्बरी में 'अतिद्वयी कथा' कहकर दो कथाग्रन्थों (बृहत्कथा और वासवदत्ता) से कादम्बरी को श्रेष्ठ बताया है।^५ कादम्बरी के टीकाकार भानुचन्द्र ने द्वयी से बृहत्कथा और वासवदत्ता को ही लिया है। (२) वाङ्मयतिराज (७४० ई० के लगभग) ने अपने प्राकृतकाव्य 'गुडडवहो' में सुबन्धु का उल्लेख किया है, किन्तु बाण का नहीं।^६ अतः ज्ञात होता है कि उस समय तक बाण की ख्याति अधिक नहीं हुई थी। (३) वामन (८०० ई० के लगभग) ने अपनी 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में वासवदत्ता और कादम्बरी दोनों

१. न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्, बौद्धसंगतिमिवालंकारमूषिताम् ।

(वासवदत्ता पृ० २०८, चौ० सं०)

२. Keith—JRAS. 1914, PP. 1102 ff.

३. Sylvan Levi : Bulletin de L' Ecole Francais d'Extreme-Orient. 1903, P. 18

४. कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया ।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ हर्ष० १-११

५. धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा । कादम्बरी, प्रस्तावना श्लोक २०

६. सौबन्धवे अ बंधमि हरिअन्दे अ आणन्दो । गुडड०

से उद्धरण दिए हैं। (४) कविराज (१२०० ई०) ने 'राघवपाण्डवीयम्' में सुबन्धु के बाद बाणभट्ट का नामोल्लेख करते हुए अपने आपको तीसरा वक्रोक्ति-निपुण कवि बताया है। (५) मंख (११५० ई० के लगभग) ने अपने 'श्रीकण्ठचरित' में सुबन्धु और बाण की एक ही श्लोक में क्रमशः प्रशंसा की है।^१ (६) ११६८ ई० के एक कन्नड़ी शिलालेख में सुबन्धु को काव्यकला का आचार्य बताया गया है।^२

उपर्युक्त तथ्यों में सर्वत्र सुबन्धु को बाण से पूर्व रखा गया है। वाक्पतिराज और वामन के उद्धरणों से स्पष्ट है कि उसका समय ७०० ई० के बाद नहीं रखा जा सकता है।

सुबन्धु और बाण—यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि बाण ने अपने समी पूर्ववर्ती कवियों से भावों को ग्रहण किया है और उन्हें नवीन तथा उत्कृष्ट रूप देकर प्रस्तुत किया है। कादम्बरी के लिए उनके सामने 'वासवदत्ता' आदर्श-ग्रन्थ था, अतः हर्षचरित में सर्वप्रथम गद्यकाव्य 'वासवदत्ता' का उल्लेख अत्यन्त आदर के साथ लिया गया है और कादम्बरी में 'अतिद्वयी कथा' कहकर उससे बढ़ जाने की योजना है। वासवदत्ता और कादम्बरी में जो कुछ कथा-साम्य वाले अंश हैं, उनके लिए भी बाण सुबन्धु के ऋणी हैं, जैसे—घोड़े के नाम में 'इन्द्रायुध' का प्रयोग; प्रेमियों की मृत्यु पर प्राण देने का निर्णय; आकाश-वाणी से पुनर्मिलन की सूचना और आत्महत्या से रुकना। शब्दावली में एकरूपता 'किं बहुना' 'आसीच्चास्य मनसि' 'देवः प्रमाणम्' आदि के लिए भी बाण को ही ऋणी मानना उपयुक्त है। दोनों के प्रमात-वर्णन और सन्ध्यावर्णन आदि से इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है। गद्य-शैली का चरमोत्कर्ष बाण में है। दण्डी और सुबन्धु के बाद बाण में ही गद्य शैली का अत्यन्त परिष्कृत रूप मिलता है। अतः सुबन्धु दण्डी से पूर्ववर्ती हैं।

सुबन्धु का समय ६०० ई० के लगभग सिद्ध होता है।

१. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।

वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥राघव० १-४०

२. मेण्ठे स्वद्विरदाधिरौहिणि वशं याते सुबन्धो विधेः।

शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ॥श्री० २-५३

३ कीथ—सं० गा० का इतिहास (हिन्दी अनु०) पृष्ठ ३६४

(३) वासवदत्ता की संक्षिप्त कथा

इसमें राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु नामक राजकुमार और राजा शृंगारशेखर की पुत्री राजकुमारी वासवदत्ता के प्रणय और परिणय का वर्णन है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—वासवदत्ता एक अतिसुन्दरी राजकुमारी है। कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में उसे देखा और वह उस पर आसक्त हो गया। वह वासवदत्ता की खोज में अपने मित्र मकरन्द के साथ निकल पड़ा। वे विन्ध्य पर्वत पर पहुँचे। रात्रि में शुक-सारिका के संवाद से उन्हें ज्ञात हुआ कि वासवदत्ता ने भी स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखा है और उसे ढूँढ़ने के लिए उसकी तमालिका नामक सारिका (मैना) निकली है। पक्षि-दम्पती की सहायता से वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु का मिलन होता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु को जब यह पता चलता है कि वासवदत्ता के पिता उसका विवाह विद्याधरों के राजा पुष्पकेतु से करना चाहते हैं तो वे दोनों एक जादू के घोड़े पर चढ़कर भाग जाते हैं और विन्ध्य पर्वत पर पहुँचते हैं। कुछ समय बाद वासवदत्ता कन्दर्पकेतु को सोता हुआ छोड़कर वन देखने जाती है। अचानक वह किरातों के मध्य में फँस जाती है। उसे पाने के लिए किरातों के दो दिलों में संघर्ष होता है। वासवदत्ता चुपके से खिसक जाती है और एक ऋषि के आश्रम में अनुचित प्रवेश के कारण पाषाणशिला बन जाती है। विरहाकुल कन्दर्पकेतु आत्महत्या करना चाहता है, परन्तु आकाशवाणी उसे आत्महत्या से बचाती है और दोनों के पुनर्मिलन का आश्वासन देती है। वह इसी प्रकार कुछ समय बिताता है। एक दिन सहसा उसका स्पर्श पाकर वह पाषाणशिला पुनः वासवदत्ता बन जाती है। उसी समय कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द भी वहाँ आ जाता है। तीनों कन्दर्पकेतु की राजधानी में पहुँचते हैं और वहाँ वे अपना शेष जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

(४) सुबन्धु की शैली और उसका काव्यसौन्दर्य

सुबन्धु संस्कृत-गद्यकारों में अपना अनुपम स्थान रखते हैं। वे अपनी रचना-कुशलता, काव्यगौरव और प्रखर पाण्डित्य के लिए विख्यात हैं। उनकी रचना 'वासवदत्ता' प्रौढ़ पाण्डित्य की कसौटी है। अतएव वे संस्कृत-गद्यकारों की 'बृहत्त्रयी' में गिने जाते हैं। अन्य दो महाकवि दण्डी और बाण हैं। वासवदत्ता एक काल्पनिक कथा है, अतः इसका संबन्ध ऐतिहासिक उदयन-वासवदत्ता से सर्वथा नहीं है।

सुबन्धु गौडी रीति के कवि हैं। इनकी भाषा में ओज, समास-बहुलता, कठिन पद-विन्यास, पाण्डित्य-प्रदर्शन और श्रम-साध्यता पद-पद पर परिलक्षित होते हैं। सुबन्धु ने एक बहुत छोटे कथानक को लेकर गद्य-काव्य लिखा है। अतः इसमें लम्बे प्रकृति-वर्णन, स्त्री-सौन्दर्य-वर्णन, नगरी-वर्णन और विस्तृत संवाद आदि प्राप्त होते हैं। इन लम्बे वर्णनों के कारण कवि का कला-पक्ष अवश्य विकसित और विलसित हो सका है, परन्तु उसका भाव-पक्ष बहुत दब गया है। रसपरिपाक और कथा-प्रवाह नहीं के बराबर है। श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या आदि अलंकारों का आवश्यकता से अधिक मोह कवि को रससिद्ध कवि की श्रेणी से च्युत कर देता है। कवि ने अपने प्रबन्ध के महत्त्व पर गर्व करते हुए कहा है कि इसमें पद-पद पर श्लेष का प्रयोग दर्शनीय है।

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध-

विन्यासवैदग्ध्यनिर्धिनिबन्धम् ॥ (वासवदत्ता भूमिका श्लोक १३)

यह कहना अनुचित न होगा कि छोटे से कथानक को एक प्रबन्ध का रूप देने के लिए आवश्यक था कि कवि कथा को वर्णनों, अलंकार-प्रयोगों आदि के द्वारा पूरा करे।

सुबन्धु की शैली के कुछ विशेष गुण हैं, जिनके द्वारा वे विद्वानों में समादृत हुए हैं। सुबन्धु का श्लेष-प्रयोग कलाकार की कलाकृति का प्रदर्शन करता है। विरोधाभास, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा आदि के प्रयोग कवि की नई सूझ-बूझ और सूक्ष्म-दृष्टि को सूचित करता है। सुबन्धु की रचना में संगीतात्मकता है, लयात्मकता है और नाद-सौन्दर्य है। यदि सुबन्धु ने एक ओर क्लिष्ट पदावली दी है तो दूसरी ओर कोमल कान्त-पदावली का भी मिश्रण किया है। यदि एक ओर थकाने वाले श्लेष-प्रयोग हैं तो दूसरी ओर सुन्दर स्वभावोक्ति और उत्प्रेक्षाएँ भी हैं। कवि का भाषा पर अनूठा अधिकार है। वे कठिन के बाद सरल और सरल के बाद कठिन पदावली का प्रयोग करते हैं। एक ओर ओज है तो दूसरी ओर प्रसाद और माधुर्य। एक ओर पाण्डित्य-प्रदर्शन है तो दूसरी ओर सरस पदावली। इन विरोधी गुणों के समन्वय के कारण वासवदत्ता में मणि-कांचन-संयोग प्राप्त होता है।

सुबन्धु ने रस-परिपाक की उपेक्षा करके अलंकार-प्रियता, पौराणिक-कथा-विदग्धता और समास-रसिकता का अधिक प्रदर्शन किया है, अतः उनमें दण्डी

जैसा पद-माधुर्य और बाण जैसी कल्पना-प्रौढ़ता एवं वर्णन-चातुरी नहीं मिलती है। रस-परिपाक की घोर उपेक्षा के कारण ही आनन्दवर्धनाचार्य की यह उक्ति सुबन्धु पर पूर्णतया घटती है कि कुछ कवि केवल अलंकार प्रयोग में ही अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं और रस की सर्वथा उपेक्षा करते हैं।^१

सुबन्धु काव्यशास्त्र, व्याकरण, दर्शन और पुराणों के विशेषज्ञ थे। अतएव पद-पद पर रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि के अनेक कथानक और सन्दर्भ वासवदत्ता में मिलते हैं। वे उत्तम काव्य में अलंकार, मुख्यतया श्लेष-प्रयोग और वक्रोक्ति का समन्वय आवश्यक मानते हैं। अतएव कहते हैं—
'सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव'।

सुबन्धु के श्लेष-प्रयोग मनोहर होते हैं। वर्षा-वर्णन में श्लेष का सुन्दर प्रयोग है :—

कुमारमयूर इव समावृद्धशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजःप्रसरः,...
मङ्गलेश्वर इव समेघनादः, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः,
समाजगाम वर्षासमयः।^२ (वासवदत्ता पृष्ठ २४६)

कार्तिकेय से अधिष्ठित कार्तिकेय के मोर के तुल्य सरकंडों की अधिकता से युक्त, रजोगुणरहित महातपस्वी के तुल्य धूल को शान्त करने वाला, मेघनाद से युक्त रावण के तुल्य मेघों के नाद से युक्त, विन्ध्यपर्वत के तुल्य बादलों से नीलवर्ण, पीनस्तनी युवतियों के तुल्य घने बादलों से युक्त वर्षा ऋतु आई।

विरोधामास का सुन्दर प्रयोग देखें :—

घनवेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरे-
नाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असंख्येनापि संख्यावता, अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण...
निवासिजनेनानुगतम्। (पृष्ठ ८७-६१)

प्रकृति-वर्णन में प्रभात-वर्णन, सन्ध्या-वर्णन और वर्षा-वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति के प्रयोग मुख्यतया दर्शनीय हैं। सन्ध्या का वर्णन देखें :—

१. दृश्यन्ते च कवयोऽलंकारनिबन्धनैकरसा अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु।

ध्वन्यालोक पृष्ठ १५१ (नि० सा० १६११)

२. वासवदत्ता चौखंबा संस्करण, संवत् २०११ के अनुसार पृष्ठ-संख्या है।

विद्रुमलतेव चरमाणवस्य, रक्तकमलिनीव गगनतटाकस्य, काञ्चनकेतुरिव कन्दर्परथस्य, ... भिक्षुकीव तारानुरक्ता, रक्ताम्बरधारिणी, वारमुख्येव पल्लवानुरक्ता, .. बभ्रुरिव कपिलतारका भगवती सन्ध्या समदृश्यत ।

(वासवदत्ता पृ० १५८-१५९)

वर्षा-वर्णन में सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का संकलन है। बादलरूपी लकड़ी पर विजलीरूपी आरा चलने से बुरादा-रूपी जलकण शोभित होते हैं। ओले मानो दिग्बधू के टूटे हार के मोती हैं।

जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते पवनवेगनिर्धूताश्चूर्णनिकरा इव जलकणा बभुः, विच्छिन्नदिग्बधूहारमुक्तानिकरा इव... करका व्यराजन्त ।

(पृष्ठ २४८-२४९)

परिसंख्या अलंकार का अनेक स्थानों पर सुन्दर प्रयोग है। शृंगार-शेखर के राज्य में दुर्गुण विभिन्न स्थानों पर थे, प्रजा में नहीं थे। इसका ही वर्णन है :—

यत्र राजनि ... शशिनः कन्यातुलारोहणम्, दानच्छेदः करिकपोलेषु, उत्प्रेक्षा-क्षेपः काव्यालंकारेषु, क्विपां सर्वविनाशः, न जनेषु, जातिविहीनता मालासु न कुलेषु, मलिनाम्बरत्वं निशासु न जनेषु, चलरागता गीतेषु न विदग्धेषु ।

(पृष्ठ १०३-१०६)

कन्दर्पकेतु के वर्णन में मालादीपक का सुन्दर प्रयोग है। राजा के हाथों ने घनुष, धनुष ने वाण, वाणों ने शत्रु का सिर, शत्रु-शिर ने पृथ्वी, पृथ्वी ने नायक, नायक ने कीर्ति, कीर्ति ने स्थिरता प्राप्त की।

यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः, अरि-शिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेन ... नायकः, नायकेन कीर्तिः, कीर्त्या च सप्त सागराः ... आसादितम् ।

(पृष्ठ २८)

यमक अलंकार की भी माला कई स्थानों पर दर्शनीय है। यथा—

राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम् । क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि । साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता । जीवनायक जीवनाय कमिव नाश्रयति सुभगम् । कामधुराधरेण का मधुराधरेण युक्ता० ।

(पृष्ठ १८३ मे १८६)

सुबन्धु सरल, सरस और मधुर पदावली के प्रयोग में भी उतने ही दक्ष हैं। जैसे—

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम् ।

अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥

(भूमिका, श्लोक ११)

संकल्पसिद्धिमिव शृङ्गारस्य, निधानमिव कौतुकस्य, विजयपताकामिव मकरध्वजस्य, विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य, उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः, ...
अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यामपश्यत् स्वप्ने । (पृ० ५०)

इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर बाण, वामनभट्ट बाण और कविराज ने सुबन्धु की मूरि-मूरि प्रशंसा की है ।

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥

(बाण हर्षचरित, श्लोक ११)

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।

वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्यो विद्यते न वा ॥

(कविराज, राघव० १-४१)

७. (ग) बाणभट्ट

स्वां वंदुषीं 'हर्षचरित्र'-निष्ठां

'कादम्बरी'-पानमनोमनोज्ञाम् ।

संस्थाप्य गद्ये रुचिरेऽनवद्ये

बाणः सुधीस्वान्तसुममंवेधी ॥

(कपिलस्य)

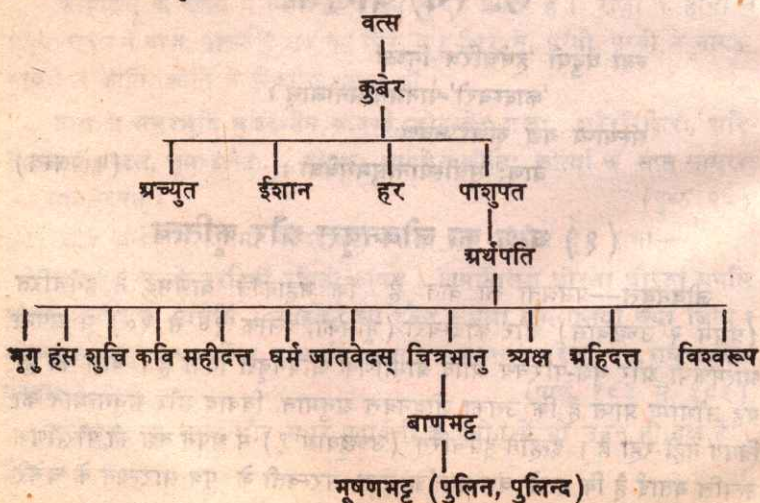
(१) बाण का जीवनवृत्त और कृतित्व

जीवनवृत्त—प्रसन्नता की बात है कि महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित (प्रथम २ उच्छ्वास) और कादम्बरी (भूमिका, श्लोक १० से २०) में अपनी आत्मकथा और वंश-परिचय आदि प्रामाणिक जीवनवृत्त दिया है । बाण को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसका जीवनवृत्त अनुमान, विवाद और अनुसन्धान का विषय नहीं रहा है । इन्होंने हर्षचरित (उच्छ्वास १) में अपने वंश की पौराणिक उत्पत्ति बताई है कि इनके वंश-प्रवर्तक वत्स, सरस्वती के पुत्र सारस्वत के चचेरे

माई, थे। वत्सवंश में कुबेर नामक महाविद्वान् हुए। उनके अच्युत, पाशुपत आदि चार पुत्र हुए। पाशुपत के एक ही पुत्र अर्थपति थे। अर्थपति के चित्रमानु आदि ११ पुत्र थे। चित्रमानु के पुत्र बाणमट्ट थे। बाण के पुत्र मूषणमट्ट (कुछ के मतानुसार पुलिनमट्ट या पुलिन्द) थे। बाण का पूरा वंश वेदादिशास्त्रों का महाविद्वान् था, अतः शास्त्रीय विद्वत्ता इन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली। बाल्यावस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता ने ही इनको पाला-पोसा। १४ वर्ष की आयु में इनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। ये मित्र-मंडली के साथ इधर-उधर बहुत घूमते रहे और कुछ अंश तक अवारा भी रहे। बाद में विवाह हो जाने पर ये संभल गए। अतएव राजा हर्ष ने इन्हें 'महानयं मुजंगः' (बहुत चरित्रभ्रष्ट) (उच्छ्वास २) कहा और बाण ने उसका समाधान किया कि मेरा बचपन बाल्योचित घृष्टताओं से युक्त था। अब विवाह हो जाने से मैं एक स्वच्छ आचरण वाला गृहस्थ हो गया हूँ। इनके पूर्वजों का निवास स्थान शोण (सोन) नदी के पास प्रीतिकूट नामक ग्राम था।

कृतित्व—बाणमट्ट के मुख्यरूप से दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं :—हर्षचरित और कादम्बरी। इनके नाम से तीन ग्रन्थ और माने जाते हैं :—१. चण्डीशतक—

१. बाण का वंशवृक्ष :—



दुर्गा की स्तुति में १०० श्लोक; २. मुकुटताडितक—अप्राप्त (नलचम्पू के टीकाकार चंडपाल और गुणविनयगणि द्वारा उल्लेख); ३. कादम्बरी का पद्यात्मक रूप। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में बाण का एक पद्य कादम्बरी-विरह-व्यथा-विषयक उद्धृत किया है। इससे अनुमान किया जाता है कि संभवतः बाण ने पद्य में भी कादम्बरी लिखी हो। इन तीनों रचनाओं की प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। बाण के नाम से प्रचलित 'पार्वतीपरिणय' नाटक वस्तुतः १५वीं शताब्दी के कवि वामनभट्टबाण की कृति है।

(२) बाण का समय

बाण सम्राट् हर्ष के सम-पण्डित थे, अतः बाण के समय-निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं है। हर्ष का राज्याभिषेक अक्टूबर ६०६ ई० में हुआ और उनकी मृत्यु ६४८ ई० में हुई। ताम्रपत्रों तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के संस्मरणों से ये तिथियाँ निर्णीत हो चुकी हैं। ह्वेनसांग ने ६२६ से ६४५ ई० तक भारत-भ्रमण किया था और वह हर्ष के निकट संपर्क में भी आया था। अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध मानना उचित है।

८वीं शताब्दी ई० से लेकर अनेक संस्कृत-ग्रन्थकारों ने बाण का या उनके ग्रन्थों का उल्लेख किया है, अतः बाण के समय के विषय में कोई विवाद नहीं है। बाण का उल्लेख करने वाले विशिष्ट लेखक हैं। (१) वामन (८०० ई०)—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' कादम्बरी के सन्दर्भ का उद्धरण। (२) आनन्दवर्धन (८५० ई०)—ध्वन्यालोक में बाण के दोनों ग्रन्थों का उल्लेख। (३) घनंजय (१००० ई०)—'यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य०' कहकर बाण का उल्लेख। (४) राजा भोज (१०२५ ई०)—सरस्वतीकण्ठाभरण में बाण के पद्य की अपेक्षा गद्य की प्रशंसा। 'यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः'। क्षेमेन्द्र (१०५० ई०) और रूय्यक (१०५० ई०) ने भी बाण के ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(३) बाण के गद्य-काव्यों की संक्षिप्त कथा

(क) हर्षचरित की संक्षिप्त कथा

यह महाकवि बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक वृत्त पर आश्रित होने से यह गद्यकाव्य का भेद 'आख्यायिका' है। इसमें ८ उच्छ्वास हैं। प्रथम दो

उच्छ्वासों में हर्ष ने अपने वंश का वर्णन किया है और आगे के ६ उच्छ्वासों में हर्ष के पूर्वजों का वर्णन करते हुए हर्ष के जन्म से लेकर राज्यश्री के मिलने तक का वर्णन है।

(उच्छ्वास १, २) प्रथम दो उच्छ्वासों का सारांश बाण के जीवनवृत्त में दिया गया है। वंशप्रवर्तक वत्स से लेकर बाण के जन्म तथा सम्राट् हर्ष से उसके परिचय और राज-सम्मान का वर्णन है। (उच्छ्वास ३) इसमें हर्षचरित की वास्तविक कथा आरम्भ होती है। हर्ष के पूर्वज राजा पुष्पभूति का वर्णन है। इसमें पुष्पभूति और शैव योगी भैरवाचार्य का सुन्दर चित्रण है। (उच्छ्वास ४) इसमें पुष्पभूति के वंशज राजाओं का केवल अस्पष्ट संकेत है। तदनन्तर महाराज प्रभाकरवर्धन के शौर्य का वर्णन है। उसकी पत्नी रानी यशोवती थी। उनके दो पुत्र—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री, राज्यश्री, हुई। राज्यश्री का मौखरि-वंशज राजा ग्रहवर्मा से विवाह। (उच्छ्वास ५) इसमें हूणों के वधार्थ राज्यवर्धन का प्रस्थान, हर्ष का उसके साथ कुछ दूर जाना और मृगया खेलना, इसी समय पिता की रुग्णता की सूचना मिलना; हर्ष का लौटकर आना; माता यशोवती का पति की मृत्यु के पूर्व ही सती होने का संकल्प; हर्ष की प्रार्थना को अस्वीकार कर यशोवती का सती होना, प्रभाकरवर्धन का स्वर्गवास तथा हर्ष का विलाप वर्णित है। (उच्छ्वास ६) इसमें हूण-विजय कर राज्यवर्धन का लौटना; पितृ-शोक से विह्वल होना; राज्यभार हर्ष पर डालना; मालव-नरेश द्वारा ग्रहवर्मा की हत्या; राज्यश्री को बन्दी बनाना; राज्यवर्धन का मालव-नरेश के वधार्थ भण्डि के साथ सेना-सहित प्रस्थान; मालव-राजा को हराना; लौटते समय गौड राजा (शशांक) द्वारा छलपूर्वक राज्यवर्धन की हत्या तथा गौड-नरेश पर आक्रमण का निर्णय वर्णित है। (उच्छ्वास ७) इसमें हर्ष की सेना का प्रस्थान; प्राग्व्योतिष (आसाम) के राजा द्वारा एक दिव्य छत्र हर्ष को भेंट किया जाना; भण्डि का आगमन और राज्यवर्धन की हत्या का विवरण देना तथा राज्यश्री के सपरिवार विन्ध्य-वन में चले जाने की सूचना देना; राज्यश्री को ढूँढ़ने के लिए हर्ष का प्रस्थान तथा गौड-नरेश पर आक्रमण के लिए भण्डि को आदेश देना वर्णित है। (उच्छ्वास ८) इसमें हर्ष का विन्ध्यवन में जाना; ग्रहवर्मा के बाल-मित्र बौद्ध मुनि दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुँचना; एक भिक्षु द्वारा राज्यश्री के सपरिवार सती होने की तैयारी की सूचना पाना; हर्ष का दौड़कर जाना और राज्यश्री को सती होने से बचाना; दिवाकरमित्र का राज्यश्री को

सात्वनाप्रद उपदेश और हर्ष का राज्यश्री के साथ लौटकर आना वर्णित है। यहीं पर कथा समाप्त होती है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में भूमिका के श्लोकों में अपने पूर्ववर्ती इन कवियों का बाण ने सादर उल्लेख किया है—महामारुतकार व्यास, वासवदत्ताकार (सुबन्धु), मट्टार हरिचन्द्र (गद्यकाव्य लेखक), सातवाहन, प्रवरसेन (सेतुबन्ध-कार), मास, कालिदास, बृहत्कथा-कार गुणाढ्य, आदयराज।

समीक्षा—हर्षचरित महाकवि बाण की प्रथम एवं अपूर्ण कृति है। इसमें कादम्बरी के तुल्य रस-परिपाक, भावप्रवणता और धारावाहिकता नहीं है। पाण्डित्य-प्रदर्शन, कठिन शब्दावली, लम्बे समास और विस्तृत वर्णन इसके रसास्वादन में विघ्न उपस्थित करते हैं। तथापि बाण की वर्णन-शक्ति, विद्वता, शास्त्रीय पाण्डित्य, विविध विषयावगाही ज्ञान का सुन्दर प्रदर्शन हर्षचरित में मिलता है। यद्यपि समास-बहुलता और क्लिष्टता कवि को बहुत अधिक है, तथापि कृष्ण रस के वर्णनों में भाषा में प्रसाद गुण की मात्रा अधिक है। कवि की बहुज्ञता, सूक्ष्म-दृष्टि, राजकुलामिज्ञता, भावुकता और अन्तर्दृष्टि का सुन्दर परिचय हर्षचरित में प्राप्त होता है। भाव, भाषा, प्रसादगुण और मनोज्ञता का एक सुन्दर उदाहरण देखें। माता यशोवती का हर्ष से कथन है कि—

वत्स, नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागाहो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम्। कुलकलत्रमस्मि चारित्र्यघना धर्मधवले कुले जाता। वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्।

(उच्छ्वास ५, पृष्ठ १६७)

(ख) कादम्बरी की संक्षिप्त कथा

कादम्बरी बाण की प्रौढ और अन्तिम कृति है। इसमें एक काल्पनिक कथा वर्णित है। यह गद्यकाव्य का 'कथा' भेद है। इसमें चन्द्रापीड और वैशम्पायन के तीन जन्मों का वर्णन है। कथा के अन्त में प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं से मिल जाते हैं। तीनों जन्मों का विवरण जानने के लिए यह सारणी उपयुक्त है।

	चन्द्रापीड	वैशम्पायन	पत्रलेखा	इन्द्रायुध	चाण्डालकन्या
प्रथम जन्म में	चन्द्रमा	पुण्डरीक	रोहिणी	कर्पिजल	लक्ष्मी
द्वितीय "	चन्द्रापीड	वैशम्पायन	पत्रलेखा	इन्द्रायुध	—
तृतीय "	शूद्रक	शुक		कर्पिजल	चाण्डाल- कन्या

पुण्डरीक के शाप के कारण चन्द्रमा ही चन्द्रापीड के रूप में जन्म लेता है। वही दूसरे जन्म में राजा शूद्रक है। चन्द्रमा के शाप के कारण पुण्डरीक मन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन होता है और वही महाश्वेता के शाप से शुक (तोता) होता है। रोहिणी तारा ही चन्द्रमा का साथ बनाए रखने के लिए कुलूत राजा की पुत्री पत्रलेखा होकर चन्द्रापीड के साथ रहती है। पुण्डरीक का मित्र कपिजल ही ऋषि-शाप के कारण इन्द्रायुध नामक घोड़े के रूप में जन्म लेता है और चन्द्रापीड के पास रहता है। चाण्डालकन्या वस्तुतः पूर्वजन्म की लक्ष्मी है और वह पुण्डरीक की माँ है। पुत्र को कामावेशरूपी पतन से बचाने के लिए वह चाण्डालकन्या बनती है और शुक रूपधारी पुण्डरीक को अपने नियन्त्रण में रखती है।

मूलकथा—(कथामुख) विदिशा के राजा शूद्रक के दरबार में आकर एक चाण्डालकन्या ने एक अत्यन्त मेधावी और मनुष्य की वाणी में बोलने वाला शुक राजा को समर्पित किया। राजा के पूछने पर तोते ने बताया कि उसकी माता मर गई है और पिता को शिकारियों ने पकड़ लिया है। मुझे जाबालि ऋषि के शिष्य पकड़ कर आश्रम में ले गए। इसके बाद जाबालि ऋषि ने तोते के पूर्वजन्म का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया :—

(पूर्वार्ध की कथा) उज्जयिनी के राजा तारापीड और रानी विलासवती को तपस्या से चन्द्रापीड नामक पुत्र प्राप्त हुआ। राजा के सुयोग्य मन्त्री शुकनास के वैशम्पायन नामक पुत्र हुआ। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों की शिक्षा गुरुकुल में हुई। दोनों विद्याओं में पारंगत हो गए। युवराज पद पर अभिषेक के समय मन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड को अत्यन्त सारगर्भित उपदेश दिया। उसी समय चन्द्रापीड को इन्द्रायुध नामक घोड़ा और पत्रलेखा नामक दासी भी मिलीं। चन्द्रापीड और वैशम्पायन दिग्विजय के लिए निकल पड़े। किन्नर-युगल का पीछा करते हुए इन्द्रायुध पर सवार चन्द्रापीड अञ्छोद सरोवर पर पहुँचा। वहाँ एक युवा तपस्विनी 'महाश्वेता' से उसका परिचय हुआ। महाश्वेता ने आत्मकथा वर्णन करते हुए बताया कि पुण्डरीक नामक एक ऋषि-कुमार से उसका प्रेम हो गया था, परन्तु मिलने से पूर्व ही पुण्डरीक कामपीडा से दिवंगत हो गया। तब से वह इस अञ्छोद सरोवर पर तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही थी। तत्पश्चात् महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी से मिलाने के लिए चन्द्रापीड को ले जाती है। कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण किया

हुआ था। प्रथम मिलन में ही चन्द्रापीड और कादम्बरी परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। इसी समय पिता के बुलाने पर चन्द्रापीड उज्जयिनी लौटता है और सेनासहित वैशम्पायन को बाद में आने के लिए छोड़ देता है। (बाणकृत कथा यहाँ समाप्त हो जाती है।)

(उत्तरार्ध की कथा, बाणपुत्र भूषणभट्ट-कृत) बहुत समय तक वैशम्पायन के न लौटने पर चिन्तित चन्द्रापीड उसकी खोज में अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। वहाँ महाश्वेता ने बताया कि वैशम्पायन मुझपर आसक्त हो गया था, अतः मैंने उसे शुक (तोता) होने का शाप दे दिया था। अपने मित्र के दुःख से चन्द्रापीड के भी प्राण निकल गए। तभी कादम्बरी वहाँ आती है और प्रिय के वियोग में प्राण देना चाहती है। तभी आकाशवाणी उसे रोकती है और आश्वासन देती है कि शीघ्र ही तुम दोनों सखियों का अपने प्रेमी से पुनर्मिलन होगा। (यहाँ जाबालि द्वारा वर्णित कथा समाप्त होती है।)

ऋषि जाबालि से अपने पूर्व जन्म का विवरण सुनते ही शुक को महाश्वेता की स्मृति सताने लगी। तोते ने राजा शूद्रक से कहा कि मैं महाश्वेता से मिलने के लिए अवीर होकर उड़ पड़ा। इसी बीच इस चाण्डालकन्या ने मुझे पकड़ लिया और आपके पास ले आई है। तत्पश्चात् चाण्डालकन्या ने राजा को बताया कि मैं पुण्डरीक (इस जन्म में वैशम्पायन) की माता हूँ। आप भी पूर्वजन्म में चन्द्रापीड थे। यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी की तीव्र स्मृति हो उठी और वे प्राणहीन हो गए। उधर चन्द्रापीड जीवित हो गए। तोते की कथा समाप्त होने पर शाप का समय समाप्त हो गया था। तोता भी पुण्डरीक हो गया। इस प्रकार चन्द्रापीड-कादम्बरी और पुण्डरीक-महाश्वेता का पुनर्मिलन हो गया। वे दोनों युगल अनेक वर्षों तक सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे।

समीक्षा—ऐसा प्रतीत होता है कि बाण को कादम्बरी की कथा का बीज बुणाढ्य-कृत बृहत्कथा से प्राप्त हुआ है। कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी में राजा सुमनस् की कथा है। दोनों कथाओं की रूपरेखा में अत्यन्त साम्य है।

१. विवरण के लिए देखो—कीय-सं० सा० इति० (हिन्दी) पृष्ठ ३८३; कथासरित्सागर ५६-२२ से आगे; बृहत्कथामंजरी १६-१८३ से आगे; Mankowski—WZKM. १५-२१३ से आगे।

उस कथा में राजा सुमनस् दधीचि के मानस पुत्र रश्मिमान् बन जाते हैं और उनका मनोरथप्रभा से मिलन होता है। राजकुमार का प्रस्थान, राजकुमारी मकरन्दिका का पिता के शापवश निषाद-कन्या होना, शाप से खिन्न राजा का मर कर तोता होना; पुलस्त्य ऋषि द्वारा वर्णित स्वजीवनवृत्त का तोते द्वारा वर्णन, मकरन्दिका का अपने पूर्व रूप में आना और प्रिय सोमप्रभा से मिलन आदि घटनाएँ कादम्बरी से बहुत मिलती हुई हैं। यहाँ यह कहना उपयुक्त है कि बाण ने रूपरेखा भले ही ली हो, पर उसने कथा को एक अत्यन्त नवीन रूप दे दिया है। पात्रों के नाम मित्र हैं; पात्रों की संख्या दुगुनी हो गई है; कथा बहुत विस्तृत हो गई है; शुकनास जैसे योग्य मन्त्री की नवीन सृष्टि है; चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन नवीन कल्पना है; एक किन्नर के स्थान पर दो किन्नरों का वर्णन है। वर्णनों में विशदता और व्यापकता; नायक नायिका के प्रेम की व्यापक अनुभूति और अभिव्यक्ति; कथा में स्वभाविकता और परिष्कार; भाषा में लोच और कल्पना की ऊँची उड़ान, ये बाण की निजी विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के कारण कादम्बरी नव-परिधाना वधू की भाँति नित-नूतन और नित-मनोरम प्रतीत होती है।

उत्तरार्ध की रचना बाण के पुत्र भूषणभट्ट (कुछ के मतानुसार भूषणबाण, पुलिन्द या पुलिनभट्ट) ने सुधीवृन्द की मनस्तुष्टि के लिए की है। बाण के योग्य पुत्र ने बहुत सफलता के साथ कथा पूर्ण की है।

(४) बाण की शैली और काव्य-सौन्दर्य

बाण संस्कृत-गद्य-काव्य के मूर्धामिषिक्त सम्राट् हैं। बाण ने गद्य में पद्यों से अधिक चमत्कार-प्रदर्शन किया है और प्रांजल तथा परिष्कृत पदावली के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। बाण ने भाव और भाषा का अनुपम समन्वय किया है, अतः उनकी रीति 'पांचाली' है। पांचाली रीति की विशेषता है कि उसमें शब्द और अर्थ का समन्वय और सन्तुलन होता है। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते' (सरस्वतीकण्ठाभरण)। बाण ने इसका पूर्णतया निर्वाह ही नहीं किया है, अपितु उसका सर्वोत्कृष्ट आदर्श भी हमारे सामने रखा है। बाण की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने दोनों गद्य-काव्यों में शैली की सभी विशेषताओं का संग्रह करने का प्रयत्न किया है। किसी भी रुचि का

व्यक्ति क्यों न हो, वह उनके ग्रन्थों में आनन्दानुभव कर सके, यह उनकी कामना रही है। अतएव हर्षचरित के प्रारम्भिक श्लोकों में कवि ने अपनी भावना अभिव्यक्त की है कि उदीच्य (उत्तर के) कवि श्लेष आदि अलंकारों पर बल देते हैं; प्रतीच्य (पश्चिम के) कवि केवल अर्थगौरव और अर्थगाम्भीर्य पर बल देते हैं; दाक्षिणात्य (दक्षिण के) कवि उत्प्रेक्षा पर बल देते हैं और गौड (बंगीय) कवि शब्दाडम्बर पर बल देते हैं। अतएव बाण का कथन है कि—नवीन या चामत्कारिक अर्थ, उत्कृष्ट स्वभावोक्ति, सरल श्लेष-प्रयोग, सुन्दर रसाभिव्यक्ति और ओज-गुणयुक्त शब्दयोजना, ये सारे गुण एकत्र दुर्लभ हैं।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः ॥ (हर्ष० श्लोक)

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ (हर्ष० ८)

बाण ने यह प्रयत्न किया है कि ये सभी गुण उनकी रचनाओं में प्राप्त हों। अतएव भाव, भाषा, रीति और अलंकारों के प्रयोग में वैविध्य प्राप्त होता है। ये सभी गुण हर्षचरित में उस परिपाक को प्राप्त नहीं हुए हैं, जितना परिपाक और परिष्कार कादम्बरी में दृष्टिगोचर होता है। कादम्बरी में एक ओर भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर कल्पनाओं की मनोरम उड़ान है; एक ओर अर्थगौरव है तो दूसरी ओर मनोज्ञ शब्दावली का संचयन; एक ओर कला-पक्ष का उज्ज्वल स्वरूप है तो दूसरी ओर भाव-पक्ष का सशक्त रूप; एक ओर प्रसाद और माधुर्य की मधुर मुस्कान है तो दूसरी ओर ओज की प्रौढ़ गंभीरता; एक ओर अनुप्रास, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की सरसता है तो दूसरी ओर विरोधाभास, श्लेष और परिसंख्या की श्रमसाध्य रचना; एक ओर थकाने वाले लम्बे समस्त पद हैं तो दूसरी ओर सरस लघु-पदावली; एक ओर सरलता है तो दूसरी ओर दुर्बोधता; एक ओर संभोग शृंगार की उद्दामता है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ शृंगार की भाव-प्रवणता; एक ओर करुण रस है तो दूसरी ओर शान्त और भयानक; एक ओर बाह्य प्रकृति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण है तो दूसरी ओर मनोभाव, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तःप्रकृति का मार्मिक विवेचन। इस प्रकार बाण एक सफल अभिनेता के तुल्य नाना रूपों में उपस्थित होकर न केवल बाह्य सौन्दर्य से ही सहृदयों के हृदय को आकृष्ट करते हैं, अपितु अपनी भाव-मंगी, सूक्ष्म कलात्मकता, मार्मिक अनुभूति और आन्तरिक सुषमा

के द्वारा नीरस में भी सरसता, हृदयहीन में भी सहृदयता और निर्जीव में भी जीवन का संचार कर देते हैं। बाण के पास भावों का भण्डार है; कल्पना का अक्षय सागर है; शब्दों का अनन्त कोष है; शास्त्रीय ज्ञान की निधि है और कवि-सुलभ उच्च कोटि की संवेदनशीलता है। इन गुणों के कारण सभी प्रकार के भावों को अत्यन्त प्रौढ़ और परिष्कृत रूप में वर्णन करने की शक्ति बाण में है। अतएव बाण के गुणों पर मुग्ध होकर अनेक कवियों ने उनके विभिन्न गुणों की विविध प्रकार से प्रशंसा की है।

मधुराविजय की लेखिका गंगादेवी को बाण की रचना में सरस्वती की वाणी की शंका सुनाई पड़ती है :—

वाणीपाणिपरामृष्ट-वीणानिक्वाणहारिणीम् ।

भावयन्ति कथं वाञ्छ्ये, भट्टबाणस्य भारतीम् ॥ (गंगादेवी)

विदग्धमुखमण्डन के लेखक धर्मदास को बाण की वाणी में एक अति सुन्दरी युवती का सा पदन्यास, सरसता और आकर्षण दिखाई देता है :—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।

सा कि तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

(धर्मदास)

गोवर्धनाचार्य का कथन है कि जिस प्रकार अधिक दक्षता प्राप्त करने के लिए शिखण्डिनी पूर्वजन्म में शिखण्डी हुआ, उसी प्रकार वाणी (सरस्वती) भी बाण (पुरुष) के रूप में अवतीर्ण हुई थी।

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।

प्रागल्भ्यमधिकमवाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ॥

(गोवर्धनाचार्य)

प्रसन्नराघव के लेखक जयदेव ने बाण को कविता-कामिनी के मनमन्दिर में निवास करने वाला कामदेव बताया है :—

हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबागस्तु बाणः ।

केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ॥

श्री चन्द्रदेव ने लिखा है कि कुछ कवि श्लेष, कुछ शब्दयोजना, कुछ रसामि-व्यक्ति, कुछ अलंकार, कुछ अर्थगौरव या कथावर्णन में चतुर होते हैं, परन्तु

बाण कवि-कुंजरो के गण्डस्थल का भेदन करने वाले एवं गहन कवितारूपी विन्ध्याटवी में चतुरतापूर्वक विचरण करने वाले सिंह हैं।

इशेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ-
लंकारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।

आः सर्वत्र गभीरधीरकविता-विन्ध्याटवी-चातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णन-शैली और प्रत्येक वर्ण्य विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन के आधार पर यह सुभाषित प्रचलित है कि बाण ने किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है और उसने जो कुछ वर्णन कर दिया है, उससे आगे कहने के लिए कुछ शेष नहीं रहता।

बाण ने जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सूक्ष्मदृष्टि से बाह्य प्रकृति का वर्णन किया है, उतनी ही गहराई से अन्तःप्रकृति और मनोभावों का विश्लेषण किया है। प्रत्येक वर्णन इतने व्यापक और सटीक होते हैं कि पाठक को यह अनुभव होता है कि उन परिस्थितियों में वह भी ऐसा ही सोचता या करता। प्रातःकालवर्णन, सन्ध्यावर्णन, शूद्रकवर्णन, शुकवर्णन, चाण्डालकन्या-वर्णन, विन्ध्याटवी-वर्णन, शबरसैन्यवर्णन, जाबाल्याश्रमवर्णन, जाबालिवर्णन, उज्जयिनी-वर्णन, तारापीडवर्णन, इन्द्रायुधवर्णन, अच्छोद-सगेवरवर्णन, महाश्वेतावर्णन, कादम्बरीवर्णन आदि में बाण ने वर्णन ही नहीं किया है, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार विलासवती के पुत्रहीनता-जन्य विषाद का वर्णन, चन्द्रापीड को देखकर स्त्रियों के हाव-भाव का वर्णन, पुण्डरीक को देखकर महाश्वेता के प्रेमोद्रेक का वर्णन, चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के हार्दिक भावों का वर्णन, पुण्डरीक की मृत्यु पर महाश्वेता और कपिजल के विलाप का वर्णन बाण की हार्दिक समवेदना और सहृदय-हृदयता का परिचायक है। चन्द्रापीड को दिए गए शुकनासोपदेश में तो कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। कवि की लेखनी भावोद्रेक में बहती हुई सी प्रतीत होती है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात् मूर्तिमती होकर बोल रही है।

वाण के वर्णनों में भाव और भाषा का सामंजस्य, भावानुकूल भाषा का प्रयोग, अलंकारों का सुसंयत प्रयोग, भाषा में आरोह और अवरोह तथा लम्बी समासयुक्त पदावली के पश्चात् लघु-पदावली गुण विशेषरूप से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक वर्णन में पहले विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है; बड़े समस्त पद मिलते हैं; तत्पश्चात् श्लेषमूलक उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ; तदनन्तर विरोधाभास या परिसंख्या से समाप्ति। श्लेषमूलक उपमा-प्रयोग, विरोधाभास और परिसंख्या के प्रयोगों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और बौद्धिक परिश्रम अधिक है। कहीं कहीं वर्णन इतने लंबे हो गए हैं कि ढूँढ़ने पर भी क्रियापद मिलने कठिन हो जाते हैं। महाश्वेता-दर्शन में एक वाक्य ६७ पंक्ति का है और कादम्बरी-दर्शन में तो एक वाक्य ७२ पंक्ति का हो गया है। विशेषणों के विशेषणों की परम्परा इतनी लंबी हो जाती है कि मूल क्रिया लुप्त सी हो जाती है और कथा-प्रवाह तो प्रयागस्थ संगम में सरस्वती की भाँति अदृश्य हो जाता है। ऐसे वर्णनों में वर्णन का स्वारस्य रह जाता है, परन्तु कथा-प्रवाह पद-पद पर प्रतिहत हो जाता है।

कुछ मनोरम वर्णन उदाहरणार्थ दिए जा रहे हैं। सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि की कल्पना है कि ऊर्ध्वमुख ऋषियों ने सूर्य का तेज पी लिया है, अतः उसका तेज मन्द पड़ गया है। सप्तर्षियों को पैर न लग जाएँ, इसलिए मानो सूर्य ने अपने पैर (किरण) समेट लिए हैं। तपोवन की धेनु की तरह संध्या मानो दिन भर कहीं घूम कर अब आ गई है। सूर्य के पश्चिम समुद्र में गिरने से जो बूँदे उठीं, वे ही मानो तारे हो गए।

ऊर्ध्वमुखैः... ऊष्मपेस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपो दिव-
सस्तनिमानमभजत् । उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहोर्षयेव... रविरम्बरतलाव-
लम्बत । क्वापि त्रिहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला
परिवर्तमाना सन्ध्या मुनिभिरदृश्यत । अपराम्भसि पतिते दिनकरे... अम्भः-
सीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत् । (पृष्ठ ८१-८२)^१

कादम्बरी के मौन्दर्य के वर्णन में उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष अलंकारों की छटा दर्शनीय है :—

१. पृष्ठ-संख्या एम० आर० काले के कादम्बरी के संस्करण (१९२८ ई०) के अनुसार दी गई है।

देहार्धप्रविष्टहरगवितगौरीविजिगीषयेव सर्वाङ्गानुप्रविष्टमन्मथदर्शित-
सौभाग्यविशेषाम्, ... गौरीमिव श्वेतांशुकरचितोत्तमाङ्गाभरणाम्, ... आकाश-
कमलिनीमिव स्वच्छाम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्, ... कल्पतरुतामिव
कामफलप्रदाम् ... कादम्बरीं ददर्श । (पृष्ठ २८४-२८८)

अच्छोद सरोवर-वर्णन में सरोवर की-सी स्वच्छता भाषा में भी देखी जा सकती है :—

तस्य तरुलण्डस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, ... निर्गमन-
मार्गमिव सागराणाम्, निस्पन्दमिव दिशाम्, अंशावतारमिव गगनतलस्य, कैलाशमिव
द्रवतामापन्नम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतं ... मदन-
ध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, ... अतिमनोहरम् अच्छोदं नाम सरो दृष्टवान् ।
(पृष्ठ १६७-२००)

ऋषि जाबालि के वर्णन में कला और कल्पना का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है :—

स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मे-
निर्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्, ... शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, ...
पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमादिलिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।
(पृष्ठ ७६)

विन्ध्याटवी-वर्णन में समासमयस्त्व, ओज गुण और विरोधाभास का ताल-
मेल दर्शनीय है :—

उन्मदमातङ्गकपोलस्थलगलितमदसलिलसिक्तेनेव निरन्तरमेलालतावनेन
मदगन्धिनान्धकारिता, ... प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहितमृत्युभीषणा महिषा-
धिष्ठिता च, ... क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी
नाम । (पृष्ठ ३७-४०)

वसन्तवर्णन में माधुर्य और कोमलकान्त पदावली का समन्वय अत्यन्त मनोरम है :—

कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानङ्गध्वजांशुकेषु, ... मधुकरकुलकलङ्क-
कालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, ... मधुमासदिवसेषु ० ।

(पृष्ठ २२१-२२२)

शुकनासोपदेश में चपला लक्ष्मी के दोष-वर्णन में प्रसाद, प्रवाह, छोटे वाक्य, माधुर्य और वक्रोक्ति का समन्वय किस सहृदय का हृदय आह्लादित नहीं कर देता है :—

न परिचयं रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रम-
मनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न धर्म-
मनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते । न विशेषज्ञतां विचारयति ।

(पृष्ठ १७१)

बाण की रचना में अलंकार स्वयं आते गए हैं। श्लेष, परिसंख्या और विरोधाभास वाले स्थल आयास-साध्य हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के उदाहरण पद-पद पर प्राप्य हैं। उज्जयिनी-वर्णन में परिसंख्या अलंकार का प्रयोग करते हुए वर्णन किया गया है कि—केवल मणि-दीपों में ही अनिर्वाण (न बुझना) था, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसे मोक्ष-प्राप्ति न हो। चकवा-चकवी के युगल का ही वियोग होता था, अन्य किसी के जोड़े का वियोग नहीं होता था। वर्ण-
(जाति) परीक्षा सोने की ही होती थी, अन्य की नहीं। ध्वजाओं में ही अस्थिरता थी, अन्यत्र नहीं। कुमुद ही मित्र (सूर्य) से द्वेष करते थे, अन्य कोई मित्रद्वेषी नहीं था।

यस्यां चानिवृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, अन्तस्तरलता हाराणाम्, ... द्वन्द्ववियोगश्च-
क्रवाकनाम्नाम्, वर्णपरीक्षा कनकानाम्, अस्थिरत्वं ध्वजानाम्, मित्रद्वेषः कुमुदा-
नाम्, कोशगुप्तिरसीनाम् ।

(पृष्ठ ६१)

शुकनासोपदेश में लक्ष्मी-स्वभाववर्णन में विरोधाभास का मनोहर प्रयोग है :—

उन्नतिमादधानाऽपि नीचस्वभावतामाविष्करोति । अमृतसहोदरापि कटु-
कविपाका । विप्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना । पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया ।

(पृष्ठ १७३)

राजकुलवर्णन में श्लेष के आधार पर उत्कृष्ट कवि के गद्य का स्वरूप बताया गया है कि उसमें विविध पदों के द्वारा नवीन अर्थों की अभिव्यक्ति की जाती है।

उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्, नाटक-
मिव प्रकटपताकाङ्कशोभितम् ।

(पृष्ठ १४६)

महाश्वेता में नवयौवनावस्था का प्रवेश इसी प्रकार हुआ जैसे वसन्त में चैत्रमास, चैत्रमास में नवपल्लव, नवपल्लव में फूल, फूल में भौरा, भौरा में मद । इसमें एकावली अलंकार का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नव-
पल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम् ।
(पृष्ठ २२१)

उपर्युक्त वर्णनों में बाण की सूक्ष्मदृष्टि, वर्णनों की व्यापकता, वर्णनों की सर्वांगीणता के साथ ही रस, अलंकार और मनोरम कल्पनाओं का समन्वय सहृदयों को यह कहने के लिए बाध्य करता है कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' ।

बाण का काव्य-सौन्दर्य

बाण के वर्णनों में ही कला का अनुपम निखरा रूप नहीं है, अपितु उसका काव्य-सौन्दर्य भाव और भाषा के समन्वय, कल्पनाओं की ऊँची उड़ान, विविध रसों के परिपाक, शृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों के सजीव चित्रण, अन्तर्भावों के मार्मिक विश्लेषण, बीच-बीच में सुन्दर सुभाषितों की पुट, अलंकारों से भाषा के अलंकरण और प्रसाद एवं माधुर्य के संमिश्रण में परिलक्षित होता है ।

भाव और भाषा—बाण ने भाव और भाषा का इतना सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है कि शृंगार के वर्णनों में कोमल-कान्त पदावली है, करुण रस के वर्णन में सरल सुबोध पदावली और विन्ध्याटवी-वर्णन, शबर-सैन्य-वर्णन आदि में ओज गुण का परिधान नित-नूतन-परिधाना नायिका के वेष-भूषा का सौन्दर्य प्रस्तुत करता है ।

पुण्डरीक को देखकर महाश्वेता के हृदय में प्रेमाविर्भाव का कितना सजीव चित्रण कवि ने किया है । इसमें भाव-भाषा का समन्वय प्रशंसनीय है :—

इति विचिन्तयन्तीमेव सामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नव-
यौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरौ परवशामकरोत् ।...
स्तम्भितेव लिखितेवोत्कीर्णैव संयतेव मूर्छितेव केनापि विधृतेव निष्पन्दसक-
लावयवा... तमतिचिरं व्यलोकयम् ।
(पृष्ठ २२६-२२७)

रस-परिपाक—बाण रससिद्ध कवि हैं। शृंगार उनका सर्वप्रिय रस है। वे संभोग शृंगार के वर्णन में जितने सिद्धहस्त हैं, उससे अधिक सफलता उन्हें विप्रलम्ब शृंगार के वर्णन में मिली है। महाश्वेता और कादम्बरी के हृदय में अपने प्रेमी चन्द्रापीड और पुण्डरीक को देखकर प्रेम के अंकुरित होने, विकसित होने, पल्लवित होने और पुष्पित होने का इतना मनोवैज्ञानिक वर्णन है कि वह हृदयग्राही ही नहीं अपितु मनोविज्ञान के छात्र के लिए अध्ययन का विषय है। बाण जिस रस को उठाते हैं, उसका मार्मिक वर्णन करके उसका पूर्ण रसास्वाद कराते हैं। महाश्वेता पुण्डरीक के प्रति अपने पूर्वराग का स्वयं वर्णन करती है कि—

अनन्तरं च मेऽन्तर्मदनावकाशमिव दातुमाहितसंताना निरीयुः श्वासमस्तः ।
 साभिलाषं हृदयमाख्यातुमिव स्फुरितमुखमभूत् कुचयुगलम् । स्वेदसलिललव-
 लेखाक्षालितेवागलल्लज्जा । (पृष्ठ २२७)

महाश्वेता के वियोग में पुण्डरीक की मृत्यु पर सन्तप्त कपिंजल के विलाप में प्रसाद और स्वाभाविकता की अनुपम पुट मिलती है :—

हा धर्मं निष्परिग्रहोऽसि, हा तपो निराश्रयमसि, हा सरस्वति विधवासि,
 हा सत्यमनाथमसि, हा सुरलोक शून्यमसि । (पृष्ठ २५४)

चरित्र-चित्रण—बाण ने हर्षचरित में ऐतिहासिक और कादम्बरी में काल्पनिक पात्र लिए हैं। कादम्बरी के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं। इसमें राजा, ऋषि, सेवक, प्रेमी, प्रेमिकाएँ सभी हैं। इतना ही नहीं, दिव्य लोक के पात्र भी इसमें अपना योग देते हैं। चन्द्रमा ही चन्द्रापीड होते हैं, रोहिणी पत्रलेखा और लक्ष्मी चाण्डालकन्या। चन्द्रापीड और वैशम्पायन उदात्त गुणों से युक्त होते हुए भी प्रेम-भावना से आप्लावित हैं। कादम्बरी और महाश्वेता सौन्दर्य की मूर्ति, आकर्षण की निधि और गुणों की आकर हैं। शुकनास जैसा व्यक्तित्व अन्यत्र दुर्लभ है। मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण उत्तम हुआ है। गौण पात्रों का चित्रण उतना प्रभावशाली नहीं है।

प्रेम और सौन्दर्य का निरूपण—बाण मर्यादित प्रेम के समर्थक हैं। वासना-जन्य प्रेम स्थायी और सफल नहीं होता। तपःपूत प्रेम की परिणति स्थायी प्रणय एवं परिणय में होती है। कादम्बरी और महाश्वेता घोर तपस्या के बाद अपने प्रियतमों को प्राप्त करती हैं और सुखमय विवाहित-जीवन व्यतीत करती हैं।

वाण ने प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय-व्यापार में विशेषरूप से चित्रित किया है कि प्रेमिका पहले अपने प्रिय पर अनुरक्त और आकृष्ट होती है, तत्पश्चात् प्रेमी अपनी प्रेमिका पर रोज़ता है। पहले महाश्वेता के हृदय में यौवनमुल्लस काम-भावना जागृत होती है, तदनन्तर पुण्डरीक के हृदय में। कामोद्रेक को सहन करने में स्त्री की अपेक्षा पुरुष निबल पड़ता है, अतएव काममन्तप्त पुण्डरीक का शरीरान्त होता है। वास्तविक प्रेम अवश्य सकल होता है, अतएव महाश्वेता को पुण्डरीक और कादम्बरी को चन्द्रापीड की प्राप्ति होती है।

सामाजिक चित्रण—सांस्कृतिक दृष्टि से हर्षचरित और कादम्बरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। वाण ने तत्कालीन समाज और संस्कृति का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वर्णों की स्थिति, नारी की स्थिति, समाज के विभिन्न वर्गों की स्थिति, शिक्षा, संस्कृति, रूढ़ियाँ और परम्पराएँ, विविध मान्यताओं और विभिन्न कलाओं आदि का वाण ने सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया है।^१

सुभाषित—वाण ने हर्षचरित और कादम्बरी में स्थान-स्थान पर अनुभव-सिद्ध सुन्दर सुभाषितों के द्वारा ग्रन्थों का गौरव और बढ़ा दिया है। ये सुभाषित वाण की सूक्ष्म दृष्टि और चिन्तन शक्ति के परिचायक हैं—क्षमा हि मूलं सर्वतप-साम् (हर्ष० उ० १), अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः (हर्ष० उ० १), अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी (हर्ष० उ० ५), प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः (हर्ष० उ० ५), शोको नाम पर्यायः पिशाचस्य (हर्ष० उ० ८), भव्या न द्विरुच्चारयन्ति वाचम् (हर्ष० उ० ८), अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः (काद० पृष्ठ १०४), अमोघफला हि महामुनिसेवा भवति (का० १०६), अहो जगति जन्तूनामसमर्थितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तराणि (का० २१४), कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा (का० २२८), अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः (का० २२८), मूढो हि मदनेनायास्यते (का० २४३), अचिन्त्यो हि महात्मनां प्रभावः (का० २६७)।

वाण में वाल्मीकि का माधुर्य है, व्यास के महाभारत का प्रसाद गुण है, कालिदास की कोमल कल्पना है, दण्डी का पदलालित्य है और सुबन्धु का ओज गुण है। इस प्रकार वाण ने काव्यामृतरूपी पंचगव्य का पान कराकर एक नवीन समन्वय की धारा प्रस्तुत की है।

१. देखो—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल-कृत—कादम्बरी, एक सांस्कृतिक अध्ययन; हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन।

भूषणभट्ट—भूषणभट्ट ने शेष कादम्बरी-कथा को पूर्ण किया है। भूषणभट्ट अपने योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। बाण की-सी प्रौढता मले ही उनमें न हो, परन्तु भूषणभट्ट की भाषा में भी सजीवता, सरसता, मोहकता, अलंकार-विन्यास और पदमाधुर्य प्राप्त होता है

७. (घ) विश्वेश्वर पाण्डेय

विश्वेश्वरः सुपाण्डेयः, श्लेषाऽऽश्लेषविचक्षणः।

भवं गतोऽपि यो लेभे, दिव्यां मन्दारमञ्जरीम्॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—ये अल्मोड़ा जिले के पाटिया ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर पाण्डेय था। इनका गोत्र मारद्वाज था। इनके पिता के कोई सन्तान नहीं थी। वृद्धावस्था में काशी में विश्वनाथ की कृपा से इनका जन्म हुआ, अतः इनका नाम विश्वेश्वर पड़ा। ये बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धि के थे। इन्होंने व्याकरण, दर्शन और साहित्य-विषयक २० ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें से ६ ग्रन्थ मुद्रित हैं, शेष अप्रकाशित हैं। इनके प्रकाशित ग्रन्थों के नाम हैं :—

१. वैयाकरणसिद्धान्तमुधानिधि, २. अलंकार-कौस्तुभ, ३. रसचन्द्रिका, ४. आर्यासप्तशती, ५. अलंकारप्रदीप, ६. अलंकारमुक्तावली, ७. कवीन्द्र-कणभिरण, ८. रोमावलीशतक, ९. मन्दारमञ्जरी। अन्य ग्रन्थ व्याकरण, दर्शन, साहित्य और तन्त्र विषयों से संबद्ध हैं। इनका समय १८वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

मन्दारमञ्जरी—इसका पूर्व-भाग पर्वतीय पुस्तक-प्रकाशन-मण्डल, वाराणसी ने १९२५ ई० में प्रकाशित किया है। बाण के ग्रन्थों के तुल्य यह भी अपूर्ण कृति है। इनके किसी शिष्य ने उत्तर भाग लिखकर पूर्ण किया है, परन्तु वह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें पुष्पपुर के राजा राजशेखर एवं रानी मलयवती के पुत्र राजकुमार चित्रमानु और विद्याधर चन्द्रकेतु एवं चन्द्रलेखा की पुत्री मन्दारमञ्जरी के प्रणय और परिणय का वर्णन है।

शैली—श्री पाण्डेय ने बाण की शैली का अनुवर्तन किया है। उनके ग्रन्थ का आदर्श बाणकृत कादम्बरी है। उन्होंने ग्रन्थ को रोचक बनाने के लिए सुन्दर

कथा की कल्पना की है। मन्दारमञ्जरी की कथा कादम्बरी की कथा के तुल्य उलझी हुई है। कथा में उप-कथा का प्रवाह चलता जाता है। मूल कथा छूट जाती है और उपकथाओं का वर्णन प्रवाहित रहता है। अन्त में कथा का जोड़ मिलता है। श्री पाण्डेय की भाषा प्रौढ, अलंकृत और परिष्कृत है। ये व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष आदि के भी धुरन्धर विद्वान् थे। अतः पद-पद पर श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास और परिसंख्या आदि के प्रयोगों में इनका शास्त्रीय पाण्डित्य दृष्टिगोचर होता है। भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय है। अलंकारों की भी योजना दर्शनीय है। शास्त्रीय पाण्डित्य चमत्कारिक है। विविध-विषयाव-गाही ज्ञान भी प्रशंसनीय है। लेखक ने प्रयत्न किया है कि वाण की-सी सुन्दर रचना प्रस्तुत कर सकें। इनकी भाषा में सरसता और माधुर्य है। इनमें वर्णन-शक्ति अनुपम है। प्रत्येक वर्णन इतने व्यापक और सर्वांगीण हैं कि लेखक की सूक्ष्म दृष्टि की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ की कतिपय न्यूनताएँ भी हैं, जो दृष्टि से ओझल नहीं की जा सकती हैं :—(१) ग्रन्थ की अपूर्णता, (२) लेखक के कला-पक्ष की प्रधानता, (३) पाण्डित्य-प्रदर्शन के चक्कर में फँसकर कथा को अत्यन्त गौण बना देना, (४) कथा में प्रवाह का अत्यन्त अभाव, (५) भाव-पक्ष की न्यूनता, (६) लोक-व्यवहार, लोक-संस्कृति और व्यावहारिकता से सर्वथा अछूता रहना, (७) केवल प्राचीन पद्धति और परम्परा का ही आश्रयण एवं नवीनता का बहिष्कार, (८) हृदयपक्ष की न्यूनता और वाग्जाल का प्राधान्य, (९) सरल, सरस पदावली के स्थान पर पाण्डित्यपूर्ण दीर्घसमासबहुल पदावली, (१०) रस-परिपाक पर कम ध्यान।

इसके कुछ वर्णन मनोरम और अत्यन्त काव्यात्मक हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं :—नगरवर्णन, नायकनृपवर्णन, देवी-वर्णन, स्वप्नवर्णन, कुमार-शिक्षणवर्णन, रथवर्णन, भूगोलवर्णन, तपोवन-वर्णन, बिन्दुसरोवर्णन, कामदशावर्णन, मन्दारमञ्जरी-वर्णन।

इस ग्रन्थ पर कादम्बरी की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। नगर-वर्णन पर उज्जयिनी वर्णन का, मन्त्रिगुणाः पर शुकनास-वर्णन का, कुमारशिक्षण-वर्णन पर चन्द्रापीडशिक्षावर्णन तथा शुकनासोपदेश का और मन्दारमञ्जरी-

वर्णन में कादम्बरी-वर्णन का। कवि में बाण की-सी कल्पनाशक्ति, सहृदयता और संवेदना नहीं है, अतः वे बाण की समकक्षता में असफल रहे हैं।

मन्दारमञ्जरी के कुछ मनोरम प्रसंग ये हैं—लक्ष्मी-वर्णन में व्यंग्य की पुट देखें :—

तुषारवृष्टिर्बुद्धिकमलिनीनाम्, कुलविद्या कौटिल्यस्य, वसन्तवेला कामस्य,
दुर्वासोमनोभूमिः क्रोधस्य, सौभाग्यसिद्धिर्लोभस्य, लज्जकाऽहंकारराक्षसानाम्,
विभावरी विवेकविभस्वतः । (पृष्ठ १५८-१५९)

मन्दारमञ्जरी के वर्णन में विरोधाभास की छटा देखें :—

सुगतानुगतामपि मन्मथायत्ताम्, उन्नतपयोधरामपि विलसन्नयनखञ्जनाम्,
मन्दोदरीमपि त्यक्तविभीषणभावाम्, मृगाक्षीमपि पुण्डरीकेक्षणाम्, अनुदरामपि
तिलोत्तमासोदराम् ॥ (पृष्ठ ३७१-३७३)

प्रधानामात्य बुद्धिनिधि के वर्णन में श्लेषमूलक उपमा के प्रयोग प्रशंसनीय हैं :—वैयाकरणत्वादेव सन्धिविग्रहतत्त्वज्ञः, बृहस्पतिरिव विबुधग्रः, भार्गव इव कविपदवाच्यः, उद्गातेव सामप्रयोगाभिज्ञः, सांख्य इवाभ्युपगतपुरुषभेदः ।

(पृष्ठ ६८-७१)

राजा राजशेखर के वर्णन में भाषासौष्ठव दर्शनीय है :—

प्रवीरः प्रवीणानाम्, धुरीणो धीराणाम्, मान्यो वदान्यानाम्, महनीयो
महोत्साहानाम्, ... तृष्णक् धर्मं, क्रुद्धो दुर्विनीतेषु, मूढो दुर्नये ।

(पृष्ठ ४४-४५)

७. (ङ) अम्बिकादत्त व्यास

‘अम्बिका’ शिवमाराद्धुं, ‘व्यास’-शैलीं मनोरमाम् ।

‘शिवराजा’-पदेशेन, धत्ते हिन्दुत्वरक्षिकाम् ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—‘बिहारी-विहार’ में श्री व्यास जी ने अपना संक्षिप्त परिचय लिखा है। इनके पूर्वज राजस्थान में जयपुर के निवासी थे। इनके पितामह काशी में आकर रहने लगे। इनका जन्म चैत्र शुक्ला ८, संवत् १९१५ वि० (१८५८ ई०) तथा मृत्यु मार्गशीर्ष कृष्णा १३, सं० १९५७ वि०

(१६०० ई०) में हुई। इनकी शिक्षा काशी में ही हुई। इन्होंने व्याकरण, साहित्य आदि में विशेष योग्यता प्राप्त की। साहित्य इनका प्रिय विषय रहा। मृत्यु के पूर्व ये गवर्नमेंट संस्कृत-कालेज पटना में प्राध्यापक थे। इन्होंने संस्कृत और हिन्दी में छोटी-बड़ी सब मिलाकर ७८ पुस्तकें लिखी हैं। व्यास 'जी की प्रतिष्ठा 'शिवराजविजय' गद्य-काव्य के आधार पर ही है।

शिवराजविजय—यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें १२ निःश्वासों (अध्यायों) में शिवाजी का जीवन-चरित वर्णित है। इसमें दो स्वतन्त्र कथाएँ समानान्तर चली हैं, जो एक दूसरे की पूरक हैं। एक का नायक रामसिंह है और दूसरे का शिवाजी। इसके मुख्य पात्र हैं :—शिवाजी, गौरसिंह, अफजल खाँ, शाइस्ता खाँ, यशवन्तसिंह, रसनारी (रोशनारा) आदि।

शैली—यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी भाषा-शैली कादम्बरी आदि के तुल्य है। इसमें वाक्य-विन्यास, अलंकारों और रसों का समन्वय प्राचीन परम्परा के अनुसार है, परन्तु इसका रूप-विधान पाश्चात्य प्रणाली से लिखे-जाने वाले उपन्यासों के तुल्य है। इस पर बंगीय उपन्यासों का भी पर्याप्त प्रभाव है। अतः यह प्राचीन और नवीन काव्य की शृंखला, प्राच्य और पाश्चात्य शैली का समन्वय तथा काव्य और इतिहास का संमिश्रणात्मक प्रगतिवादी उपन्यास है। इसमें प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्पराओं के निर्वाह के साथ ही नवीनता की पुट, राजनीति का संमिश्रण, इतिहास का संयोग, प्रगतिवाद का प्रयोग, देशप्रेम की भावना, स्वाधीनता की पुकार और सनातनधर्म के संरक्षण की कामना अन्तर्निहित हैं। इसलिए यह ग्रन्थ नवीन और प्राचीन सभी दृष्टि के पाठकों के लिए आकर्षक रहा है। यह संस्कृत गद्य-काव्य में नवीन युगधारा का प्रवर्तक है। इसमें एक ओर प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर ओज एवं समासबहुलता। इसमें वैदर्भी और गौडी दोनों शैलियों का समन्वय है। इसके वर्णन अत्यन्त सुसूचित-पूर्ण और प्रभावोत्पादक हैं। देश की सामाजिक और आर्थिक अवस्था के चित्रण में लेखक को बहुत सफलता प्राप्त हुई है। यवनों के अत्याचार, मन्दिरादि का ध्वंस, वैदिक कार्यकलापों पर प्रतिबन्ध, निर्धन जनता को बलात् यवन बनाना, स्त्रियों की मानमर्यादा का अपहरण आदि का स्थान-स्थान पर विस्तृत वर्णन है। दूसरी ओर शिवाजी के न्याय, परोपकार, साहस, उदारता और उच्च चरित्र की प्रशंसा है। इसका मुख्य रस वीर है, तथापि प्रायः सभी अन्य रसों का गौण रूप में प्रयोग है।

इसमें प्रकृति-चित्रण, प्रौढता, परिष्कार, देशप्रेम, सजीव वर्णन और अलंकारों के समावेश का समन्वय प्रशंसनीय है। ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो केवल कोषग्रन्थों में ही प्राप्य थे। नए भावों के लिए नए शब्द गढ़े भी गए हैं। इन गुणों के कारण व्यास जी 'आधुनिक बाण' कहे जाते हैं।

इसके संवाद बहुत रोचक हैं। काव्य में नाटकीयता है। भाषा प्रचलित एवं मुहावरेदार है। स्थान-स्थान पर व्यंग्य का मिश्रण है। भाषा में प्रवाह है। कथा-प्रवाह अव्याहत है। अपने भावों को सुन्दर और स्पष्ट कहने में व्यास जी अनुपम हैं। उनमें दण्डी और बाण दोनों की शैली के गुण दिखाई पड़ते हैं।

अफजल खाँ का दुश्चरित्र प्रसाद-गुणयुक्त भाषा में देखें :—

अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रुकुंसकः, अद्य वीणावादनम् इति स्वच्छन्दैरुच्छृङ्खलाऽऽचरणैर्दिनानि गमयति ।
(शिव० पृष्ठ ५४)

इसके विपरीत शिवाजी का सच्चरित्र माधुर्य एवं प्रसाद से समन्वित देखिए :—

एतद्राज्यवर्तिनो यवना अप्येतस्य सौजन्येन, औदार्येण, गाम्भीर्येण, सदा-चारेण, सौहार्देन, करुणया, प्रेम्णा च वशंवदा इव प्रशंसाभिः समयं गमयन्ति ।
(शिव० पृष्ठ ५४७)

देवी दुर्गा के वर्णन में समास-प्रधान गौडी शैली देखें :—

ततश्चाहं प्रलम्ब-सावर्त-लाङ्गूलम्, खरनखराग्र-संपात-सावटीकृत-भूभागम्,
पृष्ठ-संपृष्ट-देवी-दिव्य-बुकूलम्, परिपन्थिप्रतिकूलं शार्दूलम् ० ।
(पृष्ठ ५२३-५२४)

दुर्गा की मूर्ति के वर्णन में विरोधाभास का सुन्दर प्रयोग है :—

खर्वामप्यखर्वपराक्रमाम्, कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, स्थूलदर्शना-
मपि सूक्ष्मदर्शनाम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम्, कलितगौरवामपि
कलितलाघवाम् ।
(पृष्ठ ४३)

इस प्रकार व्यास जी नवजागृति और नवचेतना के प्रतीक हैं।

१. शिवराजविजय, काशी, १९४५ ई० संस्करण के अनुसार पृष्ठ-संख्या है।

७. (च) हृषीकेश भट्टाचार्य

हृषीकेशो नित्यं विशदरचनाचारचतुरः

प्रयुङ्क्ते वक्रोक्तिं बुधजनमनोज्ञां रसवतीम् ।

निबन्धं संपुष्पन्नभिमतसरस्यन्दरुचिरं

चिरं धत्ते कीर्तिं सुरगिरि दधन्नव्यसरणिम् ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—इनके वंशप्रवर्तक नारायण थे । ये यशोहर (जैसोर) जिले में घूलियापुर ग्राम के निवासी थे । श्री हृषीकेश इनके वंशज थे । इनके पितामह का नाम आनन्दचन्द्र शिरोमणि था और पिता का नाम मधुसूदन शर्मा था । इनका स्थितिकाल १८५० ई० से १९१३ ई० है । ये पूर्वी बंगाल (वर्तमान बंगलादेश) से १८७२ ई० में पंजाब चले गए । बाद में ये ओरियन्टल कालेज लाहौर में संस्कृत-प्राध्यापक रहे । इन्होंने 'विद्योदय' नामक संस्कृत-पत्रिका का ४४ वर्ष संपादन किया । ये सामयिक विषयों पर विनोदपूर्ण शैली में इसमें लेख लिखते रहे । प्रो० मैक्समूलर भी इनकी लेखन-शैली से प्रभावित थे, अतः इनके प्रशंसक रहे । इनके लेखों का संग्रह 'प्रबन्धमञ्जरी' नाम से मुद्रित हुआ है ।

प्रबन्धमञ्जरी—श्री हृषिकेश शास्त्री भट्टाचार्य के निबन्धों का संग्रह श्री पद्मसिंह शर्मा एवं डा० हरिदत्त शास्त्री एकादशतीर्थ ने १९३० ई० में प्रकाशित किया था । भूमिका भाग डा० हरिदत्त शास्त्री ने लिखा है । इसमें ११ निबन्ध हैं । इनमें मुख्य हैं—उद्भिज्ज-परिषद्, महारण्य-पर्यवेक्षणम्, उदर-दर्शनम्, संस्कृत-भाषाया वैशिष्ट्यम् ।

शैली—इनकी शैली वैदर्भी है । इनकी भाषा में शक्तिमता, ओजस्विता और मन्दाकिनी का-सा प्रवाह है । भाषा में प्रसाद और माधुर्य की अनुपम छटा है । कहीं-कहीं कुछ लम्बे समासों का भी प्रयोग है, परन्तु उनमें पद-विन्यास अत्यन्त सरल और सुबोध है । श्री शास्त्री पाश्चात्य निबन्ध-कला का अनुवर्तन करते हुए संस्कृत में निबन्ध-कला के जन्मदाता हैं । इनसे पूर्व संस्कृत में निबन्ध-लेखन का अभाव था । इनकी भाषा में लक्षणा और व्यञ्जना-शक्ति प्रधान हैं । इनके व्यंग्य-प्रयोग अत्यन्त मार्मिक और सुरुचिपूर्ण हैं । उद्भिज्जपरिषद् और महारण्य-

पर्यवेक्षण में सिंह, पीपल आदि के व्याख्यानो में मनुष्यों की पशुओं और तृणादि से तुलना तथा मनुष्यों की स्वार्थपरता, कायरता, हिंसावृत्ति, कामुकता, अस्थिर-चित्तता, पाखण्ड और पशुबलि आदि का बहुत रोचक एवं मार्मिक वर्णन है।

निबन्धों की भाषा सरस, सरल, विनोदपूर्ण, व्यंग्यप्रधान तथा प्रांजल है। उद्भिज्ज-परिषद् में श्रीमान् अश्वत्थदेव (पीपल वृक्ष) वनस्पतियों को संबोधन करते हुए कहते हैं कि संसार में मनुष्यों से बढ़कर कोई निकृष्ट नहीं है। ये अत्यन्त स्वार्थी, वंचक, मायावी एवं हिंसक होते हैं और तृणादि से भी तुच्छ हैं।

मानवा नाम सर्वासु सृष्टिधारासु निकृष्टतमा सृष्टिः । ... जीवसृष्टिप्रवाहेषु मानवा इव परप्रतारकाः, स्वार्थसाधनपराः, मायाविनः, कपटव्यवहारकुशलाः, नीचस्वभावाः, हिंसानिरता जीवा न विद्यन्ते । मनुष्याणां हिंसावृत्तिस्तु निरवधिः, पशुहत्या तु तेषामाक्रीडनम् । तेषां पशूपहारव्यापारम् आलोक्य जडानामप्यस्माकं विदीर्यन्ते खलु हृदयम् । (प्रबन्ध० पृष्ठ ४०-५८)

मनुष्यों की स्वार्थ-लिप्सा का एक मनोरम चित्रण देखिए :—

मनुजन्मानः किल प्रतिक्षणं स्वार्थसाधनाय सर्वात्मना प्रवर्तन्ते, न धर्ममनु-धावन्ति, न सत्यमनुबध्नन्ति, परं तृणवदुपेक्षन्ते स्नेहम्, न स्वल्पमपि बिभ्यन्ति पापाचारेभ्यः, न किञ्चिदपि लज्जन्ते मुहुरनृतव्यवहारात्, न हि क्षणमपि विरमन्ति परपीडनात् । (पृष्ठ ५६)

इसी प्रकार महारण्यपर्यवेक्षण में सिंह समापतिपद से अपने व्याख्यान में पाश्चात्य सभ्यता पर रोचक चुटकी लेता है और कहता है कि ये सभ्यता के पुजारी स्वार्थान्ध होकर सारे पाप करते हैं। देखने में मनोहर होने पर भी हृदय से कुटिल होते हैं—

इयं हि सभ्यता महामोहमयी पिशाचीव दुस्तरे मोहगते निपातयति । सभ्यतैव तेषां यावदनर्थानां मूलम् । यत्र च जना निरन्तरं परस्परं विजेतुं स्पर्धन्ते, पीडयन्ति दुर्बलान्, वञ्चयन्ति मुग्धान्, बहिः समाचरन्ति बकव्रतम्, गूढमाश्रयन्ति द्विजिह्वाताम्, न दयन्ते, न स्निह्यन्ति, न बिभ्यत्यधर्मात्, न लज्जन्ते लोकाप-वादात् । (पृष्ठ ११४-११५)

सभ्य कहे जाने वाले लोगों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है :—

सभ्यतमा हि जना बहिः शुभदर्शना अपि अन्तरत्यन्तमलशालिनो भवन्ति ।

न ते क्षणमपि विश्राममुखं लभन्ते, अथवा विश्रामाभावो हि तेषां महत्त्वस्य महोन्न-
तेश्च मुख्यं चिह्नम् । (पृष्ठ ११६)

इससे भी अधिक रोचक उदर-ब्रह्म का वर्णन है कि पेट ही ब्रह्म है । यही सर्वत्र विद्यमान है । पेटरूपी ब्रह्म के लिए ही सारी सृष्टि है । इसका अन्त नहीं है । यही सबका सेव्य है । दार्शनिकता की पुट देखिए :—

उदरदर्शनम् । अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । उदरं तत् । व्यापकत्वात् । अनाद्य-
नन्तत्वात् । ओदासीन्याच्च । अपरिच्छेद्यत्वात् । सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुत्वात् ।
सर्वसेव्यत्वात् । (पृष्ठ १६२-२०३)

श्री हृषीकेश शास्त्री वस्तुतः तथाकथित मृत संस्कृत भाषा को अमृत बनाने
वाले हैं । ये निबन्ध की नई विधा के प्रवर्तक हैं । भाषा में नवीनता की पुट देकर
उसे रोचक बनाने वाले हैं । ये 'अभिनव बाण' कहे जाते हैं ! अतएव श्री पं०
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का कथन सत्य है कि—

मुद्रयति वदनविवरं मृतभाषावादिनां मुहेराणाम् ।

स्मरयति च भट्टबाणं भट्टाचार्यस्य सा वाणी ॥

(प्रबन्ध० भूमिका पृ० २)

७. (छ) पण्डिता क्षमाराव

प्राच्यं प्रतीच्यं समुपास्य शास्त्रं

गद्यं च पद्यं तनुतेऽनवद्यम् ।

कथा-प्रबन्धे रुचिमादधाना

'क्षमा' क्षमेवाक्षयमोदमूर्तिः ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—पण्डिता क्षमाराव का जन्म एक विद्व-
त्परिवार में ४ जुलाई १८६० ई० को हुआ था । इनके पिता श्री पण्डित शंकर
पांडुरंग जी थे । १९५४ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ । इन्होंने छोटी बड़ी
मिलाकर ५० से अधिक पुस्तकें संस्कृत में लिखी हैं । इन्होंने ७ एकांकी नाटक,
४ तीन-अंक वाले नाटक, ४ जीवन-चरित (पद्यात्मक), महात्मा गांधी का
जीवन-चरित ३ भागों में, ३५ लघु कथाएँ तथा विविध निबन्ध लिखे हैं । इनका

‘कथापंचक’ १९३३ ई० में, द्वितीय कथासंग्रह ‘ग्रामज्योतिः’ १९५४ ई० में और तृतीय कथासंग्रह ‘कथामुक्तावली’ १९५६ ई० में प्रकाशित हुए हैं। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं :—सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता, मीरालहरी, रामदासचरितम्, शंकरजीवनाख्यानम्, विचित्र-परिषद्-यात्री, तुकारामचरितम्। पं० क्षमाराव पर सागर विश्वविद्यालय से डा० कृष्णशर्मा को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व विषय पर पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त हुई है।

शैली—इनकी रचनाओं में प्रसाद और माधुर्य गुण अत्यधिक मात्रा में विद्यमान हैं। दोनों सत्याग्रहगीता में भगवद्गीता की शैली एवं भाषा का अनुकरण है। ये वैदर्भी रीति की कवयित्री हैं। इनके प्रकृति-वर्णन बहुत रोचक एवं व्यापक हैं। प्रकृति-वर्णनों में बाण की-सी भाषा और शैली दृष्टिगोचर होती है। ये देश और विदेशों में बहुत घूमी हुई थीं, अतः काश्मीर-वर्णन, बम्बई-वर्णन, पेरिस-वर्णन आदि में वहाँ का सजीव वातावरण प्रस्तुत किया गया है। इन पर महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन का बहुत प्रभाव पड़ा था, अतएव इनके सभी ग्रन्थों में देश-भक्ति, स्त्री-शिक्षा, विश्व-प्रेम, भारतीय संस्कृति, अहिंसा-दर्शन आदि का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण वर्णन है। इन्होंने महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, आधुनिक कहानियाँ, निबन्ध, सन्तों के जीवन-चरित आदि सभी विषयों पर सफलतापूर्वक रचना की है।

इनकी भाषा प्रवाहमयी, अलंकृत, रस-निष्यन्द-मधुर, सशक्त, परिष्कृत और प्रांजल है। भावानुसार भाषा एवं शब्दावली है। अलंकार स्वतः आते गए हैं। पाण्डित्य-प्रदर्शन का दुराग्रह नाममात्र को नहीं है। विविध शास्त्रज्ञता की झलक पद-पद पर परिलक्षित होती है। इनके ग्रन्थों में उपन्यासों के तुल्य सरसता और रोचकता है।

‘कथामुक्तावली’ इनकी १५ छोटी कहानियों का संग्रह है। इसमें प्रकृति-वर्णन, विधवा-विवाह आदि सामाजिक समस्याएँ, सतीत्व-चित्रण आदि से संबद्ध कहानियाँ हैं। उन्होंने विधवोद्वाहसंकटम् में सामाजिक कुरीतियों और धर्मान्विता का सुन्दर चित्रण किया है :—

‘विधवां युवतिं धर्मतो बोद्धुमिच्छामि। तदावयोः पाणिग्रहणं संपाद्यताम्। इति प्रार्थितैस्तैर्विप्रैः प्रोक्तम्-‘गम्यतामितो न संपादयिष्यामो विवाहमिमम्। धर्मलोपो भविष्यति विधवायाः पुनर्विवाहादिति’।

इस प्रकार पार्वती नामक पात्र का वैधव्यदुःख लेखिका को भी दुःखित कर रहा था। भाषा की सरलता और भावाभिव्यंजनक्षमता इसमें दर्शनीय है।

ऊर्मिला अपने पातिव्रत्य प्रेम से मृत पति को जीवित कर लेती है और असीम आनन्द से उत्फुल्ल हो उठती है।

पुलकोदञ्चितं शरीरमूमितलाया अभूत्, मनश्चोत्साहमुधासारैरभिषिक्तमिव समुल्लसितं समजनि। (कथा० पृष्ठ १४)

इसमें भाषा का लालित्य दर्शनीय है। मोहमयी (बम्बई) के वर्णन में बाण की भाषा की छाप देखिए :—

नगरीयममरावतीसौन्दर्याधरोकारिणी, वसुधातलनिखिलनगरीललामभूता, विपणीवातायनरचितरुचिराम्बररजतहैमपात्ररत्नखचितालंकारादिभूषिता मां नितान्तं व्यमोहयत्। (कथा० पृष्ठ ५१)

पण्डिता क्षमा में भाव है, सरल भाषा है, नैसर्गिक अलंकार हैं और युवति-जनोचित कोमल हृदय का समन्वय है।

७. (ज) डा० रामशरण त्रिपाठी

रामं शरणमास्थाय 'कौमुदी' व्यतनोन्मुदे।

'कथा' व्याकृतिमाश्रित्य भट्टाद् भट्टेर्विशिष्यते ॥ (कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—डा० रामशरण त्रिपाठी का जन्म माघ शुक्ला द्वितीया संवत् १९६२ वि० (१९०५ ई०) को बांदा जिले के मरका ग्राम में एक सभ्रान्त एवं विद्वान् परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा जौनपुर, लाहौर और काशी में हुई। ये १९७१ ई० तक के० जी० के० कालेज मुरादाबाद में संस्कृत के वरिष्ठ प्राध्यापक थे। १९७१ ई० से सेवा-निवृत्त हो गए हैं। इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से नीचे लिखी ग्रन्थ-संख्या ४ पर पी-एच० डी० उपाधि भी प्राप्त की है। इनके पुत्र डा० गयाचरण त्रिपाठी उदयपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग में रीडर हैं। इनके ५ ग्रन्थ प्रकाशित हो गए हैं :—१. रचनानुवाद-रत्नाकर, २. सरलज्योतिर्विज्ञान, ३. वेदान्तसार (भावबोधिनी टीका), ४. ब्रह्मसूत्रप्रमुखभाष्यपञ्चकसमालोचनम्, ५. कौमुदीकथाकल्लोलिनी।

कौमुदी-कथाकल्लोलिनी^१—इसमें ११ कल्लोलों (अध्यायों) में कौशाम्बी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की जन्म से लेकर गान्धर्व-महाभिषेक तक की कथा वर्णित है।

शैली—इसमें कथा के माध्यम से सिद्धान्तकौमुदी के सन्धि प्रकरण से लेकर उत्तरकृदन्त तक के रूपों का प्रयोग सिखाया गया है। भट्टि के तुल्य गद्य-काव्य के रूप में यह नया प्रयोग है। इसमें साहित्य और व्याकरण का उत्तम समन्वय है। इसमें व्याकरण के सभी प्रकरणों का सुन्दर निर्देश है। कथा अत्यन्त सरल और रोचक ढंग से लिखी गई है। इसमें सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि प्रसंगों में साहित्य की भी सुन्दर छटा है। इसमें बीच-बीच में छोटी कथाएँ भी संबद्ध हैं। इसकी भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। बीच-बीच में व्याकरण के कुछ दुरुह शब्द भी मिलते हैं, पर, कथा-प्रवाह में बाधा नहीं पहुँचाते। अनुप्रास, उपमा, श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास आदि अलंकार भी यथास्थान ग्रन्थ की शोभा बढ़ाते हैं।

नरवाहनदत्त के राज्याभिषेक में आए हुए राजाओं के वर्णन में कृदन्त-प्रयोग देखिए :—

आययुश्चास्याभिषेके प्राभूतपाणयः सर्वदिग्भ्यो दुराढ्यंभवा भक्ताः, स्वा-
ठ्यंकरा विद्याधराः, दुरूपस्थानेऽपि तस्मिन् स्थाने दुर्धर्षणाः, दुर्मर्षणाः, दुर्योधनाः,
वश्याः, सादेशवश्यंकारिणो भीता जिताश्च वैरिणः। (पृष्ठ ३४४)

सरल भाषा का प्रवाह भी दर्शनीय है :—

गतायां पद्मावतीसख्यां मन्त्रिपुत्रो राजपुत्रमवदत्—देव, कौतुकमेकमहं त्वां
दर्शयितुमिच्छामि, तत् त्वं पश्य। (पृष्ठ २५५)

स्त्रीप्रत्ययान्त प्रयोगों के साथ विरोधाभास का मिश्रण भी है :—

सवृषलीमप्यवृषलीम्, गोपीमप्यश्वपालिकाम्, देवमातृकामपि मानुषपितृकाम्,
सदाक्षीमप्यदाक्षीम्, कौशाम्बीमनुप्रतस्थे। (पृष्ठ ६५-६७)

अपत्याधिकार के प्रयोगों के साथ ही परिसंख्या अलंकार का भी समन्वय द्रष्टव्य है :—

विषप्रयोगः माण्डूकेयेषु, कापेयता कापेयेषु, गुणविच्छेदः तान्नुवाप्येषु,
तीक्ष्णता तक्ष्णेषु, नान्येषु दृश्यते स्म। (पृष्ठ १६४)

इसमें कथा और व्याकरण का समन्वय गंगा-यमुना का संगम ही है।

१. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा १९६१ ई० में प्रकाशित।

७. (भ) अन्य गद्यकार

गद्यकार	गद्यकाव्य	समय	विशेष
१० वीं शताब्दी ई०			
१. धनपाल	तिलकमञ्जरी	६७३ ई० लग०	वास्तु-मूर्ति-चित्र- कला-वर्णन भी है।
१२ वीं शताब्दी ई०			
२. वादीभसिंह	गद्यचिन्तामणि	१२०० ई०	जीवन्धर-कथा, ११ लंबक
१४ वीं शताब्दी ई०			
३. अगस्त्ये	कृष्णचरित	१३२० ई०	
१५ वीं शताब्दी ई०			
४. विद्यापति	भूपरिक्रमा	१५वीं शता०	भूगोल-वर्णन
१६ वीं शताब्दी ई०			
५. वामनभट्ट बाण	वेमभूपालचरित	१६वीं उ०	—
६. देवविजयगणी	रामचरित	१५६६ ई०	रामचरित
१७ वीं शताब्दी ई०			
७. वरददेशिक	गद्यरामायण	१७वीं उ०	
८. अहोविल नृसिंह	अभिनवकादम्बरी	१७वीं उ०	राजकृष्ण-कथा
९. कवीन्द्राचार्य	कवीन्द्रचन्द्रोदय, कवीन्द्रकल्पद्रुम	१६५० ई०	
१०. जगन्मोहन	देशावली-विवृति	१७वीं उ०	५६ राज्यों का वर्णन
११. महेशठाकुर	सर्वदेशवृत्तान्त-संग्रह	"	
१२. हरकवि (मानुभट्ट)	शंभुराज-चरित	"	
१६ वीं शताब्दी ई०			
१३. शैलदीक्षित	भारती-विलास, (तिरुमलाचार्य) कावेरी-गद्य, श्रीकृष्णाम्युदय	जन्म १८०६ ई०	'कमेडी ऑव एरर्स' का अनुवाद, कावेरी-तीर्थ श्रीकृष्णचरित
१४. तिमम कवि	सुजनमनः कुमुद- चन्द्रिका	१९वीं पू०	

गद्यकार	गद्यकाव्य	समय	विशेष
१५. अर्प्पा शास्त्री	संस्कृत-चन्द्रिका, सूनृतवादी	जन्म १८७३ ई०	पत्रिका
१६. कृष्णमाचार्य	पातिव्रत्य, पाणि- ग्रहण, वररुचि, सुशीला	१९वीं उ०	"
१७. अनन्ताचार्य	मञ्जुभाषिणी, संसारचक्र	जन्म १८७४ ई०	पत्रिका
१८. चक्रवर्ती राज- गोपाल	शैवालानी, कुमुदिनी, जन्म १८८२ ई० विलासकुमारी, संगर		उपन्यास "
१९. कल्याणराम शास्त्री	कनकलता	१९वीं उ०	उपन्यास
२०. कृष्णमाचार्य, कविरत्न	मन्दारवती	"	उपन्यास
२० वीं शताब्दी ई०			
२१. जग्गु अलवार आयंगर	जयन्तिका	२०वीं पू०	उपन्यास
२२. नारायण शास्त्री	विद्वन्चरितपंचकम् खिस्ते	"	५ जीवनचरित
२३. आचार्य शेषशायी	अष्टावक्रीयम्	"	—
२४. शैल ताताचार्य	दुर्गेशनन्दिनी, क्षत्रियरमणी	"	बंगला उपन्यासों का अनुवाद
२५. हरिचरण भट्टा- चार्य	कपालकुण्डला	"	संस्कृत-अनुवाद
२६. आचार्य श्रीशैल	मेनका	"	उपन्यास
२७. नरसिंहाचार्य	सौदामिनी	"	उपन्यास
२८. मेधाव्रत आचार्य	कुमुदिनी-चन्द्र	"	उपन्यास
२९. वामनकृष्ण चित्तले	लोकमान्य-तिलक- चरित	"	तिलक-जीवन

गद्यकार	गद्य-काव्य	समय	विशेष
३०. भगीरथप्रसाद	कथा-संवर्तिका	२०वीं पू०	१३ कथाएँ
	त्रिपाठी		
३१. दिलीपदत्त शर्मा	मुनिचरितामृतम्, प्रतापचम्पू	"	ऋषि दयानन्द, महाराणाप्रताप
३२. रंगनाथ	वाक्यरत्नावली	"	—
३३. सुब्रह्मण्यसूरि	आसेचनकरामायण	"	रामकथा
३४. वेंकटेश वामन	शिवावतार-प्रबन्ध	"	शिवाजी-रुथा
	सोवानि		
३५. डी० एस० शर्मा	गान्धी-सूत्र	"	१०८ सूत्र
३६. श्रीपाद शास्त्री	(कई जीवन-चरित) हसूरकर	"	जीवन-चरित
३७. स्वामी भाग-	गांधी-चरित	"	गांधी-जीवन
	वताचार्य		
३८. चारुदेव शास्त्री	गांधी-चरित	"	गांधी-जीवन
३९. व्यासराय शास्त्री	कालिदास नाटक- कथामञ्जरी	"	कालिदास-नाटक
४०. महर्लिंग शास्त्री	भास-नाटक-कथा	"	भास-नाटक
४१. गणपति शास्त्री,	सेतुयात्रानुवर्णनम् टी० के०	"	यात्रा-ग्रन्थ
४२. डा० मंगलदेव	प्रबन्ध-प्रकाश	"	संस्कृत-निबन्ध
	शास्त्री भाग १, २		
४३. रामावतार शर्मा,	साहित्यरत्नावली, महामहोपाध्याय कलाकौमुदी, भार- तीयमतिवृत्तम्, देशान्तरीयेतिहास- तरङ्ग	"	साहित्यिकनिबन्ध कलाविषयक " भारत-इतिहास विदेशों का इति- हास, १८वीं चियाँ
४४. द्विजेन्द्रनाथ	संस्कृतसाहित्यविमर्शः २०वीं उ०		सं० सा० इतिहास
	शास्त्री, आचार्य		

गद्यकार	गद्य-काव्य	समय	विशेष
४५. हंसराज अग्रवाल	संस्कृतसाहित्येति- हासः	२०वीं उ०	सं० सा० इतिहास
४६. रामस्वरूप शास्त्री	स्वप्नविज्ञान, त्रिपुरदाह	"	
४७. डा० रामजी उपाध्याय	द्रा सुपर्णा	"	
४८. डा० रमेशचन्द्र शुक्ल	प्रबन्धरत्नाकर, नाट्यसंस्कृतिसुधा	"	संस्कृत-निबन्ध नाट्यशास्त्र
४९. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	चतुर्वेदी-ग्रन्थमाला	"	चतुर्वेदी जी के लेखों का संग्रह
५०. शिवप्रसाद शास्त्री	संस्कृत-निबन्ध- मणिमाला	"	संस्कृत निबन्ध
५१. डा० हरिदत्त शास्त्री, एकादश- तीर्थ	प्रबन्धमंजरी- भूमिका	"	
५२. ब्रह्मानन्द शुक्ल	(विविध निबन्ध)	"	
५३. डा० कपिलदेव द्विवेदी	प्रौढरचनानुवाद- कौमुदी, संस्कृत- निबन्ध-शतकम् (३ भाग)	१९६० १९७२	संस्कृत-निबन्ध
५४. डा० रामकृष्ण आचार्य	संस्कृतनिबन्धाञ्जलिः	१९७०	"
५५. डा० राजकिशोर- सिंह	संस्कृत-निबन्ध- रत्नाकर (२ भाग)	१९७०	"
५६. डा० बाबूराम त्रिपाठी	संस्कृत-निबन्ध- कौमुदी	१९७०	"
५७. डा० पारसनाथ द्विवेदी	संस्कृतनिबन्धनव- नीतम्	१९७२	"

गद्यकार	गद्य-काव्य	समय	विशेष
५८. छज्जूराम शास्त्री	(विविध लेख)	२०वीं उ०	
५९. उमाकान्त शुक्ल	(व्यंग्यचित्र लेखक)	"	
स्त्री-लेखिकाएँ			
६०. राजम्मा	चन्द्रमौलि	जन्म १८८७ ई०	उपन्यास
६१. सुन्दरावली	रामायणचम्पू	१९०० ई० ल०	चम्पू
६२. ज्ञानसुन्दरी	हालास्यचम्पू	१९१० ई० ल०	

८. गीतिकाव्य

गीतिकाव्य का स्वरूप—गीतिकाव्य काव्य का वह स्वरूप है, जिसमें काव्यत्व के साथ संगीतात्मकता प्रमुख होती है। इन पद्यों को वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते हैं। 'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्य-कदेशानुसारि च' (सा० दर्पण ६-२३९)। गीतिकाव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं। ऐसे पद्यों में पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती है। वे अपने आप में पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं और पूरा भाव एक ही पद्य में पूर्ण हो जाता है। 'पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्' (ध्वन्यालोक)। अग्निपुराण में मुक्तक में चमत्कार को आवश्यक अंग बताया गया है। (मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्, ३३७-३६)। आनन्दवर्धन ने मुक्तक में रस-परिपाक को आवश्यक बताया है। (प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन् बन्धुमिच्छता । तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्, ७३)। गीतिकाव्य भावप्रधान होते हैं। इनमें अन्तरात्मा की ध्वनि होती है, जीवन का कोई एक पक्ष वर्णित होता है। महाकाव्य में यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य में एकदेशीयता। महाकाव्य में विस्तार है तो गीतिकाव्य में घनत्व; महाकाव्य में शिथिलता है तो गीतिकाव्य में एकाग्रता और तन्मयता। अतएव गीतिकाव्य अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

उद्गम और विकास—गीतिकाव्य का उद्गम ऋग्वेद से ही होता है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, साविता, अदिति और मरुत् आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का भाव-विह्वलता के साथ

वर्णन किया गया है। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत में अनेक स्थानों पर राम और श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। गीता के ११वें अध्याय में भगवान् कृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है। भागवत-पुराण, विष्णुपुराण, नारद-पुराण तथा अन्य पुराणों में उपास्यदेव की स्तुति मिलती है। अध्यात्म रामायण में राम की ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है। लौकिक साहित्य में कालिदास से गीतिकाव्य का प्रारम्भ होता है।

गीतिकाव्य के दो भेद—विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) शृंगारिक, (२) धार्मिक या नैतिक गीतिकाव्य। आधुनिक समीक्षाशास्त्र की दृष्टि से खण्डकाव्य और गीतिकाव्य को एक कहना आपत्तिजनक है। खण्डकाव्य विषय-प्रधान (Objective) होता है। इसमें कथा-वस्तु, इतिवृत्तात्मकता और बाह्य चित्रण आवश्यक अंग होता है। गीतिकाव्य विषयिप्रधान (Subjective) होता है। इसमें कथावस्तु मुख्य न होकर वैयक्तिक भावना, मानसिक अवस्था, व्यक्तिगत सुख-दुःख, हर्ष-शोक, विलास-विषाद आदि मुख्य होते हैं। इसमें कवि अपने भावों, अनुभूतियों और संवेदनाओं को कविता के माध्यम से प्रकट करता है। इस दृष्टि से संस्कृत के अधिकांश धार्मिक और शृंगारिक काव्य खण्डकाव्य न होकर गीतिकाव्य हैं।

संस्कृत गीति-काव्यों की विशेषताएँ

संस्कृत गीति-काव्यों की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिनके कारण विश्व-साहित्य में इनको आदरणीय स्थान प्राप्त हो सका है। संक्षेप में मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—

(१) **शृंगारिक गीतिकाव्य**—इनमें मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के बाह्य सौन्दर्य ही नहीं, अपितु आन्तरिक सौन्दर्य पर भी रीझते हैं और अपने प्रेम की कोमल भावना मसृण पदावली में प्रकट करते हैं।

(२) **धार्मिक गीतिकाव्य**—ये किसी एक उपास्यदेव को लेकर भावप्रधान अनुभूतिमूलक गीति-काव्य हैं।

(३) **नैतिक गीतिकाव्य**—इनमें नैतिक शिक्षाओं को मुक्तक के रूप में पद्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

(४) **संगीतात्मकता**—तीनों प्रकार के गीतिकाव्यों में संगीत की प्रमुखता है। इनमें वीणा की झंकार, स्वर-तन्त्री का मधुर-स्वर, आरोह और अवरोह तथा लयात्मकता होती है।

(५) **मार्मिक अनुभूति**—सहृदय-संवेद्यता, जीवन की मार्मिक अनुभूति, सुख-दुःख का सजीव चित्रण, प्रसाद और विषाद का विशद वर्णन, जीवन की वास्तविकता की सुन्दर अभिव्यक्ति, इन काव्यों की मुख्य विशेषताएँ हैं।

(६) **भाव और भाषा का समन्वय**—इनमें सुकुमार भावों की कोमल पदावली में मधुर अभिव्यक्ति है। गौड़ी शैली, समास-बाहुल्य और पाण्डित्य-प्रदर्शन का सर्वथा निराकरण है।

(७) **भाव-स्वातन्त्र्य**—गीतिकाव्य में कवि किसी भाव-विशेष को लेने के लिए परतन्त्र नहीं है। वह उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाला पक्षी है, जो स्वच्छन्द रूप से सभी विषयों, सभी भावों और सभी कल्पनाओं में विचरण करता है तथा अपनी अनुभूतियों को सीमित शब्दों में, सुनियोजित छन्दों के कलेवर में परिपुष्ट करता है।

(८) **प्रसाद और माधुर्य गुण**—गीतिकाव्यों के विषय सुकुमार प्रकृति, शृंगार, भक्ति, नीति, अनुभूतियाँ, उदात्त भावनाएँ, कल्पनाएँ और जीवन की यथार्थता हैं, अतः इनमें कोमल-कान्त-पदावली, सरल-सरस भाषा एवं रस-माधुरी का समन्वय रहता है।

(९) **रस-परिपाक**—गीतिकाव्यों में शृंगार, शान्त और वीर रसों का मुख्यतः प्रतिपादन हुआ है। शृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का विस्तृत विवेचन और विश्लेषण हुआ है। गीतिकाव्य कोमल-भाव-प्रधान होते हैं, अतः इनमें अद्भुत, भयानक, बीभत्स आदि रसों का सर्वथा अभाव रहता है।

(१०) **भावपक्ष की उदात्तता**—गीतिकाव्य भावपक्ष का ही मूर्तरूप है। इसमें भाव, कल्पना, संवेदना, अनुभूति ही मुख्य तत्त्व हैं, अतः कलापक्ष अत्यन्त गौणरूप में रहता है। भावों की धारावाहिकता, प्रबलता, स्फुरण, संवेदन और मार्मिकता इनकी मुख्य विशेषताएँ हैं।

(११) **तरुणी-लावण्य**—शृंगारिक गीतिकाव्यों में मुख्यतया रमणी-सौन्दर्य, नख-शिख-वर्णन, कटाक्ष-पात, हास, हाव-भाव और शृंगारिक चेष्टाओं का

वर्णन है। बाह्य सौन्दर्य के साथ ही उनके अन्तःसौन्दर्य, सहज-प्रेम, नैसर्गिक सुषमा, शील, लज्जा, दया, त्याग, करुणा, आदि भावों का भी मार्मिक चित्रण है।

(१२) प्रेम और भक्ति—शृंगारिक गीतिकाव्यों में प्रेम और धार्मिक गीतिकाव्यों में भक्ति-रस का प्रवाह है। दोनों का ही हृदय की कोमल-भावनाओं से संबन्ध है, अतः इनमें उदात्तता और सश्रीकता है। इन काव्यों में भौतिक एवं ऐन्द्रियिक प्रेम को ग्रहण न देकर नैसर्गिक एवं आध्यात्मिक प्रेम को महत्त्व दिया गया है। कुछ गीतिकाव्यों में अवश्य अश्लीलता है।

(१३) शृंगार रस—अधिकांश गीतिकाव्यों में शृंगार रस प्रमुख है। वह रसरस है और जीवन की वास्तविकता से संबद्ध है, अतः शृंगार के दोनों पक्षों की इनमें मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है।

(१४) कविहृदय—संस्कृत गीतिकाव्यों में कविहृदय का प्रस्फुरण है। इनमें भावों की कोमलता, विचारों की नवीनता, कल्पना की कमनीयता, भाषा की सरसता, रस की तन्मयता, अनुभूति की मार्मिकता, निरीक्षण की सूक्ष्मता, अलंकारों की छटा और छन्दों का व्यवस्थित विधान है। गीतिकाव्य की सफलता के लिए भाव, भाषा, रस, छन्द, अलंकार और मार्मिक अनुभूति का समन्वय आवश्यक अंग माना गया था।

(१५) भाव-वैविध्य—संस्कृत गीतिकाव्यों में भावों की विविधता है। इनमें कहीं शृंगार है तो कहीं करुण; कहीं हास है तो कहीं विषाद; कहीं संभोग है तो कहीं विप्रलम्ब; कहीं सुख है तो कहीं दुःख; कहीं नीति है तो कहीं वैराग्य; कहीं आदर्श है तो कहीं व्यवहार। इनमें भावों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(१६) प्रकृति-चित्रण—संस्कृत गीति-काव्यों में बाह्य और अन्तः प्रकृति दोनों का चित्रण है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति वर्णित है। मानव के सुख-दुःख में प्रकृति भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। कहीं पर प्रकृति आलम्बन विभाव है तो कहीं पर उद्दीपन।

(१७) नैतिक आदर्श—नैतिक और धार्मिक गीतिकाव्यों में नैतिक आदर्श पूर्णरूपेण उदात्त है। शृंगारिक गीतिकाव्यों में भी आदर्श दाम्पत्यप्रेम का ही चित्रण है। असंयत और भोगप्रधान प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं माना गया है।

(१८) जीवन-दर्शन—संस्कृत गीतिकाव्यों में मानस का जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया गया है। शृंगार के साथ वैराग्य, प्रेम के साथ भक्ति और सुख के साथ दुःख का दार्शनिक पक्ष भी प्रस्तुत किया गया है।

८. (क) कालिदास

‘ऋतुसंहार’-सभीको ‘मेघदूत’-यशोधरः ।

कविता-कानने गुञ्जन् कालिदासस्तु षट्पदः ॥ (कपिलस्य)

कृतित्व—कालिदास संस्कृत-गीतिकाव्य के प्रवर्तक हैं। उन्होंने दो गीतिकाव्यों—ऋतुसंहार और मेघदूत—का प्रणयन करके संस्कृत-साहित्य में नवीन विधा को जन्म दिया। एक में बाह्य प्रकृति प्रमुख है तो दूसरे में अन्तःप्रकृति; एक में यौवन का उन्माद है तो दूसरे में यौवन का विषाद; एक में अप्रौढता है तो दूसरे में प्रौढता; एक में कला प्रधान है तो दूसरे में भाव।

ऋतुसंहार

यह कालिदास की अप्रौढ अवस्था की कृति है। इसमें ६ सर्ग और १४४ श्लोक हैं। इन ६ सर्गों में ६ ऋतुओं का क्रमशः वर्णन है। इनका क्रम है—ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त। संस्कृत-साहित्य में केवल यही ग्रन्थ है, जिसमें ६ ऋतुओं का पूरे विवरण के साथ वर्णन है। एक के बाद दूसरी ऋतु आती है, प्रकृति में नवीनता आती है; जीवन में उल्लास उल्लसित होता है, प्रेमी-प्रेमिका उत्फुल्लित होते हैं और वे प्रत्येक ऋतु का उपभोग करते हैं।

वक्तिपथ विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास की कृति नहीं मानते। उनके तर्क हैं :—(१) अन्य काव्यों के तुल्य भाषा में परिष्कार का अभाव। (२) मल्लिनाथ का टीका न करना। (३) अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में ऋतुसंहार से उद्धरणों का अभाव। (४) प्रेम-विषयक कालिदास के आदर्श की न्यूनता। परन्तु ये तर्क युक्तिसंगत नहीं हैं। इसका कारण है :—(१) कालिदास की यह अप्रौढावस्था की कृति है, अतः भाषा आदि में पूर्ण परिष्कार का अभाव स्वाभाविक है। (२) ग्रन्थ अत्यन्त सरल है, अतः मल्लिनाथ ने टीका नहीं की। (३) कालिदास के अन्य ग्रन्थों की तुलना में इसमें उच्च कोटि के पद्य न्यून हैं, अतः काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने इसमें से उद्धरण नहीं दिए हैं। (४) यह यौवन

की उद्दाम अवस्था की कृति है, अतः इसमें प्रेम के आदर्श पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है।

कवि की प्रथम कृति होने पर भी ऋतुसंहार में कुछ मनोरम पद्य, रमणीय कल्पनाएँ और सुन्दर पद-शय्या मिलती है। शिशिर में प्रेमी-प्रेमिका मिलकर सोते हैं। उनके यौवन की ऊष्मा से ठंड दूर भाग जाती है। मनोहर कवि-कल्पना है—

पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः ।

विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥

(ऋतु० ५-६)

वत्समट्टिकृत मन्दसोर शिलालेख (४७३ ई०) के निम्नलिखित श्लोक पर कालिदास के इस श्लोक का प्रभाव स्पष्ट है।

स्मरवशगतरुणजनवल्लभांगना-विपुलकान्तपीनोरु-

स्तनजघनघनालिङ्गननिर्भत्सिततुहिनहिमपाते ॥ (वत्स० श्लोक ३३)

कवि में यौवन की गर्मी है। उसे सारी प्रकृति मनोहर और उद्दीपक दिखाई पड़ती है। शरद् ऋतु के वर्णन में कल्पना, रूपक अलंकार, भाषा-सौष्ठव और संगीतात्मकता का समन्वय है। शरद् ऋतु नववधू है, वह काश की नई साड़ी पहने हैं, खिले कमल उसके मनोज्ञ मुख हैं, मस्त हंसों की ध्वनि उसके नव-नूपुर हैं, पके धान उसके लज्जावनत अंग हैं—

काशांशुका विकचपद्मनोज्ञवक्त्रा,

सोन्मादहंसनवनूपुरनादरम्या ।

आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः, प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ॥

(ऋतु० ३-१)

इस प्रकार ऋतुसंहार में कवि की प्रतिभा का विकास प्रारम्भ होता है और ऋतुवर्णन के व्याज से वह अपनी कल्पनाशक्ति का विकास प्रदर्शित करता है।

मेघदूत

मेघदूत कालिदास की प्रौढ एवं परिष्कृत कृति है। इसमें कवि की प्रौढ कल्पना, उदात्त भावना, परिष्कृत शैली एवं कोमलकान्त पदावली का सामंजस्य दिखाई देता है। यह कवि की कल्पना का मनोरम प्रमूढ है, अतएव विश्व के सभी सहृदयों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यह गीतिकाव्य का उज्ज्वल माणिक्य है।

श्लोक संख्या—इसमें ११५ पद्य हैं। यह दो भागों में विभक्त है—पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में ६३ श्लोक हैं और उत्तरमेघ में ५२। मेघदूत के श्लोकों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है। श्लोकों की संख्या १०८ से लेकर १२७ तक विभिन्न संस्करणों में है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में १२१ श्लोक स्वीकार किए हैं, किन्तु ६ श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हुए ११५ को प्रामाणिक माना है।^१

विजयसूरि और मेघराज की टीकाओं में १२७ श्लोक हैं। लक्ष्मीनिवास, सुमतिविजय एवं मेघलता में १२६ श्लोक हैं। नेमिदूत और गीलदूत की टीकाओं में १२५ श्लोक हैं। सरस्वती तीर्थ में १२३, चरित्रवर्धन १२२, पार्श्वाम्युदय में १२०, सिंहली व्याख्या में ११८, तिब्बती अनुवाद में ११७, मल्लिनाथ में ११५ (प्रक्षिप्त सहित १२१) हैं। मकरन्द मिश्र में ११८, रामनाथ तर्कालंकार में ११६, हरगोविन्द वाचस्पति आदि में ११५, मगीरथ मिश्र में ११४ श्लोक स्वीकार किए गए हैं। आधुनिक संस्करणों में विल्सन ने ११५, गिल्डमिस्टर ने ११३, स्टेंत्सलर ने ११२, हल्सूच और एस० के० दे ने १११ श्लोक स्वीकार किए हैं। हर्टेल ने केवल १०८ श्लोकों को ही मौलिक माना है।

संस्करण—मेघदूत के विशेष उल्लेखनीय संस्करण ये हैं—एच०एच० विल्सन (कलकत्ता, १८१३ ई०), गिल्डमिस्टर (बॉन, जर्मनी, १८४१ ई०), मदनमोहन तर्कालंकार (कलकत्ता, १८५०), मद्रास से तेलुगु लिपि में (१८६६), कृष्णशास्त्री भटवाडेकर (पूना, १८६६), ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (मल्लिनाथ की टीका-सहित, कलकत्ता, १८६६), एडाल्फ फ्रेडरिक स्टेंत्सलर (ब्रेसलो, १८७४), काशीनाथ पांडुरंग परब (बम्बई, १८७७), गोपाल रघुनाथ नान्दर्जिकर (पूना, १८६४), काशीनाथ बाबू पाठक (पूना, १८६४)।

टीकाकार—मेघदूत की ५० से अधिक संस्कृत टीकाओं में मल्लिनाथ की टीका सबसे प्रामाणिक मानी जाती है। इनके अतिरिक्त वल्लभदेव, दक्षिणावर्तनाथ, जिनसेन (पार्श्वाम्युदय), सरस्वतीतीर्थ, महिमसिंहगणी, सुमतिविजय, स्थिरदेव, परमेश्वर और पूर्ण सरस्वती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. श्लोक-संख्या के विस्तृत विवेचन के लिए देखें—मेघदूत-सं० डा० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, १९६७, भूमिका पृष्ठ ३० से ५४।

मेघदूत की संक्षिप्त कथा

इसमें विरही यक्ष का वर्णन है। वह मेघ के द्वारा अपनी प्रिया यक्षिणी को सन्देश भेजता है। पूर्वमेघ में रामगिरि से लेकर अलका तक का मार्ग बताया गया है और उत्तरमेघ में प्रिया के लिए सन्देश है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—

पूर्वमेघ—अलका पुरी के स्वामी कुबेर ने अपना कार्य उत्तरदायित्व के साथ न निमाने के कारण एक यक्ष को शाप दिया कि वह एक वर्ष तक अपनी पत्नी से वियुक्त होकर मर्त्यलोक में निवास करे। वह शापवश रागगिरि पर्वत पर निवास करता है। शाप के लगभग ८ मास बीतने पर आषाढ़ के प्रथम दिन उसे एक मेघ (बादल) दिखाई पड़ता है। वह अपनी प्रिया के बिना अत्यन्त व्याकुल है, अतः यह विचार किए बिना कि बादल उसका सन्देश ले जाने योग्य है या नहीं, वह उसे प्रिया की नगरी अलका तक का मार्ग बताता है और कहता है कि कुछ विशिष्ट स्थानों पर थोड़ा विश्राम करते हुए अलका तक जाना। ये विशेष स्थल हैं—माल प्रदेश (मालवा), आम्रकूट पर्वत (अमरकण्टक), नर्मदा नदी, विदिशा (भिलसा) नगरी, नीचैगिरि, निर्विन्ध्या नदी, उज्जयिनी, उज्जयिनी में महाकाल का मन्दिर और सिन्धु नदी, देवगिरि, चर्मण्वती नदी, कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, कनखल, गंगानदी, हिमाचल पर्वत, क्रौंच रन्ध्र (नीति-माणा दर्रा), कैलाश और अलका नगरी।

उत्तरमेघ—हे मेघ, तुम्हें अतः का में गगनचुम्बी प्रासाद मिलेंगे। वहाँ सदा सुख, वैभव, आनन्द और विलास है। वहाँ कुबेर का प्रासाद है। उसके उत्तर में मेरा घर है, वहाँ मेरी विरहिणी प्रियतमा को देखोगे। वह शोक से खिन्न,

१. मल्लिनाथ और वल्लभदेव ने अमरवश आम्रकूट को रामगिरि माना है। प्रो० विल्सन ने नागपुर के २४ मील उत्तर में स्थित 'रामटेक' पर्वत को रामगिरि माना है। रामटेक रामगिरि का ही मराठी रूपान्तर है। एक शिलालेख में इसका नाम सिन्दूर-गिरि मिलता है। यहाँ पर लाल रंग वाले पत्थर भी हैं। आधुनिक पुरातत्त्व-अनुसंधान ने रामगिरि का संबन्ध मध्यप्रदेश के रामगढ़ स्थान से स्थापित किया है, क्योंकि इसके पास ही मेघदूत में वर्णित आम्रकूट (अमरकण्टक) पर्वत है, जहाँ से नर्मदा निकलती है।

मलिन, उदास, कृशगात्र और तुषारपात से म्लान पद्मिनी के तुल्य दिखाई पड़ेगी, उससे मेरा सन्देश कहना कि तुम खिन्न न हो। वियोग के शेष चार मास धैर्य से बिताना। सुख के दिन शीघ्र आने वाले हैं। मैं भी किसी प्रकार दुःख के दिन काट रहा हूँ। दुःख-सुख का चक्र बदलता रहता है। वियोग के दिन पूरे होते ही शीघ्र मिलन होगा।

मेघदूत का आधार—कुछ विद्वानों का विचार है कि मेघदूत का आधार कालिदास के जीवन की कोई घटना है। वास्तविक घटना का पुष्ट प्रमाण न होने पर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कालिदास ने जिस भाव-विह्वलता के साथ मेघदूत की रचना की है, वह उनके जीवन से अवश्य संबद्ध है। किसी प्रियतमा के वियोग में उत्कट भावानुभूति के क्षणों में मेघदूत की रचना हुई है, अन्यथा वियोग की इतनी गहराई, भावों की उत्कटता और प्रेम की तन्मयता दृष्टिगोचर न होती।

मेघदूत की कथा का बीज कालिदास को अवश्य ही वाल्मीकीय रामायण से प्राप्त हुआ है। राम-सीता का वियोग, मरुत्युत्र हनुमान् का वायुमार्ग से यात्रा करके दूतकार्य, हनुमान् और सीता का संवाद, अंगूठी देना आदि घटनाएँ मेघदूत में यक्ष-यक्षिणी-वियोग, मेघ का दूतकार्य, मेघ-यक्षिणी-संवाद, यक्षिणी को यक्ष की अंगूठी देना, आदि घटनाओं के रूप में वर्णित हैं। अनेक स्थानों पर भाव और भाषा का साम्य भी है।^१ मेघदूत में राम-कथा का बार-बार संकेत है—जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु (१-१), रामगिर्याश्रमेषु (१-१), रघुपति-पदैरङ्क-कितं मेखलासु (१-१२), दशमुखोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः (१-६२), इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा० (२-४२) एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद् विदित्वा (२-५५)। इनमें रामगिरि, रावण-कथा, हनुमान् का दूतकार्य और अंगूठी देना वर्णित है। अतएव मल्लिनाथ ने कहा है—

सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः।
(मेघदूत १-१ की टीका में)। महामारत के नलोपाख्यान में हंस-पक्षी को दूत

१. विस्तृत उद्धरणों के लिए देखें—डा० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित—मेघदूत, भूमिका पृष्ठ ६० से ६८।

२. रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित मेघदूत (१९६६) के अनुसार श्लोक-संख्या दी गई है।

बनाया गया है। संभवतः मानवेतर दूत की कल्पना नलोपाख्यान से ली हो। ब्रह्मवैवर्तपुराण में आषाढ़-कृष्ण की 'योगिनी' नामक एकादशीव्रत के प्रसंग में कुबेर का यक्ष को शाप, मर्त्यलोक में १ वर्ष को जाना, आदि वर्णित है। परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण कालिदास से प्राचीन है, यह सन्दिग्ध है। चीन के कवि स्यू काङ्ग (Hsiu-kan) ने २०० ई० में मेघ को दूत बनाकर भेजने की कल्पना की थी, परन्तु वह कालिदास का परवर्ती है, अतः मेघ-दूत की कल्पना उसने कालिदास से ली है।

यद्यपि कालिदास ने वाल्मीकि आदि से कुछ भाव लिए हैं, परन्तु उनको इतना नवीन रूप दे दिया है कि मेघदूत में सर्वथा नवीन कल्पना, नवीन विचार और नवीन अनुभूति दिखाई देती है।

मेघदूत की शैली और काव्यसौन्दर्य

मेघदूत कालिदास के हृदय का सरस-निष्पन्न है। यह संस्कृत के गीति-काव्य का मुकुट-मणि है। इसमें भावों की गरिमा, विचारों की महिमा, कल्पना की कमनीयता, हृदय की विशदता, भाषा की प्राञ्जलता, अनुभूतियों की संवेदनशीलता, भाषा की मधुरिमा, विप्रलम्भ शृंगार की सार्वत्रिकता एवं सघनता, अलंकारों की इन्द्रधनुषी छटा और मन्दाक्रान्ता छन्द की मन्थर गति नवपरिधाना नववधू का सा लावण्य प्रस्तुत करती है। सहृदय-हृदय-संवेद्यता के कारण मेघदूत निरपवाद रूप से लोकप्रिय हुआ है। मेघदूत की शैली वैदर्भी है। इसमें ललित पद-विन्यास, कोमल भाव, सरस पदावली और प्रासादिकता का समन्वय है।

भाषा-सौष्ठव—कालिदास की भाषा में प्रसाद और माधुर्य के साथ संगीतात्मकता भी है। इससे हृदय की वीणा-तन्त्री सी झंकृत होती जाती है। विरही यक्ष अपनी और यक्षिणी की समान अवस्था का कितने मधुर शब्दों में चित्रण करता है कि दोनों ही कृश, सन्तप्त, साश्रु, उत्कांठित और दीर्घ उच्छ्वासयुक्त हैं। दोनों ही मानसिक संकल्पों से एक दूसरे से मिल लेते हैं।

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं

सास्त्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती

संकल्पैस्तैर्विशति विधिना बैरिणा रुद्धमार्गः ॥ (२-४४)

इसमें भाषा की संगीतात्मकता के साथ ही दोनों प्रेमियों के मिलन का काल्पनिक चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

मन्द मन्द पवन, चातक की मधुर ध्वनि और सुमय बक-पंक्ति मेघ के लिए शुभ शकुन हैं। मन्द पवन और मन्दाक्रान्ता छन्द का क्या सुन्दर तालमेल बिठाया गया है ! श्लोक की संगीतात्मकता देखिए :—

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ॥

(१-१०)

भावार्थव्यक्ति—कवि ने एक ओर कलापक्ष की उदात्तता के कारण कविता-कामिनी का बाह्य शृंगार किया है तो दूसरी ओर मनोभावों की मार्मिक विवेचना के द्वारा भावपक्ष को उससे अधिक संपुष्ट किया है। भावों का स्रोत निर्बाध गति से बहता हुआ सहृदयों को आप्लावित कर देता है और वे तादात्म्य की अनुभूति करते हैं। कालिदास व्यञ्जना-वृत्ति वाले कवि हैं, अतः पूरे काव्य में व्यंग्यार्थ मुख्य है। अतएव मेघदूत उच्चकोटि का ध्वनि-काव्य है।

मार्ग में पड़ी हुई निर्विन्ध्या नदी मेघ की प्रेयसी है। उसकी मेखला पक्षियों के कल-रव के रूप में नाद कर रही है। मँवर के रूप में उसकी नाभि दिखाई पड़ रही है। स्त्रियों के हाव-भाव ही प्रेमाभिव्यक्ति के पूर्वरूप होते हैं, अतः हे मेघ, उसे प्यार करते हुए आगे बढ़ना।

बोधिभोभस्तनितविहगर्भेणिकाञ्चीगुणायाः

संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं वशितावर्तनाभेः ।

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाम्यन्तरः संनिपत्य

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ (१-२६)

प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति, सुकुमार भाव और कमनीय पदावली का कितना सुन्दर समिश्रण है।

विरही यक्ष को ज्ञात है कि सन्देश व्यक्तियों के द्वारा भेजे जाते हैं। मेघ प्राणी नहीं है, वह तो धूम, ज्योति, जल और वायु का संघात है। फिर भी यक्ष का सन्देश उसे ही ले जाना है, भाव-विह्वल कामी व्यक्ति 'चेतन और अचेतन में अन्तर नहीं करता। उसकी भावना इतनी प्रदीप्त है कि उसे Radio-waves की सूक्ष्म तरंगें स्वयं प्रिया के पास पहुँचा देंगी, मेघ तो नाममात्र के लिए दूत है। कवि की उद्दीप्त भावप्रधानता देखिए :—

धूमज्योतिःसलिलमस्तां संनिपातः क्व मेघः
 सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
 इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
 कामार्ता हि प्रकृतिकृपणादचेतनाचेतनेषु ॥ (१-५)

भावों की उत्कटता का एक अन्य चित्र देखिए । प्रियतमा के वियोग में व्याकुल यक्ष चित्र बनाकर प्रिया के चरणों में लेटा हुआ अपने आप को चित्रित करना चाहता है और मधुर मिलन की कामना करता है, परन्तु चित्र पूरा होने से पहले ही आँखों में आँसू भर आते हैं और उसका मनोरथ सर्वथा अपूर्ण रह जाता है । दुर्देव की इच्छा प्रबल है !

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां घातुरागैः शिलाया-
 मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
 अल्लेस्तावन्मुहुर्पचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
 क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ (२-४७)

प्रेम के विषय में कवि ने नवीन अनुभवसिद्ध सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि विरह में प्रेम घटता नहीं, अपितु संपुष्ट होकर निरन्तर बढ़ता जाता है । यह Out of sight, out of mind सिद्धान्त का सयुक्तिक खण्डन है ।

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिन्स्ते त्वभोगा-
 दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ (२-५५)

संभोग शृंगार—यद्यपि मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है, परन्तु मेघ के सजीव दूत के रूप में चित्रण से कवि को संयोग शृंगार का भी वर्णन करने का अवसर मिल गया है । मेघ की प्रेयसी नदियाँ जहाँ भी मिल जाती हैं, वह वहाँ रम जाता है और संभोग शृंगार का रसास्वाद करता है । कवि अपनी कल्पना से जंगल में भी मंगल कर देता है ।

विदिशा में वेत्रवती नदी का जलपान मेघ के लिए भ्रूमंगयुक्त कामिनी के अघरपान के तुल्य सुखद होगा ।

तीरोपान्तस्तनितुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
 सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोमि ॥ (१-२५)

गंभीरा नदी के जल में मेघ की छाया स्वच्छ चित्त में पुरुष की छाया (चिच्छाया) के तुल्य होगी। अतः गंभीरा नदी के अनुरोध को वह रोक न सकेगा। शृंगार में दार्शनिक सिद्धान्त का पुट मनोरम है।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने

छायात्भापि प्रकृतिमुभयो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥ (१-४४)

इतना ही नहीं, गंभीरा का प्रणयानुरोध प्रेमाभिभूत हो वह टाल न सकेगा।

प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि,

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ १-४५

विप्रलम्भ शृंगार—विप्रलम्भ शृंगार मेघदूत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। डा० कीथ ने मेघदूत को Elegy (शोक-गीत) की कोटि में डालना उचित समझा है, परन्तु यह अनुचित है। मेघदूत शोक-गीत या करुण-गीत न होकर विरह-गीत या विप्रलम्भ-गीत है। शोकगीत मृत के लिए होता है, यक्षिणी जीवित है और १ वर्ष बाद दोनों का पुनर्मिलन होता है। विप्रलम्भ में प्रेमी-प्रेमिका का विरह-वर्णन होता है और फिर दोनों मिलते हैं। अतः मेघदूत विप्रलम्भ-शृंगार का गीतिकाव्य है।

विरही यक्ष प्रेमिका के वियोग में सन्तप्त और उत्पीड़ित है। उसकी अवस्था दयनीय है। वह कुश, क्षुब्ध, विषण्ण और मृतप्राय है। केवल आशा का बन्धन उसे जीवित रख रहा है। यही अवस्था यक्षिणी की भी है। उसने भी खाना-पीना छोड़ रखा है। वह विषण्णवदना और मूर्तिमती करुणा हो गई है। उसे देखकर कोई सहृदय अपने आँसू नहीं रोक सकता है। वह पति की प्रतीक्षा में शोक-दीर्घ रात्रियाँ काटती है।

यक्षिणी विरह-व्यथा से निर्बल है और शय्या पर उसी प्रकार कुश-नात्र पड़ी रहती है, जैसे पूर्व दिशा में कृष्णपक्ष में क्षीण चन्द्रकला।

आधिक्षामां विरहशयने संनिष्णैकपादवां

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ॥ (२-३१)

इतना ही नहीं, यक्षिणी की आँखों में न नींद है, न जागरण। वह आँखों में आँसू भरे हुए अधमरी सी पड़ी रहती है, जैसे मेघाच्छन्न दिन में स्थलकमलिनी।

१. The Meghaduta has, with reason, been ascribed the merit of approaching more closely than any other Indian poem to the rank of an elegy. H.S.L. Page 87.

चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्ती

साभ्रेऽहनीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ (२-३२)

यक्षिणी के अघर विरह-श्वासों से फीके हो गए हैं। उसने बालों में तेल लगाना छोड़ दिया है। वह चाहती है कि रात्रि में स्वप्न में पति-मिलन हो, पर खेद है कि आँखों में आँसुओं की धारा उस योजना को भी विफल कर देती है।

मत्संभोगः कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्रा-

माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ (२-३३)

उसने आभूषणों का त्याग कर दिया है और बड़ी कठिनता से जीवन धारण कर रही है। उसे देखकर हे मेघ, तुम भी नवजलवर्षा से रो पड़ोगे, क्योंकि सभी सहृदय व्यक्ति दयामाव से परिपूर्ण होते हैं।

त्वामप्यत्नं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ (२-३५)

यक्षिणी विरहिणी चकवी के तुल्य शोकविधुरा और खिन्न होगी, वह पाले से मारी हुई पद्मिनी के तुल्य क्षीणकान्ति होगी, (२-२३)। अत्यधिक रोने से उसकी आँखें सूजी हुई होंगी, ओष्ठ फीके होंगे और मुख पर बाल पड़े होंगे। वह मेघावृत चन्द्र के तुल्य कान्तिरहित होगी, (२-२४)। वह कमी वीणा बजाती होगी, पर बीच में ही आँसू आ जाने से आरोह-अवरोह भूल जाती होगी, (२-२६), कमी फूल गिनकर विरह-दिवस की समाप्ति गिनती होगी और कमी कल्पना द्वारा मेरे संभोग का रसास्वाद करती होगी। विरह के दिनों में स्त्रियों के प्रायः ऐसे ही मनोविनोद होते हैं।

मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ (२-२७)

यही अवस्था यक्ष की भी है। वह भी स्वप्न में मिलन के लिए हाथ उठाता है और मिलन का अभिनय करता है। उसकी यह अवस्था देखकर वनदेवियाँ भी बड़े मोतियों के तुल्य आँसू बहाती हैं।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निन्दयाश्लेषहेतो-

र्तब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां

वक्तास्थूलास्तर्किसलयेष्वभुलेखाः पतन्ति ॥ (२-४६)

इस प्रकार विप्रलम्भ-शृंगार-वर्णन में करुण-रस की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृति-वर्णन—मेघदूत में प्रकृति केवल दृश्य प्रकृति न होकर मानवीय भावों, विचारों और अनुभूतियों से संपन्न एक अभिनेत्री है, जो अपने हाव-भाव, लास्य, प्रणय-व्यापार और कमनीयता से सभी सहृदयों को आकृष्ट करती है। मेघ चेतन दूत से अधिक सक्रिय, रसिक, स्नेही, आज्ञाकारी और प्रत्युत्पन्नमति है। वह समयानुसार गरजता है, बरसता है, दावाग्नि को शान्त करता है (१-१८), पानी पीता है (१-२०), नदियों से क्रीड़ा करता है (१-२५), श्रमबिन्दुओं को हरता है (१-२७), स्त्रियों के साथ प्रेम-केलि करता है (१-२८), विरह-कृश नदियों को वर्षा से संपुष्ट करता है (१-३०), महाकाल की आरती के समय गर्जन करता है (१-३८) और शिव-पार्वती के विहार के समय सघन होकर सीढ़ी का काम करता है (१-६४)।

कवि का प्रकृति के साथ रागात्मक संबन्ध है, अतः प्रकृति भी मानवीय हर्ष और शोक में हर्ष और शोक की अनुभूति करती है। प्रकृति का जिस सहृदयता और मार्मिकता के साथ कालिदास ने वर्णन किया है, वह उनकी सूक्ष्मदर्शिता, भावुकता और तादात्म्यानुभूति का परिचायक है। अतएव प्रकृति-वर्णन इतने सजीव और चित्रात्मक हैं कि पाठक की दृष्टि के सामने वस्तु का चित्र सा उपस्थित हो जाता है।

प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुए कवि मेघ से कहता है कि तुम रामगिरि से विदाई लो। यह तुम्हारे वियोग में गर्म आँसू बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है। मेघ और पर्वत का सौहार्द कितना मनोरम है:—

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य

स्नेहव्यक्तित्विचरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ (१-१२)

हे मेघ, तुम्हें मार्ग में थकान लगेगी, अतः पर्वतों की चोटियों पर विश्राम करना और प्यास लगने पर नदियों का पानी पीते हुए जाना।

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिस्रघु पयः क्षोतसां क्षोभुज्य ॥ (१-१३)

हे मेघ, तुम शिव जी के नृत्य के समय उनकी सहायता करना । उनकी हस्तिवर्म ओढ़ने की इच्छा को पूर्ण करना । तुम्हें पार्वती भावविह्वल दृष्टि से देखेंगी ।

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं वृष्टभक्तिर्भवान्या ॥

(१-४०)

मेघ और नदियों का नायक और नायिका के रूप में चित्रण किया गया है । मेघ नदियों के हावभाव पर आकृष्ट होता है, उनसे प्रेम करता है, उनके साथ रमण करता है और उनकी कामना पूर्ण करता है । निर्विन्ध्या नदी के हावभावों से आकृष्ट होकर मेघ उससे प्रेम-क्रीडा करता है ।

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाम्यन्तरः संनिपत्य

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥

(१-२६)

सिन्धु नदी उसके वियोग में कृश हो रही है, उसे प्रेम-जल देकर सन्तुष्ट और प्रसन्न करता है ।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

कादर्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥

(१-३०)

मेघदूत की वायु में भी रसिकता है । शिप्रा की वायु चापलूस प्रेमी की तरह स्त्रियों के सुरत-खेद को दूर करती है ।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥

(१-३२)

प्रकृति में भी होड़ है । अलका के भवन मेघ से कम सुन्दर नहीं हैं । मेघ में बिजली है; इन्द्रधनुष की रम्यता है; मनोहर गर्जन है; जल है और उच्चता है, तो अलका के भवनों में सुन्दरियाँ हैं; मनोहर चित्र हैं, संगीत की ध्वनि है; मणिजटित फर्श हैं और गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं । कवि की कल्पना-शक्ति का मनोज्ञ दृष्टान्त है :—

विद्युत्स्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाप्राः

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषः ॥

(२-१)

मेघदूत में मेघ का मार्ग

मेघदूत में विरही यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका पुरी तक का मार्ग बताता है। 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्' (१-७)। रामगिरि से अलका तक के मार्ग में गिरि, नदी, नगर, वनादि का विस्तृत वर्णन कालिदास के भौगोलिक ज्ञान का परिचायक है। उस युग में कालिदास को इतना भौगोलिक तथा मानसूनी हवाओं की दिशाओं आदि का ज्ञान यह सिद्ध करता है कि कालिदास ने सुदूर स्थानों की स्वयं यात्रा की थी और कुछ स्थानों का पर्यटकों से विवरण प्राप्त किया था, अतएव आज के वैज्ञानिक युग में भी कालिदास का वर्णन पूर्णतया सत्य ज्ञात होता है। मेघदूत (पूर्वमेघ) में वर्णित मेघ का मार्ग इस प्रकार है :—

रामगिरि (१-१) > माल (१६, रतनपुर के उत्तर माल्दा स्थान) > आम्रकूट पर्वत (१७, अमरकण्टक पर्वत) > नर्मदा नदी (१६) > दशार्ण देश (२४, वर्तमान छत्तीसगढ़, यहाँ दशार्णा नामक नदी बहती है) > दशार्ण देश की राजधानी विदिशा (२५, वर्तमान भिलसा) > विदिशा में वेत्रवती नदी (२५, वर्तमान बेतवा नदी) > विदिशा के पास नीचैगिरि या नीचगिरि (२६, भिलसा के पास एक पर्वत, कुछ के मतानुसार उदयगिरि) > (उज्जयिनी की ओर यात्रा) निर्विन्ध्या नदी (२६, मालवा की एक नदी जो विन्ध्याचल से निकलती है, कुछ के मतानुसार मालवा की वर्तमान पार्वती नदी) > सिन्धु नदी (३०, मालवा की काली सिन्धु नदी, चम्बल नदी की सहायक नदी) > अवन्ति प्रदेश (३१, आधुनिक मालवा का पश्चिमी भाग) > अवन्ति की राजधानी विशाला अर्थात् उज्जयिनी (३१, वर्तमान उज्जैन) > उज्जयिनी में शिप्रा नदी (३२, वर्तमान सिप्रा नदी) > उज्जयिनी में महाकाल-मन्दिर (३७) > गम्भीरा नदी (४४, शिप्रा की सहायक छोटी नदी) > देवगिरि (४६, वर्तमान देवगढ़, उज्जैन और मन्दसोर के मध्य विद्यमान) > देवगिरि पर कार्तिकेय का मन्दिर (४७) > चर्मण्वती नदी (४६, वर्तमान चम्बल नदी) > दशपुर (५१, वर्तमान दसोर या मन्दसोर) > ब्रह्मावर्त (५२, सरस्वती और दृषद्वती अर्थात् घग्गर नदी के मध्य का भाग, हस्तिनापुर के उत्तर-पश्चिम में कुरुक्षेत्र के समीप, इसमें अम्बाला आदि भी हैं) > कुरुक्षेत्र (५२, वर्तमान कुरुक्षेत्र स्थान) > सरस्वती नदी (५३, कुरुक्षेत्र के पास बहती हुई मरुस्थल में लीन हो गई है,

अब यह अम्बाला के पास मुस्तफाबाद में एक बरसाती नाले के रूप में शेष है) > कनखल (५४, हरिद्वार के समीप वर्तमान कनखल) > कनखल के पास गंगा नदी (५४) > हिमालय पर्वत (५६) > क्रौंचरन्ध्र (६१, कैलाश के मार्ग में एक दर्रा, संभवतः तिब्बत को जाने वाला नीतिमाणा दर्रा) > कैलाशपर्वत (६२, वर्तमान कैलाश शिखर, मानसरोवर के समीप, शिवालिक की आकृति का पर्वत) > मानसरोवर (११, वर्तमान मानसरोवर झील) > अलका (६७, कैलाश के समीप, गंगातट पर स्थित यक्षों की नगरी) ।

उत्तरमेघ में अलका-स्थित विरहिणी यक्षिणी की विरह-विकलता का वर्णन है ।

अलंकार विधान और छन्दोयोजना—मेघदूत में विप्रलम्ब की गंभीरता और भावविह्वलता का बोध कराने के लिए मन्थरगति से पढ़ा जाने वाला मन्दाक्रान्ता छन्द अपनाया गया है । खेद, दुःख, विपत्ति, प्रवास, वर्षा आदि के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द रुचिकर माना गया है :—

प्राबृट् प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।

क्षेमेन्द्र ने कालिदास के मन्दाक्रान्ता छन्द की बहुत प्रशंसा की है, अन्ध्या घुड़सवार जिस प्रकार घोड़ी को वश में रखता है, उसी प्रकार कालिदास मन्दाक्रान्ता वृत्त को सिद्ध किए हुए हैं ।

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते ।

सबश्ववमकस्येव

काम्बोजतुरगाङ्गना ॥

(सुवृत्ततिलक ३-३४)

मेघदूत में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुन्दर समावेश है । कालिदास की उपमाएँ मेघदूत में निखरे रूप में हैं । आँखों में आँसू भरे हुए यक्षिणी दुर्दिन में अधखिली कमलिनी के तुल्य न प्रबुद्ध है और न सोई हुई ।

साभ्रेऽहनीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्तम् ॥ (२-३२)

कैलाश पर्वत की गोद में अलकारूपी प्रियतमा है और उसकी गंगारूपी साड़ी नीचे की ओर सरकती हुई दिखाई देगी । इसमें उपमा और रूपक का मनोरम समन्वय दर्शनीय है :—

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव अस्तगङ्गाबुकलां

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां आस्यसे कामचारिन् ।

(१-६७)

उत्प्रेक्षा के कुछ सुन्दर प्रयोग हुए हैं। कैलाश पर्वत पर पड़ी हिममाला मानो शिव जी का राशीभूत अट्टहास है।

राशीभूतः प्रतिदिनमिव अम्बकस्याट्टहासः ॥ (१-६२)

पर्वतीय मकानों से घूमाकार बादल मानो चोर की भाँति शंकित होकर निकलते हैं :—

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्ग-
धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ (२-८)

मेघदूत में सुभाषितः—कालिदास ने मेघदूत में कुछ अत्यन्त मार्मिक सुभाषित भी दिए हैं, जो काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ सुभाषित ये हैंः—मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः (१-३), कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (१-५), याञ्च्वा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (१-६), आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि (१-८), रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (१-२०), स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (१-२६), मन्दायन्ते न खलु सुहृदा-मभ्युपेतार्थकृत्याः (१-४२), आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (१-५७), सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्पति स्वामभिख्याम् (२-२०), प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्दान्तरात्मा (२-३५), कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किञ्चिद्गुणः (२-४२), कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (२-५२)।

मेघदूत का दार्शनिक पक्ष—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने मेघदूत के दार्शनिक पक्ष का विवेचन किया है।^१ मेघ काम है (कामरूपं मघोनः, १-६), काम का दमन करने पर ही शिवत्व की प्राप्ति होती है। अतएव पूर्वमेघ ३७ से ४०, ५६-६० श्लोकों में महाकाल, गण, नीलकण्ठ, चण्डीश्वर, पशुपति, भवानी आदि का उल्लेख है। उपर्युक्त श्लोकों में स्पष्ट किया गया है कि मेघ (काम) शिव की भक्ति में संलग्न हो, शश्वत् सिद्धैरुपचितर्वालि भक्तिनम्रः परीयाः (१-५६)। शिव की भक्ति से ही कामी का काम शान्त होता है और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अतः डा० अग्रवाल का कथन है—“शिव, विष्णु और

१. मेघदूत का अध्ययन : शिव का स्वरूप।

ब्रह्मा के अद्वैतभाव, शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग-द्वारा उस अक्षर-ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।

मेघदूत की लोकप्रियता और दूत-काव्य—मेघदूत में भाव-प्रवणता, कल्पना-मनोज्ञता, भाषासौष्ठव, रसामिव्यक्ति, प्रणयानुभूति, विरह-वेदना, मार्मिकता, कोमलता, मनोहरता और प्राञ्जलता—गुणों ने उसे इतना लोकप्रिय बनाया है कि इस पर ५० से अधिक संस्कृत-टीकाएँ हुई हैं। सभी भारतीय भाषाओं में इसका पद्य या गद्य में अनुवाद हुआ है। हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, तेलुगु, तमिल, मलयालम और उर्दू आदि में इसके अनेक अनुवाद हुए हैं, हिन्दी में ६ पद्यानुवाद हो चुके हैं। व्रजभाषा में राजा लक्ष्मणसिंह और राय देवीप्रसाद के पद्यानुवाद, खड़ी बोली में लक्ष्मीधर वाजपेयी, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार और पण्डित केशव-प्रसाद मिश्र के पद्यानुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, रोमन, मंगोली, उजबेक के अनुवाद मुख्य हैं। मेघदूत के तिब्बती और सिंहली भाषा में अनुवाद बहुत प्राचीन और मूल पाठ-निर्धारण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रो० विल्सन, मैक्समूलर, गिल्डमिस्टर, स्टैत्सलर, हल्सच, टी० क्लार्क आदि के अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मैक्स-मूलर ने जर्मन में पद्यानुवाद और स्वेट्ज ने जर्मन में गद्यानुवाद किया है। आर्थर राइडर और एच० जी० रूक ने अंग्रेजी में इसके सुन्दर पद्यानुवाद किए हैं। जर्मन कवि शीलर की कृति 'मेरिया स्टुअर्ट' नाटक को मेकडानल ने मेघदूत के विल्सन-कृत अनुवाद पर आश्रित माना है, परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि विल्सन का मेघदूत का अनुवाद १८१३ ई० में प्रकाशित हुआ था और शीलर की कृति १८०० ई० में ही प्रकाशित हो चुकी थी। इसमें भी मेघ द्वारा सन्देश भेजने की कल्पना है। डा० एच० बेक्ख (Beckh) ने इसका तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है। मेघदूत की लोकप्रियता, मनोज्ञता, भावुकता और रसिकता की मनोरमता पर आकृष्ट होकर संस्कृत-कवियों ने दूत-काव्य की एक परम्परा स्थापित कर दी। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं :—८वीं शताब्दी ई० के जैन कवि जिनसेन-कृत पार्श्वाम्युदय (समस्यापूर्ति के रूप में मेघदूत का उपयोग), विक्रम कवि-कृत नेमिदूत, धोयी (१२वीं शता० ई०)-कृत पवनदूत, वेदान्तदेशिक (१३वीं ई०)-कृत हंससंदेश, उद्दण्ड कवि (१४०० ई०)-कृत कोकिल-सन्देश, वामनभट्ट बाण (१४२० ई०)-कृत हंस-सन्देश, रूपगोस्वामी (१५०० ई०)-कृत हंसदूत और उद्भवसन्देश, रामशास्त्री (१६वीं ई०)-कृत

मेघप्रतिसन्देश, पूर्णसरस्वती-कृत हंससन्देश, विष्णुत्राता (१६वीं ई०)-कृत कोकसन्देश, वासुदेव (१६वीं ई०)-कृत भृङ्गसन्देश, विनयप्रभ (१३वीं ई०)-कृत चन्द्रदूत, विष्णुदास और रामाराम-कृत मनोदूत, वेंकटनाथाचार्य-कृत हंससन्देश, लक्ष्मीदास-कृत शुकसन्देश, विनयविजयगणी-कृत इन्दुदूत, तैलंग व्रजनाथ-कृत मनोदूत, कृष्णसार्वभौम-कृत पदांकदूत, माधवकवीन्द्र-कृत उदयदूत, कवि बादि-चन्द्र-कृत पवनदूत ।

८. (ख) भर्तृहरि

नीतिशृंगारवैराग्यः स्वानुभूतिमयैर्गुणः ।

शतकत्रयकर्ताऽसौ, हरिः काव्याम्बिसारधुक् ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—शतकत्रय के रचयिता भर्तृहरि कौन हैं ? यह विवादग्रस्त है । एक मत के अनुसार भर्तृहरि विक्रमसंवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के भाई थे । तदनुसार इनका समय ५७ ई० पू० के लगभग सिद्ध होता है । चीनी बौद्ध यात्री ईत्सिंग ने उल्लेख किया है कि उसके लिखने से पूर्व, अर्थात् लगभग ६५१ ई० में, भर्तृहरि नामक वैयाकरण का देहान्त हुआ था । यही भर्तृहरि 'वाक्यपदीय' के लेखक माने जाते हैं । डा० कीथ आदि का मत है कि यही भर्तृहरि शतकत्रय के लेखक हैं ।^१ इनकी पत्नी का नाम 'पिंगला' माना जाता है । ईत्सिंग के कथन के आधार पर भर्तृहरि को बौद्ध कहा जाता है, परन्तु यह मान्यता असंगत है । वाक्यपदीय और नीतिशतक के मंगलाचरण की तुलना से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि वेदान्तोक्त ब्रह्म के उपासक थे (नमः शान्ताय तेजसे, नीतिशतक १) । तीनों शतकों में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है, जिसके आधार पर उन्हें बौद्ध कहना संभव हो । भर्तृहरि का समय ५७५ से ६५० ई० मानना उचित है । कुछ विद्वानों के मतानुसार ये ६४४ ई० में कहरूर की लड़ाई में हूणों को हराने वाले विक्रमादित्य के भाई थे ।^२ नीतिशतक, शृंगार-शतक और वैराग्य-शतक ये तीन शतक, 'शतकत्रय', भर्तृहरि की रचना के रूप में प्राप्त होते हैं ।

१. विशेष विवरण के लिए देखो—संस्कृत साहित्य का इतिहास—वरदाचार्य का लेखक-कृत हिन्दी-अनुवाद पृष्ठ १२६-१३०
२. कीथ—सं० सा० का इति० (हिन्दी) पृष्ठ २१५
३. पाण्डेय-व्यास—सं० सा० की रूपरेखा, पृ० ३२०

शैली—मर्तृहरि की शैली में प्रसाद और माधुर्य है। पद्य अत्यन्त सरल, सुबोध, मनोहर और श्रुतिमुखद हैं। प्रत्येक पद्य अपने आप में पूर्ण है। अतएव ये पद्य मुक्तक के रूप में हैं। मर्तृहरि ने जीवन के सभी पक्षों का गहरा अनुभव प्राप्त किया था, अतएव उनके वर्णन बहुत हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक हैं। उनमें भाव और भाषा का सुन्दर समावेश है। भाषा का लालित्य, भावों की गहराई, अनुभूति की पुष्टि, रसों का सुन्दर समावेश, अलंकारों की रमणीय छटा और कवित्व का कमनीय समन्वय इन पद्यों को अत्यन्त मनोज्ञ बना देता है। भाषा में प्रवाह और लोच है, सरसता और सहृदयता है। मार्मिक अनुभूतियाँ बलात् पाठक को आकृष्ट कर लेती हैं। इनमें आदर्शवादी के लिए नीति एवं शिक्षाप्रद नीति-श्लोक हैं; शृंगारी के लिए शृंगाररस के श्लोक हैं और भक्त के लिए वैराग्य के श्लोक हैं। इस प्रकार ये तीनों शतक सभी प्रकार के पाठकों के लिए चित्ताकर्षक हैं। संस्कृत-कवित्व का सुन्दरतम रूप इन शतकों में मिलता है। इनकी लोकप्रियता इसी से ज्ञात की जा सकती है कि मर्तृहरि के श्लोक प्रसिद्ध सुभाषित और प्रचलित मुहावरे हो गए हैं। बहुत गहराई और अनुभूति के साथ प्रत्येक वर्ण्यविषय का वर्णन है। इनमें आचार-शिक्षा, नीति-शिक्षा, कर्तव्याकर्तव्य-वर्णन परोपकारादि-वर्णन, सज्जनप्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, कर्म-फल की प्रधानता, स्त्रियों की रमणीयता, शृंगाररस की सर्वप्रियता, संसार की नश्वरता, जीवन की क्षणभंगुरता और भक्ति की उपादेयता का सुन्दर वर्णन है। मर्तृहरि के श्लोक अत्यन्त मार्मिक और प्रसिद्ध हैं। उनमें से उदाहरणार्थ कुछ श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

विषयों की असारता; प्रेम की अस्थिरता और यौवन के उन्माद पर उनका प्रसिद्ध श्लोक है :—

यं चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता

साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।

अस्माकृते च परिशुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥ (नीति० २)

परोपकार-निरत और परगुण ग्राही सज्जन विरले ही होते हैं :—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-

स्त्रिभुवनमुपकारधेनिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणून पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ (नीति० ७६)

बिना सोचे बिचारे कभी काम न करे :—

गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ

परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-

र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ (नीति० १००)

शृंगार-शतक में तपस्या से स्त्री-सेवा को महत्त्वपूर्ण बताया है :—

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यम्, आर्याः समर्यादमुदाहरन्तु ।

सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥ (२-१५)

स्त्री ही अमृत है, स्त्री ही विष है । प्रेमी स्त्री अमृत है, वही विरक्त होने पर विष है ।

नामृतं न विषं किंचिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।

सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्ली ॥ (२-२४)

स्त्रियों का मुस्कराना, लज्जा, कटाक्ष, ईर्ष्या-कलह, हाव-भाव, ये सभी चीजें पुरुषों के लिए बन्धन हैं ।

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः ।

वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ (२-८)

स्त्री के शरीर-सौन्दर्य पर मत ललचाओ, नहीं तो तुम्हें कामदेवरूपी चोर ठग ले जाएगा ।

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।

मा संचर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः ॥ (२-३६)

वैराग्यशतक में तृष्णारूपी नदी के वर्णन में साङ्गरूपक का प्रयोग कवि की कवित्व शक्ति का परिचायक है :—

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला

रागप्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।

मोहावर्तमुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी

तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥

(३-३६)

विषय-भोगों का अन्त नहीं होगा, हमारा ही नाश हो जाएगा, अतः तृष्णा छोड़ो :—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।

कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ (३-१३)

परमात्मा ने सर्वगुणसम्पन्न मनुष्य बनाया है, परन्तु उसे भी क्षणभंगुर बनाया है। विधि की बुद्धि पर खेद है !

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।

तदपि तत् क्षणभङ्गि करोति वेदहृ कष्टमपण्डितता विधेः ॥ (३-८८)

तीनों शतकों में सुभाषितों की मुक्तावली मिलती है। एक से एक सुन्दर और स्मरणीय सुभाषित इनमें भरे पड़े हैं। ये मर्तुहरि की काव्य-प्रतिभा, दार्शनिकता, मार्मिक अनुभूति, भावोत्कर्ष, सूक्ष्म दृष्टि और व्यापक ज्ञान के परिचायक हैं। कुछ सुभाषित ये हैं :—विभूषणं मौनमपण्डितानाम् (१-७), विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः (१-१०), मूर्खस्य नास्त्यौषधम् (१-११), साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः (१-१२), वाग्भूषणं भूषणम् (१-१६), विद्याविहीनः पशुः (१-२०), सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् (१-२२), प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति (१-२७), न खलु वयस्तेजसो हेतुः (१-३८), सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते (१-४१), वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा (१-४७), सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः (१-५८), स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (१-७१), न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः (१-८१), मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् (१-८२), शीलं परं भूषणम् (१-८३), न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (१-८४), विधिरहो बलवानिति मे मतिः (१-९२), नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (१-९५), कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः (२-७), विपदि हन्त सुधाऽपि विषायते (२-४७), प्रियः को नाम योषिताम् (२-५५), पुण्यैविना नहि भवन्ति समीहितार्थाः (२-७६), किं नाय वामनयना न समाचरन्ति (२-९२), पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् (३-६), अहह गहना मोहमहिमा (३-१७), शम्भोः पदं निर्मयम् (३-२७), मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः (३-४०), संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः (३-७२), भोगे रतिं मा कृथाः (३-९२), सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः (३-९३) ।

८. (ग) अमरु (अमरुक)

शतपद्यक्तुं कृत्वा, दिव्यसौन्दर्यभोगभुक् ।

‘अमरुः’ अमरेन्द्रः सन्, रसभावविभास्वरः ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—अमरु या अमरुक के जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। यह किंवदन्ती कपोलकल्पित ज्ञात होती है कि मण्डन मिश्र की पत्नी शारदा द्वारा किए गए कामशास्त्र-विषयक प्रश्नों के उत्तर देने के लिए श्री शंकराचार्य ने काश्मीर के मृत राजा अमरु के शरीर में प्रवेश करके अमरुशतक की रचना की। इसके श्लोक प्रश्नोत्तर रूप में नहीं हैं। अमरुक को काश्मीरी मानना उचित प्रतीत होता है।

वामन (८०० ई०) ने अमरुकशतक के तीन श्लोक उद्धृत किए हैं। आनन्द-वर्धनाचार्य (८५० ई०) ने ध्वन्यालोक में अमरुक की बहुत प्रशंसा की है और कहा है कि उसका एक-एक श्लोक एक-एक प्रबन्ध के बराबर है :—‘अमरुकस्य कवेर्मुक्ताः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव’। इस आधार पर अमरुक का समय ७५० ई० से पूर्व माना जाता है।

अमरु का अमरुशतक प्राप्त होता है। इसकी पाण्डुलिपियों में ६० से ११५ श्लोक मिलते हैं। इसके चार पाठों में केवल ५१ श्लोक ही सबमें समान हैं।

शैली और काव्यसौन्दर्य—अमरुक एक अत्यन्त सहृदय, भावुक और रसिक कवि हैं। इनकी रीति वैदर्भी है। ये शृङ्गार रस के उत्कृष्ट कवि हैं। इनके मुक्तक पदों में शृङ्गार रस लबालब भरा हुआ है। इन श्लोकों में प्रसाद, माधुर्य, कोमल कल्पना, सरसता और परिहास है। संभोग शृङ्गार में भी मर्यादा की रक्षा है। एक-एक श्लोक इतना सरस और भावपूर्ण है कि उसे एक लघुकाव्य माना जा सकता है। अतएव कहा गया है कि—‘अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते’। इसमें गागर में सागर भरा हुआ है। शब्दों का बारीकी से संचयन किया गया है। शार्दूलविक्रीडित जैसे लंबे छन्द को छपनाने पर भी लंबे समास, क्लिष्टता और दुरुहता का अभाव है। रस-परिपाक अत्युत्तम हुआ है। कवि को कलापक्ष का मोह नहीं है। वह रसवादी कवि है, अतएव भाव-पक्ष बहुत प्रबल है। इसमें प्रेमी-प्रेमिका की मनोवृत्तियों का सूक्ष्मतम निरीक्षण है। हर्ष-शोक, आमोद-

विषाद, मान्-अपमान, कोप-अनुनय, प्रणयकलह-मिलन आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है। इसमें प्रणय-चित्रों का संकलन है। इसमें प्रेमी-प्रेमिका की विरह-वेदना, अनुनय-प्रसादन, स्त्रीस्वभाव, रोदन, हर्ष और संकोच, त्याग और अधीरता, आसक्ति और निश्छलता आदि का सुन्दर समन्वय किया गया है। कवि यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि प्रेमी और प्रेमिका कभी अलग रह सकते हैं। वे सुख-दुःख में एक हैं, जीवन की इकाई हैं, प्रेम-तरु की दो शाखाएँ हैं, एक दूसरे के पोषक और संवर्धक हैं। प्रणयकलहों की परिणति स्मित और आलिंगन में होती है। बड़े से बड़े दृढनिश्चयी और हठी प्रेमी के निश्चय प्रियतमा की आँखों में अश्रु देखते ही बदल जाते हैं।

काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने अमरुक को बहुत आदर दिया है। इनके पद्यों की ध्वनि अत्यन्त मार्मिक होती है। अतएव आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश (उच्छ्वास १) में ध्वनिकाव्य के उदाहरण के रूप में अमरुक का यह श्लोक दिया है :—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो

नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।

मिथ्यावादिनि दूति ! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे

वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्यावसस्थान्तिकम् ॥

(१०५)

नायिका ने दूती को प्रिय के पास सन्देश लेकर भेजा था, परन्तु वह स्वयं नायक से रमण करने लगी। नायिका कहती है कि तेरे वक्षःस्थल का चन्दन, अधरों की लालिमा और आँखों का अंजन समाप्त हो गया है। तू नहाने गई थी, न कि उस नीच के पास। व्यंग्यार्थ है कि तू अवश्य उस नीच के पास गई थी।

श्लोकों में भाव-सौन्दर्य के साथ नाटकीयता देखें :—

बाले, नाथ, विमुञ्च मानिनि रुषं, रोषान्मया किं कृतं

खेदोऽस्मासु, न मेऽपराध्यति भवान्, सर्वेऽपराधा मयि।

तत् किं रोदिषि गद्गदेन वचसा, कस्याप्रतो रुद्यते

नन्वेतन्मम, का तवास्मि, वयिता, नास्मीत्यतो रुद्यते ॥ (५७)

‘प्रियतमे !’ ‘प्राणनाथ !’ ‘मानिनी, अपना क्रोध छोड़ दो।’ ‘मैंने क्रोध करके क्या किया है ?’ ‘मेरे हृदय में खेद।’ ‘आपने कोई अपराध नहीं किया है,

सारे अपराध मेरे हैं। 'तो क्यों रोती हो?' 'किसके सामने रोती हूँ?' 'मेरे सामने।' 'मैं आपकी कौन हूँ?' 'प्रियतमा।' 'नहीं हूँ, इसीलिए तो रोती हूँ?' प्रश्नोत्तरों की माला में कितना सुन्दर प्रेमी-प्रेमिका का कथोपकथन गुम्फित है!

पति विदेश जाना चाहता है और पत्नी को समझाता है कि फिर मिलेंगे; चिन्ता मत करना; तुम अत्यन्त कृश हो। इतना सुनते ही प्रियतमा की आँखों में आँसू छलक आते हैं और वह वियोग में मरण का संकेत करती है। फल-स्वरूप पति विदेश का कार्यक्रम रद्द कर देता है। पत्नी के आँसुओं में दर्द है, जादू है, कल्पना है और भावावेश है!

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सबाष्पे मयि।

लज्जामन्यतरारकेण निपतत्यीताश्रुणा चक्षुषा

दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥ (१०)

कोई प्रेमी प्रेमिका की स्मृति में विकल हो कहता है—प्रेमिका भोलीभाली है, पर हम हतबुद्धि हैं; वह स्त्री है, पर हम व्याकुल हैं; वह पीन-पयोधर है, हम खिन्न हैं; वह पीन-जघना है, हम चलने में असमर्थ हैं; कष्ट उसे है, दुःखी हम हैं। असंगति अलंकार का कितना सुन्दर उदाहरण कवि ने दिया है:—

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः

सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्।

साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं

दोषैरन्यजनाभयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥ (३४)

शृंगार और प्रेमरसोद्रेक ही अमरक का सर्वस्व है।

८. (घ) जयदेव

कविताकोमलकुञ्जविहारी, बीणावररवमानसहारी।

जय जयदेव जगन्मदकारी, शान्तसुधारससागरचारी ॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त, समय और कृतित्व—जयदेव का जन्म बंगाल के केन्दुबिल्व या किन्दुबिल्व (गीत० ३-१०) नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम

भोजदेव और माता का नाम रामादेवी (या राधादेवी) था।^१ इनकी पत्नी का नाम पद्मावती था। इनकी पत्नी भी संगीतकलाविद् थीं और वह जयदेव के गान पर तालानुसारी नृत्य करती थीं। (पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती, १-२)। ये बंगाल के सेनवंश के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि थे। लक्ष्मणसेन का एक शिलालेख १११६ ई० का मिलता है। अतः जयदेव का समय ११०० ई० के लगभग मानना चाहिए। गीतगोविन्द में इनके समसामयिक पाँच कवियों का उल्लेख मिलता है—उमापतिघर, शरण, गोवर्धनाचार्य (आर्यासप्तशतीकार), श्रुतघर, घोयी (पवनदूत-कार)।^२

इनका एकमात्र ग्रन्थ गीतगोविन्दकाव्यम् मिलता है। इसमें १२ सर्ग हैं। इसमें श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रासक्रीडा; राधा-विषाद-वर्णन; कृष्ण के लिए व्याकुलता; उपालम्भ वचन; कृष्ण की राधा के लिए उत्कण्ठा; राधा की सखी द्वारा राधा के विरह-सन्ताप का वर्णन; कृष्ण का आगमन; राधा का क्रोध-प्रकाशन, कृष्ण का संगीत और राधा से मिलन का वर्णन है।

जयदेव की शैली और काव्यसौन्दर्य

जयदेव कोमल-कान्त-पदावली, सरस सुकुमार भावावली, प्रांजल पद-विन्यास और संगीतात्मक रचना के लिए संस्कृत में सर्वाग्रणी कवि हैं। गद्य, पद्य और गीत, इन तीनों रूपों के समन्वय के द्वारा जयदेव ने संस्कृत-साहित्य में एक नवीन विधा को जन्म दिया है, जिसका स्वरमाधुर्य गीति, लय और ताल के सामंजस्य से हृदयंगम होता है। इनके गीतों में लोच है, संगीत है, हृदयग्राहिता है, कोमलता है और रसिक-मनोरंजन के लिए आकर्षक जादू है। कवि की भाषा में इतना आकर्षण है कि एक बार जयदेव का गीत सुनकर पाठक मन्त्रमुग्ध हो जाता है। कहीं-कहीं लम्बे समास हैं, परन्तु दुर्बोधता नाममात्र को भी नहीं है।

१. श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवीमुतश्रीजयदेवकस्य।

पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥ गीत० १२-११

२. वाचः पल्लवयत्युमापतिघरः संदर्भशुद्धि गिरां

जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरुहद्रुतेः।

शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-

स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिघरो घोयी कविक्षमापतिः ॥ गीत० १-४

सरस पदावली की स्वरमाधुरी वीणा की सी मधुर ध्वनि उत्पन्न करती है। चाहे वियोग हो या संयोग, हर्ष हो या शोक, प्रणय हो या कोप, मान हो या संकोच, उपालंभ हो या अनुनय, सर्वत्र कवि की भाषा में भावोद्बोधन की अपूर्व क्षमता है। अतएव उनका अपने आपको 'कविराजराज' कहना उपयुक्त है।

गीति-काव्य या संगीत-नाटक—यह निर्विवाद है कि जयदेव ने कविता की एक नई विधा को जन्म दिया है। सर विलियम जोन्स (Sir William Jones) ने इसे ग्राम्य-नाटक (Pastoral Drama), लासेन (Lassen) ने गीति-नाटक (Lyric Drama) और फॉनश्रोएदर (Von Schroeder) ने परिष्कृत यात्रा (Refined yatra) नाम दिया है। पिशेल (Pischel) और सिल्वां लेवी (Sylvan Levi) ने इसे गीति और नाटक के मध्य की कृति माना है। पिशेल ने इसे अन्ततः संगीत-नाटक (Melo-Drama) नाम देना उचित समझा है। यह सत्य है कि इसमें अभिनेयता है और अभिनयात्मक कथोपकथन हैं, परन्तु इतने से किसी काव्य को नाटक नहीं कहा जा सकता है। इसकी रचना काव्य की दृष्टि से हुई है, अतएव इसका विभाजन सर्गों में है, न कि अंक या दृश्य के रूप में। इसलिए इसे गीति-काव्य ही कहना उपयुक्त है।

भक्तिकाव्य या शृंगार-काव्य—इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि जयदेव भक्त कवि हैं या शृंगारी कवि। यह सत्य है कि इसमें श्रीकृष्ण की रास-लीला, कृष्ण-राधा की केलि-क्रीडा और उनका प्रणय-व्यापार वर्णित है। इसको अनेक विद्वानों ने आध्यात्मिक रूप देकर कृष्ण को ब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा बताया है। कृष्ण और राधा का मिलन ब्रह्म और जीव का मिलन है। गोपियाँ जीवात्मा की प्रतीक हैं और वे कृष्णरूपी ब्रह्म से मिलने के लिए व्याकुल रहती हैं तथा अन्ततः दोनों का समागम होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक व्याख्या संभव है, परन्तु गीत-गोविन्द का मौलिक अंश इसका समर्थन नहीं करता है। अभिसार, नखशिख-वर्णन, शारीरिक सौन्दर्य, उद्दाम कामवासना, परस्त्री-गमन, परस्त्रीसंभोग आदि को आध्यात्म की कोटि में डालना दुःसाहस है। जयदेव मूलतः शृंगारी कवि हैं और गीतगोविन्द मूलतः शृंगारिक गीति-काव्य है। इसमें कृष्ण और राधा की भक्ति का पुट देकर इसे धार्मिकता का जामा पहनाने का प्रयत्न किया गया है। यही स्थिति हिन्दी में विद्यापति कवि के साथ है। उन्होंने भी कृष्ण-राधा की भक्ति का नाम लेकर शृंगार-रस का ही पोषण किया है।

इसके पीछे व्यावहारिक दृष्टिकोण भी था। बंगाल आदि में मन्दिरों, देव-यात्राओं, उत्सवों आदि के अवसरों पर कृष्णलीला आदि से संबद्ध गीत गाए जाते थे। अनेक अवसरों पर वेश्या-नृत्य आदि भी होते थे। अपनी सद्यःप्रसिद्धि और लोकप्रियता को लक्ष्य में रखकर जयदेव ने ऐसे सरस गेयपद बनाए जो मन्दिरों आदि में सर्वत्र गाए जा सकें। प्रत्येक पद के साथ राग, ताल आदि का भी पूर्ण संकेत है, जिससे संगीत और नृत्य दोनों का समन्वय किया जा सके। राधा-कृष्ण से संबद्ध होने के कारण ये गीत बंगाल आदि में अत्यन्त लोकप्रिय हुए। कृष्णभक्तों का यह परम प्रिय ग्रन्थ है।

काव्यसौन्दर्य—जयदेव का कलात्मक सौन्दर्य अनुपम है। वही संस्कृत-साहित्य में एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने काव्य और संगीत का पूर्ण समन्वय स्थापित किया है। जयदेव में काव्य-सौन्दर्य, माधुर्य, शब्द-लालित्य, प्रवाह और रागात्मकता का ऐसा संयोग है कि उनकी कविता में नर्तकी के नूपुरों की झंकार है, अभिनेत्री की कोमल काकली है, वीणा का तन्त्रीनाद है और तरुणी का लास्य है। हरि-कीर्तन के साथ रास-लीला की रमणीयता, कोमल-कान्त-पदावली की मधुरिमा और सरस्वती का कलकल निनाद जयदेव की काव्यकला की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अतएव कवि का कथन है :—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकथासु कुतूहलम् ।

मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥

(गीत० १-३)

जयदेव ने इसमें नृत्य-गीति-संगीत, विष्णुभक्ति, शृंगाररस और रचना-कौशल का पूर्णतया समावेश किया है (१२-१०)। जयदेव की अत्यधिक प्रसिद्धि के कारण हैं—उनकी अभिव्यंजना-शक्ति, कृष्ण-भक्ति, संगीतात्मक काव्यरूप और शृंगार का सरस प्रवाह। इसमें पाठ्य और गीत, कथा, वर्णन और संवादों का एक निश्चित उद्देश्य से बड़ी कुशलता के साथ समन्वय किया गया है। शब्द और अर्थ का उत्कृष्ट सामंजस्य है। गीतों में व्याकुलता, आशा, निराशा, प्रणय-कलह, प्रणयकोप, विरह-वेदना, दर्शन, स्पर्शन, मिलन और रति-क्रीडा का राधा या उसकी सखियों के द्वारा चित्रण किया गया है। पद्यों में अनुप्रास के साथ अन्त्यानुप्रास का प्रयोग, छन्दोविधान में निर्दोषता, अलंकारों की छटा और भावों की सुकुमारता इसके काव्यसौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। ध्वनि और अर्थ

का सामंजस्य जयदेव में ही मिलता है। आधुनिक दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य वह माना जाता है, जिसका अनुवाद न किया जा सके। इस दृष्टि से गीत-गोविन्द सर्वोत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ है। जयदेव को भी अपनी कविता की मधुरता, प्रांजलता, सुकुमारता और सरसता का अभिमान था। अतः उनका कथन उचित है कि मेरी कविता के समक्ष माध्वीक (द्राक्षासव), चीनी, अंगूर, अमृत, दूध, आम और अधर-मुधारस सभी फीके हैं :—

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि

द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते ।

माकन्द क्रन्द कान्ताधर धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं

यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वेदगध्यवाचः ॥ (१२-१२)

‘संदर्भशुद्धि गिरां जानीते जयदेव एव०’ (१-४) के द्वारा कवि ने अपनी भाषा के परिष्कार पर विशेष बल दिया है। शब्द-सौष्ठव, पद-माधुर्य, भावों की सुकुमारता, काव्यसौन्दर्य, प्रेमभाव की मार्मिक व्यंजना, संगीतात्मकता, भावों की तन्मयता और कला की कमनीयता में गीतगोविन्द सर्वोत्कृष्ट है।

राधा की सखी राधा को श्रीकृष्ण के साथ विहार करने के लिए प्रेरित करती है। वसन्त ऋतु है, कृष्ण गोपियों के साथ विहार कर रहे हैं। कितना मादक समय है ! ऋतु की मादकता के साथ पद-माधुरी भी देखें :—

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे

मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥१॥

विहरति हरिरिह सरस - वसन्ते

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि, विरहिजनस्य बुरन्ते ॥२॥

(गीति० १-३)

राधा की सखी यमुना के तट पर कृष्ण के साथ काम-क्रीडा और विहार के लिए राधा को उद्बोधित करती है। कृष्ण प्रणय-क्रीडा में दक्ष हैं, अतः अभिसार में विलम्ब न कर। गुर्जरीराग और एकताली ताल में गाए जाने वाले गीत की संगीतात्मकता अत्यन्त रमणीय है :—

रतिमुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ।

न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥१॥

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति बने वनमाली ।

गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रुवम् ।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम् ।

चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ॥४॥

विगलितवसनं परिहृतरसनं घटय जघनमपिधानम् ।

किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ॥६॥

(गीत० ५-११)

कृष्ण गोपियों से रासक्रीडा में मग्न हैं । किमी का आलिङ्गन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं, किसी से विहार करते हैं, किसी से आँख मिलाते हैं और किसी का पीछा करते हैं । रामकरी राग और यति ताल में गेय पद की लयात्मकता देखिए :—

चन्दनर्चाचितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।

केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगः स्मितशाली ॥२॥

दिलप्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।

पश्यति सस्मितचाहतरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥८॥ (गीत० १-४)

राधा के विविध अंगों में विविध अप्सराओं का निवास है, अतः उसका शरीर अप्सरामय है । श्लेष के आधार पर मदालसा, इन्दुमती, मनोरमा, रम्मा, कलावती और चन्द्रलेखा अप्सराओं के नाम भी आए हैं । कवि की कल्पना-शक्ति का सुन्दर उदाहरण है :—

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुसंदीपकं

गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमूरुहयम् ।

रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-

वहो विबुध्यौवतं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ (गीत० १०-७)

राधा का एक अन्य सुन्दर वर्णन भी कविप्रतिभामूलक है । राधा के शरीर में कामदेव के सभी अस्त्र व्याप्त हैं । उसकी भ्रूलता धनुष है, कटाक्ष बाण हैं, दोनों कान रस्सी हैं । राधा कामदेव की विजयिनी जंगम देवता है । कामदेव ने अपने अस्त्र उसे दे दिए हैं । यह सुन्दर कल्पना है :—

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि

बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण ।

तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-

मस्त्राणि निजितजगन्ति किमपितानि ॥ (गीत० ३-१३)

कृष्ण को ही दश अवतारों में विभिन्नरूपात्मक मानने में भी कवि की शक्ति प्रशंसनीय है :—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोत्रभुद्विभ्रते

दैत्यान् दारयते बर्नि छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।

पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुष्यमातन्वते

म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

(गीत० १-१२)

जयदेव की वाणी में रस है, माधुर्य है, संगीत है, सुकुमारता है, मनोज्ञता है और जादू है, जिसने देश और विदेश के सभी संस्कृत-प्रेमियों को एक स्वर से उसका प्रशंसक बनाया है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि जयदेव में मौलिक प्रतिभा का अभाव है। परम्परामुक्त उपमाएँ, प्रकृतिवर्णन और विरह-दशावर्णन आदि सभी बातों में प्राचीन कवियों का अनुसरण है। कालिदास की कोमल कल्पना, अमरुक की रसानुभूति उनमें नहीं है। उनमें बाह्यसौन्दर्य और उद्दाम कामक्रीडा का अनन्त प्रवाह है। परन्तु उनके पदलालित्य और संगीतमाधुर्य की चकाचौंध ने उनकी मौलिकता के अभाव को सर्वथा छिपा दिया है। उनके गुणों और दोषों का समन्वय करते हुए यह कहा जा सकता है कि—

साहित्यसंगीतकलारसज्ञः, साक्षात् पशूनां पतिरेष देवः ।

शूलं न गृह्णन्नपि सेव्यमानस्तद् भागधेयं परमं कवीनाम् ॥

(कपिलस्य)

लोकप्रियता—जयदेव के संगीत, राग और पदमाधुर्य ने जनता पर इतना गहरा प्रभाव छोड़ा है कि उनके जन्म स्थान 'केन्दुबिल्व' (केन्दुली) में आज भी उनकी स्मृति में पौष शुक्ला सप्तमी को उत्सव मनाया जाता है और वैष्णव जन रात्रि में उनके पद्यों का गान कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। १४६६ ई० में प्रतापरुद्रदेव राजा ने आज्ञा निकाली कि नर्तक तथा वैष्णव गायक केवल जयदेव के गीत सीखें। १२६२ ई० के एक अभिलेख में उनका एक पद्य उद्धृत किया गया है। सर विलियम जोन्स-कृत गीतगोविन्द के अनुवाद

पर जर्मन महाकवि गेटे (Goethe) ने इसकी भूरिभूर प्रशंसा की थी।^१ चैतन्य महाप्रभु जयदेव के गीतगोविन्द के परम प्रशंसक थे। इस पर संस्कृत में कुम्भकर्ण (१५६३ ई०), शंकरमिश्र (१७५६ ई०), वनमाली भट्ट आदि की^२ लगभग ३५ टीकाएँ हैं। मैसूर के राजा चिक्कदेवराय (१६७२ ई०-१७०४ ई०) ने इसके अनुकरण पर 'गीतगोपाल' काव्य लिखा है। इसके अनुकरण पर लिखे गए अन्य काव्य हैं—अभिनवगीतगोविन्द, गीतराघव, गीतगंगाधर आदि। हिन्दी कवि चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास, अष्टछाप के अन्य कवि तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पद्यरचना पर जयदेव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

८. (ङ) पण्डितराज जगन्नाथ

भामिनीलाससंपूक्तो रसगङ्गाधरः कविः।

भावभूतिगणैः श्लिष्टो जगन्नाथः शिवः स्वयम् ॥ (कपिलस्य)

जीवनवृत्त—पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य काव्यशास्त्री और समालोचक हैं। इनके पिता पेरु भट्ट और माता लक्ष्मीदेवी थीं। ये तैलंग ब्राह्मण थे। ये बहुत व्युत्पन्न और प्रतिभाशाली थे, अतः बादशाह शाहजहाँ (१६२८ ई० से १६५८ ई०) ने इन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाने के लिए निमन्त्रित किया। इनका यौवन शाहजहाँ की छत्रछाया में व्यतीत हुआ।^३ (दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः)। ये वहाँ रहते हुए एक यवन-कन्या 'लवंगी' के चक्कर में फँस गए और उससे विवाह कर लिया।^४ इनके समकालीन प्रसिद्ध विद्वान् भट्टोजिदीक्षित और अप्पयदीक्षित ने इनको जाति-बहिष्कृत करा दिया। फलस्वरूप ये दोनों दीक्षितों के घोर शत्रु हो गए और भट्टोजिदीक्षित की प्रौढमनोरमा-टीका के खण्डन में 'मनोरमाकुचमर्दन' व्याकरण-

१. कीथ — H.S.L. पृष्ठ १६१

२. दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।

अन्येन केनापि नृपेण दत्तं, शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात् ॥

३. (क) न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं, न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा, लवङ्गी कुरङ्गीदृगङ्गीकरोतु ॥

(ख) यवनी नवनीतकोमलाङ्गी, शयनीये यदि नीयते कदाचित्।

अवनीतलमेव साधु मन्ये, न वनी माधवनी विनोदहेतुः ॥

ग्रन्थ लिखा और अप्पय दीक्षित की 'चित्रमीमांसा' के खण्डन में 'चित्रमीमांसा-खण्डन' अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा। इनकी वृद्धावस्था मधुपुरी (मथुरा) में बीती। वे अन्त में कृष्णभक्ति में लीन रहे। अन्तिम समय में काशी में पंच-गंगा घाट पर गंगा-स्तुति में 'गंगालहरी' की रचना की और उसका पाठ करते हुए उन्होंने जलसमाधि ली। यवनी-प्रणय का यह अन्तिम प्रायश्चित्त था।

समय—शाहजहाँ का समकालीन होने से इनका समय १६०० ई० से १६६० ई० के मध्य में समझना चाहिए। १६४१ ई० में अपने मित्र आसफअली की मृत्यु पर इन्होंने 'आसफविलास' लिखा। काशी के भास्कर कवि (उपनाम हरिकवि) ने अपने ग्रन्थ 'पद्यामृततरङ्गिणी' (१६७३ ई० में रचित) में पण्डितराज का एक पद्य दिया है। मराठी के प्रसिद्ध कवि वामन पण्डित (१६३६ ई०-१६६५ ई०) ने गंगालहरी का समश्लोकी शिखरिणी में मराठी-अनुवाद किया है। अतः पण्डितराज का समय १६०० ई० से १६६० ई० के मध्य मानना उचित है।

कृतित्व—पण्डितराज जगन्नाथ की १३ कृतियाँ प्राप्त होती हैं। ये काव्य, गीतिकाव्य, व्याकरण और साहित्य से संबद्ध है:—(१) गंगालहरी (या पीयूष-लहरी ५३ पद्य, गंगास्तुति), (२) अमृत-लहरी (११ पद्य, यमुनास्तुति), (३) सुधालहरी (३० पद्य, सूर्य-स्तुति), (४) लक्ष्मीलहरी (४१ पद्य, लक्ष्मी-स्तुति), (५) करुणालहरी (५५ पद्य, विष्णुस्तुति), (६) आसफविलास (आसफखाँ का चरित), (७) प्राणाभरण (५३ पद्य, कामरूप के राजा प्राणनारायण का वर्णन), (८) जगदाभरण (उदयपुर के राजा जगत्सिंह की प्रशंसा), (९) यमुनावर्णन (२ पद्य, रसगंगाधर में प्राप्य), (१०) रसगंगाधर (काव्यशास्त्र का प्रौढतम ग्रन्थ), (११) भामिनीविलास (४ विलास), (१२) मनोरमाकुचमर्दन (प्रौढमनोरमा की आलोचना), (१३) चित्रमीमांसाखण्डन (अप्पयदीक्षितकृत चित्रमीमांसा की आलोचना)। इनके अतिरिक्त शब्द-कौस्तुभशाणोत्तेजन (भट्टोजिदीक्षित के शब्द-कौस्तुभ की आलोचना, ग्रन्थ अप्राप्य) और लगभग ५८८ स्फुट पद्य मिलते हैं।

शैली और काव्यसौन्दर्य—'भामिनीविलास' पण्डितराज का गीतिकाव्य है। तृतीय विलास में भामिनी शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके आधार पर अनुमान किया गया है कि उनकी पत्नी का नाम भामिनी था और उसके नाम पर भामिनीविलास नाम रखा गया। इसमें ४ विलास हैं—१. अन्योक्ति-विलास (या प्रास्ताविक विलास), २. शृंगारविलास, ३. करुण-विलास, ४.

शान्त-विलास । भामिनीविलास के मुक्तक पद्यों में कवि ने अपनी अनुभूतियों का सागर गागर में उडेल दिया है । अन्योक्तियों में सिंह, कमल, मधुकर, चन्दन, मेघ, समुद्र आदि ३४ पदार्थों को लेकर अत्यन्त सुन्दर और भावपूर्ण अन्योक्तियाँ दी हैं । सिंह पराक्रम और शौर्य का प्रतीक है, कमल सुकुमारता और सरसता का, भ्रमर गुणग्राहिता का, चन्दन परोपकार का और मेघ उदारता का । अन्योक्तियाँ एक से एक सुन्दर बन पड़ी हैं । इनमें स्वाभाविकता के साथ प्रसाद और माधुर्य है । सिंहादि-विषयक अन्योक्तियों में अज गुण भी है । शृंगारविलास में शृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का मार्मिक चित्रण है । करुण और शान्त विलास में जीवन की असरता, संसार की नश्वरता और भक्ति की उपादेयता का प्रौढ, परिष्कृत और सहज-सुन्दर भाषा में वर्णन है । पण्डितराज पाण्डित्य के पारावारीण हैं । पग-पग पर काव्य-सौन्दर्य, अलंकृत पदावली, भाव-सुषमा, रस-प्रवणता, ज्ञान-गरिमा, पाण्डित्य-परिपाक और हृदयग्राहिता का दर्शन होता है । पण्डितराज का बात कहने का ढंग अनूठा है । उनका पाण्डित्य का स्वामि-मान दुर्दान्त सिंह के तुल्य प्रौढता और अदम्यता का प्रदर्शन करता है । कोमल पदावली, ललित भावामिव्यक्ति, परिष्कृत और प्रौढ भाषा, अभिनव रमणीयता, मनोज्ञ विचारधारा और व्यावहारिक बोध पण्डितराज की प्रमुख विशेषताएँ हैं । उनमें प्रसंग और भाव के अनुकूल श्लोक-रचना का अक्षय ज्ञानभण्डार है । अतएव रस-गंगाधर में उन्होंने सभी रसों और अलंकारों के उदाहरण स्वरजित श्लोकों में ही दिए हैं । उनका कथन है कि कस्तूरी पैदा करने वाला मृग क्या भ्रमरवत् दूसरों के फूल की गन्ध लेता है ?

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं, काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित् ।

किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः, कस्तूरिकाजननशक्तिभूता मृगेण ॥

अन्योक्तिविलास में सिंहान्योक्ति के रूप में अपने पाण्डित्य की प्रखरता घोषित करते हैं कि शेर अपने नखों की प्रखरता किस पर प्रदर्शित करे । उनका प्रसिद्ध श्लोक है^१ :—

दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डाः करटिनः

करिण्यः कारुण्यास्पदमसमशीलाः खलु मृगाः ।

१. अन्योक्तिविलास—विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९६८ ई० तथा
भामिनी-विलास—सं० जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १९३६ ई० ।

इदानीं लोकेऽस्मिन्ननुपमशिलानां पुनरयं

नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपतिः ॥ (१-१)

हंस ही यदि कुलव्रत का पालन नहीं करेगा तो और कौन करेगा ? सरस, सरल और प्रांजल भावाभिव्यक्ति दर्शनीय है :—

नीरक्षीरविवेके हंसाजस्य त्वमेव तनुषे चेत् ।

विश्वस्मिन्नधुनाऽन्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥ (१-१२)

गुरुप्रशंसा में भी वही भावोदात्तता है । वे ऊपर से भयंकर भुजंगवत् और अन्दर से द्राक्षावत् होते हैं :—

उपरि करवालधाराकाराः क्रूरा भुजङ्गमपुङ्गवात् ।

अन्तः साक्षाद् द्राक्षादीक्षागुरवो जयन्ति केऽपि जनाः ॥ (१-१३)

गुरुओं के कठोर वचन ही मनुष्य को योग्य मनुष्य बनाते हैं । सान पर घिसे हुए रत्न ही राजमुकुट में स्थान पाते हैं ।

गीर्भिर्गुरुणां पक्षाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् ।

अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ॥ (१-७१)

सरसता की एक सुन्दर अन्योक्ति देखें । जिस मधुकर ने कमलों में दिन बिताए हैं, हाय अब वह कुटज वृक्ष पर जाना चाहता है ?

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत ।

कुटजे खलु तेने हा तेनेहा मधुकरेण कथम् ॥ (१-६)

सुकुमार भावना का वर्णन देखें । हे राजहंस, तूने सरोवर के जल, मृणाल और कमलों का भोग किया है । बता अब तू इसके ऋण से कैसे उक्तृण हो सकता है ?

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीतान्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि ।

रे राजहंस वद तस्य सरोवरस्य, कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः ॥ (१-४५)

सत्पुरुष के वर्णन में श्लेष से तत्पुरुष समास का वर्णन कवि की शास्त्रीय प्रतिभा का द्योतक है । दोनों में स्वार्थपरता का अभाव, परार्थ-वृत्तित्ता, गुणी या गौण में अभेदबुद्धि, हृदय में उदात्तता (अन्तिम अच् पर उदात्त स्वर) और सामर्थ्य गुण होते हैं ।

परार्थव्यासङ्गाबुपजहृदयं स्वार्थपरता-

मभेदेकत्वं यो वहति गुणभूतेषु सततम् ।

स्वभावाद्यस्यान्तः स्फुरति ललितोदात्तमहिमा

समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि पुरुषः ॥ (१-७४)

शृंगारविलास में शृंगार का मधुर परिपाक है। नदी तीर पर तरुणी का सस्मित मुखपद्म है और सरोवर में विकसितपद्म। मकरन्द के लोभी भ्रमरों की पंक्ति कभी इधर और कभी उधर दौड़ रही है :—

तीरे तरुण्या वदनं सहासं, नीरे सरोजं च मिलद्विकासम् ।

आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा, मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला ॥ (२-२०)

कविता और वनिता का सुन्दर साम्य कम मनोहर नहीं है। श्लेष के द्वारा दोनों का साम्य बताया गया है। दोनों ही दोषरहित, गुणयुक्त, रस और भाव से पूर्ण, सालंकार, सुकुमार वर्ण वाले और मनोहर हैं :—

निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा, सालंकृतिः श्रवणमंगलवर्णराजिः ।

सा मामकीनकवितेव मनोऽभिरामा, रामा कदापि हृदयान्मम नापयाति ॥ (३-६)

शान्तविलास में कवि ने अपने पापों के प्रक्षालनार्थ भक्ति का सुन्दर उपदेश दिया है। यह संसार और यह शरीर नश्वर हैं। फिर भी शरीर के लिए मनुष्य कितने झंझट करता है :—

निखिलं जगदेव नश्वरं पुनरस्मिन् नितरां कलेवरम् ।

अथ तस्य कृते कियानयं क्रियते हन्त जनैः परिश्रमः ॥ (४-२५)

चाहे राज्य-लक्ष्मी जाए, चाहे तलवार की चोट सहनी पड़े, चाहे मृत्यु ही आ जाए, पर मन कभी धर्म न छोड़े। कितनी उच्च भावना है !

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीरुपरि पतन्वथ वा कृपाणधाराः ।

अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात् ॥ (४-२७)

मगवन् ! मैंने आपकी शिक्षाओं का पालन नहीं किया; अहंकार में डूबा रहा; मैं पापी और प्रमत्त हूँ, आप दयालु और उद्धारक हैं, मेरा बेड़ा पार करें। 'मत्तो न मत्तोऽपरः' का संगीत मनोरम है !

वाचा निर्मलया मुधामधुरया यां नाथ शिक्षामदा-

स्तां स्वप्नेऽपि न संस्मराम्यहमहंभावावृतो निस्त्रयः ।

इत्यामःशतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मां बिभ्रत-

स्त्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न मत्तोऽप्ररः ॥ (४-१०)

कृष्ण नाम का माधुर्य अंगूर, चीनी, दूध, अमृत और अघर-सुधारस से भी बढ़कर है। यौवन की ऊष्मा दूर होने पर पण्डितराज को अन्तिम समय में 'यवनी नवनीत-कोमलाङ्गी' से अधिक माधुर्य कृष्ण नाम में मिलने लगा। भाव-विह्वलता देखें :—

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः

स्वयतिन सुषाज्यधायि कतिधा रम्भाघरः खण्डितः ।

सत्यं ब्रूहि मदीयजीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता

कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः ॥ (४-१४)

८. (च) गीतिकाव्य—विविध

शृंगारिक गीतिकाव्य

पूर्व-वर्णित गीतिकाव्यों के अतिरिक्त अन्य महाकवियों के भी शृंगारिक गीति-काव्य प्रसिद्ध हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय हाल (प्रथम शती ई०) की गाथा-सप्तशती है। इसमें ७०० आर्या छन्दों का संग्रह है। इनकी रचना महाराष्ट्री प्राकृत में हुई है, इसमें शृंगार, प्रकृति-चित्रण तथा नीति-विषयक सूक्तियाँ भी हैं। बिल्हण (११वीं शती ई० उत्तरार्ध)-कृत चौरयंचाशिका में ५० लघुपद्य हैं। इसमें भी शृंगार प्रधान है। गोवर्धनाचार्य (१२वीं शती ई०) की आर्यासप्तशती में आर्या छन्द में ७०० शृंगाररस-पूर्ण पद्यों का समावेश है।

स्तोत्रसाहित्य

स्तोत्र का अर्थ है—आराध्य देव की स्तुति। स्तोत्र साहित्य का उद्गम ऋग्वेद से ही होता है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति है। गीता के ११ वें अध्याय में श्रीकृष्ण के विराट् रूप का वर्णन है। भागवतपुराण, विष्णुपुराण, नारदपुराण आदि में उपास्य देवों की स्तुति वर्णित है। अध्यात्म-रामायण में श्री रामचन्द्र की ब्रह्म के रूप में स्तुति है। स्तोत्र-साहित्य पूर्णतया भक्ति-प्रधान है। इनमें भक्ति का सरोवर भरा हुआ है। भावुकता, सहृदयता, मार्मिकता और सरसता कूट-कूट कर भरी हुई है।

इनका उद्देश्य है—मनुष्य को सांसारिक दुःखों से छुड़ाकर भगवान् की भक्ति में अर्पित करना। स्तोत्र-साहित्य की संख्या सैकड़ों में है। कुछ प्रसिद्ध महाकवियों के नाम से अपने स्तोत्र को प्रचलित कर देना, यह भारत में एक प्रचलन रहा है। इसके परिणामस्वरूप महाकवि कालिदास, शंकराचार्य आदि के नाम से अनेक स्तोत्र-ग्रन्थ प्रचलित हो गए हैं। उनमें से कितने उन महाकवियों की रचना हैं, यह कहना असंभव है। संलग्न सारणी में जो स्तोत्र उनके नाम के सामने लिखे गए हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। तथापि प्रचलन के आधार पर जिज्ञासा-पूर्वक उन स्तोत्रों का समावेश किया गया है। इन स्तोत्रों में विशेष उल्लेखनीय शंकराचार्य के स्तोत्र, मूक-कवि-कृत मूकपंचशती, पुष्पदन्त-कृत शिवमहिम्न-स्तव, वेदान्तदेशिक-कृत २५ स्तोत्रग्रन्थ, नारायणभट्टकृत नारायणीयम् और जगद्धर भट्ट-कृत स्तुतिकुसुमांजलि मुख्य हैं। बौद्ध और जैन महाकवियों ने भी गीतिकाव्यों की समुन्नति में बहुत योगदान किया है। बौद्ध कवियों में अश्वघोष, सर्वज्ञमित्र और नागार्जुन उल्लेखनीय हैं। जैन कवियों में मानतुल्लाचार्य, सिद्धसेन दिवाकर और हेमचन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपदेश-काव्य—गीतिकाव्य की एक विधा उपदेशात्मक गीतिकाव्य हैं। ये नीतिग्रन्थ भी कहे जा सकते हैं। इनमें क्षेमेन्द्र के देशोपदेश और नर्ममाला ग्रन्थ व्यंग्यप्रधान हैं। दामोदर गुप्त-कृत कुट्टिनीमत लोकव्यवहाराभिज्ञता का अपूर्व निदर्शन है। इसमें तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है।

सारणी में दिए लेखकों के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद है, अतः दिया गया समय प्रायः आनुमानिक है।

अन्य गीतिकाव्यकार

गीति-काव्यकार	ग्रन्थ-नाम	समय	विशेष
ईसापूर्व			
१. रावण	शिवताण्डवस्तोत्र	अनिर्णीत	शिव-स्तुति, १५ श्लोक
२. व्यास	विश्वनाथाष्टक	"	शिवस्तुति, १० श्लोक
	भगवतीस्तोत्र	"	शक्ति-स्तुति, ६ श्लोक
३. बुद्ध	धम्मपद (संकलन)	"	उपदेशात्मक
४. चाणक्य	चाणक्यशतक	"	नीति, ३४० श्लोक

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
५. कालिदास	शृंगारतिलक, कालीस्तोत्र, गंगाष्टक, पुष्पबाणतिलक, राक्षसकाव्य	अनिर्णीत ,, ,, ,, ,,	शृंगार, २३ श्लोक काली-स्तुति गंगा-स्तुति शृंगार २६ शृंगार, २० श्लोक
६. घटकर्पर	घटकर्परकाव्य नीतिसार	,, ,,	शृंगार, २२ नीति, २१
प्रथम शताब्दी ई०			
७. हाल, राजा	गाथासप्तशती	७८ ई०	शृंगार, ७०० पद्य
८. अश्वघोष	गण्डीस्तोत्रगाथा	प्रथम शता०	गण्डी-स्तुति, बौद्ध
तृतीय शताब्दी ई०			
९. नागार्जुन	चतुःस्तवः	३ य शता०	४ स्तोत्रग्रन्थ
पंचम शताब्दी ई०			
१०. सिद्धसेन दिवाकर	कल्याणमन्दिरस्तोत्र	५०० ई० ल०	जैन तीर्थंकर, ४४ पद्य
११. सुन्दर पाण्ड्य	नीतिद्विषष्टिका	,,	नीति, ११६ श्लोक
षष्ठ शताब्दी ई०			
१२. शान्तिदेव	बोधिचर्यावतार	६०० ई० ल०	बौद्ध, नीतिग्रन्थ
७वीं शताब्दी ई०			
१३. हर्षवर्धन, राजा	अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र सुप्रभातस्तोत्र	६ठीं पू० ,,	बौद्ध-स्तोत्र बौद्ध-स्तोत्र
१४. बाण	चण्डीशतक	,,	चण्डीस्तुति, १००
१५. मयूर	सूर्यशतक	,,	सूर्यस्तुति, १००
१६. शंकराचार्य	सौन्दर्यलहरी, चर्पटपंजरिकास्तोत्र, श्रीकृष्णाष्टक, आनन्दलहरी, २६ स्तोत्र	,, ,, ,, ,,	कृष्णस्तुति, १७ कृष्णस्तुति, ८ शक्ति-स्तुति, २०

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
१७. सर्वज्ञमित्र	स्रग्धरास्तोत्र	६वीं पू०	बौद्ध देवी तारा-स्तुति
१८. मानतुङ्ग आचार्य भक्तामरस्तोत्र		"	जैन तीर्थंकर-स्तुति
१९. कुलशेखर, राजा	मुकुन्दमाला	७०० ई०	विष्णुस्तुति
२०. मूक	मूकपञ्चशती	"	कामाक्षीस्तुति, ५००
२१. विजयांका (विज्जिका)	स्फुट पद्य	७वीं उ०	उद्धरणरूप में प्राप्त
८वीं शती ई०			
२२. मल्लट	मल्लटशतक	८वीं शता०	अन्योक्ति, १००
९वीं शती ई०			
२३. पुष्पदत्त	महिम्नःस्तव	९वीं पू०	शिवस्तुति, ४० पद्य
२४. रत्नाकर	वक्रोक्तिपञ्चाशिका	"	वक्रोक्ति, ५० पद्य
२५. आनन्दवर्धन	देवीशतक	"	पार्वतीस्तुति, १००
२६. दामोदर गुप्त	कुट्टिनीमत	"	वेद्या-शिक्षाग्रन्थ, १०५९ पद्य
२७. बल्लाल	बल्लालशतक	९वीं उ०	अन्योक्ति, १००
२८. शीला भट्टारिका	स्फुट पद्य	"	शृंगार
२९. शिवदास	मिक्षाटनकाव्य	"	शृंगार
(उत्प्रेक्षावल्लभ)			
३०. लक्ष्मण आचार्य	चण्डीकुचपञ्चाशिका	"	चण्डीस्तुति, ५०
१०वीं शती ई०			
३१. उत्पलदेव	स्तोत्रावलि	९२५ ई०	शिवस्तुति
३२. यामुनाचार्य (आल-बन्दार)	आलबन्दार-स्तोत्र (स्तोत्ररत्नम्), चतुःश्लोकी	१०वीं श०	विष्णुस्तुति, ६५ लक्ष्मीस्तुति, ४
३३. जम्बू कवि	चन्द्रदूत, जिनशतक	९५९ ई०	दूतकाव्य जैन, १०० पद्य
३४. अमितगति	सुभाषितरत्नसन्दोह, धर्मपरीक्षा	९९४ ई० १०१४ ई०	आचारशिक्षा, ३ अध्याय जैनधर्म

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
११वीं शती ई०			
३५. रामानुज आचार्य	शरणागति-गद्य, वैकुण्ठगद्य, श्रीरंगगद्य	१०५० ई०	
३६. श्रीवत्सांक	पञ्चस्तव (श्रीस्तव आदि ५)	११वीं ई०	लक्ष्मीस्तुति आदि
३७. क्षेमेन्द्र	चारुचर्या, सेव्यसेवकोपदेश, समयमातृका, कलाविलास, दर्पदलन, देशोपदेश, नर्ममाला,	१०५० ई०	आचारशिक्षा, १०० कर्तव्यशिक्षा, ६१ वेश्याप्रपञ्च, ८ अ० जीविकासाधन, १० अ० आचारशिक्षा, ७ अ० व्यंग्यप्रधान
३८. शम्भु	अन्योक्ति-मुक्तालता	११०० ई०	अन्योक्ति १०८ श्लोक
३९. हेमचन्द्र	योगशास्त्र, अन्ययोगव्यवच्छेदिका- द्वात्रिंशिका काव्य	११०० ई०	जैन-कर्तव्य महावीरस्तुति
१२वीं शती ई०			
४०. पराशर	श्रीरंगराजस्तव, श्रीगुणरत्नकोश	११०० ई०	ल० श्रीरंग-स्तुति
४१. जयदेव	गंगास्तव	"	गंगा-स्तुति
४२. धोयी	पवनदूत	"	दूतकाव्य
४३. गोवर्धनाचार्य	आर्यासप्तशती		आर्याछन्द, ७०० श्लोक
४४. बिल्वमंगल	कृष्णकर्णामृत (कृष्णलीलाशुक)		कृष्णस्तुति, ३ विभाग, ३१० पद्य
४५. जल्हण	मुग्धोपदेश	११५० ई०	वेश्याप्रपञ्चनिवारण
१३वीं शती ई०			
४६. शिल्हण	शान्तिशतक	१२०५ ई०	वैराग्य, १००
४७. आनन्दतीर्थ	द्वादशस्तोत्र (माधव)	१२५० ई०	
४८. सोमप्रभ	शृंगारवैराग्यतरंगिणी	१२७६ ई०	वैराग्य

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
४६. वेदान्तदेशिक (वेंकटनाथ)	पादुकासहस्र, गरुडदण्डक, रघुवीरगद्य, अच्युतशतक, हंससन्देश, सुभाषितनीवी, आदि	१२८० ई०	रामपादुका, १ हजार श्लोक गरुडस्तुति रामस्तुति, गद्य विष्णुस्तुति, प्राकृत, १०० पद्य दूतकाव्य सुभाषित, १४५
५०. सोमेश्वर	रामशतक	१३वीं ई०	रामस्तुति, लग्घरा १००
१४वीं शती ई०			
५१. जगद्धर-भट्ट	स्तुतिकुसुमांजलि	१३५० ई० ल०	शिवस्तुति, १४१५ श्लोक
५२. विक्रम कवि	नेमिदूत	१३५० ई०	नेमिनाथ, १२६
५३. अवधूतराम योगी	सिद्धदूत	१३६७ ई०	अध्यात्म, दूतकाव्य
१५वीं शती ई०			
५४. कुसुमदेव	दृष्टान्तशतक	१५वीं श० ई०	नीति, १००
५५. चरित्रसुन्दरगणि	शीलदूत	१४२६ ई०	दूतकाव्य, १२५ श्लोक
५६. घनदराज	शृंगारशतक	१४३४ ई० ल०	शृंगार, १००
५७. वामनभट्टबाण	हंसदूत	१४५० ई०	मन्दाक्रान्ता, १२१
५८. द्वादिवेद	नीतिमंजरी	१४६४ ई०	ऋग्वेद-कथाएँ
५९. वादिराज	एकीभावस्तोत्र	अनिर्णीत	जैनस्तोत्र
१६वीं शती ई०			
६०. दैवज्ञ सूर्यकवि	रामकृष्णविलोम- काव्य	१६वीं पू०	राम-कृष्ण दोनों की स्तुति, ३६
६१. भट्टारज्ञानभूषण	तत्त्वतरंगिणी	१५६० ई०	अध्यात्म, १८ अध्याय
६२. रुद्रकवि	भावविलास	१५६५ ई०	भावसिंह-चरित, ११३
६३. माधव भट्ट	दानलीला	१५७१ ई०	कृष्ण-लीला, ४८

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
६४. गोविन्ददास	स्फुट गीतिकाएँ	१५७७ ई०	बंगला में भी सैकड़ों पद्य
६५. अप्पय दीक्षित	वरदराज-स्तव	१५८० ई०	वरदराजस्तुति, १०० पद्य
६६. नारायण भट्ट	नारायणीयम्, दूतवाक्य-प्रबन्ध, रामकथा, आदि १८ ग्रन्थ	१५८५ ई०	कृष्णस्तुति, पाठ से कवि गठिया रोग से मुक्त, १२ स्कन्ध, १०३६ पद्य
६७. मधुसूदन सरस्वती १७वीं शती ई०	आनन्दमन्दाकिनी	१६०० ई० ल०	श्रीकृष्ण का नख-शिख-वर्णन, १०२ पद्य
६८. प्रियंवदा (स्त्री-कवि)	श्यामरहस्य	१७वीं पू०	कृष्ण-कथा
६९. त्रिवेणी (स्त्रीकवि)	लक्ष्मीसहस्र, शुक-सन्देश, मृगसन्देश, रंगनाथसहस्र	„	लक्ष्मी, दूतकाव्य, गीतिकाव्य,
७०. रूपगोस्वामी	गन्धर्वप्रार्थनाष्टक, मुकुन्दमुक्तावली, हंसदूत, स्तवमाला, श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु ।	„	गन्धर्वस्तुति कृष्णस्तुति दूतकाव्य, राधा-कृष्ण
७१. विमलकीर्ति	चन्द्रदूत	१६२५ ई०	दूतकाव्य, १४१श्लोक
७२. नीलकण्ठ दीक्षित	आनन्दसागरस्तव, शिवोत्कर्षमंजरी, कलिविडम्बन, सभारंजनशतक, शान्तिविलास, वैराग्यशतक	१६५० ई०	पार्वती-स्तुति शिवस्तुति कलियुग, व्यंग्यप्रधान सभा के नियम, व्यंग्य मानसिक, शान्ति के लाभ, वैराग्य, १०० श्लोक

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
७३. वेंकटाध्वरी	लक्ष्मीसहस्र	१६५० ई०	लक्ष्मीस्तुति, १००० पद्य
	सुमाषित-कौस्तुभ		उपदेशात्मक
७४. गुमानि कवि	उपदेशशतक	१७वीं पू०	उपदेशात्मक
७५. बिल्हण	चौरपंचाशिका	१६६४ ई०	शृंगार, ५० पद्य
७६. मेघविजय	मेघदूत-समस्यालेख	१६६४ ई०	दूतकाव्य, १३०श्लोक
७७. (अज्ञात) जैना-चार्य	चेतोदूत	१७वीं उ०	दूतकाव्य, १२६श्लोक
७८. विनयविजयगणि	इन्द्रदूत	"	शान्तरस, १३१ पद्य
७९. विश्वनाथचक्रवर्ती (हरिवल्लभ)	क्षणदागीत-चिन्तामणि	"	बंगला तथा संस्कृत, ३१४ पद्य
८०. श्रीकृष्णदेवसार्वभौम	पदांकदूत	"	राधा-कृष्ण, ४५ श्लोक
१८वीं शती ई०			
८१. रामभद्र दीक्षित	रामबाणस्तव, अद्भुतसीतारामस्तोत्र	१८वीं पू०	राम-बाण की स्तुति सीता-राम-स्तुति
८२. नारायणतीर्थ	कृष्णलीलातरंगिणी,	"	कृष्णलीला, गेय पद्य
८३. विश्वेश्वर पांडेय,	कवीन्द्रकण्ठाभरण, रोमावलीशतक	"	सुमाषित शृंगार, १००
८४. राधामोहन ठाकुर	पदामृत-समुद्र	"	बंगला-संस्कृत-पद
८५. वीरेश्वर	अन्योक्तिशतक	अनिर्णीत	अन्योक्ति, १००
८६. गोकुलनाथ	शिवशतक	"	शिवस्तुति, १००
८७. शिवभक्तदास (उत्प्रेक्षावल्लभ)	मिक्षाटनकाव्य	"	शिव-पार्वती
८८. नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी	शुकदूत	"	दूतकाव्य, राधा-कृष्ण, १० सर्गों का ग्रन्थ
८९. जनार्दनभट्ट गोस्वामी	शृंगारशतक	"	शृंगार, १००

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
१९वीं शती ई०			
६०. त्यागराज	स्फुट गीत	१९वीं श०	संगीतज्ञ गीतिका
६१. श्यामशास्त्री	"	"	"
६२. मुठुस्वामी दीक्षित	"	"	"
६३. नित्यानन्दशास्त्री हनुमद्भूत		१९वीं उ०	दूतकाव्य
६४. लक्ष्मीराज्ञी सन्तानगोपालकाव्य		"	३ सर्ग
२०वीं शती ई०			
६५. शिवप्रसाद भार- द्वाज	भारतसन्देश	२०वीं पू०	खण्डकाव्य
६६. हरिशर्मा दाधीच	अम्बालहरी, होलिका हास, उदरप्रशस्तिकाव्य	"	अम्बास्तुति, हास्य- व्यंग्य
६७. बालकृष्ण झा	राधानयनद्विशती	"	राधास्तुति, २००
६८. डा० हरिदत्त शास्त्री	स्फुट गीत, पद्य	२०वीं उ०	
६९. डा० मोलाशंकर व्यास	दक्षिणानलदूत	"	अप्रकाशित
१००. भगवन्तशर्मण दातार	अन्तिमयात्रा	१९६४ ई०	जवाहरलाल नेहरू- मृत्यु,
१०१. रघुनाथ शास्त्री	अम्बाष्टादशी, गङ्गास्तव, चन्द्रोपा- लम्भ-वर्णन	२०वीं उ०	शोकगीत, १६६ श्लोक
१०२. डा० कपिलदेव द्विवेदी	स्तुति-मुक्तावली राष्ट्र-गीतांजलि	"	देव-स्तुति राष्ट्रीयगीत
१०३. डा० पुत्तूलाल शुक्ल	महादेव-स्तोत्र, शिवालास्यम्	"	शिवस्तुति शिवा-स्तुति
समय—अनिर्णीत'			
ब्रह्मानन्द स्वामी	हरिशरणाष्टक, रामाष्टक आदि		हरिस्तुति रामस्तुति

१. अज्ञात-समय लेखकों के स्तोत्रों के विवरणार्थ देखें—स्तोत्ररत्नावली, गीताप्रेस, गोरखपुर

गीतिकाव्यकार	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
पृथ्वीपतिसूरि	पशुपत्यष्टक	—	शिवस्तुति
इन्द्र	महालक्ष्म्यष्टक	—	शक्तिस्तोत्र
कूरेश-स्वामी	नारायणाष्टक	—	विष्णुस्तोत्र
अच्युतपति	सीतारामाष्टक	—	रामस्तोत्र
अमरदास	रामचन्द्राष्टक	—	"
कृष्णलाल	गोपिकाविरहगीत	—	श्रीकृष्ण-स्तोत्र
वल्लभाचार्य	मधुराष्टक	—	"
विठ्ठलेश्वर	चतुःश्लोकी	—	"
रामानन्दस्वामी	श्रीशिवरामाष्टक	—	शिव, राम
विनयप्रभु	चन्द्रदूत	—	दूतकाव्य
कृष्णचन्द्रतर्का- लंकार	चन्द्रदूत	—	"
नारायण पंडित	शिवस्तुति	—	शिवस्तुति, १३ पद्य
नरहरि	शृंगारशतक	—	शृंगार, १००

८. (छ) सुभाषित-ग्रन्थ

संग्रहकर्ता	ग्रन्थनाम	समय	विशेष (श्लोकसंख्या)
११वीं शती ई०			
१. विद्याकर पण्डित	कवीन्द्रवचनसमुच्चय	—	प्रो. टामस द्वारा १६१२ ई० में प्रका- शित, १७३६ श्लोक
२. सोमेश्वर	अभिलषितार्थचिन्ता- मणि (मानसोल्लास)	११३१ ई०	५ भाग। राज्य, गणित, ज्योतिष, संगीत, चित्रकला, वास्तुकला आदि।
१२वीं शती ई०			
३. गोवर्धन	आर्यासप्तशती	११६६ ई०	आर्याछन्द, शृंगार

संग्रहकर्ता ग्रन्थनाम समय विशेष

१३वीं शती ई०

४. श्रीधरदास	सदुक्तिकर्णामृत (सूक्तिकर्णामृत)	१२०५ ई०	४४६ कवि, २३६८ श्लोक
५. जल्हण	सूक्तिमुक्तावली (सुभाषितमुक्तावली)	१२५७ ई०	२४३ कवि, २७६० श्लोक
६. सिद्धचन्द्रमणि	सूक्तिरत्नाकर	—	

१४वीं शती ई०

७. सायण	सुभाषित-सुधानिधि	१३५० ई०	
८. शार्ङ्गधर	शार्ङ्गधर-पद्धति	१३६३ ई०	१६३ विभाग, ४६८६, २६४ कवि
९. कलिगराय	सूक्ति-रत्नाकर	—	

१५वीं शती ई०

१०. जीवानन्द विद्या-सागर	काव्य-संग्रह	१४४७ ई०	
११. वल्लभदेव	सुभाषितावली	१४५० ई०	१०१ भाग, ३५२८ श्लोक
१२. सकलकीर्ति	सुभाषितावलि	१४५० ई०	—
१३. पोतयार्य	प्रसंगरत्नावलि	१४६६ ई०	—
१४. नन्दन पण्डित	प्रसन्नसाहित्यरत्नाकर	१५ वीं उ०	१४२८ श्लोक
१५. श्रीवर	सुभाषितावलि	१४८० ई०	३८० कवि
१६. सोमप्रभाचार्य	सूक्तिमुक्तावली	१५वीं श०	
१७. वेदान्तदेशिक	सुभाषितनीवी	"	
१८. अमृतगति	सुभाषितरत्नसन्दोह	"	
१९. विद्याधर मिश्र	विद्याधर-सहस्रकार	"	१३० कवि, १००० श्लोक
२०. पेड्डिमट्ट	सूक्तिवारिधि	"	

संग्रहकर्ता	ग्रन्थनाम	समय	विशेष
१६वीं शती ई०			
२१. रूपगोस्वामी	पद्यावली	१६वीं पू०	कृष्णभक्ति पद्य अधिक
२२. हरिदास	प्रस्तावरत्नाकर	"	अन्योक्तियाँ भी
२३. हरिकवि	सुभाषितहारावली	" उ०	
१७वीं शती ई०			
२४. सुन्दरदेव	सूक्तिसुन्दर	१७वीं० श०	
२५. व्रजनाथ	पद्यतरंगिणी	"	
२६. वेणीदत्त	पद्यवेणी	"	११४ मध्ययुगीन कवि
२७. हरिभास्कर	पद्यामृततरंगिणी	"	५ तरंग, अन्योक्ति भी
२८. भट्टगोविन्दजित्	सम्याभरण	"	
२९. नारोजी पण्डित	सूक्तिमालिका	"	१ हजार श्लोक
३०. लक्ष्मणभट्ट आंकोलकर	पद्य-रचना	"	१५ परिच्छेद, अन्योक्ति भी
३१. शंभु (पुत्र शिवाजी)	बुधभूषण	१६९० ई०	३ भाग, ८८३ श्लोक
१८वीं शती ई०			
३२. डा० बॉटलिक	इन्डिशे स्प्रूखे (भारतीय सूक्तियाँ)	१८वीं उ०	८ हजार श्लोक, जर्मन में अनुवाद
२०वीं शती ई०			
३३. शिवदत्त एवं नारायणराम आचार्य	सुभाषितरत्नभाण्डा- गार	१९५२	११ हजार से अधिक श्लोक, १६०० लोकोक्तियाँ
३४. डा० नरेन्द्रदेव शास्त्री	सूक्तिमुक्तावली	२०वीं उ०	
३५. डा० रामजी उपाध्याय	संस्कृतसूक्तिरत्नाकर	१९६८ ई०	१२६२ सुभाषित

६. कथा-साहित्य

भारतीय कथा-साहित्य का विश्वसाहित्य में अत्यन्त आदरणीय स्थान रहा है। कुछ अंशों में भारतीय कथा-साहित्य विश्व-कथा-साहित्य का जनक कहा जा सकता है। कथा-साहित्य की रोचकता, सरलता, मधुरता, भावाभिव्यक्ति और उपदेशात्मकता ने विश्व के सभी विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त की है। इसमें भारतीय जीवन, विचार-धारा, कार्य-कलाप और नैतिकता की झाँकी प्राप्त होती है। अधिकांश कथा-साहित्य में व्यक्ति-विशेष का नाम न रखकर पशु, पक्षी या अन्य जीव को उसके प्रतीक रूप में रखा गया है, अतः आबालवृद्ध उसकी मनोहरता पर आकृष्ट होते हैं। इसमें शेर, बिल्ली, चूहा, गीदड़, कौआ, कछुआ आदि नीति-शिक्षा, आचार-शिक्षा और कर्तव्योपदेश देते हैं। इसमें कहीं कुतूहलता है, कहीं विनोद है, कहीं हास और उल्लास है, कहीं छल-प्रपंच है, कहीं प्रेम है तो कहीं विश्वासघात, कहीं धर्म है तो कहीं नीति, कहीं सदाचार है तो कहीं व्यवहार-ज्ञान, कहीं भाव-सौष्ठव है तो कहीं काव्य-सौन्दर्य। इस वैविध्य के कारण सभी प्रकार की रुचि वाले व्यक्तियों के लिए कथा-साहित्य आकर्षक और मनोरंजक रहा है।

कथा-साहित्य को चार भागों में बाँटा जाता है :—अद्भुत कथा (Fairy Tales), लोककथा (Märchen), कल्पितकथा (Myths) और पशु-कथा (Fables)। व्यावहारिक दृष्टिकोण से संस्कृत-कथा-साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—१. नीतिकथा (उपदेशात्मक पशु-कथा) (Didactic Fables) और २. लोक-कथा (Popular Tales)। लोककथा में ही अद्भुत-कथा और कल्पित-कथा का भी समावेश हो जाएगा।

कथा-साहित्य का उद्गम और विकास

कथा-साहित्य का उद्गम वैदिक साहित्य से ही हुआ है। ऋग्वेद में कई संवाद-सूक्त हैं, जिनसे कथा-साहित्य का मुख्य संवाद-तत्त्व प्राप्त होता है। ऋग्वेद में मानवेतर जीवों को मानव का प्रतिनिधि बनाया गया है और उनसे वैयक्तिक संपर्क स्थापित किया गया है। ऋग्वेद के ७-१०३ सूक्त में वर्षाकालीन मेढकों की ध्वनि की तुलना ब्राह्मणों के वेदपाठ से की गई है। इतना ही नहीं उन्हें वर्ष

भर तपस्या करने वाले व्रती ब्राह्मण कहा गया है।^१ ऋग्वेद १०-१०८ में देवशुनी सरमा और पणियों का संवाद प्रस्तुत किया गया है। इसमें सरमा (कुतिया) पणियों (कृपणों) को उपदेश देती है कि वे धन-दान दें। पणि सरमा को मित्र और बहिन कहकर पुकारते हैं।^२ इससे जीव-जन्तुओं के साथ आत्मीयता का बीज प्रकट होता है। यही कथा-साहित्य का बीज है। यास्क ने निरुक्त में 'इत्यैतिहासकाः' कहकर इन्द्र-वृत्र-युद्ध आदि को कथा का रूप दिया है। बृहदेवता में और कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी की षड्गुरुशिष्य-कृत वेदार्थ-दीपिका टीका में इन कथाओं का विस्तृत रूप प्राप्त होता है। १५ वीं शताब्दी ई० के द्वा द्विवेद ने नीतिमंजरी में वैदिक आख्यानों को नीतिकथा के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें उपदेशात्मक अंश पंचतन्त्र आदि के तुल्य पद्य में है और कथा वैदिक है, जो गद्य में दी गई है। द्वा सुपर्णा सयुजा सखायां० (ऋग्वे० १-१६४-२०) में प्रकृति को वृक्ष और जीवात्मा तथा परमात्मा को उस वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षी बताया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ये कथाएँ अपने विस्तृत रूप में प्राप्त होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (७-१३) में कथा के साथ उपदेशात्मक पद्यों का भी समावेश मिलता है। उपनिषदों में जीव-जन्तु-कथाएँ और विकसित रूप में हैं। छान्दोग्य उपनिषद्^३ में एक व्यंग्य कथा में भोजन के लिए कुत्ते अपना एक नेता चुनते हैं। उसी में दो हंसों के वार्तालाप से रैक्व का ध्यान आकृष्ट होता है।^४ छान्दोग्य में ही जबाला के पुत्र सत्यकाम को बैल, हंस और मद्गु (एक जलचर पक्षी) ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं।^५

महाभारत में पशु-कथाएँ और विकसित रूप में मिलती हैं।^६ शान्तिपर्व तथा अन्य पर्वों में पंचतन्त्र की कथा के लिए उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है। इसमें सोने के अंडे देने वाली चिड़िया की कथा है। धार्मिक बिल्ली की भी कथा है, जो चूहों को विश्वास दिलाकर अपने वश में करती है। चतुर शृगाल की भी कथा है, जो अपने साथियों को धोखा देकर लूट का माल अपने अधिकार में कर लेता है। आदि-पर्व में कुत्ते की कथा, गज-कच्छप कथा, वनपर्व में मनु-

१. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः॥ ऋग्वे० ७-१०३-१

२. आ च गच्छान्मित्रमेना दधाम। ऋग्वे० १०-१०८-३

स्वसारं त्वा कृण्वै मा पुनर्गां०। ऋग्वे० १०-१०८-६

३. छान्दोग्य उपनिषद् १-१२-२। ४. वही, ४-१। ५. वही ४-५, ७, ८।

६. Holzmann—Das Mahabharata. ४-८८।

मत्स्य-कथा, शान्तिपर्व में १२ नीतिकथाएँ हैं। रामायण में नीति-कथाओं का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। तृतीय शताब्दी ई० पू० भरहुत (Bharbut) स्तूप पर पशु-कथाओं का नाम खुदा हुआ है।^१ पतंजलि (१५० ई० पू०) ने कथासूचक लोकोक्तियों अजाकृपाणीय, काकतालीय आदि तथा जन्मसिद्ध शत्रुता के उदाहरण-रूप में अहिनकुलम्, काकोलूकीयम् जैसी नीति-कथाओं का उल्लेख किया है।^२ बौद्धों की जातक-कथाएँ ३८० ई० पू० के लगभग विद्यमान थीं। इनमें बुद्ध के उपदेश गाथाओं के रूप में हैं और उनके स्पष्टीकरण के लिए कथाएँ कही गई हैं। इनमें बोधिसत्त्व के वानर, मृग आदि जन्मों की कथाएँ भी हैं, जिनका पंचतन्त्र की कथाओं से अत्यन्त साम्य है। आर्यसूर की जातकमाला संस्कृत में है। इसमें ३५ जातकों का संग्रह है। ये नीति-कथा के रूप में हैं। बौद्ध जातक-ग्रन्थों के अनुकरण पर जैनो ने भी जातक-ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें जैन तीर्थंकरों के पूर्वजन्म का वर्णन है। कुछ जैन-जातकों पर पंचतन्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। एक चीनी विश्वकोष (६६८ ई०) में २०० बौद्ध-ग्रन्थों से संगृहीत कतिपय कथाओं का अनुवाद मिलता है। हरिषेण के बृहत्कथाकोश (६३२ ई०) में एक-एक जैन-सिद्धान्त के लिए अनेक कथाएँ मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि ईसवीय सन् से पूर्व भारत में नीति-कथाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था।

नीति-कथाओं की विशेषताएँ

१. ये नीतिकथाएँ बालोपयोगी हैं और इनमें 'कथाच्छलेन बालानां नीति-स्तदिह कथ्यते' (हितोपदेश प्रस्तावना ८) कथारूप में नीति के रहस्यों को समझाया गया है।

२. इनमें मानव-पात्र न होकर जीव-जन्तु या पशु-पक्षी पात्र हैं।

३. ये मुख्यतया नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से संबद्ध हैं।

४. इनमें जीवन का व्यावहारिक पक्ष वर्णित है। दैनिक जीवन, दैनिक व्यवहार, व्यक्ति और समाज का संपर्क, कर्तव्याकर्तव्योपदेश आदि वर्णित हैं।

५. इनमें नीति और धर्म की शिक्षा दी है, अतः धर्मशास्त्र से भी इनका संबन्ध है।

१. Macdonell—India's Past, पृष्ठ ११७,

२. महाभाष्य—पाणिनि के सूत्र २-१-३; २-४-६; ५-३-१०६ आदि।

६. इनमें जीवन के भले और बुरे दोनों पक्षों का वर्णन है। जैसे—जीवन की पवित्रता, कर्तव्यपालन, मित्र की रक्षा, वचन-पालन आदि गुणों के वर्णन के साथ ही ब्राह्मणों का छल-प्रपंच और दम्भ, अन्तःपुर के कपट-व्यवहार, स्त्रियों की दुश्चरित्रता आदि दोषों का भी वर्णन है।

७. इनमें जीवन का लक्ष्य आदर्शवादिता न बताकर लोक-व्यवहारज्ञता और नीतिनिपुणता बताया गया है।

८. नीति-कथाओं के पात्र पशु-पक्षी आदि मनुष्यों के तुल्य मित्रता, प्रेम, विवाद, लोभ, छल, विश्वासघात, संधि, विग्रह आदि करते हैं। उनके राजा, मंत्री, दूत आदि सभी कुछ हैं। वे अवसरोचित सभी कार्य करते हैं। ये मानवीय गुणों और स्वभाव से युक्त हैं।

९. इनमें प्रमुखता के लिए उपदेश या नीति का अंश पद्यों में दिया गया है और कथा गद्य में दी गई है। एक भाव वाले विभिन्न श्लोक अनेक नीतिग्रन्थों से संग्रह करके वक्तव्य की पुष्टि के लिए दिए गए हैं। स्थान-स्थान पर प्रसंगानुसार सुभाषित भी नीतिग्रन्थों आदि से दिए गए हैं।

१०. इनका प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यवहारज्ञान है।

११. इनमें जीवन की सफलता के लिए आवश्यक सभी गुणों का वर्णन है। जिन बातों को न जानने से मनुष्य जीवन में असफल होता है, उनकी चेतावनी भी कथाओं द्वारा दी गई है।

१२. ये नीति-कथाएँ पशु-पक्षियों आदि से संबद्ध हैं, अतः मानवमात्र के लिए रोचक और उपादेय हैं।

१३. इनमें एक मुख्य कथा के अन्तर्गत अनेक उपकथाओं का समावेश है।

१४. इनकी शैली सरल और सुबोध है। इनमें पाण्डित्यप्रदर्शन का संदंष्ट्र अभाव है। कथा में प्रवाह और रोचकता है।

१५. इनमें कथा, नीति, सदाचार, व्यवहारज्ञान, धर्म, दर्शन, उपदेश और काव्य-सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय है।

(क) पञ्चतन्त्र

विष्णुशर्मकृतं ह्यहं पञ्चतन्त्राल्पमद्भुतम् ।

मित्रभेदाल्पमाद्यं तु मित्रसंप्राप्तिरेव च ॥१॥

काकोलूकीयसंयुक्तं लब्धनाशतुरीयकम् ।

पञ्चमं भासते तन्त्रम् अपरीक्षितकारकम् ॥२॥

नीतिशास्त्रार्थसारं तु जीव-जन्तुकथान्वितम् ।

विश्वसाहित्यमूर्धन्यं राजते पञ्चतन्त्रकम् ॥३॥ (कपिलस्य)

लेखक—पञ्चतन्त्र के लेखक विष्णुशर्मा हैं। इनको कथामुख में सकलशास्त्र-पारंगत, छात्रों में अतिप्रिय और ८० वर्ष का वृद्ध व्यक्ति बताया गया है। चाणक्य का भी विष्णुशर्मा नाम प्रचलित है। तदनुसार बहुत से विद्वान् चाणक्य और विष्णुशर्मा को एक मानकर इसका लेखक चाणक्य को ही मानते हैं। परन्तु प्रस्तावना के श्लोकों में चाणक्य और विष्णुशर्मा को पृथक् माना गया है। (चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्यः, श्लोक २)। ग्रन्थ में जो नीतिविषयक गहरी सूझबूझ प्रकट की गई है, उससे ज्ञात होता है कि चाणक्य जैसा विद्वान् ही ऐसा दुष्कर कार्य कर सकता था। यह भी संभव है कि प्रस्तावना का चाणक्य-संबन्धी श्लोक स्तुत्यर्थ बाद में जोड़ा गया हो। इस प्रकार ग्रन्थ का लेखक विष्णुशर्मा अर्थात् चाणक्य माना जा सकता है।

रचनाकाल—यदि चाणक्य को पंचतन्त्र का रचयिता माना जाए तो इसका रचनाकाल चन्द्रगुप्त मौर्य (३४५ ई० पू०—३०० ई० पू०) का समय होगा। लेखक ने अपनी आयु ८० वर्ष बताई है। अतः यह उसके जीवन के अन्तिम समय की रचना होगी। इस प्रकार पंचतन्त्र का समय ३०० ई० पू० के लगभग होगा। प्रो० हर्टेल (Hertel) २०० ई० पू० के बाद इसका समय मानते हैं।^१ पंचतन्त्र में दीनार शब्द, लेटिन Denarius, का प्रयोग मिलता है। दीनार रोमन सिक्का था, जो प्रथम शताब्दी ई० में भारत में आया था, अतः कीथ इसका समय २०० ई० या इसके बाद का मानते हैं।^२ चन्द्रगुप्त मौर्य का समय राजनीतिक उथल-पुथल का था। उस समय पंचतन्त्र जैसे नीतिग्रन्थ की आवश्यकता थी। भाषा की सरलता आदि की दृष्टि से इसका समय ३०० ई०

१. Keith—H.S.L. पृष्ठ २४७—२४८

२. Keith—JRAS, 1915 पृष्ठ ५०४

पू० के लगभग मानना उचित है। यह संभव है कि परकाल में स्वर्णमुद्रा के लिए दीनार शब्द अतिप्रचलित हो जाने के बाद के संस्करणों में दीनार शब्द जानबूझ कर रख दिया गया हो। प्रो० हर्टेल ने भी दीनार शब्द के प्रयोग को महत्त्व नहीं दिया है। गुणाढ्य (७८ ई० के लगभग)-कृत बृहत्कथा में पंचतन्त्र का पाठ भी सिद्ध करता है कि उसके समय तक पंचतन्त्र प्रसिद्ध हो चुका था और इतनी प्रसिद्धि के लिए लगभग ३०० वर्ष का समय, अर्थात् ३०० ई० पू० के लगभग, मानना उचित है।

पञ्चतन्त्र के संस्करण

डा० हर्टेल (Hertel) और प्रो० एडगर्टन (Edgerton) ने पंचतन्त्र के मूलरूप के लिए बहुत परिश्रम किया है। एडगर्टन ने मूलरूप के पुनर्निर्माण के लिए निम्नलिखित संस्करणों को महत्त्वपूर्ण बताया है। पंचतन्त्र अपने मूल रूप में प्राप्य नहीं है; अतः इन संस्करणों से मूल रूप का संकेत मिलता है। (१) (क) तन्त्राख्यायिका, (ख) सरल पंचतन्त्र (Textus Simplicior), (ग) पूर्णभद्र-कृत संस्करण। (२) (क) दक्षिणी पंचतन्त्र, (ख) नेपाली पंचतन्त्र, (ग) हितोपदेश। (३) गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आश्रित क्षेमेन्द्र-कृत बृहत्कथा-मंजरी और सोमदेव-कृत कथासरित्सागर में प्राप्य पंचतन्त्र का पाठ। (४) पहलवी संस्करण, जिससे सीरिया की भाषा और अरबी आदि में अनुवाद हुए हैं। एडगर्टन तन्त्राख्यायिका, दक्षिणी पंचतन्त्र, बृहत्कथा और पहलवी संस्करणों को मूलग्रन्थ के अत्यन्त समीप मानते हैं।

इन संस्करणों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है:—

(१) तन्त्राख्यायिका—यह मूल पंचतन्त्र से अत्यन्त समीप है। इसमें मूल अंश सबसे अधिक है। इसका समय ३०० ई० के लगभग माना जा सकता है। इसमें कुछ कहानियाँ बढ़ाई हुई हैं। कश्मीर से शारदा लिपि में इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं। हर्टेल ने १९१० ई० में यह संस्करण निकाला था।

(२) सरल पंचतन्त्र (The Textus Simplicior)—इसका समय ११०० ई० के लगभग है। इसका संपादक कोई जैन विद्वान् है। डा० ब्यूलर (Bühler) और कीलहार्न (Kielhorn) ने इसका संस्करण निकाला है। यह भारत में सबसे अधिक प्रचलित है।

(३) पूर्णभद्र-कृत संस्करण—इसको पञ्चाख्यानक भी कहते हैं। इसका संपादन पूर्णभद्र जैन ने किया था। इसका समय ११६६ ई० है। इसमें २१ कहानियाँ नई हैं। इसमें गुजराती और प्राकृत शब्दों का भी प्रयोग है।

(४) दक्षिणी-पंचतन्त्र—यह कम से कम पाँच संस्करणों में उपलब्ध है। यह दाक्षिणात्य पाठ प्रस्तुत करता है। इसमें कथाएँ संक्षिप्त करके दी गई हैं। एडगर्टन के मतानुसार इसमें मूलग्रन्थ का ३/४ गद्य और २/३ पद्य सुरक्षित है। यह भारवि (६०० ई०) के बाद का है।

(५) नेपाली पंचतन्त्र—एक हस्तलिखित प्रति में केवल पद्य ही मिलते हैं और दूसरी में पद्य के साथ संस्कृत या नेवारी में गद्य भी मिलता है।

(६) हितोपदेश—यह नारायणपंडित द्वारा संपादित है और पंचतन्त्र का किंचित् परिवर्तित रूप है।

(७) उत्तर-पश्चिमीय संस्करण—गुणाढ्य ने बृहत्कथा में इस संस्करण को अपनाया था। यह अब क्षेन्द्रकृत-बृहत्कथामंजरी (१०३७ ई०) और सोमदेव-कृत कथासरित्सागर (१०३७ ई०) में सुरक्षित है।

(८) पहलवी संस्करण—खुसरो अनोशेरवाँ (५३१-५७६ ई०) के शासन-काल में हकीम बुजोई ने पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद किया था। इसके ही अनुवाद सीरियन और अरबी भाषा में हुए। इस अरबी अनुवाद से ही यूरोप की भाषाओं में अनुवाद हुए।

पंचतन्त्र की कथा और शैली

नाम—पंचतन्त्र का मूल नाम क्या था, यह निश्चित नहीं है, क्योंकि सीरियन अनुवाद (५७० ई०) में इसका नाम 'कलिलग और दमनग' और अरबी अनुवाद (७५० ई०) में 'कलिलह और दिमनह' नाम मिलता है। य नाम प्रथम तन्त्र में प्राप्त दो शृंगाल 'करटक और दमनक' के नाम के विकृत रूप हैं। ये नाम केवल पहले तन्त्र में हैं, अतः पूरे ग्रन्थ का यह नाम सार्थक नहीं है। हितोपदेश की प्रस्तावना में इसका नाम पञ्चतन्त्र ही मिलता है। (पञ्चतन्त्रान् तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते, श्लोक ६)। दक्षिणी संस्करण, नेपाली संस्करण आदि में भी यही नाम मिलता है। पंचतन्त्र के कथामुख में 'एतत् पञ्चतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्रम्' से ज्ञात होता है कि लेखक ने इसका नाम पंचतन्त्र रखा था।

पंचतन्त्र में तन्त्र शब्द मुख्यतः विभाग या खंड का द्योतक है, परन्तु साथ ही तन्त्र शब्द राजतन्त्र, स्वतन्त्र आदि शब्दों में प्रयुक्त तन्त्र शब्द के तुल्य 'नीति-युक्त शासन-विधि' का भी द्योतक है। पञ्चतन्त्र में नीतियुक्त शासन-विधि के पांच तन्त्र (गुर) बताए गए हैं।

कथा—महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के तीन मूल्य पुत्रों को ६ मास में राजनीति-पारंगत बनाने का बीड़ा उठाकर विष्णुशर्मा ने पंचतन्त्र की रचना की और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। पंचतन्त्र में ५ मुख्य कथाएँ हैं। प्रत्येक कथा में अनेक उपकथाएँ हैं। प्रत्येक तंत्र में एक-एक नीति-शिक्षा दी है। तन्त्रों के नामादि इस प्रकार हैं :—

संख्या	तन्त्रनाम	उपकथाएँ	श्लोकसंख्या	कथा
१	मित्रभेद	२२	४६१	शेर और बिल की मित्रता तुड़वाना
२	मित्रसंप्राप्ति	६	१६६	काक, कूर्म, मृग, चूहे की मित्रता।
३	काकोलूकीय	१६	२५५	कौआ और उल्लू की कथा।
४	लब्धप्रणाश	११	८०	बन्दर और मगर की कथा।
५	अपरीक्षितकारक	१४	६८	ब्राह्मणी और न्योले की कथा।

मुख्यकथा ६ + ६६ = ७५ ६६३ + १० कथामुल = ११०३

मित्रभेद में नीतिशिक्षा वर्णित है कि किस प्रकार दो मित्रों में झगड़ा करा दिया जाए। शेर पिंगलक और बिल संजीवक घनिष्ट मित्र थे। करटक और दमनक नामक दो गीदड़ों ने उनमें फूट डाल दी और बिल की हत्या करवा दी। मित्रसंप्राप्ति में नीतिशिक्षा है कि अनेक उपयोगी मित्र बनाने चाहिए। कौआ, कछुआ, हिरन और चूहे साधनहीन होने पर भी मित्रता के बल पर सुखी रहे। काकोलूकीय में नीतिशिक्षा है कि स्वार्थसिद्धि के लिए शत्रु से भी मित्रता कर ले और बाद में उसे धोखा देकर नष्ट कर दे, अर्थात् सन्धि-विग्रह की शिक्षा। कौआ उल्लू से मित्रता कर लेता है और बाद में उल्लू के किले में आग लगा देता है। लब्ध-प्रणाश में नीतिशिक्षा है कि बुद्धिमान् बुद्धि-बल से जीत जाता है और मूल्य हाथ में आई हुई वस्तु से भी हाथ धो बैठता है। बन्दर और मगर की मित्रता होती है। मगर की पत्नी बन्दर का मीठा दिल चाहती है। बन्दर मगर से यह कहकर जान बचाता है कि मेरा दिल पेड़ पर छूट गया है, अतः किनारे पहुँचा दो। बन्दर भाग जाता है और मगर मंह ताकता रह जाता है। हाथ में आई हुई

वस्तु भी मूर्खता से हाथ से निकल जाती है। अपरोक्षित-कारक की नीतिशिक्षा है कि 'बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछिताए', ब्राह्मणी ने अपने प्रिय तथा सर्प से शिशु की रक्षा करने वाले नेवले की यह समझ कर हत्या कर दी कि उसने बच्चे को मार डाला है। वह बिना बिचारे काम करने से पीछे पड़ताती है।

शैली—पंचतन्त्र की शैली सरल और सरस है। बालोपयोगी होने के कारण इसमें प्रसाद और माधुर्य है। पाण्डित्यप्रदर्शन, क्लिष्ट-रचना, दुर्बोध शब्दावली का सर्वथा परित्याग किया गया है। हास्य और विनोद-प्रियता कूट कूट कर मरी हुई हैं। छोटे-छोटे वाक्य, सरल भाषा, सुस्निग्ध उक्तियाँ, कथा का प्रवाह और अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण विषय को रोचक और अत्यन्त लोकप्रिय बना देते हैं। लेखक की विदग्धता, राजनीतिज्ञता, शास्त्रीय पाण्डित्य, वर्णन-कुशलता और हास्यप्रियता पद-पद पर देखने को मिलती है। अत्यन्त सरल शब्दों में छोटी सी कहानी का आश्रय लेकर गूढ़ राजनीति और उच्च शास्त्रीय बातों की शिक्षा देना लेखक के प्रकाण्ड-पाण्डित्य का परिचायक है। छोटी से छोटी नैतिक या राजनीतिक शिक्षा के लिए एक कहानी दी गई है। कथा के पात्र मनुष्य न होकर जीव-जन्तु या पशु-पक्षी हैं; अतः ये कथाएँ धर्म, जाति, व्यक्ति, राष्ट्र और सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानवमात्र की संपत्ति हो गई हैं। यही कारण है कि 'Great Short Stories of the world' (संसार की प्रमुख लघुकथाएँ) नामक आधुनिक कहानीसंग्रह में पंचतन्त्र की कहानियों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

भाषा विषय के अनुरूप और मुहावरेदार है। नीति-वाक्य और उपदेशात्मक अंश श्लोक रूप में दिए गए हैं। कथा गद्य में है। कुछ पद्यों में उपदेशात्मक अंश, कथा का सारांश और कहानी के पात्र एक ही श्लोक में दे दिए गए हैं। जैसे—

अनागतविधाता च, प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।

द्वावेतौ सुखमेधेते, यद्भविष्यो विनश्यति ॥ (१-३४७)

कहीं-कहीं भाषा की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। सिंह के कथन में अन्त्यानुप्रास की छटा प्रशंसनीय है :—

न गोप्रदानं न महीप्रदानं न चाश्वदानं हि तथा प्रधानम् ।

यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वप्रदानेष्वभयप्रदानम् ॥ (१-३१३)

पशु-पक्षियों द्वारा नीति-शिक्षा, धर्मशिक्षा और कर्तव्यदीक्षा किसके मन को आकृष्ट नहीं कर लेगी। नीले गीदड़ की कथा, शेर की खाल ओढ़े गधे की कथा, चूहे हिरण्यक और कपोतराज चित्रग्रीव की कथा, बन्दर और मगर की कथा आदि अनेक कथाएँ भारत की ही नहीं, अपितु विश्व की संपत्ति हो गई हैं। ये कथाएँ बालक से लेकर वृद्ध तक के लिए रोचक और शिक्षाप्रद हैं। इनमें गागर में सागर भरा है। जीवन के गुण और दोष दोनों पक्षों का वर्णन है। ब्राह्मणों का छल-प्रपंच एवं पाखंड, त्रिया-चरित्र, नौकरों का कपट-व्यवहार, चापलूसों का स्वार्थ-साधन, धूर्तों का छिद्रान्वेषण, राजाओं की अविवेकता आदि दुर्गुणों का व्यंग्यात्मक भाषा में उद्घाटन किया गया है।

उदाहरणार्थ कुछ सुभाषित ये हैं। इनमें जीवन की कितनी गहरी अनुभूति भरी हुई है, यह भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ (२-४५)

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात् कदाचित् गतिमाप्नुयात् सः ।

याते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥ (१-३४५)

जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत् ।

अतिपुष्टाङ्गयुक्तोऽपि स पश्चात् तेन हन्यते ॥ (३-३)

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा ।

बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥ (५-३६)

पंचतन्त्र का विश्वव्यापी प्रचार

पशुकथा के माध्यम से राजनीति-शास्त्र की शिक्षा देने के कारण पंचतन्त्र का विश्वव्यापी प्रचार हुआ है। बाइबिल के बाद इसका ही संसार में सबसे अधिक प्रचार है। इसके लगभग २५० संस्करण विश्व की ५० से अधिक भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से तीन-चौथाई भाषाएँ भारत से बाहर की हैं। एशिया और यूरोप ही नहीं, अपितु अन्य महाद्वीपों में भी इसका प्रचार-प्रसार है। पहलवी, सीरियन और अरबी अनुवाद के द्वारा इसका विस्तृत प्रचार यूरोप में हुआ है और इसके ही एक रूपान्तर 'तन्त्रोपाख्यान' का प्रचार जावा, थाईलैंड

और लाओस आदि में अत्यधिक मात्रा में है। डा० कीष ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में पंचतन्त्र के विविध अनुवादों का विस्तृत वर्णन दिया है। विशेष उल्लेखनीय अनुवाद ये हैं :—(१) सबसे महत्त्वपूर्ण अनुवाद हकीम बुर्जोई (Burzoe) का है। उसने खुसरो अनोशेखा (५३१-५७१ ई०) की आज्ञा से पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद किया था। यह अब अप्राप्य है। (२) ५७० ई० में बूद (Bud) ने पहलवी से सीरियन भाषा (Syriac) में अनुवाद किया। (३) ७५० ई० में अब्दुल्ला इब्नल मोकफ्फा ने इसका अरबी अनुवाद किया। अरबी अनुवाद का नाम 'कलिलह दिमनह' है। इस अरबी संस्करण से ही पश्चिमी संस्करण निकले हैं। अन्य अनुवाद हैं :—सिमियन (Simeon)-कृत ग्रीक (यूनानी) अनुवाद (११वीं ई० अन्त), गियुलियो नूति (Giulio Nuti)-कृत इटालियन अनुवाद (१५८३ ई०)। ग्रीक अनुवाद से ही २ लेटिन, १ जर्मन और कई स्लाव (Slav) अनुवाद हुए। रब्बी जोइल (Rabbi Joel)-कृत अरबी से हिब्रू अनुवाद (११०० ई०), इससे जॉन ऑफ़ केपुआ (John of Capua)-कृत लेटिन अनुवाद (१२६३-१२७८ ई०) हुआ। एन्थोनियस फॉन फर (Anthonius Von Pforr) ने १४८३ ई० में जर्मन अनुवाद किया। इससे डैनिश, आइसलैंडिक और डच अनुवाद हुए। १४९३ ई० में स्पेनिश अनुवाद, १५४६ ई० में इटालियन अनुवाद, १५५६ में फ्रेंच अनुवाद, १५७० में सर थॉमस नार्थ (Sir Thomas North)-कृत अंग्रेजी अनुवाद हुए। ११४२ ई० में एक महत्त्वपूर्ण अनुवाद अबुल-मआली नसरल्ला ने अरबी में किया। उससे १४७०-१५०५ ई० में फारसी अनुवाद 'अनवारि सुहेली' हुआ। इससे ही तुर्की, फ्रेंच, डच, हंगेरियन, जर्मन और मलय भाषाओं में अनुवाद हुए। ला फोंतेन (La Fontaine) ने अपनी पुस्तक जीव-जन्तु-कथा (Fables) (१६७८ ई०) में लिखा है कि मैंने इस सामग्री का अधिकांश भाग भारतीय महात्मा पिल्पे (Pilpay) (अर्थात् विद्यापति, या विद्याओं के स्वामी) से लिया है।

(ख) हितोपदेश

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विप्रहः संधिरेव च।

'हितोपदेश'-नामायं चतुर्धा सुविभाजितः ॥१॥

हितोपदेशे विख्याता, नारायणकवेविभा ।

प्रथमे नीतिबोधाय बालविज्ञमनोरमा ॥२॥ (कपिलस्य)

लेखक और समय—हितोपदेश के लेखक नारायण पण्डित हैं।^१ इन्होंने बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आदेशानुसार यह संकलन तैयार किया था।^२ इसकी एक प्रति १३७३ ई० की मिलती है, अतः इसका समय १४वीं ई० से पूर्ववर्ती है। हितोपदेश में रविवार के लिए भट्टारकवार (छुट्टी का दिन) का प्रयोग किया गया है। फ्लीट ने लिखा है कि ६०० ई० तक इस शब्द का प्रचलन नहीं था।^३ अतः हितोपदेश का समय ६०० ई० के बाद, अर्थात् १०वीं शती ई० मानना चाहिए।

कथा और शैली—यह पंचतन्त्र पर निर्भर है। लेखक ने प्रस्तावना में इसका स्पष्ट उल्लेख भी किया है—पञ्चतन्त्रात् तथा अन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते (श्लोक ६)। लेखक ने पंचतन्त्र के अतिरिक्त 'कामन्दकीय नीतिसार' से बहुत अधिक श्लोकों को चुना है। इसमें चार परिच्छेद हैं, जिनमें ४३ कहानियाँ हैं। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

संख्या	परिच्छेदनाम	उपकथाएँ	श्लोक संख्या	कथा
१.	प्रस्ताविका	१	४७	राजा सुदर्शन के मूर्ख पुत्र
२.	मित्रलाम	८	२१२	काक, कूर्म, मृग, चूहे की कथा
३.	सुहृद्भेद	६	१८४	शेर और बैल की मैत्री तुड़वाना
४.	विग्रह	६	१४६	हंसों और मोरों में युद्ध
५.	संधि	१२	१३४	हंस और मोर राजाओं में संधि।

मुख्यकथा ४ + ३६ = ४३ ७२६

इसमें पंचतन्त्र के प्रथम दो तंत्रों का क्रम बदलकर पहले मित्रप्राप्ति और फिर मित्र-भेद दिखाया गया है। पंचतन्त्र के तीसरे तंत्र का कोलूकीय को तोड़कर विग्रह और संधि दो परिच्छेद बनाए गए हैं। अन्य दो तंत्रों को नीतिज्ञान के

१. तावन्नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोऽयं कथानाम् । हितो० ४-१३३

२. श्रीमान् धवलचन्द्रोऽसौ जीयान्माण्डलिको रिपून् ।

येनायं संग्रहो यत्नाल्लेखयित्वा प्रचारितः ॥ हितो० ४-१३४

३. Fleet- JRAS. 1912. PP, 1039-46

लिए अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है। उनकी कथाएँ यथास्थान इन चार परिच्छेदों में ही जोड़ दी हैं। ४३ कहानियों में १७ कहानियाँ नई हैं। इनमें ७ पशुकथाएँ हैं, ३ लोककथाएँ, २ शिक्षाप्रद कथाएँ और ५ षड्यंत्र कथाएँ। हितोपदेश में पंचतन्त्र का २/३ पद्यभाग और २/५ गद्यभाग मिलता है।

इसकी शैली अत्यन्त सरल और सरस है। पद्य अत्यन्त सरल और उपदेशात्मक हैं। कहीं-कहीं पद्यों की संख्या अधिक हो जाने से अरुचि होती है। सरल संस्कृत होने के कारण पंचतन्त्र से अधिक हितोपदेश का भारतवर्ष में प्रचार है। प्रारम्भिक छात्रों के लिए इसका उपयोग किया जाता है। भाव, भाषा, कथा-प्रवाह, रोचकता आदि सभी गुण इसमें अधिकता से प्राप्त होते हैं।

(ग) लोककथाएँ

पेशाव्यां श्रितसौन्दर्या लक्षश्लोकविभूषिता ।

रम्याऽद्भुतगुणोपेता, गुणाढ्यस्य बृहत्कथा ॥१॥

बृहत्कथां समाश्रित्य बुद्धस्वामिकृतः प्रियः ।

बृहत्कथायाः श्लोकानां संप्रहो राजते शुभः ॥२॥

क्षेमेन्द्रेण कृता हृद्या बृहत्कथासुमञ्जरी ।

सार्धसप्तसहस्रैस्तु श्लोकैः संक्षिप्य तां कथाम् ॥३॥

एकविंशतिसाहस्रीं सोमदेवो व्यधात् कृतिम्,

कथासरित्सागराख्यां काव्यकौशलमञ्जुलाम् ॥४॥ (कपिलस्य)

प्रतिपाद्य विषय—नीतिकथाओं और लोककथाओं में मुख्य अन्तर यह है कि नीतिकथाओं का उद्देश्य उपदेशात्मक होता है तथा इनके पात्र प्रायः जीव-जन्तु होते हैं, परन्तु लोककथाओं का उद्देश्य मुख्यतः मनोरंजन होता है। इसके पात्र मनुष्य आदि होते हैं। इनमें शृंगार आदि रसों का परिपाक, भाषा की प्रौढता तथा काव्य-सौन्दर्य आदि गुण भी मिलते हैं।

बृहत्कथा

लेखक और समय—लोककथा के रूप में गुणाढ्य-रचित बृहत्कथा सर्वश्रेष्ठ है। इसका सर्वप्रथम प्रामाणिक उल्लेख दण्डी, 'सुबन्धु' और बाण (७वीं शती ई०)

१. भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्था बृहत्कथाम् । काव्यादर्श १-३८

२. बृहत्कथालम्बैरिव सालभञ्जिकानिवहैः । वासवदत्ता ।

ने किया है।^१ कम्बोडिया (प्राचीन चम्पा) के एक अभिलेख (८७५ ई० के लगभग) में गुणाढ्य का उल्लेख है।^२ अतः इसका समय ५०० ई० के के बाद का नहीं है। नवीन अनुसन्धानों से बृहत्कथा का समय ७८ ई० निर्धारित हुआ है।^३ प्रो० एफ० लाकोत (F. Lacôte) ने इसको रामायण और महा-भारत के तुल्य महनीय निधि बताया है।^४ यह ग्रन्थ मूलरूप में न मिलने से भारतीय साहित्य की अपूरणीय क्षति हुई है। काश्मीरी संस्करणों में गुणाढ्य का संबन्ध सातवाहन राजाओं से बताया गया है। इन राजाओं ने संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा की भी उन्नति की है। सातवाहन राजा हाल (७८ ई०) ने गाथासप्तशती की रचना की है। गुणाढ्य उसी राजा से संबद्ध है, अतः ७८ ई० के लगभग इसका समय मानना उचित है।

बृहत्कथा के काश्मीरी रूपों से ज्ञात होता है कि गुणाढ्य की रचना श्लोकों में रही होगी। गुणाढ्य ने यह ग्रन्थ पैशाची भाषा में लिखा था। यह वर्तमान समय में पश्चिमोत्तर पाकिस्तान में बोली जाने वाली पश्तो भाषा है। वहाँ के व्यक्ति मांसाहारी हैं, अतः उन्हें पिशाच कहा गया और उनकी भाषा पैशाची कही जाती थी। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson) ने भी इसको काफिरिस्तान, गिलगिट आदि में बोली जाने वाली भाषा माना है।^५

बृहत्कथा को अत्यन्त रोचक ग्रन्थ बताते हुए परवर्ती अनेक साहित्यकारों ने इसका सादर उल्लेख किया है। धनञ्जय (१००० ई०) ने दशरूपक (१-६८) में, त्रिविक्रम भट्ट (६१५ ई०) ने नलचम्पू (भूमिका श्लोक १४) में, सोमदेव (६५६ ई०) ने यशस्तिलकचम्पू में, गोवर्धनाचार्य (१२०० ई०) ने आर्यासप्तशती में और सोड्डल ने उदयमुन्दरीकथा में गुणाढ्य की कथा को अद्भुत और रोमांचकारी बताया है।

१. समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।

हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा । हर्षचरित भूमिका श्लोक १७

२. कीथ—सं० सा० इति० पृष्ठ ३१६

३. भारतीय वाङ्मय के अमररत्न, पृष्ठ ४०

४. F. Lacôte—Essai sur Guṇādhya et la Br̥hatkatha (1908)

५. कीथ—सं० सा० इति० पृष्ठ ३२०

बृहत्कथा की संक्षिप्त कथा—भूमिका में बताया गया है कि किस प्रकार गुणाढ्य ने ७ लाख श्लोकों वाली बृहत्कथा बनाकर सातवाहन राजा के पास भेजी और उसने उसे अस्वीकार किया। अत्यन्त दुःखित होकर गुणाढ्य ने एक कुण्ड बनाकर उसमें रो रोकर पड़ते हुए एक-एक पन्ना जलाया। इस प्रकार ६ लाख श्लोक जला दिए। केवल नरवाहनदत्त के चरित वाला अंश, जो एक लाख श्लोकों में था, बचा लिया। वही कथा केवल शेष बची है। इसमें कौशाम्बी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त के पराक्रमों का वर्णन है। नरवाहनदत्त अपने एक मित्र गोमुख के साथ वन में गया। वहाँ उसने विद्याधर-राजकुमारी मदनमंजुका (मदनमंचुका) से विवाह कर लिया। मदनमंजुका को एक विद्याधर मानसवेग उड़ा ले गया। मानसवेग की बहिन वेगवती ने मदनमंजुका का पता लगाने में नरवाहनदत्त की सहायता की। अन्त में वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ और विद्याधरों का राजा हो गया। इस मुख्य कथा में अनेक उपकथाएँ संमिलित हैं।

बृहत्कथा पर आश्रित ग्रन्थ

बृहत्कथा अपने मूल रूप में अप्राप्य है। इस पर आश्रित तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनका कथन है कि ये ग्रन्थ बृहत्कथा के ही संक्षेप और संस्कृत रूपान्तर हैं :—

(१) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह**—नेपाल के बुधस्वामी (८वीं या ९वीं शती ई०) इसके लेखक हैं। ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है कि मूलग्रन्थ पद्य में था। इसमें २८ सर्गों में ४५३६ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ अपूर्ण प्राप्त होता है। इसके आकार से ज्ञात होता है कि मूलग्रन्थ में १०० से अधिक सर्ग रहे होंगे और श्लोक-संख्या २५ सहस्र के लगभग रही होगी। इसमें क्षेमेन्द्र और सोमदेव की कथा से भेद है। इसमें वर्णनों का अभाव है; प्राकृतरूपों का प्रयोग है, अतः यह मूल ग्रन्थ के अधिक समीप है।

(२) **क्षेमेन्द्र-कृत बृहत्कथामञ्जरी**—कश्मीर के राजा अनन्त (१०२६-१०६४ ई०) के आश्रित कवि क्षेमेन्द्र ने १०३७ ई० में बृहत्कथा का ही संक्षिप्त-रूप बृहत्कथामञ्जरी लिखी है। इसमें १६ अध्यायों में ७५०० श्लोक हैं। इसमें बुधस्वामी के ग्रन्थ से कथाएँ अधिक हैं। अतः ज्ञात होता है कि इसमें कश्मीर

में प्रचलित कुछ कथाएँ और जोड़ दी गई हैं। इसमें कथा अत्यन्त संक्षिप्त कर दी गई है, अतः दुर्बोध हो गई है।

(३) सोमदेव-कृत कथासरित्सागर—कश्मीर के एक ब्राह्मण राम के पुत्र सोमदेव ने १०६३ ई० से १०८१ ई० के बीच इसकी रचना की थी। सोमदेव भी राजा अनन्त के आश्रित कवि थे और क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विश्व-विख्यात है। यथा नाम तथा गुणः के अनुसार यह वस्तुतः कथाओं का समुद्र है। इसमें १८ लंमकों में १२४ तरंग हैं। इनमें कुल २१,३८८ (लगभग २२ सहस्र) पद्य हैं। इनमें ७६१ पद्य कुछ क्लिष्ट रचना हैं। इसमें कथा की योजना और रस-परिपाक भी सुन्दर हुआ है। इसमें भी काश्मीरी कहानियाँ हैं। इसकी शैली रोचक और सरल है। यह उक्त दोनों ग्रन्थों से अधिक उत्कृष्ट है। बृहत्कथा के दो तमिल संस्करण भी मिलते हैं।

अन्य कथा-ग्रन्थ

बृहत्कथा से संबद्ध साहित्य के अतिरिक्त भी कुछ कथा-ग्रन्थ मिलते हैं। उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—

वेतालपंचविंशतिका

इसमें २५ कहानियों का संग्रह है। इसके दो संस्करण मिलते हैं—१. शिवदास (१२०० ई०)-कृत, इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। २. जंभलदत्त-कृत, इसमें केवल गद्य-भाग है। इसके दो संस्करण और मिलते हैं :—एक अज्ञात लेखक-कृत। यह केवल क्षेमेन्द्र के आधार पर तैयार किया हुआ गद्य-रूपान्तर है। दूसरा बल्लभदास-कृत संक्षिप्त रूपान्तर है, इसके भावानुवाद भारतीय लोक-भाषाओं में पाए जाते हैं। मंगोल भाषा के सिद्दीकूर (Ssiddi-Kiir) में इसका अनुवाद पाया जाता है। इन कथाओं का प्राचीनतम रूप क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव के कथासरित्सागर में पाया जाता है।

इसमें वर्णन किया गया है कि राजा त्रिविक्रमसेन (बाद के साहित्य में विक्रमादित्य नाम से प्रसिद्ध राजा) को एक भिक्षुक प्रतिवर्ष एक फल देता है, जिसमें रत्न रहता था। राजा उस भिक्षुक की सहायता के लिए एक वेताल (भूत)

१. सोमसुन्दर देसिकर का कृष्णस्वामी आर्यंगर-स्मृतिग्रन्थ में

Tamil Versions of Brihatkatha लेख।

से अधिष्ठित शव लाने के लिए श्मशान जाता है। बेताल इस शर्त पर तैयार होता है कि राजा मार्ग में चुप रहे। वह मार्ग में उसे पहली वाली कहानी सुनाता है और राजा से उसका उत्तर माँगता है। राजा अपनी शर्त भूलकर उत्तर देने लगता है और वह शव फिर श्मशान में ही पहुँच जाता है। २५ बार यही घटना होती है और इस प्रकार २५ पहली-युक्त कहानियाँ तैयार हो जाती हैं। प्रश्न मनोरंजक और विचारणीय हैं। जैसे—एक युवती को तीन व्यक्तियों ने राक्षस के पंजे से छुड़ाया। एक ने बुद्धि से, दूसरे ने जादू से और तीसरे ने वीरता से। वह युवती किससे विवाह करे? राजा ने वीरता के पक्ष में अपनी सहमति प्रकट की। इसी प्रकार एक बालक उन पुरोहितों आदि की हँसी उड़ाता है, जो उसकी बलि देने के लिए उद्यत हैं। बालक अपनी युक्ति से अपने जीवन की रक्षा कर लेता है।

इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि इस बात से ज्ञात होती है कि भारत की अधिकांश भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

सिंहासन-द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशत्पुत्तलिका

अथवा विक्रमचरित

यह कथा-ग्रन्थ भी विक्रमादित्य से संबद्ध है। इसमें ३२ कहानियाँ हैं। मनोरंजकता और लोकप्रियता में यह अन्य ग्रन्थों से बढ़कर है। इसमें वर्णन किया गया है कि राजा भोज (११वीं शताब्दी ई०) को विक्रमादित्य का भूमि में गड़ा हुआ सिंहासन मिला। इसमें ३२ पुतलियाँ लगी हुई थीं। जब राजा भोज उस सिंहासन पर बैठने को उद्यत हुआ तो पुतलियों ने उसे रोका और राजा विक्रमादित्य के न्याय से संबद्ध कहानियाँ सुनाई। प्रत्येक पुतली ने एक-एक कहानी सुनाई। ये ३२ आत्माएँ पुतली के रूप में रुकी हुई थीं। वे अपनी-अपनी कहानी सुनाकर मुक्त हो जाती हैं।

पुतलियों ने राजा से कहा कि यदि वह विक्रमादित्य के तुल्य पराक्रमी, न्यायी और उदार हो तो वह उस सिंहासन पर बैठे, अन्यथा नहीं। इस प्रकार वे पुतलियाँ उसे ३२ दिन तक उस सिंहासन पर बैठने से रोकती हैं। इनमें विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन है। प्रत्येक कथा में राजा भोज का भी उल्लेख है। इसके लेखक का नाम और समय अज्ञात है। राजा भोज का नामोल्लेख होने से

इसका समय ११वीं शताब्दी ई० के बाद का है। भाव और भाषा की दृष्टि से यह वेतालपंचविंशतिका से हीन है।

इस ग्रन्थ के कई नाम प्रचलित हैं :—सिंहासन-द्वात्रिंशिका, द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, विक्रमार्कचरित, विक्रमचरित।

इसके केवल पद्य, केवल गद्य और गद्य-पद्य-मिश्रित तीन प्रकार के संस्करण मिलते हैं। १४ वीं शताब्दी ई० के एक जैन कवि क्षेमंकर ने इसका केवल गद्यात्मक रूप प्रस्तुत किया है। इसमें कथा के प्रारम्भ और अन्त में वर्णनात्मक पद्य हैं। इसका एक बंगाली रूपान्तर है, जो क्षेमंकर के संस्करण पर आधारित है। इसका लेखक कोई वररुचि कवि माना जाता है। दक्षिण भारत में यह विक्रमार्कचरित नाम से प्रचलित है।

विक्रमादित्य के पराक्रम आदि का वर्णन करने वाले अन्य ग्रन्थ ये हैं :—१. अनन्त-रचित वीरचरित, यह तीस सगों में है। २. शिवदास-रचित शालिवाहन-कथा, यह १८ सगों में है। अंशतः गद्य में भी है। ३. भट्ट विद्याधर के शिष्य आनन्द-द्वारा रचित माधवानलकथा। यह संस्कृत और प्राकृत पद्यों से युक्त सरल गद्य में है। ४. एक अज्ञात लेखक का विक्रमोदय। ५. पंच-वण्ड-च्छत्र-प्रबन्ध, यह १५ शताब्दी ई० के एक जैन कवि की रचना है।

शुकसप्तति

इसके लेखक का नाम और समय अज्ञात है। जैनाचार्य हेमचन्द्र (११ वीं शती ई०) इससे परिचित हैं, अतः इसका समय ११ वीं शताब्दी ई० से पूर्व समझना चाहिए। इसका फारसी में अनुवाद १४ वीं शताब्दी ई० में हुआ है। इसके दो संस्करणों—सामान्य और परिष्कृत—का संपादन प्रो० श्मिट (Schmidt) ने किया है। इनमें सामान्य संस्करण अपेक्षाकृत नवीन है और वह परिष्कृत संस्करण का संक्षिप्त रूप है। इसका मूलरूप संभवतः गद्य में था और बीच-बीच में सुभाषित के रूप में पद्य रहे होंगे। परिष्कृत संस्करण के लेखक चिन्तामणि भट्ट हैं और सामान्य संस्करण के लेखक एक अज्ञात नामा श्वेताम्बर जैन हैं।

यह पुस्तक अत्यन्त मनोरंजक है। इसमें वर्णन किया गया है कि हरदत्त नाम के एक व्यापारी का मदनसेन नाम का एक मूर्ख पुत्र था। वह अपना सारा समय अपनी पत्नी से प्रेमालाप में ही व्यतीत करता था। उसका पिता उसे पक्षि-रूपधारी दो गन्धर्व भेंट करता है। वे दोनों बुद्धिमान् पक्षी हैं—एक शुक (तोता)

और एक कौवा। दोनों पक्षी उस मूर्ख पुत्र को सन्मार्ग पर लाते हैं। विदेश-यात्रा के समय वह अपनी पत्नी को दोनों पक्षियों के सुपुर्द कर जाता है। उसकी पत्नी पति के अभाव में व्यभिचारिणी होना चाहती है। उपदेश देने वाले कौवे को वह डाँटकर चुप कर देती है। तोता बुद्धिमान् है। वह युक्ति से उस युवति को अपने वश में कर लेता है और प्रतिदिन एक-एक कहानी सुनाते हुए ७० रात्रियाँ पूरी कर देता है और उसे दुराचारिणी होने से बचा लेता है। ७० दिन बाद उसका पति आ जाता है और वह बुराई से बच जाती है।

इसकी शैली रोचक और आकर्षक है। वक्ता तोता स्त्रियों के दुराचार, पर-पुरुष-गमन, त्रिया-चरित और वैवाहिक संबन्ध-विच्छेद आदि के अनेक उदाहरण देकर पर-पुरुष-गमन के दोषों का विस्तृत वर्णन करता है। इसमें बीच-बीच में संस्कृत और प्राकृत के उपदेशात्मक पद्य भी हैं।

अन्य कथाग्रन्थ—वेताल-पंचविशतिका के लेखक शिवदास (१२०० ई०) ने कथार्णव ग्रन्थ लिखा है। इसमें मूर्खों और चोरों की ३५ कथाएँ हैं। १४ वीं शताब्दी ई० के प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति ने पुरुष-परीक्षा नामक कथाग्रन्थ लिखा है। इसमें ४४ नैतिक और राजनीतिक कथाएँ हैं। श्रीवीर कवि ने १४५१ ई० में कथाकौतुक ग्रन्थ लिखा है। यह १५ अध्यायों में पद्य में है। यह यूसुफ और जुलेका की कथाओं पर आधारित है। यह जोनराज का शिष्य श्रीवर ही माना जाता है। बल्लालसेन (१६ वीं शताब्दी ई०) ने भोजप्रबन्ध लिखा है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त अप्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें राजा भोज के राजद्वार से संबद्ध अनेक कथाएँ अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। लेखक ने प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों को राजा भोज के राजद्वार में उपस्थित किया है। उनकी सुन्दर कविताएँ प्रस्तुत की हैं और कवियों को लाखों का दान दिलवा कर भोज के संस्कृत-भाषा के प्रति प्रेम का सुन्दर वर्णन किया है। इसमें राजा मुंज और भोज का प्रारम्भिक जीवन भी दिया है। इसमें प्रत्युत्पन्नमतित्व और हास्य के भी सुन्दर श्लोक हैं।

बौद्धकथा-ग्रन्थ—कथा-साहित्य के विकास में बौद्ध और जैन कवियों का प्रशंसनीय योगदान रहा है। बौद्धों का अवदान-साहित्य एक स्वतंत्र सत्ता रखता है। अवदान (पाली-उदान) का अर्थ है—महनीय कार्यों की कहानी। जातक-ग्रन्थों के तुल्य अवदान-ग्रन्थों में भी बुद्ध के प्राचीन जन्मों के विशिष्ट गुणों का वर्णन है। इसमें अवदानशतक सबसे प्राचीन संग्रह है। इसका तृतीय

शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। इसमें दीनार शब्द के प्रयोग के कारण डा० कीथ आदि इसका समय १०० ई० के बाद मानते हैं। इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें बौद्ध विचारों के आधार पर १०० वीर-गाथाओं का संकलन है। इसका नैतिक पक्ष अत्यन्त प्रबल है, अतः इसका साहित्यिक पक्ष गौण पड़ गया है।

दिव्यावदान—यह अवदानशतक से कुछ अधिक रोचक है। इस ग्रन्थ की एक कथा का २६५ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है। यह अवदानशतक के अनुकरण पर ही लिखा गया है। यह उसके कुछ समय बाद का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का एक भाग **महायान-सूत्र** कहा जाता है। इस ग्रन्थ का प्रधान अंश हीनयान संप्रदाय का है। ये दोनों ग्रन्थ संस्कृत गद्य में लिखे गए हैं। इनमें स्थान-स्थान पर कुछ श्लोक संस्कृत या प्राकृत में दिए गए हैं। अवदानशतक में कथाओं का क्रम व्यवस्थित है, किन्तु दिव्यावदानशतक में क्रम आदि नहीं है।

जातकमाला—आर्यशूर की जातकमाला में जातक-कथाओं का संग्रह है। इसमें बोधिसत्त्व की पूर्वजन्म की कथाओं का वर्णन है। इसकी कथाएँ कहानी और संलाप के रूप में दी गई हैं। कथाभाग गद्य में है और बीच-बीच में कुछ पद्य भी हैं। जातक-कथाओं की संख्या ५०० मानी जाती है। इनमें कुछ कथाएँ मूलतः बौद्ध धर्म की नहीं हैं। आर्यशूर इनका संग्रहकर्ता मात्र है। इसकी एक रचना कर्मफलसूत्र का ४३४ ई० में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है, अतः इसका समय ४०० ई० से पूर्व मानना चाहिए। यह प्रौढ़ संस्कृत में लिखा गया है।

कल्पनामण्डितक या सूत्रालंकार—इसमें जातकों और अवदानों का गद्य और पद्य में संग्रह है। इसका लेखक मूल से अश्वघोष समझा जाता था, वस्तुतः इसका लेखक एक परवर्ती कवि कुमारलात है।

जैनकथा-ग्रन्थ—**उपमिति-भव-प्रपंच-कथा**—इसके लेखक सिद्ध या सिद्धांघ्रि जैन थे। उन्होंने इस ग्रन्थ की समाप्ति ६०६ ई० में की थी। इसके संपादक डा० याकोबी ने इसे पूर्णतया रूपकात्मक आख्यान माना है। इसमें मनुष्य के समय (आत्मा) का रूपक अलंकार के द्वारा वर्णन किया गया है। इसकी भाषा बोलचाल की संस्कृत है। लेखक का यह उद्देश्य भी रहा है कि बोलचाल की संस्कृत में इसकी रचना हो। यह ग्रन्थ कथा-साहित्य में विशेष महत्त्व रखता है।

हेमचन्द्र—११ वीं शताब्दी ई० के प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र ने **परिशिष्टपर्व** की रचना की है। यह **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** नामक पौराणिक काव्य का एक परिशिष्ट है। इसमें सरल संस्कृत में उपदेशात्मक कथाएँ हैं, जो जैन साधुओं से संबद्ध हैं।

मेरुतुंगाचार्य-कृत प्रबन्ध-चिन्तामणि—इसकी रचना १३६१ विक्रम संवत् (१३०५ ई०) में हुई है। बोलचाल की भाषा में लिखा गया है। इसमें ऐतिहासिक एवं अर्ध ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनी हैं। इसमें विक्रमादित्य, सातवाहन, भोज, जयसिंह, जयचन्द्र, वराहमिहिर, भर्तृहरि आदि की रोचक कहानियाँ हैं।

राजशेखर-कृत प्रबन्धकोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध)—इसकी रचना १४०५ वि० (१३४८ ई०) में हुई है। अन्तिम पद्य में रचनाकाल का निर्देश है। इसमें २४ विशिष्ट व्यक्तियों का जीवन-चरित है जिसमें १० जैन आचार्य, ४ संस्कृत के कवि, ७ राजा और ३ जैन गृहस्थ हैं। संस्कृत कवियों का वर्णन मौलिक है। यह ग्रन्थ बोल-चाल की संस्कृत में लिखा गया है। भाषा सरल और सुबोध है। पूर्ववर्ती तीन ग्रन्थों का इस पर प्रभाव पड़ा है। ये हैं :—प्रभावकचरित (१२७७ ई०), प्रबन्धचिन्तामणि (१३०५ ई०) और विविध-तीर्थकल्प (१३३३ ई०)।

अन्य जैन-कथा-ग्रन्थ—**भरटकद्वित्रिंशिका**—यह लोकभाषा के आधार पर लिखी गई है। इसमें लोकभाषा के पद्य स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इस ग्रन्थ की कथाएँ जैनभावना से प्रेरित हैं और ब्राह्मणों को चिढ़ाने के लिए लिखी गई हैं। **कथा-रत्नाकर**—यह जैन हेम-विजयगणि की रचना है। इसमें २५६ छोटी कथाएँ हैं। यह १७ वीं शती ई० की रचना है। जैन धर्म का प्रचार करना इसका उद्देश्य है। **जिनकीर्ति** (१५ वीं ई० पूर्वार्ध) ने दो रोचक कथा-ग्रन्थ लिखे हैं :—(१) **चम्पक-श्रेष्ठिकथानक**, (२) **पालगोपाल-कथानक**। चम्पकश्रेष्ठिकथानक में मुख्य कथा में तीन कथाएँ संनिविष्ट हैं। एक अन्य कवि की कृति **सम्यक्त्व-कौमुदी** है। इसमें कथा के अन्तर्गत अनेक अन्तर्कथाओं की सृष्टि है। **कथाकोश** (समग्र अनिर्णीत) में परस्पर असंबद्ध अनेक कथाएँ हैं। यह ग्रन्थ भट्टी संस्कृत में है। बीच-बीच में प्राकृत में पद्य भी हैं।

१०. ऐतिहासिक काव्य

ऐतिहासिक काव्यों का उद्गम और विकास

भारतवर्ष में ऐतिहासिक काव्यों का प्रायः अभाव है। पाश्चात्य विद्वान् ऐतिहासिक ग्रन्थ से जो भाव लेते हैं, वैसे काव्यों का संस्कृत साहित्य में अभाव ही समझना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में अनेक विचार व्यक्त किए हैं। इनमें से कुछ विचार युक्ति-संगत हैं और कुछ अनर्गल प्रलाप ही मानने चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसे इतिहास-ग्रन्थों का कारण बताया है कि भारतवर्ष में भाग्यवाद की प्रबलता, दैवी शक्तियों पर विश्वास, कर्म-फल की अनिवार्यता और संसार की अनित्यता आदि। वस्तुतः ये कारण न होकर कारणाभास ही हैं। वास्तविकता यह है कि भारतीय विद्वान् इतिहास के तिथिक्रम और विशेष घटनाओं को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना उसके कार्यकलाप, वैयक्तिक जीवन की उत्कृष्टता, नैतिक आदर्श और राष्ट्रीय उन्नति में योगदान को। इस दृष्टि से राम, कृष्ण, बुद्ध, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि के जीवन की तिथियों को महत्त्व न देकर उनकी भावात्मक विशेषताओं को विशेष रूप से प्रकट किया जाता है। यही कारण है कि हम तिथिक्रम के अनुसार राजाओं, सम्राटों, कवियों और लेखकों आदि का विस्तृत विवरण नहीं पाते हैं।

खेद की बात है कि पाश्चात्य विद्वान् जितना बाह्य शरीर अर्थात् वर्ष, तिथि, वंश, स्थूल घटनाओं आदि पर ध्यान देते हैं, उतना उसकी आत्मा अर्थात् आन्तरिक सौन्दर्य पर बल नहीं देते। जीवन का महत्त्व किसी वर्ष या तिथि पर निर्भर नहीं है, जितना उसके कार्यकलाप और नैतिक उत्कर्ष पर है। यह भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की विचारधारा में मौलिक अन्तर है।

वस्तुतः तिथिक्रम-युक्त इतिहास का प्रारम्भ अशोक के समय से उसके शिलालेखों और अभिलेखों से होता है। तत्पश्चात् ऐतिहासिक विवरण विभिन्न शिलालेखों और अभिलेखों से प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से गुप्तकाल ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करने में सर्वप्रथम है। ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण शिलालेख ये हैं :—गिरिनार शिलालेख (१५० ई०), नासिक शिलालेख (१४६ ई०), हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति (३५० ई० से पूर्व), स्कन्दगुप्त का गिरिनार-शिलालेख (४५७ ई०), वत्सभट्टि की मन्दसौर-प्रशस्ति (४७३ ई०) आदि।

हरिषेण-कृत प्रयाग-प्रशस्ति आदि में ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त काव्यात्मकता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

काव्यात्मक ग्रन्थ के रूप में रामायण और महाभारत का स्थान सर्वोपरि है। इनमें केवल कथानक का उल्लेख है और तिथिक्रम का पूर्णतया अभाव है। इसके पश्चात् पुराणों को ऐतिहासिक ग्रन्थ की कोटि में रखा जा सकता है। इनमें वंशावलियाँ आदि ही दी गई हैं। प्रत्येक राजा का विस्तृत वर्णन इनमें भी अप्राप्त है। काव्य के रूप में अश्वघोष का बुद्धचरित महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। इसके पश्चात् बाण का हर्षचरित और कल्हण की राजतरंगिणी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

अश्वघोष

ऐतिहासिक काव्यकार के रूप में अश्वघोष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने ही सर्वप्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति को लेकर काव्य की रचना की है। अश्वघोष का बुद्धचरित महात्मा बुद्ध के जीवन को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है। अश्वघोष के समय एवं बुद्धचरित की विशेषताओं आदि का उल्लेख महाकवि अश्वघोष के प्रसंग में अध्याय ५ में विस्तार से किया गया है।

बाण भट्ट

महाकवि बाणभट्ट ने महाराज हर्ष के जीवन को लेकर हर्षचरित की रचना की है। इसमें प्रारम्भ में कवि ने अपने वंश का तथा अपना जीवन-वृत्त दिया है। इसमें हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन से लेकर राज्यश्री की प्राप्ति तक का वर्णन है। गद्यकार बाण के वर्णन में (अध्याय ७) हर्षचरित की विविध विशेषताओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है। इसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्य अन्य साधनों से भी प्रमाणित हो चुके हैं। इसमें भी ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन की अपेक्षा कवित्व की प्रधानता है।

वाक्पतिराज

वाक्पतिराज (७३० ई० के लगभग) ने गउडवहो (गौडवधः) ऐतिहासिक काव्य महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा है। ये कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे। ये भवभूति के समकालीन थे। कल्हण ने वाक्पतिराज और भवभूति को समकालीन तथा यशोवर्मा का आश्रित कवि बताया है।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥

(राजतरंगिणी ४-१४४)

इसमें वर्णन किया गया है कि राजा यशोवर्मा ने गौड-राजा का वध किया । इसमें गौड-राजा का नाम नहीं दिया गया है । कश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मा को हराया और उसका वध किया (७४० ई० के लगभग) । कल्हण ने यह भी उल्लेख किया है कि पहले यशोवर्मा और ललितादित्य में सन्धि हो गई थी, परन्तु कुछ कारणों से वह सन्धि भंग हो गई और ललितादित्य ने यशोवर्मा का समूल नाश कर दिया ।

सोऽभूत् संधिर्यशोवर्म-ललितादित्ययोरिति । (राज० ४-१३८)

यशोवर्मनृपं तं तु समूलमुदपाटयत् ॥ (राज० ४-१४०)

यह अपूर्ण ग्रन्थ है । संभवतः यशोवर्मा की मृत्यु के कारण लेखक ने यह ग्रन्थ अधूरा छोड़ दिया । लेखक ने अपने काव्य के श्लोक ६६ में महुमन-विजय नामक अपनी एक और कृति का उल्लेख किया है, किन्तु यह अप्राप्य है । इसमें ऐतिहासिक महत्त्व की बातों का उल्लेख कम है और प्राकृतिक वर्णन आदि विषयों की अधिकता है ।

आर्यमंजुश्रीकल्प

श्री टी० गणपति शास्त्री ने १६२५ ई० में इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का पता लगाया था । इसके लेखक का नाम अज्ञात है । डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने सर्वप्रथम इसकी ऐतिहासिकता का निर्णय किया था ।^१ इसकी रचना ८०० ई० के लगभग सिद्ध की गई है । यह महायान बौद्ध संप्रदाय का ग्रन्थ है । इसमें लगभग ७०० ई० पू० से लेकर ७७० ई० तक के सम्राटों का इतिहास दिया गया है । इसके तृतीय खण्ड के ५३ वें अध्याय में बुद्ध के मुख से भारतवर्ष के सम्राटों का वर्णन भविष्यत्काल में कराया गया है ।

पद्मगुप्त (उपनाम परिमल)

पद्मगुप्त का समय १००५ ई० के लगभग है । ये घारा के राजा मुंज और

१. An Imperial History of India in a Sanskrit text, edited by Dr. K. P. Jayaswal.

उनके पुत्र सिन्धुराज (नवसाहसांक) के आश्रित कवि थे। इनका ही नाम परिमल या कालिदास-परिमल था। इन्होंने १८ सर्गों में नवसाहसांकचरित नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा है। इसमें मालवा के राजा सिन्धुराज नवसाहसांक का चरित वर्णित है। इसमें इतिहास और कवित्व तथा कल्पना का संमिश्रण है, अतएव ऐतिहासिकता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं होता। इसमें कवित्व की छटा यथास्थान अवश्य दृष्टिगोचर होती है।

बिल्हण

महाकवि बिल्हण के विक्रमांकदेवचरितम् महाकाव्य की प्राप्ति का श्रेय डा० ब्यूह्लर को है। उन्हें यह ग्रन्थ जैसलमेर में गडडवहो ग्रन्थ के साथ ही मिला था। इसके अन्तिम सर्ग में लेखक ने अपना वंश-परिचय आदि दिया है। कल्हण ने राजतरंगिणी (७-६३५ से ६३८) में बिल्हण के जीवन का कुछ अंश दिया है। इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागदेवी था। ये कल्हण के अनुसार राजा कलश के राज्यकाल में कश्मीर छोड़कर कर्णाटक देश के राजा पर्माडि के पास चले गए थे। ये कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६-११२७ ई०) के आश्रित कवि थे। उन्होंने इनको विद्यापति की उपाधि से अलंकृत किया था। अपने आश्रयदाता के सम्मानार्थ इन्होंने १८ सर्गों में विक्रमांकदेवचरित की रचना की थी। इस ग्रन्थ का समय १०८८ ई० के पूर्व (१०८५ ई० के लगभग) माना जाता है।

इस महाकाव्य में राजा विक्रमादित्य षष्ठ के पिता आहवमल्ल की मृत्यु, राजकुमारी चन्द्रलेखा से विवाह, चोलों की पराजय आदि घटनाओं का उल्लेख है। ये तथ्य अन्य साधनों से भी प्रमाणित होते हैं। कल्याण के चालुक्यवंशी राजाओं के शिलालेखों से उक्त बातों की पुष्टि होती है। इसके द्वारा दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

बिल्हण वैदर्भी रीति के कवि हैं। इनकी कविता में प्रसाद, माधुर्य और मनोज्ञता है। इनके काव्य में ऐतिहासिकता गौण है और कवित्व प्रधान। इनके काव्य में अनेक सुन्दर सुभाषित हैं और पद-पद पर कवित्व की अनूठी छाप है।

१. V. Venkataraman: विक्रमांकदेवचरित in its historical setting. Indian History Congress. 1938. P-117.

वैदर्भी रीति की प्रशंसा में इनका कथन है कि भाग्य से ही यह रीति प्राप्त होती है। यह कानों के लिए अनन्य अमृतवर्षा है, सरस्वती का विलास है और कविता को सौभाग्य प्रदान करती है।

अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य, सरस्वती-विभ्रम-जन्मभूमिः।

वैदर्भीरीतिः कृतिनामुदेति, सौभाग्यलाभ-प्रतिभूः पदानाम्॥

(विक्रमांक० १-६)

कवि की यह गर्वोक्ति कुछ अंश तक यथार्थ है कि रस, ध्वनि और वक्रोक्ति के मर्मज्ञ विद्वान् ही मेरी कविता का आदर कर सकते हैं, अन्य तोते के तुल्य पाठ करें।

रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति, संक्रान्त-वक्रोक्ति-रहस्यमुद्राः।

तेऽस्मत्प्रबन्धानवधारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुक्वाक्यपाठम्॥

(वि० १-२२)

कवि का यह कथन सत्य है कि जो राजा अपना नाम अमर करना चाहते हों, उन्हें चाहिए कि वे योग्य कवियों को आश्रय दें। कवि ही राजाओं को अमर करते हैं और कवि का असमान होने पर राजा का यश समाप्त हो जाता है।

पृथ्वीपतेः सन्ति न यस्य पाश्वे कवीश्वरास्तस्य कृतो यशांसि।

भूपाः कियन्तो न बभूवुर्दृष्या जानाति नामापि न कोऽपि तेषाम्॥

(वि० १-२६)

यह कवियों का ही प्रभाव है कि वे किसी को अमर कर देते हैं। वाल्मीकि कवि ने ही राम को अमर बनाया और कवियों के अपमान के कारण ही रावण राक्षस बन गया। अतः राजाओं को चाहिए कि वे कवियों का कमी भी निरादर न करें।

लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद् यत् कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।

स सर्व एवाविकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥

(वि० १-२७)

कवि ने आहवमल्ल की शूरता की प्रशंसा करते हुए वीर और शृंगार रस का एकत्र समन्वय किया है कि उस राजा ने चोल राजा की राजधानी कांची को उसी प्रकार हर लिया, जैसे एक प्रेमी अपनी प्रिया को हर कर ले आता है।

पृथ्वीभुजंगः परिकम्पिताङ्गो यशःपटोल्लुप्टन-केलिकारः ।

विषृत्य कांचीं भुजयोर्बलेन यश्चोल-राज्यभ्रियमाचकर्ष ॥

(वि० १-११५)

महाकवि कल्हण

संस्कृत साहित्य में महाकवि कल्हण ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने इतिहास को इतिहास मानकर ग्रन्थ की रचना की है और तथ्यों को प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि कल्हण देश और विदेश में सर्वत्र आदर के पात्र हुए हैं। इनकी सुप्रसिद्ध कृति राजतरंगिणी है। इसमें कश्मीर के राजाओं का विस्तृत वर्णन है। इसमें प्रारम्भ से लेकर ११५१ ई० तक के राजाओं का वर्णन किया गया है। इसमें आठ तरंगों में ७८२६ श्लोक हैं। इसमें द्वितीय तरंग में सबसे कम अर्थात् १७१ श्लोक हैं और अष्टम तरंग में सबसे अधिक अर्थात् ३४४६ श्लोक हैं। सप्तम में १७३२ श्लोक हैं। प्रारम्भ के ६ तरंग छोटे हैं और अन्तिम दो तरंग बहुत बड़े हैं।

कल्हण के पिता का नाम चण्पक था। वे कश्मीर के राजा हर्ष (१०८६-११०१ ई०) के विश्वासपात्र व्यक्ति थे। इनके पिता ने राजा हर्ष का कठिन परिस्थितियों में भी साथ नहीं छोड़ा था। कल्हण का वास्तविक नाम कल्याण था। कल्हण का जन्म डा० कीथ आदि ने ११०० ई० लगभग माना है। इन्होंने राजाश्रय छोड़कर एक आश्रयदाता अलकदत्त की प्रेरणा से यह ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना ११४६ ई० में प्रारम्भ की और अगले वर्ष अर्थात् ११५० ई० में इसे समाप्त कर दिया। इस ग्रन्थ की रचना सुस्सल के पुत्र राजा जयसिंह (११२७-११५६ ई०) के राज्यकाल में हुई थी। कल्हण एक स्वतन्त्र विचारक और इतिहासकार थे, अतएव उन्होंने अपने इतिहास में राजा सुस्सल और जयसिंह की भी त्रुटियों का उल्लेख किया है।

एक ऐतिहासिक के रूप में कल्हण अत्यन्त आदरणीय हैं। इन्होंने इतिहासकार के सभी उत्तरदायित्वों को पूर्णतया निभाया है। इन्होंने विक्रम-पूर्व १२वीं शताब्दी से कथा प्रारम्भ की है और एक गोनन्द नामक राजा का वर्णन किया है। इसके पश्चात् बिना तिथि के ८१२ ई० तक के राजाओं का वर्णन किया है। ८१२ ई० से लेकर परकालीन राजाओं की तिथियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। यहाँ से लेकर ११५० ई० तक की घटनाएँ तिथिक्रम के साथ दी गई

है। इस प्रकार लगभग २५०० वर्षों का राजनीतिक इतिहास उन्होंने प्रस्तुत किया है। इसमें ४०० वर्ष की घटनाएँ तिथिक्रम से युक्त हैं। अन्तिम राजाओं का वर्णन साक्षात् दर्शक के रूप में किया गया है।

कल्हण ने उल्लेख किया है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना में प्राचीन ११ ऐतिहासिक ग्रन्थों और नीलमतपुराण की सहायता ली है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसका विस्तृत विवरण दिया है कि किस ग्रन्थ से क्या सामग्री मिली है।

दृगोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाश्रयाः ।

मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि ॥ (राज० १-१४)

कल्हण ने एक इतिहासकार के लिए यह आवश्यक बताया है कि वह निष्पक्ष भाव से तथ्यों को रखे। वह राग या द्वेष के वशीभूत न हो।

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता ।

भूतार्थ-कथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ (राज० १-७)

कल्हण ने अपने कर्तव्य का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है। कल्हण ने अपने आश्रयदाताओं के साथ ही साथ काश्मीरी लोगों के दुर्गुणों को भी प्रकट करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। उनका कथन है कि उनके समय में सैनिक और सरकारी नौकर राजभक्त नहीं रह गए थे। ये लोग अपने आश्रयदाताओं को धोखा देते थे और शत्रुओं से मिल जाते थे। कल्हण ने बताया है कि राजपूत और विदेशी लोग अपने राजाओं को धोखा नहीं देते हैं, परन्तु काश्मीरी अपने आश्रयदाताओं को धोखा देने में लज्जा का अनुभव नहीं करते हैं। राजकीय-कर्मचारी लोभी, उत्पीडक और राजद्रोही हो गए थे। राज्य में मन्त्रियों में परस्पर विरोध था। सेनाध्यक्षों में मतभेद, सैनिकों में अनुशासनहीनता, पुरोहितों में षड्यन्त्रकारिता और प्रजा में विलासप्रियता विद्यमान थी। उस समय काश्मीर में पारिवारिक कलह, छल-प्रपंच, द्वेष, आत्महत्या, षड्यन्त्र और मार-काट का बोलबाला था।

शैली—कल्हण वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी भाषा में लालित्य और माधुर्य है। प्रायः महाभारत की सी शैली अपनाई गई है। विषय-प्रतिपादन को मुख्यता दी गई है। विषय-वर्णन में कवि अपनी प्रतिभा का यथास्थान प्रदर्शन करने में नहीं चूकते। कहीं-कहीं वे राजाओं के दुर्गुणों के वर्णन आदि प्रसंगों में भाव-जगत् में विचरण करने

संगते हैं। उन्होंने राजाओं की उपमा बालकों से दी है और बताया है कि वे स्त्रियों के कोप और प्रसाद में, घोड़ों आदि की चर्चा में, नौकरों के कथनानुसार कार्य करने में और शिकार की कथाएँ सुनने में अपना समय इसी प्रकार बिताते हैं, जैसे बालक।

कोप-प्रसाददंयिता-जनस्य हयादि-वृत्तान्त-गवेषणेन।

भृत्यानुवृत्त्या भृगयाकथाभी राज्ञां शिशूनामिव याति कालः॥

(राज० ७-१११०)

कवि ने बहुत सुन्दर नैतिक शिक्षा दी है कि जो दूसरे के अपकार के लिए जो उपाय अपनाता है, उसी उपाय से उसका भी नाश होता है। जैसे आग धुआँ बनकर आँखों को हानि पहुँचाती है, परन्तु वही धुआँ पुनः बादल बनकर उस आग को विनष्ट कर देता है।

योऽयं परापकरणाय सृजत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद् विनाशः।

धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निर्भूत्वाम्बुदः स शमयेत् सलिलैस्तमेव॥

(राज० ४-१२५)

कल्हण में कवित्व और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। कवि का कथन है कि अगणित घड़े मिलकर भी समुद्र को नहीं सुखा पाते, परन्तु आश्चर्य की बात है कि उन घड़ों के एक बेटे अर्थात् अगस्त्य ने क्षण भर में सारा समुद्र सुखा दिया।

कुम्भाः पयोनिधि-पयोहरण-प्रवृत्ता नित्यं वहन्ति किल ये विफलश्रमत्वम्।

चित्रं क्षणादिह तदेक-समुद्भवेन संदर्शिता निखिल-वारिधि-पानलीला॥

(राज० ४-७१८)

कल्हण की राजतरंगिणी की कथा को कुछ परवर्ती कवियों ने आगे बढ़ाया है। जोनराज (मृत्यु १४५६ ई०) ने इस कथा को उसी शैली में सुल्तान जैनुल आब्दीन् के राज्य तक पहुँचाया है। तत्पश्चात् जोनराज के शिष्य श्रीवर ने जैनराजतरंगिणी में चार भागों में १४५६ से १४८६ ई० तक के राजाओं का वर्णन किया है। प्राज्य भट्ट और उनके शिष्य शुक ने राजावलिपताका ग्रन्थ में अकबर द्वारा कश्मीर को अपने राज्य में मिलाने तक का वर्णन किया है। डा० कीथ का मत है कि ये ऐतिहासिक कवि कल्हण की अपेक्षा मौलिकता और तथ्य-निरूपण में बहुत हीन हैं।

अन्य ऐतिहासिक काव्यकार

इनके अतिरिक्त कुछ कम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

काश्मीरी महाकवि शम्भु ने राजेन्द्रकर्णपुर में, राजा हर्षदेव (१०८८-११०० ई०) की प्रशस्ति लिखी है। जैन मुनि हेमचन्द्राचार्य (१०८८-११७२ ई०) ने कुमारपालचरित लिखा है। इसमें अहलवाड़ के चालुक्य राजा कुमारपाल का जीवन-चरित दिया है। काश्मीरी कवि जल्हण (१२ वीं शताब्दी ई०) ने सोमपालविजय की रचना की है। इसमें राजपुरी के राजा सोमपाल की प्रशस्ति है। कवि जयानक (१२ वीं ई० उत्तरार्ध) ने पृथ्वीराज-विजय लिखा है। डा० कीथ ने इसको अज्ञात कवि की रचना माना है। सन्ध्याकर नन्दी ने बंगाल के राजा रामपाल (११०४-११३० ई०) का जीवनवृत्त अपने ग्रन्थ रामपालचरित में लिखा है। सोमेश्वरदत्त या देव (११७६-१२६२ ई०) ने कीर्तिकौमुदी तथा सुरथोत्सव नामक काव्य लिखे हैं। शरिसिंह ने सुकृत-संकीर्तन नामक प्रशस्तिकाव्य १३वीं शताब्दी में लिखा है। १४ वीं शताब्दी ई० में सर्वानन्द ने जगद्वचरित लिखा है। मेरुतुंग (१३०६ ई०) ने प्रबन्धचिन्तामणि की रचना की है। इसमें जैन कवियों और जैन महापुरुषों की आत्मकथाएँ वर्णित हैं। राजशेखर ने १३४६ ई० में प्रबन्धकोष नामक ग्रन्थ लिखा है। वामन भट्ट बाण (१५०० ई०) ने वेमभूपालचरित में अपने आश्रयदाता वेमभूपाल का ऐतिहासिक वृत्त लिखा है। पं० सदाशिव शास्त्री (२० वीं शताब्दी ई०) ने सिन्धे-विजय-विलास-चम्पू लिखा है। इसमें ग्वालियर-नरेशों का जीवन वर्णित है।

इसी प्रकार निम्नलिखित काव्यों आदि में कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है :—जयन्तविजय, सुकृत-संकीर्तन, हम्मीरमदमर्दन, वसन्तविलास, मोह-पराजय, चन्द्रप्रभाचरित, गंगादेवी-कृत मधुराविजय, राजनाथ द्वितीय-कृत सालुवाम्युदय, राजनाथ तृतीय-कृत अच्युतरायाभ्युदय, वासुदेव-कृत गंगावंशानु-चरित, गंगाधर-कृत गंगादास-प्रताप-विलास, रानी तिरुमलाम्बा-कृत वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू, यज्ञनारायण-कृत साहित्य-रत्नाकर एवं रघुनाथ-विलास, राम-भद्राम्बा-कृत रघुनाथाभ्युदय, रुद्र-कवि-कृत राष्ट्रौढवंश-महाकाव्य, देवविमल

गणि-कृत हीर-सौभाग्य, देवराज-कृत बालमार्तण्ड-विजय तथा बाणेश्वर-कृत चित्र-चम्पू ।

बाणभट्टोऽश्वघोषश्च वाक्पतिः पद्यगुप्तकः ।

बिल्हणः कल्हणश्चैते ऐतिह्ये श्रुतकीर्तयः ॥

(कपिलस्य)

११. चम्पू काव्य

चम्पू-काव्य की उत्पत्ति और विकास

चम्पू की परिभाषा—चम्पू शब्द चुरादिगण की गत्यर्थक चपि (चम्पू) धातु से औणादिक उन् प्रत्यय करने पर और ऊङ् आदेश करने पर बनता है। 'चम्पयति' अर्थात् सहैव गमयति प्रयोजयति गद्यपद्ये इति चम्पूः, अर्थात् जिस रचना में गद्य और पद्य का समान भाव से तथा सहयोगपूर्वक प्रयोग किया जाता है, उसे चम्पू कहते हैं। हरिदास भट्टाचार्य ने चम्पू शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है :—चमत्कृत्य पुनाति, सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति, इति चम्पूः । इसके अनुसार चम्पू में शब्द-चमत्कार और अर्थ-प्रसाद गुण होना चाहिए। चम्पू में वर्णनात्मक अंश के लिए गद्य का प्रयोग होता है और अर्थगौरव वाले अंशों के लिए पद्य का प्रयोग किया जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में गद्य और पद्यमिश्रित रचना को चम्पू कहा है।

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते । (सा० दर्पण ६-३३६)

भोज ने चम्पू-रामायण में चम्पू की विशेषता बताई है कि उसमें पद्य के संमिश्रण से गद्य उसी प्रकार आह्लादक हो जाता है, जिस प्रकार वाद्य के मिश्रण से गान ।

गद्यानुबन्धरस-मिश्रित-पद्य-सूक्तिः, हृद्या हि वाद्य-कलया कलितेव गीतिः ।

तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखाय, चम्पू-प्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥

(बालकाण्ड ३)

अग्निपुराण में भी चम्पू का प्रयोग मिलता है (मिश्रं चम्पूरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा, अग्नि० ३३६-३८)। काव्यानुशासन के कर्ता हेमचन्द्र ने चम्पू में अंक (कोई विशेष पद) और उच्छ्वासों में विभाजन को भी आवश्यक

माना है। (गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः)। हेमचन्द्र का यह लक्षण नलचम्पू आदि के आधार पर बना है।

चम्पू-काव्य का विकास—चम्पू परंपरा का प्रारम्भ हमें अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसमें गद्य और पद्य का मिश्रित रूप से प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिताओं में गद्य और पद्य का मिश्रित रूप मिलता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के उपाख्यानो में भी गद्य और पद्य का प्रयोग किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान चम्पू शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। कठ और प्रश्न उपनिषदों में गद्य-पद्य-मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् महाभारत, विष्णु पुराण और भागवत पुराण में भी गद्य-पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। इसके पश्चात् बौद्ध जातक-कथाओं में हमें चम्पू-पद्धति का दर्शन होता है। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं—अवदानशतक, दिव्यावदान और आर्यशूर-रचित जातकमाला। इसके पश्चात् चतुर्थ शताब्दी ई० से लेकर बाद में शिलालेखों में भी चम्पू-पद्धति का अनुसरण मिलता है। चम्पू का सर्वप्रथम पारिभाषिक विश्लेषण **दण्डी** (६०० ई०) के काव्यादर्श में प्राप्त होता है।^१

अब तक उपलब्ध साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नलचम्पू के रचयिता **त्रिविक्रम भट्ट** ही सर्वप्रथम काव्य रूप में इस पद्धति के प्रवर्तक हैं। त्रिविक्रम भट्ट का समय १० वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध है। इसके पश्चात् ९५९ ई० में लिखित **सोमदेव सूरि** का **यशस्तिलक-चम्पू** है। इसके पश्चात् चम्पू काव्य की एक स्वतंत्र धारा चल पड़ी।

११. (क) त्रिविक्रम भट्ट

त्रिविक्रमो रसश्लिष्टश्चम्पूचर्चन-चर्चितः।

सभङ्गाभङ्गश्लेषेण श्लिष्टो मतिमतां मनः॥

(कपिलस्य)

जीवनवृत्त और कृतित्व—त्रिविक्रम भट्ट ने नलचम्पू के प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय दिया है। तदनुसार ये शांडिल्य गोत्र के ब्राह्मण थे। इनके पितामह

१. गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते। काव्यादर्श १-३१

श्रीधर थे। श्रीधर के पुत्र देवादित्य (अथवा नेमादित्य) थे और इनके पुत्र त्रिविक्रम भट्ट थे। नलचम्पू के 'जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः' (२०) 'मन्दघीः' (२१) 'जानाति हि पुनः सम्यक् कविरैव कवेः श्रमः' (२३) से ज्ञात होता है कि ये बाल्यकाल में मन्दबुद्धि थे और कठिन परिश्रम करके विद्वत्ता प्राप्त की थी।

नलचम्पू की कथा अपूर्ण है और उसमें केवल सात उच्छ्वास हैं। इस विषय में विद्वानों में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि त्रिविक्रम के पिता नेमादित्य अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् थे। वे एक राजा के सभापण्डित थे। वे कार्यवश प्रवास में गए थे। इसी समय एक विरोधी पण्डित ने आकर राजा से कहा कि मैं आपके सभापण्डित से शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ। नेमादित्य को बुलाने राजसेवक गए, पर वे घर पर नहीं थे। त्रिविक्रम मन्दबुद्धि थे, अतः उन्हें अपने ऊपर क्षोभ हुआ। उन्होंने सरस्वती से प्रार्थना की कि वह उसके पिता की लज्जा रखने के लिए शक्ति दे कि वह अपने विरोधी पण्डित को हरा सके। सरस्वती ने प्रसन्न होकर उसके पिता के आने तक के लिए उसे अमोघ पाण्डित्य दे दिया। उसने अपने विरोधी पण्डित को हरा दिया। त्रिविक्रम ने बाद में सोचा कि सरस्वती के वरदान का लाभ उठाया जाए, अतः उसने नलचम्पू लिखना प्रारम्भ कर दिया। पिता के आने तक उसने इसके ७ उच्छ्वास लिखे थे। पिता के आते ही सरस्वती का वरदान समाप्त हो गया और वह पुनः ज्ञानहीन हो गया। यह कथा पूर्णतया कपोल-कल्पित ज्ञात होती है। 'जानाति हि पुनः सम्यक् कविरैव कवेः श्रमम्' से स्पष्ट है कि कवि ने अपने परिश्रम से यह ग्रन्थ बनाया है, न कि सरस्वती के वरदान से। ग्रन्थ की अपूर्णता का कारण बाण आदि की कृतियों के तुल्य कोई विघ्न-विशेष समझना चाहिए।

त्रिविक्रम भट्ट की दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं :—नलचम्पू और मदालसा-चम्पू। नलचम्पू के कारण ही त्रिविक्रम भट्ट का नाम गद्यकारों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें श्लेष की अपूर्व छटा दृष्टिगोचर होती है। मदालसाचम्पू को प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

१. तेषां वंशे विशदयशसां श्रीधरस्यात्मजोऽभूद्

देवादित्यः (नेमादित्यः) स्वमतिविकसद्भेदविद्याविवेकः ॥ नल० १-१६

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम्।

तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ नल० १-२०

समय—त्रिविक्रम भट्ट ने बाण का उल्लेख किया है।^१ अतः इनका समय ६०० ई० से पूर्व नहीं हो सकता। राजा भोज ने सरस्वतीकंठामरण में नलचम्पू का एक श्लोक उद्धृत किया है,^२ अतः ये भोजराज (११ वीं शती ई०) से बाद के नहीं हैं। ये राष्ट्रकूटवंशी इन्द्रराज तृतीय के आश्रित कवि थे। राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी मान्यखेट (बरार) थी। उनका ६१५ ई० का एक अमिलेख प्राप्त होता है, इसमें इन्द्रराज और त्रिविक्रम का उल्लेख है।^३ यह अमिलेख नवसारी से प्राप्त हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम नेमादित्य था और ये इन्द्रराज के अधीनस्थ कवि थे। अतः इनका समय ६१५ ई० के लगभग सिद्ध होता है।

नलचम्पू की कथा—नलचम्पू ७ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें नल और दमयन्ती की प्रसिद्ध प्रणय-कथा वर्णित है। ग्रन्थ अघूरा है, अतः इसमें देवों का संवाद लेकर नल का दमयन्ती के प्रासाद में पहुँचने तथा दोनों का साक्षात्कार एवं परस्पर आसक्त होने तक की कथा वर्णित है।

त्रिविक्रम भट्ट की शैली

त्रिविक्रम भट्ट अपनी श्लेष-प्रधान रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना में प्रसाद और माधुर्य गुण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कवि ने मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में कवियों का आदर्श बताया है कि उनकी कविता में अमृत का रसास्वाद रहना चाहिए।^४ उसमें रसों का चमत्कार होना चाहिए, जिससे विद्वानों के हृदय को आनन्द प्राप्त हो और उसमें शृंगारादि रसों की प्रौढ़ता हो। कविता में प्रसाद गुण हो, कान्ति नामक गुण हो और श्लेष अलंकार की मधुर छटा हो। साथ ही कविता का इतना सुन्दर प्रभाव हो कि सुनने वाला आनन्द से विमोर

१. शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा । नल० १-१४

२. पर्वतमेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतंगहनम् ।

हरिमिव हरिमिव हरिमिव वहति पयः पश्यत पयोष्णी ॥ नल० ६-२६

३. श्रीत्रिविक्रमभट्टेन नेमादित्यस्य सुनुना ।

कृता शस्ता प्रशस्तेयम् इन्द्रराजाङ्घ्रिसेविना ॥ (Epigraphica Indica.)

(एपिग्राफिका इंडिका) भाग ६ पृष्ठ ३२

४. तदनु च विजयन्ते कीर्तिभाजां कवीनाम्

असकृदमृतबिन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥ नल० १

हो जाए ।^१ कवि यह स्पष्ट रूप से मानता है कि समंग श्लेष के प्रयोग के कारण अवश्य कुछ कठिनाई आ जाती है, परन्तु योग्य कवि किसी एक रस को अपनाकर नहीं चलता है ।^२ कविता में कहीं सरलता और कहीं कठिनता दोनों ही गुण होने चाहिए । इन लक्षणों को ध्यान में रखकर यदि त्रिविक्रम भट्ट की आलोचना की जाती है, तो वे अपनी प्रतिज्ञा पर खरे उतरते हैं । उनकी कविता में कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य; कहीं सरलता है तो कहीं कठिनता; कहीं सरस पदावली है तो कहीं कठिन; कहीं अनुप्रास आदि की छटा है तो कहीं श्लेष का प्रखर पाण्डित्य । इस प्रकार उनकी कविता में विविध विरोधी गुणों का समन्वय देखने को मिलता है ।

नलचम्पू की विशेषता है कि उसके श्लेष वाले स्थल भी अधिकांश में सुबोध हैं । कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है । कहीं-कहीं बाण की-सी मधुर पदावली के दर्शन होते हैं । श्लेष के साथ ही अनुप्रास, यमक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि अलंकारों की भी मनोरम कान्ति देखने को मिलती है । कवि ने वाल्मीकि की वन्दना करते हुए विरोधाभास और श्लेष का जो आश्रय लिया है, वह विद्वद्वन्द के द्वारा अत्यन्त प्रशंसनीय माना गया है ।

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ॥

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥ (नल० १-११)

रामायण की कथा में खर और दूषण राक्षस हैं, फिर भी कथा कोमल और निर्दोष है । वस्तुतः कथा में कोई तीक्ष्णता और दोष नहीं हैं । इसी प्रकार सुन्दर काव्य की उपमा आम के फल में दी गई है, जो कच्चा होने पर कठोर और पकने पर कोमल हो जाता है, इसी प्रकार काव्य में भी रसों के अनुकूल कहीं कठोरता और कहीं कोमलता होती है ।

काव्यस्याप्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च ।

बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ (नल० १-१७)

१. अगाधान्तःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम् ।

वन्दे रसान्तरप्रौढं स्रोतः सारस्वतं बहत् ॥ नल० ३

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।

भवन्ति कस्यचित् पुण्यमुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ नल० ४

२. वाचः काठिन्यमायान्ति मंगश्लेषविशेषतः

नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥ नल० १-१६

कवि ने कुकवियों की तुलना छोटे बालकों से की है, जो जनता को अरुचिकर होते हैं और प्रौढ पदविन्यास में अदक्ष होते हैं। ऐसे कवि बहुत सी निःसार बातें कहते हैं। बच्चे केवल अपनी माता को रुचिकर होते हैं और अपना लार पीते रहते हैं। श्लेष का आश्रय लेकर दोनों अर्थों की अभिव्यक्ति की गई है।

अप्रगल्भा पदन्यासे जननीरागहेतवः।

सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ (नल० १-६)

कवि का आर्यावर्त-वर्णन वस्तुतः प्रशंसनीय है। इसमें सरल और सरस पदावली के साथ ही परिसंख्या और श्लेष अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। इसमें भाषा-सौष्ठव और माधुर्य गुण का समन्वय देखें :—

सारः सकलसंसार-चक्रस्य, शरण्यः पुण्यकारिणाम्, धाम धर्मस्य, आस्पदं सम्पदाम्, आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहार-रत्नानाम्, आर्यावर्तो देशः।

(उच्छ्वास १)

परिसंख्या का प्रयोग भी उत्तम बन पड़ा है। विभिन्न दुर्गुण अन्य स्थानों पर थे, पर प्रजा में नहीं थे।

स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, ग्रहसंक्रान्तिः ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, दृश्यते न प्रजासु।

(उच्छ्वास १)

धान से युक्त खेतों की उपमा कादम्बरी के गद्य से दी है और तत्पुरुष आदि समासों का साथ ही एकत्र उल्लेख भी किया है। इससे कवि के शब्दमण्डार और पाण्डित्य का समुचित ज्ञान होता है।

यत्र च मनोहारि-सारसद्वन्धाः तत्पुरुषेण द्विगुणा चाधिष्ठिताः कादम्बरी-गद्य-बन्धा इव दृश्यमान-बहुव्रीहयः केवाराः।

(उच्छ्वास १)

आर्यावर्त स्वर्ग से भी बढ़कर है। स्वर्ग में एक गौरी (पार्वती) हैं, यहाँ घर-घर में गौरी (गौरवर्ण) स्त्रियाँ हैं। स्वर्ग में एक महेश्वर (शिव) हैं, यहाँ अनेक महेश्वर (महाराज) हैं। स्वर्ग में चार लोकपाल हैं और एक ही धन के दाता कुबेर हैं, परन्तु यहाँ पर अनेक लोकपाल हैं और अनेक दानी हैं। वहाँ का राजा मुराघिप (शराबी, देवों का स्वामी) है, यहाँ का राजा शराबी नहीं है। स्वर्ग में विनायक (नेता का अभाव, गणेश) हैं, यहाँ नेता का अभाव नहीं है।

कथं चासौ स्वर्गास्र विशिष्यते । यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः,
सथीका हरयः, पदे पदे धनदाः सन्ति लोकपालाः । केवलं न सुराधिपो राजा ।
न च विनायकः कश्चित् ॥ (उच्छवास १)

फाल्गुन मास में वृक्षों की शाखाएँ पत्तों से रहित होती हैं, परन्तु भारतवर्ष
में किसी को कोई विपत्ति नहीं होती ।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः ।

जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः ॥ (नल० १-२७)

इसमें विपल्लवाः (पत्ते से रहित, विपत्ति-रहित) में श्लेष का सुन्दर
प्रयोग है । राजा नल के महामन्त्री श्रुतशील के वर्णन में विरोधाभास का अत्यन्त
प्रभावोत्पादक प्रयोग है :—

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मवित्तापहारी, स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः ।

सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः, को वा तादृग् दृश्यते भूयते वा ॥ (नल० १-३६)

इसमें ब्रह्मवित्तापहारी (१. ब्राह्मणों का धन हरने वाला, २. ब्रह्मवेत्ता
और संताप को हरने वाला), विप्रयुक्तः (१. वियुक्त, २. ब्राह्मणों से युक्त),
सद्वेषः (१. द्वेष से युक्त, २. सुन्दर वेष वाला) पदों का पहला अर्थ लेने
पर विरोधाभास है और दूसरा अर्थ लेने पर परिहार है । वह मन्त्री ब्राह्मणों
का हितकारी था, ब्रह्मवेत्ता था, संतापहारी था, स्त्री से युक्त था, प्रायः
ब्राह्मणों से युक्त रहता था, सुन्दर वेष वाला था और द्वेष से रहित था । उसके
समान अन्य कोई नहीं था ।

यमक अलंकार की सुन्दर छटा भी कुछ कम नहीं है । जैसे—

धुतकदम्ब-कदम्बक-निष्पतन्-नव-पराग-परागम-मन्थराः ।

हृत-तुषार-तुषा रतिराणिनां प्रियतमा मरुतो मरुतो ववुः ॥ (नल० १-४३)

कवि का भाव-सौन्दर्य भी अनेक स्थानों पर दर्शनीय है । कवि को अनूठी
कल्पना के कारण यमुना-त्रिविक्रम उपाधि से विभूषित किया गया है । कवि ने
प्रातःकाल का वर्णन करते हुए रात्रि के काले अंधकार और प्रातःकाल के
प्रकाश की सुन्दर कल्पना यमुना और गंगा के जल से की है तथा उदयगिरि को
संगमस्थल बताया है । कवि का प्रसिद्ध पद्य है :—

उदयगिरि-गतायां प्राक्प्रभा-पाण्डुतायाम्
अनुसरति निशीथे भृंगमस्ताचलस्य ।

जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये

सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥ (नल० ६-१)

नल ने दमयन्ती से अनुरोध किया कि वह देवताओं में से किसी एक को वरण कर ले। इस पर दमयन्ती का उत्तर है कि वह केवल नल से ही विवाह करेगी। प्रत्येक की अपनी रूचि भिन्न होती है। किसी को कोई प्रिय होता है, अन्य को नहीं। यही कारण है कि असन्त के मनोरम मौसम में भी मालती नहीं खिलती। यहाँ पर कोमल भावों को मधुर शब्दों में रखा गया है।

भवति हृदयहारी क्वापि कस्यापि कश्चित्

न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्ध-प्रयोगे ।

किसलयति वनान्ते कोकिलालापस्ये

विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ॥ (नल० ७-४७)

चतुर्थ उच्छ्वास में राजा नल को राजमन्त्री सालंकायन ने जो उपदेश दिया है, वह अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है और कादम्बरी के शुकनासोपदेश का स्मरण कराता है।

कुमार, राजहंसोऽपि ग्रहं सरूपः इति मा स्म मोहवान् भूः । तत्तात, सुविष-
मेघवर्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितः तारुण्ये मा स्म विस्मरः स्मयेन विनयम् ।
आवर्जय गुणान्, अम्यस्य कलाः, त्यज जाड्यम्, भज माधुर्यम् । मा गाः स्त्रियाः
श्रियो वा विश्वासम् । अधिकमलवसतिरनार्य-संगता स्त्रीश्च श्रीश्च कं न
प्रतारयति । (उ० ४)

कवि ने अनेक स्थानों पर प्रकृति का चित्रण किया है। इन वर्णनों में कादम्बरी के तुल्य विस्तृत वर्णन हैं और अलंकारों का प्रयोग है। विन्ध्य वन के वर्णन में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग मनोहर है :—

सममसमं च, निम्नगात्रमनिम्नगात्रं च, प्रावविषमम् अप्रावविषमं च, सशवा-
पदम् अशवापदं च, सपादपम् अपादपं च, विन्ध्यस्कन्धम् उल्लंघ्य० । (उ० ६)

विन्ध्याचल के पेड़ों के वर्णन में कवि ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। ये वृक्ष अपनी मनोहरता के कारण कामदेव के निवास-स्थान हैं, शबरियों

के लिए संकेत-गृह हैं। भ्रमरियों के गान को सुनकर पथिक रुक जाते हैं। वे वृक्ष प्रिय बन्धुओं के तुल्य हैं और दूर होने पर सभी के हृदयों को खिन्न करते हैं।

आवासाः कुसुमायुधस्य शबरीसंकेत-लीलागृहाः

पुष्पामोद-मिलन्मधुव्रत-वधू-संकार-रुद्धाध्वगाः ।

सुस्निग्धाः प्रियबान्धवा इव दूशो दूरीभवन्तश्चिरात्

कस्यैते न वहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य द्रुमाः ॥ (नल० ६-६१)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि त्रिविक्रम भट्ट शास्त्रीय पाण्डित्य के आगार, अलंकार-प्रयोग में विदग्ध और वैदुष्य की कसौटी हैं। इनके काव्य में शृंगार का सुन्दर परिपाक, वर्णनों की मधुरता, कल्पना की मनोज्ञता और श्लेष की अनुपम छटा समन्वित हैं। अतएव विद्वत्समुदाय में त्रिविक्रम भट्ट विशेष आदर के पात्र हुए हैं।

त्रिविक्रम भट्ट की न्यूनताएँ

त्रिविक्रम भट्ट की विशेषताओं के साथ ही उनमें कतिपय न्यूनताएँ भी हैं, जिनकी ओर आलोचकों ने ध्यान आकृष्ट किया है। संक्षेप में ये न्यूनताएँ निम्न-लिखित हैं :—

१. नल-दमयन्ती की कथा का बहुत थोड़ा सा अंश इसमें आने पाया है। कवि ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए विविध वर्णनों का आश्रय लिया है, जिससे कथा-प्रवाह सर्वथा अवरुद्ध हो गया है।

२. सुवन्धु के तुल्य ये भी शाब्दी क्रीडा और अलंकार-प्रयोग में मग्न हो गए हैं, अतः रस-परिपाक पर पूरा ध्यान न देने के दोषी हैं।

३. कलात्मकता के कारण इनका भावपक्ष अत्यन्त निर्बल हो गया है। उसमें स्वाभाविकता और गतिशीलता नहीं है।

४. कुछ स्थलों पर श्लेष, परिसंख्या आदि के प्रयोग अत्यन्त श्रमसाध्य हैं, अतः इसकी नैसर्गिक सुषमा में अत्यन्त व्याघात उत्पन्न हो गया है।

५. कथा अपूर्ण है और ऐसे स्थल पर समाप्त की गई है, जहाँ पर पाठक की उत्सुकता बनी रहने के कारण रसास्वाद भंग हो जाता है।

कवि के गुणों को देखते हुए ये दोष क्षम्य हैं।

११. (ख) विविध चम्पू-ग्रन्थ

चम्पू-काव्यों की एक बृहत् परंपरा है। इसमें से विशेष उल्लेखनीय चम्पू ये हैं :—

हरिश्चन्द्र-कृत जीवन्धरचम्पू—

एक जैन कवि हरिश्चन्द्र ने जैन मुनि जीवन्धर के जीवन को लेकर इस चम्पू की रचना की है। इसका समय ६०० ई० के बाद का है, क्योंकि यह ग्रन्थ ५५० ई० में लिखे गए उत्तरपुराण पर आश्रित है। इसमें माघ और वाक्पति का सफल अनुकरण है।

जैन सोमदेवसूरि-कृत यशस्तिलक-चम्पू—

जैन कवि सोमदेवसूरि ने ६५६ ई० में यशस्तिलक-चम्पू की रचना की थी। ये नेमिदेव के शिष्य थे। ये राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण के समकालीन और उनके सामन्त चालुक्य राजा अरिकेसरी तृतीय के आश्रित कवि थे। इसमें ८ आश्वास हैं। अन्तिम तीन आश्वास सामान्य जनो के लिए उपदेशात्मक हैं और उनका स्थान एक धार्मिक ग्रन्थ के तुल्य है। यह कादम्बरी के आदर्श पर लिखा गया है। इसमें भी कई जन्मों की कथाएँ हैं। अतएव डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन उपयुक्त है कि—‘इस ग्रन्थ की कथा कुछ उलझी हुई है। बाण की कादम्बरी की भाँति इसके पात्र भी कई जन्मों में हमारे सामने आते हैं। बीच-बीच में वर्णन बहुत लम्बे हैं, जिसमें कथा का सूत्र खो जाता है’।

यह ग्रन्थ जैन धर्म के प्रचारार्थ लिखा गया है। इसमें काव्य के दो रूप सामने आते हैं—काव्यात्मक और सुभाषित-प्रधान। इसमें राजा मारिदत्त एक यज्ञ में नूबलि देना चाहता है। एक सुदत्त मुनि ने ऐसे यज्ञ की निरर्थकता बताई और वह राजा जैन हो गया। इसके उपदेश महत्त्वपूर्ण हैं। एक उपदेश में बताया गया है कि मनुष्य तृष्णा में पड़ा हुआ सदा दुःख भोगता है और शीघ्र ही मृत्यु को करने वाले यम के डंडे को मूल जाता है।

त्वं मन्दिर-द्रविण-दार-तनूव्वहाद्य-

स्तृष्णातमोभिरनुबन्धिभिरस्तबुद्धिः ।

क्लिदनास्यहनिशमिमं न तु चित्त वेत्ति

वण्णं यमस्य निपतन्तमकाण्ड एव ॥

भोजराज-कृत रामायण-चम्पू—रामायण-चम्पू के लेखक राजा भोज (१००५ से १०५४ ई०) माने जाते हैं। ग्रन्थ के अन्त में लेखक को विदर्भराज कहा गया है, अतः लेखक के विषय में भी विवाद है। भोज ने वाल्मीकि-रामायण का आश्रय लेकर राम-कथा किष्किन्धा-काण्ड तक लिखी है और लक्ष्मण ने युद्ध-काण्ड तथा वैकटराज ने उत्तरकाण्ड लिख कर इसकी पूर्ति की है। यह वैदर्भी रीति में लिखा गया है। यह सर्वोत्तम चम्पू-ग्रन्थों में से एक है। इसका अधिकांश गद्य भाग सरल और लघु पदावली में लिखा गया है।

अभिनव कालिदास (११ वीं शताब्दी ई०) ने **भागवत-चम्पू** लिखा है। इसमें ६ अध्यायों में भागवत की कथा वर्णित है। इसके लेखक के विषय में भी विवाद है। **सोड्डल** (११ वीं शताब्दी ई०) ने **उदयसुन्दरीकथा** की रचना की है। यह गद्य-पद्यात्मक होने से चम्पू में समाविष्ट की जाती है। सोड्डल गुजरात के कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे। कवि ने प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय दिया है। इसमें ८ उच्छ्वासों में नागराज-कुमारी उदयसुन्दरी और प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन है। सोड्डल का आदर्श बाण का हर्ष-चरित है। बाण के अनुकरण पर इन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के परिचयात्मक २५ श्लोक दिए हैं। बाण के विषय में उनका प्रसिद्ध पद्य है :—

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य,
शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति ॥

बाण के हर्षचरित में तीक्ष्ण शक्ति को देखकर कौन कवितारूपी अस्त्र के अभिमान को नहीं छोड़ देते। सोड्डल ने बाण के अनुकरण पर समास-प्रधान शैली को शपनाया है। उनके चम्पू में प्रसाद, माधुर्य और सुन्दर कल्पनाओं का भी समन्वय दिखाई देता है।

कमलिनी भुवनान्तरिते रवी, व्यपगतालिकलापशिरोरुहा ।
परिदधे विधवेव सुधाकर-द्युतिवितानमिषेण सितांशुकम् ॥

रात्रि के समय कमलिनी रवि-रूपी पति के वियोग में विजवा के तुल्य अपने भ्रमररूपी बालों को हटा देती है और चाँदनी-रूपी सफेद वस्त्र धारण कर लेती है।

अनन्त भट्ट-कृत भारत-चम्पू

अनन्त भट्ट के दो चम्पू-ग्रन्थ माने जाते हैं—भारतचम्पू और भागवतचम्पू । इनमें से भारत-चम्पू ही उपलब्ध है । यह १२ स्तम्बकों में है । यह एक विशाल-काय चम्पू ग्रन्थ है । इसमें महाभारत की कथा संक्षेप में प्रस्तुत की गई है । इसमें गद्य के साथ ही लगभग एक हजार श्लोक हैं । यह ग्रन्थ वैदर्भी शैली में लिखा गया है । इसकी भाषा सरल, सरस और मनोज्ञ है । यह वीर रस का ग्रन्थ है । यह अपने सुन्दर पद्यों के लिए प्रसिद्ध है । नारायण भट्ट (१६०२ ई०) ने अनन्त भट्ट का उल्लेख किया है, अतः इनका समय १५०० ई० के लगभग माना जाता है । इनकी कल्पनाएँ मनोरम हैं । कर्ण की मृत्यु के पश्चात् सूर्यास्त हो रहा है । कवि ने कल्पना की है कि सूर्य का पुत्र कर्ण युद्ध में मारा गया है, अतः उसका पिता अपने पुत्र के दुःख में क्षीणकान्ति होकर पश्चिम समुद्र के जल में स्नान करने के लिए गोता लगाने लगा ।

ततः स्वकीयस्य तनूद्भवस्य वधाज्जले स्नातुमना इव द्राक् ।

मन्दायमानद्युतिमालभारी मरीचिमाली निममज्ज सिन्धौ ॥

रानी तिरुमलाम्बा-कृत वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू

रानी तिरुमलाम्बा राजा अच्युतराय की पत्नी थीं । इनका राज्याभिषेक १५२६ ई० में हुआ था । इसमें लेखिका ने राजा अच्युतराय और रानी वरदाम्बिका की प्रणय और परिणय की कथा अत्यन्त मनोहर शैली में वर्णन की है । लेखिका ने वस्तुतः अपने ही परिणय का वरदाम्बिका के नाम से सचित्र वर्णन किया है । लेखिका का समय १५२६ से १५४० ई० माना जाता है, क्योंकि इस समय ही उसके पति का राज्याभिषेक हुआ था ।

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि डा० लक्ष्मणसरूप, ओरियन्टल कालेज, लाहौर के प्रधानाचार्य, को १६२४ ई० में तंजोर लाइब्रेरी से प्राप्त हुई थी । डा० लक्ष्मण-सरूप और डा० हरिदत्तशास्त्री ने इसका संपादन करके १६३२ ई० में इसे प्रकाशित किया था । यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रौढ शैली में लिखा गया है । भाषा परिमार्जित, सरस, सालंकार और पाण्डित्य-पूर्ण है । लेखिका विविध कलाओं की कितनी मर्मज्ञ है, यह इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है । क्लिष्ट पदावली और लम्बे समासों के होने पर भी ग्रन्थ में अपूर्व आकर्षण है । इसमें पुरुष के सौन्दर्य

का मार्मिक वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ संस्कृत-वाङ्मय के उत्थान में स्त्रियों का कितना योगदान है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

अन्य चम्पू-ग्रन्थ

१३वीं शताब्दी ई०

१३ वीं शताब्दी ई० के विशिष्ट चम्पूकार हैं :—दिगम्बर जैन पं० आशाधर सूरि (१२४३ ई० के लगभग) ने भरतेश्वराम्युदय-चम्पू लिखा है। इसमें जैन तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र सम्राट् भरत का जीवन-चरित है। अर्हवास (१३ वीं शती उत्तरार्ध) ने जैन तीर्थंकर पुरुदेव के संबन्ध में पुरुदेव-चम्पू लिखा है। इनका दूसरा नाम अर्हत् भी है। इसकी भाषा ललित, सरल और अलंकृत है। दिवाकर ने १२६६ ई० में वाल्मीकि रामायण के आधार पर अमोघराघव-चम्पू लिखा है।

१४वीं शताब्दी ई०

अहोबल सूरि (१४वीं उत्तरार्ध) ने दो चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं—यतिराज-विजय-चम्पू और विरूपाक्ष-वसन्तोत्सव-चम्पू। प्रथम में १६ उल्लासों में रामानुजाचार्य का जीवन-चरित है और द्वितीय में वसन्तोत्सव के वर्णन के साथ ही एक कृष्ण ब्राह्मण की कथा है और कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी है। अमलाचार्य या अम्मल (१४ वीं उत्तरार्ध) ने रुक्मिणीपरिणय-चम्पू ग्रन्थ लिखा है। यह भागवत और हरिवंश पुराण में वर्णित रुक्मिणी-विवाह के आधार पर लिखा गया है।

१५वीं शती ई०

कवि तार्किक सिंह (१५वीं उत्तरार्ध) ने रामानुजी सन्त वेदान्तदेशिक के जीवन पर वेदान्ताचार्य विजय-चम्पू या आचार्य विजय-चम्पू लिखा है।

१६वीं शती ई०

कवि कर्णपूर (१५२४ ई०) ने आनन्द-वृन्दावन-चम्पू ग्रन्थ लिखा है। इनका मूल नाम परमानन्ददास है। इन्हें महाप्रभु चैतन्यदेव ने कर्णपूर उपाधि दी थी। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण-जन्म से लेकर यौवनावस्था तक की ललित क्रीडाओं का वर्णन है। इसमें कल्पना और वर्णनों की चतुरता देखी जा सकती है। इसमें २२ स्तबक हैं। २० वें स्तबक में नृत्य, विविध स्वरो,

रागों और तानों आदि का वर्णन है। बल्लीसहाय कवि ने 'आचार्य दिग्विजय-चम्पू' (१५३६ ई० के लगभग) की रचना की है। इसमें शंकराचार्य के दिग्विजय का वर्णन है। यह सरल और प्रसाद-गुणयुक्त शैली में लिखा गया है। इन्होंने काकुत्स्थ-विजय-चम्पू नामक दूसरा चम्पू-ग्रन्थ भी लिखा है। चिदम्बर (१६०० ई० के लगभग) दो चम्पू ग्रन्थ लिखे हैं—भागवत-चम्पू और पंचकल्याण-चम्पू। ये राघव-पाण्डव-यादवीय काव्य के लेखक हैं। भागवतचम्पू में तीन स्तवकों में भागवत की कथा वर्णित है। पंचकल्याणचम्पू में श्लेष का आधार लेकर राम, कृष्ण, विष्णु, शिव और सुब्रह्मण्य के विवाह की कथा एक साथ वर्णित है। प्रत्येक श्लोक के पाँच अर्थ हैं और प्रत्येक व्यक्ति से एक-एक अर्थ का संबन्ध होता है। शेषकृष्ण (१६ वीं ई० उत्तरार्ध) ने पाँच अध्यायों में पारिजातहरण-चम्पू ग्रन्थ लिखा है। इसमें सपत्नी-द्वेष का विस्तृत वर्णन है। कृष्ण ने नारद के द्वारा दिया गया पारिजात पुष्प अपनी प्रिया रुक्मिणी को दिया। इस पर उनकी दूसरी प्रिया सत्यभामा रूठ जाती है। उसको मनाने के लिए वे स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाते हैं। इसमें शृंगार रस मुख्य है।

द्वैज सूर्य (१५४१ ई० के लगभग) ने नृसिंह-चम्पू की रचना की है। इसमें नरसिंहावतार की कथा वर्णित है। इसमें ५ उच्छ्वासों में प्रायः सभी रसों का वर्णन है। वीर रस मुख्य है। कृष्ण कवि (१६ वीं ई० उत्तरार्ध) ने मन्दार-मरन्द-चम्पू लिखा है। यह एक लक्षण-ग्रन्थ है। इसमें गन्धर्व-दम्पती की कथा का आश्रय लेकर नायक, गुण, दोष, अलंकार, छन्दों आदि के लक्षण दिए गए हैं। चिरंजीव भट्टाचार्य शतावधान (१६ वीं शती ई०) ने दो चम्पू-ग्रन्थ लिखे हैं—विद्वन्मोद-तरंगिणी-चम्पू और माधव-चम्पू। प्रथम में ८ तरंग हैं। इसमें शैव, वैष्णव आदि मतों का वर्णन करते हुए अन्त में समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाने का विधान है। माधव-चम्पू में माधव और कलावती की प्रणय-कथा वर्णित है। इसमें शृंगार रस मुख्य है। पद्मनाभ मिश्र ने १५७७ ई० में वीरभद्रदेव-चम्पू लिखा है। इसमें तत्कालीन रीवाँ राज्य का वर्णन है।

कवि नारायण भट्ट (१५६०-१६६६ ई०) ने १५ चम्पू काव्य लिखे हैं। इनमें से दो चम्पू मुख्य हैं—स्वाहा-मुधाकर-चम्पू और मत्स्यावतार-प्रबन्ध। प्रथम में अग्नि की पत्नी स्वाहा और चन्द्रमा के प्रणय का वर्णन है। यह छोटे-छोटे ग्रामगीतों की पद्धति पर लिखा गया है। द्वितीय में शतपथ ब्राह्मण आदि में प्राप्त मत्स्यावतार की कथा वर्णित है। इनके अन्य कुछ चम्पू-ग्रन्थों के नाम

है—पांचाली-स्वयंवर, नृगमोक्ष, राजसूय-प्रबन्ध, आदि। ये सभी चम्पू पौराणिक कथाओं पर निर्भर हैं। ये आशु-कविता के रूप में लिखे गए हैं।

१७वीं शती ई०

नीतिग्रन्थ वीरमित्रोदय के लेखक मित्रमिश्र (१६०५-१६२७ ई०) ने श्रीकृष्ण के बाल-जीवन के आधार पर आनन्दकन्द-चम्पू लिखा है। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथा वर्णित है। इसमें अोज गुण की प्रधानता है और गौडी रीति है। नीलकण्ठ दीक्षित ने १६३७ ई० में ५ आश्वासों में नीलकण्ठ-विजय-चम्पू लिखा है। इसमें समुद्र-मन्थन की कथा और शिव के द्वारा विषपान का वर्णन है। इसमें तत्कालीन विलासी जीवन पर कठोर व्यंग्य किया गया है। कवि का वक्रोक्ति अलंकार पर पूर्ण अधिकार है और वह अपने भावों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ प्रकाशित कर सकता है। चक्रकवि (१६५० ई० के लगभग) ने द्रौपदी-परिणय-चम्पू लिखा है। इसमें महाभारत के आदि-पर्व की कथा है। इसमें पाण्डवों के एकचक्रपुरी में निवास से लेकर इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के राज्य करने तक की कथा वर्णित है।

बेकटाध्वरी (१६५० ई०) ने चार चम्पू-ग्रन्थ लिखे हैं—विश्वगुणादर्श-चम्पू, वरदाभ्युदय-चम्पू, उत्तरचम्पू और श्रीनिवास-चम्पू। इनके पिता-माता रघुनाथ और सीताम्बरा हैं। ये कांची के निवासी थे। विश्वगुणादर्श-चम्पू में विश्वावसु और कृशानु नाम के दो गन्धर्व विमान से विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हैं। विश्वावसु प्रत्येक वस्तु के गुणों का वर्णन करता है और कृशानु दोषों का। इस प्रकार यह ग्रन्थ संवाद के रूप में लिखा गया है। इसमें भारत का भौगोलिक वर्णन और तीर्थों के गुण-दोषों का विशद चित्रण है। इसमें तत्कालीन प्रचलित रीतियों और प्रथाओं की त्रुटियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। कवि ने पुरोहित, ज्योतिषी, संगीतज्ञ, वैद्य और विभिन्न व्यवसायों में प्रचलित बुराईयों का विशद वर्णन किया है। कवि ने अनुप्रास का मनोहर प्रयोग किया है। वरदाभ्युदय-चम्पू में कांची के देवता (कांजीवरम् मन्दिर) का महत्त्व वर्णित है। उत्तरचम्पू में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। श्रीनिवासचम्पू में १० अध्यायों में तिरुपति के समीपस्थ तिरुमलाइ में विद्यमान देवता की प्रशस्ति है। इन चारों ग्रन्थों में से विश्वगुणादर्श-चम्पू का तमिल प्रान्त में बहुत अधिक प्रचार है।

राजबूडामणि दीक्षित (१७ वीं ई० पूर्वार्ध) ने भारतचम्पू ग्रन्थ लिखा है। केशव भट्ट ने १६८४ ई० में ६ स्तवकों में नृसिंह-चम्पू (प्रह्लाद-चम्पू) लिखा है। इसमें प्रह्लाद और नृसिंहावतार की कथा वर्णित है। धर्मराज (१७ वीं ई० उत्तरार्ध) ने बँकटेश-चम्पू की रचना की है। इसमें तिरुपति के अधिष्ठातृ-देवता का महत्त्व वर्णित है। नल्ला दीक्षित (१६८४-१७१० ई०) ने धर्मविजय-चम्पू लिखा है। इसमें उन्होंने अपने आश्रयदाता तंजोर के शासक मराठा शाहजी का जीवन-चरित लिखा है।

१८वीं शताब्दी ई०

कवि शंकर (१७७०-१७८१ ई०) ने शंकरचेतोविलास-चम्पू की रचना की है। इन्होंने वारेन हेस्टिंग्स (१७७२-१७८५ ई०) के समकालीन काशी-नरेश चेतसिंह की प्रशंसा में यह ग्रन्थ लिखा है। यह अपूर्ण प्राप्त है। इनका दूसरा चम्पू काव्य गङ्गावतरण सात उच्छ्वासों में है। विश्वनाथ सिंह, रीवा-नरेश, ने (१७२१-१७४० ई०) ने रामचन्द्र-चम्पू लिखा है। इसमें ८ परिच्छेद हैं। वारेन हेस्टिंग्स के ही समकालीन बाणेश्वर विद्यालंकार भट्टाचार्य (१७७४ ई० के लगभग) ने चित्रचम्पू की रचना की है। इन्होंने बर्दवान के महाराज चित्रसेन के आदेशानुसार यह ग्रन्थ लिखा था। इसमें वैष्णव भावों की प्रधानता है। इन्होंने वारेन हेस्टिंग्स के आदेशानुसार विवादाणवसेतु ग्रन्थ लिखा था, जिसके आधार पर तत्कालीन अंग्रेज शासक अपने मुकदमों का निर्णय करते थे। श्रीनिवास कवि (१७५२ ई०) ने आनन्दचम्पू की रचना की है। यह तमिलदेश के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ आनन्दरंग-पिल्ले की प्रशंसा में लिखा गया है। इसमें मद्रास का मूलनाम चन्नकेशवपुरा दिया है। कृष्णानन्द कवीन्द्र ने १७८३ ई० में सुवर्शन-चम्पू-काव्यम् की रचना की है। इसमें राजा सुदर्शन की कथा वर्णित है। सदाशिव शास्त्री मुसलगांवकर ने १८२६ ई० में सिन्धे-विजय-विलास-चम्पू की रचना की है। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें सिन्धिया-नरेश की प्रशंसा वर्णित है। प्रकाशित और अप्रकाशित चम्पू-ग्रन्थों की संख्या २५० से अधिक है।

त्रिविक्रमो हरिश्चन्द्रः, सोमदेवश्च भोजराट् ।

रानी तिरुमलाम्बा च, चम्पूकाव्यविशारदाः ॥ (कपिलस्थ)

१२. संस्कृत-पत्र-पत्रिकाएँ

संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार में संस्कृत के पत्र और पत्रिकाओं का प्रमुख योगदान रहा है। इनमें बहुत से अर्थान्नाय के कारण असमय में ही बन्द हो गए। तथापि संस्कृत के पत्रों और पत्रिकाओं की परंपरा आज भी विद्यमान है। इनके पाठकों की संख्या भी पर्याप्त है। कतिपय प्रसिद्ध पत्रों और पत्रिकाओं का ही उल्लेख किया जा रहा है।

(क) अप्राप्य प्राचीन पत्र और पत्रिकाएँ

१. सुनृतवादिनी (मैसूर), २. संस्कृतचन्द्रिका (कोल्हापुर), ३. मित्र-गोष्ठी (काशी), ४. विद्योदय (लाहौर), ५. उद्योत (लाहौर), ६. शारदा (प्रयाग), ७. कालिन्दी (आगरा), ८. वैदिक-मनोहरा (कांजीवरम्), ९. सुरभारती (बम्बई), १०. आंध्र-संस्कृत-साहित्य-पत्रिका (आन्ध्र), ११. श्री (कश्मीर), १२. श्री-शारदा (मैसूर), १३. आर्यप्रभा (कलकत्ता), १४. भारती (पूना), १५. अमरवाणी (राजस्थान), १६. मधुरवाणी (गदग, कर्नाटक), १७. अमर-भारती (काशी), १८. वल्लरी (काशी), १९. उच्छ्रंखल (वाराणसी), २०. आर्य-विद्या-सुधाकर (काशी), २१. ज्योतिष्मती (काशी), २२. संस्कृत-प्रभा (मेरठ), २३. संस्कृत-मंजूषा (कलकत्ता), २४. प्रणय-पारिजात (कलकत्ता), २५. साधना (बड़ौदा), २६. मनोरमा (उत्कल), २७. कौमुदी (सिन्ध, हैदराबाद), २८. अमृतभारती (कोचीन), २९. साहित्य-सुधा (पटना), ३०. काव्य-कादम्बिनी (लश्कर), ३१. संस्कृत-साहित्य-परिषद् (कलकत्ता)।

(ख) वर्तमान पत्र-पत्रिकाएँ

(१) साप्ताहिक—भवितव्यम् (नागपुर), संस्कृतम् (अयोध्या), गण्डीवम् (वाराणसी), भाषा (गुन्तूर), पण्डित-पत्रिका (काशी)।

(२) पाक्षिक—भारतवाणी (पूना), शारदा (पूना), संस्कृत-साकेत (अयोध्या)।

(३) मासिक—संस्कृत-मंजूषा (कलकत्ता), उद्यान-पत्रिका (तिरुवैयक-तंजौर), सूर्योदय (काशी), आनन्दकल्पतरु (कोयम्बटूर), गुरुकुल-पत्रिका

(गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार), जयतु संस्कृतम् (काठमाण्डू), दिव्य-ज्योतिः (शिमला), बाल-संस्कृतम् (बम्बई), भारती (जयपुर), भारतीय-विद्या (बम्बई), मालव-मयूर (मन्दसौर), संस्कृत-रत्नाकर (दिल्ली), सरस्वती-सौरभम् (बड़ौदा), संस्कृत-संजीवनम् (पटना), साहित्य-वाटिका (दिल्ली), भारतोदयः (गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार), विज्ञान-ज्योतिः (खुर्जा) ।

(४) **त्रैमासिक**—संगमनी (प्रयाग), कामेश्वरसिंह-संस्कृत-विश्वविद्यालय-पत्रिका (दरभंगा), ब्रह्मविद्या (अड्यार), सरस्वती-सुषमा (संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी), सागरिका (सागर, वि० वि०, सागर), विश्व-संस्कृतम् (होशियारपुर), महाराज-संस्कृत-पत्रिका (मैसूर) ।

(५) **षाण्मासिक**—पुराणम् (वाराणसी), संस्कृत-प्रतिभा (नई दिल्ली), विद्वत्कला (गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर) ।

(६) **वार्षिक**—अमृतवाणी (बंगलौर) ।

परिशिष्ट (क)

प्रमुख सहायक-ग्रन्थ

१. अथर्ववेदकालीन संस्कृति—डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९७३
२. अभिज्ञान-शाकुन्तलम् सं०— " " " १९५८
३. अभिनव नाट्यशास्त्र (खंड १)—पं० सीताराम चतुर्वेदी, १९६४
४. अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन—डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९५१
५. अष्टाविंशत्युपनिषदः, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३०
६. आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन—
डा० जयशंकर त्रिपाठी, १९६८
७. आचार्य सायण और माधव—पं० बलदेव उपाध्याय
८. आर्यमित्र—वेदांक—सं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ
९. आर्यमित्र—वेदांग-प्रकाश—सं० सच्चिदानन्द शास्त्री, १९६८
१०. उत्तररामचरितम्—सं० डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९६८
११. ऋग्वेद-संहिता—सायण-भाष्य
१२. " " महर्षि दयानन्द-भाष्य
१३. " " विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद
१४. " " ग्रिफिथ " " "
१५. ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका—आचार्य सायण, सं० डा० हरिदत्त शास्त्री, १९७२
१६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—महर्षि दयानन्द सरस्वती, १९६६
१७. कवि और काव्य—पं० बलदेव उपाध्याय
१८. कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१९. कालिदास—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
२०. कालिदास—प्रो० चन्द्रबली पाण्डेय
२१. कालिदास और भवभूति—द्विजेन्द्रलाल राय
२२. कालिदास और मेघदूत—डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, १९७०
२३. कालिदास-ग्रन्थावली—सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी
२४. काव्य-प्रकाश—आचार्य मम्मट, सं० आचार्य विश्वेश्वर १९६८

२५. काव्यमीमांसा—राजशेखर
 २६. काव्यादर्श—आचार्य दण्डी
 २७. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया—रैप्सन
 २८. कौटिलीय अर्थशास्त्र—अनु० आचार्य उदयवीर शास्त्री
 २९. " " " वाचस्पति गौरोला
 ३०. गंगा-वेदाङ्क—सं० पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, १९३२
 ३१. चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन—
 डा० छविनाथ त्रिपाठी
 ३२. दशरूपक—घनंजय, अनु० डा० मोलाशंकर व्यास, १९६७
 ३३. धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग १-३)—डा० पी० वी० काणे
 ३४. ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धनाचार्य, अनु० आचार्य विश्वेश्वर, १९६२
 ३५. नाट्यशास्त्र (भाग १-४) भरतमुनि, अभिनवगुप्ताचार्य—
 टीका-सहित १९३४
 ३६. नाट्यसंस्कृति-सुधा—डा० रमेशचन्द्र शुक्ल, १९६८
 ३७. पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
 ३८. पुराण-विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय
 ३९. प्रतिमा-नाटक—भास, सं० डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९५३
 ४०. प्राचीन भारतीय साहित्य (भाग १)—विन्टरनिट्स, अनु० लाजपतराय
 ४१. भारत की संस्कृति-साधना—डा० रामजी उपाध्याय, १९६७
 ४२. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका—सं० डा० तगोन्
 ४३. भारतीय नाट्यशास्त्र की परंपरा और दशरूपक—डा० हजारीप्रसाद
 द्विवेदी, १९६३
 ४४. भारतीय प्रज्ञा—मोनियर विलियम्स, अनु० रामकुमार राय
 ४५. भारतीय संस्कृति—डा० लल्लन जी गोपाल, डा० ब्रजनाथसिंह
 यादव, १९६२
 ४६. भारतीय संस्कृति का विकास (भाग १, २)—डा० मंगलदेव शास्त्री
 ४७. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा—पृथ्वीकुमार अग्रवाल, १९६९
 ४८. भारतीय साहित्य शास्त्र (भाग १, २) पं० बलदेव उपाध्याय, १९४९
 ४९. भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालंकार—डा० प्रोलाशंकर व्यास
 ५०. महाकवि अश्वघोष और उनका काव्य—डा० हरिदत्त शास्त्री, १९६३

५१. महाकवि कालिदास—रमाशंकर तिवारी, १९६१
५२. महाकवि भवभूति—डा० गंगासागर राय, १९६५
५३. महाकवि माघ—डा० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, १९६३
५४. महाभारत-कोष (भाग १, २)—डा० रामकुमार राय
५५. महाभारत-मीमांसा—डा० चिन्तामणि विनायक वैद्य
५६. महाभाष्य—पतंजलि, प्रदीप-उद्योत-टीका-सहित
५७. मृच्छकटिक—शूद्रक, सं० वसन्त रामचन्द्र नेरुरकर, १९३७
५८. रसगंगाधर—पण्डितराज जगन्नाथ
५९. रामकथा—डा० कामिल बुल्के
६०. वेदकाल-निर्णय—दीनानाथ शास्त्री चुलेट
६१. वेदों में भारतीय संस्कृति—आद्यादत्त ठाकुर, १९६७
६२. वैदिक इन्डेक्स—डा० मैकडानल, डा० कीथ
६३. वैदिक धर्म एवं दर्शन—मूल लेखक डा० कीथ, अनु० डा० सूर्यकान्त
६४. वैदिक माइथोलॉजी—डा० मैकडानल, अनु० रामकुमार राय
६५. वैदिक-संपत्ति—पं० रघुनन्दन शर्मा, १९४८
६६. वैदिक साहित्य—पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, १९६८
६७. वैदिक साहित्य और संस्कृति—पं० बलदेव उपाध्याय, १९६७
६८. वैदिक साहित्य और संस्कृति—वाचस्पति मैरोला, १९६६
६९. वैदिक साहित्य का इतिहास—डा० राजकिशोरसिंह, १९६४
७०. वैदिक साहित्य की रूपरेखा—डा० सत्यनारायण पांडेय, डा० जोशी, १९५७
७१. संस्कृत-आलोचना—पं० बलदेव उपाध्याय
७२. संस्कृत-कवि-दर्शन—डा० भोलाशंकर व्यास, १९६८
७३. संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन—डा० भोलाशंकर व्यास
७४. संस्कृत-काव्यकार—डा० हरिदत्त शास्त्री, १९६२
७५. संस्कृत के महाकवि और काव्य—डा० रामजी उपाध्याय, १९६५
७६. संस्कृत-नाटक—मूल लेखक डा० कीथ, अनु० डा० उदयमानुसिंह, १९६५
७७. संस्कृत-नाटककार—कान्तिकिशोर भरतिया, १९५६
७८. संस्कृत नाटक-समीक्षा—प्रो० इन्द्रपार्थसिंह 'इन्द्र', १९६०
७९. संस्कृत-नाट्यशास्त्र, एक पुनर्विचार—जयकुमार 'जलज', १९६२

८०. संस्कृत नाट्य-साहित्य—डा० जयकिशनप्रसाद, १९६६
८१. संस्कृत वाङ्मयचा त्रोटक इतिहास (मराठी)—डा० चिन्तामणि विनायक वैद्य
८२. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (भाग १, २) डा० रामजी उपाध्याय, १९७१
८३. " " " " " डा० सत्यनारायण पांडेय, १९६६
८४. संस्कृत साहित्य का इतिहास (भाग १)—डा० मैकडानल, अनु० चारु-चन्द्र शास्त्री, १९६२
८५. " " " डा० कीथ, अनु० डा० मंगलदेव शास्त्री, १९६०
८६. " " " पं० बलदेव उपाध्याय, १९६८
८७. " " " वी० वरदाचार्य, अनु० डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९६२
८८. " " " प्रो० हंसराज अग्रवाल, १९६५
८९. " " " सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
९०. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास—कृष्णचैतन्य, अनु० डा० विनय कुमार राय
९१. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ—डा० जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल, १९६६
९२. " " की रूपरेखा—पं० चन्द्रशेखर पांडेय, डा० व्यास, १९६७
९३. संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास—डा० प्रभाकर नारायण कवठेकर
९४. संस्कृत-साहित्य-विमर्श—पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, १९५६
९५. संस्कृत-सुकवि-समीक्षा—पं० बलदेव उपाध्याय, १९६३
९६. साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ कविराज, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९३१
९७. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, १९५३
९८. हिन्दू राजतन्त्र—डा० काशीप्रसाद जायसवाल
९९. हिन्दू सभ्यता—डा० राधाकुमुद मुकर्जी, अनु० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, १९५८
१००. हेलेनिज्म इन एंशिपेंट इन्डिया—जी० बनर्जी

101. History of Indian Literature—	<i>A. Weber,</i>	1961
102. " " " " "	— <i>M. Winternitz,</i>	1927
103. History of Sanskrit Literature—	<i>A. Macdonell,</i>	1962
104. " " " " "	— <i>A. B. Keith,</i>	1948
105. " " " " "	— <i>Dasgupta & De.</i>	1962
106. " " " " "	— <i>V. Varadachari,</i>	1952
107. " " " " "	— <i>H. R. Agarwal,</i>	1944
108. Inscriptions of the early Gupta Kings and Their successors—Edited by	— <i>Dr. Ganganath Jh,</i>	1914
109. Sanskrit Drama	— <i>A. B. Keith,</i>	1923
110. Sanskrit Dramas of Twentieth Century, —	<i>Usha Satyavrat,</i>	1971

परिशिष्ट (ख)

अनुक्रमणिका

(लेखकों एवं ग्रन्थों की सूची)

सूचना—अंकों के द्वारा पृष्ठ-संख्या का निर्देश है।

अ	अनन्ताचार्य ५१८
अखिलानन्द शर्मा २५६	अनर्घराघव ४२६, ४३०
अगस्त्य २५५, ५१७	अनवारि मुहेली ५८१
अग्निपुराण ६७	अनुक्रमणिकाएँ ६३
अच्युतपति ५६८	अनृत ११
अथर्ववेद १३, १६, ६४, ६५	अनेक-संधान-काव्यकार २६२
अथर्ववेद एंड द आयुर्वेद १५	अन्नदाचरण २५८
अथर्ववेद का सुबोध भाष्य १३, १४	अप्पय दीक्षित ५६५
अथर्ववेदकालीन संस्कृति १५	अप्पा शास्त्री ५१८
अथर्ववेद संहिता १३, १६, ६६	अबुल मआली नसरल्ला ५८१
अथर्ववेद (पैपलाद) संहिता १४	अब्दुल्ला इब्न मोकफ्फा ५८१
अथर्ववेदीय आरण्यक ७६	अमयदेव २६१
अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र १५	अभिज्ञानशाकुन्तल ३३३
अथर्ववेदीय पंचपटलिका १४	अभिनन्द २५४, २५५, २६०
अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य १४	अभिनव कालिदास ६११
अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी १४	अभिनव रामानुजाचार्य २५७
अथर्ववेदीय ब्राह्मण २०, ७५	अभिराम कामाक्षी २६३
अद्भुत ब्राह्मण ७६	अभिलषितार्थ चिन्तामणि ५६८
अध्यात्म रामायण ६८	अमरचन्द्र २५५, २६१
अर्नगहर्ष (मात्रराज) ४४३	अमरदास ५६८
अनन्त ५८८	अमर (अमरक) ५४५
अनन्त त्रिपाठी ४५३	अमरुशतक ५४५
अनन्त भट्ट ६१२	अमलाचार्य (अम्मल) ६१३

अमितगति ५६२, ५६६
अम्बिकादत्त व्यास ४५०, ५०८
अरविन्द घोष १५
अरिंसिंह २५५, ६००
अर्हददास २६१, ६१३
अवदानशतक ५८६
अवधूत राय योगी ५६४
अवन्तिसुन्दरीकथा ४६६, ४६६
अविनाशचन्द्र दास ११, ५०
अश्वघोष ७, १६७, ४२८, ४५२,
५६१, ५६३

अहोबल सूरि ६१३

आ

आउफेल्स १७
आचार्य शेषशायी ५१८
आचार्य श्रीशैल ५१८
आनंद वेद १५
आनन्द ५८८

आनन्दचन्द्र १३

आनन्दतीर्थ ५६३

आनन्दवर्धन ५६२

आनन्दवृन्दावनचम्पू ६१३

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र १८

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १८

आर्कटिक होम इन द वेदाज १४

आर० कृष्णमाचारी ४५०, ४५३

आर्थर राइडर ५४०

आर्नोल्ड २१

आर्यन गॉड्स ऑव मितानी पीपुल्स २२

आर्यमंजुश्रीकल्प ५६४

आर्यमुनि ११

आर्यसूर (आर्यसूर) २६०, ५६०

आर्यासिप्तशती ५५६, ५६३, ५६८

आर्यों का आदिदेश १४

आर्षानुक्रमणी ६३

आर्षेय ब्राह्मण ७५, ७६

आशाधर सूरि ६१३

आसफविलास ५५५

आस्पेक्चुअल फंक्शन ऑव द ऋग्वे-
दिक प्रेजेन्ट एंड एओरिस्ट २२

इ

इण्डिया ऑव द कल्पसूत्रज १५

इण्डिया इन द वेदिक एज १५

इण्डिशो स्तुदिएन १८, २१

इण्डिशो स्पूखे ५७०

इन्दुलेखा २६३

इन्द्र ५६८

ई

ईंग्लिश १८

ईचम्बदी श्रीनिवासाचारी ४५०

ईश्वरदत्त ४४२

उ

उत्तररामचरित ४०२

उत्पलदेव ५६२

उत्प्रेक्षा-वल्लभ २५६

उदयप्रभ सूरि २६१

उदयसुन्दरी कथा ६११

उद्दण्ड ४४५

उद्धवदूत ५४१

उद्धवसन्देश ५४०

उपनिषद् २८, ७६
 उपनिषद्भाष्य १५
 उपनिषद्भाष्य-ग्रन्थमाला १४
 उपनिषद्वाक्यकोष २१
 उपमितिमवप्रपंचकथा ५६०
 उमाकान्त शुक्ल ५२१
 उमापति शर्मा द्विवेदी २५६
 उरुज्योतिः १४
 उव्वट १२

ऋ

ऋक्-प्रातिशाख्य १४
 ऋग्वेद १०, १५, ३०
 ऋग्वेद एंड वेदिक रिलिजन २२
 ऋग्वेद की शाखाएँ ३४
 ऋग्वेद का सुबोध भाष्य ११
 ऋग्वेद में लुङ् लकार २२
 ऋग्वेद रिपीटिशन २१
 ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका ११
 ऋग्वेदालोचन ११
 ऋग्वेदिक कोश २०
 ऋग्वेदिक इंडिया ११
 ऋग्वेदिक ज्योग्राफी आँव इंडिया १५
 ऋग्वेदीय आख्यान ४०
 ऋग्वेदीय आरण्यक ७८
 ऋग्वेदीय देवता ३६
 ऋग्वेदीय ब्राह्मण १७
 ऋग्वेदीय सूत्रग्रन्थ १७
 ऋतुसंहार ५२५

ए

एच० जी० रूक ५४०

एच० बेक्स् ५४०
 एज आँव द ऋग्वेद १२
 एडगर्टन ५७६
 एन्थानियस फॉन फर ५८१
 एपिथेट्स इन ऋग्वेद २२
 एटल १६
 एलिजारेनकोवा २२
 एस० एन० ताडपत्रीकर ४५१
 ऐ

ऐतरेय आरण्यक ७८
 ऐतरेय ब्राह्मण १७, ७४, ७५
 ऐतरेयालोचन ११

ओ

ओरायन १४
 ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स १५
 ओल्डेनबर्ग १६, १७

क

कंचनाचार्य ४४४
 कथाकौतुक ५८६
 कथापंचक ५१४
 कथामुक्तावली ५१४
 कथारत्नाकर ५६१
 कथार्णव ५८६
 कथासरित्सागर ५८६
 कनकसेन वादिराज २६१
 कन्हैयालाल पोद्दार ५४०
 कपालि शास्त्री ११
 कपिलदेव द्विवेदी १५, ४५१, ५२०
 ५६७

कपिष्ठल कठसंहिता ५६

करमबलेकर १५	कीथ १७, १८, २०, २१
कर्क १२	कीर्तिकौमुदी ६००
कर्नल जैकब २१	कीर्तिराज २६१
कर्पूरमंजरी ४३३	कीलहार्न ५७६
कर्णपूर (गोस्वामी परमानन्द) ४५२	कुट्टिनीमत ५६०
कलापरिच्छेद ४६७, ४७०	कुन्दमाला ४३६
कर्लिंगराय ५६६	कुमारताताचार्य ४४८
कल्प ६१	कुमारदास २४४
कल्याणराम शास्त्री ५१८	कुमारपालचरित ६००
कल्हण २६०, ५६७	कुमारसंभव १४६
कवि कर्णपूर (कविराज) २५५, ४४६, ६१३	कुम्भकर्ण ५५४
कवि तार्किक ४४७	कुलशेखर ५६२
कवि तार्किकसिंह ६१३	कुलशेखर-वर्मन् ४४३
कवि नारायण भट्ट ६१४	कुसुमदेव ५६४
कविराज २५१	कूरेश स्वामी ५६८
कवि शंकर ६१६	कूर्मपुराण ६६
कवीन्द्रवचनसमुच्चय ५६८	कृष्ण २५६
कवीन्द्राचार्य ५१७	कृष्ण कवि ६१४
काठकसंहिता १८, ५६	कृष्णचन्द्र तर्कालंकार ५६८
काण्वसंहिता ५५	कृष्णदत्त ४४८
कात्यायन ५, १६३, २५४	कृष्णमिश्र ४३८, ४४६, ४५२
कादम्बरी ४६०, ४६३	कृष्ण यजुर्वेद १८, ५४
कामिल बुल्के १०७	कृष्णलाल ५६८
कालिदास १३५, २५८, ५२५, ५६१	कृष्णलीलाशुक (बिल्वमंगल) २५५
काव्यादर्श ४६६, ४६६	कृष्ण वर्मा १०
काशीपति कविराज ४४५	कृष्णाचार्य २५६
काशीप्रसाद जायसवाल १०७	कृष्णानन्द २५५
किरातार्जुनीय १८४	कृष्णानन्द कवीन्द्र ६१६
	कृष्णानन्द वाचस्पति ४५३
	कृष्णावधूत घटिकाशत ४४६

- के० एस० रामस्वामी ४५१
 केगी १७
 केन उपनिषद् ७९
 केरल वर्मा २५७
 केशवप्रसाद मिश्र ५४०
 केशवभट्ट ६१६
 कैलेन्ड १८, १९, २०
 कोकसन्देश ५४१
 कोकिलसन्देश ५४०
 कोटिलिंगपुर-राजकुमार ४४९
 कोल्हट ११
 कौमुदी-कथा-कल्लोलिनी ५१६
 कौषीतकि ब्राह्मण १७
 क्नाउएर १८
 क्या वेद में इतिहास है? १५
 काउन आँव् हिन्दुइज्म २२
 क्लेटन २२
 क्षमाराव, पंडिता २६३, ५८५
 क्षेमकरण त्रिवेदी १३, १४
 क्षेमीश्वर ४४३
 क्षेमेन्द्र २६०, ४४४, ५६०, ५६३,
 ५८५
 ग
 गंगा १४
 गंगालहरी ५५५
 गंगादेवी २६३
 गंगाधर ४४६
 गंगाधर शास्त्री तैलंग २५९
 गंगाप्रसाद उपाध्याय १२, २५९
 गण्डवहो (गौडवधः) ५९३
 गणपति शास्त्री, टी० के० ५१९
 गदाधर १२
 गद्य-काव्य ४५३
 गरुड पुराण ९९
 गाथा-सप्तशती ५५९, ५६१
 गायत्री उपनिषद् ७७
 गार्बे १८, १९
 गास्ट्रा १९, २०
 गियुलियो नूति ५८१
 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी १५, ५२०
 गिल्डमिस्टर ५४०
 गीतगोपाल ५५४
 गीत-गोविन्द-काव्य ५४८
 गीति काव्य ५२१, ५५९
 गुणभद्राचार्य २६१
 गुणाढ्य ५८३
 गुमानि कवि ५६६
 गुरुदत्त विद्यार्थी १५
 गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य २५८
 गुरुराम ४४७
 गृह्यसूत्र ९२
 गेटे ५५४
 गेल्डनर १७, २२
 गोंड २२
 गोकुलनाथ ४४६, ४५२, ५६६
 गोवर्धनाचार्य ५५९, ५६३, ५६८
 गोपथ ब्राह्मण १४, २०, ७५, ७७
 गोपीनाथ चक्रवर्ती ४४९
 गोरेसियो १०७
 गोविन्ददास ५६५

गोविन्द दीक्षित २५६

ग्राग.ज्योतिः ५१४

ग्रासमान १६, २०

ग्रिफिथ १६, १८, १९, २०

ग्रिसवोल्ड २२

घ

घटकपर्पर ५६१

घटकपर्पर-काव्य ५६१

घनश्याम २५७, २६२

च

चक्र कवि २५७, ६१५

चक्रवर्ती राजगोपाल ५१८

चण्ड कवि २५५

चण्ड मारुताचार्य २५८

चण्डीशतक ५६१

चतुर्भुज २५६

चन्द्र (चन्द्रक) ४४३

चन्द्रकान्त तर्कालंकार १३

चन्द्रदूत ५४१

चन्द्रमणि विद्यालंकार १४

चन्द्रालोक ४४०

चम्पक श्रेष्ठिकथानक ५९१

चरित्रसुन्दर गणि २६२, ५६४

चाणक्य ५६०, ५७५

चाणक्यशतकम् ५६०

चारुदेव शास्त्री ५१९

चिक्कदेव राय ५५४

चित्रमीमांसा-खण्डन ५५५

चिदम्बर ६१४

चिन्तामणि भट्ट ५८८

चिरंजीव भट्टाचार्य शतावधान ६१४

चोक्कनाथ ४५०

चौरपंचाशिका ५५९, ५६६

छ

छज्जूराम शास्त्री ५२१

छन्दोविचिति ४६६, ४७०

छान्दोग्य आरण्यक ७९

छान्दोग्य उपनिषद् ७६

छान्दोग्य ब्राह्मण ७५, ७६

ज

जंमलदत्त ५८६

जगज्ज्योतिर्मल्ल ४४७

जगदीश्वर भट्टाचार्य ४४६

जगद्गुरुरित ६००

जगद्धर भट्ट ५६०, ५६४

जगन्नाथ ४४८

जगन्नाथ, देखो पंडितराज जगन्नाथ

जगन्मोहन ५१७

जगु अलवार आर्यंगर ५१८

जटासिंह नन्दि २६०

जनार्दन भट्ट गोस्वामी ५६६

जम्बू कवि ५६२

जयचन्द्र विद्यालंकार १०७

जयदेव ४४०, ५४७, ५६३

जयदेव विद्यालंकार ११, १२, १३

जयदेव शर्मा १५

जयद्रथ २६०

जयसिंह सूरि ४४४

जयानक ६००

जल्हण २६०, ५६३, ५६९, ६००

जातकमाला ५६०	त्यागराज ५६६
जॉन आर्व् केपुआ ५८१	त्रिविक्रम २५५
जिनकीर्ति ५६१	त्रिविक्रम भट्ट ६०२
जिनप्रभ २६१	त्रिवेणी ५६५
जीवनलाल पारीख ४५१	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ५६१
जीवन्धरचम्पू ६१०	तिसम्मैर २२
जीवराम याज्ञिक ४४६	
जीवानन्द विद्यासागर ५६६	थाउज्जन्ड सिलेबिल्ड स्पीच १४
जैनराज-तरंगिणी ५६६	थॉमस १७
जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ७७, ७८	थिओडोर आउफ्रेस्त १६
जैमिनीय गृह्यसूत्र १६	
जैमिनीय ब्राह्मण ७५	दण्डी ४६५
जोनराज ५६६	दशकुमारचरित ४६६
ज्ञानसुन्दरी ५२१	दांडेकर १५
ज्योतिरीश्वर ४४५	दामोदर गुप्त ५६०, ५६२
ज्वालाप्रसाद मिश्र १२	दामोदर मिश्र ४४३
	दिङ्नाग ४३६
डर्मिनोलॉजी आर्व् द वेदाज १५	दिलीपदत्त शर्मा उपाध्याय २५६, ५१६
	दिवाकर ६१३
डी० एस० शर्मा ५१६	दिव्यावधान ५६०
	दुर्गादास लाहिड़ी १२, १३
तन्त्राख्यायिका ५७६	दूतकाव्य ५४०
तलवकार आरण्यक ७८	देवकुमारिका २६३
तिम्म कवि ५१७	देवविजय गणि ५१७
तिरुमलाम्बा २६३	देवप्रभ सूरि २६१
तिलकमंजरी ५१७	देवराज ४४८
तुलसीराम स्वामी १३	देवविमल गणि २६२
तैत्तिरीय आरण्यक ७८	देशोपदेश ५६०, ५६३
तैत्तिरीय ब्राह्मण ७५, ७६	दैवज्ञ सूर्य कवि ५६४, ६१४
तैत्तिरीय संहिता १८, ५५	दैवत ब्राह्मण ७५, ७६

दैवत-संहिता ११
द्या द्विवेद ५६४
द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री २५६, ५१६
द्विसंवात-काव्य ४६७, ४७०

घ

घनंजय २६२
घनदराज ५६४
घनपाल ५१७
घनेश्वर सूरि २६०
घम्मपद ५६०
घर्मकुमार २६१
घर्मराज ६१६
घर्मसूत्र ६२
घर्मसूरि ४५०
घोषी ५४०, ५६३

न

नन्दकिशोर चन्द्र गोस्वामी ५६६
नन्दन पंडित ५६६
नयचन्द्र २५५
नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ११
नरसिंह ४४५, ४४६
नरसिंहाचार्य ५१८
नरहरि ५६८
नरेन्द्रदेव शास्त्री ५७०
नर्ममाला ५६०, ५६३
नलचम्पू ६०२, ६०३
नल्ल कवि ४४७, ४५२
नल्ला दीक्षित ६१६
नवसाहसकचरित ५६५
नागराज २५८

नागानन्द ३७१
नागार्जुन ५६१
नारद पुराण ६८
नारायण २५५
नारायण तीर्थ ५६६
नारायण पंडित ५६८, ५८२
नारायण भट्ट ५६०, ५६५
नारायणराम आचार्य ५७०
नारायण शास्त्री २५८
नारायण शास्त्री खिस्ते ५१८
नारायणीय उपनिषद् ७८
नारायणीयम् ५६०, ५६५
नाराशंसी १०१
नारोजी पंडित ५७०
निषण्ड ८६
नित्यानन्द शास्त्री ५६७
निष्कत २२, ८६
निष्कतालोचन १४
नीतिमंजरी ५६४
नीतिवर्मा २५४
नीतिशतक ५४१
नीर्पाजे भीमभट्ट ४५१
नीलकंठ २५७, ४४६
नीलकंठ दीक्षित ४४७, ५६५, ६१५
नेमिदूत ५४०
नैषधीय-चरित २२३, २२४

प

पंचकल्याण-चम्पू ६१४
पंचतन्त्र ५७५
पंचदण्डच्छत्र-प्रबन्ध ५८८

पंचविंश ब्राह्मण ७५, ७६	पुत्तलाल शुक्ल ५६७
पंचाख्यानक ५७७	पुष्पसूत्र १३
पंचानन ४५०	पूर्णमद्र ५७७
पंडितराज जगन्नाथ ५५४	पृथ्वीपति सूरि ५६८
पंडिता क्षमाराव २६३, ५१३	पृथ्वीपुत्र १४
पटवर्धन ११	पृथ्वीराज-विजय ६००
पतंजलि ६, २५४	पेड्डिमट्ट ५६६
पदांकदूत ५४१	पेरी काशीनाथ ४५०
पद्मगुप्त २५५, ५६४	पेरु सूरि ४४८
पद्मनाम ४४६	पैप्पलाद शास्त्रा ६६
पद्मनाम मिश्र ६१४	पैप्पलाद संहिता ६६
पद्म पुराण ६८	पोतयार्य ५६६
परमेश्वर शिव द्विज २५७	प्रबन्धकोश ५६१, ६००
पराशर ५६३	प्रबन्धचिन्तामणि ५६१, ६००
परिशिष्टपूर्व ५६१	प्रबन्धमंजरी ५११
पवनदूत ५४०, ५४१,	प्रबोधचन्द्रोदय ४३८
५६३	प्रवरसेन २५४
पाणिनि ५, २५४	प्रसन्नराघव ४४०
पारसनाथ द्विवेदी ५२०	प्रह्लादन ४४५
पार्श्वाम्युदय ५४०	प्रियंवदा ५६५
पालगोपाल-कथानक ५६१	प्रियदर्शिका ३६८
पॉल डायसन ६	प्रियरत्न आर्ष १५
पिलाई ४५१	फ
पिशेल २२, ५४६	फल्गु-हस्तिनी २६३
पी० एल० भार्गव १५	फॉन श्रोएदर ५४६
पीटर्सन १७	फार्कुहर २२
पुराण ६४	फ्रीड्रिक रोजन १५
पुरुष-परीक्षा ५८६	ब
पुष्पदन्त ५६०, ५६२	बदरीनाथ शर्मा २५६
पुष्पर्षि लक्ष्मण शास्त्री १३	बर्नेल १६

वलदेव उपाध्याय १४
 बल्लाल ५६२
 बल्लालसेन ५८६
 बल्लिशाय कवि ४४६
 बल्लीसहाय कवि ६१४
 बाँटलिक २०, ५७०
 बाण भट्ट ४८६, ४६१, ४६६, ५६१,
 ५६३
 बाणेश्वर विद्यालंकार ६१६
 बाबूराम त्रिपाठी ५२०
 बाल कवि ४४६
 बालकृष्ण झा ५६७
 बालगंगाधर तिलक ५०
 बालचन्द्र सूरि २६१
 बाल-भारत ४३३
 बाल-गमायण ४३३
 बिब्लिओग्राफी वैदिक २१
 बिल्वमंगल ५६३
 बिल्हण ६, २६०, ४४४, ५५६, ५६६,
 ५६५
 बुध स्वामी ५८५
 बुद्ध ५६०
 बुद्धघोषाचार्य २६०
 बुद्धचरित १६६, ५६३
 बूद ५८१
 बृहत्कथा ५८३
 बृहत्कथामंजरी ५८५
 बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ५८५
 बृहदारण्यक उपनिषद् ७८
 बेन्फे १६

बोधायन ४४२
 बोधिचर्यावितार ५६१
 बोधायन-गृह्यसूत्र १८
 बोधायन धर्मसूत्र १८
 बोधायन श्रौतसूत्र १८
 व्यूलर ५७६
 ब्रह्मपुराण ६६
 ब्रह्मवैवर्तपुराण ६८
 ब्रह्माण्ड पुराण ६८
 ब्रह्मानन्द शुक्ल ५२०
 ब्रह्मानन्द स्वामी ५६७
 ब्लूमफील्ड १६, २०, २१, २२
 भ
 भगवदाचार्य २५८
 भगवद्दत्त १४
 भगवन्त २५७
 भगवन्त शर्मण दातार ५६७
 भगीरथप्रसाद त्रिपाठी ५१६
 भट्ट गोविन्दजित् ५७०
 भट्टनारायण ३८१
 भट्टभास्कर १२
 भट्ट मथुरानाथ शास्त्री २५६
 भट्टार ज्ञानभूषण ५६४
 भट्टि २३८
 भण्डारकर, आर० जी० १०
 भद्रादिराम २५८
 भरटकट्टात्रिशिका ५६१
 भर्तृमेष्ठ २५४
 भर्तृहरि ५४१
 भल्लट ५६२

भवभूति ३६४, ३६५, ४१५
 भविष्यपुराण ६८
 भागवत चम्पू ६११, ६१२, ६१४
 भागवतपुराण ६७
 भानुमट्ट ५१७
 भामिनीविलास ५५५
 भारतचम्पू ६१२, ६१६
 भारतीकृष्ण तीर्थ १५
 भारवि १८०, १८५, १८३, १८६
 भार्गव, पी० एल० १५
 भास २७४, २८२, २८७, २८५, २८६
 भास्कर ४४५
 भीमट ४४३
 भीमसेन शर्मा १५
 भूदेव शुक्ल ४४८, ४५२
 भूमक २६२
 भूरामल ब्रह्मचारी २६२
 भूषणभट्ट ५०६
 भृंगसन्देश ५४१
 भोज-प्रबन्ध ५८६
 भोजराज ८, ६११
 भोलाशंकर व्यास ५६७

म

मंख (मंखक) २६०
 मंगलदेव शास्त्री, ११, १४, ५१६
 मजूमदार १४
 मणिक ४४५
 मत्स्यपुराण ६७
 मथुरादास ४४६
 मथुराप्रसाद दीक्षित ४५१

मथुराप्रसाद शास्त्री २५६
 मदन ४४४
 मदालसा-चम्पू ६०३
 मधुरवाणी २६३
 मधुसूदन सरस्वती ५६५
 मनोदूत ५४१
 मनोरमा-कुचमर्दन ५५४, ५५५
 मन्दारमंजरी ५०६
 मयूर ५६१
 मलारी आराध्य ४४८
 महादेव ४४७
 महाभारत १०२, ११७
 महालिंग शास्त्री ५१६
 महावीर-चरित ४०१
 महासेन २६१
 महीधर १२
 महेन्द्रविक्रमवर्मा ४४३
 महेशचन्द्र राय ११
 महेश ठाकुर ५१७
 माघ १६८, १६९, २०२, २२०
 माणिक्य चन्द्र २६१
 मातृगुप्त २६०
 मातृचेट २६०
 माधव १४, २५५, ४४६
 माधव भट्ट ५६४
 माधवाचार्य २५५
 माधवानल-कथा ५८८
 माघ्यंदिन संहिता ५५
 मानतुंग आचार्य ५६२
 मायुराज ४४३

मारुला २६३
 मार्कण्डेय पुराण ६८
 मालतीमाधव ३६७
 मालविकाग्निमित्र ३२६, ३३५
 मित्रमिश्र ६१५
 मुंशीराम शर्मा १५
 मुद्गुत्सामी दीक्षित ५६७
 मुद्राराक्षस ३५४, ३५८
 मुनिरत्नसूरि २६१
 मूक कवि ५६०, ५६२
 मूकपंचशती ५६०, ५६२
 मूलशंकर माणिकलाल ४५०
 मृच्छकटिक २६६, ३००, ३०५, ३०७,
 ३१६, ३२२, ४६७, ४७१
 मृत्युंजय दीक्षित २५६
 मघदूत ५२६, ५२८, ५३०, ५३७,
 ५४०
 मेघप्रतिसन्देश ५४१
 मेघविजय गणि २६२
 मेघाव्रत आचार्य, कविरत्न २५६, ५१८
 मेरुतुंगाचार्य ५६१, ६००
 मैकडानल ६, १७, २०, २१, २२,
 ३७, १०७
 मैक्समूलर १६, १७, २१, २२, ५३,
 ५४०
 मैत्रायणीय आरण्यक ७८
 मैत्रायणी संहिता १८, ५६
 मोक्षादित्य ४४५
 मोरिका २६३
 य
 यजुर्वेद १२, १७, ५४

यज्ञनारायण २५६
 यज्ञनारायण दीक्षित ४४७
 यतीन्द्र विमल चौधरी ४५१
 यम-पितृ-परिचय १५
 यशःदेव ४५२
 यशःपाल ४४५
 यशश्चन्द्र ४४४
 यशस्तिलक-चम्पू ६१०
 यशोवर्मा ४४३
 याकोबी ५३, १०७
 यामुनाचार्य ५६२
 यास्क ५, ३६
 र
 रंगनाथ ५१६
 रघुनन्दन शर्मा १५
 रघुनाथ २५६
 रघुनाथ शास्त्री २५६, ५६७
 रघुवंश १५१
 रघुवीर १४
 रत्नाकर २४२, ५६२
 रत्नावली ३७३, ३८०
 रब्बी जोइल ५८१
 रमेशचन्द्र दत्त ११
 रमेश चन्द्र शुक्ल ५२०
 रविवर्मा ४४५
 रसगंगाधर ५५६
 राइट्स ऑव् द ट्वाइस बोर्न २२
 राजकिशोरसिंह ५२०
 राजचडामणि दीक्षित २५६, २६२,
 ४४७, ६१६
 राजतरंगिणी ५६७

राजनाथ तृतीय २५६
 राजनाथ द्वितीय २५६
 राजम्मा ५२१
 राजशेखर ६, ४३३, ५६१, ६००
 राजा लक्ष्मणसिंह ५४०
 राजावलि-पताका ५६६
 राजेन्द्रलाल कर्णपूर ६००
 राजेन्द्रलाल मित्र ११, १४
 राँठ, रुडॉल्फ १६, २०, २२
 राघामोहन ठाकुर ५६६
 रानी तिरुमलाम्बा ६१२
 राम ४४६
 रामकुमार राय १५
 रामकृष्ण ४४६
 रामकृष्ण आचार्य ५२०
 रामगोपाल १५
 रामगोविन्द त्रिवेदी ११, १४
 रामचन्द्र २६२, ४४४, ४४६
 रामजी उपाध्याय ५२०, ५७०
 रामदेव ४४७, ४४६, ४५२
 रामपाणिवाद २५७
 रामपाल-चरित ६००
 रामभद्र दीक्षित २५७, ४४७, ५६६
 रामभद्र मुनि ४४५
 रामभद्राम्बा २६३
 रामवर्मन् ४४८
 रामवर्मा २५७
 रामशरण त्रिपाठी ५१५
 रामशास्त्री ५४०
 रामसनेहीदास २५६

रामस्वरूप शास्त्री ५२०
 रामानन्द स्वामी ५६८
 रामानुज ४४८
 रामानुजाचार्य ५६३
 रामायण १००, १०२, १०३, ११२,
 ११४, ११५, १२६
 रामायण-चम्पू ६११
 रामावतार शर्मा २५६, ५१६
 रावण ५६०
 रिलिजन आँव् द ऋग्वेद २२
 रिलिजन आँव् द वेद २२
 रिलिजन एंड फिलासॉफी आँव् द वेद
 एंड उपनिषद् २१
 रुडॉल्फ राँठ १७, १६, २०, २२
 रुद्र कवि २५६, ५६४
 रुद्रदास ४४७
 रुद्रदेव ४४५
 रूपगोस्वामी ४४६, ५६५, ५७०
 रेवाप्रसाद द्विवेदी २६०
 ल
 लक्ष्मण आचार्य ५६२
 लक्ष्मण भट्ट ५७०
 लक्ष्मण माणिक्य देव ४४६
 लक्ष्मणसरूप १४
 लक्ष्मण सूरि २५७, ४५०
 लक्ष्मीतिलक २६१
 लक्ष्मीघर वाजपेयी ५४०
 लक्ष्मीराज्ञी ५६७
 लॉ, एन० एन० १२, १५
 लांग्लवा १६

ला फौतेन ५८१

लासेन ५४६

लिंगपुराण ६६

लिन्डनर १७

लुइ रेनु २१, २२

लुडविग १६

लैनमन २०

लोकनाथ भट्ट ४४६

लोकमान्य तिलक १४

लोलिम्बराज २५५

ब

वंश ब्राह्मण ७५

वटुकनाथ शर्मा २५८

वत्सभट्ट २५४

वत्सराज ४४४

वनमाली ५५४

वरददेशिक २५७, ५१७

वरदाचार्य १०७, ४४८

वरदाम्बिकापरिणयचम्पू ६१२

वररुचि ४४२

वराह-पुराण ६८

वल्लभदास ५८६

वल्लभदेव ५६६

वल्लभाचार्य ५६८

वस्तुपाल २५५, २६१

वाई० महालिंग शास्त्री ४५१, ४५२

वाकरनागेल २१

वाक्पतिराज २५४, ५६३

वाग्भट २६१

वाचस्पति गैरोला १५

वाजसनेयि संहिता ५५

वादिराज ५६४

वादिराज सूरि २६१

वादीर्मसिंह २६१, ५१७

वामनकृष्ण चित्तले ५१८

वामन पण्डित ५५५

वामन पुराण ६८

वामनभट्ट बाण २५५, ४४५, ५१७,
५६४, ६००

वायु पुराण ६८

वाल्मीकि १११

वासवदत्ता ४८२, ४८५

वासुदेव २५४, २५५

वासुदेवशरण अग्रवाल १४, ५३६

विकट-नितम्बा २६३

विक्रम कवि ५६४

विक्रमांकदेवचरित ५६५

विक्रमोदय ५८८

विक्रमोर्वशीय ३२६

विग्रहराजदेव ४४४

विज्ञान आँव् द वेदिक पोएट्स २२

विज्ञान इन लांग डार्कनेस १४

विजयांका (विज्जिका) २६२, ५६२

विट्ठल ४४६, ४५३

विट्ठलेश्वर ५६८

विद्वशालमंजिका ४३३

विद्याकर पंडित ५६८

विद्या चक्रवर्ती २५५

विद्याधर मिश्र ५६६

विद्यानाथ ४४५

विद्यापति ५१७, ५८६	वेंकटनाथ २५५
विद्या माधव २६२	वेंकट माधव ११
विधुशेखर भट्टाचार्य २५७	वेंकट मुब्रह्मण्य ४४८
विनयप्रभु ५६८	वेंकटाध्वरी २६२, ४४७, ५६६, ६१५
विनयविजयगणि ५६६	वेंकटेश २५७
विन्टरनिस् ६, १८, २२, ५३, १०७	वेंकटेश वामन ५१६
विन्डिश १०	वेंकटेश्वर २५६
विमलकीर्ति ५६५	वेणीदत्त ५७०
विरार राघव ४४६	वेणीसंहार ३८२
विरुपाक्ष ४४५	वेतालपंचविशतिका ५८६
विलिनाथ ४४६	वेदभाष्य-भूमिका-संग्रह १४
विल्सन १६, ५४०	वेदरश्मि १४
विशाखदत्त ३५३, ३५५, ३५६, ३५६,	वेदविद्या १४
३६२	वेदविद्या-निदर्शन १४
विश्वगुणादर्शचम्पू ६१५	वेदसार १४
विश्वनाथ १२, ४४५, ४४८	वेदांग ८४
विश्वनाथ चक्रवर्ती ५६६	वेदांग-ज्योतिष १४
विश्वनाथ सिंह ६१६	वेदान्तदेशिक (वेंकटनाथ) ४४५,
विश्वबन्धु ११, १३, १४	४५२, ५६०, ५६४, ५६६
विश्वेश्वर ४४८	वेदामृत १४
विश्वेश्वर पांडेय ५०६, ५६६	वेदार्थ-निर्णय १५
विष्णुदत्त शुक्ल २५८	वेदिक इन्डेक्स २०
विष्णु पुराण ६७	वेदिक एज १४
विष्णु शर्मा ५७५	वेदिक कंकार्डेन्स २१
वीरचरित ५८८	वेदिक ग्रामर २१
वीरनन्दि २६१	वेदिक ग्रामर फॉर स्टुडेण्ट्स २१
वीरनन्दी २६१	वेदिक डिक्शनरी २०
वीरेन्द्र शास्त्री १३	वेदिक बिब्लियोग्राफी १५
वीरेश्वर ५६६	वेदिक माइथालॉजी २१
वेंकटकृष्ण यज्वा २५७	वेदिक मीटर २१

वेदिक मैथमेटिक्स १५
 वेदिक रीडर फॉर स्टुडेंट्स १७
 वेदिक हिम्स १७
 वेदिशे मीथोलॉजी २१
 वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप १५
 वेदों में परोक्ष भूत का स्थान २२
 वेबर १७, १८, १९, २१, २२
 वेमभूपालचरित ६००
 वेलणकर ४५१, ४५३
 वैदिक कोष १४, २०
 वैदिक छन्द २१
 वैदिक देवता-विज्ञान २१
 वैदिक देवशास्त्र १४, २१
 वैदिक धर्म एवं दर्शन १४
 वैदिक पदानुक्रमकोष १४
 वैदिक मनोविज्ञान १५
 वैदिक माइथोलॉजी १५, २१, ३७
 वैदिक वाङ्मय का इतिहास १४
 वैदिक विज्ञान १५
 वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति १५
 वैदिक विश्वदर्शन १५
 वैदिक व्याकरण १५
 वैदिक शब्दों का अर्थ एवं इतिहास २२
 वैदिक साहित्य १४
 वैदिक साहित्य और संस्कृति १४, १५
 वैदिक साहित्य का इतिहास २२
 वैदिक सूचियाँ २१
 वैद्यनाथ वाचस्पति ४५०
 वैराग्यशतक ५४१

व्यास ५६०
 व्यासतीर्थ २५६
 व्यासरामदेव ४४६, ४५२
 व्यासराय शास्त्री ५१९
 व्रजनाथ ५७०
 व्रात्यकांड १४
 श
 शंकर २५६, ४४९
 शंकर दीक्षित ४४८
 शंकर पांडुरंग पंडित १३
 शंकर बालकृष्ण दीक्षित ५२
 शंकर मिश्र ५५४
 शंकर लाल २५८, ४५३
 शंकरलाल महामहोपाध्याय ४४९
 शंकराचार्य ५६०, ५६१
 शंकराराध्य २५५
 शंकु २५४
 शक्तिभद्र ४४३
 शंखधर कविराज ४४४
 शंभु ५६३, ५७०, ६००
 शतपथ ब्राह्मण ७५
 शांखायन आरण्यक ७८
 शांखायन ब्राह्मण ७४, ७५
 शाकुन्तल ३३३, ३३६, ३३९, ३४१,
 ३४६
 शान्तिदेव ५६१
 शारिपुत्रप्रकरण ४२८, ४२९
 शार्ङ्गधर ५६९
 शार्ङ्गधर-पद्धति ५६९
 शालिवाहन-कथा ५८८

शिक्षा ७२, ८५

शिल्हण ५६३

शिवकुमार शास्त्री २५८

शिवताण्डवस्तोत्र ५६०

शिवदत्त ५७०

शिवदास ५६२, ५८६, ५८८, ५८९

शिवप्रसाद भारद्वाज ५६७

शिवप्रसाद शास्त्री ५२०

शिवभक्तदास ५६६

शिवमहिम्नस्तव ५६०

शिवराजविजय ५०९

शिवशंकर काव्यतीर्थ १५

शिवसूर्य २५६

शिवस्वामी २६०, ४४३

शिशुपालवध १९९, २०१-२२०

शीलर ५४०

शीला भट्टारिका २६३, ५६२

शुक ५९९

शुकसन्देश ५४१

शुकसप्तति ५८८

शुक्ल यजुर्वेद १७, ५४, ५५, ७५

शुल्बसूत्र ९२

शूद्रक २९९, ३०१, ३०९, ३१३,

३१७, ३२२, ३२३

शृंगारशतक ५४१

शेषकृष्ण ४४६, ६१४

शैलताताचार्य ५१८

शैल दीक्षित ५१७

शौनकीय शाखा (अथर्ववेद) ६६

श्याम शास्त्री ५६७

श्यामिलक ४४३

श्रीकृष्णदेव सार्वभौम ५६६

श्रीधरदास ५६९

श्रीधर पाठक १२

श्रीनिवास २५६, २५७

श्रीनिवास कवि ६१६

श्रीनिवास दीक्षित ४४६, ४५२

श्रीनिवासाचारी ४५०

श्रीपाद शास्त्री ५१९

श्रीराम शर्मा १२, १३

श्रीवत्सांक ५६३

श्रीधर ५६९, ५९९

श्रीवीर कवि ५८९

श्रीहर्ष २२१, २२४, २२५-२३७

श्रेडर १८

श्रीतसूत्र ९१

श्लेगल १०७

ष

षड्विंश ब्राह्मण ७५, ७६

स

संकर्षण २५६

संघ्याकर नन्दी २६२, ६००

संस्कारचन्द्रिका १५

संस्कृत ग्रामर फॉर स्टुडेन्ट्स २१

संस्कृत-जर्मन-कोश २०

संस्कृत-व्याकरण २१

संस्कृत साहित्य का इतिहास २२

संहितोपनिषद् ७५

सकलकीर्ति ५६९

सठकोप ४४७

सत्यप्रकाश १२, १५	सिल्वा लेवी ५४६
सत्यव्रत शास्त्री २६०	सुकुमार २५६
सत्यव्रत सामश्रमी ११, १२, १३, १४	सुकृत-संकीर्तन ६००
सदाशिव दीक्षित ४५१	सुन्दरदेव ५७०
सदाशिव शास्त्री ६००, ६१६	सुन्दर पाण्ड्य ५६१
सद्भुक्तिकर्णामृत ५६६	सुन्दरावली ५२१
समयमातृका ५६३	सुबन्धु ४८२, ४८५, ४८८
सम्पूर्णानन्द १४	सुब्रह्मण्य सूरि ५१६
सर टामस नार्थ ५८१	सुमट ४४४, ४५२
सरल पंचतंत्र ५७६	सुमद्रा २६३
सर विलियम जोन्स ५४६, ५५३	सुभाषितरत्नमाण्डागार ५७०
सर्वज्ञ मित्र ५६२	सुभाषितरत्नसन्दोह ५६२
सर्वानन्द ६००	सुभाषितावलि ५६६
सर्वानुक्रमणी ६३	सुरयोत्सव ६००
सलुव नरसिंह २५६	सुरेन्द्रनाथ दीक्षित ५२७, ५२६
साकल्यमल्ल २५५	सूक्तिमुक्तावली ५६६
सातवलेकर ११, १२, १३, १४	सूर्यकान्त १४
सामराज दीक्षित ४४७	सूर्यशतक ५६१
सामविधान ब्राह्मण ७५, ७६	सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी २०
सामवेद-आरण्यक-संहिता ७६	सोंठी भद्रादि रामशास्त्री ४५०
सामवेद संहिता १३, १६, ५६	सोड्डल ६११
सायण १०, ११, १२, १३, १४, ५६६	सोमदेव ४४४, ५८६
सायण और माधव १४	सोमदेव सूरि ६१०
सिंहासन-द्वार्त्रिशिका ५८७, ५८८	सोमनाथ २५५
सिद्ध (सिद्धिषि) ८, ५६०	सोमपाल-विजय ६००
सिद्ध चन्द्रमणि ५६६	सोमप्रभ ५६३
सिद्धसेन दिवाकर ५६१	सोमप्रभाचार्य ५६६
सिद्धेश्वर शास्त्री ११	सोमेश्वर ५६४, ५६८
सिन्दे-विजय-विलास-चम्पू ६००, ६१६	सोमेश्वरदत्त ६००
सिमियन ५८१	सोन्दरनन्द १७०

स्कन्दपुराण ६६

स्टाइलिस्टिक रेपिटिशन इन द वेद २२

स्टेन कोनो १६, २२

स्टेन्सलर १७, १८, ५४०

स्टेवेन्सन १६, २२

स्तुतिकुसुमांजलि ५६०, ५६४

स्तोत्र-साहित्य ५५६

स्वयंभूनाथ २५६

स्वाध्याय-संहिता १५

स्वामी दयानन्द ११, १२, ५०

स्वामी दर्शनानन्द १५

स्वामी भागवताचार्य ५१६

स्वामी विश्वेश्वरानन्द १२

स्वामी हरिप्रसाद १४

स्वाहासुधाकरचम्पू ६१४

ह

हंसदूत ५४०

हंसराज १४

हंसराज अग्रवाल ५२०

हंससन्देश ५४०, ५४१

हकीम बुर्जोई ५८१

हनुमत्प्रसाद शास्त्री २५६

हनुमान् ४४३

हर कवि ५१७

हरदत्त सूरि २६२

हरि कवि ५७०

हरिचरण भट्टाचार्य ५१८

हरिदत्त शास्त्री ५२०, ५६७

हरिदास ५७०

हरिदास सिद्धान्तवागीश ४५०

हरिभास्कर ५७०

हरिशंकर जोशी १५

हरिशर्मा दाधीच ५६७

हरिश्चन्द्र २५०, ६१०

हरिषेण २५४

हरिहर १२, ४४६

हर्टल १०, ५७६

हर्ष (हर्षवर्धन) ३६५, ३७४, ५६१

हर्षचरित ५६३

हलायुध २५५

हाउग १७

हाल ५५६, ५६१

हितोपदेश ५७७, ५८१, ५८२

हिम्स फ्रॉम द ऋग्वेद १७

हिलेब्रांट १७, २०, २१

हिस्ट्री ऑव् इन्डियन लिटरेचर २२

हिस्ट्री ऑव् द एन्शिएन्ट संस्कृत लिट

रेचर २२

हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लिटरेचर १४

हृषीकेश भट्टाचार्य ५११

हेमचन्द्र २६१, ५६३, ५६१

हेमचन्द्र राय २५८

हेमचन्द्राचार्य ६००

हेमविजय गणि ५६१

ह्विटनी १६, २०, २१

ह्वेनसांग ८

S.V.P.N.



